भ्रमोच्छेदन ॥

जो

राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द के निवेदन के उत्तर में

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वतीजी ने

सज्जन आर्यों के हितार्थ

निर्माण किया है ॥

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में मुद्रित ।

पञ्चम बार
१०००

संवत् १९७२.

मूल्य ।॥

ओ३म्

भ्रमोच्छेदन *

अविद्वानों का

मैंने राजा शिवप्रसाद सितारहहिन्द की बुद्धि और चतुराई की प्रशंसा सुन के चित्त में चाहा कि कभी उनसे समागम होकर आनन्द होवे जैसे पूर्व समय में बहुत ऋषि मुनि विद्वानों के बीच प्रज्ञासागर बृहस्पति महर्षि हुए थे क्या पुनरपि वे ही महा अविद्यान्धकार के प्रचार से नाना प्रकार के अन्यान्य विरुद्ध मत मतान्तर के इस वर्त्तमान समय में शरीर धारण करके प्रकट तो नहीं हुए हैं ? ।

देखना चाहिये कि जैसा उनको मैं सुनता हूं वैसे ही वे हैं वा नहीं ऐसी इच्छा थी। यद्यपि मैंने संवत् १९२६ से लेके पांच बार काशी में जाकर निवास भी किया परन्तु कभी उनसे ऐसा समागम न हुआ † कि कुछ वार्तालाप होता, मैंने प्रस्तुत संवत् १९३६ कार्तिक सुदी १४ गुरुवार को काशी में आकर महाराजे विजयनगराधिपति के आनन्दबाग में निवास किया इतने में मार्गशीर्ष सुदी में अकस्मात् राजा शिवप्रसादजी प्रसिद्ध एस् एच् कर्नल ऑलकाट् साहब और एच् पी मेडम ब्लेवेट्स्की को मिलने के लिये आनन्दबाग में आ उनसे मुझ से मिलकर कहा कि मैं उक्त साहब और मेडम से मिला चाहता हूं । सुनकर मैंने एक मनुष्य को भेज राजासाहब की सूचना कराई और जबतक उक्त साहब के साथ राजाजी न उठगये तबतक जितनी मैं अपने पत्र में लिख चुका हूं उनसे बातें हुईं परन्तु शोक है कि जैसा मेरा प्रथम निश्चय राजाजी पर था वैसा उनको न पाया ‡ मन में विचारा कि जितनी दूसरे के मुख से बात सुनी जाती है सो सब सच नहीं होती ।।

---

* जो राजा शिवप्रसादजी अपने लेख पर स्वामी विशुद्धानन्दजी का हस्ताक्षर न कराते तो मैं इस पर एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको तो संस्कृत विद्या में शब्दार्थ सम्बन्धों के समझने का सामर्थ्य ही नहीं है इसलिये जो कुछ इस पर लिखता हूं सो सब स्वामी विशुद्धानन्दजी की ओर ही समझा जावे ।।

† एक बार सय्यद अहमदखां सदरसदूरजी की कोठी पर दूर से देखा था पर वार्त्तालाप नहीं हुआ था ।।

‡ राजाजी की वाचालता बहुत बड़ी और समझ अति छोटी देखी ।।

राजाजी लिखते हैं कि स्वामीजी की बात सुनकर मैं भ्रम में पड़ गया यहां बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि क्या मेरी बात का सुनना ही राजाजी को बड़े संदेह में पड़ने का निमित्त है और उनकी कम समझ और आलस्य कारण नहीं है * जब कि उनको सन्देह ही छुड़ाना था तो मेरे पास आके उत्तर सुन के यथाशक्ति सन्देह निवृत्त कर आनन्दित होना योग्य न था ? जैसा कोमल लेख उन के पत्र में है वैसा भीतर का अभिप्राय नहीं † किन्तु इस में प्रत्यक्ष छल ही विदित होता है। देखो मार्गशीर्ष से लेके वैशाख कृष्ण एकादशी बुधवार पर्यन्त सवाचार मास उनके मिलने के पश्चात् मैं और वे काशी में निवास करते रहे क्यों न मिलके सन्देह निवृत्त किये ?। जब मेरी यात्रा सुनी तभी पत्र भेज के प्रत्युत्तर क्यों चाहे ? मेरे चलने समय प्रश्न करना, मेरे बुलाये पर भी उत्तर सुनने न आना, सवाचार महीने पर्यन्त चुप होके बैठ रहना और मेरे काशी से चले आने पर अपनी व्यर्थ बड़ाई के लिये पुस्तक छपवाकर काशी में और जहां तहां भेजना कि काशी में कोई भी विद्वान् स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने में समर्थ न हुआ किन्तु एक राजा शिवप्रसादजी ने किया। ऐसी प्रसिद्धि होने पर सब लोग मुझको विद्वान् और बुद्धिमान् मानेंगे ऐसी इच्छा का विदित करना आदि हेतुओं से क्या उनकी अयोग्यता की बात नहीं है ? ‡, भला ऐसे मनुष्यों से किसी विद्वान् को उचित है कि बात और शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त होवे ? ऐसे कपट छल के व्यवहार न करने में मनुजी की भी साक्षी अनुकूल है ॥

अधर्मेण तु यः प्राह यश्चाऽधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥

अर्थ–(यः) जो (अधर्मेण) अन्याय, पक्षपात, असत्य का ग्रहण सत्य का परित्याग, हठ, दुराग्रह से वा जिस भाषा का आप विद्वान् न हो उसी भाषा के

* कोई कितना ही बड़ा विद्वान् हो परन्तु अविद्वान् मनुष्य को विद्या की बातें विना पढ़ाये कभी नहीं समझा सकता न वह विना पढ़े समझ सकता है ।

† हाथी के खाने के दांत भीतर और दिखाने के बाहर होते हैं ।

‡ जो राजाजी प्रश्नों के उत्तर चाहते तो ऐसी अयोग्य चेष्टा क्यों करते जब मैंने उनकी अन्यथा रीति जानी तभी उनसे पत्र व्यवहार आगे को न चलाया क्योंकि उनसे संवाद चलाना व्यर्थ देखा ॥

विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ किया चाहे और उस भाषा के सच झूठ की परीक्षा करने में प्रवृत्त होवे और कोई प्रतिवादी सत्य कहे उसका निरादर करे इत्यादि अधर्म कर्म से युक्त होकर छल कपट से * (पृच्छति) पूछता है (च) और (यः) जो (अधर्मेण) पूर्वोक्त प्रकार से (प्राह) उत्तर देता है ऐसे व्यवहार में विद्वान् मनुष्य को योग्य है कि न उससे पूछे और न उसको उत्तर देवे। जो ऐसा नहीं करता तो पूछने वा उत्तर देने वाले दोनों में से एक मर जाता है (वा) अथवा (विद्वेषम्) अत्यन्त विरोध को (अधि, गच्छति) प्राप्त होकर दोनों दुःखित होते हैं ॥

जब इस वचनानुसार राजाजी को अयोग्य जानकर लिख के उत्तर नहीं दिये † तो फिर क्या मैं ऐसे मनुष्यों से शास्त्रार्थ करने को प्रवृत्त हो सकता हूं । हां मैं अपरिचित मनुष्यों के साथ चाहे कोई धर्म से पूछे अथवा अधर्म से उन सबों के समाधान करने को एक बार तो प्रवृत्त हो ही जाता हूं, परन्तु उस समय जिसको अयोग्य समझ लेता हूं जबतक वह अपनी अयोग्यता को छोड़कर नहीं पूछता और न कहता है तबतक उससे सत्याऽसत्यनिर्णय के लिये कभी प्रवृत्त नहीं होता हूं । हां जो सब विद्वानों को योग्य है वह काम तो करता ही हूं, अर्थात् जब २ अयोग्यपुरुष मुझ से मिलता वा मैं उससे मिलता हूं तब २ प्रथम उसकी अयोग्यता के छुड़ाने में प्रयत्न करता हूं, जब वह धर्मात्मता से योग्य होता है तब मैं उसको प्रेम से उपदेश करता हूं वह भी प्रेम से पूछके निस्सन्देह होकर आनन्दित होजाता है ‡ अब जो राजा शिवप्रसादजी ने स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति लिखी, ज्येष्ठ महीने में निवेदनपत्र छपवा के प्रसिद्ध किया है उसी के उत्तर में यह पुस्तक है ॥

इसमें जहां २ (रा०) चिन्ह आवे वहां २ राजा शिवप्रसादजी का और जहां २ (स्वा०) आवे वहां २ मेरा लख जानना चाहिये ।

रा०—जितना महाराजजी के मुखारविन्द से सुना था बड़े सन्देह का कारण

---

* जिसके आत्मा में और; और जिसके बाहर और होवे वह छली कहाता है।

† जो जिस बात के समझने और जिस काम के करने में सामर्थ्य नहीं रखता वह उसका अधिकारी नहीं हो सकता ॥

‡ कोई भी वैद्य जबतक रोगी के आँखों की पीड़ा सोजा और मलीनता दूर नहीं कर देता तबतक उसको दिखला भी नहीं सकता परन्तु जिसके नेत्र ही फूटगये हैं उसको कुछ भी दिखलाने का उपाय नहीं है ।

ख्यानानि व्याख्यानान्निष्टं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि) इस वाक्यसमुदाय को स्वामीजी ने नहीं लिखा, यह मिथ्या दोष क्यों लगाते पर विचारे क्या करें उन्होंने न कभी किसी से वाक्य का लक्षण सुना और न पढ़कर जाना है, जो सुना वा जाना होता तो (एवं वा०) इससे ले के (निःश्वसितानि) इस अनेक वाक्य के समुदाय को एक वाक्य क्यों समझते * देखिये यह महाभाष्य में वाक्य का लक्षण लिखा है (एकतिङ्वाक्यम्) जिसके साथ एक तिङन्त के प्रयोग का सम्बन्ध हो वह वाक्य कहाता है जैसे (एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य विभोः परमेश्वरस्य साक्षाद्वा परम्परा सम्बन्धादेतत्सर्वं वक्ष्यमाणमनेकवाक्यवाक्यं निःश्वसितमस्तीति)। एक और (पूर्वोक्तस्य सकाशादृग्वेदो निःश्वसितोऽस्तीति) दूसरा वाक्य है इसी प्रकार इस कंडिका में २० वाक्य तो पठित हैं और आकांक्षित वाक्य (त्वं विद्धि) इत्यादि ऊपर से और चकार से इन्हीं के अविरुद्ध अपठित उपयोगी अनेक अन्य वाक्य भी अन्वित होते हैं। क्या जिनको वाक्य का बोध न हो उनको पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध जिन को पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध न हो उन को प्रकरणार्थ और ग्रंथ के पूर्व पदार्थ का बोध होने की आशा कभी हो सकती है ? † इसीलिये जो राजाजी को दूसरे पत्र में मैंने लिखा है सो बहुत ठीक है कि इससे मुझ को निश्चित हुआ कि राजाजी ने वेदों से लेके पूर्वमिमांसा पर्यन्त विद्या पुस्तकों में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है ‡ इसलिये उन को मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ ॥

---

* जो राजाजी विद्या में वास कर अविद्या से पृथक् होते तो उन के मुख से ऐसी असंभव बात कभी न निकलती ।

† राजाजी ने समझा होगा कि मैं बड़ा बुद्धिमान् हूं । हां (अन्धानां मध्ये काणो राजा) यहां इस न्याय के तुल्य तो चाहे कोई समझ लेवे ।

‡ ईश्वरोक्त चार वेद स्वतःप्रमाण और ब्रह्मा से लेके जैमिनि पर्य्यन्त ऋषि मुनि और ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त ग्रंथों की गणना से कोई भी आर्ष पुस्तक पढ़ना बाकी नहीं रहता कि जिसका परतःप्रमाण ग्रहण न होसके क्योंकि ग्रंथकारों में जैमिनि सब के पश्चात् हुए हैं और पुस्तकों में पूर्वमीमांसा सब से पीछे बनाया है इसलिये जो राजाजी ने नोट में (स्वामीजी ने पूर्वमीमांसा पर्यंत पढ़ा होगा) लिखा है सो भ्रम से ही है ॥

क्या अब जिसको थोड़ीसी भी बुद्धि होगी वह राजासाहब को शास्त्रों के तात्पर्यार्थ ज्ञानशून्य जानने में कुछ भी शङ्का रख सकता है, यहां चोर कोटपाल को दंडे यह कहानी चरितार्थ होती है कि जो (अन्धेनैवनीयमाना यथाऽन्धाः) के समान स्वयं राजाजी और उनके विचारानुकूल चलने वाले होकर भ्रम से इसके अर्थ को मेरी बनाई भूमिका और मेरे उपदेश को मानने हारे पर झोंक देते हैं। क्या यह उलट पलट नहीं है ?। इससे मैं सब आर्यसज्जनों को विदित करता हूं कि जो अपना कल्याण चाहें वे उनके व्यर्थ वाक्याडम्बर जाल में बद्ध हो अपने मनुष्यजन्म के धर्मार्थ काम मोक्ष फलों से रहित होकर दुःखदुर्गन्धसागररूप घोर नरक में गिरकर चिरकाल दारुण दुःख भोग न करें और सर्वानन्दप्रद वेद के सत्यार्थप्रकाश में स्थिर होकर सर्वानन्दों का भोग न छोड़ बैठें, अब जो स्वामी विशुद्धानन्दजी की पक्षपात रहित विद्वत्ता की परीक्षा बाकी है सो करनी चाहिये ॥

रा०—श्रीमत्पण्डितवर * बालशास्त्रीजी तो बाहर गये हैं परमपूजनीय जगद्गुरु † श्रीस्वामी विशुद्धानन्दजी के चरणों में पहुंच जा पत्र और उत्तरों को देखकर बहुत हंसे ‡ और पिछले उत्तर पर जिस में इन दोनों महात्माओं का नाम है कुछ लिखवा भी दिया स्वामी विशुद्धानन्दजी का लिखवाया राजा साहब के प्रश्नों का उत्तर दयानन्द से नहीं बना इति ।

स्वा०—जिनका पक्षी पक्षपातान्धकार से विचारशून्य हो उनके साक्षी तत्सदृश क्यों न हों क्या यथाबुद्धि कुछ विद्वान् होकर स्वामी विशुद्धानन्दजी को योग्य था कि ऐसे अशास्त्रवित् अव्युत्पन्न व्यर्थ वैतण्डिक मनुष्य के अत्यन्त अयुक्त लेख पर बिना सोचे समझे सम्मति लिख देवें और इससे सजातीयप्रवाहपतन न्याय करके यह भी विदित हुआ कि स्वामी विशुद्धानन्दजी भी राजाजी के तुल्यत्व की उपमा के योग्य हैं। मैं स्वामी

---

* काशी के पण्डितों में तो बालशास्त्रीजी किसी प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं भूगोलस्थ पंडितों में नहीं ।

† जगत् में जो २ उनके शिष्यवर्ग में हैं उन २ के परमपूजनीय और गुरु होंगे सब के क्योंकर हो सकते हैं ।

‡ जो कुछ भी पत्रों के अभिप्राय को समझते तो हास करके अयोग्यपत्र पर सम्मति क्यों लिख बैठते ॥

विशुद्धानन्दजी को चिताता हूं कि आगे कभी ऐसा निर्बुद्धिता का काम न करें * भला मैंने तो राजाजी को संस्कृत विद्या में अयोग्य जानकर लिखदिया है कि आप ने जिसलिये वेदादि विद्या के पुस्तकों में से एक का भी अभ्यास नहीं किया है जो आप को उत्तर ग्रहण की इच्छा हो तो मेरे पास आके सुन समझ कर अपनी बुद्धि के योग्य ग्रहण करो, आप दूर से वेदादि विषयक प्रश्न करने और उत्तर समझने योग्य नहीं हो सकते । इसीलिये उनको लिखके यथोचित उत्तर न भेजे और न भेजूंगा यह बात भी मेरे दूसरे पत्र से प्रसिद्ध है कि जो वे वेदादिशास्त्रों में कुछ भी विद्वान् होते तो मेरी बनाई भूमिका का कुछ तो अर्थ समझ लेते † न ऐसी किसी की योग्यता है कि अन्धे को दिखला सके यह भी मैं ठीक जानता हूं कि स्वामी विशुद्धानन्दजी भी वेदादि शास्त्रों में विद्वान् नहीं किन्तु नवीनटीकानुसार दश उपनिषद् शारीरिक और पूर्वमीमांसा सूत्र और प्राचीन आर्षग्रन्थों से विरुद्ध कपोलकल्पित तर्कसंग्रहादि ग्रन्थोंका अभ्यास तो किया है परन्तु वे भी नशा से ‡ विस्मृत होगये होंगे तथापि उनका संस्कारमात्र तो ज्ञान रहा ही होगा इसलिये वे संस्कृत पदवाक्य प्रकरणार्थों को यथाशक्ति जान सक्ते हैं परन्तु न जाने उन्होंने राजाजी के अयोग्य लेख पर क्योंकर साक्षी लिखी अस्तु । जो किया सो किया अब आगे को वे वा बालशास्त्रीजी जिसके उत्तर का प्रश्नों पर हस्ताक्षर करके मेरे पास अपनी ओर से भेज दिया करें और यह भी समझ रक्खें कि जो प्रश्नोत्तर उनके हस्ताक्षरयुक्त आवेंगे वे उन्हीं की ओर से समझे जावेंगे जैसा कि यह निवेदनपत्र का लेख स्वामी विशुद्धानन्दजी की ओर से समझा गया है । इसीलिये वे तीनों स्वामी सेवक मिलकर प्रश्नों का विचार शुद्ध लिख कर मुंशी बख्तावरसिंहजी के पास भेज दिया करें मुंशीजी आपकी ओर से यह लेख है वा नहीं इस निश्चय के लिये पत्रद्वारा आप से संमतिपत्र मंगवा के मेरे पास भेज

---

* जो कोई बिना विचारे कर बैठता है उसको बुद्धिमान् प्राज्ञ नहीं कहते ।

† यह तो सच है कि जो मनुष्य योग्य होकर समझना चाहता है वह समझ भी सकता है ।

‡ सुना है कि स्वामी विशुद्धानन्दजी भांग और अफीम का सेवन करते हैं जो ऐसा है तो अवश्य उनको विद्या का स्मरण न रहा होगा जो मादक द्रव्य होते हैं वे सब बुद्धिनाशक होते हैं इससे सब को योग्य है कि उनका सेवन कभी न करें।

दिया करेंगे और मेरा लेख भी मेरे हस्ताक्षर सहित अपने हस्ताक्षर करके पत्र सहित उनके पास भेज दिया करेंगे वे लोग राजाजी आदि को समझाया करें और वे आप से मेरे लेखाभिप्राय को समझ लिया करें जो इस पर भी आप लोग परस्पर विचार करने में प्रवृत्त न होंगे तो क्या सब सज्जन लोग आप लोगों को भी अयोग्य न समझ लेंगे क्योंकि जो स्वपक्ष के स्थापन और परपक्ष के खण्डन में प्रवृत्त न होकर केवल विरोध ही मानते रहें वे अयोग्य कहाते हैं। इसलिये मैं सब को सूचना करता हूं कि जो मेरे पक्ष से विरुद्ध अपना पक्ष जानते हों तो प्रसिद्ध होकर शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते? और टट्टी की आड़ में स्थित होकर ईंट पत्थर फेंकने वाले के तुल्य कर्म करना क्यों नहीं छोड़ते? और जो विरुद्ध पक्ष नहीं जानते हों तो अपने पक्ष को छोड़ मेरे पक्ष में प्रवृत्त होकर प्रीति से इसी पक्ष का प्रचार करने में उद्यत क्यों नहीं होते? * जो ऐसा नहीं करके दूर ही दूर रह कर झूठे गाल बजाने और जैसे मेरे काशी से चले आये पर राजाजी के पत्र पर व्यर्थ हस्ताक्षर करने से उनने अपनी अयोग्यता प्रसिद्ध कराई वैसे जो वे मुझ से शास्त्रार्थ करेंगे तो प्रशंसित भी हो सकते हैं। ऐसा किये विना क्या वे लोग बुद्धिमान् धार्मिक विद्वानों के सामने अमाननीय और अप्रतिष्ठित न होंगे? ॥ जो इसमें एक बात न्यून रही है कि बालशास्त्रीजी भी इस पर अपनी सम्मति लिखते तो उनको भी राजा शिवप्रसाद और स्वामी विशुद्धानन्दजी के साथ दक्षिणा मिलजाती। कहिये राजाजी आप अपनी रक्षा के लिये स्वामी विशुद्धानन्दजी के चरणों में पहुंच कर पत्र दिखा सम्मति लिखा पुस्तक छपाकर इधर उधर भेजने से भी न बच सके तो आप के जाट, खाट और कोल्हू: लौट कर आपही के शिर पर चढ़े वा नहीं, अब इस बोझ के उतारने के लिये आप को योग्य है कि बालशास्त्रीजी के चरणों में भी गिर कर बचने का उपाय कीजिये और आप अपने विजय के लिये स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्रीजी को प्राड्विवाक अर्थात् बारिस्टर करना भी मत छोड़िये, अथवा उत्तम तो यह है कि वे दोनों आपको ढाल बना कर न लड़ें किन्तु सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करें, इसी में उनकी शोभा है। अन्यथा नहीं, परन्तु मैं आप और उन को निश्चित कहता हूं कि सब मिलकर कितना ही करो जब तक

* उन को अवश्य योग्य है कि सत्य के आचरण और असत्य के छोड़ने में अति दृढ़ोत्साह युक्त हो के निन्दा स्तुति हानि लाभ आदि की प्राप्ति में शोक और हर्ष कभी न करें।

कोई मनुष्य झूठ छोड़, सत्यमत का ग्रहण नहीं करता, तबतक अपना और दूसरे का विजय कभी नहीं कर सकता और न करा सकता है क्या दूसरे की वृथा प्रशंसा से हर्षित होकर स्वामी विशुद्धानन्दजी का बहुत हँसना बालकों का खेल नहीं है ? और जो कोई अपनी योग्यता के सदृश वर्त्तमान न करे वह संशय में मग्न होकर बिनष्ट क्योंकर न होवे ॥

अब मैं सूचना करता हूं कि बुद्धिमान् आर्य लोग पक्षी राजाजी और साक्षि विशुद्धानन्दजी के हास्यास्पद लेख को देख उस पर विश्वास कर इस (कास्ताः क निपतिताः) महाभाष्योक्त वचनार्थ के सदृश होकर धर्मफल आनन्द से छूट-कर दुर्गन्ध गढ़े और दुःखसागर में जा न गिरें।

रा०—हम केवल वेद की संहितामात्र मानते हैं एक ईशावास्य उपनिषद् संहिता है और सब उपनिषद् ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण हम कोई नहीं मानते सिवाय संहिता के हम और कुछ नहीं मानते हैं।

स्वा०—जैसा यह राजाजी का लेख है वैसा मैंने नहीं कहा था, किन्तु जैसा नीचे लिखा है वैसा कहा गया था। तद्यथा—

रा०—आपका मत क्या है।

स्वा०—वैदिक।

रा०—आप वेद किसको मानते हैं।

स्वा०—संहिताओं को।

रा०—क्या उपनिषदों को वेद नहीं मानते।

स्वा०—मैं वेदों में एक ईशावास्य को छोड़ के अन्य उपनिषदों को नहीं मानता, किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं, वे ईश्वरोक्त नहीं हैं।

रा०—क्या आप ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते।

स्वा०—नहीं, क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त को वेद नहीं कहते, जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत और संहिता ईश्वरप्रणीत हैं जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं हो सकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं। वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं इससे जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का त्याग होता है

वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता, क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं यह मेरे पत्र का लेख उन के भ्रमजाल निवारण का हेतु विद्यमान ही था परन्तु मेरा लेख क्या कर सकता है जो राजाजी मेरे लेख को समझने की विद्या ही नहीं रखते तो क्या इस में राजाजी का दोष नहीं है ? ॥

रा०—वादी कहता है * जो संहिता ईश्वरप्रणीत है तो ब्राह्मण भी ईश्वर-प्रणीत हैं ॥

स्वा०—देखिये राजाजी की मिथ्या आडम्बरयुक्त लड़कपन की बात को जैसे कोई कहे कि जो पृथिवी और सूर्य ईश्वर के बनाये हैं तो घड़ा और दीप भी ईश्वर ने रचे हैं ॥

रा०—और जो ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत हैं तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत हैं ॥

स्वा०—यह भी ऐसी बात है कि जो कोई कहे कि ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका स्वामी दयानन्द सरस्वतीप्रणीत है तो ऋग्यजु: साम और अथर्व चारों वेद भी उन्हीं के प्रणीत हैं ॥

रा०—वादी को आप अपना प्रतिध्वनि समझिये † ।

स्वा०—देखिये राजाजी की अविद्या के प्रकाश को, क्या प्रतिवादी का प्रतिध्वनि वादी कभी हो सकता है क्योंकि जैसा शब्द और उस में जैसे पद अक्षर और मात्रा होती हैं वैसा ही प्रतिध्वनि सुनने में आता है विपरीत नहीं कोई बालबुद्धि भी नहीं कह सकता कि वादी अपने मुख से प्रतिवादी ही के शब्दों को निकाले विरुद्ध नहीं जबतक प्रतिवादी के पक्ष से विरुद्धपक्ष प्रतिपादन नहीं करता तबतक वह उसका वादी कभी नहीं हो सकता जैसे कुआ में से प्रतिध्वनि सुना जाता है क्या वह वक्ता के शब्द से विरुद्ध होता है ? ।

---

* क्या विद्या और सुशिक्षारहित मनुष्य प्रश्न और उत्तर करना कभी जान सकता है । जब राजाजी वाद के लक्षणयुक्त ही नहीं हैं तो वादी क्योंकर बन सकते हैं ।

† जो मैं राजाजी के सदृश होता तो वादी को अपना प्रतिध्वनि समझता क्योंकि प्रतिध्वनि, ध्वनि से विरुद्ध कभी नहीं हो सकती और वादी प्रतिवादी से अविरुद्ध कभी नहीं हो सकता ।

रा०—आप ने लिखा वेदसंहिता स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं वादी कहता है कि जो ऐसा है तो ब्राह्मण ही स्वतःप्रमाण हैं आप का संहिता परतःप्रमाण होगा ॥

स्वा०—क्या यह उपहास की बात नहीं है जैसे कोई कहे कि सूर्य्य और दीप स्वतःप्रकाशमान हैं तो घटपटादि भी स्वतःप्रकाशमान हैं ।

रा०—आप ने लिखा कि मेरी बनाई हुई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नव ९ पृष्ठ से लेके ८८ अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति वेदों का नित्यत्व और वेदसंज्ञा विचार विषयों को देख लीजिये निश्चय होगा सो महाराज निश्चय के पलटे में तो और भी भ्रांति में पड़गया मुझे तो इतना ही प्रमाण चाहिये कि आप ने संहिता को माननीय मानकर ब्राह्मण का क्यों परित्याग किया और वादी तो संहिता जैसा ब्राह्मण को वेद मान जो आप ने वेद के अनुकूल लिखा अपने अनुकूल और जो ब्राह्मण के प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल समझता है ॥

स्वा०—यह सच है कि जो अविद्वान् होकर विद्वत्ता का अभिमान करे वह अपनी अयोग्यता से सुख छोड़ कर दुःख क्यों न पावे ॥ मैंने वेदों को स्वतःप्रमाण मानने और ब्राह्मणों को परतःप्रमाण मानने में कारण इस भ्रमोच्छेदन के इसी पृष्ठ में आगे लिखे हैं। क्या बांचते समय अकस्मात् बुद्धि और आंखें अन्धकारावृत होगये थे परन्तु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं इससे जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मणग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मणग्रन्थों से विरुद्ध होने पर भी वेदों का परित्याग नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सब को माननीय हैं ।

रा०—तस्माद्यज्ञात् अजायत अर्थात् उस यज्ञ से वेद उत्पन्न हुए पृष्ठ १० पङ्क्ति २६ में आप शतपथ आदि ब्राह्मण का प्रमाण देकर यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ विष्णु और विष्णु परमेश्वर ।

स्वा०—जो राजाजी कुछ भी संस्कृत पढ़े होते तो सन्निपाती के सदृश चेष्टा करके भ्रमजाल में न पड़ते क्योंकि तच्छब्द सर्वत्र पूर्वपरामर्शक होता है इसी से मैंने (सहस्रशीर्षापुरुषः) यहां से लेके (ग्राम्याश्चये) यहांतक जो छः मन्त्रों से प्रतिपादित निमित्त कारण परमात्मापूर्वोक्त है उसका आमर्ष अर्थात् अनुकर्षण करके अन्वित किया है देखो इसी के आगे भूमिका के पृष्ठ ६ पंक्ति १७ तस्माद्यज्ञात्स० तस्माद्यज्ञात्सच्चिदानन्दादि

तस्मात्पूर्णात्पुरुषात्(सर्वहुतात्)सर्वपूज्यात् सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः (यजुः) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (छन्दांसि) अथर्ववेदश्च (जज्ञिरे) चत्वारो वेदास्तेनैव प्रकाशिता इति वेद्यम् । यह सर्वहुत और यज्ञविशेषण पूर्ण पुरुष के हैं (तस्मात्) अर्थात् जो सबका पूज्य सर्वोपास्य सर्वशक्तिमान् पुरुष परमात्मा है उससे चारों वेद प्रकाशित हुए हैं इत्यादि से यहां वेदों ही के प्रमाण से चार वेदों को स्वतःप्रमाण से सिद्ध किया है यद्यपि यहां यज्ञ शब्द भी पूर्ण परमात्मा का विशेषण है तथापि जैसा मैंने अर्थ किया है वैसा ब्राह्मण में भी है इस साक्षी के लिये (यज्ञो वै विष्णुः) यह वचन लिखा है और जो ब्राह्मण में मूल से विरुद्ध अर्थ होता तो मैं उसका वचन साक्षी के अर्थ कभी न लिखता जो इस प्रकार से पद, वाक्य, प्रकरण और ग्रन्थ की साक्षी आकाङ्क्षा योग्यता आसत्ति और तात्पर्यार्थ को पक्षी राजाजी और स्वामी विशुद्धानन्दजी जानते वा किसी पूर्ण विद्वान् की सेवा करके वाक्य और प्रकरण के शब्दार्थ सम्बन्धों के जानने में तन मन धन लगा के अत्यन्त पुरुषार्थ से पढ़ते तो यथावत् क्यों न जान लेते * ॥

(रा०—पृष्ठों को कुछ उलट पलट किया तो विचित्र लीला दिखाई देती है आप पृष्ठ ८१ पङ्क्ति ३ में लिखते हैं कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है पृष्ठ ५२ में लिखते हैं प्रमाण ८ हैं और फिर पृष्ठ ५३ में लिखते हैं चौथा शब्दप्रमाण आप्तों के उपदेश पांचवां ऐतिह्य सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश तो आप के निकट कात्यायन ऋषि आप्त और सत्यवादी विद्वान् नहीं थे) † ॥

स्वा०—इस का प्रत्युत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के पृष्ठ ८० पङ्क्ति २८ से लेके पृष्ठ ८८ अठासी तक में लिख रहा है जो चाहे सो देख लेवे और जो वहां (एवं तेनानुक्तत्वात्) इस वचन का यही अभिप्राय है कि (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) यह वचन कात्यायन ऋषि का नहीं है किन्तु किसी धूर्तराट् ने कात्यायन ऋषि के नाम से बनाकर प्रसिद्ध कर दिया है जो कात्यायन ऋषि का कहा होता तो

---

* प्रसिद्ध है कि जो कोदों देके पढ़ते हैं वे पदार्थों को यथावत् कभी नहीं जान सकते ।

† वे तो आप्त विद्वान् थे, परन्तु जिसने उनके नाम से वचन रचकर प्रसिद्ध किया वह तो अनाप्त अविद्वान् ही था ।

सब ऋषियों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध न होता * क्या आप जैसा कात्यायन को आप्त मानते हैं वैसा पाणिनि आदि ऋषियों को आप्त नहीं मानते जो कभी आप्त मानते हो तो पाणि-नि आदि आप्तों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध कात्यायन ऋषि क्यों लिखते और जो कहो कि हम इस वचन को कात्यायन का ही मानेंगे तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि आप पाणि-नि आदि अनेक ऋषियों के लेख का तिरस्कार कर एक को आप्त कैसे मान सकते हो और जो उनको भी आप्त मानते हो तो मन्त्रसंहिता ही वेद है उनके इस वचन को मानकर तद्विरुद्ध ब्राह्मण को वेद संज्ञा के प्रतिपादक वचन को क्यों नहीं छोड़ देते क्योंकि एक विषय में परस्पर विरोधी दो वचन सत्य कभी नहीं हो सकते और जो सैकड़ों आप्त ऋषियों को छोड़कर एक ही को आप्त मानकर सन्तुष्ट रहता है वह कभी वि-द्वान् नहीं कहा जा सकता ॥

रा०—आप लिखते हैं कि ब्राह्मण में जमदग्नि कश्यप इत्यादि जो लिखे हैं सो देहधारी हैं अतएव वह वेद नहीं और संहिता में शतपथब्राह्मण के अनुसार जमद-ग्नि का अर्थ चक्षु और कश्यप का अर्थ प्राण है अतएव वह वेद है ॥

स्वा०—ब्राह्मणों में जमदग्नि आदि देहधारियों का नाम यों है कि जहां २ ब्राह्मण ग्रन्थों में उनकी कथा लिखी है वहां २ जैसे देहधारी मनुष्यों का परस्पर व्यवहार होता है वैसा उनका भी लिखा है इसलिये वहां देहधारी का ग्रहण करना योग्य है और जहां मनुष्यों के इतिहास लिखने की योग्यता नहीं हो सक्ती वहां इतिहास लिख-ने का भी सम्भव नहीं हो सकता जो वेदों में इतिहास होते तो वेदादि और सब से प्राचीन नहीं हो सकते(क्योंकि जिस का इतिहास जिस ग्रन्थ में लिखा होता है वह ग्रन्थ उस मनुष्य के पश्चात् होता है)जब कि वेदों में (त्र्यायुषं जमदग्ने०) इत्यादि मन्त्रों की व्याख्या पदार्थविद्यायुक्त होनी ही उचित है इससे उनमें इतिहास का होना स-र्वथा असम्भव है जिसलिये जैसा मूलार्थ प्रतीत होने के कारण जमदग्नि आदि शब्दों से चक्षु आदि ही अर्थों का ग्रहण करना योग्य है वैसा ही ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त आदि में लिखा है इसलिये यह मैंने अपने किये अर्थों के सत्य होने के लिये साक्ष्यर्थमात्र लिखा है । राजाजी जो इस बात को जानते और इन ग्रन्थों को पढ़े होते तो भ्रमजाल में फँसकर दुःखित न होते ॥

रा०—उस में भी क्या उपनिषद् संज्ञी और इतिहासपुराणादि संज्ञा है ? अथवा ऋग्वेदादि क्रमानुसार उनका संज्ञी वा संज्ञा है ? ॥

* हज़ारह आप्तों का एक अविरुद्ध मत होता है मूर्ख दो का भी एकमत होना कठिन है ।

स्वा०—इस का उत्तर यह है कि एक ईशावास्य उपनिषद् तो यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय होने से वेद है और केन से ले के बृहदारण्यकपर्यन्त ९ नव उपनिषद् ब्राह्मणान्तर्गत होने से उन की भी इतिहासादि संज्ञा ब्राह्मणानीतिहासान्० इस पूर्वोक्त वचन से है इससे (एवं वाअरे०) इस वचन में निमित्तकारण कार्यसम्बन्ध होने से संज्ञा संज्ञिसम्बन्ध नहीं घट सकता परन्तु राजासाहब के सदृश अविद्वान् तो (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) ऐसा लिखने वा कहने में कुछ भी भययुक्त वा लज्जावान् नहीं होते * ॥

रा०—आप लिखते हैं कि ब्राह्मण वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं यदि आप इतना और मानलें कि सम्पूर्ण ब्राह्मणों का प्रमाण संहिता के प्रमाण के तुल्य है ॥

स्वा०—अविद्वान् को कभी विद्यारहस्य के समझने की योग्यता नहीं हो सकती क्या ऐसा कोई विद्वान् भी सिद्ध कर सकता है कि व्याख्या के अनुकूल होने से मूल का प्रमाण और प्रतिकूल होने से अप्रमाण और व्याख्या के मूल से प्रतिकूल होने से प्रमाण और अनुकूल होने से अप्रमाण होवे इसलिये मन्त्रभाग मूल होने से ब्राह्मण ग्रन्थों से अनुकूल वा प्रतिकूल हो तथापि सर्वथा माननीय होने के कारण स्वत:प्रमाण और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या होने से मूलार्थ से विरुद्ध हो तो अप्रमाण और अनुकूल हो तो प्रमाण होकर माननीय होने के कारण परत:प्रमाण हैं। क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में सर्वत्र संहिताओं के मन्त्रों की प्रतीक धर धर के पद वाक्य और प्रकरणानुसार व्याख्या की है इसलिये मन्त्रभाग मूल व्याख्येय और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या है ॥

रा०—आप लिखते हैं तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्ववेद: शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते । इसका अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आप के चारों वेद और उन के छओं अङ्ग अपरा हैं जो परा उससे अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का वा अर्थाभास छोड़ दें किमधिकमित्यलम् ।

स्वा०—यहां तक आप का जो ऊटपटांग लेख है उस को कौन शुद्ध कर सकता है

---

* विद्यावृद्धों ही को अन्यथा कहने और लिखने में शर्म वा भ्रम होता है अविद्यायुक्त बालकों को नहीं ।

क्योंकि इसी भूमिका के पृष्ठ ४२ पङ्क्ति ३ में 'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति' इस उपनिषद् के वचन ने आप के सीधे २ अर्थ को टेढ़ा २ कर दिया देखो यमराज कहते हैं कि हे नचिकेता जिस का अभ्यास सब वेद करते हैं उस ब्रह्म का उपदेश मैं तुझ से करता हूं तू सुन कर धारण कर जब ऐसा है तो वेदों अर्थात् मन्त्रभाग में परा विद्या क्यों नहीं। देखो तमीशानं इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद। परीत्य भूतानि इत्यादि और ईशावास्य इत्यारभ्य ओं खं ब्रह्म पर्यंत मन्त्रयुक्त ४० चालिसवां अध्यायस्थ मन्त्र यजुर्वेद। दधन्वेवायदीमनुवोचद्ब्रह्मेति वेरुत्तत्। इत्यादि मन्त्र सामवेद महद्यक्षं इत्यादि मन्त्र अथर्ववेद में हैं जब वेदों में हजारह मन्त्र ब्रह्म के प्रतिपादक हैं जिन में से थोड़े से मन्त्रों का अर्थ भी मैंने भूमिका पृष्ठ ४३ पङ्क्ति २६ से लेके ३० पङ्क्ति की समाप्ति तक लिख रक्खा है जिसको देखना हो देख लेवे भला इतना भी राजाजी को बोध नहीं है कि वेदों में परा विद्या न होती तो केन आदि उपनिषदों में कहां से आती। मूलं नास्ति कुतः शाखाः। क्या जो परमेश्वर अपने कहे वेदों में अपनी स्वरूप विद्या का प्रकाश न करता तो किसी ऋषि मुनि का सामर्थ्य ब्रह्मविद्या के कहने में कभी हो सकता था? क्योंकि कारण के विना कार्य होना सर्वथा असम्भव है जो केन आदि नव उपनिषदों को पराविद्या में मानेंगे तो उन से भिन्न आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद अर्थवेद और मीमांसादि छः शास्त्र आदि परा विद्या में क्यों नहीं जब न इस वचन में उपनिषद् और न किसी अन्य ग्रन्थ का नाम लिखा है तो कोई उनका ग्रहण कैसे कर सकता है भला कोई राजाजी से पूछेगा कि आपने (यया तदक्षरमधिगम्यते सा पराविद्यास्ति) इस वाक्य से कौन से ग्रन्थों का नाम निश्चित किया है क्या (यया) इस पद से कोई विशेष ग्रन्थ भी आ सकता है और जो मैंने वेदों में परा और अपरा विद्या लिखी है उसको कोई विपरीत भी कर सकता है कभी नहीं इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है कि जैसे राजाजी संस्कृत विद्या के वेदादि ग्रन्थों को न पढ़ कर उन्हीं में प्रश्नोत्तर किया चाहते और जैसी स्वामी विशुद्धानन्दजी ने बिना सोचे समझे सम्मति कर दी है वैसे साहस न करना चाहिये किन्तु उस २ विद्या में योग्य हो के किसी से विचारार्थ प्रवृत्त होना चाहिये॥

प्रश्न—आप ने अपने दूसरे पत्र में राजाजी को लिख कर प्रश्न करने और उत्तर समझने में अयोग्य जान कर लिख के उत्तर देना चाहा न था फिर अब क्यों लिखके उत्तर देते हो?॥

उत्तर—जो राजाजी स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति न लिखाते तो मैं इस पत्र के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको तो जैसा अपने पत्र में लिख चुका हूं वैसा ही निश्चित जानता हूं ॥

प्रश्न—इस संवाद में आप प्रतिपक्षी राजाजी को समझते हो वा स्वामी विशुद्धानन्दजी को ? ॥

उ०—स्वामी विशुद्धानन्दजी को क्योंकि राजाजी तो विचारे संस्कृतविद्या पढ़े ही नहीं उनके सामने मेरा लेख ऐसा होवे कि जैसा बधिर के सामने अत्यन्त निपुण गानेवाले का वीणा आदि बजाना और षड्जादि स्वरों का यथायोग्य आलाप करना होता है ॥

प्र०—जो तुम पक्षी राजाजी को छोड़कर स्वामी विशुद्धानन्दजी को आगे धरते हो सो यह न्याय की बात नहीं है ॥

उ०—यह मुझ वा किसी को योग्य नहीं है कि संस्कृत में कुछ योग्य विद्वान् को छोड़कर अयोग्य के साथ संवाद चलावे न राजाजी को योग्य है कि अपने साक्षी को छोड़ें और स्वामी विशुद्धानन्दजी को भी योग्य है कि अपने शरणागत आये राजाजी की रक्षा से विमुख न हो बैठें * ॥

प्र०—स्वामी विशुद्धानन्दजी वा बालशास्त्रीजी आदि काशी के सब विद्वान् और बुद्धिमान् मिलकर राजाजी का पक्ष लेकर आप से शास्त्रार्थ वा लेख करेंगे तो आप को बड़ा कठिन पड़ेगा ? ॥

उ०—मैं परमेश्वर की साक्षी से सत्य कहता हूं कि जो ऐसा वे करें तो मैं अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सब को विदित करता हूं कि यह बात कल होती हो तो आज ही होवे जो ऐसी इच्छा मेरी न होती तो मैं काशी में विज्ञापनपत्र क्यों लगवाता और स्वामी विशुद्धानन्दजी तथा बालशास्त्रीजी को प्रतिपक्षी स्वीकार क्यों करता ॥

प्र०—वे हैं बहुत और आप अकेले हो कैसे संवाद कर सकोगे ? ॥

उ०—इसके होने में कुछ असम्भव नहीं क्योंकि जब सब काशी और अन्यत्र के विद्वान् और बुद्धिमान् लोग अपना अभिप्राय पत्रस्थ कर वा सन्मुख जाके स्वामी विशुद्धानन्दजी वा बालशास्त्रीजी को विदित कराते जायंगे और वे उन लेख वा वचनों को देख सुन उनमें से इष्ट को ले मुझसे सन्मुख वा पत्रद्वारा इन दो बातों में से जिस

* यह धार्मिक विद्वानों का काम नहीं है कि जिसको शरणागत लेवें उसे छोड़कर विश्वासघात कर बैठें ॥

में उनकी प्रसन्नता हो ग्रहण करके शास्त्रार्थ करें उसी बात में भी उनसे शास्त्रार्थ करने में उद्यत हूं परन्तु जैसे मैं इस पुस्तक पर अपना हस्ताक्षर प्रसिद्ध करता हूं वैसे वे भी करें तो ठीक है अन्यथा नहीं ॥

प्र०—सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करने में अच्छा होगा वा पत्रद्वारा ? ॥

उ०—सर्वोत्तम तो यह है जो मैं और वे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करें तो शीघ्र सत्य वा झूठ का सिद्धान्त हो सकता है अर्थात् १ महीने से लेके छः महीने तक सब बातों का निर्णय हो सकता है और दूर २ रहकर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करने में ३६ छत्तीस वर्षों में भी पूरा होना कठिन है परन्तु जिस पक्ष में वे प्रसन्न हों उसी में मैं भी प्रसन्न हूं ॥

प्र०—इस शास्त्रार्थ के होने और न होने का क्या फल होगा ? ॥

उ०—जो अविरोध होने से एक मत होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सब को परमानन्द होना और न होने पर जो परस्पर विरुद्ध मिथ्या मत में वर्त्तमान मनुष्यों के अधर्म अनर्थ कुकाम और बन्ध के न छूटने से उनके दुःखों का न छूटना फल है।

प्र०—शास्त्रार्थ हुए पर भी हठ से आप वा वे विरुद्ध मत न छोड़ें तो छुड़ाने का क्या उपाय है ?।

उ०—शास्त्रार्थ से पूर्व मैं और वे जिसका पक्ष झूठा हो उस के छोड़ने और जिसका सत्य हो उस के स्वीकार करने के लिये प्रतिज्ञा का पक्के काग़ज़ पर लेख होकर रजिस्टरी कराकर एक दूसरे को अपने २ पत्र को देने से सम्भव है कि आप अपना २ हठ छोड़ देवें क्योंकि जो न छोड़ेगा तो राजा अपनी व्यवस्था से हठ को छुड़ा सकता है ।

प्र०—जब आप काशी में सब दिन निवास नहीं करते और स्वामी विशुद्धानन्दजी तथा बालशास्त्रीजी वहीं बसते हैं तो सन्मुख में शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है ?।

उ०—मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि जब वे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार करेंगे और इसको सत्य समझ लूंगा तब जहां हूंगा वहां से चल के काशी में उचित समय पर पहुंचूंगा कि जिसमें उनको परदेशयात्रा का क्लेश और धनव्यय भी न करना पड़ेगा पुनः वहां यथावत् शास्त्रार्थ होकर सत्यासत्य निर्णय के पश्चात् सब का उपकार भी सिद्ध होगा क्या यह छोटा लाभ है ।

प्र०—जब आप उनसे शास्त्रार्थ करके अपना मत सिद्ध किया चाहते और वे नहीं किया चाहते हैं इसका क्या कारण है ?।

उ०—विदित होता है कि वे अपने मन में जानते हैं कि शास्त्रार्थ करने से हम अपने मत को सिद्ध न कर सकेंगे वा सं० १९२६ के शास्त्रार्थ को देख घबराहट होगी कि दूर ही दूर से ढोल बजाना अच्छा है जो उन को यह निश्चय होता कि हमारा वेदानुसार और स्वामीजी का मत वेदविरुद्ध है तो शास्त्रार्थ किये विना कभी नहीं रहते अथवा जो और कुछ कारण हो वो शास्त्रार्थ करने में क्यों विलम्ब करते हैं आज से पीछे जो कोई पुराण वा तन्त्र आदि मत वाले मुझ से विरुद्ध पक्ष को लेकर शास्त्रार्थ किया चाहें वा लिख के प्रश्नोत्तर की इच्छा करें वे स्वामी विशुद्धानन्दजी के और बालशास्त्रीजी के द्वारा ही करें इससे अन्यथा जो करेंगे तो मैं उनका मान्य कभी न करूंगा, हां सन्मुख आ के तो वे स्वयं भी पूछ सकते हैं इससे स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्रीजी ऐसा न समझें कि हम वेदों में विद्वान् वा सर्वोत्तम पण्डित हैं और कोई अन्य मनुष्य भी ऐसा निश्चय न कर लेवे कि इनसे अधिक पण्डित आर्य्यावर्त्त में दूसरा कोई भी नहीं है, हां ऐसा निश्चय करना ठीक है कि काशी में इस समय आधुनिक ग्रन्थाभ्यासकर्त्ता संन्यासियों में स्वामी विशुद्धानन्दजी और गृहस्थों में बालशास्त्रीजी कुछ विशिष्ट विद्वान् हैं मैंने तो संवाद में केवल अनवस्था दोष परिहारार्थ इन दोनों को सन्मुख आर्य्यावर्त्तीय पण्डितों में माने हैं अनुमान है कि उनको अन्य भी मनुष्य ऐसे मानते होंगे इस से अन्य प्रयोजन भी कुछ नहीं, (सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परमेश्वर कृपा करके स्वामी विशुद्धानन्दजी और बालशास्त्रीजी को निर्भय निःशङ्क करे कि जिससे वे मुझ से सन्मुख वा पत्रद्वारा पाषाणादि मूर्त्तिपूजादिमंडन विषयों में शास्त्रार्थ करने में दृढोत्साहित हों जैसे कि मैं उनके खण्डन में दृढोत्साहित हूं ॥)

मुनिरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे शुक्रे मासेऽसिते दले ।
द्वितीयायाङ्गुरौवारे भ्रमोच्छेदोऽलङ्कृतः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामि-दयानन्दसरस्वतीनिर्मित आर्यभाषाविभूषितो भ्रमोच्छेदनोऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिमगमत् ॥

नमो निर्भ्रमाय जगदीश्वराय ।

अथ

अनुभ्रमोच्छेदन ॥

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वतीजी के

शिष्य भीमसेन शर्म्मा ने

राजा शिवप्रसादजी के द्वितीय निवेदन के उत्तर में

बनाया.
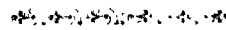
अजमेर नगरस्थ

वैदिक यन्त्रालय में छापकर प्रकाशित किया.

संवत् १९७२.

पञ्चमवार
२०००

मूल्य [illegible]
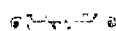
ओ३म् ॥

अनुभ्रमोच्छेदन ॥

यस्या नरो विभ्यति वेदबाह्यास्तया हि युक्तं जनसेनया यत्।
तन्नाम यस्यास्ति महोत्सवं स त्वनुभ्रमोच्छेदनमातनोति ॥ १ ॥

भूमिका ।

मैंने विचारा था कि राजाजी और स्वामीजी ने एक २ बार लिखा है आगे इसका प्रपञ्च न बढ़ेगा परन्तु वैसा न हुआ और उनके अनुगामी लोगों ने समाचारपत्रों को भी गर्जाया और बहुत योग्यायोग्य वाच्यावाच्य भी लिखना न छोड़ा और मैंने यह जान भी लिया कि स्वामीजी अपने नाम से इसपर कुछ भी न लिखें और न छपवावेंगे क्योंकि इसपर श्रीयुत स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती और बालशास्त्रीजी की सम्मति नहीं लिखी तथा अन्य किसी आर्य ने भी इसके प्रत्युत्तर में न लिखा यह बात ठीक है कि स्वामीजी को तो इस पर लिखना योग्य ही नहीं क्योंकि वे अपनी पूर्व प्रतीक्षा से विरुद्ध क्यों करें जब ऐसा हुआ तब मैं यथामति इस पर लिखने में प्रवृत्त हुआ। यद्यपि इन महाशयों के सन्मुख मेरा लेख न्यूनास्पद है तथापि अन्तःकरण से पक्षपात छोड़कर देखने से कुछ इसमें भी तत्त्व निकलेगा और जो कुछ इसमें भूल चूक रहेगी उसको सज्जन महात्मा लोग सुधार लेंगे अब जो राजा शिवप्रसादजी की यह प्रतिज्ञा है कि अब आगे इस विषय में कुछ न लिखा जायगा तो मुझ को भी आगे लिखना अवश्य न होगा जो राजाजी ने भ्रमोच्छेदन पर दूसरा भाग छपवाया है उसमें स्वामीजी के लेख पर निरर्थक आदि दोष दिये हैं उन और इन दोनों पुस्तकों के लेख को जब बुद्धिमान् लोग पक्षपात रहित होकर देखेंगे तब अवश्य निश्चय करलेंगे कि कौन सत्य और कौन असत्य है ॥

इति भूमिका ॥

देखिये राजाजी के प्रिय और सुन्दर लेख को निवेदन पहिला पृष्ठ १ पंक्ति ११ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मंगा के पृष्ठ ६ से ८८ तक देखा। विचित्र लीला दिखाई दी आधे २ वचन जो अपने अनुकूल पाये, ग्रहण किये हैं और शेषार्द्ध का, जो प्रतिकूल पाये, परित्याग,

उन भाषे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उन के अर्थ पलट दिये। पृष्ठ ४ पंक्ति ७ ऐसा न हो कि (अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) के सदृश केवल दयानन्दजी के भाष्य और भूमिका ही की लाठी थांभे किसी अथाह गढ़े वा घोरनरक-कुण्ड में जा गिरें। नि० २ पृष्ठ २। पंक्ति २४ खेद की बात है क्यों वृथा इतना कागज़ बिगड़ा। पृष्ठ ५ पंक्ति २५ लिहाज़ जब मैंने गोतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराज की वाक्यरचना का उससे कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम अथवा साहब से कोई नया तर्क और न्याय रूस, अमरीका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो। इत्यादि वचन जो ये राजा शिवप्रसादजी ने अपने दोनों निवेदनों में लिखे हैं क्या इन को सुवचन गालीप्रदान कागज़ बिगाड़ना आदि कोई भी मनुष्य न समझेगा ? । मैंने राजा शिवप्रसादजी के दोनों निवेदनों और स्वामीजी के भ्रमोच्छेदन को भी देखा। प्रथम निवेदन में जो २ प्रश्न राजाजी के थे उस २ का उत्तर भ्रमोच्छेदन में यथायोग्य है ऐसा मैं अपनी छोटी विद्या और बुद्धि से निश्चित जानता हूं राजाजी और उन के साथियों की विशालबुद्धि है इसलिये उन के योग्य ठीक २ उत्तर न हुए होंगे। इसमें क्या अद्भुत है अब मैं अपनी अल्प विद्या और बुद्धि के अनुसार द्वितीय निवेदन के उत्तर में थोड़ासा लिखता हूं। निवेदन दूसरा पृष्ठ ४ पङ्क्ति १६ भला सूर्य्य और घड़े की उपमा संहिता और ब्राह्मण में क्योंकर घट सकेगी उधर सूर्य्य के सामने कोई आधा घंटा भी आंख खोल के देखता रहे अन्धा नहीं तो चक्षुरोग से अवश्य पीड़ित होवे इस दृष्टान्त से राजाजी का यह अभिप्राय झलकता है कि वेदको दिनभर भी आंख खोल के देखा करे तो न अन्धा और न नेत्ररोग से युक्त होता है यहां उनका ऐसा अभिप्राय विदित होता है कि यह दृष्टान्त स्वामीजी का यहां घट नहीं सकता। जहांतक विचार के देखते हैं तो यही निश्चय होता है कि दृष्टांत का साधर्म्य वा वैधर्म्य गुण ही दार्ष्टान्त में घटता है सब गुण कर्म स्वभाव कभी नहीं (जैसे साध्य साधर्म्यात्तद्धर्मभावी दृष्टान्त उदाहरणम्) न्या० अ० १। आ० १। सू० ३६ (तद्विपर्य्ययाद्वाविपरीतम्) न्या० अ० १। सू० ३७। शब्दोऽनित्य इति प्रतिज्ञा उत्पत्तिधर्मकत्वादिति हेतुः। उत्पत्तिधर्मकं स्थाल्यादि द्रव्यमनित्यमिति दृष्टान्त उदाहरणम्। यह शान्तवृत्ति से देखने की बात है कि शब्द में अनित्यत्व धर्म साध्य है क्योंकि उत्पत्ति धर्मवाला होने से जो २ पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे २ सब अनित्य हैं। जैसे स्थाल्यादि द्रव्य उत्पत्ति धर्मवाले होने से अनित्य हैं वैसे कार्य्य शब्द भी अनित्य है यहां केवल स्थाल्यादि पदार्थों का

उत्पत्ति धर्म ही कार्य शब्द में दृष्टान्त के लिये घटा के कार्य शब्दों को अनित्य ठहराया है यह तो कोई भी नहीं कह सकता कि घट पटादि पदार्थों में चक्षु से दीखना स्थूल कठोर और अन्धेर में दीपक की अपेक्षा रहना आदि विरुद्ध धर्म हैं इसलिये इनका दृष्टान्त शब्द में नहीं घटेगा वा शब्द में भी वे धर्म हों कि दीपक जला के शब्द देखा जावे राजाजी को अन्धेरे में दीपक से शब्द देखना उससे पानी आदि लाना चाहिये वा इस दृष्टान्त ही को न माने तो ऐसा दृष्टान्त कोई न मिलेगा कि जिसमें दार्ष्टान्त के सब धर्म बराबर मिल जावें। और जो कोई पदार्थ ऐसे भी हों कि जिनके सब धर्म बराबर मिलें तो उनका परस्पर अभेदान्वय होने से उनमें दृष्टान्त दार्ष्टान्त तथा उपमान उपमेयभाव कुछ भी न बन सकेगा। अब यहां प्रकृत में यह आया कि वेद को सूर्य का दृष्टान्त दिया है तो सूर्य अपने प्रकाश में किसी की अपेक्षा नहीं रखता वैसे वेदों से भी जो अर्थ प्रकाशित होते हैं उनमें ग्रन्थान्तर की अपेक्षा नहीं है स्वयं प्रकाशत्व धर्म दोनों का समान है। और जैसे उत्पत्ति धर्मवाले न होने से आत्मादि द्रव्य नित्य हैं वैसा शब्द नहीं क्योंकि उत्पत्ति धर्मवाला है यहां केवल वैधर्म्य अर्थात् कार्य्य शब्द के अनित्यत्व धर्म से विरुद्ध आत्मा का नित्यत्व धर्म ही दृष्टान्त के लिये घटाया है किन्तु जो आत्मा और शब्द के प्रमेयत्व आदि साधर्म्य हैं वे विवक्षित नहीं। जैसा राजाजी का दृष्टान्त विषयक मत है वैसा किसी विद्वान् का नहीं कि दार्ष्टान्त के सब धर्म दृष्टान्त में घट सकते हों। निवे० २ पृष्ठ ५। पं० १६। राजाजी स्वामीजी से पूछते हैं कि (स्वामीजी महाराज यह बतलावें कि पाणिनी आदि ऋषियों ने कहां ऐसा लिखा है कि मंत्रसंहिता ही वेद हैं ब्राह्मण वेद नहीं है) इसका उत्तर अब यह ब्राह्मण शब्द लौकिक है वा वैदिक इसके वैदिक होने में तो कोई प्रमाण नहीं मिलता लौकिक होने में प्रमाण देखो॥

तत्र लौकिकास्तावत्। गौरश्वः पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति। वैदिकाः खल्वपि। शन्नो देवीरभिष्टये इषे त्वोर्जेत्वा। अग्निमीळेपुरोहितम्। अग्न आयाहि वीतय इति।

अब यहां अन्तस्थः नेत्रों से देखना चाहिये कि वैदिक-शब्द में केवल ४ मंत्र संहिताओं के उदाहरण दिये हैं जो ब्राह्मण भी वेद होते तो वैदिक शब्दों में उन का उदाहरण क्यों न देते ?, अब कोई यह कहे कि लौकिक शब्दों में जिस ब्राह्मण शब्द का उदाहरण दिया है वह नपुंसकलिंग न होने से ग्रन्थवाची शब्द नहीं है किन्तु पुल्लिङ्ग होने से

मनुष्यों में जातिविशेष का नाम है तो उनसे पूछना चाहिये कि नपुंसकलिङ्ग ब्रह्म-वाची ब्राह्मण शब्द का वैदिक शब्दों में पाठ क्यों न किया ?। हां, प्रकरण से अर्थ की प्रवृत्ति होती है सो यहां किसी का प्रकरण नहीं है । यहां पतञ्जलिजी महाराज के प्रमाण से यह सिद्ध होगया कि मन्त्रसंहिता ही वेद हैं ब्राह्मण नहीं । अब स्वामीजी पर जो प्रश्न था उस का तो यह उत्तर पतञ्जलि ऋषि के प्रमाण से हुआ परन्तु वही प्रश्न राजाजी के ऊपर गिरता है कि राजाजी यह बतलावें कि पाणिनि आदि महर्षियों ने ऐसा कहां लिखा है कि मन्त्र और ब्राह्मणभाग दोनों वेद हैं अस्तु तावत् । निवे० २ । पृष्ठ ५ । पं० १८ । पाणिनि ने तो जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट 'छन्दसि' कहा अर्थात् वेद में अर्थात् मन्त्र और ब्राह्मण दोनों में और जहां केवल मन्त्र वा ब्राह्मण का प्रयोजन देखा (मन्त्रे) वा (ब्राह्मणे) कहा और जहां मन्त्र और ब्राह्मण अर्थात् वेद के सिवाय देखा वहां 'भाषायाम्' कहा, राजाजी को यह लिखना तो सुगम हुआ परन्तु निम्नलिखित प्रमाण पाणिनिसूत्र और वेदमन्त्र आदि का अर्थ क-रके अपने पक्ष में घटाना सुगम क्योंकर होसकेगा । अब देखिये–छन्दो ब्राह्मणानि च तद्विषयाणि । अ० ४ । पा० २ । सू० ६६ । इस सूत्र में प्रोक्त प्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण को अध्येतृ वेदितृ विषयता विधान की है अर्थात् प्रोक्तप्रत्ययान्त छन्द और ब्राह्मण का अध्येतृ वेदितृ अभिधेय में ही प्रयोग हो स्वतन्त्र न हो । अब राजाजी के इस लेखानु-सार कि (जहां मन्त्र और ब्राह्मण दोनों के लेने का प्रयोजन देखा स्पष्ट "छन्दसि" कहा) इससे पाणिनि के इस सूत्र में ब्राह्मण ग्रहण व्यर्थ होता है । क्योंकि जो छन्द के कहने से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ही ग्रहण हो जाता तो फिर यहां ब्राह्मण का पृथक् ग्रहण क्यों किया इससे स्पष्ट ज्ञापक होता है कि छन्द से ब्राह्मण पृथक् है । निवे० २ । पृष्ठ ५ । पं० २२ । से (भला जैमिनि महर्षि के पूर्वमीमांसा को तो स्वामीजी महाराज मानते हैं उस में इन सूत्रों का अर्थ क्योंकर लगावेंगे) तच्चोदकेषु मन्त्राख्या । अ० १ । पा० २ । सू० ३२ । शेषे ब्राह्मणशब्दः । अ० २ । पाद १ । सू० ३३ । इसका अर्थ बहुत स्पष्ट है वेद का मन्त्रों से अवशिष्ट जो भाग सो ब्राह्मण) यह अनुभवार्थ राजाजी ने शबर स्वामी की टीका में से सुना होगा परन्तु यहां यह भी विचार करना उनको योग्य था कि इन सूत्रों के सम्बन्ध में कहीं वेदसंज्ञा निर्वचनाधिकरण है वा नहीं किन्तु यहां तो केवल मंत्र-निर्वचनाधिकरण और ब्राह्मणनिर्वचनाधिकरण है इससे फिर मंत्र और ब्राह्मण दोनों की वेद-संज्ञा है यह अभिप्राय कहां से सिद्ध हो सकता है जो इस प्रकरण में ऐसा होता कि (अथ

वेदमिदं वचनाधिकरणम्) तो राजाजी का अभिप्राय अवश्य सिद्ध हो जाता । परमात्मा ने वेदस्थ वाक्यों से सर्व विद्याभिधान कर दिया है अब इनमें शेष अर्थात् बाक़ी पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना व्याख्या करनी करानी आदि है और थी भी जो थी सो ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनिपर्यन्त महर्षि महाशय लोगों ने कर दी है जिससे ये ऐतरेय आदि ग्रन्थ ब्रह्म अर्थात् वेदों का व्याख्यान है इसीसे इनका नाम ब्राह्मण रक्खा है अर्थात् "ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि अर्थात् शेषभूतानि सन्तीति" । परन्तु जहां से इन सूत्रों के अर्थ में राजाजी आदि को भ्रम हुआ है सो शबर स्वामीजी की इसी सूत्र पर यह व्याख्या है (अथ किंलक्षणं ब्राह्मणम्) (मन्त्रश्च ब्राह्मणञ्च वेदः) विचार योग्य बात है कि न जाने शबर स्वामी ने इन दो सूत्रों में वेद शब्द कहां से लिया और इनकी अद्भुत कथा को देखिये कि (प्रश्न) ब्राह्मण का क्या लक्षण है ? (उत्तर) मन्त्र और ब्राह्मण वेद है विद्वान् लोग विचार लेंगे कि जैसा प्रश्न किया था वैसा ही उत्तर शबर स्वामी ने दिया है वा नहीं ? यहां विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं । किन्तु "आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे" । इस न्याय के तुल्य यह व्याख्या है ऐसा ही निवे० द० २ । पृष्ठ ५ । पं० २५ । निदान जब मैंने गोतम और कणाद के तर्क और न्याय से न अपने प्रश्न का प्रामाणिक उत्तर पाया और न स्वामीजी महाराज की वाक्यरचना का उससे कुछ सम्बन्ध देखा डरा कि कहीं स्वामीजी महाराज ने किसी मेम वा साहब से कोई नया तर्क और न्याय, रूस अमरीका अथवा और किसी दूसरी विलायत का न सीख लिया हो, स्वामीजी ने जो भूमिका में गोतम न्याय का प्रमाण वेदब्राह्मण विषय में लिखा है उसको वही पुरुष समझ सकता है कि जिसने उन ग्रन्थों की शैली देखी हो । बिना पढ़े सब विद्या किसी को नहीं आ जाती । और जिन्हों ने उन शास्त्रों में अभ्यास ही नहीं किया वेही ऐसा अनर्गल लिख सकते हैं कि गोतम और कणाद के तर्क न्याय से अपने प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर न पाया इत्यादि । अब राजाजी को शास्त्रों में अभ्यास करना अवश्य हुआ क्योंकि उनके प्रश्नों का उत्तर कोई नहीं दे सकता । और स्वामीजी महाराज जो किसी दूसरी विलायत का तर्क न्याय सीख भी लेते तो क्या आश्चर्य और कौनसा यह बुरा काम था और जो सीख लेते तो अपने ग्रन्थों में भी प्रमाण के लिये अवश्य लिखते वा लिखवा लेते । इससे स्पष्ट विदित होता है कि राजाजी ने ही उन विलायतियों से तर्क न्याय कुछ पढ़ा नहीं तो इस का प्रसङ्ग ही क्या था । ठीक है । "यादृशी भावना यस्य बुद्धिर्भवति तादृशी"—इन के प्रश्नों का उत्तर जब ऋषि मुनियों के ग्रन्थों से भी न

हुआ तो सब ऋषियों से बढ़ के राजाजी हो गये इससे सर्व सब महात्मा ऋषि लोगों को निन्दा आ जाती है (निवे० २ । पृष्ठ ६ । पं० ४ । करिकुलसाम के विद्वज्जनमण्डलीभूषण काशीराजस्थापित पाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबो साहब बहादुर को दिखलाया। बहुत अचरज में आये और कहने लगे कि हम तो स्वामीजी महाराज को बड़ा पण्डित जानते थे पर अब उनके मनुष्य होने में भी सन्देह होता है तब तो भ्रमोच्छेदन को भ्रमोत्पादन कहना चाहिये) बस अब तो राजाजी का पक्ष दृढ़तर सिद्ध होगया होगा क्योंकि जब उक्त महाशय साहब ने स्वामीजी के मनुष्य होने में सन्देह और भ्रमोच्छेदन का भ्रमोत्पादन नाम होने की साक्षी दी है फिर क्या चाहिये क्योंकि महाशयों की साक्षी भी गम्भीर आशययुक्त होती है क्या ऐसी साक्षी को कोई भी मनुष्य मानेगा कि स्वामीजी के मनुष्य होने में भी सन्देह है। निवे० २। पृष्ठ ७। पं० २०। डाक्टर टीबो साहब की साक्षी का परामर्श यह देखिये चित्त धर के (दयानन्दसरस्वती सिवाय एक उपनिषद् के ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रन्थों को छोड़ देते हैं और केवल संहिताओं को प्रमाण मानते हैं) इस का उत्तर तो भ्रमोच्छेदन के पृष्ठ ११। पं० २० में यह स्पष्ट लिखा है (परन्तु जो २ वेदाऽनुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उनको मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं) जो उक्त साहब ध्यान देकर देखते तो सिवाय एक उपनिषद् के इत्यादि विरुद्ध साक्षी क्यों देते। निवे० २। पृष्ठ ७। इसी उत्तर और इस विषय से आगे जो २ उक्त साहब ने लिखा है उस २ का उत्तर इसी उत्तर के आगे भ्रमोच्छेदन में लिखा है। निवे० २। पृष्ठ ८। पं० १८ (निःसन्देह दयानन्द सरस्वतीजी को अधिकार नहीं कि कात्यायन के उस वचन को प्रक्षिप्त बतावें जिसके अनुसार मन्त्र और ब्राह्मण का नाम वेद सिद्ध होता है ऐसे तो जो जिस किसी वचन को चाहे अपने अविवेक कल्पित मत से विरुद्ध पाकर प्रक्षिप्त कह दें) मुझ को अपनी अल्पबुद्धि से आज तक यह निश्चय था कि सत्याऽसत्य विचार करने का अधिकार सब विद्वानों को है जो यह राजाज्ञावत् डाक्टर टीबो साहब की सम्मति सत्य हो तो ऐसा हो जाय किन्तु जो केवल एक डाक्टर टीबो साहब ने ही ठेका लिया हो कि अन्य सब को अधिकार है केवल स्वामीजी को नहीं कि कौन प्रक्षिप्त और कौन नहीं ऐसा विचार करें जो ऐसा तो डाक्टर टीबो साहब को सम्मति देने और खण्डन मंडन का अधिकार किसने दिया है ? हम भी पूछ सकते हैं अहो आश्चर्य इस सृष्टि में कैसी २ अद्भुत लीला देखने में आती है। निवे० २। पृ० ६। पं० ५। (सो मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि यदि ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार जमदग्नि आदि का अर्थ यों ही माना जावे तो संहिता के समान ब्राह्मणों

को भी वेद भाग अथवा माननीय मानने में उन्हीं ब्राह्मणग्रन्थों की युक्तियां क्यों न मानी जावें) जो इस बात का प्रमाण किया जावे तो यास्कमुनिकृत निघण्टु, निरुक्त, पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी, पतञ्जलि महामुनिकृत महाभाष्य और पिङ्गलाचार्य्यकृत पिङ्गलसूत्र वेदों के भाष्य वा टीका आदि को भी वेद क्यों न माना जावे क्योंकि जैसे शतपथादि ग्रन्थों से वेदस्थ जमदग्नि आदि शब्दों के अर्थ चक्षु आदि माने जाते हैं वैसे ही निघण्टु और निरुक्त आदि से भी वैदिक शब्दों के संज्ञा और निर्वचन व्याकरण से शब्द अर्थ और सम्बन्ध और पिङ्गलसूत्रों से गायत्र्यादि छन्द, षड्जादि स्वर आदि की व्याख्या वेदों से अविरुद्ध मानी जाती है तो इनकी वेदसंज्ञा कौन कर सकेगा। निवे० २। पृष्ठ ६। पं० १०। (सो यहां भी मेरा तो अभिप्राय इतना ही है कि वेद के नाम से मन्त्रभाग अर्थात् संहिता और ब्राह्मणों को मान कर जहां वेदों को अपरा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का कर्मकाण्ड और जहां वेदों को परा कहा जाय वहां मन्त्र और ब्राह्मणों का ज्ञानकाण्ड मानना चाहिये) निवे० १। पृष्ठ ११। पं० १०। (इसका अर्थ सीधा २ यह मान लेवें कि आपके चारों वेद और उनके छओं अङ्ग "अपरा" हैं जो "परा" उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का अर्थ वा अर्थाभास छोड़ दें) निवे० १। पृष्ठ १२। पं० २०। (नोट-कि चारों वेदसंहिता और उनके छओं अङ्ग अपरा हैं परा इनके सिवाय अर्थात् उपनिषद् हैं) मुझ को बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि यहां क्यों राजाजी ने अपने पूर्व लेख से अपर लेख को विरुद्ध लिखा देखो पहिले निवेदन में चारों वेद और छओं अङ्गों को अपरा और उपनिषदों को परा विद्या मानी थी और दूसरे निवेदन में चारों वेदों के कर्मकाण्ड को अपरा और उन के ज्ञानकाण्ड को परा विद्या मानी और दोनों निवेदनों का अभिप्राय यही है कि मन्त्रभागसंहिता और ब्राह्मणभाग को वेदसंज्ञा मानें इसलिये इतना परिश्रम उठाया और नोट में चारों वेद संहिता अर्थात् मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मान कर ब्राह्मणों को वेदसंज्ञा में लिखना भूल गये दृष्टि कीजिये (तत्रापरा ऋग्वेदो, यजुर्वेदः, सामवेदो, अथर्ववेदः) राजाजी के इस लेख ने उन्हीं के अभिप्राय का निराकरण कर दिया इसको न लिखते तो अच्छा था क्योंकि इस लेख में ऋग्यजुः साम और अथर्व चार शब्द वाच्य मन्त्रभागसंहिताओं ही के साथ चार वार वेद शब्द का पाठ है। ऐतरेय शतपथ छान्दोग्य सामब्राह्मण आदि और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों की उस वचन में न परा न अपरा में गणना और न ऐतरेय आदि शब्दों के साथ वेद नाम का पाठ है इसलिये यह पूर्वापर विरुद्ध लेख है। निवे० २। पृष्ठ ६। पं० १५।

(ऐसा ही आज तक वैदिक हिन्दू परम्परा से मानते चले आये हैं) यहां भी मैं राजाजी से यह पूछता हूं कि परम्परा और आज तक इस वाक्यावली का अभिप्राय सृष्ट्युत्पत्ति से लेकर आज तक का समय लिया जाय वा जैसा कि चार पांच पीढ़ियों में परम्परा हो जाती है वैसी प्रवृत्ति की जाय जो प्रथम पक्ष है तो वैदिक के साथ आर्य्य शब्द लिखना उचित था अर्थात् वैदिक आर्य्य और जो चार पांच पीढ़ी की परम्परा अभिप्रेत है तो लोकाचार से भी वैदिक हिन्दू लिखना ठीक नहीं क्योंकि भारतवर्षवासी मनुष्यों की हिन्दूसंज्ञा सिवाय यवनग्रन्थ और यवनाचार्य्यों की पाठशाला में पठनपाठन-संसर्ग के विना राजाजी को कहीं न मिलेगी और ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसापर्य्यन्त संस्कृतग्रन्थों में तो एतद्देश का नाम आर्य्यावर्त्त और इस में रहनेवाले मनुष्यों का नाम आर्य्य वा ब्राह्मण आदि संज्ञा ही मिलेगी परन्तु यह राजाजी को स्वात्मानुभव वा इस देशियों पर द्वेष अथवा आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देशस्थ विलायतियों से शिक्षा पाकर बोध हुआ होगा। यह साधारण बात नहीं किन्तु जो यह वैदिक शब्दों के साथ हिन्दू शब्द का परम्परा में आज तक पढ़ देना। सो राजाजी को विदेशियों की विद्या और शिक्षा का अनुपम फल है। निवे० २। पृष्ठ १०। पं० ६। (भला आपके) (शिवप्रसाद के) एक सहज से प्रश्न का तो उत्तर श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी से बना ही नहीं उत्तर के बदले दुर्वचनों की वृष्टि की, यदि काशीजी के पण्डित उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत भी हों तो उत्तर के स्थान में उन्हें वैसे ही दुर्वचन पुष्पाञ्जलि का लाभ होगा इससे अतिरिक्त उसमें से कुछ भी सार नहीं निकलेगा (इस पर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार इतना ही लिखता हूं कि जो श्रीयुत बालशास्त्रीजी "श्रीमत् पंडितवरधुरन्धर अज्ञान-तिमिरनाशनैकभास्करविशेषणयुक्त ऐसा कहते हैं और ऐसा निश्चय हो तो स्वामीजी से उनके बड़े २ गम्भीराशय प्रश्नों के उत्तर कभी न बन सकेंगे फिर इस से मेरी और अन्य लाखों किंवा करोड़ों मनुष्यों की यह इच्छा है कि जो कोई विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के पक्ष को वेदादि शास्त्रद्वारा निरस्त कर दे तो उनको क्या ही लाभ न हो पुनः उक्त महाशय इस में क्यों विलम्ब कर रहे हैं और दुर्वचन पुष्पाञ्जलि विषय में इतना ही मैं लिखता हूं कि काशीस्थ लोगों ने दूषणमालिका, दयानन्दपराभूति, चर्मकार श्री स्वामीजी से उत्तम गाली सहस्र नाम आदि पुस्तक और दण्डनीय, आदि विज्ञापन समाचारों में छपवाया तथा गाली शब्द आदि और जैसा असभ्य अनर्थ लेख स्वामीजी पर किया है और स्वामीजी ने संवत् १९२६ के शास्त्रार्थ में किसको गालीप्रदान

वा दुर्वचन पुष्पाञ्जलि की थी और जैसे पक्षपात क्रोध रहित होने के लिये स्वामीजी को लिखते हैं तो राजाजी ने पक्षपात और क्रोधयुक्त स्वामीजी को कब देखा था! भला क्या पूर्वोक्त तो सुवचन पुष्पाञ्जलि है और स्वामीजी का लेख दुर्वचन पुष्पाञ्जलि कहा जा सकता है डाक्टर टीबोसाहब बहादुर स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी के मनुष्य होने में भी सन्देह लिखते हैं क्या डाक्टर टीबोसाहब को अपने सहीस आदि नौकरों के तो मनुष्य होने में कुछ भी संदेह नहीं किन्तु केवल स्वामीजी के मनुष्य होने में संदेह करते हैं क्या यह बात अद्भुत गंभीराशय और असङ्गत नहीं है ?, अहो क्या ऐसे २ लेख को भी बुद्धिमान् लोग अच्छा समझेंगे, धन्य हैं! श्रीयुत शिवप्रसादजी वादी और धन्य हैं! उनके साक्षी अर्थात् श्रीमज्जगत्पूज्यस्वामी विशुद्धानन्दसरस्वतीजी श्रीमत् पण्डितधुर-न्धर अज्ञानतिमिरनाशनैकभास्कर बालशास्त्रीजी महाराज आर्यजन और विद्वज्जनमण्डली-भूषण काशीराजस्थापितपाठशालाध्यक्ष डाक्टर टीबोसाहब बहादुर योरुपियन्, कि जिन्होंने परस्पर मिलकर अपना अभीष्ट मत प्रकाशित किया है क्या भला ऐसे २ महाशयों के सामने मेरा लेख हास्यास्पद न होगा और क्या ऐसे २ महात्माओं की साक्षी होने पर राजाजी के विजय होने में किसी को सन्देह भी रहा होगा वाह! वाह!! वाह!!! जो कोई परपक्षनिषेध और स्वपक्ष सिद्ध करे तो ऐसीही बुद्धिमत्ता से करे क्या सहायक अनुमतिदायक भी ऐसे होने योग्य हैं जहां अर्थी ही साक्षी और न्यायाधीश हों वहां जीत क्यों न होवे क्यों न हो क्या यही सत्पुरुषों का काम है कि जहांतक बने दूसरे की निन्दा अपनी स्तुति करनी अपना सुकर्म समझना हो मैं भी तो राजा शिवप्रसादजी और स्वामी विशु-द्धानन्द सरस्वतीजी वा बालशास्त्रीजी और डाक्टर टीबोसाहब बहादुर साक्षी आदि महाशयों के सामने स्वामीजी की मनमानी निन्दा और अप्रतिष्ठा करने में तत्पर होता जो उनके प्रशंसनीय गुणकर्मस्वभाव न जानता होता उनकी निन्दा और अपमान करने में कमती कभी करता परन्तु वाल्मीकि मुनि ने कहा है कि (सहवासी विजानीयाच्चरित्रं सहवासिनाम्) विना किसी के सङ्ग किये उसके गुण दोष विदित नहीं हो सकते संवत् १९२८ से १९३७ के वर्ष पर्यन्त मेरा और स्वामीजी का समागम रहा है जितने वर्ष वा महीने स्वामीजी का सत्सङ्ग मैंने किया है और यथाबुद्धि थोड़े से वेद भी देखे हैं उतने दिन और उतने मुहूर्त्त भी उन का समागम राजाजी आदि ने न किया होगा नहीं तो इतना अटाटूट विरोध कभी न करते। देखिये कई एक बड़े २ सेठ साहूकार रईस बुद्धिमान् पण्डित सज्जन लोग राजे महाराजे स्वामीजी को अत्यन्त मानते, श्रद्धा करते और उपदेश का भी

स्वीकार करते हैं और बहुतेरे विरुद्ध भी हैं तथापि कभी किसी का पक्षपात किसी से क्षोभ किसी का भय किसी की खुशामद किसी से छल वा किसी से धन हरने का उपाय वा किसी से स्वप्रतिष्ठा की चेष्टा आदि अशिष्ट पुरुषों के कर्म करते इन को मैंने कभी नहीं देखा और क्या जैसी सब की सत्य बात माननी और असत्य न माननी स्वामीजी की रीति है वैसी ही राजाजी आदि को मानने योग्य नहीं है ! परन्तु इतने पर भी मैं बड़े आश्चर्य्य में हूं कि राजाजी आदि महाशय निष्कारण ईर्षा और परोत्कर्षासहनरूप यानारूढ़ होकर स्वामीजी की बुराई करने में बढ़ते ही चले जाते हैं न जाने कब और कहां तक बढ़ेंगे क्या इस का फल आर्य्यावर्त्तादि देशों की अनुन्नति का कारण न होगा ? क्यों न यह घर की फूटरूपी रसास्वादन का प्रवाह दुर्योधनरूप हलाहल सागर से बहता चला आता हुआ आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों के अभाग्योदयकारक प्रलय को प्राप्त अब तक न हुआ क्यों इसको परमेश्वर अपने कृपाकटाक्ष से अब भी नहीं रोक देता कि जिससे हम सब सर्वैक्य सिद्धान्तरूप प्रेमसागरामृतोदधि में स्नान कर त्रिविध ताप से छूटकर परमानन्द को प्राप्त हों जैसे द्वीपद्वीपान्तर के वासी मुसलमान, जैन, ईसाई आदि मनुष्य अपने स्वदेशी और स्वमतस्थों को आनन्दित कर रहे हैं क्या ऐसे हम लोगों को न होना चाहिये प्रत्युत सब देशस्थ समग्र मनुष्यादि प्राणिमात्र के लिये परस्पर उपकार विद्या शुभाचरण और पुरुषार्थ कर अपने पूर्वज कि जिन महाशय आर्यों के हम सन्तान हैं उनका दृष्टान्त अर्थात् उपमेय न हों और जैसी उनकी कीर्ति और प्रतापरूप मार्त्तण्ड भूगोल में प्रकाशित होरहा था उन का अनुकरण क्यों न करें और इस में आश्चर्य्य कोई क्यों मानें कि राजाजी और उन के अनुयायी लाखों स्वामीजी को अविद्वान् पशु अन्धे आदि यथेष्ट शब्दों से निन्दा करते हैं मैं निश्चित कहता हूं कि स्वामीजी की निन्दा अप्रतिष्ठा और विरोधता किस ने नहीं की काशी में संवत् १९२६ वें वर्ष में उन पर हल्ला किया संखिया मिलाकर पानबीड़ा दिया बुरी २ निन्दा के पुस्तक और विज्ञापन दिये कई ठिकाने मारने को आये ऊपर पत्थर और धूल फेंकी जिले बुलन्दशहर करणवास के समीप जहां स्वामीजी रहते थे वहीं किसीने रात के १ बजे के समय १० आदमी तलवार और लट्ठ लेकर मारने को भेजे कई नास्तिक कहते कई क्रश्चीन बतलाते कई क्रोधी और कई पशुवत् नीच विशेषण देते कई उनका मुख देखने में पाप बतलाते और पास जाने को अच्छा नहीं कहते कोई कलि का अवतार कोई कल मरते आज ही मरजाय तो अच्छा कई मजिस्ट्रेटों के कान भर व्याख्यान बन्द करादेने में प्रयत्न कर चुके और कोई इनके बनाये पुस्तक भी हाथ में न लेना न देखना कई

अपने बाग बगीचों में उन का रहना भी स्वीकार नहीं करते कई वेश्या का मुख देखने, सङ्ग करने और पुंलि मैथुनाचरण में भी अपना धन्य जन्म मानते और औरों को उत्साहित करते हैं और स्वामीजी के दर्शन और सङ्ग उस से भी बुरा बतलाते हैं कई स्वामीजी और स्वामीजी के उपदेश माननेवालों को महानरक में गिरना चितलाते हैं । आप गौतम और कणादादि महाशयों से अपने को बुद्धिसागर ठहराते और स्वामीजी को निर्बुद्धि सहज प्रश्नों के उत्तर के अदाता कहते और कई चमार चाण्डाल आदि में विद्वत्ता और मनुष्य होने की शङ्का नहीं करते और स्वामीजी में विद्वत्ता के होने और मनुष्यपन में भी शङ्का बतलाते हैं कोई रेल का भाड़ा भी नहीं लगता ऐसा कहते हैं अब कहांतक इस लम्बी गाथा को कहूं । मैं ऐसी बातें सुनता और लिखता हुआ थकित हो गया क्या ये पूर्वोक्त बातें आर्य्यावर्त्त के दौर्भाग्य के कारण नहीं हो रही हैं तथापि धन्य है स्वामीजी को इतने हुए परभी सनातन वेदोक्त आर्य्योन्नति के यत्नों से विरक्त न होकर परोपकार से अपना जन्म सफल कर रहे हैं भला जो धर्म्म और परमात्मा की कृपा न होती और परमत द्वेषी स्वमतानुरागी क्षुद्राशय लोगों का राज्य होता तो स्वामीजी का आज तक शरीर बचना भी दुस्तर न हो जाता क्या जो आर्य्य लोग भी मुसलमान आदि के तुल्य होते तो अब तक स्वामीजी का मुख और हस्त वेदभाष्यादि पुस्तक लिखने के लिये आज तक कुशल रह सकते ? और जो स्वामीजी में पक्षपात राहित्य सत्यता विद्वत्ता शान्ति निन्दा स्तुति में हर्ष शोक रहितता न होती और विमलविद्याप्रगल्भता धार्मिकता आप्तत्वादि शुभ गुण न होते तो ऐसे २ सनातन वेदोक्त सत्य धर्मोपदेशादि प्रशंसनीय आर्य्योन्नति के दृढ़ कारण प्रकाशित और सुस्थिर कभी न कर सकते क्योंकि देखो आर्य्यावर्त्त में प्रशंसनीय महाशय विद्वानों के विद्यमान रहते भी आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों की वेदोक्त धर्माढ्यता प्राचीन अभ्युदयोदय प्रच्छन्न क्यों रह जाता क्या प्रत्यक्ष में भी भ्रम है कि देखिये जो हम आर्यों को विना आसमानी किताब वाले बुतपरस्त नालायक इन के मत का कुछ भी ठिकाना नहीं आदि आक्षेपों से जैन मुसलमान और इसाई लाखहू क्रोड़हू बहका के अपने मत में मिलाते और कहते थे कि आओ हमसे वादविवाद करो हमारा मजहब सच्चा और तुम्हारा झूठा है वे ही अब स्वामीजी के सामने वेदादि शास्त्रों और तदुक्त आर्य्यधर्म का खण्डन तो दूर रहा परन्तु वाद करना भी असह्य समझते और कहते हैं कि आप हम पर प्रश्न मत कीजिये डरते हैं स्वामीजी के सन्मुख तो ऐसा है परन्तु जिन्होंने स्वामीजी के ग्रन्थ देखे और उनका समागम यथावत् किया है उनके भी सामने

है विजयवन्त नहीं हो सकते इत्यादि जो राजाजी आदि स्वामीजी के स्तुत्य गुण कर्म स्वभाव जानते तो उनके साथ ऐसा विरुद्ध वर्त्तमान कभी न करते। सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सर्वव्यापक सर्वनियन्ता जगदीश्वर सब आर्य्यों के आत्माओं में परस्पर प्रीति गुण स्वीकार दोषपरिहार वेदविद्योन्नतिरूप कल्पवृक्ष और चिन्तामणि को सुस्थिर करें जिससे सब आर्य्य भाई उसको परस्पर प्रेम और उपकाररूप सुन्दर जल से सींचकर उसके आश्रय से प्राचीन आर्य्य पदवी को पाकर आनन्द में सदा रहें और सब को रक्खें॥

राजाजी का बनाया इतिहास मैंने देखा तो अद्भुत बातें दिखाती हैं इनसे यह भी प्रसिद्ध है कि जो स्वश्लाघा और अभिमान करेगा तो इतना ही करेगा जिस लेख से यह बात सब को विदित हो जायगी क्योंकि इङ्गित चेष्टित से मनुष्य का अभिप्राय गुप्त नहीं रह सकता राजाजी का कुछ अभी ऐसा वर्त्तमान है सो नहीं किन्तु (स्वभावो नान्यथा भवेत्) जैसा स्वभाव मनुष्य का होता है वह छूटना दुस्तर है जो उन्होंने इतिहासतिमिरनाशक ग्रन्थ बनाया है उसको कोई विद्वान् पक्षपातरहित सज्जन पुरुष ध्यान देकर देखे तो राजाजी की मानसपरीक्षा और सौजन्य विदित अवश्य हो जावे कि इनका क्या अभीष्ट है उसमें अप्रमाण वेदादिशास्त्राभिप्रायशून्य बहुत बातें हैं और कुछ अच्छी भी हैं जो अच्छी हैं उनका स्वीकार और जो अन्यथा हैं उनके संक्षेप से दोष भी प्रकाशित करता हूं जैसे मुझ को विदित होता है इतिहासतिमिरनाशक पृष्ठ १। पंक्ति ११ (बाप, दादा और पुरखा तो क्या हम इस ग्रन्थ में उस समय से लेकर जिससे आगे किसी को कुछ मालूम नहीं आज पर्य्यन्त अपने देश की अवस्था लिखने का मंसूबा रखते हैं) राजाजी थोड़ासा भी सोचते तो इतना अपना गौरव अपने हाथ से लिखने में अवश्य कम्प आकर रुक के यथार्थ बात को समझ सकते। क्या अपने पुरुखों से स्वयं उत्तम और सब आर्य्यावर्त्त वासियों को इतिहासज्ञान विषय में निकृष्ट अज्ञानी कर स्वश्लाघी स्वयं नहीं बने हैं क्या कोई भी पूर्ण विद्वान् स्वमुख से अपनी कीर्त्ति को कह सकता है। यह सच है कि जितना २ विद्याविनय मनुष्य को अधिक होता है उतना २ वह सुशील निरभिमानी महाशय होता और जितना २ वह कम होता है उतनी २ उसको कुशीलता अभिमान और स्वल्पाशयता होती है। इति० पृष्ठ १—१६ (पुराना हाल जैसा इस देश का बेठौर ठिकाने देखने में आता है विरले किसी दूसरे देश का मिलेगा) वाह वाह वाह ! ! ! न जाने किस देश की पाठशाला में इतिहासों को पढ़ के राजाजी को अपूर्वविज्ञान हुआ क्या यूरोप अमेरिका अफरीका आदि देशों के पूर्व इतिहासों से भी आर्य्यावर्त्त देश का प्राचीन इति-

हास हुआ है यह भी इन का लेख आर्य्य लोगों को ध्यान में रखना चाहिये । इतिहा० पृष्ठ ३ । पङ्क्ति २ । (आगे संस्कृत श्लोक बनाते थे अब भाषा में छन्द और कवित्त बनाते हैं क्योंकि गद्य का कण्ठस्थ रखना सहज है निदान ये भाट इसी में बड़ाई समझते हैं) क्या ही शोक की बात है कि मनु वाल्मीकि व्यास प्रभृति ऋषि महर्षि महात्मा महाशय ब्राह्मण लोगों को तो राजाजी भाट ठहराते हैं और आप महात्माओं के निन्दक और उपहासकर्त्ता होकर नकली की पदवी को धारण करते हैं, विदित होता है कि आर्य्यावर्त्तीय धार्मिक आप्तपुरुषों की निन्दा और विदेशियों की अत्युक्ति सदृश स्तुति ही से राजाजी प्रसन्न बनते हैं । इतिहा० पृष्ठ ४ । पं ३० । (हाय हमारे देश में इतना भी कोई समझनेवाला नहीं) सिवाय आप के ऐसी २ गूढ़ बातों के मर्म को कौन समझ सकता है तब ही तो आप सब से बड़ा मंसूबा बांध कर इतिहास लिखने को प्रवृत्त हुए । इतिहा० पृ० १० (बहुतेरे हिंदू यह भी कहेंगे कि जो बात पोथी में लिखी गई और परम्परा से सब हिंदू मानते चले आये भला अब वह क्योंकर झूठ ठहर सकती है) भला यहां तो हिन्दुओं की परम्परा का तिरस्कार राजाजी कर चुके और दोनों निवेदनों में ब्राह्मण पुस्तकों को वेद मानने के लिये स्वीकार किया है ठीक है मतलबसिन्धु ऐसी ही चतुराई से पूरा करना होता है । इतिहा० पृष्ठ १२ । प० १ से लेकर पृष्ठ १४ पं० ११ तक बौद्ध जैन हिंदुओं के मतविषयक बातें लिखी हैं इससे विदित होता है कि राजाजी का मत बौद्ध जैनी ही है । इसीलिये अपने मत की प्रशंसा वैदिकमत की निन्दा मनमानी की है । यह इन को अच्छा समय मिला कि कोई जाने नहीं और वैदिक मत की जड़ उखाड़ने पर सदा इन की चेष्टा है पुनः स्वामीजी जो सनातन रीति से वेदों का निर्दोष सत्य अर्थ ठीक २ प्रकाशित कर रहे हैं इन को अच्छा कब लग सकता है इसीलिये निवेदनों में भी अपनी सदा की चाल पर राजाजी चलते हैं इस में क्या आश्चर्य है । इतिहा० पृष्ठ १५ । पं० १ । (हिन्दुओं की प्राचीन अवस्था०) यह बड़ा अनर्थ राजाजी का है कि आर्यों को हिन्दू और पारस देश से आये हैं । पहिली बात तो इन की निर्मूल है क्योंकि वेदों से ले के महाभारत तक किसी ग्रन्थ में आर्यों को हिन्दू नहीं लिखा कौन जाने राजाजी के पुरखे पारस देश से ही इस देश में आये हों और उन का परम्परा से स्वदेश पारस का संस्कार अब तक चला आया हो क्या यह बात असम्भव है कि इस आर्य्यावर्त्त ही से कोई मनुष्य पारस देश में जा रहे हों क्योंकि पारस देश में उत्पन्न हुई माद्री पाण्डुराजा से विवाही थी उसी समय वा आगे पीछे वहां से यहां और यहां से वहां आ जा रहने का सम्भव होसकता है और क्या जो पारस

देश से आकर ही बसे होते तो पारसी लोगों वा ईरान वालों के प्राचीन इतिहासों में स्पष्ट न लिखते ? । इतिहा० पृ० १५।पं० ५ (असुर को अहुर) नोट । पं० १३। यहां भी ऋग्वेद के आरम्भ में असुर का अर्थ सुर लिया है और उसे सूरज का नाम माना है। (असुरः प्राणदाता । असुरः सर्वेषां प्राणदः । असुर राक्षस के लिये तभी से ठहराया गया जब से सुर, देव, देवता के लिये ठहरा इत्यादि) धन्य है (सुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) इस में तो कुछ दोष नहीं कि असुर को वे पारसी लोग अहुर कहें परन्तु जो बातें ऋग्वेद के नाम से राजाजी ने लिखी हैं सब निर्मूल हैं क्योंकि ऋग्वेद के आरम्भ में तो (असुरः प्राणदाता) (असुरः सर्वेषां प्राणदः) ये नहीं हैं किन्तु ऐसा पाठ ऋग्वेद भर में कहीं नहीं है। क्या आश्चर्य है कि ईरानवाले जिद से देव को राक्षस कहते हों। इतिहा० पृ० १५ । पं० ७ । (हिंदू अपने तईं दूसरी जाति के लोगों से जुदा रहने के निमित्त आर्य पुकारते थे और इन्हीं के बसने से यह देश हिमालय से विन्ध्य तक आर्य्यावर्त्त कहलाया पारस देश वाले भी आर्य्य थे वरन इसी कारण उस को अब भी ईरान कहते हैं) क्या अद्भुत लीला है ईरानवाले तो अब तक ईरानी, पारस वाले पारसी ही बने रहे आर्य्य नाम वाले क्यों न हुए। कैसा झूठ लिखा है कि अपने जुदा रहने के लिये आर्य्य पुकारते थे। जो ऋग्वेद की कथा भी राजाजी ने सुनी होती तो (विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः) (उत शूद्र उतार्य्ये) इन का अर्थ यही है (आर्य्य) श्रेष्ठ और (दस्यु) दुष्ट (आर्य्य) द्विज और (शूद्र) अनार्य को कहते हैं इस को जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों लिख मारते जो ईरान से आर्य्य हो जाता है तो (आरा) और (आरि) आदि शब्दों से आर्य्य सिद्ध करने में किसी को राजाजी न अटका सकेंगे। ऐसे बहुत पुरुष अपनी प्रशंसा के लिये विदेशियों की झूठी खुशामद किया ही करते हैं। इतिहा० १५। पं० २८ (ईरान की पुरानी पारसी भाषा में एक प्रकार की संस्कृत थी अर्थात् उसी जड़ से निकली थी जिस से संस्कृत निकली है) भला पारसी पढ़े बिना ऐसी २ गुप्त जड़ों की खोज राजाजी न होते तो कौन करता जो थोड़ासा भी विचार करते तो श्रेष्ठ गुणों से आर्य्य और एक किसी मनुष्य का नाम है आर्य्य उससे और इस देशवालों से क्या सम्बन्ध हो सकता है जिनने दृष्टान्त संस्कृत पुरानी पारसी के उदाहरण दिये हैं ये सब संस्कृत से पुरानी पारसी बनी है यह ठीक है क्योंकि पारस देश का नाम निशान भी न था तब से आर्य्य और आर्य्यावर्त्त देश है। जब पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया है तब यवन देश के सब राजा आये थे उसी ईरान का राजा शल्य भी, महाभारतयुद्ध में आया ही था इसलिये राजाजी का ऐसा अनुमान

केवल पारसी भाषा पढ़ने से हुआ है संस्कृत से नहीं। इतिहास पृष्ठ १६। पं० २। से (ये आर्य उस समय सूर्य के उपासक थे वेद में सूर्य की बड़ी महिमा गायी है हिन्दुओं का मूलमन्त्र गायत्री इसी सूर्य की वन्दना है विष्णु इसी सूर्य का नाम है) राजाजी का स्वभाव सब से विलक्षण है, कोई कहता हो दिन तो वे रात कहें यद्यपि वेदों में सूर्य शब्द से परमेश्वर आदि कई अर्थ प्रकरण से भिन्न २ कहे हैं परन्तु उपासना में सूर्य शब्द से जिसको गायत्री मन्त्र कहता और जो व्यापकता से विष्णु है वहां परमेश्वर ही लिया है अन्यत्र भौतिक। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० १। (आकाश को इन्द्र ठगाया) वेदों में इन्द्र शब्द से आकाश का ग्रहण कहीं नहीं किया है। हां राजाजी ने अपनी कल्पना से समझा होगा। इतिहा० पृष्ठ १८। पं० ३ (गाय, बैल, घोड़ा, भेड़ और बकरी इत्यादि की बलि देते थे और उन का मांस भून भून और उबाल २ कर खाते थे। नोट—ऋग्वेद में एक अश्वमेध का हाल यों लिखा है घोड़े के आगे रङ्ग बिरङ्ग की बकरियां रख कर उस से अग्नि की परिक्रमा दिलाई और फिर खम्भे से बांध कर और फरसे से काट कर उस का गोश्त सीक पर भूना और उबाला और गोले बना कर खा गये) हाय! ऐसे अनर्थ लेखसे वेद और आर्यों की निन्दा कर राजाजी ने संतुष्टि क्यों की क्योंकि गाय आदि पशुओं का मारना वेदों में कहीं नहीं लिखा न शराब का पीना और अश्वमेध का ऐसा हाल कहीं भी नहीं लिखा, राजाजी ने वाममार्गियों के सङ्ग से ऐसी बात कि जिससे वेदों की निन्दा हांसी हो लिखी होगी। इतिहा० पृष्ठ १६। पं० १२। (वर्णभेद शुरू में दो ही रहा होगा अर्थात् गोरा और काला वर्ण का अर्थ रंग है) वाह क्या चतुराई की छटा झलक रही है क्या गोरे और काले के बीच में कोई भी रंग नहीं होता और (वर्णो वाहुः पूर्वसूत्रे) वर्ण नाम अक्षर वर्ण नाम स्वीकार अर्थ क्या नहीं होते (स्वार्थी दोषं न पश्यति) हां यह हो तो हो कि बिना गोरों की प्रशंसा के स्वार्थसिद्ध क्योंकर होता) इतिहा० पृष्ठ २० से ले के अङ्गरेज़ के पैर पकरने अर्थात् ग्रन्थ की समाप्तिपर्यन्त राजाजी ऐसी चाल चलन से चले हैं कि जिससे इस देश की बहुत बुराई और कुछ अन्य देशों की भी वेदादिशास्त्रों की निन्दा और जैनमत की इंगित से प्रशंसा और अङ्गरेज़ों की प्रशंसा में जानों सब भाटों के प्रपितामह ही बन रहे हैं। क्या ही शोक की बात है कि इतिहासतिमिरनाशक के तीसरे खण्ड में कितने बड़े वेद आदि शास्त्रों और आर्य्य तथा आर्य्यावर्त्त देश की निन्दा लिख कर छपवाई है तो भी राजाजी के चरित्र पर किसी आर्य्य विद्वान् ने विचार कर प्रत्युत्तर नहीं किया मैंने अल्पसामर्थ्य से (स्थालीपुलाकन्याय) के समान थोड़ासा

नमूना राजाजी का दिखलाया है । इतने ही से सब बुद्धिमान् राजाजी के और मेरे गुण दोषों का विचार यथावत् कर ही लेंगे । जिन्हों ने वेद और आर्य्यावर्त्त की गर्हा करनी ही अपनी बड़ाई समझ ली है तो स्वामीजी की निन्दा करें इस में क्या आश्चर्य है सर्वशक्तिमान् परमात्मा परमदयालु सब पर कृपा रक्खे कि कोई किसी की निन्दा न करे सत्य को माने और झूठ को छोड़ दे मेरा यहां यह अभिप्राय नहीं है कि किसी की व्यर्थ निन्दा करूं वा मिथ्या स्तुति । हां इतना कहता हूं कि जितनी जिस की समझ है उतना ही कह और लिख सकता है मेरी धार्मिक विद्वानों से प्रार्थना है कि जो कुछ मुझ से अन्यथा लेख हुआ हो तो क्षमा करें और अपनी प्रशंसनीय विद्यायुक्त प्रज्ञा से उसको शुद्ध कर लेवें इस पर सत्य २ परामर्श का प्रकाश कर आर्य्यों को सुभूषित करें ॥

ऋषिकालाङ्कभूवर्षे तपस्यस्याऽसिते दले ।
दिक्तिथौ वाक्पतौ ग्रन्थो भ्रमच्छेत्तुमकार्य्यलम् ॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतोऽनुभ्रमो-
च्छेदनोग्रन्थः पूर्णः ॥

* [illegible]जैनवरम् *

शास्त्रार्थ अजमेर

अर्थात्

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा और आर्य्यसमाज अजमेरका "ईश्वर इस सृष्टिका कर्त्ता है या नहीं" इस विषय पर लिखित शास्त्रार्थ।

("क" और "ख" विभाग)

जिसको

चन्द्रसेन जैन वैद्य मन्त्री श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा ने सर्व साधारण के हितार्थ छपाकर प्रकाशित किया।

श्री वीर निर्वाणाब्द २४३८

प्रथमावृत्ति १०००

कीमत =)
सैकड़ा १०)

Printed by B. D. S. at the Brahma Press Etawah.

* वन्दे जिनवरम् *

शास्त्रार्थ अजमेर ।

सर्व सज्जनोंको ज्ञात हो कि ता० ११ जुलाई १९१२ ई० से श्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा और आर्यसमाज अजमेर से "ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है कि नहीं, इस विषय में एक लिखित शास्त्रार्थ चल रहा है जिसमें कि आर्यसमाज का यह पक्ष है कि सृष्टिका कर्त्ता ईश्वर है और जैनियोंका पक्ष यह है कि ईश्वर सृष्टिकर्त्ता नहीं है ॥

वह शास्त्रार्थ सर्व साधारणके सत्यासत्य निर्णयार्थ क्रमशः प्रकाशित किया जाता है। इस शास्त्रार्थके (क) और (ख) ऐसे दो विभाग हैं। (क) विभाग में पूर्वपक्ष जैनियोंका और उत्तर पक्ष आर्यसमाजका है। (ख) विभाग में पूर्वपक्ष आर्योंका और उत्तर पक्ष जैनियोंका है ॥

मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य ।

(क) विभाग ।

* वन्दे जिनवरम् *

(क) पत्र नं० १ श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा--

वर्त्तमान स्थान अजमेर । ता० ११ । ७ । १९१२,

प्रिय महाशय ! जय जिनेन्द्र ।

कृपा कर निम्न लिखित प्रश्नका उत्तर दे परम अनुगृहीत करिये ।

(प्रश्न) सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके सद्भावमें प्रमाण क्या है ?

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैनवैद्य

ओ३म्

नं० ३१४ आर्यसमाज--अजमेर ।

ता० ११ । ७ । १९१२

श्रीयुत महाशय जी ! नमस्ते ।

जैनप्रश्न--सृष्टिकर्त्ता ईश्वरके सद्भावमें प्रमाण क्या है ? ॥

उपरोक्त प्रश्नका उत्तरः-

मानसिक प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द ।

मानसिक प्रत्यक्ष इस प्रकार कि उसके आनन्द गुणका जो समाधि और सुषुप्ति में अनुभव होता है ॥

अनुमान--ईश्वर जगत्‌कर्त्ता है, प्रतिज्ञा ।

जगत्‌में विकार और सावयव जो पाकज गुण संयोगसे होते हैं जिस का होना कर्त्ताके आधीन है देखने से—

जैसे घड़ी आदि सावयव और विकारी पदार्थ कर्त्तासे होते हैं, जहां २ विकार और सावयवकत्व है वह कर्त्ताका बतलाने वाला है–अतएव जगत्‌में विकार और सावयवत्त्व पाये जानेसे इसका कर्त्ता अवश्य है ॥

शब्द--वेदसे लेकर जगत्‌के जितने दार्शनिक विद्वान् हैं वे जगत्‌कर्त्ता ईश्वर की सत्ताके लिये बहुत प्रमाण देते हैं ॥

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्म्मा,

* वन्दे जिनवरम् *

(क) पत्र नं० २ श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा–
वर्तमान स्थान अजमेर । ता० ११ । ७ । १९१२

प्रिय महाशय ! जय जिनेन्द्र ।

हमारे प्रश्नके उत्तरमें आपके ११ जुलाईके पत्र नं० ३१४के उत्तरमें निवेदन है कि ईश्वरके सद्भावमें आपने जो प्रथम ही मानसप्रत्यक्ष प्रमाण दिया है सो ठीक नहीं है । क्योंकि मानसप्रत्यक्षके दो भेद हैं । एक स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्ष, दूसरा इन्द्रियगृहीतार्थ मानसप्रत्यक्ष । स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें विषय स्वात्माही होता है और इन्द्रियगृहीतार्थ मानसप्रत्यक्षमें इन्द्रियव्यापारोपरत अवस्थामें स्पर्शनादि इन्द्रियगृहीत पदार्थोंका ही अनुमनन होता है इस लिये दोनों ही प्रकारके मानसप्रत्यक्षका विषय ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि चाहे सुषुप्ति अवस्था हो वा समाधि अवस्था हो मन आदिक इन्द्रियोंकी अविषयमें प्रवृत्ति नहीं होती अन्यथा मनके द्वारा ही अतीन्द्रिय पदार्थोंका मानसप्रत्यक्ष होने से सर्व जीवोंके सर्वज्ञताका प्रसङ्ग आवेगा । यद्यपि परोक्षप्रमाणसे ज्ञातपदार्थोंके ज्ञानमें भी मन कारण पड़ता है परन्तु मानसप्रत्यक्षमें मनका विषय स्वात्मा व इन्द्रियगृहीत पदार्थ ही होते हैं ।

ईश्वरके सद्भावमें आपने जो अनुमान प्रमाण दिया है सोभी ठीक नहीं

है क्योंकि ईश्वर जगतकर्ता है यह आपकी प्रतिज्ञा है इसमें ईश्वर पक्ष है और जगत्कर्तृत्व साध्य है सो पहले ईश्वरकी सत्ता सिद्ध कर लीजिये पश्चात् उसमें सृष्टिकर्तृत्व सिद्ध करना। तथा ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्व सिद्ध करने में भी ईश्वर पक्ष है और जगत्कर्तृत्व साध्य है और विकारित्व तथा सावयवत्वहेतु हैं। हेतु की वृत्ति पक्षमें होनी चाहिये किन्तु आपके दिये हुये हेतुओंकी वृत्ति साध्यके एकदेशरूप जगत्में है। इसलिये अनुमिति मिथ्या है।

ईश्वरके सद्भावमें आपने तीसरा शब्द प्रमाण दिया है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि सांख्य, मीमांसक, बौद्ध और जैन चारों ही दार्शनिक ईश्वर को जगत्कर्ता नहीं मानते।

हमारे प्रथम प्रश्नके उत्तरमें आपने जो मानसिकप्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द प्रमाण दिये हैं। सो कृपा करके लिखिये कि आप प्रमाण सामान्य व प्रमाण विशेषके लक्षण कौनसे दर्शनके अनुसार मानते हो? यदि किसी दर्शनके अनुसार नहीं मानते तो आप प्रमाणके सामान्य व विशेष लक्षण क्या मानते हैं सो लिखिये। क्योंकि प्रमाणके सामान्य व विशेष लक्षणके निर्णय हुये बिना हम आपके दिये हुये प्रमाणोंमें दोष निदर्शन कैसे कर सकेंगे। वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, मीमांसा और वेदान्त इन छः दर्शनों में से कितने दर्शनशास्त्रोंको आप प्रमाणभूत मानते हैं?

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य

———(:०:)———

ओ३म्

(क) पत्र नं० २ ता० ११। ७। १९१२ ई० का उत्तर, | आर्यसमाज--अजमेर। ता० १८। ७। १९१२,

श्रीमान्! नमस्ते।

आपने जो मानसिक प्रत्यक्षके दो भेद किये हैं इसका क्या प्रमाण है। आपने जो मानसिक प्रत्यक्षका विषय केवल आत्माको ही माना है, यह आत्माश्रय दोष युक्त है। क्योंकि आत्मा ही प्रमाता अर्थात् जानने वाला और आत्मा ही प्रमेय अर्थात् जाननेका विषय और जो इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जावे वही इन्द्रियोंका प्रत्यक्ष है। सुख दुःखकी उपलब्धिका साधन मन है, जैसा कि महात्मा गौतमने माना है और सुखस्वरूप ईश्वर है, यदि जीव सुखस्वरूप होता तो किसीको सुखकी इच्छा न होती। इच्छा अप्राप्त इष्टकी

हुआ करती है सुख जीवका स्वाभाविक गुण होनेसे अप्राप्त नहीं, इस वास्ते सुख जीवका स्वाभाविक धर्म नहीं, जीव सुख भोगने वाला है और ईश्वर सुखस्वरूप है जिसके गुणोंका जिससे प्रत्यक्ष हो उसीसे उस द्रव्यका प्रत्यक्ष माना जाता है। अब सुख की उपलब्धिका साधन न्यायमतानुसार मन है तो मानसिक प्रत्यक्ष ईश्वरका मानना ही पड़ेगा। इसी वास्ते उपनिषद्कारोंने कहा था कि "वह परमात्मा मन ही से जाना जाता है जिसका मन मल, विक्षेप आवरण दोषसे शून्य हो उसीको ईश्वरका मानस प्रत्यक्ष होता है सबको नहीं॥

इसमें क्या हेतु या प्रमाण है कि मनका विषय स्वात्मा ही होता है इस युक्ति शून्य दावेको सिद्ध करके दिखलाइये।

आपने जो ईश्वरके जगत्कर्ता होने पर विचार आरंभ किया है तो क्या ईश्वर की सत्ता माने विना ही किया है। अबतक जैनियों का दावा था कि हम ईश्वर को तो मानते हैं किन्तु जगत्कर्ता नहीं मानते। इस लेखसे जाना गया कि आप ईश्वर की सत्ताको भी स्वीकार नहीं करते। इस विषयमें आप मेरे बनाये ईश्वर प्राप्ति, ईश्वर विचार आदि पुस्तकों को देख सकते हैं। जब कि हेतुका लक्षण ही यह है जो उदाहरणके साधर्म्यसे साध्यका साधन हो यदि पक्षमें हेतु हो तो वह साध्यका कैसे साधन करेगा! और पक्षमें साध्य के रहने से जो साध्यमें हेतु रहेगा वह पक्षमें भी रहेगा। अनुमिति मिथ्या है यह आपकी प्रतिज्ञा है, इसको सिद्ध कीजिये।

ईश्वरके सद्भावमें तीसरा शब्द प्रमाण है जिसमें आपने सांख्य मीमांसा और बुद्ध जैनको इनका कर्ता बतलाकर उस प्रमाणका निषेध किया है। चूंकि ईश्वर जगत्कर्ताके सांख्य और मीमांसा का विरोधी नहीं है प्रत्युत उनका विषय दूसरा है। आप ऐसा कोई सूत्र मीमांसा और सांख्यमें दिखलावें कि जहां ईश्वरके जगत्कर्ता होने का खंडन किया हो। रहे जैन बौद्ध यह दोनों दर्शन नहीं किन्तु मत हैं। नास्तिक फिलासफी आदि सब न्याय वेदान्त आदि शास्त्रोंके साथी हैं। इस प्रमाणके लक्षण षट् शास्त्रोंके अनुकूल मानते हैं ब्रह्मासे लेकर जैमिनी पर्य्यन्त जितने ऋषि हुए हैं उन सबके वाक्य हमारे लिये प्रमाण हैं।

चूंकि आपके प्रथम प्रश्नमें ईश्वर जगत् कर्ताके सद्भावमें प्रमाण पूछा गया था और इस पत्रमें ईश्वरके सद्भावपर भी आपने प्रमाण मांगा है तो प्रति-

ग्रान्तर निग्रह स्थान है। अपनी प्रतिज्ञाको ठीक कीजिये।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्म्मा।

* वन्दे जिनवरम् *

(क) पत्र नं० ३ श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा–

इटावा। ता० ३१।७।१९१२

महाशयवर !

जुहारके पश्चात् निवेदन है कि "सर्वत्रबाधकाभावादेव वस्तुव्यवस्थितिः" अर्थात् सर्वत्र बाधकके अभावसे वस्तुका निश्चय होता है। इस न्यायसे मानसप्रत्यक्षके समस्त भेदोंको इन दोनों ही भेदोंमें गर्भित होनेसे मानसप्रत्यक्षके दो भेद होना युक्ति संगत है। और पहले पत्रमें हम लिखचुके हैं कि "अन्यथा मनके द्वारा ही अतीन्द्रिय पदार्थों का मानस प्रत्यक्ष होनेसे सर्व जीवोंके सर्वज्ञताका प्रसङ्ग आवेगा" इसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया।

स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें जो आपने आत्माही प्रमाता और आत्मा ही प्रमेय होनेमें आत्माश्रय दोष दिखलाया सो भी ठीक नहीं है क्योंकि आप का सर्वज्ञ अपने आपको जानता है या नहीं? अगर जानता है तो आप ही प्रमाता और आपही प्रमेय होनेसे आत्माश्रय दोष होगा। अगर नहीं जानता है तो सर्वज्ञ नहीं रहा।

और आपने लिखा कि "जो इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जावे सो इन्द्रिय प्रत्यक्ष है" सो भी ठीक नहीं क्योंकि अगर कोई पुरुष प्रथम क्षणमें चक्षुसे घटको जानकर आंखें बन्द करले और फिर उसी पुरुषके द्वितीय क्षणमें जो घटज्ञान होता है वह इन्द्रियप्रत्यक्ष है या मानसिकप्रत्यक्ष? यदि उसको इन्द्रियप्रत्यक्ष कहोगे तो उस समय इन्द्रियोंका व्यापारही नहीं है तो इन्द्रियप्रत्यक्ष कैसे कह सकते हो। फिर आपने लिखा कि "सुख ईश्वरका स्वरूप है जीवका नहीं" सो भी ठीक नहीं क्योंकि आपके न्याय दर्शनकार गौतम ऋषिने न्यायदर्शनमें पहले अध्याय प्रथमाह्निकके दशवें सूत्रमें सुखको आत्मा का स्वरूप बताया है "इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गम्" अगर सुख ईश्वरका गुण है तो "अन्यद्रव्यगुणा अन्यद्रव्ये न जायन्ते" इस न्यायसे ईश्वरका सुख गुण जीव द्रव्यमें नहीं आसकता। कदाचित् कहो कि ईश्वर के सुख गुणको जानने से आत्मा सुखी अर्थात् सुखत्र न् होता है। सो भी ठीक

नहीं है क्योंकि पृथ्वीके गन्ध गुणको जाननेसे आत्मा गन्धवान् नहीं होता।

सुख आत्माहीका गुण है परन्तु कर्मोपाधिसे उस सुख गुणकी वैभाविक अवस्था होरहीहै। सुखकी इस वैभाविक अवस्थाको ही दुःख कहते हैं। सुख गुणकी स्वाभाविक अवस्था कर्मोपाधिके निमित्तसे अप्राप्त है। कर्मोपाधिके दूर होनेसे उसकी प्राप्ति होती है। इसलिये अप्राप्तरूप सुखकी स्वाभाविक अवस्थाकी प्राप्तिकी इच्छा करता है।

फिर आपने लिखा कि "इसमें क्या हेतु वा प्रमाण है कि मनका विषय स्वात्माही होताहै, इस युक्तिशून्य दावेको सिद्धकर दिखलाइये,, सो आपका यह लिखना नितान्त असंगत है क्योंकि हमने यह लिखाथा कि "स्वसंवेदन ज्ञानप्रत्यक्षमें विषय स्वात्माही होता है,, इसलिये आप मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान पात्र हैं।

पुनः आपने लिखा कि "आपने जो ईश्वरके जगत्कर्ता होनेपर विचार आरंभ किया है सो क्या ईश्वरकी सत्ता माने विनाही किया है अबतक जैनियोंका दावा था कि हम ईश्वरको तो मानते हैं किन्तु जगत्कर्ता नहीं मानते इस लेखसे जाना गया कि आप ईश्वरकी सत्ता स्वीकार नहीं करते" सो युक्ति संगत नहीं क्योंकि जैन लोग कर्ममलमुक्त जीवोंको ही ईश्वर मानते हैं। आप जीवराशि भिन्न किसी भिन्न द्रव्यको सृष्टिकर्ता ईश्वर मानते हैं। हम ऐसे ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते। ईश्वरके सद्भावमें अनुमानप्रमाण देते हुए आपने लिखाथा कि "ईश्वर जगत् कर्ता है" यह प्रतिज्ञा है। और "विकारित्व" और "सावयवत्त्व" हेतु है। तथा इस पत्रमें आप लिखते हैं कि "पक्षमें हेतु हो तो वह साध्यको कैसे साधन करेगा" सो आपके इन वाक्योंको बांचकर हंसी आती है और आपकी न्यायशास्त्रज्ञतापर आश्चर्य होता है। कहिये महाराज! "पर्वतो वन्हिमान् धूमवत्त्वान्महानसवत्" इस जगन्मान्य अनुमितिमें पर्वतरूप पक्षमें धूमत्व हेतु रहकर वन्हिमत्त्व साध्यको कैसे सिद्ध करता है;

आपकी प्रतिज्ञामें ईश्वर पक्ष है, जगत्कर्ता साध्य है। अब आप कहिये कि आपका विकारित्त्व और सावयवत्त्व हेतुकी वृत्ति पक्षमें है या नहीं? यदि है तो विकारित्त्व और सावयवत्त्व हेतुकी व्याप्ति सकर्तृताके साथ आप करते हैं। जैसे कि आपने अपने पहले प्रश्नमें लिखा है। इसलिये आप की इस अनुमितिसे ईश्वरका भी कोई कर्ता है। ऐसा सिद्ध होता है। यदि आ-

पक्षा विकारित्व और सावयवत्त्व हेतु ईश्वररूप पक्षमें नहीं रहता तो हेतुमें पक्षधर्मताके अभावका प्रसङ्ग आया। अथवा असिद्ध हेत्वाभास है।

फिर आप लिखते हैं कि "और पक्षमें साध्यके रहनेसे जो साध्यमें हेतु रहेगा वह पक्षमें भी रहेगा" आपका साध्य है जगत्कर्तृत्त्व, इस जगत्कर्तृत्त्व साध्यमें आपके हेतुकी वृत्ति है और आपका साध्य रहता है पक्षमें इसलिये साध्यके पक्षवृति होनेसे पक्षवृत्ति मानो सो कृपानाथ! साध्य असिद्ध होता है। इसलिये आपके हेतुको साध्यवृत्ति होनेसे असिद्धता आती है।

अथवा जगत्कर्ता साध्यमें विकारित्त्व और सावयवत्त्व हेतुकी वृत्ति होनेसे आपका कर्ता सकर्तृक सिद्ध हुआ क्योंकि आपने विकारित्त्व और सावयवत्त्वकी व्याप्ति सकर्तृताके साथ मानी है। इत्यादि अनेक दोषोंसे दूषित होनेसे आपकी अनुमिति नितान्त मिथ्या है।

ईश्वरके प्रमाणमें तीसरे शब्द प्रमाणमें आपने लिखा कि "ईश्वर जगत्कर्ताके सांख्य और मीमांसक विरोधी नहीं हैं" सो भी आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि सांख्य दर्शनके प्रथमाध्यायके "ईश्वरासिद्धेः" इस ९२ वें सूत्र में कपिल ऋषिने ईश्वरकी सत्ता से इन्कार किया है। और जबकि ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार नहीं किया तो उनके सृष्टिकर्तृत्त्व धर्मको स्वीकार करने की कथा ही कहां। तथा आप ईश्वरके सद्भावमें वेदका प्रमाण देते हैं परन्तु वेदके प्रामाण्यमें क्या प्रमाण है। यदि ईश्वरोक्त होनेसे वेदको प्रमाण कहते हो तो ईश्वरकी सिद्धि वेदाधीन और वेदकी सिद्धि ईश्वराधीन होनेसे अन्योन्याश्रय दोष आता है।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

ओ३म्।

आर्य्यसमाज अजमेर।

(क) पत्र नं० ३ का उत्तर तां० ९। ८। १२

महाशयवर! नमस्ते।

१-"सर्वत्रबाधकाभावाद्देववस्तुव्यवस्थितिः।" अर्थात् सर्वत्र बाधकके अभावसे वस्तुका निश्चय होता है इसी न्यायसे मानसप्रत्यक्षके समस्त भेदोंको इन दोनों ही भेदोंमें गर्भित होनेसे मानसप्रत्यक्षके दो भेद होना युक्ति सङ्गत है और पहले पत्रमें हम लिख चुके हैं कि अन्यथा मनके द्वारा ही अतीन्द्रिय पदार्थों

का मानसप्रत्यक्ष होनेसे सर्व जीवोंके सर्वज्ञताका प्रसङ्ग आवेगा इसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया ?

(उत्तर) जीवको सर्व पदार्थोंके ज्ञानकी योग्यता जो मानसप्रत्यक्षसे होती है। वह मल, विक्षेप, आवरणदोषसे युक्त मन, मनके कारण सर्व जीवों को नहीं हो सक्ती इस लिये महर्षि गौतमने न्याय दर्शनमें सुख दुःखादि उपलब्धिसाधनं मनः इस सूत्रमें साफ बतलादिया है अतीन्द्रिय पदार्थोंका मानसप्रत्यक्ष होता है क्योंकि ईश्वर सुखस्वरूप है सुख मनका विषय है कि सुखके प्रत्यक्षसे सुखस्वरूपका प्रत्यक्ष होना निश्चित है जैसे रूपप्रत्यक्षको रूपवान्का प्रत्यक्ष कहते हैं।

२-स्वसंवेदनमानसप्रत्यक्षमें, जो आपने आत्माही प्रमाता और आत्मा ही प्रमेय होनेमें आत्माश्रय दोष दिखलाया सो भी ठीक नहीं है क्योंकि आपका सर्वज्ञ अपने आपको जानता है वा नहीं अगर जानता है तो आपही प्रमाता और आप ही प्रमेय होनेसे आत्माश्रय दोष होगा अगर नहीं जानता तो सर्वज्ञ नहीं रहा।

(उत्तर) स्वसम्वेदनमानसप्रत्यक्षमें तो आत्माश्रयदोष है जिसका आपने परिहार नहीं किया सर्वज्ञके आत्मज्ञानमें जो आपने दोष दिया है यह आपके न्याय न जाननेका फल है प्रमाता प्रमाणसे जाननेवालेको कहते हैं सर्वज्ञ जो है वह अपने आपको ज्ञानस्वरूप होनेसे न कि किसी प्रमाणसे, और प्रमाणके विषयको प्रमेय कहते हैं जब वहां प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं आसकता तब प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं वहां आत्माश्रय कहां आप ज्ञानस्वरूप ज्ञानाधिकरणमें भेद है उसको नहीं जानते यह भ्रान्ति है।

३-और आपने लिखा कि, जो इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जावे सो इन्द्रिय प्रत्यक्ष है सो भी ठीक नहीं क्योंकि अगर कोई पुरुष प्रथम क्षणमें चक्षुसे घटको जानकर आंखें बन्द करले और फिर उसी पुरुषके द्वितीयक्षणमें जो घट ज्ञान होता है वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष है या मानसिक यदि उसको इन्द्रियप्रत्यक्ष कहोगे तो उस समय इन्द्रियोंका व्यापार ही नहीं है तो इन्द्रियप्रत्यक्ष कैसे कह सक्ते हो ?

(उत्तर) आपने जो दूसरे क्षणमें इन्द्रियजन्यप्रत्यक्षको मानसप्रत्यक्ष बतलाया है उसको न्यायके जाननेवाले स्मृति कहते हैं मानसिक नहीं यदि आप

न्यायदर्शनके दूसरे सूत्रको भी विचारसे देखते तो जीवका स्वरूप सुख नहीं मानते क्योंकि सुख दुःख इच्छा द्वेष ये चार औपाधिक और नैमित्तिक गुण हैं केवल लिङ्ग कहने से स्वरूप नहीं हुआ करता क्योंकि (लिङ्ग दो प्रकार का होता है एक स्वरूप दूसरा तटस्थ यदि जीवका सुखस्वरूप लिङ्ग हो तो सुखकी किसीको इच्छा ही नहीं होती इच्छा अप्राप्त इष्टकी होतीहै स्वरूप अप्राप्त और इष्ट दोनों नहीं होता|परमात्मा जीवात्माके अन्दरहै इसीलिये उसका गुण नैमित्तिक जीवमें आसक्ता है सूक्ष्मद्रव्यके गुण स्थूलमें आकर नैमित्तिक कहाते हैं/पृथ्वीके गन्ध गुणको जानने से जीवात्मा गन्धवान इस लिये नहीं कहाता कि पृथ्वी स्थूल होनेसे आत्मासे बाहर है।

४-फिर आपने लिखा कि सुख ईश्वरका स्वरूप है जीवका नहीं सो ठीक नहीं क्योंकि आपके न्यायदर्शनकार गौतमऋषिने न्यायदर्शनमें पहले अध्याय प्रथमाह्निकके दशवें सूत्र में सुखको आत्माका स्वरूप बताया है (इच्छाद्वेष प्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनोलिङ्गम्) (अगर सुख ईश्वरका गुण है तो अन्य द्रव्य गुणा अन्ये न जायन्ते इस न्यायसे ईश्वरका सुख गुण जीवद्रव्यमें नहीं आसक्ता कदाचित् कहो कि ईश्वरके सुख गुणको जानने से आत्मा सुखी अर्थात् सुखवान् होता है सो भी ठीक नहीं क्योंकि पृथ्वीके गुणको जाननेसे आत्मा गन्धवान् नहीं होता।

इसका उत्तर पूर्व प्रश्नके साथ दिया है।

५(सुख आत्माही का गुण है परन्तु कर्मोपाधिसे इस सुख गुणकी वैभाविक अवस्था हो रही है सुखकी इस वैभाविक अवस्थाको ही दुःख कहते हैं सुखगुणकी स्वाभाविक अवस्था कर्मोपाधिके निमित्तसे अप्राप्त है कर्मोपाधिके दूर होनेसे उसकी प्राप्ति होती है इसलिये जीव अप्राप्तरूप सुखकी स्वाभाविक अवस्थाकी प्राप्तकी इच्छा करता है,)पुनः आपने लिखा कि आपने जो ईश्वर के जगत् कर्ता होनेपर विचार आरम्भ किया है सो क्या ईश्वरकी सत्ता माने बिना ही किया है अबतक जैनियोंका दावा था कि हम ईश्वरको तो मानते हैं किन्तु जगत्कर्ता नहीं मानते इस लेखसे जाना गया कि आप ईश्वरकी सत्ता स्वीकार नहीं करते सो युक्तिसङ्गत नहीं क्योंकि जैन लोग कर्ममल मुक्त जीवोंको ही ईश्वर मानते हैं आप जीवराशि भिन्न किसी भिन्न द्रव्यको सृष्टिकर्त्ता ईश्वर मानते हैं हम ऐसे ईश्वरकी सत्ताको स्वीकार नहीं करते ईश्वरके सद्भावमें अनुमान प्रमाण देतेहुए आपने लिखा था कि ईश्वर जगत्कर्ता है यह प्रतिज्ञा

है और विकारित्व और सावयवत्व हेतु हैं तथा इस पत्रमें आप लिखते हैं कि पक्षमें हेतु हो तो वह साध्यको कैसे साधन करेगा सो आपके इन वाक्यों को बांचकर हंसी आती है और आपकी शास्त्रज्ञता पर आश्चर्य होता है क- हिये महाराज (पर्वतो वह्निमान् धूमवत्वान्महानसवत्) इस जगन्मान्य अ- नुमितिमें पर्वतरूप पक्षमें धूमवत्त्व हेतु रह कर वह्निमत्त्व साध्यको कैसे सिद्ध करता है? आपकी प्रतिज्ञामें ईश्वर पक्ष है जगत्कर्त्ता साध्य है अब आप कहिये आपका विकारित्व और सावयवत्व हेतुकी वृत्ति पक्षमें है या नहीं यदि है तो विकारित्व और सावयवत्व हेतुकी व्याप्ति सकर्तृताके साथ आप करते हैं जैसा कि आपने अपने पहिले प्रश्नमें लिखा है इस लिये आपकी इस अनुमितिसे ईश्वरका भी कोई कर्ता है ऐसा सिद्ध होता है यदि आपका वि- कारित्व और सावयवत्व हेतु ईश्वर रूप पक्षमें नहीं रहता तो हेतुमें पक्षधर्मता के अभावका पक्ष आया अथवा असिद्ध हेत्वाभास है।

फिर आप लिखते हैं कि और पक्षमें साध्यके रहने से जो साध्यमें हेतु रहेगा वह पक्षमें भी रहेगा आपका साध्य है जगत्कर्तृत्व इस जगत्कर्तृत्व साध्यमें आपके हेतुकी वृत्ति है और आपका साध्य रहता है पक्षमें इस लिये साध्यके पक्षवृत्ति होने से पक्षवृत्तिता मानी तो कृपानाथ साध्य असिद्ध होता है इस लिये आपके हेतुको साध्यवृत्ति होने से असिद्धता आती है।

अथवा जगत्कर्ता साध्यमें विकारित्व और सावयवत्व हेतुकी वृत्ति होने से आपका कर्त्ता सकर्तृक सिद्ध हुआ क्योंकि आपने विकारित्व और सावयव- त्वकी व्याप्ति सकर्तृताके साथ मानी है इत्यादि अनेक दोषोंसे दूषित होने से आपकी अनुमिति नितान्त मिथ्या है॥

ईश्वरके प्रमाणमें तीसरे शब्द प्रमाणोंमें आपने लिखा कि ईश्वर जगत्- कर्ताके सांख्य और मीमांसक विरोधी नहीं हैं सो भी आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि सांख्यदर्शनके प्रथमाध्यायके ईश्वरासिद्धेः, इस ९२ वें सूत्रमें क- पिल ऋषिने ईश्वरकी सत्तासे इनकार किया है और जब ईश्वरकी सत्ताको ही स्वीकार नहीं किया तो उसके सृष्टिकर्तृत्व धर्मको स्वीकार करनेकी कथा ही कहां, तथा आप ईश्वरके सद्भावमें वेदका प्रमाण देते हैं परन्तु वेदके प्रमाणमें क्या प्रमाण है यदि ईश्वरोक्त होनेसे वेदको प्रमाण कहते हो तो ईश्वरकी सिद्धि वेदाधीन और वेदकी सिद्धि ईश्वराधीन होनेसे अन्योन्याश्रय दोष आता है।

६—फिर आपने लिखा कि इसमें क्या हेतु वा प्रमाण है कि मनका विषय स्वात्मा ही होता है इस युक्ति शून्य दावेको सिद्धकर दिखाइये सो आपका यह लिखना नितान्त असङ्गत है क्योंकि हमने यह लिखा था कि स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें विषय स्वात्मा ही होता है इस लिये आप मतानुज्ञानिग्रहस्थानपात्र हैं ॥

५ व ६ प्रश्न का (उत्तर) सुखको आत्माका गुण मानकर गुणी और गुण में उपाधि आही नहीं सकती ऐसा कोई उदाहरण दें जहां गुण गुणीमें उपाधि आई हो उपाधि दो द्रव्योंमें तीसरे द्रव्यकी आया करती है जैसे सूर्य और आंखके बीच बादलकी उपाधि आती है यह किस प्रमाणसे सिद्ध होता है कि आत्मा और सुखमें कर्मोपाधिसे सुखस्वरूप आत्मा नहीं प्रतीत होता धन्य हो महाराज स्वरूपमें उपाधि, उपाधि सदा द्रव्य होता है क्या आप कर्मको द्रव्यमानते हैं जो उसका उपाधि बनाते हैं सुखको आत्माका गुण मानने में इतने दोष हैं ।

(प्रथम) गुण गुणीमें उपाधि आनेका उदाहरण दीजिये, (दूसरे) कर्मको द्रव्य माने बिना उपाधि सिद्ध कीजिये । (तीसरे) कर्मको द्रव्य मानकर उसके गुण बतलाइये (चौथे) उसमें कर्मके लक्षण घटाइये (पांचवे) द्रव्योंकी संख्या ठीक कीजिये (छठे) गुण गुणीमें उपाधिके रहने के वास्ते अवकाश सिद्ध कीजिये (सातवें) अनादिको उपाधि सिद्ध कीजिये (आठवें) यह सिद्ध कीजिये कि स्वाभाविक गुण कभी अप्राप्त भी होता है स्वाभाविक और अप्राप्त इन शब्दों पर विचार कीजिये ।

(६ वें प्रश्नका उत्तर) मतानुज्ञा तो तब हो जब आत्माश्रय दोष दूर होकर आत्माका स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्ष सिद्ध होजावे ।

(७ प्रश्न का उत्तर) जब कर्ता सिद्ध होगा तो वह प्रकाशता ही होगी अभाव तो कर्ता होता ही नहीं ? यदि आप अधिकरण सिद्धान्तके लक्षणपर विचार करते तो ऐसा लिखकर अपनी हंसी कभी न कराते जगत्पक्ष है कार्य्य होना साध्य है उसमें सावयवत्व तथा विकारित्व हेतु है पर्वतो वह्निमानमें अधिकरण सिद्धान्त नहीं यदि आप समझने में भूल करें तो यह छल कहला सक्ता है इसमें दो साध्य हैं एक जगत् कार्य्यत्व दूसरा ईश्वरका कर्तृत्व यह हेतु जगत्रूप पक्षमें जिसकी सिद्धिके पश्चात् ईश्वर कर्त्ता स्वयं सिद्ध हो जायगा क्योंकि उससे भिन्न समस्त पदार्थ-कार्य्य-जड़ और असमर्थ हैं अपनी समझके

दोष मुझपर मत दें महाराज अधिकरण सिद्धान्त एक पक्ष नहीं होता दो होते हैं क्या इस छलसे विद्वत्ता टपकती है या अनभिज्ञता ॥

अब आपने लिखा है कि जैन कर्म मलसे मुक्त जीवके सिवाय दूसरा कोई ईश्वर नहीं मानते कर्ममल जीवको स्वाभाविक है या नैमित्तिक यदि स्वाभाविक है तो मल नहीं कह सकते न स्वाभाविक का नाश हुआ करता है यदि नैमित्तिक है तो उसका निमित्तत्व बतलाइये यदि किसी गुरुसे सांख्य शास्त्र पढ़ा जाय तो यही सूत्र ईश्वरका साधक है बाधक नहीं। सूत्र ८९ में प्रत्यक्षका लक्षण क्या जब उसमें योगियोंके प्रत्यक्ष आनेसे न्यायिकने अव्याप्तिदोष दिया उसपर सूत्र ९०-९१ में मानसिक प्रत्यक्ष जो योगियोंको होता है उसको इस प्रत्यक्षसे पृथक् सिद्धि किया जब न्यायसे मानसिक प्रत्यक्षकी सत्ता स्वीकार हुआ तो इस सूत्रमें नैयायिकपर यह आक्षेप किया कि यदि तुम प्रत्यक्ष मानसिक न मानोगे तो तुम्हारे मतमें ईश्वर सिद्ध न होगा जब नैयायिकने कहाकि हम अनुमान से ईश्वर को सिद्ध करेंगे तो सूत्र ९३-९४ ९५-९६-९७ ९८-९९ में अनुमानमें दोष देकर सूत्र १०० में अनुमानका लक्षण किया जो लोग इस सूत्रके आधार पर कपिलको अनीश्वर वादी कहें वह लोग कपिलके शास्त्र से अनभिज्ञ और भोले हैं ॥

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्म्मा

———(:o:)———

वन्देजिनवरम् ।

(क) पत्र नं० ४ श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा—

इटावा । ता० १९ । ८ । १२

श्रीमान् महाशय !

बाद जयजिनेन्द्रके निवेदन है कि आपने लिखा कि "जीवको सर्व पदार्थके ज्ञानकी योग्यता जो मानस प्रत्यक्षसे होती है वह मल विक्षेप आवरण दोषसे युक्त मनके कारण सब जीवोंके नहीं हो सकती" सो आपका यह लिखना युक्तिसे असंगत है क्यों कि आपके इस लेखसे जीव दो विभागोंमें विभक्त हुए अर्थात् एक तो वे जो कि मल विक्षेप आवरण आदि दोषोंसे रहित हैं और सर्वज्ञ हैं। महाशय जी ! (१) प्रथम तो यह बतलाइये कि ये मल विक्षेप आवरण आपके प्रमाण माने हुए वैशिषिक दर्शनके अनुसार सात पदार्थोंमें से किस पदार्थमें गर्भित हैं (२) द्वितीय आर्यसमाजका सिद्धान्त है कि जीव अल्पज्ञसे सर्वज्ञ कभी नहीं होता है, इसका विघात हुआ (३)

तृतीय मानस प्रत्यक्षसे सम्पूर्ण पदार्थ जानने वाले जीव वर्तमान हैं या नहीं? (४) चतुर्थ यदि हैं तो बतलाइये कहां हैं उनके दर्शन कराइये (५) पांचवें यदि वर्तमान देश कालमें नहीं हैं तो कालान्तर व देशान्तरमें होनेमें कौन से प्रमाण हैं। इस प्रकार आपके मानस प्रत्यक्षसे सर्व अतीन्द्रिय पदार्थोंको जानने वाले जीवोंको साध्यकोटिमें रहनेसे उनका मानस प्रत्यक्ष भी असिद्ध रहा और असिद्ध प्रमाण ईश्वरके सद्भावको सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। पुनः आप लिखते हैं कि "ईश्वर सुख स्वरूप है सुख मनका विषय है सुखके प्रत्यक्षसे सुख स्वरूपका प्रत्यक्ष होना निश्चित है जैसे रूपके प्रत्यक्षको रूपवान्‌का प्रत्यक्ष कहते हैं" सो भी ठीक नहीं है क्योंकि जब सुख ईश्वरका स्वरूप है तो जैसे पृथिवीके गन्ध गुणको जानने वालेको पृथ्वी गन्धवती है, इत्याकारक ज्ञान होता है उस ही प्रकार ईश्वरके सुख गुणको जानकर उसके जानने वालेको ईश्वर सुखवान है ऐसा ज्ञान होना चाहिये परन्तु जीवोंके ऐसा ज्ञान होता है कि मैं सुखी हूं इससे या तो 'मैं सुखी हूं' इत्याकारक ज्ञानको मिथ्या कहिये अथवा सुख ईश्वरका स्वरूप है इसको मिथ्या कहिये तथा आपके कथनानुसार ईश्वरके सुख गुणका ज्ञान उन्हीं जीवोंके होता है जिनका कि मन मल, विक्षेप आवरणादि दोष रहित हो परन्तु सब जीवोंको 'मैं सुखी हूं' ऐसा ज्ञान होता है इससे सिद्ध होता है कि सुख ईश्वरका स्वरूप नहीं किन्तु जीवात्मा का है तथाच गुणके प्रत्यक्षसे गुणवान्‌का प्रत्यक्ष होना भी न्याय संगत नहीं है क्योंकि आपके अभिमत आकाशके शब्द गुणका श्रावण प्रत्यक्ष होने पर भी तद्वान् आकाशका प्रत्यक्ष नहीं होता क्योंकि आकाशको आपने वैशेषिक मतानुसार अतीन्द्रिय माना है। फिर आपने लिखा कि "स्वसंवेदन मानसप्रत्यक्षमें तो आत्माश्रय दोष है जिसका आपने परिहार नहीं किया सर्वज्ञके आत्मज्ञानमें जो आपने दोष दिया है वह आपके न्याय न जाननेका फल है प्रमाता प्रमाणसे जानने वाले को कहते हैं सर्वज्ञ जो है वह अपने आपको ज्ञान स्वरूप होनेसे न कि किसी प्रमाणसे और प्रमाणके विषयको प्रमेय कहते हैं जब वहां प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं आ सकता तब प्रमाता और प्रमेय शब्दका प्रयोग ही नहीं वहां आत्माश्रय कहां आप ज्ञान स्वरूप ज्ञानाधिकरणमें भेद है उसको नहीं जानते यह भ्रान्ति है" आपके इस लेखसे मालूम होता है कि आप न्यायशास्त्रके ज्ञानसे कोशों दूर हैं महर्षि माणिक्य नन्दी स्वामीने न्याय

सूत्रमें प्रमाण का स्वरूप "स्वापूर्वार्थ व्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्" किया है ईश्वरका ज्ञान भी ज्ञान है इस लिये वह भी प्रमाण है ईश्वरका ज्ञान प्रमाण है तो वह प्रमाता भी सिद्ध होता है और प्रमाण स्वरूप ईश्वर अपने आप रूप प्रमेयको जानता है इसलिये आत्माश्रय दोष आता है। पुनः आपने लिखा कि "आपने जो दूसरे क्षणमें इन्द्रिय जन्य प्रत्यक्षको मानस प्रत्यक्ष बतलाया है उसको न्यायके जानने वाले स्मृति कहते हैं, आपके इस लेखसे प्रतीत होता है कि आप अभी स्मृतिका लक्षण नहीं जानते हैं क्योंकि "तदित्याकारा प्रागनुभूत विषया स्मृतिः" यह स्मृतिका लक्षण है प्रथम क्षण में घटका चाक्षुष प्रत्यक्ष कर द्वितीय क्षणमें चक्षुको बंद करनेपर जो ज्ञान होता है उसमें प्रागनुभूति विषयत्व रहने पर भी तदित्याकारत्व न होनेसे स्मृतिमें अन्तर्भूत नहीं होता किन्तु मानस प्रत्यक्ष है। पुनः आपने लिखा कि "सुख दुःख, इच्छा, द्वेष ए चार औपाधिक और नैमित्तिक गुण हैं केवल लिङ्ग कहनेसे स्वरूप नहीं हुआ करता क्योंकि लिङ्ग दो तरहका होता है एक स्वरूप और दूसरा तटस्थ" सो आपका यह कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि वैशिषिक दर्शनमें जो २४ गुण गिनाये हैं उन्होंमें इनका पाठ है और इन चारोंको जीवके गुण माने हैं गुणोंके औपाधिक नैमित्तिक स्वरूप और तटस्थ इन भेदोंके माननेमें प्रमाण क्या? इन भेदोंके लक्षण क्या हैं? तथा इनकी भेद निष्पत्तिमें कारण क्या है? सप्रमाण लिखिये। पुनः आपने लिखा कि "यदि जीवका सुख स्वरूप लिङ्ग हो तो सुखकी किसीको इच्छा भी नहीं होती इच्छा अप्राप्त इष्टकी होती है स्वरूप इष्ट और अप्राप्त दोनों नहीं होता" आपके इस प्रश्नका उत्तर हम पहले उत्तर पत्रमें लिख चुके हैं कि सुख आत्माका ही गुण है परन्तु कर्मोपाधिसे इस सुख गुण की वैभाविक अवस्था हो रही है सुखकी इस वैभाविक अवस्था ही को दुःख कहते हैं सुख गुणकी स्वाभाविक अवस्था कर्मोपाधिके निमित्तसे अप्राप्त है कर्मोपाधिके दूर होने से उसकी प्राप्ति होती है इस लिये अप्राप्त रूप सुखकी स्वाभाविक अवस्था की प्राप्तिकी इच्छा करता है हमारे इस उत्तरके प्रत्युत्तरमें आपने लिखा कि "सुखको आत्माका गुण मानकर गुणी और गुणमें उपाधि आही नहीं सकती ऐसा कोई उदाहरण दें जहां गुणी और गुणमें उपाधि आई हो उपाधि दो द्रव्यमें तीसरे द्रव्यकी आया करती है जैसे सूर्य और आंखके बीच बादलकी उपाधि आती है यह किस प्रमाणसे सिद्ध होता है कि आत्मा और सुखमें

कर्मोपाधिसे सुख स्वरूप आत्मा नहीं प्रतीत होता धन्य हो महाराज ! स्वरूपमें उपाधि, उपाधि सदा द्रव्य होता है क्या आप कर्मोंको दुःख मानते हैं जो उसको उपाधि बनाते हैं सुखको आत्माके गुण माननेमें इतने दोष हैं (१) गुण गुणीमें उपाधि आनेका उदाहरण दीजिये (२) कर्मद्रव्यको द्रव्य माने बिना उपाधि सिद्ध कीजिये (३) कर्मको द्रव्य मानकर उसके कर्म बतलाइये (४) उसमें कर्मके लक्षण घटाइये (५) पांचवें द्रव्योंकी संख्या सिद्ध कीजिये (६) गुण गुणीमें उपाधि रहनेके वास्ते अवकाश सिद्ध कीजिये. (७) और अनादि को उपाधि सिद्ध कीजिये (८) यह सिद्ध कीजिये कि स्वाभाविक गुण कभी अप्राप्त भी होता है स्वाभाविक और अप्राप्त इन शब्दों पर विचार कीजिये,, आपका यह सब लिखना अविचारित रम्य है हलदी और चूना दो पृथक् २ द्रव्य हैं इन दोनों द्रव्योंका परस्पर बन्ध होनेसे दोनोंका पीत और श्वेत गुण और स्वरूपसे च्युत होकर विकृत रक्तावस्थाको प्राप्त होते हैं अर्थात् उनके गुणोंमें विकार होता है महात्मा जी ! प्रकृति शब्द जगत्में स्वभाववाचक प्रसिद्ध है उस प्रकृति शब्द का स्वभाववाचक अर्थ न लेकर उस प्रकृति शब्दसे आप पृथ्वी आदिक जड़ द्रव्योंको परिभाषित करते हैं उसी प्रकार कर्म शब्द भी कई जगह क्रियावाचक होने पर भी जैनसिद्धान्तमें जीवके विकृत रागादिभावोंका निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य का कार्माणस्कन्ध विशेष जो जीवके साथ बद्ध है उसही पुद्गल विशेष में कर्मशब्द परिभाषित किया गया है (इसलिये पुद्गलद्रव्यका एक भेद विशेष होनेसे कर्मद्रव्य है) पुद्गलद्रव्यमें जो स्पर्श, रस, गंध वर्णादिक गुण हैं वे ही उसके भेदविशेष कर्मद्रव्यमें भी हैं हलदी और चूनेके उपर्युक्त दृष्टान्तकी तरह जीव और कर्म इन दो द्रव्योंका बंध होता है और इस बंधके होनेसे जीवके जो चरित्रादिक गुण हैं उनकी विकृत अवस्था होती है और विकृत अवस्था को ही रागद्वेषादिक कहते हैं इन रागद्वेषादिको भावकर्म और इस भावकर्म गृहीत पुद्गलस्कन्ध को ही द्रव्यकर्म कहते हैं द्रव्य कर्मके उदयसे भावकर्म होता है और भावकर्मके निमित्तसे अन्यद्रव्यकर्म का बंध होता है इस प्रकार अनादिकालसे संतान (प्रवाह) से बीज वृक्षकी तरह जीव कर्मका अनादि सम्बन्ध हैं द्रव्यकर्म का बंध व्यक्ति की अपेक्षा सादि है और जातिकी अपेक्षा अनादि है जैसे कि (आप सृष्टिको व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाह की अपेक्षा अनादि मानते हैं) आपके आठों असत्य आक्षेपोंका उत्तर इस प्रकार है ।

(१) गुण गुणीमें उपाधि के दृष्टान्तमें ऊपर हल्दी चूनेका दृष्टान्त दिया जाचुका है अर्थात् हल्दी गुणी के पीत गुणमें चूना उपाधिसे विकार होता है जीव गुणीके चारित्रादिक गुणोंमें कर्मोपाधिसे रागद्वेषादि विकार होते हैं

(२) कर्मको द्रव्य मानते हैं हमको कर्म को द्रव्य माने बिना उपाधि सिद्ध करने की आवश्यक्ता क्या ।

(३) कर्म पुद्गलद्रव्यके भेद हैं इस लिये जो जो २ पुद्गलद्रव्यके गुण हैं वे ही कर्मके गुण समझिये ।

(४) कर्म शब्द जैनसिद्धान्तमें पारिभाषिक है उसमें यौगिक कर्म शब्द का अर्थ क्रिया घटित नहीं होता है ॥

(५) द्रव्योंकी संख्या ६ छह है कर्मको द्रव्य माननेमें द्रव्योंकी संख्या बढ़ती नहीं क्योंकि कर्म पुद्गल द्रव्यमें अन्तर्भूत है ॥

(६) गुण गुणीमें उपाधि रहने के लिये अवकाशकी जरूरत नहीं हल्दी और चूनेके दृष्टान्त को जरा अच्छी तरह मस्तिष्कमें भर लीजिये और अक्ल पर जोर देकर विचारिये कि इसमें अवकाशकी क्या जरूरत है ? ॥

(७) कर्मोपाधि व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है ।

(८) गुणकी दो पर्याय होती हैं एक स्वाभाविक और दूसरी वैभाविक विना निमित्तके जो गुणकी अवस्था हो उसे स्वाभाविक कहते हैं और जो निमित्तोंसे अवस्था हो उसे वैभाविक अवस्था कहते हैं गुणकी वैभाविक अवस्थामें स्वाभाविकावस्था अप्राप्त है जैसे रोगावस्थामें नीरोगावस्था अप्राप्त है।

पुनः आपने लिखा कि "परमात्मा जीवात्माके अन्दर है इसलिये उसका नैमित्तिक गुण जीवात्मामें आ सकता है सूक्ष्म द्रव्यके गुण स्थूलमें आकर नैमित्तिक कहलाते हैं पृथिवीके गन्ध गुणको जाननेसे जीवात्मा गन्धवान् इस लिये नहीं कहाता कि पृथ्वी स्थूल होनेसे आत्मासे बाहिर है " सो आपका लिखा ठीक नहीं है क्योंकि (१) आपके लेखसे मालूम हुआ कि जीवात्मा स्थूल है और ईश्वर सूक्ष्म है (२) जीवमें स्थूलताका कारण क्या ? (३) ईश्वरमें सूक्ष्मताका कारण क्या ? (४) तथा स्थूल और सूक्ष्मका लक्षण लिखिये (५) अथवा पृथ्वीके अन्दर भी परमात्मा है सर्वव्यापी होनेसे इसलिये पृथ्वीमें भी परमात्मा के सुख और ज्ञानादि गुण आना चाहिये (६) जब कि गुण और गुणीका समवायसम्बन्ध है तब एक द्रव्यका गुण दूसरे द्रव्यमें आनेसे समवायसम्बन्धमें बाधा आई (७) तथा द्रव्य में से जो गुण निकल

जाय तब निर्गुण द्रव्यका लक्षण क्या रहता है? (८) अथवा जब शरीर और जीव का संयोग है तो जीवके ज्ञानादि गुण स्थूलशरीरमें क्यों नहीं जाते हैं और मूल शरीरमें क्यों नहीं रहते (९) तथा सूक्ष्म द्रव्यके गुण स्थूलमें तो आजाते हैं परन्तु स्थूलके गुण सूक्ष्ममें नहीं आते इसमें नियामक क्या है? (१०) और जब ईश्वरका सुख गुण बराबर जीवोंमें चला जायगा तो क्रमसे ईश्वर हीनसुखी होता जायगा (११) आपने सुख, दुःख, इच्छा, और द्वेष ये चार गुण औपाधिक और नैमित्तिक बताये उनमें से सुख गुण तो ईश्वरका आकर जीवगुणमें नैमित्तिक होता है और शेष दुःख, इच्छा, और द्वेष ये तीन गुण किस द्रव्यके आकर जीव द्रव्यमें नैमित्तिक होते हैं।

पुनः आपने लिखा कि "जगत् पक्ष है कार्यहोना साध्य है उसमें सावयवत्व और विकारित्व हेतु है" सो आपका लिखना मिथ्या है यह शास्त्रार्थ लेखबद्ध है मौखिक नहीं है यदि मौखिक होता तो शायद आपको बदलने का मौका मिल जाता आपका पत्र हमारे पास मौजूद है जिसमें आपने साफ लिखा है कि "ईश्वर जगत् कर्ता है प्रतिज्ञा ईश्वर जगत्कर्ता है" इस वाक्यमें ईश्वर ही पक्ष होसकता है जगत् कदापि नहीं क्योंकि जगत्कर्ता, इस तत्पुरुष समासान्त पद में जगत् शब्द का पूर्व निपात है और तत्पुरुष समासमें उत्तर पदार्थ प्रधान होता है और जगत्कर्ता साध्य पद है इसलिए साध्यपदमें उपसर्जनीभूत जगच्छब्द कदापि पक्ष नहीं हो सकता मालूम होता है कि आप क्रियाकारकादि सम्बन्ध में भी कम ज्ञान रखते हैं।

पुनः आपने लिखा कि "आपके कर्ममल स्वाभाविक हैं या नैमित्तिक यदि स्वाभाविक हैं तो मल नहीं कह सकते स्वाभाविक का नाश नहीं होसकता है यदि नैमित्तिक है तो उसका निमित्तत्व बतलाइये,, उत्तर में निवेदन है कि कर्ममल भिन्न पुद्गलद्रव्य हैं इसलिए वह न तो जीव का स्वाभाविक धर्म है और न नैमित्तिक भी है एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका स्वाभाविक व नैमित्तिक धर्म नहीं होसकता किन्तु कोई धर्म स्वाभाविक व नैमित्तिक हुआ करता है कर्ममलके निमित्त से जीव (संसारी) के रागादि होते हैं अतः जीव संसारी कहलाते हैं और जब कर्मरूपी मल निमित्त दूर होजाते हैं तब जीव ही मुक्त तथा ईश्वर होजाते हैं॥

पुनः आपने लिखा कि "अगर किसी गुरुसे सांख्य शास्त्र पढ़े जांय तो यही सूत्र ईश्वरका साधक है बाधक नहीं" इत्यादि आपके इस लेख को बांच कर आपकी बुद्धिमत्ता पर आश्चर्य होता है महात्मा जी! जरा सांख्य-

शास्त्रको आंख खोल कर देखिये ८९ वां सूत्र में प्रत्यक्ष का लक्षण किया है कि जो पदार्थोंसे सम्बद्ध होकर सदा कारोल्लेखि ज्ञान होय उसे प्रत्यक्ष कहते हैं इस लक्षण में शङ्काकार ने योगिप्रत्यक्षमें अव्याप्ति दोष दिया है उसके ९० और ९१ वें सूत्रमें निराकरण किया अर्थात् नब्बे ९० के सूत्रमें यह उत्तर दिया है कि हमारा लक्ष्य ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष है और ९१ वें के सूत्रमें यह उत्तर दिया है कि योगजधर्मके अतिशय से योगियोंके चित्त का अतीतादि पदार्थोंसे भी सम्बन्ध होता है अतः उसमें भी लक्षण चलागया पुनरपि शङ्काकार ने ईश्वर प्रत्यक्षमें अव्याप्ति दोष दिया तब ९२ वें के सूत्र में "ईश्वरासिद्धेः" इस हेतुपरक सूत्र से यह दिखलाया कि ईश्वर प्रत्यक्ष में अव्याप्ति नहीं है क्योंकि ईश्वर की सिद्धि न होने से तथा आगे सूत्र "मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिः,, अर्थात् मुक्त और बद्धमें किसीमें भी अन्तर्भाव न होने से ईश्वरकी सिद्धि नहीं है स्पष्टतया ईश्वर का निषेध किया है आपने जो लिखा कि जब नैय्यायिक ने मानसिक प्रत्यक्षका इनकार किया तो इस सूत्रमें नैयायिक पर यह आक्षेप किया यदि तुम मानसिक प्रत्यक्ष न मानोगे तो तुम्हारे मतमें "ईश्वर सिद्ध न होगा,, इस शंकाके समाधानमें "ईश्वरासिद्धेः,, यह सूत्र निरूपण किया गया सो आपका ऐसा लिखना नितान्त भ्रम पूर्ण है क्योंकि नैय्यायिक की तरफ से मानस प्रत्यक्ष की इनकारी की शंका उठाना ही भ्रम मूलक है तथा सूत्रों का सम्बन्ध असंघटित होजाता है। कृपा कर किसी अच्छे गुरुके पास सांख्यदर्शन पढ़िये तब आपको मालूम पड़ेगा। अगर सांख्य को ईश्वरवादी आप मानते हैं तो सांख्यदर्शन के किसी सूत्रसे बतलाइये।

और शब्द प्रमाणमें हमने वेदकी सिद्धि ईश्वराधीन और ईश्वरकी सिद्धि वेदाधीन होने से अन्योन्याश्रय दोष दिया था उस का आपने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

ओ३म्

(क) पत्र नं० ४ का उत्तर। आर्यसमाज अजमेर।

ता० २९। ८। १२

श्रीमान् महाशय जी! नमस्ते।

जीवोंके दो भेद तो आप भी मानते हैं एक भव्य दूसरा अभव्य, सम

विक्षेप आवरण दोषसे युक्त मन वैशेषिक पदार्थके विशेषके अन्दर आते हैं। दूसरे आर्यसमाज जो जीवको सर्वज्ञ नहीं मानता उसका ये मतलब है कि सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ हैं एक सब पदार्थोंको एक कालमें जानने वाला वोतो जीव कभी नहीं होता। दूसरा सब पदार्थोंके जाननेमें समर्थ वो मल विक्षेप आवरण दोषसे रहित मनवाला जीव होता है। जब पदार्थ ही दो हुए तो विघात कहां? ऐसे योगी अब भी वर्तमान हैं कि जो मानसिक प्रत्यक्ष की योग्यता रखते हैं, यदि आप देखना चाहें तो लंगोटा कसकर घर छोड़िये और पहाड़ों की सैर कीजिये आपको उनका प्रत्यक्ष हो जायगा, यदि घर बैठे ही लन्दनकी सैर करना चाहें तो कैसे हो सकता है। मानसिक प्रत्यक्ष को न रखने वालोंको ही तो ज्ञान नहीं होता,(यदि आप विचार करें तो किसी द्रव्यका प्रत्यक्ष नहीं हुआ करता) प्रत्यक्ष हमेशा गुणोंका होता है और उन गुणोंके प्रत्यक्षको ही उपचारसे द्रव्यका प्रत्यक्ष कहते हैं यही तो अविद्या है कि जीव ईश्वरसे प्राप्त सुखको पाकर अपनेको सुखी मानता है। जीव ये नहीं कहता कि मैं सुख स्वरूप हूं, जैसे अध्यासले शरीरके धर्मको अपना स्वरूप काला, गोरा बतलाता है, ऐसे ही मैं सुखी हूं बतलाता है (ईश्वर में सुख स्वभाविक है और जीव में नैमित्तिक) यदि जीवको सुख स्वरूप मानें तो इतने दोष आयंगे। १ सुखकी इच्छा नहीं हो सकती। २ सुख नित्य होना चाहिये। ३ सुख सुषुप्ति अवस्थामें मालूम होता है जागृतिमें नहीं, इसमें हेतु होना चाहिये। आपने जो लिखा कि आकाश अतिन्द्रिय है इन्द्रिय जिस पदार्थको ग्रहण करती है। शरीर इन्द्रिय भेदसे करती है आकाशके कार्य्य शरीर नहीं हैं इस वास्ते वो अतिन्द्रिय है।

महर्षि मानकचंद स्वामी का न्याय सूत्र कहां है जरा उसको पेश कीजिये और जगत् मान सिद्ध कीजिये, और उसके महर्षि होनेका प्रमाण दीजिये? और जो ये लक्षण हैं ज्ञान प्रमाण होता है या प्रमिति? जरा इस को विचारिये, प्रमितिके लक्षणको प्रमाणका लक्षण कहना न्यायसे अनभिज्ञताका बोधक है। आपने जो ये लिखा कि ईश्वरका ज्ञान प्रमाण है, तो वो प्रमाता भी सिद्ध होता है। कृपानिधे! प्रमाण जो होता है प्रमाताका गुण नहीं होता, ईश्वरका ज्ञान गुण है प्रमाका कर्ता प्रमाताके स्वरूपसे भिन्न होता है। जैसे इन्द्रिय मन आदिक जीवसे भिन्न हैं। प्रमाण स्वरूप ईश्वर

मानकर प्रमाता किसको मानोगे? प्रमाता और प्रमाण जब भिन्न होते हैं एक होते ही नहीं तो आत्माश्रय दोष कहां है? स्मृतिका ये लक्षण किस आचार्यने किया है, जब तक पता न मिले तो उस पर विचार क्या हो? जब ज्ञान होगा तो इत्याकारक ही होगा, जिसको स्मृति कहेंगे। मानस प्रत्यक्ष अतिन्द्रिय पदार्थोंका होता है जिनका इन्द्रियोंसे सन्निकर्ष ज्ञान हो यदि आप न्याय दर्शनका दूसरा सूत्र भी पढ़ लेते तो इच्छा द्वेष और सुख दुखको जीवका स्वाभाविक गुण न मानते। और यदि आप इतना भी विचार करते कि दो व्याघातिक गुण किसी एक पदार्थके स्वाभाविक गुण नहीं हो सकते, इच्छा द्वेष दो व्याघातिक हैं, इनके औपाधिक होनेमें न्यायदर्शनका दूसरा सूत्र प्रमाण है। जहां मिथ्या ज्ञानकी सन्तान राग और द्वेष को बतलाया है। स्वाभाविकका यह लक्षण है कि "यस्योत्पत्तौ कारण विलम्बात् विलम्बो न जायते तत्स्वभावकः" यदि कर्म द्रव्य है तो उनके आने के लिये अवकाश चाहिये। जीव और सुखके दरम्यानमें अवकाश कहां है? यहां उपाधि आयेगी, गुण गुणीका समवाय संबन्ध होता है। जिनमें कभी वियोग होही नहीं सकता। हल्दी और चूनेका दृष्टान्त आपके मतलबको सिद्ध नहीं करता, क्योंकि वहां बाध्य बाधक भाव है, चूनेके रंगको देखनेमें हल्दी बाधक है, और हल्दीके रंगको देखनेमें चूना बाधक है जिससे अविद्वानोंको अविद्यासे विकार प्रतीत होता है, क्या गुण कोई सावयव और जन्य वस्तु है? जिसमें विकारका आना असंभव हो। जब आप कर्म को उपाधि मानते हैं तो उपाधिका अनादि सम्बन्ध कैसा?

(१) आपने जो गुण गुणीमें उपाधिका दृष्टान्त हल्दी और चूनेका दिया है ये भ्रान्ति है, क्या हल्दीमें पीत गुण नहीं रहा? यदि हल्दीमें पीत गुण नहीं रहा तो गुण गुणीमें समवाय सम्बन्ध कैसे? यहां तो बाध्य बाधक भाव दृष्टाकी दृष्टिको भ्रममें डालता है लेकिन गुण गुणीमें उपाधि है।

(२) जब कि उपाधि विना द्रव्यके होही नहीं सकती तो आपके दृष्टान्तमें भी चूना द्रव्य ही है फिर आपको कर्मको द्रव्य सिद्ध करनेमें आवश्यकता क्यों नहीं? यदि कर्म पुद्गल द्रव्यके भेद हैं तो जड़ होंगे। पुद्गल में चार हैं, पृथिवी, अप्, तेज, वायु क्या कर्ममें इन सबके गुण हैं। यदि कर्म शब्द जैनियोंकी अपनी परिभाषा है, तो पहले किसी जैन शास्त्रका लेख दिखलाइये? यदि हल्दी और चूने ने पीतको दृष्टाकी दृष्टिको दूषित किया है तो दृष्टान्त सर्वथा असंगत है। दृष्टान्तका लक्षण करके उसमें घटाइये?

क्या कर्म कोई वस्तु नहीं ? जो अपेक्षासे सादि और अनादि है । इससे प्रतीत होता है कि आप कर्मको कार्य्य मानते हुए भी अनादि कहते हैं) सो अविद्या है। जीव प्रकृतिसे सूक्ष्म और परमात्मासे स्थूल है, परमात्माकी सूक्ष्मताका कारण उसकी सर्व व्यापकता है स्थूलका लक्षण ये है जिसमें दूसरेका गुण आसकें और सूक्ष्मता ये है कि जिसमें दूसरे गुण न आसके जैसे जल उष्ण कहला सकता है, किन्तु अग्नि शीत नहीं, कहला सकती, सुख और ज्ञान गुणोंका बोध जड़ पृथ्वीको कैसे हो सकता है, जो कि चैतन्यता का कार्य है। स्थूल द्रव्यमें सूक्ष्म द्रव्य दाखिल होता है उसके साथ ही उसके गुण जाते हैं। सूक्ष्म में स्थूल द्रव्य दाखिल नहीं हो सकते, इस लिये इसके गुण नहीं आ सकते । ईश्वर गुण गुणीसे कभी पृथक् होता ही नहीं, यदि ऐसा होता तो जलके गुण शीत भी अग्निमें आजाता, ईश्वर जीवोंके अन्दर मौजूद है वहींसे जीव सुख अनुभव करता है। इच्छा और द्वेष मनका धर्म है, तो जीवको प्रतीत होते हैं और दुःख पुद्गलका स्वभाव है जो उसके संगसे मनमें आता है और जीव अध्याससे अपनेको प्रतीत करता है। ईश्वर जगत्कर्ता लिखनेका मतलब जगत्को ईश्वरका कार्य्य कहना ही है, जैसे शब्दोंमें कहते हैं कि इटावा आगया तो वहां आना क्रिया, इटावामें नहीं होती गाड़ीमें होती है ॥

आप जरा शास्त्रार्थ करनेसे पहले लक्षण व्यंजना अवधाशक्ति वगैरह अर्थ करनेके नियमोंको विचारिये । जब कि कर्म फल पुद्गल द्रव्य है तो उसका अनादिकाल सम्बन्धी कैसे ? दो द्रव्योंमें समवाय सम्बन्ध तो होही नहीं सकता । संयोग ही मानना पड़ेगा, कर्मफल जीवसे सूक्ष्म है या स्थूल । यदि मानसिक प्रत्यक्षके न मानने वाले पर ये सूत्र आक्षेप न होता । और महर्षि ईश्वरासिद्धेः केवल प्रतिज्ञा करते तो आगे उसके हेतु आदि देते परन्तु (महर्षिने नैयायिकोंके अनुमान प्रमाणमें दोष दिये हैं । अर्थात् यदि ईश्वर मुक्त है तो भी जगत्कर्त्ता सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि मुक्तमें इच्छा नहीं होती यदि बद्ध है तो भी जगत्कर्त्ता नहीं हो सकता क्योंकि उसमें ज्ञान नहीं होता सांख्यदर्शनका ये सूत्र जरा विचार से पढ़िये)। "समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता" अर्थात् समाधि सुषुप्ति और मुक्तिमें सच्चित् जीवात्माको ईश्वर के आनन्द गुणके नैमित्तिक प्राप्त होनेसे ब्रह्मरूपता प्राप्त होती है। यदि म-

हर्षि कपिल ब्रह्मको न मानते तो ब्रह्मरूपता कैसे होती ? । इत्यलम् ॥

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा

———:०:———

वन्दे जिनवरम् ।

(क) पत्र नं० ५ श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा

इटावा । ता० १४ । ९ । १२

श्रीयुत जयदेव शर्मा मन्त्री आर्यसमाज अजमेर जुहारके अनन्तर निवेदन है कि

आपने लिखा कि "मल विक्षेप आवरण दोषसे युक्तमन वैशेषिक पदार्थके विशेषके अन्दर आते हैं" सो आपका लिखना ठीक नहीं मन और मल विक्षेप आवरणका संयोग सम्बन्ध है, या समवाय सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध तो हो नहीं सक्ता क्योंकि संयोग सम्बन्ध दो द्रव्योंमें होता है और आप मल विक्षेप आदिको द्रव्य नहीं मानते और समवाय सम्बन्ध भी नहीं हो सक्ता क्योंकि समवाय नित्य सम्बन्ध है जिस पदार्थका समवाय सम्बन्ध है उसका कभी वियोग नहीं होता और आप मल विक्षेप आदिका मनसे वियोग मानते हैं आपने मल विक्षेप आवरण आदिको वैशेषिकके विशेष पदार्थमें गर्भित किया सो इसमें वैशेषिक सूत्रका प्रमाण दीजिये । पुनः आपने लिखा कि "आर्यसमाज जो जीवको सर्वज्ञ नहीं मानता उसका यह मतलब है कि सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ हैं । एक तो सब पदार्थोंको एक कालमें जानने वाला वह तो जीव कभी नहीं होता दूसरा सब पदार्थोंके जाननेमें समर्थ वह मल विक्षेप आवरण दोषसे रहित मनवाला जीव होता है" सो ठीक नहीं है प्रथम तो आप यह बतलाइये कि सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ किस शास्त्रके आधारसे हैं सर्वज्ञ शब्दका जो दूसरा अर्थ आपने जो सर्व पदार्थोंको जाननेमें समर्थ ऐसा लिखा सो जो जीव सर्व पदार्थोंके जाननेमें समर्थ है वह उन पदार्थोंको जानता है या नहीं । यदि जानता है तो ईश्वरकी सर्वज्ञताके सदृश इसकी भी सर्वज्ञता हुई । और यदि नहीं जानता तो ईश्वरके सुख गुणको भी नहीं जानने से उसका मानसप्रत्यक्ष ईश्वरके सद्भावमें युक्त नहीं हो सक्ता । और आपनेलिखा कि "मानसप्रत्यक्षको न रखने वालोंको ही तो ज्ञान नहीं होता यदि आप विचार करें इत्यादि" सो यह आपका सब लिखना युक्ति शून्य है कृपाकरके आप बतलाइये कि गुणोंसे अतिरिक्त द्रव्य क्या वस्तु है और गुणोंसे निरपेक्ष द्रव्यका लक्षण क्या है । लक्षणके बिना किसी पदार्थकी सिद्धि नहीं होती । जब द्रव्य और गुणका समवाय सम्बन्ध मानते हो तो ईश्वरका सुख गुण

जीवमें कैसे आया क्योंकि जिनका समवाय सम्बन्ध है उनका वियोग नहीं होसक्ता। महर्षि माणिक्य नंदीका न्याय सूत्र जिनका कि नाम परीक्षामुख है जैन ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय पोष्ट गिरगांव बम्बईके पतेसे मिलता है सो मंगा लीजिये, | जगन्मान्य शब्द से यदि आप किसी एक समाजके माननेसे ही जगन्मान्य होजाता है ऐसा मानते हो तो माणिक्यनन्दीन्यायसूत्र भी जैन समाजके मान्य होनेसे जगन्मान्य हो सक्ता है और यदि संपूर्ण समाजोंसे मान्यको ही जगन्मान्य कहते हो तो षट्दर्शन भी, जैन, बौद्ध, चार्वाक यवन आदिसे मान्य न होनेके कारण जगन्मान्य नहीं ठहर सक्ते। इसी तरह किसी एकमत विशेषके माननेसेही महर्षिता होसक्ती है|तो माणिक्यनन्दी भी जैन मतके मान्य होनेसे महर्षि सिद्ध हुये। और यदि सम्पूर्णमत मान्य होने से ही महर्षिताकी पदवी मिलती है तो कपिलादिक भी सुगतमत आदिसे मान्य न होनेसे महर्षि नहीं कहला सक्ते। आप बार बार लिखते हैं कि "न्यायसे प्रत्नभिन्नताका बोधक है," सो आपने क्या अपने कल्पित ऋषियोंके मन्तव्यको ही न्याय मान रक्खा है? यह आपकी सर्वथा भ्रान्ति है। यदि आपने अष्ट सहस्री, प्रमेयकमल मार्तण्ड, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, आदि न्याय ग्रन्थोंका अवलोकन किया होता तो आपको ऐसे भ्रमपूर्ण शब्दोंके लिखनेका मौका नहीं पड़ता। फिर आपने लिखा कि "ज्ञान प्रमाण होता है या प्रमिति," उत्तरमें निवेदन है कि, करण साधन व्युत्पत्तिसे निष्पन्न ज्ञान शब्दका वाच्य प्रमाण है और भाव साधन व्युत्पत्तिसे लब्ध ज्ञान शब्दका वाच्य प्रमिति है अज्ञानकी निवृत्तिको प्रमिति कहते हैं अज्ञानकी निवृत्तिमें कारण भूत पदार्थ जो होगा वह अज्ञानका विरोधी ही होगा अज्ञानका विरोधी ज्ञान है इन्द्रिय, सन्निकर्ष, आदि जड़ पदार्थ नहीं है जो कि अज्ञानके अविरोधी करण नहीं हो सक्ते जिस प्रकार अन्धकारके विनाशमें करण प्रकाशही हो सक्ता है घट पटादिक जो अंधकारके अविरोधी करण नहीं हो सक्ते इस लिये प्रमितिका करण (प्रमाण) ज्ञान होसक्ता है। और आपने लिखा कि "प्रमाण जोहोता है वह प्रमाताका गुण नहीं होता," यह सर्वथा वदतोव्याघात है। क्योंकि नैयायिकने भी सादृश्य ज्ञानको उपमानप्रमाण, व्याप्ति ज्ञानको अनुमान प्रमाण पद ज्ञानको शाब्द प्रमाण माना है और ये करणात्मक ज्ञान सब प्रमाताके गुण हैं। पुनः आपने लिखाकि "प्रमाका करण प्रमाण प्रमाताके स्वरूप से भिन्न होता है जैसे इन्द्रियमन आदिक जीवसे भिन्न हैं प्रमाणस्वरूप मा-

नकर प्रमाता किसको मानोगे प्रमाता और प्रमाण जब भिन्न होते हैं एक होते ही नहीं तो आत्माश्रय दोष कहां है„? उत्तरमें निवेदन है कि ईश्वर का ज्ञान प्रमितिका करण होने से प्रमाण भी है और ईश्वर अपनेको जानता है इसलिये प्रमेय भी है और अपने आप जाननेमें आत्माश्रय दोष देते हैं तो ईश्वर अपने को आप ही जानता है तो आत्माश्रय दोष क्यों नहीं तदवस्थ रहेगा? और स्मृतिका "तदित्याकारा प्रागनुभूत वस्तु विषयास्मृतिः" यह लक्षण महर्षि माणिक्यनन्दी आचार्यने न्यायसूत्रमें किया है इत्याकारकज्ञानको स्मृति नहीं कहते आप गौर करके उत्तरोंको बांचिये तदित्याकारा स्मृति हुआ करती है यदि यह लक्षण आपको इष्ट नहीं है तो इसमें अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असम्भव, दोषोंको दिखलाइये बिना दोष दिखलाइये लक्षण असिद्ध नहीं हुआ करता। पुनः आपने लिखा कि "मानसप्रत्यक्ष अतीन्द्रिय पदार्थोंका होता है जिनका इन्द्रियों से सन्निकर्ष न हो यदि आप न्यायदर्शनका दूसरा सूत्र पढ़ लेते तो इच्छा, द्वेष और सुख दुःखको जीव का स्वाभाविक गुण नहीं मानते,, सो यह आपका लिखना प्रकरण विरुद्ध है क्योंकि हमारा सवाल इस प्रकार था कि वैशेषिक दर्शन में जो २४ गुणमाने हैं उनमें सुख दुःख आदिक का पाठ है और वे आत्माके बतलाये भी हैं तो आपका जीवका स्वाभाविक सुख गुण नहीं है यह वक्तव्य इससे विरुद्ध पड़ता है इसका उत्तर आपने टालकरके न्यायके दूसरे सूत्र पढ़नेका आदेश किया सो कृपानाथ! न्यायका दूसरा सूत्र यह "दुःख जन्म प्रवृत्ति दोष मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः" है इसका अर्थ भी इस प्रकार है कि तत्त्वज्ञानसे मिथ्या ज्ञानका नाश फिर मिथ्याज्ञानके नाशसे दोषका नाश दोषके नाशसे प्रवृत्तिकानाश प्रवृत्तिके अपायसे जन्मकानाश और जन्म के नाशसे दुःखका नाश होकर बादमें निःश्रेयस होता है इस सूत्रमें सुख गुण को जीवका स्वाभाविक गुणहोनेका निषेध लवमात्र भी नहीं निकलता। आगे आपने लिखा कि "स्वाभाविक का यह लक्षण है कि "यदुत्पत्तौ कारणविलम्बाद्विलम्बो न जायते तत्स्वाभाविकम्" यह आपका लिखना सर्वथा विरुद्ध है क्योंकि यदुत्पत्तौ इस पदसे स्वाभाविककी उत्पत्ति होना तो सिद्ध है उत्पत्ति बिना कारणके हो नहीं सक्ती यदि स्वाभाविककी उत्पत्तिमें कारणके विलम्बसे कार्यका विलम्ब न मानोगे तो कारण व्यापारके पूर्व ही कार्य की उत्पत्ति क्यों नहीं हुई? दूसरे स्वाभाविक गुणकी उत्पत्ति हुआ ही नहीं करती क्योंकि स्वाभाविक गुण और जन्ममें विरुद्ध शब्द हैं।

पुनः आपने लिखा कि "कर्म द्रव्य है तो उसके आनेके लिये अवकाश चाहिये जीव और पुलके दरम्यानमें अवकाश कहां है यहां उपाधि आवेगी गुण गुणीका समवाय सम्बन्ध होता है जिनमें कभी वियोग हो ही नहीं सकता हल्दी और चूनेका दृष्टान्त आपके मतलबको सिद्ध नहीं कर सकता क्योंकि यहां बाध्य बाधक भाव है चूनेके रंगको देखनेमें हल्दी बाधक है और हल्दीके रंगको देखनेमें चूना बाधक है" महाशय यह सर्व आपका लिखना पिष्टपेषण है हम इसका उत्तर पहले लिख चुके हैं और फिर आपको समझानेको लिखते हैं जब कि एक कमरेमें स्थूल दश दीपकोंका प्रकाश परस्पर में अवकाशकी अपेक्षा नहीं रखता तो सूक्ष्म द्रव्य आत्मा और कर्म द्रव्यके एक क्षेत्रावगाहमें अवकाशकी क्या आवश्यकता है ?। कर्मके सम्बन्धसे गुणीके गुणका विकृत परिणाम होता है वियोग होना हम स्वीकार नहीं करते। इसका खुलासा दृष्टान्त हल्दी और चूनेका दे चुके हैं उसमें आपने बाध्य बाधक भाव दिखलाया सो आपकी नितान्त अनभिज्ञता सूचित करता है बाधक वह होता है जो कि बाध्यके गुणका तिरोभाव करके अपने गुणको प्रादुर्भूत रखता है यदि हल्दीका रंग बाधक होता और चूनेका रंग बाध्य होता तो इस अवसरमें हल्दीका पीला रंग दृष्टिगत होता तथा चूनेका रंग बाधक होता और हल्दीका रंग बाध्य होता तो ऐसी अवस्थामें चूनेका श्वेत रंग प्रतीत होना चाहिये था सो ऐसा न हो करके तीसरा ही रक्त वर्ण दृष्टिगोचर होता है एक ही कालमें एक ही पदार्थमें एक ही की अपेक्षासे बाध्यत्व और बाधकत्व ये दो विरुद्ध धर्म नहीं रह सकते अर्थात् आप उसी वक्त हल्दीको चूनेके रंगका बाधक कहते हैं और बाध्य भी कहते हैं यह विरुद्ध है और जहां बाध्य बाधक भाव होता है वहां किसी तीसरे भावात्मक पदार्थकी उत्पत्ति नहीं होती जब कि हमको चूनेके दृष्टान्तमें रक्तता (लालिमा) की प्रत्यक्ष प्रतीत होती है तो यहां बाध्य बाधक भाव कहना बाध्य बाधक भावके लक्षण तथा प्रयोग करनेकी अज्ञता सूचित करता है यदि आबाल वृद्ध विदित जगन्मान्य एतादृश प्रत्यक्ष भी अविद्या हेतुक मानेंगे तो सम्पूर्ण प्रत्यक्षोंका अपलाप हो जायगा आप ऐसा कोई विद्वान् बतलाइये जिसको कि हल्दी और चूनेके मिलने पर रक्तिमाका प्रत्यक्ष न होकर पीतिमा और शुक्लता का प्रत्यक्ष होय ॥

पुनः आपने लिखा कि "क्या हल्दीमें पीत[illegible] नहीं रहा। यदि हल्दी

में पीत गुण नहीं रहा तो गुण गुणीमें समवाय सम्बन्ध कैसा" सो महात्मा जी ! जरा विचारिये कि हरा आम जब पीतताको प्राप्त होता है तब आम का हरितका समवाय कहां चला गया क्या वहां भी आप बाध्य बाधक मान ते हैं ? यदि बाध्य बाधक भाव मानते हैं तो बाध्य कौन और बाधक कौन दो पदार्थ बतलाइये ? महाराज ? पीतश्वेत हरित आदि गुण नहीं हैं किन्तु रूप नामक गुणकी अवस्था विशेष हैं समवाय सम्बन्ध गुण और गुणीका है न कि गुणी और अवस्थाओंका ।

पुनः आपने लिखा कि "जबकि उपाधि बिना द्रव्यके हो ही नहीं सकती तो आपके दृष्टान्तमें ही चूना द्रव्य ही है फिर आपको कर्मको द्रव्य सिद्ध करनेमें आवश्यकता क्यों नहीं" सो महाशिये? जरा प्रश्न और उत्तरके सम्बन्ध को विचारिये आपने पहले पूछा था कि कर्म द्रव्यको उपाधि माने बिना उपाधि सिद्ध कीजिये उसके उत्तरमें हमने यह कहा था कि कर्मको द्रव्य मानते हैं हमको कर्मको द्रव्य माने बिना उपाधि सिद्ध करनेकी आवश्यकता क्या ? फिर आपने अपने आप ही कर्मको द्रव्य सिद्ध करनेमें आवश्यकता क्यों नहीं इत्यादि लिख मारा सो कृपाकर पूर्वापर सम्बन्ध मिलाकर फिर आक्षेप किया कीजिये । पुनः आपने लिखा कि "कर्म पुद्गल द्रव्यके भेद हैं तो जड़ होंगे पुद्गलमें चार हैं पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, क्या कर्ममें इन सबके गुण हैं" सो महाराज ? पृथ्वी जल तेज आदि भी पुद्गल द्रव्यकी विशेष अवस्थायें हैं और जो जलके कार्य हैं वे अग्निके नहीं और जो अग्निके हैं वे जलके नहीं पुद्गल द्रव्यके गुण यद्यपि एकसे हैं तथापि उन गुणोंकी अवस्था भेदसे पुद्गल द्रव्यके पर्याय अग्नि जल आदिके कार्योंमें अन्तर पड़ जाता है इस ही प्रकार पुद्गल द्रव्यकी कर्म रूप भी पर्याय होती है उसमें गुणोंके परिणमन (अवस्था) विशेषसे जीवके ज्ञानादि गुणोंको विकृत करनेकी शक्ती है कोई समयमें कर्मके परमाणु पृथिव्यादि रूप हो जाते हैं और पृथिव्यादिक कर्म रूप हो जाते हैं इस लिये पुद्गल द्रव्यकी सम्पूर्ण पर्यायोंमें गुण एकसे हैं इस विषयको आप "नेमिचन्द्र सिद्धान्तिक चक्रवर्ती विरचित गोम्मट सारके कर्म काण्ड प्रकरणमें" देख लीजिये । दृष्टान्तका लक्षण पूछा सो उत्तरमें वक्तव्य है "वादि प्रतिवादिनोर्बुद्धि साम्य प्रदर्शन प्रदेशो दृष्टान्तः" यह दृष्टान्तका लक्षण है हल्दी चूनेके दृष्टान्त में सुलभ रीतिसे घटित होता है ॥

पुनः आपने लिखा कि "क्या कर्म कोई वस्तु नहीं ? इत्यादि" इसका

उत्तर हम कई बार लिख चुके हैं और पुनः लिखते हैं जिस प्रकार आपकी मानी हुई सृष्टि व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है क्या एतावता आपकी सृष्टि अवस्तु हो गई ? उसी तरह कर्म भी व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि हैं ॥

पुनः आपने लिखा कि "जीव प्रकृतिसे सूक्ष्म और परमात्मासे स्थूल है" सो यह आपका लिखना युक्ति संगत नहीं है । क्यों कि वैशेषिक दर्शनके सातवें अध्याय प्रथमान्हिकके बाईसवें ("विभवान्महानाकाशस्तथा चात्मा" सूत्रमें आत्माको भी विभु (सर्व व्यापक) माना है इस वास्ते व्यापकत्व हेतुसे परमात्माकी तरह जीवात्मामें भी सूक्ष्मता सिद्ध होती है जिस तरह परमात्मा सूक्ष्म है उनके गुण जीवात्मामें आते हैं उसी तरह जीवात्माके गुण भी परमात्मामें चले जायंगे तथाच गुणोंका परस्पर साङ्कर्य हो जायगा ।

आगे आपने स्थूल और सूक्ष्मके लक्षण लिखे वे किस शास्त्रके आधारसे हैं तथा ये अतिव्याप्ति और असम्भव दोष ग्रस्त भी हैं । महाशयजी प्रायः द्रव्योंके लक्षण गुण मुखेन किये जाते हैं जैसे कि "उष्ण स्पर्शवत्तेजः„ यह तेजो द्रव्यका लक्षण किया है । यदि आपके मन्तव्यानुसार सूक्ष्म तेजके उष्ण स्पर्शादि गुण स्थूल जलमें भी चले जायंगे तो उक्त लक्षण अतिव्याप्त होगया तथा एक द्रव्यके समवेत गुण दूसरे द्रव्यमें जाही नहीं सकते तो यह आपका लिखना कि सूक्ष्मके गुण स्थूलमें चले जाते हैं सो सर्वथा असम्भव है । तथा गुणोंके परस्पर द्रव्यमें आने जानेसे बड़ा भारी द्रव्योंमें सांकर्य दोष होगा ।

पुनः आपने लिखाकि "सुख और ज्ञान गुणोंका बोध जड़ पृथ्वीको कैसे हो सकता है जो कि चेतन्यका कार्य है„ सो यह आपका लिखना युक्त्यपूर्ण है जैसे कि सुख रहित जीवमें ईश्वरका सुख गुण आकर उसको सुखी कर देता है ठीक इसी तरह ईश्वरका सुख और ज्ञान गुण पृथ्वीको भी ज्ञानवान् और सुखी कर सकते हैं जब पृथ्वीमें ज्ञान गुण आजायगा तो पृथ्वी भी चेतन होकर जीवकी तरह सुखका अनुभव क्यों नहीं करने लगती । आगे आपने लिखा कि "इच्छा और द्वेष मनका धर्म है तो जीवको प्रतीत होते हैं और दुःख पुद्गलका स्वभाव है जो उसके संगसे मनमें आता है और जीव अध्याससे अपनेको प्रतीत करता है" सो आपका यह कथन अविचारित रम्य है । इच्छा और द्वेष ये चेतनके धर्म प्रत्यक्ष सिद्ध हैं यदि जड़ मनके धर्म होते तो आत्माके मुक्त होने पर या मृतक शरीरमें भी प्रत्यक्षित होते इसी तरह

दुःख भी पुद्गलका स्वभाव नहीं हो सकता किसी घट पटादि जड़ पदार्थों में दुःख प्रतीत नहीं होता वैशेषिक मतानुसार इच्छाद्वेष और दुःख ये आत्मा के गुण माने हैं और आप वैशेषिक शास्त्रको प्रमाण मानते हुये भी इच्छादिक को पुद्गलका मनका गुण कहते हैं तथा आपने पहले यह प्रतिज्ञा की है कि जीवात्मा प्रकृतिसे स्थूल सूक्ष्म और ईश्वरसे स्थूल है स्थूलके गुण सूक्ष्म में नहीं जाते जब कि दुःख इच्छा द्वेष ये प्रकृति धर्म हैं तो सूक्ष्म जीवात्मा में आ भी कैसे सकते हैं अभ्यासले जीव पुत्र कलत्र धन धान्य आदिकको भी अपने मानता है यह भ्रमज्ञान है भ्रमज्ञानकर प्रतीत पदार्थ सत्य नहीं हो सकते इस लिये ईश्वरके सुखादिक गुणोंका जीवमें आना नितान्त असम्भव है क्योंकि ईश्वरमें और सुखादिक गुणोंमें समवाय सम्बन्ध है समवाय सम्बन्ध वाले पदार्थ समवायीसे भिन्न नहीं होते। पुनः आपने लिखा कि "ईश्वर जगत्कर्ता लिखनेका मतलब जगत् को ईश्वरका कार्य करना ही है इत्यादि" उत्तरमें निवेदन है कि महाशय जी? आप बड़े ही कठिन हठ धर्मी हैं आप अपनी गलतीको थोड़ स्वीकार नहीं करते आप किस लक्षण वृत्ति, व्यञ्जनावृत्ति, या अभिधा शक्तिके द्वारा "ईश्वरो जगत्कर्ता" इसका अर्थ जगत् ईश्वरका कार्य है यह करते हैं। अस्तु हम आपके कहे अनुसार आपकी इसी प्रतिज्ञाको स्वीकार करते हैं कि जगत् ईश्वरका कार्य है (१) जगत् शब्दका अर्थ आप के सिद्धान्तानुसार ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनोंका समुदायात्मक है और आपके कथनानुसार ये तीनों नित्य पदार्थ हैं जब कि इनमें प्रकृत अनुमान से ईश्वर कार्यत्व सिद्ध करोगे तो हेतु विरुद्ध हेत्वाभास है (२) तथा जगतके अन्तर्भूत घटपटादिक पदार्थ भी हैं उनका कर्ता कुम्भकार तन्तुवायादिक ही प्रत्यक्ष सिद्ध हैं इस लिये आपका हेतु व्यभिचारी भी है (३) ईश्वरमें सृष्टि कर्तृत्व धर्म नैमित्तिक या स्वाभाविक है यदि नैमित्तिक है तो निमित्त बतलाइये यदि स्वाभाविक है तो स्वभाव अनादि होता है तो आपकी सृष्टि भी अनादि हुई तथाच प्रलय होही नहीं सकती क्योंकि प्रलयकालमें भी तो उसका स्वाभाविक धर्म सृष्टिकर्तृत्व मौजूद है सृष्टि रचनाही रहेगा॥

(४) यदि ईश्वरमें सृष्टिकर्तृत्व धर्म स्वाभाविक मानोगे तो प्रलय कर्तृत्व नहीं बन सका क्योंकि सृष्टिकर्तृत्व और प्रलयकर्तृत्व ये दोनों विरुद्ध धर्म हैं।

(५) ईश्वरके सृष्टिकर्तृत्वका लक्षण क्या परमाणुओंमें गत्युत्पादकत्व है। जैसा कि दर्शनानन्दजी ने मौखिक शास्त्रार्थमें कहा था तो जिस वक्त (सृष्टि-

कालके प्रारंभ) में ईश्वरने परमाणुओं में गति उत्पन्न की थी उसके पहले (प्रलयकालमें) भी ईश्वरमें गत्युत्पादकत्व धर्म था उस समय परमाणुओंमें गति उत्पन्न क्यों नहीं हुई।

(६) तथा ईश्वरने परमाणुओंमें गति उत्पन्न की और उससे सूर्य चन्द्रमादिक उत्पन्न हुये जिस समय वे परमाणु सूर्य चन्द्र आदि रूप हुये तब ईश्वरसे उत्पन्न गतिरूप परिणाम परमाणुओंकी गतिका अवरोध हुआ वह कौनसा पदार्थ है जिसने ईश्वरकी शक्तिका विघात करके ईश्वर कर्तृत्व परमाणुओंकी गतिको रोकदिया।

(७) ईश्वर शुद्ध अखण्ड द्रव्य है और उत्पादक उसका स्वाभाविक धर्म है इसलिये समस्त परमाणु जबसे ईश्वर और परमाणु मौजूद हैं अर्थात् अनादि कालसे एक ही दिशा को निरन्तर दौड़ते रहने चाहिये और ऐसी अवस्थामें उन परमाणुओंमें हमेशा समान अन्तर बना रहेगा और सृष्टिरूप कार्यकी कदापि उत्पत्ति नहीं हो सकेगी एक अखण्ड शुद्ध द्रव्यका स्वाभाविक धर्म भिन्न २ परमाणुओंको भिन्न २ विरुद्ध दिशाओंमें गमन नहीं करा सक्ता क्योंकि एक स्वाभाविक धर्मसे एक कालमें विरुद्ध दो कार्य होना असम्भव है यदि विरुद्ध भिन्न २ दिशाओंमें ईश्वर अपने स्वाभाविक धर्मसे चलाता है तो बतलाइये कि इसमें नियामक कौन है जो किसी परमाणुको उत्तर दिशा में गमन करावे और किसीको दक्षिणमें गमन करावे यदि कहो कि ईश्वर की इच्छासे ऐसा हुआ तो आपके सिद्धान्तानुसार ईश्वरमें इच्छा मानी नहीं गई है।

"पुनःआपने लिखा कि "जबकि कर्ममल पुद्गल द्रव्य है तो उसका अनादि कालसे सम्बन्ध कैसे इत्यादि" महाशय जी ! इसका उत्तर हम कई दफे लिख चुके हैं उसके ऊपर तो आप ऊहापोह करते नहीं हैं पुनः उसीको पिष्ट पेषण करते हुये पूछते चले जाते हो अस्तु हम पुनः उसका उत्तर लिखते हैं हम कर्म मल और जीवका कनकोपलवत् संयोग सम्बन्ध मानते हैं और यह आपकी सृष्टिकी तरह व्यक्त्यपेक्षया सादि और संतत्यपेक्षया अनादि है। जीव भी सूक्ष्म है और कर्म भी सूक्ष्म है सूक्ष्म सूक्ष्मका परस्परमें सम्बन्ध होता है। आगे आपने लिखा कि महर्षि "ईश्वरसिद्धेः" केवल प्रतिज्ञा करते तो आगे हेतु देते इत्यादि, सो आपको सांख्य दर्शनकी मर्मकीअनभिज्ञताका बोधक है सांख्यकारके प्रत्यक्षके लक्षणमें नैयायिकनेअव्याप्ति दोष दिया था उसका निवारण करते हुये हेतुपरक यह सूत्र "ईश्वरासिद्धेः" लिखा है इसलिये इसमें पंचमी विभक्ति है पुनः नैया-

षिकने "ईश्वरासिद्धेः" इस हेतुसे साध्यसमहेत्वाभासका उद्भावन किया और ईश्वरके सिद्ध करनेमें अनुमानादिक प्रमाण दिये जिनका निखंडन सांख्यकारने उत्तर सूत्रों (मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्नतत्सिद्धिः) आदिमें किया है तथा ईश्वरकी असिद्धिको प्रतिज्ञा रूप लिखकर हेतु निदर्शन परकभी पांचवें अध्यायका दशवां "प्रमाणाभावान्नतत्सिद्धिः,, यह सूत्र कहा है। और आपने समाधिसुषुप्तिमोक्षेषुब्रह्मरूपता, इस सूत्रसे ईश्वरकी सिद्धिकी सो, महाशयजी यहां ब्रह्मशब्दका अर्थशुद्ध जीव है अन्यथा पूर्व सूत्रोंसे महान् विरोध उपस्थित होगा

हमारे पूर्व पत्रके कुछ प्रश्नों का उत्तर आपने अभीतक नहीं दिया सो कृपया दीजिये वे प्रश्न ये हैं:—

(१) वैशेषिकने जो चौबीस गुण माने हैं उनमें इच्छा द्वेष तथा सुख और दुःख ये दोनों युग्म परस्पर विरुद्ध हैं और इन चारों ही को जीव का गुण माना है इसलिये बतलाइये कि एक जीवके इच्छा द्वेष और सुख दुःख ये परस्पर विरुद्ध गुण कैसे सिद्ध होते हैं।

(२) गुणोंके औपाधिक, नैमित्तिक स्वरूप, और तटस्थ इन चारों भेदों के माननेमें प्रमाण क्या ? और इन चारोंके लक्षण क्या ! और इन चारों की निष्पत्तिका नियम क्या !

(३) गुण और गुणीका समवाय सम्बन्ध है तो एक द्रव्यका गुण दूसरे द्रव्यमें किस प्रकार आसक्ता है।

(४) सूक्ष्म द्रव्य के गुण जब स्थूल द्रव्यमें आते हैं तो ईश्वरके सुख और ज्ञानगुण पृथ्वीमें क्यों नहीं आजाते।

(५) गुणसे निरपेक्ष द्रव्यका लक्षण क्या है ?

(६) आपने ईश्वर साधक शब्द प्रमाणमें वेद का प्रमाण दिया वहां ईश्वर की सिद्धि वेदाधीन और वेदकी सिद्धि ईश्वराधीन यह अन्योन्याश्रय है इसका कारण क्या ?

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

ओ३म्

(क) नं० ५ का उत्तर आर्यसमाज अजमेर।

ता० २५। ९। १२

श्रीमान् महाशय जी, नमस्ते !

आवरण दोष हमेशा द्रव्यका होता है, जो उसको सामान्यसे भिन्न करके विशेष बनाया करता है। दोनों अर्थ शास्त्रोंके आधारसे हैं। अब सर्वज्ञ शब्दका यौगिक अर्थ लेते हैं तो सर्व पदार्थोंको एक कालमें जानने वाला सर्वज्ञ कहाता है। और उपचारसे जो सर्व पदार्थोंके जाननेमें समर्थ हो उसको भी कहते हैं। एक कालमें सर्व पदार्थोंको जानने वाला सर्व व्यापक ही हो सकता है। किसी एक देशी पदार्थमें अनन्त गुण हो ही नहीं सकते। और चारित्र सर्वज्ञ जिस पदार्थसे सम्बन्ध करता है उसको जानता है एक कालमें नहीं। और ईश्वरके ज्ञान गुणको अन्तर्भूत होनेसे सुषुप्ति, समाधि और मुक्ति में प्रतीत करनेसे उसका ज्ञाता कहलाता है। गुणोंसे अतिरिक्त द्रव्य क्या वस्तु है। सो महाशय जी! गुण चार प्रकारके हैं। स्वाभाविक, नैमित्तिक, औपाधिक, और पाकज स्वाभाविक गुण तो स्वरूप कहलाते हैं, औपाधिक नैमित्तिक और पाकज गुणोंके नाश होने पर भी द्रव्य बना रहता है। द्रव्य गुणों की समष्टिका नाम है और गुण व्यष्टिका। द्रव्यमें गुण रहते हैं। गुणमें न द्रव्य रहते और न गुण। इसकी पूरी व्याख्या वैशेषिक दर्शनमें देख सकते हैं। द्रव्यका लक्षण ही यह है "क्रिया गुणवत् समवायि कारणं द्रव्य लक्षणम्" गौतमका न्याय दर्शन "सिक्स फिलास्फी आफ इण्डिया" के अन्दर होने से पादरी स्काट जैसे अन्य धर्मावलम्बी विद्वान भी मानते हैं। ऋषि शब्द वेद मन्त्रोंके अर्थोंके द्रष्टाके लिये प्रयोग होता है। आपके 'माणिकनन्दी' ने किन वेद मंत्रोंको देखा? जैन समाजका माणिकनन्दी सूत्र किस मतावलम्बीने स्वीकार किया?

महर्षि शब्द वेद मन्त्रार्थ द्रष्टाओंके लिये तो नियत है ही किसी मतके मान्यको महर्षि नहीं कह सकते। ऐसे तो सबको अधिकार है कि जैसे पञ्जाब देशमें नाईको राजा ऐसे ही अपने मान्य पुरुषोंका नाम महर्षि रखदें। ऋषियोंका न्याय कल्पित नहीं तात्विक हैं। आप जरा न्यायका लक्षण कीजिये। और फिर अपने उसमें घटाइये।

आपने जो लिखा "साधन व्युत्पत्तिसे निश्चय ज्ञान शब्दका वाच्य प्रमाण है और भाव साधन व्युत्पत्तिसे लब्ध ज्ञान शब्दका वाच्य प्रमिति है इस नियमका नियामक क्या है? अज्ञानकी निवृत्तिमें कारण भूत पदार्थ जो होगा, वह अज्ञानका विरोधी होगा। क्या जिस शब्दसे किसी वस्तुके मिथ्या होनेका बोध होता है, वह शब्द मिथ्याका विरोधी है।

इन्द्रिय अर्थका सन्निकर्ष जड़ नहीं तो चेतन है? प्रथम तो आपके शा-स्त्रोंने एक ही चेतनको माना था, अब दूसरा चेतन भी आगया। व्याप्ति ज्ञानको अनुमान माना है या व्याप्तिको अनुमानका साधन माना है। पंचावयवमें से उपनयन व्याप्ति एक अवयव है, न कि अनुमान। प्रमाताके गुणको प्रमाण कहना बहुत बड़ी भूल है। क्या पद ज्ञान शब्द प्रमाण कहलाता है, या आप्तोपदेश। प्रमाता और प्रमाणके एक होनेसे आत्माश्रय दोष नहीं दिया गया, किन्तु प्रमाता और प्रमेयके होनेसे। जीवात्मा प्रमाता मानसिक प्रत्यक्ष प्रमाण, जीवात्मा प्रमेय-यहां प्रमाता और प्रमेय दोनों एक हैं। ईश्वरके ज्ञान स्वरूप होनेसे वह ज्ञान कभी होता नहीं जो आत्माश्रय दोषमें आजावे, किन्तु स्वतः सिद्ध है। जो अपनेको प्रमाणसे जानता है, वह प्रमाता कहलाता है।

जब ईश्वर अपने स्वरूपको किसी प्रमाणसे जानता ही नहीं तो न वह प्रमेय है और न प्रमाता फिर आत्माश्रय दोष कहां है? यदि अपनेको किसी प्रमाणसे जानता तो आत्माश्रय दोष होता।

जो लक्षण आपने स्मृतिका किया है वह प्रत्यभिज्ञामें अतिव्याप्त है। वैशेषिक दर्शनने जो चौबिस गुण माने हैं उनमें सुख दुःखको जीवात्माका स्वाभाविक गुण नहीं माना। क्योंकि विरुद्ध द्वय धर्म किसी वस्तुके स्वाभाविक गुण नहीं होते। जिस प्रकार इच्छा और द्वेष, सुख और दुःख, व्याघातिक है वो एक वस्तुके स्वाभाविक गुण नहीं हो सकते हैं। जिस क्षणमें सुख होगा उस क्षणमें दुःखी नहीं कहला सकता, यदि जीवका स्वाभाविक गुण सुख होता तो किसी समय अप्राप्त नहीं होता। जैसे अग्निमें उष्णता कभी भी अप्राप्त नहीं। इस दूसरे सूत्रने साफ बतलाया है, दुःख और दोष मिथ्या ज्ञानकी सन्तान हैं, जीवको स्वाभाविक सुखी मानकर न तो सुखको इच्छा हो सकती है, न दुख आ सकता है। स्वाभाविककी उत्पत्ति होती नहीं, परन्तु यहां उत्पत्तिका अर्थ व्यक्तता है। क्योंकि यदि उत्पत्ति मानते तो कारणके विलक्षणसे विलक्षण अवश्य होता। जैसे नित्य पदार्थोंको अपने आप स्वजा कहते हैं। यदि आप पीले और कालेको जो आलोके कपड़े हों तो साफ हरा प्रतीत होगा, तो वहां पर बाध्य बाधक भाव होता है। दीपक सावयव पदार्थ हैं, जितना अवकाश एक दीपकके प्रकाशमें प्रकाशके परमाणुओंके मध्य में रहता है, उसमें दूसरे दीपकके प्रकाशके परमाणु आते हैं। कर्म पुद्गल द्रव्य

है, जो कभी भी अवकाश के बिना नहीं रह सकता। यदि किसी प्रमाण से ये सिद्ध करदें कि पुद्गल जगह नहीं घेरता, तो भी जिस जगह आत्मा है, जो शरीर के बराबर स्थूल है। कर्म उससे छोटा होने से उसके आधार तो आ-जाय परन्तु गुण गुणी में जहां अवकाश का नाम भी नहीं वहां कैसे स्थित हो। कर्म और आत्मा दोनों के एक क्षेत्र अवगाह होने में भी गुण गुणी के दरम्यानमें आना किस तरह संभव है। गुणका विकार किस तरह हो सकता है जब कि गुण में अवयव ही नहीं।

हल्दी और चूने का जो दृष्टान्त आप दे चुके हैं, उसमें गुण गुणीके दर-म्यान में उपाधि आने का प्रमाण कहां है! दृष्टान्त के विषम होने से सिद्धा-न्त गिरजाता है। जब पीले रंग को देखने में श्वेत बाधक हुआ, और श्वेत को देखने में पीला तो दोनों से भिन्न रंग का प्रतीत होना अवश्य है।

जैसे दो बराबर शक्ति वाले मल्ल जब युद्ध करते हैं, या दो अभावोंसे भाव होजाता है, ऐसे ही मल्लों के युद्ध से शक्ति का अभाव हो जाता है। हल्दी का रंग चूने के रंग के प्रतीत होने में बाधक है, और हल्दी के रंग को प्र-तीत करने में चूनेका रंग बाधक है। इस वास्ते दोनोंसे भिन्न और दोनों से मिलता हुआ रक्त वर्ण प्रतीत होता है। क्या बाध्य बाधक भाव विरोधी हैं। जैसे बहते हुए पानी के आगे बन्ध बांधने से पानी रुकजाता है, पर-न्तु पानी और बन्ध दोनो विरोधी नहीं, व्याघातिक नाशक हुआ करता है बाध्य नहीं। हल्दी में पीलापन गुण है और चूने में श्वेतपन परन्तु एक साथ देखनेमें दोनों से भिन्न प्रतीत होता है। हरे आममें काला और पीला दोनों के मिलाप से पैदा होने वाला हरा रंग दीखता है, परन्तु जब अग्नि के सम्बन्ध से काला रंग दूर हो जाता है तो केवल पीला रंग प्रतीत होने ल-गता है। गुण किसी अवस्था में हो तो भी गुणी है, ये पुद्गल द्रव्य की अ-वस्था में पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, हैं या भिन्न २? क्या कभी अग्नि का पर-माणु जलका परमाणु हो जाता है? या पृथ्वी का परमाणु अग्नि का पर-माणु बन जाता है? यदि ऐसा है तो परमाणुसे सिद्ध कीजिये। यदि ऐसा नहीं तो चारों अलग २ हैं, उनको एक दूसरेकी अवस्था कहना भ्रान्ति है।

अब पुद्गलकी कर्म रूप पर्याय होती है इस प्रतिज्ञामें हेतु उदाहरण नहीं दिया, इसको किस प्रमाण से सिद्ध करते हैं? कर्ममें गुणोंकी अवस्था विशेषसे जीवके ज्ञानादि गुणोंको विकृत करनेकी शक्ति है, ये भी साध्यही है।

कोई समय में कर्म के परमाणु पृथिव्यादिक रूप होजाते हैं, और पृथिव्यादिक कर्म रूप होजाते हैं, ये तीसरा साध्य है। आपने जिस पुस्तकका नाम लिया है वो उभय पक्ष मान्य है इसमें क्या प्रमाण ? यदि मान्य नहीं तो चौथा साध्य है।

वादी प्रतिवादी की बुद्धिके साम्य प्रदर्शन प्रदेशका जो आपने दृष्टान्त कहा ये ठीक नहीं। क्योंकि वादी प्रतिवादीकी बुद्धि यदि एक होजाय तो विवाद ही कहां रहे। महर्षि गौतमने "लौकिक परीक्षकानां यस्मिन् बुद्धि साम्यं स दृष्टान्तः,, ये लक्षण जो किया है वो तो समीचीन है, परन्तु आपका किया हुआ लक्षण दूषित है।

कर्म बंधनका हेतु है वो व्यक्तिकी अपेक्षा से है, या प्रवाहकी अपेक्षासे? परमात्माके गुण आनन्दादि परमात्माके जीवमें होने से नैमित्तिक प्रतीत होते हैं, परन्तु प्रकृतिके गुण मन तक रहते हैं। इसलिये सुषुप्ति अवस्थामें जब जीवका मनसे सम्बन्ध नहीं होता तो प्रतीत नहीं होते। यदि प्रकृति से जीव सूक्ष्म न होता तो सुषुप्ति अवस्थामें भी मनके बिना जीवमें दुःख पाया जाता। जीवात्मा विभु है, यह इस सूत्रका भाव नहीं। वैशेषिककार जीवात्मा परमात्मा दोनोंको आत्मा शब्दसे लेते हैं। परमात्मा स्वरूपसे विभु है, और जीवात्मा जातिसे, इस वास्ते जीवात्मा परमात्मासे स्थूल और प्रकृति उससे स्थूल है। लक्षणोंमें किसी शास्त्रका आधार मांगना न्याय विरुद्ध है। अतिव्याप्ति और असंभव दोषसे ये ग्रस्त हैं, ये आपकी प्रतिज्ञा है। इस प्रतिज्ञा के लिये किसमें अतिव्याप्ति है, और किस प्रकार असंभव है, ये आपने दिखलाया नहीं। जिससे खाली सूखी प्रतिज्ञा करके अपने निर्बलपक्षको सिद्ध करना चाहते हैं। स्थूल सूक्ष्मका द्रव्य है। द्रव्य तो स्थूल सूक्ष्म नहीं बल्कि (क्रिया गुणवत समवायि कारणमिति द्रव्य लक्षणम्) किनी द्रव्यों का क्रिया से, किनीका गुणोंसे, किनीका समवायि कारण होनेसे स्थूल द्रव्य में सूक्ष्म द्रव्य चला जाता है। और उसके गुणों की प्रतीति है। जैसे पानी को गर्म कहते हैं, यदि पानीमें अग्नि दाखिल न हो तो पानी गर्म कैसे कहलाय ? यदि पानीमें आग दाखिल न होकर पानीको गर्म करती है तो असंभव कैसे ? सुख रहित जीवमें ईश्वरके दाखिल होनेसे अन्तर्मुख जीव को सुखका ज्ञान होता है। पृथिवीमें ज्ञान और सुखको ग्रहण करने की योग्यता

ही नहीं, जिसके आंख हो उसको तो सूर्य्य दिखला सकता है, क्या सूर्यके प्रकाशसे अन्धेको आप दिखला सकते हैं? जिसमें योग्यता है उसमें वाह्यगुण आया करते हैं, जिसमें योग्यता नहीं उसमें नहीं।

जीव अल्पज्ञतासे मनमें आत्माध्यास रखता हुआ मनके धर्मको अपना मान लेता है। जैसे किसीका मकान जलजाय तो वो मकानको अपना मानता हुआ कहता है, मेरा सत्यानाश होगया। यथार्थमें मकानके जलने से उसका कुछ नहीं बिगड़ा, इसीलिये महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शनमें कहा था "वृत्ति सारूप्यं इतरत्र,, समाधि अवस्थाको छोड़कर जिस प्रकारकी मनकी वृत्ति होती है, ऐसा ही जीवात्मा अपने आपको मानता है, यदि मन चंचल है तो जीवात्मा चंचल है, यदि मन स्थिर है तो जीवात्मा स्थिर है, यदि मन सुखी है तो जीवात्मा सुखी है, यदि मन दुखी है तो जीवात्मा दुखी है। वैशेषिक शास्त्रमें जो जीवात्मा के गुण बतलाये हैं, वो शरीर सहित आत्मा के हैं खाली आत्माके नहीं। वैशेषिक ने कहां लिखा है कि ये जीवके स्वाभाविक गुण हैं। यदि जीव के स्वाभाविक गुण होते तो सुषुप्ति अवस्था में दुःख और निमेष उन्मेष अवश्य होते। परन्तु देह और मनमें अध्यास होनेसे न कि अभ्यास होने से, जीव अपनेको दुःखी मानता है। मानना और होना दो भिन्न २ बातें हैं। प्रत्येक मूर्ख गर्भ में फंसकर अपनेको विद्वान् मानता है परन्तु होता नहीं। और शब्द अध्यास है अभ्यास नहीं। जब ईश्वर जीवमें सूक्ष्म होनेसे प्रविष्ट है तो उसके गुण साथ ही होंगे, नितान्त असम्भव कैसे? जीव जब अन्तर्मुख होगा तो अन्दर रहने वाले ईश्वरके गुण सुखको प्रतीत करेगा। जब वाह्य मुख होगा तो इन्द्रिय मनसे पैदा होने वाले दुःखको प्रतीत करेगा। जगत्, ईश्वर, जीव और प्रकृति के समुदायका नाम नहीं किन्तु प्रकृतिकी विकृत अवस्थाका नाम है। ईश्वरमें स्वाभाविक क्रिया है जो उसकी न्याय और दयाके अनुरोध से संयोग वियोगरूप या सृष्टि प्रलयरूप प्रतीत होती है। न्यायसे स्थूल सूक्ष्म शरीर इन्द्रियें जागृत स्वप्नावस्था और सृष्टि होती है, और दयासे सूर्य चन्द्रादि लोक सुषुप्ति अवस्था और प्रलय होती है। ईश्वरमें कर्तृत्व स्वाभाविक है, जो न्याय और दयाके अनुरोधसे प्रलय करना और सृष्टि करना कहलाता है। ईश्वर संयोगोन्मुख शक्तिसे क्रिया देकर परमाणुमें संयोग और वियोगोन्मुख

शक्तिसे वियोग होता है। ईश्वर की शक्तिका विघातक कोई दूसरा द्रव्य नहीं बल्कि ईश्वरकी शक्तिसे उसके गुणोंके अनुसार संयोग और वियोग होते हैं। परमाणु एक क्षण भी गति शून्य नहीं रहते। (ईश्वरका लक्षण सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार है,) केवल उत्पन्न करना नहीं। यदि बाहर से गति दे तो परमाणु एक तर्फ जा सक्ते हैं और उनमें अन्तर बना रहता है। परन्तु सब परमाणु ईश्वर के सर्वव्यापक होनेसे परमाणु उसके अन्दर हैं। इसलिये चारों तरफसे क्रिया मिलती है। क्या सोने और पत्थरका संयोगसम्बन्ध अनादि है? अनादि तो केवल समवायसम्बन्ध होता है, जहां २ संयोग सम्बन्ध है सब सादि है, जीव भी सूक्ष्म और कर्म भी सूक्ष्म ये कहना ठीक नहीं। क्योंकि जीव, चेतन, और कर्मजड़ पुद्गलका विकार है। सांख्यदर्शन को पढ़नेसे तो सांख्यकार ईश्वरको मानने वाले ही मालूम होते हैं। जैसे लिखा है "विद्यायाः अनित्यत्वे ब्रह्मवादप्रसङ्गः" पांचवें अध्यायका दशवां सूत्र प्रमाणाभावसे मङ्गलाचरणसे कार्यसिद्धिका निषेध करता है, न कि ईश्वरका।

आपके पुराने प्रश्नों के सब उत्तर दिये जा चुके हैं, वैशेषिककारने कहां लिखा है कि जीवके गुण स्वाभाविक हैं गुणोंके भेद वैशेषिकदर्शन प्रशस्तपाद भाष्यमें देखिये, जिस स्थल द्रव्यमें सूक्ष्म द्रव्य आयगा साथ ही उसका गुण भी आयगा॥

पृथिवीके अन्दर ईश्वरके होनेसे उसका गुण ज्ञान और सुख है परन्तु पृथिवीमें जड़ होनेसे इनको जाननेकी शक्ति नहीं। जैसे नेत्र वाला सूर्य को देखता है, अन्धा नहीं। वेद ईश्वरका सिद्ध करने वाला ऐसा ही है जैसे पुत्र को देखनेसे उसके पिताका अनुमान होता है। कार्यको देखनेसे कारणका, इसमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं। ईश्वर वेदका जनक है वो वेद ईश्वर साधक है अन्योन्याश्रय दोष कहां है? यदि दोनों में जन्य जनक भाव या साध्य साधक भाव होता तो अन्योन्याश्रय दोष आता जब भाव दोनों पृथक २ हैं तो अन्योन्याश्रय दोष कहां? भवदीय—मन्त्री रामचन्द्र

—*—

श्री जैनतत्व प्रकाशिनी सभा

(क) पत्र नं० ६ इटावा। ता० १० । १० । १२

महाशय जी जुहारु के अनन्तर निवेदन है कि अबकी बार तो आपने साहस की सीमा को उल्लङ्घन कर दिया है "पूछे खेतकी बताते खलियान

को" इस उक्ति को चरितार्थ किया है। हम यहां साथ २ पाठकों से भी नि-वेदन करते हैं कि आज हमारे (क) विभाग नम्बर ५ को और आर्यसमाज की तरफ से दिये हुए उनके उत्तर को साथ २ रखकर लावें जिससे आपको मालूम हो जायगा कि समाजी महाशय अब कैसी बेतुकी हांकने लगे हैं उनकी इस टालवाजी को रोकनेके लिये अब हम अपने प्रश्नोंको नम्बरवार लिखते हैं और समाजी महाशय से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे प्रश्नों का उत्तर भी नम्बरवार देवें कि जिससे पबलिक धोके में न पड़े नम्बरवार प्रश्नावलीका पत्र इस पत्रके साथ नत्थी है ॥

पुनः आपने लिखा कि सर्वज्ञ शब्द के दोनों अर्थ शास्त्र के आधार से हैं परन्तु यह नहीं लिखा कि कौनसे शास्त्रके आधारसे है इस लिये प्रश्न नम्बर ३४-फिर भी खड़ा है।

आपका यह लिखना कि "औपचारिक सर्वज्ञ जिस पदार्थसे सम्बन्ध क-रता है उसीको जानता एक कालमें नहीं" नितान्त असम्भव है क्योंकि मल विक्षेपादिसे सहित मन है जिनका वे भी जिस पदार्थसे सम्बन्ध होता उसी को जानते हैं इस लिये सम्पूर्ण जीव औपचारिक सर्वज्ञ ठहरेंगे।

आपने द्रव्यका लक्षण "क्रिया गुणवत् समवाय कारणं द्रव्य लक्षणम्" यह द्रव्यका लक्षण किया है सो इस लक्षण को आकाश और ईश्वरमें अव्या-प्ति है क्योंकि उक्त दोनों पदार्थ क्रिया रहित हैं और द्रव्य के लक्षण में गुण पद पड़ा है और गुणके लक्षणमें द्रव्य पद पड़ा हुआ है तो द्रव्यका ज्ञान विना गुणके नहीं हो सकता इस लिये परस्पर अन्योन्याश्रय दोष आयगा ॥

पुनः आपने लिखा कि ऋषि शब्द या वेद मन्त्रोंके द्रष्टाके अर्थमें प्रयोग होता है सो यह लिखना आपका नितान्त असङ्गत है ऋषि शब्द "ऋषिगतौ„ धातुसे बना है सो इसके अनुसार ऋषि शब्दका अर्थ ज्ञाता होता है इस लिये जैन सिद्धान्तके ज्ञाताको भी ऋषि कहते हैं माणिक्य नन्दि महर्षिने अनेक जैन सिद्धान्तके रहस्योंको जाना है इस लिये वे महर्षि ही हैं माणि-क्यनन्दि सूत्रको वैष्णव मतके प्रधान आचार्य पात्रकेशरी ने भी माना है। महर्षि शब्द जैन सिद्धान्त के ज्ञाता के लिये तो नियत है ही परन्तु किसी अन्यमतके मान्यको महर्षि नहीं कह सकते।

पुनः आपने लिखा कि कारण साधन ज्ञान शब्द प्रमाण और भाव सा-

धन ज्ञान शब्द् प्रमिति इस नियमका नियामक क्या है ? सो महाशय जी ! लक्ष्य और लक्षण में सामान्याधिकरण हुआ करता है । प्रमाण प्रमिति के करण को कहते हैं।

इस लिये प्रमाण शब्द् करण साधन रूप है इसी हेतुसे प्रमाणका लक्षण जो ज्ञान है वह भी करण साधन रूप होगा । प्रमिति शब्द् भाव साधन रूप है और अज्ञानकी निवृत्तिको प्रमिति कहते हैं और अज्ञानकी निवृति ज्ञानात्मक है इस लिये प्रमितिका लक्षण रूप ज्ञान भाव साधन रूपही पड़ेगा।

पुनः आपने लिखा कि अज्ञानकी निवृत्तिमें कारण भूत जो पदार्थ होगा वह अज्ञान विरोधी होगा सो क्या जिस शब्द्से किसी वस्तुके मिथ्या होने का बोध होता है॥वह शब्द् मिथ्याका विरोधी है ? सो महाशय जी ! अज्ञानकी निवृति करने वाला तो अज्ञानका विरोधी ही होगा इसमें शक नहीं परन्तु जिस शब्द्से किसी वस्तुके मिथ्या होने का बोध होता है वह शब्द् मिथ्याका विरोधी कैसे हो सकता है वह तो सत्यका विरोधी होगा ।

पुनः आपने लिखा कि इन्द्रिय अर्थका सन्निकर्ष जड़ नहीं तो चेतन है ? प्रथम तो आपके शास्त्रोंने एक ही चेतन माना था अब क्या दूसरा भी चेतन होगया ? सो महाशय जी मालूम होता है कि आप हमारे पत्रोंको ध्यान से बांचते भी नहीं क्रिया कारक सम्बन्ध भी नहीं मिलाते क्या दिग्दर्शन मात्रसे ही उत्तर लिख मारते हो । हमने लिखा था कि-अज्ञानका विरोधी ज्ञान ही है इन्द्रिय सन्निकर्ष आदिक जड़ पदार्थ नहीं हैं॥

सो महाशय जी ! इसका यह अर्थ है कि इन्द्रिय सन्निकर्ष आदिक जड़ पदार्थ अज्ञानके विरोधी नहीं हैं किन्तु ज्ञान ही अज्ञानका विरोधी है। पुनः आपने लिखा कि व्याप्ति ज्ञानको अनुमान माना है या व्याप्तिको अनुमान का साधन माना है सो महाशय आपके लिखनेसे मालूम पड़ता है कि आप ने अभी कारिकावली भी नहीं देखी है क्योंकि अनुमान खण्डकी ६६ वीं कारिका में लिखा है "करणंव्याप्तिधीर्भवेत्"

पुनः आपने लिखा कि "यह ज्ञान शब्दप्रमाण कहलाता है या आप्तोप देश" सो महाशय जी जरा कारकावली को देखिये कि शब्द्खण्ड की ८१ वीं कारिका में क्या लक्षण किया है "पदज्ञानंतु करणम्" पुनः आपने लिखाकि

प्रमाता और प्रमाण के एक होने में आत्माश्रयदोष नहीं दिया गया किन्तु प्रमाता और प्रमेय के एक होने में" सो महाशय जी हमारे पत्रों को कृपाकर ध्यान पूर्वक पढ़िये हमने प्रमाता प्रमाण प्रमेय तीनोंको एक होने से आत्माश्रय दोष दिया है अर्थात् ईश्वर ज्ञाता है इसलिए प्रमाता है और ईश्वर अपने ज्ञानरूप प्रमाण से अपने स्वरूपप्रमेय को जानता है इसलिये वही प्रमाण और प्रमेय भी हुआ अतः आत्माश्रय दोष हुआ।

पुनः आपने लिखा कि "स्मृति का लक्षण प्रतिभिज्ञा में अतिव्याप्त है" सो भी आपका भ्रम है क्योंकि "प्रागनुभूत वस्तुविषया तत्तोल्लेखिज्ञानं स्मृतिः" यह तो स्मृति का लक्षण है "अनुभव स्मृति हेतुकं सङ्कलनात्मकं ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानम्" यह प्रत्यभिज्ञान का लक्षण है इस लिये स्मृति और प्रत्यभिज्ञानमें कार्य कारणका भेद है अतः स्मृतिके लक्षणमें अतिव्याप्त दोष नहीं है।

पुनः आपने लिखा कि "वैशेषिक दर्शनने जो चौबीस गुण माने हैं उनमें सुख दुःख को जीवात्माका स्वाभाविक गुण नहीं माना क्योंकि विरुद्ध धर्मद्वय किसी वस्तु के स्वाभाविक नहीं हो सकते इत्यादि,, उत्तर में निवेदन है कि महाशय जी ? जब कि गुण और द्रव्य का समवाय सम्बन्ध माना है और समवाय सम्बन्धको नित्यसम्बन्ध कहते हो तो बड़े आश्चर्यकी बात है कि गुण अनित्य कैसे हुए ? या तो सुखदुःख इच्छा द्वेष को गुणोंके पाठमें से पृथक् निकाल दीजिये या गुण गुणीका नित्य सम्बन्ध नहीं मानिये प्रत्यक्ष विरोध दोष आता है उसे आप कुछ भी ख्याल नहीं करते। अफशोस ? अफशोस ?? अफशोस ???

दूसरे सूत्र का जो आप अर्थ करते हैं कि दुःख और द्वेष ज्ञानकी सन्तान है सो महाशय जी सन्तान अर्थ यह किस पदका है ? दूसरे सूत्र का अर्थ हम पहले पत्रमें लिख ही चुके हैं॥

हम पहिले कई बार लिख चुके हैं कि सुख जीवका स्वाभाविक गुण है कर्मके निमित्तसे उस सुख गुणकी विकृत पर्याय हो रही है उस वैभाविक पर्यायको ही दुःख कहते हैं इस वैभाविक पर्यायकी अवस्थामें सुख गुणकी स्वाभाविक पर्याय अनुपलब्ध है इस लिये अनुपलब्ध इष्टकी इच्छा होती है।

आपका यह लिखना कि जितना अवकाश एक दीपकके प्रकाशके परमाणुओंके मध्यमें रहता है उसमें दूसरे दीपकके प्रकाशके परमाणु आते हैं।

सो आपकी यह समझ बिलकुल भूल भरी है क्योंकि एक कमरे में १०० दीपकोंका प्रकाश समा सकता है उस कमरेमें जब तक सिर्फ एक दीपकका प्रकाश आया है तो उस कमरेके शतांशमें तो प्रकाश और निन्यानवें भागोंमें प्रकाशाभाव अर्थात् अन्धकार होना चाहिये तो जिस इन्द्रियसे प्रकाशके सद्भाव को ग्रहण करता है उसी इन्द्रियसे निन्यानवें भाग प्रकाशाभाव रूप अन्धकारको भी ग्रहण करेगा यह प्रत्यक्ष बाधित है क्योंकि एक कमरेमें जिस प्रकाशको यह जीव ग्रहण करता है उसके निन्यानवें गुणे प्रकाशाभावको ग्रहण न करे यह नितान्त असंभव है। इसही प्रकार एक ही क्षेत्रमें बिलकुल अवकाश न होने पर भी आत्मा और कर्म यह दोनों द्रव्य युगपत् बन्धको प्राप्त होते हैं॥

विकार शब्दका अर्थ अवस्थासे अवस्थान्तर होता है एक ही वर्ण गुण हरित अवस्थासे पीत अवस्था रूप होता है इस लिए गुण में विकार होता है और इस विकारको ही पर्याय कहते हैं॥

जब हम अपने सिद्धान्तका निरूपण करते हैं तब जो विकार शब्दका लक्षण हमारे सिद्धान्त में माना है उसमें दोष दिखाना चाहिये परन्तु अपने सिद्धान्त निरूपित लक्षणको मानकर हमारे सिद्धान्त निरूपित लक्षणमें दोष देना छल है, हल्दी और चूनेके दृष्टान्तमें आपको कई वार लिख चुके हैं और फिर भी लिखा जाता है कि यह दृष्टान्त विषम नहीं है दार्ष्टान्तके सर्व धर्म दृष्टान्तमें नहीं मिलते अन्यथा वह भी दार्ष्टान्त ही हो जाय फिर दोनोंमें भेद ही न रहेगा। जिस प्रकार हल्दी और चूना दो द्रव्य हैं उसी प्रकार जीव और कर्म भी दो द्रव्य हैं जिस प्रकार हल्दी और चूनेके गुणोंकी संक्रान्ति होतीहै उसी प्रकार आत्मा और कर्मके भी गुणोंकी संक्रान्ति होती है हल्दी चूनेके दृष्टान्तमें आपका यह लिखना कि हल्दीका पीला और चूनेका सफेद रंग परस्पर दोनों ही बाधक हैं सो यह आपका भ्रम है क्योंकि पीलारंग श्वेतका बाधक और श्वेत रंग पीलेका बाधक होनेसे परस्पर अन्योन्याश्रय दोष आता है तथा एक ही पीला गुण एक ही सफेद गुणका बाध्य और बाधक होने से विरोध दोष आता है। आपका यह लिखना कि "जैसे बहते हुए पानीके आगे बंध बाधनेसे पानी रुक जाता है परन्तु पानी और बंध विरोधी नहीं है" यह आपकी अनभिज्ञता का सूचक है बंध पानीका विरोधी नहीं किन्तु पानीकी गतिका विरोधी है इस लिए बंध और गति परस्पर विरोधी हैं॥

आपका यह लिखना कि "हरे आममें काला और पीला दोनोंके मिलापसे पैदा होने वाला हरा रंग दीखता है" आपके इस वाक्यको बांचकर आपकी बुद्धिमत्ता पर हंसी आती है हे महाशय जी हरे आममें काला और पीला किस समय था कि जिसके मेलसे यह हरा रंग पैदा हुआ पीला रंग तो उसकी जब पक्व अवस्था होगी तब आवेगा महात्मा जी वर्ण गुण है और उसकी काली पीली हरी आदि स्वतन्त्र अवस्थायें हैं किसीके मेलसे कोई उत्पन्न नहीं होतीं ॥

पुनः आप लिखते हैं "कि पुद्गल द्रव्यकी अवस्थायें पृथ्वी अप् तेज वायु हैं या भिन्न भिन्न क्या कभी अग्निका परिमाणु जलका परमाणु हो जाता है और पृथ्वीका परमाणु अग्निका परमाणु बन जाता है यदि ऐसा है तो परमाणुसे सिद्ध कीजिये और यदि ऐसा नहीं तो चारों अलग २ हैं उनको एक कहना भ्रांति है" सो महाशय जी ? भ्रांति हमारी नहीं किन्तु आपकी है क्योंकि दियासिलाई में गन्धकरूप पृथ्वी घिसनेसे अग्नि रूप हो जाती है सीपमें जल बिन्दु मुक्ता रूप पृथ्वी हो जाता है यदि कहो कि गन्धकमें अग्निके परमाणु पहले से ही मौजूद थे सो भी कहना अयुक्त है क्योंकि अग्निका लक्षण है "उष्णस्पर्शवत्वं" सो यदि उष्णस्पर्श गन्धकमें होता तो हाथ लगाने पर हाथ जलजाता ।

पुनः आपने लिखा कि "पुद्गल द्रव्यकी कर्म रूप पर्याय होती है इस प्रतिज्ञामें हेतु उदाहरण नहीं दिया सो इसको किस प्रमाण से सिद्ध करते हैं„ महाशय जी ! यह अनुमान प्रमाणसे सिद्ध होता है कर्म पुद्गल पर्याय हैं क्योंकि मूर्त है जो २ मूर्त होता है सो २ पुद्गल पर्याय होता है जैसे घटपटादिक ॥

पुनः आपने लिखा कि "कर्ममें जीवके गुणोंके घातने की शक्ति है सो यह किस प्रमाणसे सिद्ध होता है,, सो महाशय जी यह भी अनुमान प्रमाण से सिद्ध होता है-जीवके गुणोंमें विकार कर्म कृत है क्योंकि क्रोधादिकी अन्यथानुपपत्ति होती है जिसकी जिसके विना अनुपपत्ति होती है वह तत्कृत होता है जैसे जलमें उष्णता अग्निकृत है ॥

पुनः आपने लिखा कि "कर्म पृथिव्यादि रूप हो जाते हैं और पृथिव्यादि कर्म रूप हो जाते हैं सो इसमें प्रमाण क्या ?" सो इसमें भी अनुमान प्रमाण है कर्म और पृथिवी दोनों एक दूसरे रूप परिणमन करते हैं क्योंकि

एक द्रव्यकी पर्याय हैं जो २ एक द्रव्यकी पर्याय होती है वे परस्पर एक दू-सरे रूप परिणमन करते हैं जैसे मेघसे जल और जलसे मेघ।

पुनः आपने लिखा कि "आपने जिस पुस्तकका नाम लिया है वह उभय पक्ष मान्य है इसमें क्या प्रमाण है ?„ उत्तरमें निवेदन है कि आपने ईश्वरके सद्भावमें वेदका प्रमाण दिया तथा मानस प्रत्यक्ष आदिकमें गौतम सांख्य द-र्शन आदिका प्रमाण देते आए हैं सो महाशय जी ? ये ग्रन्थ भी उभयपक्ष मान्य नहीं है इस लिये आगेसे ग्रन्थोंका प्रमाण न आप दीजिये और न हम देंगे केवल युक्तिवादसे शास्त्रार्थको चलने दीजिये॥

पुनः आपने लिखा कि "वादी प्रतिवादीकी बुद्धिके साम्य प्रदर्शन प्रदे-शको जो आपने दृष्टान्त कहा सो ठीक नहीं क्योंकि वादी प्रतिवादी की बुद्धि यदि एक हो जाय तो विवाद ही क्यों करैं महर्षि गौतमने लौकिक परीक्ष-काणां यस्मिन् बुद्धि साम्यं यह लक्षण जो किया है वह तो समीचीन है परन्तु आ-पका किया हुआ दूषित है" सो महाशय जी ! हमारे लक्षणमें अव्याप्ति अतिव्या-प्ति तथा असंभव इन तीनों दोषों से किसीके दिखाये बिना दूषित कहना प्रयास मात्र है क्योंकि दृष्टान्तमें वादी और प्रतिवादीको विवाद नहीं हुआ करता दृष्टान्त उभयपक्ष मान्य हुआ करता है यदि उभयपक्ष मान्य न हो तो वह भी साध्य कोटिमें आजायगा। आपके गौतम कृत उपर्युक्त लक्षणका भी यही अर्थ है। मालूम होता है कि आपने अभी तक गौतम सूत्रका भी अर्थ नहीं समझा है।

पुनः आपने लिखा कि "कर्म बन्धनका हेतु है वह व्यक्तिकी अपेक्षासे है अथवा प्रवाहकी अपेक्षा से है,, सो महाशयजी उत्तरमें निवेदन है कि कर्म बन्धन का हेतु रागादिक व्यक्तिकी अपेक्षा सादि और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है॥

पुनः आपने लिखा कि "जीवात्मा विभु है यह सूत्रका भाव नहीं वैशे-षिककार जीवात्मा परमात्मा दोनोंको आत्मा शब्दसे लेते हैं परमात्मा स्वरूप से विभु है और जीवात्मा जातिसे। इस वास्ते जीवात्मा परमात्मासे स्थूल और प्रकृति उससे स्थूल है॥ सो महाशयजी ! पूर्व पत्रमें जो हमने सूत्र लिखा था उससे सामान्य आत्मा विभु सिद्ध होता है और सामान्य आत्मा अपने जीवात्मा और परमात्मा दोनों में व्याप्त है इसलिये जीवात्मा भी विभु है और यदि जीवात्मा विभु नहीं है तो उसका अपवाद सूत्र बतलाइये जिससे कि अविभुत्व सिद्ध होय।

आपके स्थूल और सूक्ष्मके लक्षणोंमें हम पहले अतिव्याप्ति और असंभव दोष दिखा चुके हैं सो उन्हें निकालकर और आंखे खोलकर पढ़िये और उनका सुधार कीजिये।

पुनः आपने लिखा कि "स्थूल द्रव्य में सूक्ष्म द्रव्य चला जाता है और उसके गुणोंकी प्रतीति होती है जैसे पानीको गर्म कहते हैं,, सो महाशय जी! गर्म अग्निका गुण है जलमें अग्निके परमाणु जानेसे जलमें उष्ण गुणकी प्रतीति होती है परन्तु उष्ण जलमें नहीं चला गया। लौकिकमें जो जलको गर्म कहते हैं वह कहना ऐसा ही है जैसा घी का घड़ा वास्तवमें घड़ा मिट्टीका होता है न कि घी का यहां पर वास्तविक पदार्थका निर्णय करना है न कि लौकिकीय अबड़ बबड़ वाक्योंका। इसलिये स्थूल और सूक्ष्मके लक्षणोंमें अतिव्याप्ति और असंभव दोष आते हैं क्योंकि गुण गुणीका समवाय सम्बन्ध है यदि एकका गुण दूसरे में चला गया तो समवाय सम्बन्ध अर्थात् नित्य सम्बन्ध कहां रहा इसलिये असंभवता है॥

आपका यह लिखना कि "पृथिवीमें ज्ञान और सुखको ग्रहण करने की योग्यता ही नहीं,, यह आपकी प्रतिज्ञा है इसको हेतु उदाहरणसे सिद्ध कीजिये

आपका यह लिखना कि "पृथिवी जड़ अर्थात् ज्ञान रहित होने के कारण ज्ञानको ग्रहण नहीं कर सकी,, तो सुख रहित होने के कारण सुखको ग्रहण कैसे करेगा। ग्रहण वही करता है जिसमें पहले से सत्ता नहीं है यदि पहले से ही सत्ता होवे तो ग्रहण करण करनेकी जरूरत ही क्या है?

पुनः आपने लिखा कि "जिस प्रकार मनकी वृत्ति होती है उसीप्रकार जीवात्मा अपने को मानता है यदि मन चञ्चल है तो जीवात्मा चञ्चल यदि मन सुखी तो जीवात्मा सुखी और यदि मन दुःखी तो जीवात्मा भी दुःखी" सो महाराज! आपके लिखने से सिद्ध हुआ कि सुख दुःख मनके गुण हैं परन्तु वैशेषिक आत्माके गुण कहता है यदि सुख और दुःख मनके गुण होते तो मृतक शरीरके मन मौजूद है वहां सुख दुःख क्यों नहीं होते।

फिर आपने लिखा कि "वैशेषिक शास्त्रमें जो जीवात्माके गुण बतलाये हैं वे शरीर सहित आत्माके हैं खाली आत्माके नहीं,, सो यह अर्थ वैशेषिक दर्शनके कौनसे सूत्रका है सो सूत्र लिखिये तथा गुण द्रव्यके हुआ करते हैं। गुणोंकी समष्टिको ही आपने द्रव्य कहा है जिस समष्टिमें इच्छा द्वेष और

सुख दुःख है उस समष्टिका नाम कौनसा द्रव्य है वैशेषिक दर्शन में जो खाली आत्माको द्रव्य गिनाया है यह शरीर सहित आत्मा दशवां द्रव्य कहांसे आया इच्छा द्वेषादिक जीवके यदि स्वाभाविक गुण नहीं हैं तो किसके स्वाभाविक गुण हैं जो कि जीवमें आकर नैमित्तिक होते हैं ॥

पुनः आपने लिखा कि " ईश्वरमें स्वाभाविक क्रिया है जो उसकी न्याय और दया के अनुरोधसे संयोग वियोग रूप या सृष्टिप्रलय रूप प्रतीत होती है न्याय से स्थूल सूक्ष्म शरीर इन्द्रियें जागृत स्वप्नावस्था और सृष्टि होती है और दया से सूर्य चन्द्रादि लोक सुषुप्ति अवस्था और प्रलय होती है" उत्तर में निवेदन है कि देशाद्देशान्तर प्राप्ति हेतुः क्रिया यह क्रियाका लक्षण है सो ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिये उसके देशाद्देशान्तर प्राप्ति नहीं हो सकती अतः उसके क्रिया नहीं हो सकती। न्याय और दया से दो गुण ईश्वर के आपने बतलाये और उनके लक्षण इस प्रकार किये कि न्याय से सृष्टि होती है और दयासे प्रलय होती है अर्थात् सृष्टि कर्तृत्व को न्याय और प्रलय कर्तृत्वको दया कहते हैं सो सृष्टिकर्तृत्व और प्रलय कर्तृत्व ये दोनों विरोधी गुण हैं सो यह ईश्वरमें नहीं रह सकते हैं।

पुनः आपने लिखा कि "संयोगोन्मुख शक्ति से संयोग और वियोगोन्मुख शक्ति से वियोग होता है" अर्थात् आपके लिखने का यह सारांश है कि ईश्वर में संयोगोन्मुख और वियोगोन्मुख ये दो विरुद्ध शक्ति हैं सो एक ईश्वर में दो विरुद्ध शक्ति नहीं रह सक्ती क्योंकि असंभव है।

पुनः आपने लिखा कि "परमाणु एक क्षण भी गति शून्य नहीं रहते" सो प्रत्यक्ष विरुद्ध हैं क्योंकि पर्वतादिक प्रत्यक्ष अचल दीखते हैं।

पुनः आपने लिखा कि "ईश्वर का लक्षण सृष्टि को उत्पत्ति स्थिति और संहार है केवल उत्पन्न करना नहीं है,, सो यह लिखना भी आपका नितान्त असम्बद्ध है क्योंकि एक ही शुद्ध द्रव्य ईश्वर में ये तीनों विरोधी धर्म स्वाभाविक धर्म नहीं हो सकते।

पुनः आपने लिखा कि "यदि बाहर से गति दे तो परमाणु एक तरफ जा सकते हैं और उनमें अन्तर बना रहता है परन्तु सब परमाणु ईश्वर के सर्वव्यापक होनेसे उसके अन्दर हैं इसलिये चारों तरफसे क्रिया मिलती है" उत्तर में निवेदन है कि ईश्वर परमाणुओं को गति देकर सृष्टि रचता है उस

में परिमित काल लगता है या अपरिमित काल ! यदि परिमित काल लगता है तो जितने काल में यह सृष्टि बनी उससे पहले भी गत्युत्पादकत्व स्वभाव ईश्वर में मौजूद था तो इस सृष्टि बनने के पहले ही सृष्टि क्यों नहीं बनगई । यदि अपरिमित काल है तो अब तक भी सृष्टि नहीं बननी चाहिये थी । तथा ईश्वरमें जो गत्युत्पादकत्व स्वाभाविक धर्म है वह एक ही दिशा प्रति गत्युत्पादकत्व हो सकता है विरुद्ध दिशाओं प्रति गत्युत्पादकत्व नहीं हो सकता क्योंकि एक शुद्ध द्रव्य में दो विरुद्ध स्वभाव नहीं हो सकते ।

पुनः आपने लिखा कि "क्या सोने और पत्थरका सम्बन्ध अनादि है" अवश्य अनादि है(जैसे ईश्वर और आकाश दोनों द्रव्यों का संयोग सम्बन्ध अनादि है)उसी प्रकार सोने और पत्थर का भी अनादि सम्बन्ध है । आकाश और ईश्वरके अनादि सम्बन्ध होने से आपका यह वाक्य कि "जहां २ संयोग सम्बन्ध होता है वहां सादि होता है,, बाधित होता है ।

पुनः आपका यह लिखना कि "जीव भी सूक्ष्म और कर्म भी सूक्ष्म यह कहना ठीक नहीं क्योंकि जीव चेतन और कर्म जड़ पुद्गल द्रव्य का विकार है" सो आपका यह लिखना भी ठीक नहीं है क्योंकि ईश्वर चेतन और आकाश जड़ ये दोनों ही सूक्ष्म हैं चेतना और जड़ता सूक्ष्मताके बाधक नहीं हैं ॥

पुनः आपका यह लिखना कि "सांख्य दर्शनको पढ़नेसे तो सांख्यकार ईश्वर के ही मानने वाले मालूम होते हैं जैसे लिखा है कि विद्यायाः अनित्यत्वे प्रश्नवाद् प्रसङ्गः"सो महाशयजी यह लिखना भी आपका भ्रम मूलक है क्योंकि इस सूत्रसे किसी भी प्रकार ईश्वर सिद्ध नहीं होता ॥ "प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः" इस सूत्रका अर्थ जो आपने किया कि प्रमाणाभावसे मंगलाचरणसे कार्य की सिद्धिका यह सूत्र निषेधक है न कि ईश्वरकी सिद्धिका सो महाराज जरा भाष्यकारोंका अर्थ देखिये तत् शब्दसे ईश्वरका ही ग्रहण किया है अन्यथा यदि तत् शब्दसे कार्यका ग्रहण करोगे तो सूत्रोंका सम्बन्ध ही असम्बद्ध हो जायगा ॥

पुनः आपने लिखा कि "वेद ईश्वरका सिद्ध करने वाला ऐसा ही है जैसे कि पुत्रको देखनेसे पिताका अनुमान होता है कार्यको देखनेसे कारणका इनमें अन्योन्याश्रय दोष नहीं ईश्वर वेदका जनक है वह वेद ईश्वरका साधक है इत्यादि,,

सो महाशयजी यह आपका सब लिखना अविचारित रम्य है क्योंकि वेद की पुस्तकसे यदि उसके कर्ताका अनुमान किया जायगा तो लेखकी सिद्धि होगी यदि वक्ताका अनुमान किया जायगा तो किसी मनुष्य विशेषकी सिद्धि होगी वेदको देखनेसे ईश्वरकी सिद्धि किसी प्रकार नहीं होती यदि कहोगे कि वेद में ऐसा वाक्य लिखा है "ईश्वर है" इस लिये वेदसे ईश्वरकी सिद्धि होती है सो यह कहना भी अयुक्त है क्योंकि यह वाक्य तब सिद्ध होय जब इसके वक्ताकी प्रमाणता हो जाय परन्तु आप ईश्वरको ही वेदका वक्ता मानते हैं तो वेदके सद्भाव में ईश्वरके सद्भाव की आवश्यकता और ईश्वरके सद्भाव में वेदके सद्भाव की आवश्यकता अर्थात् यूं कहिये कि वेदका प्रामाण्य ईश्वरा-धीन और ईश्वरका प्रामाण्य वेदाधीन होनेसे प्रत्यक्ष अन्योन्याश्रय दोष है आपके अतिसाहसपर आश्चर्य होता है कि आप ऐसे २ बड़े दोषोंको युक्तिशून्य वाक्योंसे उड़ाना चाहकर फूंकसे पहाड़ उड़ानेकी उक्तिको चरितार्थ करते हो।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

(क) विभाग नम्बर ६

प्रश्नावली।

(१) मल विक्षेप आवरण जो कि आपके कथनानुसार विशेष पदार्थमें गर्भित हैं उन का मनके साथ संयोग सम्बन्ध है या समवाय सम्बन्ध ? यदि संयोग सम्बन्ध है तो असङ्गत है क्योंकि संयोग सम्बन्ध दो द्रव्योंमें होता है और मल विक्षेप द्रव्य नहीं किन्तु विशेष है। यदि समवाय सम्बन्ध है तो भी असङ्गत है क्योंकि समवाय सम्बन्ध नित्य होता है और आप मल विक्षेप आदिका मन द्रव्यसे वियोग मानते हैं।

(२) मल विक्षेप आदिको जो आपने विशेष पदार्थमें अन्तर्भूत किया वह वैशेषिक दर्शनके कौनसे सूत्रके अनुसार किया है॥

(३) सर्वज्ञ शब्दके दो अर्थ अर्थात् संपूर्ण पदार्थोंको जानने वाला और संपूर्ण पदार्थोंको जाननेमें समर्थ किस शास्त्रके आधारसे हैं, सूत्र सहित लिखो

(४) संपूर्ण पदार्थोंको जाननेमें समर्थ संपूर्ण पदार्थोंको जानता है या नहीं यदि जानता है तो ईश्वरवत् सर्वज्ञ ठहरा और ऐसा होनेसे आर्यसमाजके सिद्धान्तका विघात होता है। और यदि नहीं जानता तो उसका ज्ञान ईश्वरके सद्भावमें प्रमाण किस तरह हो सकता है। यदि कहो कि वह

केवल ईश्वरके सुख गुणको ही जानता है इन अतीन्द्रिय पदार्थोंको नहीं जानता सो भी ठीक नहीं क्योंकि अतीन्द्रिय पदार्थको जाननेके प्रतिबन्धक मल विक्षेप आवरण दूर होगये तो अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान क्यों नहीं होता।

(५) आपका कहना है कि जिन जीवोंका मन मल विक्षेप आवरणसे रहित है उनही को ईश्वरके सुख गुणका अनुभव होता है, परन्तु जिनका मन मल विक्षेप आवरणसे युक्त है उनको भी सुखका अनुभव होता है सो मल विक्षेप रूप प्रतिबन्धक कारणके सद्भावमें ईश्वर सुखका अनुभव कैसे हुआ! और सर्व जीवोंको,, मैं सुखी हूं मैं दुखी हूं ऐसा अनुभव होता है।

(६) आपके कथनानुसार सुख दुख इच्छा द्वेष ये नैमित्तिक गुण हैं और नैमित्तिक गुण उनको कहते हैं कि जो किसीके स्वाभाविक गुण दूसरेमें आमें जैसे ईश्वरका सुख गुण जीवमें आकर नैमित्तिक कहलाता है तो बतलाइये कि दुःख इच्छा द्वेष ये किसके स्वभाविक गुण हैं जो जीवमें आकर नैमित्तिक कहलाते हैं॥

(७) जब सूक्ष्म द्रव्यके गुण स्थूल द्रव्यमें आते हुए आप मानते हैं तो सूक्ष्म ईश्वरके सुख ज्ञान गुण पृथिवीमें क्यों नहीं आते! इस पर आपका यह लिखना है कि "पृथिवीमें जाननेकी योग्यता नहीं है" ठीक नहीं है क्योंकि महाशय जी! जाननेकी योग्यता ही को तो ज्ञान गुण कहतेहैं जब पृथिवीमें ज्ञान गुण आजायगा तो जाननेकी योग्यता भी आजायगी

(८) गुण और गुणीमें जब समवाय सम्बन्ध है और समवाय नित्य सम्बन्ध है तो एक द्रव्यका गुण दूसरे द्रव्यमें किस तरह जा सकता है। तथा सुख दुःख इच्छा द्वेषका भी नित्य सम्बन्ध होनेसे ये गुण हमेशा ही रहने चाहिये परन्तु ये कभी होते और कभी नहीं सो क्यों!

(९) नैमित्तिक, औपाधिक, तटस्थ, इन गुणोंमें क्या भेद है सो इनका भिन्नर लक्षण लिखो॥

(१०) आपका कहना है कि,, जीव जब बाह्यमुख होगा तब तो इन्द्रिय मन से पैदा होने वाले दुःखको प्रतीत करेगा। पैदा होने वाला कार्य होता है इस लिये दुःख कार्य हुआ कार्यके लिये कारणकी आवश्यकता होती है इन्द्रिय मन दुःखके उपादान कारण हैं या निमित्त कारण यदि नि-

मित्त कारण हैं तो उपादान कौन ! यदि उपादान कारण हैं तो चेतन दुख गुणका उपादान कारण जड़ इन्द्रिय मन किस तरह हुआ जो गुण उपादान कारणमें नहीं होते वे उनके कार्यमें भी नहीं आसकते इस लिये दुःख गुण मृतक शरीरके जड़ स्वरूप इन्द्रिय और मनमें भी दिखलाइये।

(११) वैशेषिक मतानुसार इच्छाद्वेष और दुख ये आत्माके गुण माने हैं और आप वैशेषिक शास्त्रको प्रमाण मानते हुए भी इच्छादिकको पुद्गलका या मनका गुण कहते हैं तथा आपने पहले यह प्रतिज्ञा की है कि जीवात्मा प्रकृतिसे सूक्ष्म और ईश्वरसे स्थूल है स्थूलके गुण सूक्ष्म में नहीं आते जब कि दुख इच्छा द्वेषये प्रकृतिके धर्म हैं तो सूक्ष्म जीवात्मामें आ भी कैसे सकते हैं।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

———o———

निवेदन।

यह शास्त्रार्थ अभी बराबर चल रहा है। आजतक दश अक्तूबर तकके पर्चे छपाकर प्रकाशित किये जाते हैं। आशा है कि सर्वसज्जन इसे ध्यानपूर्वक पढ़नेकी कृपा करेंगे। विज्ञेष्वलम्।

प्रकाशक,

शास्त्रार्थ अजमेर ।

(ख) विभाग ।

ओ३म् ।

सं० ३१४ आर्यसमाज—अजमेर ।

प्रश्नपत्र सं० १ ता० ११ । ७ । १९१२,

श्रीयुत महाशय मन्त्री जी श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावा । नमस्ते ।

कृपाकर निम्न लिखित प्रश्नका उत्तर भेजकर अनुगृहीत करें ।

प्रश्न—जब कि जगत् विकार वाला और सावयव है और कोई विकार वाला सावयव पदार्थ विना कर्त्ता के नहीं हो सकता तो ईश्वर जगत्कर्ता क्यों नहीं ?

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्म्मा,

* वन्दे जिनवरम् *

(ख) पत्र सं० १ श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा—

वर्तमान स्थान अजमेर । ता० ११ । ७ । १९१२,

प्रिय महाशय ! जय जिनेन्द्र ।

आपके पत्र सं० ३१४ ता० ११ जुलाईके प्रश्नपत्र सं० १ के उत्तरमें निवेदन है कि आपके प्रश्नका यह अभिप्राय है कि यह जगत् ईश्वरकृत है क्योंकि यह विकारी और सावयव है अर्थात् जगत्के ईश्वरकर्तृकत्वसाध्यमें विकारित्व और सावयवत्व ये दो हेतु हैं । सो विकार शब्दके दो अर्थ हैं । एक तो परिस्पन्दात्मक क्रिया दूसरा अपरिस्पन्दात्मक परिणाम ।

जीवमें परिस्पन्दात्मक क्रिया और अपरिस्पन्दात्मक परिणाम दोनों पाये जाते हैं । शरीरसे शरीरान्तर धारण करनेमें परिस्पन्दात्मक क्रिया भी पाई जाती है और क्रोध, मान, माया, लोभ, क्षमादि अपरिस्पन्दात्मक परिणाम भी पाये जाते हैं किन्तु जीव किसी कर्ताका किया हुआ नहीं है इसलिये विकारित्व हेतु व्यभिचारी है ॥

सावयवत्वके भी दो अर्थ होते हैं । एक तो अवयवोंसे सहित हो । और दूसरा अवयवोंसे जन्य हो । अवयव सहित वह कहलाता है जो अनेक प-

देशी हो अर्थात् एक परमाणु जितने आकाशके प्रदेशको घेरता है उससे अधिक प्रदेशके घेरने वालेको अवयव सहित कहते हैं और पहिले तो उसके अवयव भिन्न भिन्न हों और पीछे अवयव इकट्ठे होकर जो बनाहो उसे अवयव जन्य कहते हैं॥ यदि सावयव शब्दसे आपको अवयवजन्य अर्थ इष्ट है तो संसारमें दो प्रकारके पदार्थ हैं। एक तो पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादिक अनादि निधन पदार्थ और दूसरे घट पटादिक सादि पदार्थ। सूर्य चन्द्रादिक अनादि निधन पदार्थोंमें अवयवजन्यत्व हेतु नहीं है इसलिये यह हेतुअसिद्धहेत्वाभास है क्योंकि इनके अवयव कभी भी भिन्न २ नहीं थे। और दूसरे जो अवयवजन्य पदार्थ हैं वे भी दो प्रकार हैं। एक कर्तृजन्य और दूसरे अकर्तृजन्य। घट-पटादिक कर्तृजन्य हैं और घास वृष्टि जड़ी बूटी आदिक अकर्तृजन्य हैं। घट पटादिक कर्तृजन्य पदार्थोंके कर्ता कुलाल तन्तुवाय आदिक प्रसिद्ध ही हैं और शेष पदार्थ अकर्तृजन्य ही हैं इसलिये ईश्वर सृष्टिकर्ता नहीं है।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

ओ३म्

(ख) पत्र संख्या १ — आर्यसमाज—अजमेर।

ता० ११। ७। १९१२ का उत्तर — ता० १८। ७। १९१२

श्रीमन्नमस्ते।

आपने जो विकार शब्दके दो अर्थ किये हैं वो किस व्याकरण और कोषसे किये हैं। विकार कहते हैं जिसमें रूपों का परिवर्तन हो। जो छः विकार जगत्में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। उत्पन्न होना, बढ़ना, एक सीमातक बढ़कर रुक जाना, अवस्था बदलना, घटना और नाश होना। क्या जीवका एक शरीरसे निकल कर दूसरे में जाना विकार है! क्या कोई कोठरीसे निकलकर वाटिकामें जावे तो उसे आप विकार कहेंगे। दूसरे जो आपने क्रोधादि को जीवका परिणाम बतलाया यह अनभिज्ञताका प्रमाण है। क्योंकि ये मनके धर्म हैं जीवके नहीं। आप कोई ऐसी वस्तु बतलावें जिसमें प्रथम विकार उत्पत्ती न हो और तृतीय विकार परिणाम (अवस्था बदलना) पाया जावे। विकार हेतु साध्य नहीं प्रत्युत शुद्ध है। आपने दोनों उदाहरणोंसे अपनी अनभिज्ञता का प्रमाण दिया है। हेतुमें व्यभिचार नहीं।

सावयवके अर्थ हैं जहां अवयवोंमें संयोग हो, जिसमें संयोग न हो वह सावयव नहीं कहला सकता यहां नित्यार्थ आकाशादि पदार्थ जो अखंड है वह सावयव नहीं क्योंकि अवयव खण्डको कहते हैं, अखंडके अवयव नहीं होते। अतएव वह अवयव सहित नहीं कहलाता यह लक्षण सावयवके जो अखंड में अतिव्याप्ति है ठीक नहीं ईश्वर और आकाश सावयव नहीं।

पृथ्वी, सूर्य्य, चन्द्रादि अनादि निधन हैं इस प्रतिज्ञा को न्यायसे सिद्ध कीजिये जब तक सिद्ध न करें और इसमें हेतु आदि न दें तब तक यह कथन व्यर्थ ही है और इनका अवयवोंसे पैदा होना तो इनके विकारों से प्रत्यक्ष है इनके अवयव कभी नहीं थे इस प्रतिज्ञा को आप किस प्रमाण से सिद्ध करते हैं।

आप जो अवयव जन्य पदार्थोंके दो प्रकार मानते हैं उनमें एक प्रकार के पदार्थ तो आप कर्तासे पैदा होना मानते हैं और दूसरे प्रकार के पदार्थ अकर्ता से जन्य हैं इसको न्याय से सिद्ध करें क्योंकि यह साध्य है जो पदार्थ नियम पूर्वक क्रियासे पैदा होता है उसको आप अकर्तृजन्य कहते हैं। इस दावेका प्रमाण और उदाहरण दीजिये। यदि यह पदार्थ बिना कर्ताके होते तो इनमें नियम न होता जहां नियम है वह बिना कर्ता के नहीं होसकता प्रत्येक पदार्थ का न्याय नियमानुसार विविध प्रकारका होना उसको कर्तासे उत्पन्न होना सिद्ध करता है। प्रमाणों गति शून्य हैं या गति साम्य? यदि गति शून्य है या एकसी गति है तो संयोग नहीं हो सकता और पृथ्वी चन्द्रादिमें संयोग वियोग और विकार देखते हैं जिससे उनका ईश्वर जन्य होना सिद्ध है।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्म्मा।

———○*○———

* वन्दे जिनवरम् *

(ख) पत्र नं० २ श्रीजैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा—

इटावा। ता० ३१। ७। १९१२,

महाशयवर!

जुहारके अनन्तर निवेदन है कि आपने लिखा कि "आपने विकार शब्द के दो अर्थ किस व्याकरण और कोषसे किये हैं" तो महाराज! विकार का लक्षण हमको वही इष्ट है जो आपने लिखा है। अर्थात् " रूपपरिवर्तन "

वह रूपका परिवर्तन दो प्रकारका है एक परिस्पन्दात्मक क्रियारूप और दूसरा अपरिस्पन्दात्मक परिणामरूप। फिर आपने लिखा कि 'क्रोधादिकको जीवका परिणाम बतलाया है यह अनभिज्ञताका प्रमाण है क्योंकि ये मन के धर्म हैं जीवके नहीं" सो आपका ऐसा लिखना न्यायके विरुद्ध है क्योंकि मन जड़ है और क्रोधादि चेतनके धर्म हैं जड़ स्वरूप मनके नहीं हैं॥

जगत्में जितने पदार्थ हैं वे अनादि कालीन हैं कोई भी कभी उत्पन्न नहीं हुआ परन्तु सब परिणामी हैं। फिर आपने लिखा कि "अगर कोई कोठेसे निकल कर वाटिकामें आवे तो उसे आप विकार कहेंगे" सो महाराज! मृत्पिण्डसे घट बननेको आप विकार कहेंगे तो कोठेसे वाटिका आनेमें स्थान से स्थानान्तर होता है उसी प्रकार मृत्तिकासे घट बननेमें भी परमाणुओंका स्थानसे स्थानान्तर होना है।

पुनः आपने लिखा कि "विकार हेतु साध्य नहीं प्रत्युत शुद्ध है" सो आपका यह असम्बद्ध वाक्य अर्थ शून्य है इसलिये विकारित्व हेतु में हमने जो व्यभिचार दोष दिया था उसका परिहार नहीं होता।

सावयवत्त्व हेतुके हमने जो दो अर्थ किये थे उनमेंसे आपने "अवयवोंसे जन्य" यह अर्थ स्वीकार किया है। इस अर्थमें हमने असिद्ध हेत्वाभास दोष दिया था उसका आपने परिहार नहीं किया॥

हेतु उभय पक्ष मान्य होता है और जो उभयपक्ष मान्य नहीं होता वह हेतु असिद्ध है। असिद्ध हेतुको सिद्ध करना हेतु देने वालेके जिम्मे है न कि प्रतिवादीके। जगत्को सकर्तृक सिद्ध करनेके लिये आपने सावयवत्व हेतु दिया है इसलिये यह आपका फ़र्ज है कि आप सावयवत्व हेतुको सिद्ध करें अर्थात् सूर्य चन्द्रमादिक किसी समय में भिन्न परमाणु स्वरूप थे यह जबतक आप नहीं सिद्ध करदेंगे तबतक हमारे दिये हुये असिद्ध हेत्वाभासका परिहार नहीं होता॥

फिर आपने लिखा कि "इनका अवयवोंसे पैदा होना तो इनके विकार से प्रत्यक्ष है" सो महाराज! प्रत्यक्षके विषयमें अनुमानकी आवश्यकता नहीं होती। कदाचित् आपका यह आशय हो कि अवयव जन्यत्व विकारित्व हेतु से अनुमेय है सो विकारित्व हेतु अभी व्यभिचार दोष ग्रस्त है जबतक उस का व्यभिचार दोष दूर न होजाय तबतक दुष्ट हेतु साध्य सिद्ध नहीं कर सकता है।

पुनः आपने लिखा कि " आप जो अवयवजन्य पदार्थोंके दो प्रकार मानते हैं उनमें से एक प्रकारके आप कर्ता से पैदा होना मानते हैं और दूसरे प्रकार के पदार्थ अकर्तासे जन्य हैं इसको न्यायसे से करें क्योंकि यह साध्य है। जो पदार्थ नियम पूर्वक क्रियासे पैदा होता है उसको आप अकर्तृजन्य कहते हैं इस दावेका प्रमाण और उदाहरण दीजिये। यदि यह पदार्थ कर्त्ताके बिना होता तो इनमें नियम न होता जहां नियम है वह बिना कर्ताके नहीं हो सकता प्रत्येक पदार्थका न्यायानुसार विविध प्रकारका होना उसका कर्तासे उत्पन्न होना सिद्ध करता है,, सो घट पटादिक पदार्थ कुलालादिक कृत हैं यह प्रत्यक्ष सिद्ध है तथा घास जड़ी बूटी आदिक अकर्तृजन्य हैं यह भी प्रत्यक्ष सिद्ध है क्योंकि जिस पदार्थके सद्भाव का ग्रहण जिस इन्द्रियसे होता है उसका अभाव भी उसी इन्द्रियसे गृहीत होता है। घास जड़ी बूटी आदिकका अगर कोई कर्ता होता तो वैसाही होता जैसा कि चने आदिकके खेतका कर्ता किसान, कर्ता का प्रत्यक्ष चक्षु इन्द्रिय द्वारा होता है और घासादिकके कर्ताके अभावका भी प्रत्यक्ष चक्षु इन्द्रिय द्वारा होता है। और आप जो नियम पूर्वक कार्यके बावत लिखते हैं। सो समस्त पदार्थोंमें जितने धर्म हैं वे समस्त धर्म अपने कार्यको नियम पूर्वक करते हैं जैसे अग्नि का दाहकत्व धर्म जलाता है और पाचकत्व धर्म पकाता है। यदि ऐसा न माना जाय तो इन सब पदार्थोंका होना ही व्यर्थ हो जायगा और यदि आप नियम पूर्वक कार्य करनेके वास्ते कर्ताकी जरूरत समझते हैं तो ईश्वर नियम पूर्वक सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रलय करता है उसके वास्ते भी दूसरे ईश्वरकी आवश्यकता पड़ेगी और इस प्रकार अनवस्था हो जायगी ॥

और आपने लिखा कि "परमाणु गति शून्य हैं या गतिमान्। यदि गति शून्य हैं या एकसी गति वाले हैं तो संयोग नहीं हो सकता और पृथ्वी चन्द्रादिमें संयोग वियोग और विकार देखते हैं जिससे उनका ईश्वर जन्य होना सिद्ध है,, परमाणुओंमें गति नैमित्तिक है अर्थात् उन्हें जैसे निमित्त मिलते हैं वैसी गति होती है और पृथ्वी चन्द्रादिकमें संयोग अर्थात् उत्पत्ति और वियोग अर्थात् प्रलय ये दोनों असिद्ध हैं और विकारित्व हेतु व्यभिचारी है इस लिये इन तीन हेतुओंसे पृथ्वी आदिक ईश्वर जन्य सिद्ध नहीं हो सकते ॥

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य

———:o:———

ओ३म्

(ख) पत्र संख्या २ आर्य्यसमाज-अजमेर ।

ता० ३१ । ७ । १९१२ का उत्तर ता० ८ । ८ । १९१२

महाशयवर ! नमस्ते ।

महाराज जी ! यह विकारका लक्षण है या परिणामका ! जब आप विकार और परिणामका भी भेद नहीं करते तो ईश्वरका ज्ञान कैसे हो ? विकारमें अवयवान्तर प्रतिपत्ति होती है । कृपानिधे ! प्रत्येक परिणाम जड़ में हुआ करता है चैतन्यमें निरवयव होनेसे परिणाम होता ही नहीं । यदि क्रोधादिक जीवके धर्म हैं तो स्वाभाविक धर्म हैं या नैमित्तिक ? यदि स्वाभाविक धर्म हैं तो प्रत्येक जीव को प्रतिक्षण क्रोधादिक होने चाहिये, जिस से मुक्त जीव और वीतरागमें क्रोधादिक होंगे, यदि नैमित्तिक धर्म हैं तो उस निमित्तको बतलाइये ।

आप लिखते हैं कि "जगत्के जितने पदार्थ हैं सब अनादिकालीन हैं,, क्या आपके शरीरकी आकृति भी अनादिकालीन है ? क्या अनादि और निरवयव पदार्थमें भी परिणाम होता है, मृत्पिण्डसे घड़ा बननेको विकार नहीं कहते क्योंकि उसमें विकारके लक्षण नहीं पाये जाते, विकार ईश्वरकी सृष्टि में होते हैं । जीवकी सृष्टिमें नहीं । विकारका लक्षण तो यह है "अवयवान्तर प्रतिपत्ति,, आप स्थानान्तरमें जानेको विकारमें यह किस शास्त्रसे सिद्ध है, यदि आप इस प्रतिज्ञाको कि यह वाक्य अर्थ शून्य है किसी प्रमाणसे सिद्ध करते तो पता लगता क्योंकि जगत्के कार्य होनेमें विकार सिद्ध हेतु है जो प्रत्येक कार्य पदार्थ विद्यमान है ।

उभय पक्ष मान्य होना हेतुका लक्षण किस शास्त्रमें लिखा है, जो उदाहरणकी साधर्म्यता साध्यका साधन हो वह हेतु होता है । प्रत्येक सावयव पदार्थ जो कि अवयवोंमें संयोग है वह पाकज गुणको कौनसे कर्ताके बिना हो ही नहीं सकता । जहां संयोग है वहां कर्त्तृजन्य है चाहे कर्ता इच्छासे हो चाहे नियमसे, असिद्ध हेत्वाभास किस शास्त्रमें लिखा है, जब सूर्यकी किरणें व चांदकी रोशनी संसारमें फैली हुई प्रतीत होती हैं सूर्यसे किरणोंका निकलनादि बता रहे हैं ॥

कोई पदार्थ बिना अनुमानके प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकता क्योंकि एक

हेतुका प्रत्यक्ष मेघका अनुमान होता है, विकारित्व हेतुका व्यभिचार किस नित्य पदार्थमें है कोई नित्य पदार्थ विकारवान् नहीं विकारका लक्षण करके किसी नित्य पदार्थमें दिखलाइये।

यदि पाषाणादि पदार्थ अकर्तृजन्य हैं यह कैसे प्रत्यक्ष सिद्ध है, क्या केवल कर्ताके प्रत्यक्ष न होनेसे कोई कार्य अकर्तृजन्य सिद्ध हो सकता है यदि वेश्याके सन्तान हो और पिता बहुतसे लोगोंके आने जानेसे प्रत्यक्ष न हो तो वह बालक बिना पिताका ही कहलावेगा? जैसे घड़ीमें जो नियम पूर्वक चक्र है उसके नियमसे यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक समय पर घड़ी की सुइयां मिलेंगी, ऐसे ही सूर्य ग्रहण व चन्द्र ग्रहणको पहिलेसे बतलानेसे यह सिद्ध है कि यह चक्र घड़ीकी भांति नियममें बंधा हुआ है। यद्यपि घड़ीका कर्ता प्रत्यक्ष नहीं परन्तु है अवश्य, क्या किसान चनेके कर्ता है या खेतका चनेका किसानको ज्ञान ही नहीं कि किन परमाणुओंके संयोगसे बना है, खेत भूमिका अंश है किसानके भूमिका संस्कार कर्ता जीवात्मा है या शरीर यदि शरीरको कर्ता माना जाय तो मृतक शरीर में भी कर्तापन होना चाहिये, यदि जीवको कर्ता मानें तो उसका प्रत्यक्ष होता नहीं, जब कर्ताके भावका प्रत्यक्ष नहीं होता तो क्या किसी जैनीने जीवको शरीरसे निकलते हुए आंखसे प्रत्यक्ष किया है? प्रत्यक्षवादीका सिद्धान्त तो इन्द्रियोंके ही प्रत्यक्षमें रहजाता है, इस लिये कर्ताके चेतन होनेसे किसी शयका कर्ता बाह्य इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष नहीं होता। महाशय जी! आपने नियम पूर्वक कार्यका अर्थ नहीं समझा, स्वाभाविक कार्य और है नियम पूर्वक कार्यचक्र होता है, स्वाभाविकमें नहीं। अग्नि जलाती है उसमें चक्र कहां है यह केवल भ्रान्ति है कि पदार्थ अपने कार्य नियमसे करते हैं। घड़ी नियम पूर्वक चलती है किसी स्कूलके विद्यार्थीसे प्रश्न करो कि किस समय सूइयां मिलेंगी और किसी ज्योतिषीसे प्रश्न करो कि कब सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण होगा उत्तर घड़ी पल सहित मिल जायगा। क्या आप बतला सकते हैं कि इस मकानको आग कितनी देरमें जलावेगी, यदि परमाणुओंमें गति नैमित्तिक है तो उस निमित्तका नाम बतलाइये जो परमाणुकी गतिका हेतु है। यदि दया करके नैमित्तिकका लक्षण करदें तो और भी अच्छा हो। क्या पृथिवी चन्द्रादिमें संयोग वियोग असिद्ध हैं? संयोगका नियामक वृद्धि और वियोगका क्षय,

प्रत्येक वस्तुमें वृद्धिक्षय देखते हुए भी उनकी अन्तिमदशा प्रलय और पूर्व दशा उत्पत्तिसे इन्कार करना सर्वथा न्यायके विरुद्ध है। प्रत्येक वस्तुकी दो सीमा होती हैं एक आदि दूसरा अन्त, जब एक सीमावाली वस्तु प्रत्यक्ष न हो तब तक आपका कथन न्यायके विरुद्ध ही होगा।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा

---

* वन्देजिनवरम् *

(ख) पत्र नं० ३ श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा

इटावा ता० १९। ८। १९१२

महाशयवर! जयजिनेन्द्र।

प्रथम ही आपने यह अनुमिति दी थी कि जगत् ईश्वरकृत है क्योंकि वह विकार वाला और सावयव है। विकारका लक्षण आपने पहिले रूपान्तर प्रतिपत्ति किया है उसमें हमने दोष दिया था कि रूपान्तर प्रतिपत्ति जीवके भी होती है क्योंकि कभी क्रोधी होता है कभी क्षमावान् इत्यादि। उसके उत्तर में आपने लिखा था कि क्रोधादिक मनके विकार हैं जीवके नहीं उसके ऊपर हमने कहा था कि क्रोधादिक चेतनके विकार हैं जड़ मनके नहीं इसका उत्तर आपने कुछ भी नहीं दिया। आपने पूछा कि क्रोधादिक जीव के स्वाभाविक धर्म हैं या नैमित्तिक! सो महाशय जी। हम कई दफे लिख चुके और फिरभी लिखते हैं कि क्रोधादिक नैमित्तिक धर्म हैं और उनमें निमित्त कर्ममलरूप पुद्गल द्रव्य है। अब आप विकारका लक्षण करते हैं "अवयवान्तर प्रतिपत्ति,, सो सूर्य चन्द्रादिकमें अवयवान्तरकी प्रतिपत्ति होती ही नहीं इसलिये हेतु असिद्ध है। गौतम सूत्रोंमें असिद्ध हेत्वाभासको साध्य सम हेत्वाभास ऐसा लिखा है। अन्यथा शब्दोऽनित्यः चाक्षुषत्वात्। इस अनुमितिसे कौनसा हेत्वाभास मानोगे। सावयवत्व हेतुका अर्थ आपने अवयवोंका संयोग स्वीकार किया है। और संयोग अप्राप्ति पूर्वक होता है इसलिये सूर्य चन्द्रादिक के अवयवोंका संयोग किसी कालमें हुआ था जबतक आप सिद्ध न करदेंगे तबतक आपका हेतु साध्यसम हेत्वाभास है। इस प्रकार आपके सावयवत्व और विकारित्व हेतुमें जो हमने साध्यसम हेत्वाभास दोष दिया है कृपाकर उस दोषका परिहार कीजिये। आपने लिखा कि " आप लिखते हैं कि जगत्में जितने पदार्थ हैं सब अनादि कालीन हैं क्या! आपके शरीर

की आकृति भी अनादिकालीन है,, उसका समाधान यह है कि मनुष्याकृति व्यक्ति की अपेक्षा सादि है और प्रवाहकी अपेक्षा अनादि है ऐसा कोई समय नहीं था कि जिस समयमें मनुष्य नहीं हों। फिर आपने लिखा कि "अनादि और निरवयव पदार्थमें भी परिणाम होता है,, उसमें निवेदन है। कि अवश्य होता है क्योंकि "अवस्थान्तर प्रतिपत्तिः परिणामः,, यह परिणामका लक्षण है। अनादि और निरवयव जीव पदार्थमें क्रोध क्षमा आदि परिणाम प्रत्यक्ष सिद्ध हैं। फिर आपने लिखा कि "मृत्पिण्डसे घड़ा बननेको विकार नहीं कहते क्योंकि उसमें विकार के लक्षण नहीं पाये जाते, विकार ईश्वरकी सृष्टिमें होते हैं जीवकी सृष्टिमें नहीं, विकार का लक्षण तो यह है "अवयवान्तर प्रतिपत्ति,, आप स्थानान्तरमें जाने को विकार कहते हैं वह किस शास्त्र से सिद्ध है" इस के उत्तर में निवेदन है कि विकार परिणाम, पर्याय, अवस्था यह सर्व शब्द एकार्थ वाचक हैं। संसारमें जितने पदार्थ हैं सब स्वभावसे परिणमन शील हैं। मृतपिण्डका घट बनने पर भी उसमें अवस्थासे अवस्थान्तर होती है इस वास्ते इसको भी विकार कह सकते हैं। स्थानसे स्थानान्तर में जानेको विकार कहते हैं क्योंकि एक स्थानमें जिन आकाशके प्रदेशों से संसर्ग है स्थानान्तर में उन प्रदेशोंसे भिन्न प्रदेशोंसे सम्बन्ध होनेसे अवस्था से अवस्थान्तर हुआ है। इस वास्ते यहां भी विकार है। आप विकार का लक्षण अवयवान्तर प्रतिपत्ति कहते हैं और फिर कहते हैं कि जीवकी सृष्टिमें विकार नहीं होता। एक कारीगर ने एक बड़े महल के ऊपर अट्टा बनाया यहां अवयवान्तर प्राप्ति तो है इसलिये विकार सिद्ध हुआ परन्तु है यह जीवकी सृष्टि, अतः आपके लिखनेमें विरोध आया। ऊपर लिखे अनुसार आपका विकार हेतु सिद्ध नहीं किन्तु असिद्ध अर्थात् साध्यसम हेत्वाभास है क्योंकि पक्षभूत सूर्य चन्द्र आदिमें अवयवान्तर प्रतिपत्तिरूप विकार सिद्ध नहीं है। पुनः आपने लिखा कि "उभयपक्षमान्य हेतु का होना किस शास्त्रमें लिखा है" सो आपका यह लिखना बिल्कुल न्याय विरुद्ध है क्योंकि कोई पदार्थ उभयपक्ष मान्य न होनेसे साध्यकोटीमें आता है यदि हेतु भी उभयपक्ष मान्य न होगा तो साध्यसम होकर असिद्ध हेत्वाभास हो जायगा। अपने ही घरका साध्य और अपने ही घरका हेतु होनेसे चाहे जिस हेतुसे मनमाने साध्यको सिद्ध करलो। इसमें महान् अतिप्रसंग

आवेगा। पुनः आपने लिखा कि "प्रत्येक सावयव पदार्थ जो कि अवयवोंमें संयोग है वह पाकज गुणको कोनसे कर्ताकी विना हो ही नही सकता, जहां संयोग है वहां कर्तृजन्य है चाहे कर्त्ताके इच्छासे हो चाहे नियमसे।" उत्तर—हम कईवार लिखचुके हैं कि सावयवत्व का अर्थ जो आप अवयव संयोग करते हैं सो पृथ्वी सूर्य चन्द्रादिकके अवयव भिन्न २ थे और पीछे मिलाकर उनका संयोग हुआ इस बातको जबतक किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं करदेंगे तबतक आपका हेतु साध्यसम होनेसे असिद्ध हेत्वाभास है। इसके सिवाय सावयवत्व हेतु अनैकान्तिक हेत्वाभास भी है क्योंकि घासादिकमें अवयव संयोग होने पर भी ईश्वर जन्यत्व नहीं है। यह हम पहिले भी लिखचुके हैं। इसके उत्तर में आपने लिखा कि "यदि घासादि पदार्थ अकर्तृजन्य यह कैसे प्रत्यक्ष है क्या? केवल इत्यादि" प्रत्युत्तरमें निवेदन है कि वेश्याःके सन्तानोत्पत्ति आदि जो दृष्टान्त आपने लिखे हैं वे सब विषम दृष्टान्त हैं क्योंकि अगर वेश्याको पास बैठा लिया जाय और उसका किसी पुरुषसे संयोग न देखा जाय तो उसके कदापि सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती परन्तु जिस जमीन में घास पैदा होती है वहां पर आप मेघ बरसने के प्रारम्भसे पहरा लगाकर बैठ जाइये और जबतक घास जम न आवे तबतक आप बैठे रहिये कोई भी कर्ता आपके नजरमें नहीं आयगा।

चने आदिककी उत्पत्तिमें न केवल शरीर ही कारण है। और न केवल जीव कारण है किन्तु जीव विशिष्ट शरीर कारण है। शरीर प्रत्यक्ष है। जीव विशिष्टता प्राणादिमत्त्वात् हेतुसे सिद्ध है॥

कदाचित् आप कहें कि घासादिक भी जगत्रूपी पक्षमें गर्भित होनेसे व्यभिचार दोष नहीं है। तो सो भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा माननेसे अनैकान्तिक हेत्वाभासके उच्छेदका प्रसङ्ग आवेगा। धूमवान् वन्हेः इस अनुमिति में अङ्गार या अयोगोलकमें व्यभिचार दिया जाता है उस अयोगोलकादि को पक्षमें गर्भित करलेंगे तो वन्हि हेतु भी सद्हेतु हो जाना चाहिये। दूसरे अवयव संयोगकी कर्तृजन्यके साध्य व्याप्तिमें कोई प्रमाण नहीं है क्योंकि पवनादिक निमित्त से भी अवयवोंमें संयोग होजाता है। जैसे कि मारवाड़ में रेतके बड़े २ टीले। किन्तु अवयव संयोगकी क्रियाके साथ व्याप्ति है कर्तृजन्यके साथ नहीं। आपने जो घड़ीका दृष्टान्त दिया सो महाशय जी! हम पहिले ही लिखचुके हैं कि संसारमें दो प्रकारके कार्य हैं। आपके दिये

हुये विकारित्व और सावयवत्व अकर्तृजन्य भी कार्योंमें व्याप्ति होनेसे अनैकान्तिक है। घड़ीका दृष्टान्त कर्तृजन्य कार्योंमें है। हमारा ऐसा नियम नहीं है कि सब ही कार्य अकर्तृजन्य हैं। घड़ी आदिक कर्तृजन्य है और पाषाणादिक अकर्तृजन्य है। पुनः आपने लिखा कि "यदि परमाणुमें गति नैमित्तिक है तो उस निमित्तका नाम बतलाइये।

उत्तर—परमाणुओंकी गतिमें सूक्ष्मवायु आदिक है और सूक्ष्मवायु आदिककी गतिमें भी कारण लब्धिविशिष्ट जीवके संसृष्ट विहायगति नाम कर्मका उदय आदि कारण है। निमित्ताद् भवं नैमित्तिकम्। यह अन्वर्थ लक्षण है॥

पुनः आपने सूर्य चन्द्रादिकमें संयोग और वियोग वृद्धि तथा क्षयद्वारा सिद्ध किये सो सूर्य चन्द्रादिकमें वृद्धि और क्षय किसी प्रमाणसे सिद्ध कीजिये। वृद्धिक्षय उनमें नहीं दीखते इसलिये संयोग वियोग भी असिद्ध है। ईश्वर जन्यत्व तो सर्वथा असिद्ध है।

पुनः आपने लिखा कि "प्रत्येक वस्तुकी दो सीमा होती हैं। एक आदि दूसरा अन्त, जबतक एक सीमा वाली वस्तु प्रत्यक्ष न हो तबतक आपका कथन न्यायके विरुद्ध होगा।" सो महाशय जी! आपका यह कहना अविचारितरम्य है। प्रागभाव अनादि सान्त और ध्वंस सादि अनन्त माना है। जैसे बीजके भुन जानेपर बीजवृक्षको सम्बन्ध अनादि सान्त माना है। वा कोई मुर्गी अगर बिना अण्डे दिये मरजाय तो उसकी भूत सन्तानका अनादि सान्त सम्बन्ध होगा। इस प्रकार आपके दोनों हेतु अनेक दोषोंसे दुष्ट हैं। विचार कर कोई ऐसा निर्दोष हेतु दीजिये जो आपकी साध्य सिद्धि करनेमें समर्थ हो।

भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

ओ३म्

(ख) पत्र नं० ३ का उत्तर। ता० २८। ८। १२
आर्यसमाज अजमेर

श्रीमान् महाशय! नमस्ते।

रूपान्तर प्रतिपत्ति ये लक्षण परिणाम का है, अवयवान्तर प्रतिपत्ति ये लक्षण विकारका है, क्रोधादि धर्म जीवके किस निमित्तसे हैं? कर्म मल क्रोधादिकका किस प्रकारका कार्य है, पुद्गलद्रव्य भी मनकी भांति जड़ ही है, जो जीवके अन्दर जा नहीं सकता और न निमित्तके लक्षणमें आसकता है,

सूर्यकी किरणोंका आना और जाना प्रत्यक्ष है, उसमें अवयवोंका संयोगसिद्ध है क्योंकि वृद्धि और क्षय प्रत्येक कार्यमें प्रत्यक्ष हैं । इस वास्ते यदि सूर्यमें किरणोंका संयोग वियोग न होता तो किरणोंका आना जाना संसारमें असम्भव था, और जिससे प्रकाश भी नहीं फैल सकता, सूर्यकी किरणोंका संसारमें प्रकाश फैलाना इस बातको सिद्ध करता है कि सूर्यमें अवयवोंका वियोग होता है । और जहां संयोग नहीं वहां वियोग हो नहीं सकता, । इसलिये सूर्य चन्द्रादिमें सावयवत्व और विकारित्व हेतु शब्द संदेहत्वाभास नहीं किन्तु सिद्ध है । जब मनुष्यकी आकृति व्यक्तिके अपेक्षा सादि है तो उसका कार्य्य होना सिद्ध है । और आकृति का कर्ता जो मनुष्यमें पाई जाती है सिवाय चेतन सर्वज्ञके दूसरा नहीं हो सकता, ऐसा कोई समय नथा जिसमें मनुष्य न हों, इस हेतु शून्य प्रतिज्ञाका करना न्यायसे विरुद्ध है, जो क्रोधादि जीवमें होना अभिप्रेत है ।(दूसरा जीवके अमूर्त्ति होने से उसकी रूपान्तर प्रतिपत्ति कहना युक्ति शून्य है) रूप अग्निका गुण है, जिसमें अग्नि न हो उसमें रूप नहीं हो सकता । जिसमें रूप ही नहीं उसमें रूपान्तर प्रतिपत्ति कैसे ? अवस्थान्तर प्रतिपत्ति परिणामका लक्षण किस आचार्य ने किया है ? ये लक्षण तो कार्यका है, आपका विकार परिणाम पर्याय अवस्था को एकार्थ वाचि शब्द कहना लक्षणोंकी अनभिज्ञताका द्योतक है । संसारमें जितने पदार्थ हैं सब स्वभावसे परिणमन शील हैं, ये प्रतिज्ञा है इसका हेतु और उदाहरण आपने कोई नहीं दिया । इस वास्ते ये असिद्ध है, जब विकारका लक्षण अवयवान्तर प्रतिपत्ति है तो घटमें कैसे घट सकता है ? आकाशके प्रदेश हैं और उनमें संयोग है तो वो कार्य होगा, नित्य नहीं रहेगा, यदि संयोग शून्य हैं तो एक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशका भेदक कौन है, जिसमें वृद्धिक्षय स्वभावसे न हो उसको विकारवान् कहना लक्षणोंसे अनभिज्ञता है । जीवी सृष्टिमें है विकार नहीं पाये जाते हैं । क्योंकि जीव परमाणु लेकर कार्य करने में असमर्थ है, जब सूर्य चन्द्रमें किरणोंका आना जाना समस्त पदार्थ विद्याके विद्वान् स्वीकार करते हैं तो आपका उसको सिद्ध न मानना केवल हठ है । जिस में हेतु का लक्षण पाया जाय वो हेतु है उभय पक्षमान होना हेतुका किस न्याय सूत्रमें है ? हेतुसे साध्य सिद्ध होता है, यदि हेतु स्वयं साध्य है तो साध्य संदिग्धाभास है, हेतु नहीं तो वह हेतुके लक्षणमें नहीं आसकता ।

महर्षि गौतमने न्यायदर्शनमें हेतुका ये लक्षण किया है (उदाहरण साधर्म्यात्साध्यसाधनहेतुः) न्यायदर्शन सूत्र ३४ अ० १ आ० १

यदि कोई हेतु शास्त्रके ज्ञानसे शून्य किसी ऐसे हेतुको जिसमें हेतुका लक्षण घटता हो, हटसे न माने तो उसके न माननेसे हेतु असिद्ध नहींहोगा हां उसमें हेतुके लक्षण न पाये जाने से असिद्ध हो सकता है। शब्द प्रमाण से और उसके अवयवोंके निकलने और दाखिल होने, रूप विकारसे पहले विकार अर्थात् सूर्य चन्द्रादि उत्पत्ति का अनुमान होता है जब शब्द अनुमान दोनों प्रमाणोंसे और प्रत्यक्षमें किरणोंके आने और जाने से सूर्य चन्द्रादिमें संयोग वियोग सिद्ध है तो आपका बिना किसी हेतुके उनको असिद्ध बताना योग्य नहीं, घास आदि सावयव कार्य भी ईश्वर जन्य हैं जिस नियमसे उसने सूर्य चन्द्रादिको नियम पूर्वक चलाया है उसी नियमका यह फल है। जैसे घड़ी साज़ घड़ीका चलाना चाबी देनेवालेकी क्रियासे है। ऐसे ही घड़ीके घंटोंका बजना भी उसी नियमसे घड़ीसाज़का ही काम है। आपने जो घासके कर्ता प्रत्यक्ष न होने से उसका निषेध किया है ये ठीक नहीं। क्योंकि आठ दशाएं ऐसी हैं जिनमें वर्तमान चीज़ भी प्रत्यक्ष नहीं होती। अति समीप होने से जैसे आंखमें सुरमा, होता है नज़र नहीं आता। अति दूर होने से, जैसे लन्दन यहांसे नज़र नहीं आता, अति सूक्ष्म होने से, जैसे परमाणु नज़र नहीं आता। अति स्थूल होने से, जैसे हिमालय पहाड़ होते हुए भी सारा प्रत्यक्ष नहीं होता। इन्द्रियमें दोष होने से, जैसे अन्धेको सूर्य नज़र नहीं आता। व्यवधान होने से, जैसे दिवार की ओट की चीज़ नज़र नहीं आती। इन्द्रि और मनका सम्बन्ध न होने से, जैसे कहते हैं देखा? उत्तरमें कहा जाताहै कि मेरा ख्याल नहीं था आठवें अभिभव होने से, जैसे दिनमें जुगनू नज़र नहीं आते। संयोगके पाकज गुण होनेसे बिना कर्ताके संयोगका होना ही असंभव है। मारवाड़में जहां बालूके टीबे बनते हैं क्या वहां बालूमें संयोग होताहै? पता लगता है कि आपने संयोगके लक्षणका विचार ही नहीं किया। जैसे घड़ीमें नियम पूर्वक चक्कर उसके ज्ञानवान् कर्ता जन्य होने का बोधक है,ऐसे ही सूर्य चन्द्रादिक के नियम पूर्वक चक्र उनके कर्त्ता सर्वज्ञका बोधक है। क्या घास और सूर्य चन्द्रादि चक्रको क्या आप एकसा मानते हैं? अकर्तृजन्यकार्य कोई होता ही नहीं आप किस प्रमाणसे कहते हैं? कार्य शब्दका अर्थ तो वि-

चारिये ? घास आदिक अकर्तृजन्य हैं ये आपकी प्रतिज्ञा है । इसको पहले पंचावयवसे सिद्ध करिये ? परमाणुओं की गतिमें सूक्ष्म वायु आदि निमित्त हैं तो क्या आप वायुके परमाणु नहीं मानते ? यदि वायुके परमाणु हैं तो जीव के कर्मका उनके साथ क्या सम्बन्ध है, जिनसे वो उनके निमित्त होते हैं । ज़रा विचारिये तो सही, जीवके कर्म पुद्गलके सम्बन्धाधीन हैं, और वायु आदिक की गति जीवके कर्माधीन है । इसमें अन्योन्याश्रय दोष है, ज़रा इस दोषको दूर करके आपने जो नैमित्तककी व्युत्पत्तिकी है, यदि आप उपाधिक नैमित्तक और पाकज गुणोंका विवेक रखते तो ये नहीं लिखते । सूर्य चन्द्रादिमें किरणोंके निकलने से सब प्रत्यक्ष है, क्या अभाव भी कोई पदार्थ होता है ? (आपके छै द्रव्योंमें अभाव किसके अन्तर्गत है ? महाशय ! जो प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव दो नहीं हैं । नैय्यायिक कार्य्यकी अपेक्षासे एक ही अभाव को तिरोभूत और आविर्भूत होने से उपचारसे कहते हैं) यदि आप विशेष विचार करें तो बीजकी उत्पत्तिके पूर्व जो अभाव था, उसको कार्य्यने आकर ढांप लिया । अब जब कार्य्य नाश होगया तो वो पहला अभाव फिर प्रकट हो गया । इसलिये कोई भाव पदार्थ एक किनारे वाला दिखाइये ?

जब तक आप संसारमें एक सीमा वाली किसी वस्तु का दृष्टान्त न दें तब तक आपका पक्ष गिरा हुआ ही रहेगा । ज़रा प्रागभाव और ध्वंसाभावको दृष्टान्तके लक्षणमें लाकर तो दिखाइये ? ।

भवदीय—मन्त्री जयदेव शर्मा

——०——

॥ वन्दे जिनवरम् ॥

(ख) नं० ४

श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा इटावा ।

महाशयवर ! ता० १४ । ९ । १२

जुहार के अनन्तर निवेदन है कि:—

आपने लिखा कि "रूपान्तर प्रतिपत्ति यह लक्षण परिणामका है अवयवान्तर प्रतिपत्ति यह लक्षण विकारका है,, सो कृपानाथ ! आपने अपने १८ जुलाई के पत्रमें रूपपरिवर्तनको विकार लिखा है और परिणामका लक्षण अवस्था बदलना लिखा है और अब आप कुछ और ही लिखते हैं अब फरमाइये कि

आपके कौनसे वाक्य सच्चे माने जांय । पुनः आपने लिखा कि "क्रोधादिधर्म जीवके किस निमित्तसे हैं ? कर्म मल क्रोधादिकका किस प्रकार का कार्य है पुद्गल द्रव्य भी मन की भांति जड़ ही है जो जीवके अन्दर जा नहीं सकता और न निमित्तके लक्षणमें आसकता है,, इस प्रश्नका उत्तर हम कई बार लिख चुके हैं खेद है कि आपकी समझमें नहीं आता अब पुनः लिखते हैं जीवका एक चारित्र संज्ञक गुण है वह चारित्र गुण कर्ममलके निमित्तसे विकृत भावको प्राप्त होता है चारित्रगुणको विकृत भावको क्रोधादिक कहते हैं चेतन जीव और जड़ कर्मका एक क्षेत्रावगाह रूप हल्दी और चूनेकी तरह बन्धसंबंध है जिस प्रकार हल्दी और चूनेकी विकृति परिणति राग होती है उसी प्रकार जीव और कर्म की विकृत परिणतिको क्रोधादिक कहते हैं पुनः आपने लिखा कि "सूर्य की किरणोंका आना और जाना प्रत्यक्ष है इत्यादि ,, सो महाशय जी सूर्यकी किरण न कहीं आती और न कहीं जाती हैं किन्तु हमेशा सूर्यके साथ रहती हैं यदि सूर्यकी किरणें यहां रह जातीं तो सूर्यके चले जाने पर भी यहां रातको उद्योत रहता परन्तु रातको उद्योत नहीं रहता इससे सिद्ध होता है कि किरणें सूर्यके साथ ही चली जाती हैं इसलिये सूर्यमें अवयवोंका वृद्धिक्षय कुछ भी न रहने से उसमें विकारित्व और सावयवत्व हेतु भी नहीं हैं इस लिये विकारित्व और सावयवत्व हेतु साध्यसमहेत्वाभास है

पुनः आपने लिखा कि "जब मनुष्यकी आकृति व्यक्तिकी अपेक्षा सादि है तो उसका कार्य होना सिद्ध है,, सो यह हमको इष्ट है मनुष्यकी आकृतिको कार्य मानते हैं तथा आपने लिखा कि "आकृतिका कर्ता जो मनुष्यमें पायी जाती है सिवाय चेतन सर्वज्ञके दूसरा नहीं हो सक्ता,, सो आपका यह हेतु शून्य लिखना न्यायके विरुद्ध हैं जैसा जिसका उपादान कारण होता है वैसा ही उसका कार्यभी होता है जिस प्रकार चनेके बीजसे चने का पौदा होता है उसी प्रकार मनुष्यके बीजसे मनुष्याकार शरीर होता है आपकी यह प्रतिज्ञा हेतु शून्य हैं कोई हेतु दीजिये तो मालूम पड़े । पुनः आपने लिखा कि " ऐसा कोई समय न था कि कोई मनुष्य न हो इस हेतु शून्य प्रतिज्ञा का करना न्यायसे विरुद्ध है,, सो आपका ऐसा लिखना भी ठीक नहीं है क्योंकि यह बात न्यायसे सिद्ध है कि बिना पुरुष स्त्रीके संयोगके मनुष्यकी

उत्पत्ति नहीं हो सकी यदि पहले किसी समयमें मनुष्यका अभाव होता तो पीछे मनुष्यकी उत्पत्ति बिना मा बापके कैसे हुई बिना मा बापके मनुष्यकी उत्पत्ति होनेसे कार्य कारण भावका भंग होता है ॥

पुनः आपने लिखा कि "जीवके अमूर्त्ति होने से उसके रूपान्तर प्रतिपत्ति कहना युक्ति शून्य है,, सो भी आपका कहना ठीक नहीं है क्योंकि संसारी जीवका अनादि कालसे मूर्त पुद्गल कर्मोंसे बन्ध हो रहा है और बंधमें बन्ध्यबन्धक पदार्थोंका कथञ्चित् एकत्व होता है इसलिये संसारी जीव मूर्त है। पुनः आपनेलिखा कि "रूप अग्निका गुण है जिसमें अग्नि न हो उसमें रूप नहीं होसकता और जिसमें रूप नहीं उसमें रूपान्तर प्राप्ति कैसे?" सो महाशय जी! आमका फल हरा होता है और हरेसे फिर पीला हो जाता है इसलिये आममें रूपान्तर प्रतिपत्ति तो है किन्तु अग्नि नहीं है क्योंकि वहां अग्निका लक्षण उष्णस्पर्श नहीं है कहिये महाराज! आंखोंसे ऐसी वेतुकी हांकने लगे। पुनः आपने लिखा कि "अवस्थान्तर प्रतिपत्ति परिणामका लक्षण किस आचार्यने किया है" सो महाशयजी! आपके १८ जुलाईके पत्रमें जो प्रथम पैरेग्राफ है उसमें आपने लिखा है कि "आप कोई ऐसी वस्तु बतलावें जिसमें प्रथम विकार उत्पत्ति न हो और तृतीय विकार परिणाम (अवस्था बदलना) पायाजावे" कहिये महाशय! जब परिणामके आगे ब्रेकिटमें अवस्था बदलना लिखा है तो क्या अवस्थाका बदलना परिणामका लक्षण नहीं हुआ? खेद है कि आप अपने पूर्वलिखित लेखको भी स्मरण नहीं रखते ॥

पुनः आपने लिखा कि "आपका विकार परिणाम पर्याय अवस्थाको एकार्थवाची शब्द कहना लक्षणोंकी अनभिज्ञताका बोधक है" सो आपकी समझकी भूल है क्योंकि आप विकार परिणाम आदिके जितने लक्षण करते हैं सबमें अवस्थासे अवस्थान्तर होना पाया जाता है।

और आपने पदार्थोंके परिणमन सिद्ध करनेमें हेतु और उदाहरण पूछा सो सुनिये "षड्द्रव्याणिपरिणमनशीलानि द्रव्यत्वात् आम्रफलवत्" विकार का लक्षण अवयवान्तरप्रतिपत्ति हम नहीं मानते किन्तु अवस्थान्तर प्रतिपत्ति विकारका लक्षण है वह मृत्तिकासे घट बनने पर सुस्पष्ट घटित होता है।

आगे आपने लिखा कि आकाशके प्रदेश हैं और उनमें संयोग है तो वह कार्य होगा नित्य नहीं रहेगा इत्यादि" सो महाराज! उस द्रव्यके और आ-

काशके प्रदेशोंके संयोगको अनित्यत्व होगा एतावता आकाशको अनित्य कहना भ्रममूलक है आपके यहां जीव और प्रकृतिका संयोग अनित्य मानागया है क्योंकि जीवकी मुक्ति हो जाने पर वह नष्ट भी हो जाता है एतावन्मात्र क्या जीव और प्रकृति अनित्य हो जायंगे ? पुनः आपने लिखा कि "जिसमें वृद्धिक्षय स्वभावसे न हो उसको विकारवान् कहना लक्षणोंसे अनभिज्ञता है" सो यह आपका विपरीत न्याय है वृद्धि और क्षय ये दो विरुद्ध धर्म किसी के स्वाभाविक हो ही नहीं सके क्योंकि वृद्धिको स्वाभाविक मानोगे तो वह पदार्थ बढ़ता ही चला जायगा और क्षयको स्वभाव मानोगे तो वह पदार्थ बिलकुल क्षीण होता हुआ नष्ट हो जायगा वृद्धि और क्षय ये किसी पदार्थके स्वाभाविक धर्म ही नहीं हैं यदि वृद्धिको स्वाभाविक धर्म मानोगे तो सत्के उत्पादका प्रसंग आवेगा और यदि क्षयको किसीका स्वाभाविक धर्म मानोगे तो सत्के विनाशका प्रसंग आवेगा वृद्धि और क्षय किसी पदार्थके होते ही नहीं हैं किन्तु दूसरे पदार्थके संयोगको वृद्धि और संयुक्तके वियोगको क्षय कहते हैं । संयोग और वियोग कोई स्वाभाविक धर्म नहीं हैं किन्तु नैमित्तिक पर्याय हैं ॥

पुनः आपने लिखा कि "जीवी सृष्टिमें विकार नहीं पाये जाते हैं क्योंकि जीव परमाणुसे लेकर कार्य करनेमें असमर्थ है" यह आपकी प्रतिज्ञा हेतु उदाहरणके विना अप्रमाणोभूत है जब कि हमने पहले आपके माने हुये विकारके अवयवान्तर प्रतिपत्ति लक्षणमें दोष दिया था कि एक कारीगर ने महलके ऊपर अट्टा बनाया यहां अवयवान्तर प्राप्ति तो है और कारीगरने बनाया है इस लिये जीवकी सृष्टि भी है फिर भी आप जीवकी सृष्टिमें विकार नहीं मानते यह क्या राजाज्ञा है ?

पुनः आपने लिखा कि "जिसमें हेतुका लक्षण पाया जाय वह हेतु है इत्यादि" सो हेतुकी विवेचना तो जब तक हेतुकी सत्ता सिद्ध नहीं है तब तक होनी ही क्रम विरुद्ध है प्रथम जहां जिस हेतुसे साध्यकी सत्ता अनुमित करनी है वहां हेतुकी वृत्ति सिद्ध कर लीजिये सूर्यादिकमें अवयवान्तर प्रतिपत्तिरूप हेतु नहीं है इसीसे साध्यसम हेत्वाभास है सूर्यकी किरणोंका आना जाना सर्वथा स्वाभिक प्रत्ययवत् है किरणें सूर्यका स्वरूप ही हैं सूर्यके आने जानेमें किरणें उसके साथ ही हैं ।

आगे आपने बहुत अंड बंड असम्बद्ध प्रलाप किया सो मालूम पड़ता है कि हमारे दिये हुये दोषोंका तो आपने स्पर्श भी नहीं किया है हमने लिखा था कि अवयव संयोग की व्याप्ति क्रिया के साथ है क्रिया चेतन और अचेतन दोनोंसे हुआ करती है यथा जलं वहति मेघोवर्षति इत्यादि व्याकरणनिष्पन्न क्रियाओंके कारक जलादिक नहीं है इस लिये आपका अवयव संयोग रूप हेतु जलादिकोंमें भी व्याप्त होनेसे व्यभिचारी है। चाक्षादिक में ईश्वरके प्रत्यक्ष न होनेमें आपने "अतिदूरात्सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात् सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात्समनाभिहाराच्च" इस कारिकाका अर्थ लिखा सो इनमें से किस हेतुसे आप ईश्वरका प्रत्यक्ष नहीं मानते प्रथम आप ईश्वरको तो सिद्ध करलीजिये बाद में सूक्ष्मता आदि हेतुसे उसका अप्रत्यक्ष बतलाना। अभीतक तो हेतुमें साध्यसम व्यभिचार का वारण कीजिये अस्तु आपने ईश्वर और जगत्का कार्यकारण भाव माना सो-"अन्वयव्यतिरेक गम्योहि कार्यकारण भावः" ऐसा न्यायका सिद्धान्त है जहां कार्य कारण भाव होता है वहां अन्वय व्यतिरेक भाव अवश्य होता है क्योंकि कार्य कारण भाव व्याप्य है और अन्वय व्यतिरेक व्यापक है यदि विना अन्वय व्यतिरेक के भी कार्यकारण भाव मानलोगे तो आकाश को भी कारणता की आपत्ति होगी इस लिये ईश्वर और जगत्में अन्वयव्यतिरेक अवश्य मानना पड़ेगा ईश्वरमें व्यतिरेक सर्वथा नहीं घटता क्योंकि व्यतिरेक क्षेत्र व्यतिरेक और कालव्यतिरेक दो भेदोंमें विभक्त है जब कि आप ईश्वरको व्यापक मानेंगे तो "यत्र यत्र ईश्वरो नास्ति तत्र तत्र जगन्नास्ति" ऐसा क्षेत्र व्यतिरेक नहीं बनेगा तथा ईश्वरको आप नित्य मानते हैं अतः "यदा यदा ईश्वरोनास्ति तदा तदा जगन्नास्ति" यह काल व्यतिरेक भी नहीं बनेगा और जब व्यतिरेक नहीं बनेगा तो अन्वयका भी संदेह है क्योंकि जैसे आप अन्वयसे ईश्वरको सिद्ध करेंगे तैसे ही आकाशको जगत्कर्तृत्व क्यों नहीं ? एवं विनिगमना विरह होनेसे किसीको भी जगत्कर्तृत्व सिद्ध नहीं हो सकता जबकि आकाश जीवात्मा और ईश्वर ये तीनों ही वैशेषिक मतानुसार व्यापक हैं तो ईश्वरके ही कुम्भे जगत् कर्तृत्व आया इसमें नियामक क्या है यदि आकाश जीवात्माकी अपेक्षा सूक्ष्म है तो अमूर्त्तिक आकाश ईश्वरादिकमें स्थूलता और सूक्ष्मताका नियामक क्या क्रिया चेतनजन्य ही होती है इस हेतु शून्य प्रतिज्ञाको सिद्ध कीजिये नदी बहती है जीर्ण मकान गिर गया .क्या यहां भी आपको दिव्य

दृष्टि में चेतन कर्ता नजर आता है ? यदि मकानका गिरना आदि भी ईश्वरका स्वाभाविक धर्म है तो इतर मकानों को क्यों नहीं गिरा देता ?

आगे आपने लिखा कि "संयोगके पाकज गुण होनेसे विना कर्ताके संयोगका होना ही असम्भव है,, सो महाशय जी ? यदि संयोग पाकज होना मानोगे तो पटमें तंतु संयोग कौन सी अग्निके संयोगसे हुआ है क्योंकि पाक शब्दका अर्थ अग्नि संयोग है यह सिवाय पक्व घटादिकके अन्यत्र पुस्तक पट आदि द्रव्यों में बिलकुल असम्भव है दूसरी बात यह है कि संयोग को पाकज कहने से कर्तृजन्यत्व का उससे क्या संबन्ध है एक नदीका जल दूसरी नदीमें संयुक्त होनेसे कौनसे कर्तासे जन्यमाना जायगा पाकजगुण अग्निसंयोगसे पैदा होगा या कर्तासे इस वदतोव्याघातका आप समाधान करिये।

पुनः आपने लिखा कि "मारवाड़में जहां वालूके टीले बनते हैं क्या वहां वालूमें संयोग होता है ? मालूम पड़ता है कि आपने संयोगके लक्षण का विचार ही नहीं किया सो महाशय ? आप संयोगका लक्षण करके अव्याप्ति आदिक दोष देते तो आपका लिखना ठीक भी समझा जाता अब न जाने हम नहीं लक्षण जानते या आप ही बिलकुल लक्षण नहीं समझते क्या आपने मारवाड़के टीलोंमें परस्पर परमाणुओंका समवाय सम्बन्ध समझ रखा है वहां "अप्राप्ति पूर्विकाप्राप्तिः संयोगः" यह संयोगको लक्षण सुस्पष्ट रीतिसे घटित होता है ? इस लिये हमने पहले जो दोष दिया था कि अवयव संयोग विना चेतन कर्ताके वायु आदिसे टीलोंमें हो जाता है उस पर लक्ष्य देकर वारण कीजिये।

आगे आपने पूछा कि "अकर्तृजन्य कोई कार्य होता ही नहीं आप किस प्रमाणसे कहते हैं" उत्तर में वक्तव्य है कि अकर्तृजन्य कार्य होना प्रत्यक्ष ही से सिद्ध है जो कि नदी बहना वायु चलना मेघ बरसना घास आदि हम पहले कह चुके हैं जब कि ये प्रत्यक्ष सिद्ध ही हैं तो पंचावयव वाक्यसे सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष विषयमें अनुमान प्रवृत्ति व्यर्थ कही है।

आगे आपने लिखा कि "परमाणुओंकी गतिमें सूक्ष्म वायु आदि निमित्त हैं तो क्या आप वायुके परमाणु नहीं मानते इत्यादि"

उत्तर में निवेदन है कि संसारी जीवोंके पांच भेद है एकेंद्रिय द्वीन्द्रिय

त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय एकेन्द्रियके पांच भेद हैं पृथ्वी अप् तेज, वायु, वनस्पति, इनमें से एकेन्द्रियका वायुकायिक भेदका शरीर वायु स्वरूप है उस जीवके जो विहायोगति नामा कर्म सम्बन्ध है उससे गति होती है।

पुनः आपने लिखा कि "जीवके कर्म पुद्गल के सम्बधाधीन हैं और वायु आदिक ही गति जीवके कर्माधीन हैं इनमें अन्योन्याश्रय दोष है" यह आपका लिखना सर्वथा असंगत है अन्योन्याश्रय दोष वहां हुआ करता है जहां दो पदार्थोंमें एक दूसरे के आधीन हुआ करता है जैसे एक गुजराती ताला जो कि बिना ताली के लग जाता है उसकी ताली कोठेमें भीतर रह गई और ताला बाहरसे बन्द कर दिया गया यहां तालेका खुलना तालीके निकलनेके आधीन और तालीका निकलना तालेके खुलनेके आधीन इस तरह अन्योन्याश्रय दोष होता है आपने अन्योन्याश्रय दोष लिखा उसे बांचकर हंसी आती है और साथ ही ऐसी छोटी २ बातें समझानेके लिये बाधित भी होना पड़ता है॥

पुनः आपने लिखा कि "क्या अभाव भी कोई पदार्थ होता है आपके द्रव्योंमें अभाव किसके अन्तर्गत है महाशय जी? प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव दो नहीं हैं नैयायिक कार्य की अपेक्षासे एकही अभावके तिरोभूत और आविर्भूत होनेसे उपचारसे कहते हैं यदि आप विशेष विचार करें तो बीज की उत्पत्तिके पूर्व जो अभाव था उसको कार्यने आकर ढांप लिया अब जब कार्यनाश हो गया तो वो पहला अभाव फिर प्रकट हो गया इस लिये कोई भाव पदार्थ एक किनारे वाला दिखाइये?" सो महाराज? आपका यह पूर्वापर विरुद्ध लिखना कब तक चलेगा प्रथम तो आप कहते हैं कि अभाव कोई पदार्थ नहीं हैं पुनः लिखते हैं कि अभावका आविर्भाव होता है क्या अवस्तुका भी कोई आविर्भावक और तिरोभावक हुआ करता है हम द्रव्य का लक्षण अनंत गुण समुदाय मानते हैं गुण समुदायसे अतिरिक्त कोई पदार्थ नहीं है गुण दो तरहके हैं एक अनुजीवी दूसरे प्रतिजीवी भावात्मक गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं और अभावात्मक गुणोंको प्रतिजीवी इस लिये हम अभावको द्रव्यका धर्म स्वीकार करते हैं यदि प्रागभाव द्रव्यका धर्म न होता तो घटकी उत्पत्तिके पहले भी घट क्यों नहीं पैदा हुआ? इस लिये प्रागभाव न माननेसे कार्यको अनादित्वका प्रसंग आवेगा और यदि प्रध्वंसा-भाव नहीं मानोगे तो घटके फूटने पर भी घटकी सत्ता रहनी चाहिये त-

साथ घटको अनंतत्वका प्रसंग आवेगा यदि अन्योन्याभाव न माना जाय तो घटादिक अपनेको दूसरेसे भिन्न नहीं कर सकेंगे तथाच सर्व पदार्थोंका परस्पर महासांकर्य दोष उपस्थित हो जायगा और यदि अत्यन्ताभाव न मानोगे तो जड़के भी चैतन्यका संसर्ग या आकाशके फूलका भी प्रसंग आवेगा इस लिये अभावको पदार्थ मानना आवश्यक है आगे आपने "एक किनारे वाला भाव पदार्थ पूछा" सो समझिये सुवर्ण और पाषाणका संयोग अनादि है तपाने पर उस संयोगका नाश हो जाता है और संयोग भाव पदार्थ है ।

भवदीय—मंत्री चन्द्रसेन जैन वैद्य

(ख) नं० ४ का उत्तर ॥ ओ३म् ॥ आर्यसमाज अजमेर

ता० २५ । ९ । १२

श्रीमान् महाशय जी, नमस्ते !

जीवका गुण चारित्र है या कर्म ? यदि चारित्र गुण होता तो नित्यजीव के साथ रहता परन्तु सुषुप्ति अवस्था में चारित्र प्रतीत नहीं होता, इसलिये वो कर्म है गुण नहीं । जीव और जड़ कर्मका हल्दी और चूनेकी तरह बन्ध संबन्ध है, ये दृष्टान्त विषम है, गुण गुणीमें आवरण आने का दृष्टान्त देना चाहिये । हल्दी, चूना दोनों द्रव्य हैं, आनन्द गुण और जीवके दरम्यानमें अवकाश कहां ? जिसमें जीव कर्मकी स्थिति हो सके । चेतन नित्यमें विकृति होती है । इस प्रतिज्ञाको पंचावयवसे सिद्ध करिये ।

यदि सूर्य्यकी किरणें संसारमें न आतीं जातीं तो चक्षुका सूर्य्यका सम्बन्ध कैसे होता ? और संसारमें अग्नि कहांसे आती ? रातको उन्हीं सूर्यकी किरणोंकी बनी हुई अग्नि संसारमें प्रकाश करती है, आप किसी हेतुसे सूर्यादिकोंका निरवयव और विकार शून्य होना सिद्ध कीजिये । जैसा जिसका उपादान कारण होता है, कार्य्यमें ऐसे ही गुण आते हैं । परन्तु आकृति आती है, इसके लिये नियामक क्या है, मट्टी घटका उपादान कारण है, घटका आकार मट्टीके सदृश नहीं । कुम्हारके ज्ञानके मुताबिक एक ही उपादान कारण मट्टीसे भिन्न २ आकृतिमें घड़ा, लोटा, तश्तरी आदि बनते हैं । चनेका दृष्टान्त जो है सो चेतनमें सर्वथा नहीं घट सकता जिस प्रकार पहला सांचा हाथसे बनाते हैं और फिर सांचेसे सांचा बनाते हैं । (२) शिरमें पहली जूं मैलसे पड़ती है फिर जूंसे जूं पैदा होती हैं, ये ही

दृशा सृष्टि भी है, जरा वैशेषिक दर्शनको पढ़िये, बल्कि अयोनिजा बिना नर आपके कर्मवादीके मनुष्य उत्पन्न होते हैं, आपने जो ये लिखा कि संसारी जीवका अनादि कालसे बन्ध हो रहा है, और बन्ध बन्धकमें पदार्थोंका कथञ्चित् एकत्व होता है। इसलिये संसारी जीव मूर्त है यदि आप मूर्तका लक्षण समझ लेते तो ऐसा न्याय विरोध नहीं लिखते। (मूर्च्छितावयवत्वं मूर्तत्वं परस्पर अनुप्रविष्टावयवत्वं मूर्तत्वं) चेतन जीवमें कैसे घट सकता है, यदि कैदी और कैदखाना दोनों हीं का धर्म एक होजाय तो संसारकी सारी व्यवस्था नष्ट हो जाय। इस वास्ते निरवयव अमूर्त जीवमें रूपान्तर प्रतिपत्ति सम्भव ही नहीं। महर्षि कपिलने सांख्यदर्शनमें (रूपादिभिद्यते न तद्वान्) बड़े स्पष्ट शब्दोंमें इस भ्रान्तिका खण्डन किया है, निरवयव चेतन पदार्थ किसी कालमें मूर्त नहीं हो सकता। आगके जलमें जो रूप है वो अग्निका है क्या आगमें गर्मी नहीं या रूप नहीं ? जब आप पुद्गलके चार धर्म पृथ्वीका गन्ध, जलका रस, अग्निका रूप या वर्ण मानते हैं तो आपका ये आगवाला दृष्टान्त अनभिज्ञता का है। परिणामका अर्थ विकारोंमें अवयवों के दाखिल होने और निकलनेसे पारिभाषिक है। जहां अवयव न बदलें और केवल शकलमात्र बदले, अवयव वो ही रहें वहां यौगिक है। आप तीसरे विकारके लक्षण वाला परिणाम मानते हैं, जिसमें वृद्धि क्षय पाये जाते हैं, फिर अवयवान्तर प्रतिपत्ति कैसे नहीं ? अवस्थासे अवस्थान्तर होना विकार और परिणाम दोनोंमें होनेसे विकार और परिणाम एक नहीं हो सकते। क्योंकि दो पदार्थोंमें एक धर्मके मिलजानेसे, वैधर्म्यके होनेसे एकत्व नहीं होता।

विकार शब्द संस्कृतका है, आपके न माननेसे उसका अर्थ दूसरा नहीं हो सकता, और परिणाम शब्द भी संस्कृतका है, इसलिये या तो वे ही परिभाषायें जिसके लिये ये शब्द बनाये गये हैं, वे ही परिभाषायें स्वीकार करनी होंगी। यदि जैनभाषाका शब्द होता तो आप मनमाना अर्थ कर सकते थे, किस शास्त्रमें जीव और प्रकृतिका संयोग अनित्य माना है ? जरा प्रमाण सहित लिखिये, प्रकृति कारण शरीर है जिससे मुक्तिमें भी जीवका सम्बन्ध रहता है। पुद्गलमें दो पदार्थ अग्नि और जल ऐसे हैं जिनसे संयोग द्वारा वृद्धि और वियोग द्वारा क्षय स्वभावसे होता है। इसलिये ये न्याय विरुद्ध नहीं, कार्यमात्रमें छे विकार स्वाभाविक हैं जो सब अवस्थाओंमें अ-

मुद्भूत होते हैं । और अपने समय पर तद्भूत होते हैं, ये दोनों धर्म अपेक्षासे विरोधी नहीं हैं, जायते के बाद वृद्धि । और विप्रकम्यते के बाद क्षय, कार्यमात्रका स्वभाव है । कार्यमात्रमें संयोग और वियोग नियमसे चलरहे हैं। महलके ऊपर अट्टा बनाया वो महलसे बाहिर है, उस महलमें अवयव नहीं बढे इसलिये ओसको सृष्टिमें विकारका दृष्टान्त दीजिये, यह दृष्टान्त आपके पक्षको सिद्ध नहीं करता। सूर्यादिकमें अवयवान्तर प्रतिपत्ति नहीं इस प्रतिज्ञाको पञ्चावयवसे सिद्ध करिये । केवल प्रतिज्ञामात्रसे हेतु—हेत्वाभास नहीं हो सकता । क्रिया दोनोंमें होती है, इसका किसी सच्छास्त्रसे हवाला दीजिये ? अवयवान्तर प्रतिपत्ति उसी आकृतिमें, यदि पायी जावे तो विकार होता है, महल पर अट्टा बनानेसे आकृति भिन्न हो गई। जहाँ आकृति भिन्न हो वहां विकार कैसा ? सूर्यादिकमें अवयवान्तर प्रतिपत्ति नहीं—इस आपकी प्रतिज्ञाका बाधक क्या है ?

सूर्यकी किरणें सूर्यरूप हैं--यह मानकर देशव्यवधानमें क्या हेतु है, क्योंकि किरणें आंखकी वृत्तिको सूर्यके साथ सन्निकर्ष कराने वाली हैं, यदि किरणें ही सूर्य हैं तो पृथ्वी और सूर्यमें अन्तर कैसे कहलावेगा। जितने कार्य हैं सब में अवयव संयोग हेतु व्याप्त है, व्यभिचार वहां होता है, यदि किसी विजातिमें वह धर्म पाया जावे, सूर्य चन्द्रादिक भी कार्य हैं, और जलादिक भी कार्य्य हैं ईश्वर घास आदि से अतिसमीप है इसलिये उसका प्रत्यक्ष नहीं।

क्या ईश्वर शब्द असिद्ध है या ईश्वर शब्दका अर्थ ? यदि ईश्वर शब्द असिद्ध है तो लिखते कैसे हैं, यदि ईश्वर शब्द निरर्थक है तो इस शब्दसे आप किसका प्रतिषेध करते हैं, यदि शब्द सार्थक है तो ईश्वर शब्दका अर्थ सिद्ध ही है।

हेतुमें 'साध्यसम, व्यभिचार, बतलाना भ्रान्ति है क्योंकि न साध्यसमका लक्षण घटता है और न व्यभिचारका । ईश्वरके जगत्का कर्ता और प्रलयका हेतु होने में उसकी संयोगोन्मुख और वियोगोन्मुख शक्तिके साथ जब २ ईश्वरकी शक्ति है, अन्वयव्यतिरेक है । जब २ ईश्वरकी शक्ति संयोगोन्मुख होती है जगत् बनता है । और जब २ वियोगोन्मुख होती है प्रलय होता है, तो ईश्वरकी शक्तिके संयोग और वियोग उन्मुख होनेसे कालव्यतिरेक बनाहुआ है । जब कालव्यतिरेक है तो शक्ति, शक्तिमान्के अभेद होनेसे ईश्वरकी सं-

योगोन्मुख शक्तिको ही ईश्वरकर्ता कहते हैं। जब २ ईश्वरकी शक्ति संयोगो- न्मुख नहीं तब २ जगत् नहीं, जब २ संयोगोन्मुख है तब २ जगत् है, जब २ वियोगोन्मुख नहीं तब २ प्रलय नहीं, जब २ वियोगोन्मुख है तब २ प्रलय है।

जीवात्मा वैशेषिक--मतमें जातिसे विभु और स्वरूपसे परिच्छिन्न है, यदि जीवात्मा विभु होता तो "आत्मसंयोगात् हस्ते कर्म" इस प्रकारके सूत्र जो आत्मा को परिच्छिन्न बतलाते, हैं न होते। आकाश जड़ है, जड़में सं- योग, वियोग करने की विरुद्ध शक्तियां हो नहीं सकती। ईश्वरमें सूक्ष्मताका हेतु प्रत्येक वस्तुमें उसके गुणोंका लाना है। प्रकृतिमें क्रिया और जीवमें आ- नन्द कहांसे आते हैं?

मकानका गिरना जीवके कर्मानुसार ईश्वरके नियमसे (जो स्वाभाविक है) है। इतर मकानोंका न गिरना इस हेतुसे है कि उनके मालिकोंका भोग वैसा नहीं। आपने पाकजगुणकी परिभाषाको ठीक नहीं समझा,। अग्निके संयोगसे पाकज गुण नहीं कहलाते वे पाकज द्रव्य होते हैं। जो कर्ताकी क्रिया से उत्पन्न हों वह पाकज कहलाते हैं। जो अग्नि संयोगसे पैदा होगा वह पाकज द्रव्य होगा। संयोगका लक्षण है जहां आकाशका व्यवधान हो, जिन दो परमाणुओंमें आकाश होगा वहां संयोग नहीं कहलावेगा, और जहां बीच में आकाश न होगा वहां संयोग कहलावेगा। "अप्राप्ति पूर्विका प्राप्तिः सं- योगः-यह लक्षण ईश्वरके साथ और आकाशके साथ अव्याप्त है। वालूरेटीले में यदि संयोग होता तो वियोग कैसे होता? एक ही वायु जो जड़ है उस में संयोग, वियोग स्वभाव नहीं हो सकते, क्योंकि चेतनमें शक्तिके उद्भूत और अनुद्भूतकी सामर्थ्य तो प्रत्यक्ष है। आप जब चाहैं बोलें जब चाहैं न बोलें। अचेतन वायुमें उद्भूत और अनुद्भूत होनेके शक्ति प्रमाणसे सिद्ध कीजिये। नदीका बहना क्या अकर्तृजन्य है? यदि अकर्तृजन्य बहती तो ऊपरको चली जाती। वहां पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति जो नियन्ताके नियमसे काम कर रही है "कर्ता,, है, अकर्तृजन्य नहीं। और वायुके चलनेमें यदि कर्ताका नियम नहीं होता तो न तो ठहरती और न पूर्व, पश्चिम आदि वायु में परिवर्तन होता। मेघका बरसना पृथिवी सूर्यके नियमोंके साथ है, जहां वृक्ष ज्यादा हैं वहां वृष्टि ज्यादा है और जहां नहीं वहां वृष्टि न्यून है। हिमालयकी तराई और राजपूताना अरब आदि देशों को देखिये। आप नियमपूर्वक सृष्टिको "कर्तृजन्य,, कहते हैं। यदि किसी लड़के का पिता मर

जावे और प्रत्यक्ष न हो, या माताके संयोग करके बाहर चला जावे तो क्या उस बालकको आप पिता शून्य और अकर्तृजन्य कहेंगे। ये जो आपने एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय भेद लिखे हैं इसको किस प्रमाणसे सिद्ध करते हैं। और वायु काय, जीव, वायु रूप होते हैं, क्या उनमें वायव्य परमाणुओंके अतिरिक्त अन्य परमाणु नहीं होते? यदि नहीं मानते तो प्रमाणसे सिद्ध कीजिये अभाव कोई पदार्थ नहीं, भावके न होने को ही अभाव कहते हैं। यह पूर्वापर विरुद्ध नहीं। आप वस्तु मूर्तिमान्‌को मानते हैं। अभावकी मूर्ति किस प्रमाणसे सिद्ध है। घटके पूर्व घटमें तीन चीज रहने वाली जाति, आकृति व्यक्ति किसका अभाव था। जाति, आकृति कर्ताके ज्ञानमें थी और व्यक्ति उपादान कारणमें। आप किस अभावको द्रव्यका धर्म मानते हैं। अत्यन्ताभावको? क्या अत्यन्ताभाव भी द्रव्यका धर्म मानते हैं। जिस द्रव्यका धर्म अत्यन्ताभाव होगा तो धर्मके अत्यन्ताभावसे धर्मी भी अत्यन्ताभाव हो जावेगा घटके पूर्व घटकी तीनों वस्तुयें, जाति, आकृति, व्यक्ति मौजूद थी क्या घट को आप मृत्तिका की पर्याय मानते हैं या घटके अभावसे भाव होना।

यदि प्रागभाव न मानने से प्रत्येक कार्य्यको अनादित्व का प्रसङ्ग होता है तो जगत् रूप कार्य्यका आप प्रागभाव मानते हैं? जब जगत् का प्रत्येक अवयव घट, पट, वृक्ष, मनुष्यादिका प्रागभाव सिद्ध है तो उसके समुदायरूप जगत्‌का प्रागभाव आपको मानना ही पड़ेगा।

सोना और पाषाणका संयोग अनादि है यह दृष्टान्त दृष्टान्तके लक्षणों में नहीं आता। क्योंकि "लौकिक परीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं सदृष्टान्तः,, जिस अर्थमें लौकिक और परीक्षकोंकी (दोनोंकी) बुद्धि साम्य हो वह दृष्टान्त कहलाता है। किसी परीक्षकसे तो कहला दीजिये, कि सोने और पत्थरका सम्बन्ध अनादि है।

ऐसे ही धान और चावल का सम्बन्ध अनादि है। इस प्रकार के असङ्गत दृष्टान्त किसी पक्षको सिद्ध नहीं कर सकते। परन्तु उन मत वालोंकी अनभिज्ञता को सिद्ध करते हैं।

भवदीय--मन्त्री रामचन्द्र

———o———

वन्दे जिनवरम् ।

(ख) पत्र नं० ५

श्री जैन तत्त्वप्रकाशिनी सभा—इटावा ।

महाशय ! जय जिनेन्द्र । ता० । १० । १० । १२

आपने लिखा कि "जीवका गुण चारित्र है या कर्म यदि चारित्र गुण होता तो नित्य ही जीवके साथ रहता परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें चारित्र प्रतीत नहीं होता इस लिये वह कर्म है गुण नहीं" सो महाशय जी चारित्र कर्म नहीं किन्तु गुण ही है आपने चारित्रका लक्षण नहीं समझा है इस वास्ते ऐसा लिखते हैं चारित्रका लक्षण इस प्रकार है कि (संसार कारण निवृत्तिं प्रत्यागूर्णस्य ज्ञानवतः वाह्याभ्यन्तर क्रियाविशेषोपरमः सम्यक् चारित्रम्) सो यह चारित्र सुषुप्ति आदिक अवस्थामें भी पाया जाता है ।

पुनः आपने लिखा कि "जीव और जड़ कर्म हलदी और चूनेकी तरह बन्ध सम्बन्ध है यह दृष्टान्त विषय गुण गुणीमें आवरण आनेका दृष्टान्त देना चाहिये हलदी चूना दोनों द्रव्य हैं आनंद गुण और जीवके दर्म्यानमें अवकाश कहां है जिसमें जीव कर्मकी स्थिति हो सके" सो महात्मा जी इसका उत्तर अनेक बार लिख चुके थे परन्तु खेद है कि आपकी समझमें नहीं आता आपके अनुरोधसे पुनः उत्तर लिख जाता है कि गुणोंके अखण्ड समुदायको द्रव्य कहते हैं द्रव्य और गुणमें कोई अवकाश नहीं है और न इसको अवकाशकी जरूरत है जड़कर्म और आत्मा दोनों ये द्रव्य हैं इन दोनों द्रव्योंके एक क्षेत्रावगाह होने परबन्धके यथायोग्य सामग्रीके सद्भावमें जीव और कर्मका बन्ध होता है परगुणाकार परिणामकी क्रियाको बन्ध कहते हैं इस बन्धमें गुण संक्रान्ति होती है जैसे कि हलदी और चूना दो भिन्न द्रव्य हैं इन दोनोंका एक क्षेत्रावगाह होनेपर बन्धके यथायोग्य सामग्रीके सद्भावमें परगुणाकार पारिणामिक क्रिया रूप बन्ध होता है इस बन्धमें हलदी और चूने के पीत और श्वेत गुण संक्रान्त होकर रक्त भावको प्राप्त होते हैं इस प्रकार जीवका चारित्र गुण और पुद्गलका गुण संक्रान्त होकर क्रोधादि पर्याय रूप परिणमन करते हैं दृष्टान्त और दार्ष्टान्तका जो सदृश धर्म विवक्षित है वह आपको खुलासा बतला दिया फिर भी इस दृष्टान्तको विषय कहना भ्रम है पुनः आपने लिखा कि "चेतन नित्यमें विकृति होती है इस प्रतिज्ञाको पं-

चावयवसे सिद्ध कीजिये” सो महाशय जी पंचावयव की प्रवृत्ति अनुमानके विषयमें प्रवृत्त होती है यह तो प्रत्यक्षका विषय है। महात्मा जी द्रव्यमें एक अस्तित्व गुण है उसका सदाकाल सद्भाव रहता कभी भी अभाव नहीं होता है इस लिये नित्य है और इसी लिये प्रत्येक द्रव्यमें भिन्न २ अस्तित्व रहनेसे प्रत्येक द्रव्य नित्य हैं द्रव्यमें द्रव्यत्व संज्ञक एक दूसरा गुण है कि जिसके निमित्तसे (अस्तित्व गुणके निमित्तसे नित्य होने पर भी) प्रतिक्षण एक अवस्थाको छोड़ कर द्वितीय अवस्थाको प्राप्त होता है इस लिये द्रव्य-नित्य है जैसे कि एक ही सोनेके कटक कुण्डल आदि अनेक भूषण बनाये जाने पर सोनेकी अपेक्षा नित्यता और कटक कुण्डलादि अवस्थाकी अपेक्षा अनित्यता है इसी प्रकार जीव द्रव्यका कभी भी अभाव न होनेके कारण जीव द्रव्य नित्य है किन्तु उसके ज्ञानादिक गुण प्रतिक्षण एक २ अवस्थाको छोड़ कर अन्य २ अवस्था को प्राप्त होनेसे अनित्य हैं इस अवस्थासे अवस्थान्तर होनेको ही विकृति कहते हैं अवयवान्तर प्रतिपत्ति विकार यह लक्षण हम को इष्ट नहीं है यह आपका भ्रम है और अपने इस लक्षणसे हमारे सिद्धान्त में बाधा देना सर्वथा असङ्गत है।

पुनः आपने लिखा कि “यदि सूर्यकी किरणें संसारमें न आतीं जातीं तो चक्षुका सूर्यका संबन्ध कैसे होता और संसारमें अग्नि कहांसे आती रात को उन्हीं सूर्यकी किरणोंसे बनी हुई अग्नि संसारमें प्रकाश करती है” उत्तर में निवेदन है कि जब सूर्यकी किरणें यहां पर रातको रहजाती हैं तो उन किरणोंके निमित्तसे जैसा दिनमें प्रकाश था वैसा रातको क्यों नहीं रहता यदि सूर्यकी किरणोंके निमित्तसे अग्नि बनती तो दिन रात बराबर अग्नि जलाही करती और संसारके सभी पदार्थ भस्म हो जाते जब सूर्यकी किरणों से ही अग्नि है तो सूर्यकी किरणें दिनमें जितने क्षेत्र में व्याप्त रहती हैं उतने ही क्षेत्रमें वह अग्नि क्यों नहीं जला करती किसी खास जगह पर ही जलानेसे क्यों जलती है अथवा किसी तहखानेमें जहां कि दिनमें भी सूर्य की किरणें नहीं पहुंचती हैं रात्रिको जलानेसे अग्नि क्यों जलती है यदि सूर्यकी किरणें वहां पहुंच जाती है तो दिन में प्रकाश क्यों नहीं होता कृपा-नाथ ऐसी ऊटपटांग युक्तियोंसे कहां तक टालम टूल करते रहोगे॥

पुनः आपने लिखा है कि “आप किसी हेतुसे सूर्यादिको निरवयव और

विकार शून्य सिद्ध कीजिये,, महाशय जी ! सूर्यादिकको पक्ष करके उनमें ईश्वर कर्तृत्व सिद्ध करनेके लिये सावयवत्व और विकारित्व ये दो हेतु आपने दिये उन दोनों हेतुओंमें हमने जब साध्यसम हेत्वाभास दोष दिया तो आपका कर्त्तव्य है कि उस साध्यसम हेत्वाभास दोषको निवारण करनेके लिये सूर्यादिकमें सावयवत्व और विकारित्व किसी प्रकारसे सिद्ध करते परन्तु आश्चर्य है कि आप सूर्य आदिकमें सावयवत्व और विकारित्वके अभावकी सिद्धि में हमसे प्रमाण मांगते हैं आपको ऐसा लिखना आपकी न्यायानभिज्ञताको सूचित करता है क्या महाराज ! फूंकसे ही पहाड़ उड़ाना चाहते हो ॥

पुनः आपने लिखा कि "जैसा जिसका उपादान कारण होता है कार्यमें वैसे ही गुण आते हैं परन्तु आकृति आती है इसके लिये नियामक क्या है मिट्टी घटका उपादान कारण है घटका आकार मिट्टीके सदृश नहीं कुम्हार के ज्ञानके मुताबिक एक ही उपादान कारण मिट्टीसे भिन्न २ आकृतिमें घड़ा लोटा तश्ती आदि बनते हैं" उत्तरमें निवेदन है कि द्रव्यमें आकृति भी एक गुण है इस लिये उपादान कारणका गुण आकृति भी कार्यमें अवश्य आवेगी कार्यके वास्ते निमित्त कारणकी भी आवश्यकता होती है परन्तु यह नियम नहीं कि वह निमित्त कारण सदा चेतन ही होवे जड़ भी निमित्त कारण होते हैं जैसे मेघकी अनेक आकृतियां बिना ही किसी चेतन निमित्तके वायु आदिसे बन जाती हैं ।

पुनः आपका लिखना है कि "घनेका दृष्टान्त चेतनमें सर्वथा नहीं घट सकता । यह आपका हेतु प्रतिज्ञा शून्य है इसको हेतु उदाहरण आदिसे सिद्ध कीजिये" महाशय जी जन्म तीन प्रकारके होते हैं अर्थात (गर्भ उपपाद सम्मूर्छन) जरायुज अण्डज पोतज इन तीन प्रकारके जीवोंका गर्भ जन्म होता है देव और नारकियोंके उपपाद जन्म होता है जो गर्भज हैं वे बिना माता पिताके नहीं होते शेषके बिना माता पिताके ही होते हैं हमारे सिद्धान्तों को सिद्ध करनेके लिये हम उन्हीं लक्षणोंको काममें लाते हैं जो हमारे सिद्धान्तकारोंने किये हैं तुम्हारे सिद्धान्तकारोंके लक्षणसे हमारे सिद्धान्तोंका जो शंकर करते हो सो बिलकुल अयुक्त है मूर्तका लक्षण हमारे सिद्धान्तकारोंने इस प्रकार किया है कि स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण जिसमें पाये जांय उसे मूर्त कहते हैं इस लिये पुद्गल द्रव्य मूर्त है पुद्गल द्रव्यका और आत्माका अनादि

कालसे बन्ध चला आ रहा है जहाँ बन्ध होता है वहां जिन पदार्थोंका बन्ध होता है दोनों पदार्थोंके गुण संक्रान्त होकर एक रूप हो जाते हैं जैसे कि हल्दी और चूनेकी पीतता और श्वेतता रक्त रूप हो जाती है उसी प्रकार जीव और पुद्गलके बन्ध होनेपर उन दोनोंके गुण संक्रान्त होकर एक रूप हो जाते हैं इस लिये जीवको भी कथञ्चित् मूर्त कहते हैं। सांख्य दर्शन और वैशेषिक दर्शनमें उभय पक्ष मान्य नहीं हैं इस लिये इनको हम प्रमाण में ग्रहण नहीं कर सकते।

आगके जलमें जो आप अग्निका रूप बताते हैं यह आपका भ्रम है क्योंकि उष्ण स्पर्शवत्त्व जो अग्निका लक्षण है वह वहां पर व्याप्त नहीं है।

विकार शब्द और परिणाम शब्द यद्यपि संस्कृत भाषाके हैं परंतु संस्कृत भाषाके होनेसे उन पर आपके आचार्योंका मौरूसीहक नहीं हो सकता जिस प्रकार हमारे आचार्योंके पारिभाषिक शब्दोंको आप नहीं मानते उसी प्रकार आपके आचार्योंके पारिभाषिक शब्दोंको हम भी नहीं मान सकते। मुक्त अवस्थामें जीवके जड़के साथ बिलकुल सम्बन्ध नहीं रहता अन्यथा मुक्तपना ही क्या हुआ अवस्थासे अवस्थान्तर प्राप्तिको कार्य कहते हैं अट्टेको महलका अवयव नहीं कहना आपकी अनभिज्ञताका सूचक है। आपने विकार लक्षण अवयवान्तर प्रतिपत्ति रूप किया था सो महल पर अट्टा बनाने से अवयवान्तर प्रतिपत्ति हो गई फिर विकार क्यों नहीं रहा। आकृत वही रहे तो अवयवान्तर प्रतिपत्ति हो नहीं सकती यह आपका लिखना सर्वथा अयुक्त है सूर्यादिकमें सावयवत्व और विकारित्व है यह आपकी प्रतिज्ञा है इसको हेतु और उदाहरणसे सिद्ध कीजिये केवल प्रतिज्ञासे काम नहीं चलेगा। सूर्यकी किरणें हमेशा सूर्यके साथ रहती हैं जब सूर्य जाता है तब उस के साथ चली जाती है इस लिये किरणोंका सूर्यसे निकलना और रात्रिको यहां रह जाना असंभव है इस लिये सूर्यमें विकार और सावयवत्व सिद्ध नहीं होता सूर्य चन्द्रादिक कार्य हैं यह आपकी प्रतिज्ञा है इसको हेतु और उदाहरणादिसे सिद्ध कीजिये केवल प्रतिज्ञासे साध्य सिद्धि नहीं होती।

ईश्वर अभी साध्य कोटिमें पड़ा हुआ है इस लिये उसका उसे कर्ता कहना युक्ति शून्य है अन्यथा सब व्यभिचारी हेत्वाभासके मूलोच्छेदका प्रसङ्ग आवेगा।

ईश्वर शब्द असिद्ध नहीं है किन्तु ईश्वर शब्दका वाच्य जो आपने जीव राशिसे भिन्न जगत्कर्त्ता सर्वव्यापी माना है वह असिद्ध है क्योंकि किसी प्र-

माण से सिद्ध नहीं होता। जगत् को ईश्वरकृत सिद्ध में जो आपने सावयवत्व और विकारत्व हेतु दिये हैं वे दोनों हेतु साध्यसम और व्यभिचारी हेत्वाभास हैं। साध्यसम तो इसलिये है कि उसका साधक कोई प्रमाण नहीं है यदि प्रमाण हो तो दीजिये। और व्यभिचारी इसलिये है कि अवयव संयोग आपका हेतु है वह जड़ रूप पवन आदिक से भी हो सक्ते हैं जैसे कि मारवाड़ में टीले बनजाते हैं।

ईश्वर में संयोगोन्मुख और वियोगोन्मुख ये दो विरुद्ध स्वभाव नहीं हो सक्ते इसलिये विरोध आता है इसलिये व्यतिरेक नहीं बनता।

आपने अनेक प्रश्न कईवार लिखे हैं उनका उत्तर पूर्व अच्छी तरह लिख चुके हैं इसलिये पिष्टपेषण करना अनुचित है।

मकानका गिराना ईश्वरका स्वाभाविक गुण है तो मकान सदा गिरने ही चाहिये।

संयोग का लक्षण आपने आकाश का व्यविधान होना लिखा सो जीव और आकाश ये दोनों द्रव्य सर्वव्यापी हैं दोनों में संयोग सम्बन्ध है परन्तु दोनों में आकाश का व्यविधान नहीं है। जहां बीचमें आकाश द्रव्य व्यविधान नहीं होगा वहां संयोग कहलावेगा यह आप का लिखना भ्रम है।

कारिकावली की एक सो पन्द्रहवीं कारिकामें कहा है कि (अप्राप्तयोस्तुया प्राप्तिः सैवसंयोग ईरतिः) बालूके टीले में संयोग तो पवन से होता है और वियोग फावले वाला काटकर करदेता है। नदीका बहना अकर्तृजन्य ही है जितने गुरुपदार्थ हैं वे सब अधः पतनशील होते हैं इसलिये जल नीचेकी तरफ को ही जाता है ऊपरकी तरफ को नहीं जाता। पृथ्वी में आकर्षण शक्ति है ही नहीं यदि आकर्षण शक्तिका खंडन देखना है तो श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभाकी तरफसे प्रकाशित भूगोल मीमांसा नामक पुस्तक देखिये।

वायुके भिन्न २ गतिमें चलनेका कारण वायुरूप जीवोंके विहायोगति नामा भिन्न २ कर्म हैं।

मेघकी वृष्टि आदि कभी अनेक जड़ पदार्थोंके निमित्तसे होती है उसके लिये किसी ईश्वर कर्ताकी आवश्यकता नहीं है किसी लड़के का पिता मर जाय तो हम उसको अकर्तृ जन्य नहीं कहते किन्तु पितृ जन्य कहते हैं क्योंकि शुक्र शोणितके बिना मनुष्योत्पत्ति नहीं होती यह न्याय सिद्ध है मनुष्य

शरीरको उपादान कारण शुक्र शोणित है उपादान कारणके बिना कार्य नहीं होता लेकिन आप तो फरमाइये कि सृष्टिकी आदिमें मनुष्य पैदा होते हैं उनका उपादान कारण क्या है ईश्वरको यदि उपादान कारण माना जावे तो उपादानके गुण कार्यमें हुआ करते हैं तो मनुष्यका जड़ शरीर भी सर्वज्ञ हो जायगा यदि ईश्वरको निमित्त कारण माना जावे तो उपादान कारण क्या है यदि शुक्र शोणितके बिना अन्य परमाणुओंको ही कारण कहा जावे तो अब बिना शुक्र शोणितके क्यों नहीं मनुष्य पैदा हो जाते? एकेन्द्रियादिक जीव प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध हैं वायु कायिक जीव जीव स्वरूप हैं और उनका शरीर वायु स्वरूप है उनके शरीरमें वायु परमाणुओंके सिवाय अन्य किसीके परमाणु नहीं हैं उनके लिये अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण सिद्ध है जैसे मनुष्यको मनुष्य सिद्ध करनेमें प्रत्यक्ष प्रमाण है उसके लिये प्रमाणान्तर ढूंढना केवल भ्रान्ति है।

कहिये महाशय? अभाव यदि कोई पदार्थ नहीं है तो आपके वैशेषिक दर्शनमें जो सात पदार्थ माने हैं उनमें पहला द्रव्य दूसरा गुण तीसरा कर्म चौथा सामान्य पांचवां विशेष छठा समवाय है अब कहिये सातवां पदार्थ का नाम क्या है घटको हम पुद्गल द्रव्यका पर्याय मानते हैं जब तक पुद्गल द्रव्य घट रूप नहीं परिणमा था तब तक हम पुद्गल द्रव्यकी उन पर्यायों में घट पर्यायका अभाव मानते हैं इसीको घट प्रागभाव कहते हैं। समस्त द्रव्योंकी कालक्रमसे पर्यायोंका प्रवाह चला आ रहा है इस लिये समस्त ही पर्यायोंका उससे पूर्व क्षणवर्ती पर्यायमें प्रागभाव और उत्तर क्षण वर्ती पर्यायोंमें प्रध्वंसाभाव रहता है समस्त द्रव्योंके समुदायात्मक जगत्की भावी पर्यायोंका वर्तमान पर्यायमें हमेशा प्रागभाव रहता है और वर्तमान पर्यायमें भूत पर्यायका प्रध्वंसाभाव रहता है और जगत्के सजातीय पदार्थोंमें अन्योन्याभाव और भिन्न २ द्रव्योंमें अत्यन्ताभाव रहता है इस प्रकार जगत्में सदाकाल चारों ही अभाव बने रहते हैं।

खान में से जो सुवर्ण पाषाण निकलता है उसमें सोना और पाषाणका मेल अनादि कालसे है यदि नहीं है तो बताइये कि किसने कब मेल किया और उसमें प्रमाण दीजिये। इस (ख) विभागमें भी हमारे बहुतसे प्रश्न ऐसे रह गये हैं जिनका आपने बिलकुल उत्तर नहीं दिया है सो कृपा कर उन का उत्तर दीजिये। भवदीय—मन्त्री चन्द्रसेन जैन वैद्य,

———०———

आवश्यक सूचना।

(क) और (ख) दोनों विभागके शास्त्रार्थ के पर्चे हमारे यहांसे आर्यसमाज अजमेर को गत ता० १० अक्टूवर सन् १९१२ई० को रजिस्टर्ड पोष्ट द्वारा भेज दिये गये थे जो कि आर्यसमाज अजमेरमें ता० १२ अक्टूवरको पहुंच गये जैसा कि रजिस्टरीके एक नालिजमेन्ट (स्वीकारपत्र) से निश्चय है। नियमानुसार उनका उत्तर दश दिन तक आजाना चाहिये था परन्तु अत्यन्त शोकका विषय है कि आज चालीस दिन बीत जाने पर भी उनका उत्तर आर्यसमाजकी ओरसे नहीं प्राप्त हुआ जिससे कि यह प्रकट होता है कि आर्यसमाज को अब यह शास्त्रार्थ चलाना स्वीकार नहीं है अतः यह शास्त्रार्थ बन्द समझा जाकर पाठकोंसे सविनय प्रार्थना की जाती है कि वह इसको निष्पक्ष दृष्टि से ध्यान पूर्वक पढ़कर परिणाम निकाल कल्याण मार्गके अन्वेषी हों।

प्रार्थी:—

इटावा।
ता० २५। ११। १२

चन्द्रसेन जैन वैद्य, मंत्री
श्री जैनतत्त्व प्रकाशिनी सभा।

॥ ओ३म् ॥

आर्य्यधर्मेन्द्र जीवन

अर्थात्

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी

का

जीवनचरित

जिसको

रावसाहब रामविलास शारदा

म्यूनिसिपिल कमिश्नर अजमेर

ने

सुप्रसिद्ध राजरत्न मास्टर आत्मारामजी की सहायता से
बनाकर निज व्यय से प्रकाशित किया

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

चतुर्थवार २००० | संवत् १९८१ विक्रमी | मूल्य ११) डाकव्यय ।)
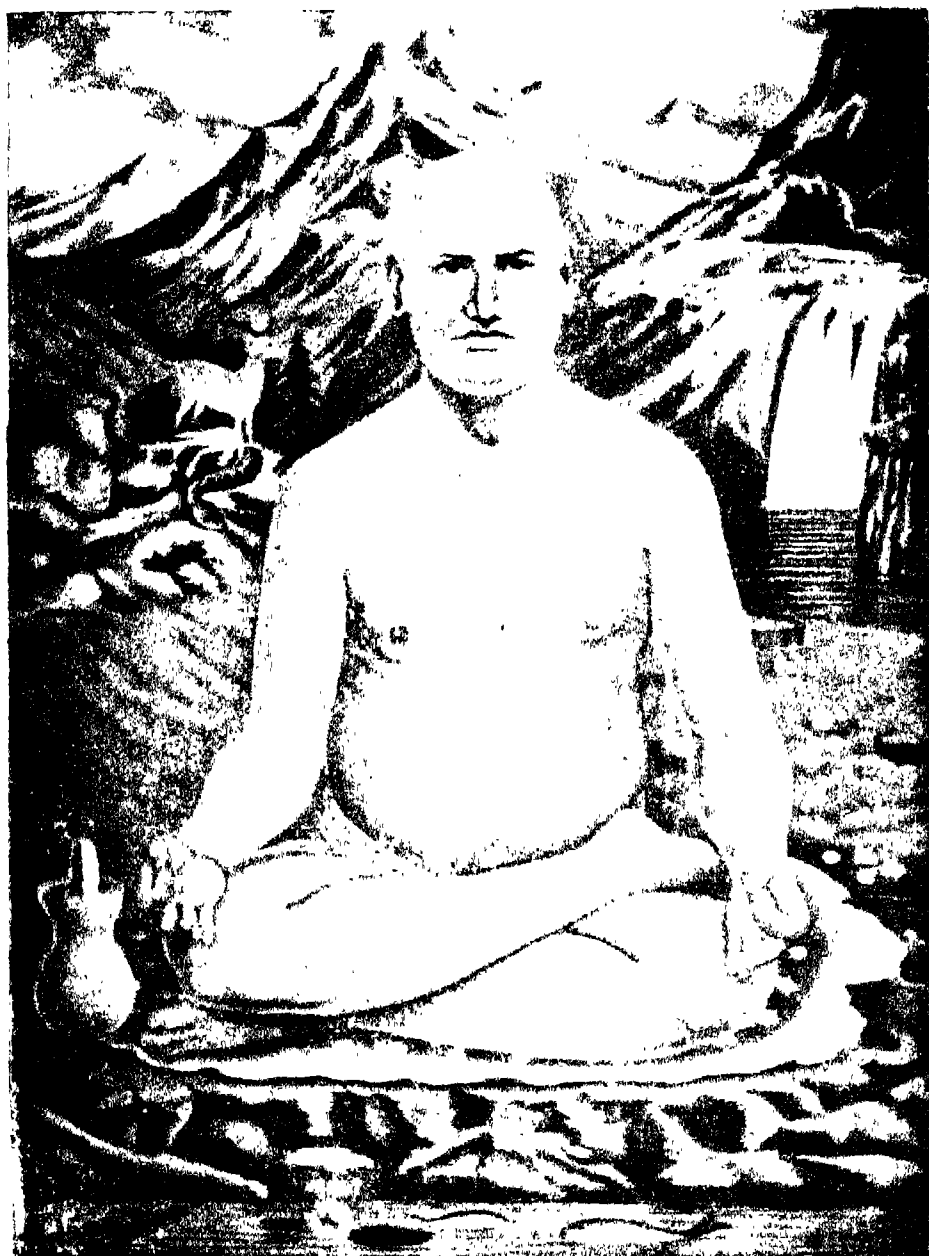
महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

भूमिका

ऐसा कौनसा सुशिक्षित मनुष्य होगा कि जिसको पृथ्वी के महान् पुरुषों के सच्चे जीवनवृत्तान्त जानने की अभिलाषा न हो, विशेष कर उन पुरुषों के जीवन की जो उस के अपने ही देश में हुए हों और जिनके जीवन ने स्वजाति को महान् लाभ पहुंचाया हो तथा जिनके देशोपकारी कार्य्य उनकी मृत्यु के पश्चात् जीवित दशा की भांति विद्यमान रहकर उनके यश और कीर्त्ति को फैला रहे हों। विचार करने से ज्ञात हुआ है कि अपने से बड़े का जीवनचरित्र जानने की इच्छा स्वभाव से ही मनुष्यमात्र में पाई जाती है यहांतक कि गँवार से गँवार और जङ्गली जातियें भी अपने देवता अथवा बड़े आदमियों के जीवनचरित्रों को अपनी भाषा में बना बड़े चाव से सुनती सुनाती हैं और उनके यश और कीर्त्ति गायन कर अति आनन्द उठाती हैं। इसीलिये कहा गया है कि जीवनचरित्र जीवनसुधार का एक मुख्य साधन है और उनका पढ़ना मानो उन महान् पुरुषों से सत्सङ्ग करना है और सत्सङ्ग के जो लाभ होते हैं वह प्रकट ही हैं। इसलिये यह कहना बहुत ठीक है कि महान् पुरुषों का जीवनवृत्तान्त जाति के जीवन के लिये एक प्रकार का लवण है कि जिसके विना जातिरूपी शरीर की कमजोर हड्डियों में पुष्टि प्राप्त नहीं होती, अमेरिका के एक कवि ने क्या ही उत्तम कहा है कि महान् पुरुषों के जीवन हमको याद दिलाते हैं कि हम भी अपने जीवनों को उत्तम (Sublime) बनावें और अपने पीछे समयरूपी बालू पर अपने पादचिह्न छोड़ जावें। संसार के इतिहास पुकार २ कर कह रहे हैं कि जीवनचरित्रों ने कई जातियों की काया पलट दी है और आलसी, कुटिल, खल, कामी, अधर्मियों को बड़े पुरुषार्थी, सत्यवादी, धीर, वीर, सदाचारी और धर्मात्मा बना दिया है। यूरोप और अमेरिका को उन्नतिशिखर पर पहुंचानेवाले प्रबल साधन जीवनचरित्र हुये हैं जिनको पढ़ २ कर वहां के साधारण बालकों में भी महान् पुरुष बनने की उमंग उत्पन्न होजाती है।

ऋषियों और बड़े २ विद्वानों के जीवनचरित्र द्वारा धार्म्मिकशिक्षा देने की प्रणाली आर्य्यावर्त के लिये नई नहीं है। प्राचीन काल से इस पुण्यभूमि में संन्यासी वानप्रस्थ महात्मा व विरक्तजन धर्मात्मा लोगों के आचरणों का वर्णन कर अपने शिष्यों को समझाया करते थे, हमारे इस कथन की पुष्टि उपनिषदों के उस भाग से होती है जिनमें गुरु और शिष्यों के संवाद पाये जाते हैं, जिनको ऋषियों ने एकान्तसेवन करते हुए बनाया। वर्त्तमान समय में प्राचीन इतिहासों व जीवनचरित्रों की पुस्तकें न मिलने से कई आदमी यह शङ्का करते हैं कि इस देश में यह प्रणाली पहिले कभी प्रचलित नहीं थी परन्तु कर्नल टाड ज़ैसे पक्षपातरहित खोज करनेवाले विद्वान् ने इस भ्रम का बड़े ज़ोर से खण्डन किया है। वह लिखते हैं कि जिस जाति ने दर्शन जैसे गूढ़ विषयों पर अनेक पुस्तकें रची हों उस पर इतिहास विद्या के न जानने का दोष लगाना हास्यजनक है, यदि गूढ़ दृष्टि से देखो तो महान् पुरुषों के सत्कार करने का विचार आर्य्यावर्त्त में अपनी मर्य्यादा को भी उल्लङ्घन कर गया है इसी कारण श्री रामचन्द्र व श्रीकृष्णचन्द्र आदि महान् पुरुषों को लोगों ने ईश्वर के तुल्य मान लिया है और रात्रि दिवस उनके यश गाते हैं। सच पूछो तो उन्नीसवीं शताब्दी ने जीवनचरित्र के सार को कम समझा है परन्तु इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि यूरोप की जातियें सहस्रों वर्षों के अन्धकार से निकलती हुई पुरुषार्थ के साथ इस ओर लगी हुई हैं कि जीवनचरित्र मनुष्य को सुशिक्षित बनाने में कहांतक कृतकार्य्य हो सकते हैं परन्तु शोक है कि हमारा अभागा देश अभीतक गहरी निद्रा में ही सो रहा है। महाभारत के सर्वनाशी संग्राम ने हमारे साथ यही अनर्थ नहीं किया, कि हम से हमारे धर्मात्मा, विद्वान् और तत्त्ववेत्ता लोगों को छीन लिया वरन् हम में सार असार में भेद करने की शक्ति को भी नहीं रक्खा इसके पश्चात् बौद्ध, जैन और अन्य मत-वादियों और पुराणों का वह विकराल समय आया कि जिसमें अविद्या और स्वार्थता का राज्य होगया और अभागी भूमि पर से रहा सहा प्रकाश भी जाता रहा ऐसी दशा में यदि पुस्तकें न मिलें तो कोई आश्चर्य्य नहीं आश्चर्य्य है तो यह है कि ऐसी आपत्तियों में जो पुस्तकें मिलती हैं वह कैसे बचगई, अस्तु यह तो बीच की बात थी महान् पुरुषों का जीवनचरित्र वास्तव में उन बड़ी २ घटनाओं का समूह है कि जिसने मनुष्यसमाज के जीवन में बड़ाभारी परिवर्त्तन कर दिया है। इस कारण इस त्रुटि का पूरा करना प्रत्येक देशहितैषी का काम है।

प्रस्तावना

स्वामी दयानन्द जैसे महान् विद्वान्, योगी, ज्ञानी, कर्मकांडी, ध्यानी, अद्वितीय जितेन्द्रिय, त्यागी महान् पुरुष का जीवनचरित्र लिखना साधारण मनुष्य का काम नहीं है। क्योंकि महान् पुरुषों के भावों व गुणों का अनुभव वे ही विद्वान् कर सकते हैं जिन्होंने अनेक महान् पुरुषों के जीवन पढ़े, सुने वा देखे हों और उनके अनेक गुणों का, जो साधारण दृष्टि में नहीं आते, भले प्रकार अन्वेषण किया हो। जब मैंने देखा कि उस महर्षि को परमपद प्राप्त हुए आज १७ वर्ष व्यतीत हो गये और आर्यसमाज के किसी विद्वान् ने उनका जीवनचरित्र देवनागरी लिपि और आर्य्यभाषा में नहीं निकाला जिससे वह लाभ जो कि अनेक आत्माओं को उसके पढ़ने से होता न होने के अतिरिक्त अनेक हानियें हुई हैं क्योंकि आर्य्यवीर पं० लेखरामजी के अकस्मात् बलिदान होजाने से उर्दू जीवनचरित्र जैसा चाहिये था वैसा नहीं निकल सका और जिन त्रुटियों को देख कुछ आपापंथी लोगों ने अपने निजविचारों को फैलाने का अच्छा अवसर देख ऋषिचरित्र का चित्र अपने मनमाने ढंग पर खींचा। ऐसी दशा में मैंने सत्यरक्षार्थ यही उचित समझा कि ऋषिचरित्र को उसके शुद्धस्वरूप में सर्वसाधारण के सन्मुख रक्खूं ताकि वे बनावटी चित्रों से धोखा न खावें। यद्यपि मैं जानता हूं कि मैं ललित भाषा नहीं लिख सकूंगा और नहीं ऋषि के भावों को भले प्रकार दर्शा सकूंगा परन्तु फिर भी यह विचार कर कि स्वामी का जीवन अन्त को स्वर्ण ही है अपनी चमक बतलाये बिना नहीं रहेगा क्या हुआ यदि सुडौल ढांचे में सर्वसाधारण के सन्मुख न रक्खा गया। मैंने यह पुस्तक पं० लेखरामजीकृत जीवनचरित्र व दयानन्ददिग्विजयार्क आदि ग्रन्थों के सहारे से निर्माण की है, आशा है कि पाठकगण मेरी भूल चूक को क्षमा करते हुए मेरे वास्तविक तात्पर्य को ग्रहण करेंगे।

इस ग्रन्थ के बनाने में मुझे महाशय आत्मारामजी के अतिरिक्त पं० बदरीदत्तजी ने बहुत सहायता दी है और बाबू ब्रह्मानन्दजी व पं० रामजीलालजी ने भी समय २ पर अपनी शुभसम्मति प्रदान की है, मैं इन सब महाशयों का बड़ा आभारी हूं।

रामविलास शारदा, अजमेर.

उपोद्घात

जीवनचरित्र

* ओ३म् *

महर्षि दयानन्द के जीवनचरित्र

का

उपोद्घात

(राजरत्न मास्टर आत्मारामजी लिखित)

ऋषि-जीवन

भारत के प्राचीन इतिहास की विलक्षणता

व्याकरण शास्त्र के परम आचार्य्य महर्षि पाणिनिजी ने आस्तिक और नास्तिक शब्द की सिद्धि में यह स्वीकार किया है कि परलोक और परमेश्वर का अस्तित्व जो मनुष्य मानते हैं वे आस्तिक और जो मनुष्य परलोक और परमेश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते वे नास्तिक हैं। इसी भाव को भिन्न प्रकार से महर्षि कणादजी ने दर्शाया है जिसका अभिप्राय यह है कि जिससे मनुष्य की सांसारिक उन्नति होसके तथा मुक्ति मिले वही धर्म है। इसी भाव को धर्मशास्त्र के नेता महर्षि मनुजी ने कहा है कि वेद जो धर्ममूल है उसकी जो निन्दा करता है वह नास्तिक है। प्राचीन आर्य्य लोगों ने इसी आस्तिकपन के महान् सर्वोत्कृष्ट उच्च भाव को लक्ष्य (Ideal) बनाकर लोक और परलोक सम्बन्धी वह उन्नति की थी कि जिसका दृष्टान्त पृथिवी पर अब नहीं मिलता।

इस आस्तिकपन की प्राप्ति का एकमात्र साधन वैदिकज्ञान की वृद्धि तथा तद्वत् आचरण ही था, उस समय को हम सचमुच वैदिकसमय का नाम दे सकते हैं, जिसमें हमारे ही नहीं किन्तु पृथिवी के प्राचीन आर्य्य उन्नति के शिखर पर थे।

उस आस्तिक सभ्यता का चित्र *

छान्दोग्य उपनिषद् के अंदर महाराज अश्वपति प्रसंगवशात् अपने देश की दशा का वर्णन करते हैं जिससे प्राचीन आर्य्यों के देश की स्थिति का सच्चा चित्र साक्षात् हमारी दृष्टि के सन्मुख उपस्थित हो जाता है, अश्वपति कहते हैं कि:—

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्य्यो न मद्यपो।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः" † ॥

अर्थात् मेरे ‡ जनपद अर्थात् प्रजातन्त्र राज्य में एक भी चोर, एक भी कंजूस (दान में धन न देने वाला), एक भी शराब का पीने वाला, एक भी अग्निहोत्र का न करने वाला, एक भी अविद्वान्, एक भी परस्त्रीगामी तथा एक भी वेश्या स्त्री नहीं है॥

आस्तिकपन सिखाता है कि एक सच्चिदानन्दस्वरूप ईश्वर सब जीवों के कर्मों का फलप्रदाता है। वह प्रकृति से अनन्त ब्रह्माण्ड अनादि काल से बनाता तथा प्रलय करता है $ और मरकर जीव विनाश को प्राप्त नहीं होता किन्तु परलोक, पुनर्जन्मादि को प्राप्त होता रहता है जबतक कि मुक्तिधाम को न प्राप्त कर सके।

आस्तिकपन के उच्च भाव में १-ईश्वर, २-जीव, ३-प्रकृति के नित्य होने की शिक्षा मिलती है। आज यूरोपादि सभ्य देशों में केवल प्रकृति को स्वयंसिद्ध तथा नित्यसत्ता तो यथार्थ रीति से माना गया है परन्तु जीवात्मा और परमात्मा को पुराने लोगों की कल्पना ही समझा जाता है। यूरोपादि देशों के विद्वानों के शास्त्र, पदार्थविद्या की महिमा से तो परिपूर्ण होरहे हैं, किन्तु इन पश्चिमी शास्त्रों में जीवात्मा के अमर होने या ईश्वर को कर्मफलप्रदाता सिद्ध करने के लिये कोई भी लेख सर्वमान्य नहीं मिलता। अतः यूरोपादि देशों में जो उन्नति होरही है उसको हम Material Civilisation (नास्तिक सभ्यता) कहें तो कोई भी अत्युक्ति नहीं, कारण यह कि इस वर्ण-

* सभ्यता और Civilisation इसी आस्तिक सभ्यता का दूसरा नाम वैदिक सभ्यता हो सकता है।

† कलकत्ता के मौडर्न रिव्यु में एक बंगाली विद्वान् ने सिद्ध किया था कि प्रजातन्त्र राष्ट्र का नाम जनपद है।

‡ जब यवन देश का विद्वान् "मेगेस्थनीज़" भारतवर्ष में आया तो उसने जो कुछ भारतवर्ष की सभ्यता और आर्य्यों के उत्तम आचरणों की साक्षी दी है उसको पढ़कर इतिहासवेत्ता आश्चर्य करते हैं और अभी वह समय वैदिक समय के ह्रास का था।

$ Herbert Spencer की Synthetic Philosophy का सार यही है।

मान पश्चिमी संस्कृति व सभ्यता में ईश्वर और परलोक की अभीतक सिद्धि न कीगई और न मानते हैं।

इतिहास का स्वरूप और उद्देश

पदार्थ विज्ञान जिस प्रकार पदार्थों के गुण बतलाता हुआ निश्चय कराता है कि यह गुण पदार्थों से पृथक् नहीं होसकते, पूर्वकाल में जल शीतल था अब भी है और आगे को भी रहेगा इसी प्रकार सच्चा इतिहास बतलाता है कि ईश्वर कभी किसी मनुष्य, किसी देश, किसी राष्ट्र की अधोगति नहीं करता, जबतक वह मनुष्य, देश व जाति अज्ञानी तथा कुकर्मी स्वयं न बनजावे। शुभकर्म का फल आत्मीय तथा सामाजिक आरोग्यता, बल-वृद्धि, सुख अभ्युदय व देशस्वतंत्रता और दुष्ट कर्म का फल आत्मीय तथा सामाजिक रोग, दुर्बलता, दुःख वा दरिद्रता वा देशपराधीनता है। केवल इसी नियम को इतिहास पूर्वकाल में सिद्ध कर चुका है, अब कर रहा है और आगे को भी करेगा।

इतिहास से हम अनुभव करा सकते हैं कि किसी मनुष्य वा जनसमाज को भूल वा कुकर्म नहीं करना चाहिये, जिस किसी एक मनुष्य विशेष वा साधारण तथा जनसमाज ने पूर्वकाल में कोई भी राजनीति, धर्म आदि संबन्धी भूल की उसका फल उसको वा उनको भोगना ही पड़ा। जिस प्रकार Science (पदार्थ विज्ञान) वेत्ता मानते हैं कि कारण से कार्य्य उत्पन्न होता है, इसी प्रकार इतिहास बतलाता है कि मनुष्यों के मानसिक, वाचिक वा कायिक कर्मों से सुख दुःखरूपी फल देश वा जनसमाज को भोगने पड़ते हैं। उन्नति और अधोगति सकारण होती है विना कारण नहीं।

पूर्ण और अपूर्ण इतिहास

जो इतिहास कारण कार्य्य को संग संग दिखाते हैं वे पूर्ण इतिहास कहला सकते हैं। जो केवल कारण वा केवल कार्य्य का ही वर्णन करते हैं उनको हम अपूर्ण इतिहास कह सकते हैं। यूरोप वाले जिन इतिहासों में संवतों की भरमार हो और केवल राजाओं की दिग्विजय की ही चर्चा हो उनको उत्तम इतिहास समझते हैं, परन्तु Green * (ग्रीन) महोदय आदि इतिहासलेखक अब मानने लगे हैं कि योद्धाओं की गोली बारूद की कथाओं से बढ़कर वह इतिहास है जो जनसमाज को शान्ति से उन्नति करने की कथा बतलावे। संवत् सन् के याद रखने से इतिहास का मर्म नहीं खुलता। हमारे देश में भारतवर्ष के इतिहास के नाम से जो लघु पुस्तकें प्रायः पढ़ाई जाती हैं वे

* See Preface to the History of the English People.

प्रायः अपूर्ण इतिहास के रूप में होती हैं। उनसे पाठक को इतिहास के उस उद्देश्य का कि यह उन्नति वा अधोगति को सकारण बतलाता है, पूर्ण ज्ञान नहीं मिलता। दृष्टान्त की रीति पर हम कह सकते हैं कि जब एक विद्यार्थी पढ़ता है कि:—

(क) "अलाउद्दीन पठान ने गुजरात को जीता और कर्ण राजा की रानी कमलादेवी को अपनी बेगम बना लिया" तो उसको पूरा बोध इस लेख से नहीं होता। विद्यार्थी इसका कारण जानना चाहता है परन्तु उसकी लघु पुस्तक में वह कारण लिखा नहीं। जबतक इस कार्य्यरूपी अथवा अपूर्ण लेख के साथ यह वर्णन न हो कि क्यों अलाउद्दीन ने गुजरात जीता और कैसे कमलादेवी को बेगम बनाने का उसको साहस हुआ तबतक उसको लाभ नहीं। इतिहास के लघु पुस्तकों में यह महा अनर्थ होता है कि वे प्रायः कार्य्यों को विना कारण के वर्णन करते हैं।

उपरोक्त लेख को समझने वा याद रखने के लिये जबतक निम्नलिखित कारण-विधायक लेख विद्यार्थी संग २ नहीं पढ़ते तबतक न तो उनको इस इतिहास का उद्देश्य समझ में आसकता है और न वह यह याद रख सकेंगे। उनको साइंस (पदार्थविद्या) पढ़ने से तो पता लगता है कि दुनियां में चमत्कार (Miracles) नहीं है परन्तु इतिहास अपूर्ण वा विना कारण पढ़ने से वह समझते हैं कि इसमें मनुष्यों के Miracles (चमत्कार) ही हैं। यह कारणरूपी लेख इस प्रकार संगठित होना चाहिये:—

(क) "गुजरात देश के राजा कर्ण ने एक दिन अपने राजमन्त्री (प्रधान वा दीवान) माधव की पतिव्रता सुन्दर नारी को कहीं देख लिया। देख कर राजा का मन बिगड़ गया और उसने बहाने से दीवान को घोड़े खरीदने के लिये अपने मुख्य नगर पाटण से दूर भेजा। पीछे उसकी स्त्री को राजभवन में डालने का बहुत यत्न करने लगा, इस देवी की रक्षा के लिये उसके धर्मात्मा देवर केशव को कर्ण का अन्त को सामना करना पड़ा, कर्ण ने केशव की जान लेली। फिर बलात्कार इस देवी को अपने भवन में डाल लिया। कुछ समय के पीछे माधव को जब कर्ण राजा के इस अत्याचार की सूचना मिली तो वह सीधा देहली के यवन बादशाह अलाउद्दीन के पास चला गया और जब एक दिन बादशाह का छोकरा हाथी से गिरकर आग में पड़ने लगा तो उसको माधव ने अपने हाथों पर रोक उसकी जान बचादी और पठान राजा को प्रसन्न कर दिया। जब पठान राजा इस उपकार का उसको फल देने लगा तो माधव ने यह कहा कि आप गुजरात देश पर आक्रमण करें और कर्ण राजा की अति सुन्दरी रानी कमलादेवी को बेगम बनालें। अलाउद्दीन ने अपने आप को इन दोनों कार्य्यों के

लिये असमर्थ बतलाया, परन्तु माधव ने कहा कि मैं वहां का दीवान हूं और सब क़िले के भेद तुम्हें देता हूं। माधव के भेद देने तथा आग्रह पर पठान बादशाह ने गुजरात को जीता और कर्ण की रानी कमलादेवी को पकड़ मंगवाया। कमलादेवी रोती पीटती इच्छा के विरुद्ध देहली लेजाई गई और फिर अन्त को पठान बादशाह ने उसको बेगम बनाया।

(ख) "अलाउद्दीन ने चित्तौड़गढ़ पर चढ़ाई की"। (कार्य्य लेख)

(ख) इसलिये कि "चित्तौड़ नरेश के एक रिश्तेदार ने अलाउद्दीन को उस क़िले का रास्ता तथा भेद दिया"। (कारण लेख)

अपूर्ण इतिहास कोई शिक्षा पूर्ण प्रकार से पढ़ने वाले को नहीं दे सकता और यही हेतु है कि लोग पढ़ते हुए वह इतिहास स्मरण नहीं रख सकते अपूर्ण बात मन में रह नहीं सकती॥

(ग) "पृथिवीराज को परास्त करके मोहम्मदग़ौरी भारतनरेश हुआ"।

(ग) "पृथिवीराज महावीर होने पर भी राजनीति से विज्ञ न था पृथिवीराज अभिमानी, अदूरदर्शी, आलसी तथा विषयासक्त था और राजपूतों में मिथ्या अभिमान के कारण परस्पर द्वेष बढ़गया था और निज का बदला लेने के लिये जयचंद कन्नोज वाले ने यवन राजा को पूरा भेद दिया तथा देश का विश्वासघात करते हुए पृथिवीराज को गौरीशाह से परास्त कराया"।

(घ) "बाबरशाह ने इबराहीम लोदी को परास्त किया" इसलिये कि (घ) इबराहीम अन्यायी बादशाह था और उसके अति अन्याय से मुसलमान अफ़सर तक उससे बिगड़ कर बाबर से मिलगये थे। पंजाब के सूबेदार दौलतखां ने क़ाबुल आकर बाबर को हिन्द का राज्य करने को बुलाया"।

इतिहास से सावधानी की शिक्षा मिलती है

जब हम पढ़ते हैं कि प्राचीन राजे स्वयंवर की रीति को पूरा करने के लिये अनेक वरों को एक स्थल में संग बुलाते थे * इससे उनको दुःख मिला तो इसी ढंग पर यह रीति यदि अब की जावे तो वरों में ईर्ष्या द्वेष अवश्य उत्पन्न करेगी, यह शिक्षा है इसका दृष्टान्तः—

* कोई यह न समझले कि हम वेदोक्त स्वयंवर को नहीं मानते परन्तु वह रीति जो राजे लोग इसके लिये करते आये वह हमें दोषयुक्त प्रतीत होती है। वरों की सभा करने में हानि है।

सीता के स्वयंवर में रावण भी आया था । राम को वरने पर उसने अपना अपमान माना, इसलिये सीता को हरण करके उसको तथा अपने आपको उसने चितारूपी दुःख में डाला । जयचन्द ने जो संयोगता का स्वयंवर रचा था उसमें पृथिवी-राज की मूर्ति द्वारपाल की जगह रखकर उसका अपमान किया । इस परस्पर के द्वेष ने भारत का नाश कराया ।

शास्त्रों में एक स्त्री से विवाह के लाभ कहे गये हैं । राजा दशरथ ने तीन रानियां विवाह ली थीं । केकई ने ईर्ष्यावश हो अपने सौतेले पुत्र राम को वनवास दिलाया तथा अपने पति की मृत्यु कराई । यह बहुविवाह के दोष हैं । बहुत प्राचीन काल में भारतवर्ष में गुण कर्म से क्षत्रिय बनकर राजसभा के सभापति राजा निर्वाचित * किये जाते थे । फिर यह रीति जो अच्छी थी न रही । दशरथजी के समय में सत्ता-हीन राजसभा थी वास्तव में दशरथजी राज्य को अपनी निज वस्तु समझते थे । यदि राजसभा की सत्ता प्रबल होती तो रामचन्द्रजी का वन में जाना रुक सकता था । आगे चलकर इतिहास में राज्य को हक़दारों में बांटने के लिये महाभारत का कैसा भयंकर युद्ध हुआ, यदि यह समझा जाता कि राज्य पैतृक वस्तु नहीं तो किसको इतने भयंकर युद्ध की आवश्यकता थी ?

बुद्धि से इतिहास परख कर पढ़ो

(ङ) कोई पुरुष दानी हो उसको द्वेषी तथा पक्षपाती व्यर्थ धन खोने वाला इतिहास में लिख सकता है । कई मिथ्या उल्टी वा परस्पर विरुद्ध बातें इतिहास के नाम से लिखी जाती हैं उनको परखने की ज़रूरत रहती है । जैसे रामायण में रामचन्द्रजी महाराज को धर्मात्मा बतलाते हुए फिर उनको निर्दयी वा असभ्य प्रकट करने के लिये वा स्त्रीजाति को विश्वासपात्र न मानने के लिये यह असार लेख सार में किसी ने मिला दिया कि रामजी ने यह जानते हुये भी कि सीताजी सती और पवित्र हैं फिर भी गर्भिनी होने पर उनको धोके से उस वन में भिजवा दिया जहां वाल्मीकि थे । भला रामचन्द्रजी कभी ऐसा अपराध कर सकते थे, नहीं यह झूठ रामायण में मिलाया गया है । द्रौपदी के पांच पति थे यह बात महोदय मणिशंकररत्नजी भट्ट बी. ए. † सुप्रसिद्ध लेखक अपने "शिक्षण के इतिहास" में मिथ्या मानते हैं और हम भी उनसे सहमत हैं । इसी प्रकार इतिहास

* ग्रीफिथ साहब ऋग्वेद के अनुवाद में लिखते है कि वेद में राजा चुनने का विधान है ॥

† Diretcor of public Instruction, Bhavnagar.

कल्पित कथा वा कहानी नहीं है । इसमें यदि कोई बात मिथ्या प्रतीत हो तो उस को मिथ्या कहना वा मानना हीं चाहिये ।

इतिहास के कई सच्चे वाक्य बड़े आश्चर्यजनक होते हैं

(ख) किसी हिन्दू (आर्य्य) को यह कहो कि तुम्हारे प्राचीन पुरुषा किसी प्रकार की मूर्तिपूजा नहीं करते थे तो वह आश्चर्य के समुद्र में डूब जावेगा और इतिहास इस आश्चर्य्य का एक प्रबल कारण है । मोनियर विलयम्स लिखते हैं और सर्व इतिहासवेत्ता मानते हैं कि मूर्तिपूजा जैनियों से चली । "कोल ब्रूक" के समान बहुत लेखक तथा धर्मशास्त्र के कर्त्ता मनुजी लिखते हैं कि प्राचीन आर्य्य पूजापद्धति **गायत्री का जाप** करना ही था । यही बात इतिहास बतलाता है, परन्तु इतिहास की यह वार्त्ता हिन्दुओं के लिये कैसी आश्चर्यदायक है । छूत छात और जन्म जात पहिले न थी उपनिषदें, मनु तथा इतिहास यही बात बतलाते हैं परन्तु वर्त्तमान समय के आर्य्यों (हिन्दुओं) को यह बातें कैसी आश्चर्यजनक प्रतीत होती हैं । ऐसी २ आश्चर्यजनक परन्तु सत्य बातें इतिहास प्रत्येक मनुष्य को बतलाते हैं परन्तु सत्य बात को स्वीकार करके लाभ उठाना इतिहास पढ़ने का एक महान् फल है । पश्चिमी विद्वानों के लिये भी हमारा प्राचीन आर्य्य इतिहास आश्चर्यमय बन रहा है । वह इस बात को पढ़कर ही चकित रह जाते हैं कि "ऋषियों ने विना अङ्गरेज़ी पढ़ने के अमेरिका से भी बढ़कर उन्नति की थी" ।

पश्चिमी पक्षपात का स्वाभाविक कारण आस्तिक बुद्धि का न होना

जो मेंडक कूप में रहता है वह समुद्र के अस्तित्व में यदि शंका करे तो कर सकता है । परन्तु उसकी शंका से समुद्र का लोप नहीं हो जाता । इसी प्रकार वर्त्तमान समय के पश्चिमी विद्वान्, जिज्ञासु तथा इतिहासकर्त्ता भारतवर्ष के इतिहास लिखते हुए प्राचीन आर्य्य-सभ्यता के आश्चर्यजनक अद्भुत स्वरूप का उपनिषदादि अनेक पुस्तकों में वर्णन पढ़ते हुए घबरा जाते हैं यूरोपादि कूप में दृष्टि डाल कर उसका कहीं भी पूरा दृष्टान्त न पाते हुए उन बातों को कल्पित कह कर टाल देते हैं । प्रत्युत अपनी ही अयुक्त कल्पनाओं से प्राचीन भारत का मनोमय चित्र खैंचना चाहते हैं ।

भारतवर्ष के प्रामाणिक इतिहास का अभाव

पूर्व इस के कि हम महर्षि दयानन्द का आगमन दर्शावें यह दर्शाना अति आवश्यक है कि वह देश जिसमें वे उत्पन्न हुये प्राचीन समय में किस दशा में था और उस देश में आदि सृष्टि से किस प्रकार के मनुष्य वास करते थे उनका नाम क्या था और

उन्होंने लौकिक और पारलौकिक उन्नति किन साधनों द्वारा सम्पादन की थी ? फिर उस देश में क्या २ विकार उत्पन्न हुये और किन दशाओं ने उस देश को आन घेरा और उस समय जब कि ऋषि दयानन्द ने जन्म लिया देश की अवस्था क्या थी और देश को ऐसे ऋषि की क्या आवश्यकता थी और ऋषि ने देश की काया पलटाने में क्या २ काम किये ? यह सर्व वृत्तान्त दो भागों में विभक्त किया जासकता है।

☞ (१) ऋषि दयानन्द से पूर्व का भारतवर्ष ।

☞ (२) ऋषि दयानन्द से पश्चात् का भारतवर्ष ।

यदि इस समय भूगोल पर कोई भी प्रामाणिक भारतवर्ष का पूर्ण इतिहास उपस्थित होता तो हम प्रथमभाग अर्थात् "ऋषि दयानन्द से पूर्व के भारतवर्ष" की दशा जानने के विषय में उस इतिहास का नाम लिख देते अथवा उसका अनुवाद कर देते, परन्तु जितने भारत के इतिहास नाना भाषाओं में उपस्थित हैं उन में यवनों के आक्रमण से लेकर श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के राज्य पर्य्यन्त का वृत्तान्त क्रमबद्ध मिलता है। आदि सृष्टि से लेकर पृथ्वीराज के समय का पूर्ण तथा क्रमबद्ध लेख किसी भी इतिहास में उत्तमता से दर्शाया नहीं गया इसलिये वर्त्तमान इतिहासों में से किसी को भारतवर्ष के पूर्ण इतिहास का नाम हम दे नहीं सकते। भारत के प्राचीन इतिहास के अभाव को अनुभव करने वाले कई पश्चिमी पुरुषों ने अपनी लेखनी उठाई और पूर्त्ति के लिये यत्नवान् हुए परन्तु शोक का विषय है कि वे प्राचीन इतिहास में पूरा सत्य वृत्तान्त दर्शा न सके, किन्तु थोड़े से सत्य के साथ कल्पनाओं और अयुक्त वार्ताओं से उस इतिहास को पूर्ण करके सर्वसाधारण के सन्मुख ला खड़ा किया। इतिहास की वह शृङ्खला जिसको अटूट कहते हैं इन पश्चिमी विद्वानों ने तोड़ दिखाई, अपनी कपोलकल्पना के अनुसार इस में बहुत लेख भर दिये। दृष्टान्त की रीति से हम कह सकते हैं कि इनके इतिहासों में निम्नलिखित दोष विद्यमान हैं:-

(१) यह रामचन्द्र को अर्जुन से पश्चात् बतलाते हैं और आर्यों का लंका को विजय करना महाभारत के युद्ध के बहुत पश्चात् दर्शाते हैं। बुद्धिमान् और पण्डित लोग जानते हैं कि महाराजा रामचन्द्रजी अर्जुन से बहुत ही पूर्व हो चुके हैं न कि पीछे और महाभारत का युद्ध रावण के युद्ध से बहुत पीछे का है इसलिये यह इतिहास क्रम की शृङ्खला को तोड़ रहा है ।

(२) मेक्समयुलर आदि विदेशियों ने डार्विन आदि महाशयों के कपोलकल्पित सिद्धान्त की पुष्टि में यह लिखा है कि ऋग्वेद में पहिले अग्नि आदि भौतिक पदार्थों का वर्णन है समाप्ति पर जाकर आत्मा और परमात्मा आदि उच्च और कठिन विषयों का वर्णन आता है, जिससे उनके लेखानुसार यह सिद्ध होता है कि मनुष्य पहिले जङ्गली थे फिर क्रमशः सभ्य हुये। ऐसी कपोलकल्पना को स्वीकार करते हुए इन पश्चिमी लोगों ने ऋग्वेद को "इवोल्यूशन" की "थ्यूरी" (Theory) का मानों साक्षी ठहराया है। यदि मेक्समयुलर और उनके अनुयायी कभी ऋग्वेद विचारपूर्वक पढ़ते तो ऐसी असंगत बात न लिखते क्योंकि ऋग्वेद के पहिले मण्डल पहिले अध्याय और पहिले सूक्त का यह ९ मां मन्त्र है—

"स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये"

इसमें "अग्ने" शब्द से परमात्मा का बोध कराया गया और मन्त्र में उसको पिता की उपमा दी गई है जब कि एक ही सूक्त में अग्नि और परमात्मा दोनों विषय उपस्थित हैं तो फिर यह महाशय किस प्रकार साहस कर सकते हैं कि ऋग्वेद के अन्त में जाकर परमात्मा आदि गूढ़ विषयों का वर्णन मिलता है। इसलिये ऋग्वेद को जो मेक्समयुलर आदि ने "इवोल्यूशन" (Evolution) का पोषक माना है वह सिद्ध नहीं हो सकता। ऋग्वेद मण्डल प्रथम सूक्त १६४ का यह २० वां मन्त्र है:—

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते"

इस मन्त्र में ईश्वर, जीव और प्रकृति का जिस उत्तमता से निरूपण और भेद किया गया है वह सिद्ध करता है कि केवल उन्नत से उन्नत पुरुष ही इस को समझ सकता है। जब पहिले ही मण्डल में ऐसे महान् और उच्च दार्शनिक विचार उपस्थित हैं, तो फिर पश्चिमी विद्वानों का यह लेख कि ऋग्वेद की समाप्ति पर ही उच्च विचार पाये जाते हैं, निर्मूल हैं। "भारतवर्ष हमें क्या शिक्षा दे सकता है?" इस नाम की पुस्तक में स्वयं मेक्समयुलर ऋग्वेद के पहिले मण्डल के सूक्त १६४ का ४६ वां मन्त्र अद्वितीय परमात्मा के महत्व का बोधक दर्शाते हैं। क्या मेक्समयुलर महाशय के लेख में परस्पर विरोध नहीं है? एक स्थल पर तो यह लिखना कि ऋग्वेद के अन्त में ईश्वर संबन्धी उच्च भावों का वर्णन है और दूसरे स्थल पर स्वयं ही दर्शाना कि ऋग्वेद के पहिले मण्डल में ही अद्वितीय ब्रह्म का कथन है।

(३) भारतवर्ष का एक साधारण पण्डित भी जानता है कि चारों वेद इकट्ठे हैं परन्तु पश्चिमी विद्वान् ⅔ ऋग्वेद को वास्तविक वेद मानते हैं और यजुः, साम, अथर्व को नया वेद बतलाते हैं।

(४) एक विचित्र बात और सुनिये। अर्जुन, रामचन्द्रादि पुरुषों के माता पिता आदि के नाम भी पण्डित लोग जानते हैं। जो २ उन्होंने काम किये किसी से छिपे हुये नहीं हैं, यह ठीक है कि रामायण और महाभारत में अत्युक्ति दोष बहुत हैं परन्तु इतिहासवेत्ता का कर्त्तव्य यह है कि वह अत्युक्ति के आवरण को भेद करके यथार्थ स्वरूप का दर्शन करावे। पश्चिमी पण्डित ऐसा नहीं करते पश्चिमी विद्वानों की कपोलकल्पनानुसार रामचन्द्र और अर्जुन कल्पित पुरुष हैं। क्या विचित्र लीला है कि लिखने तो बैठे इतिहास परन्तु इतिहास वालों को ही निर्मूल कर दिया। यदि कोई आर्य्यपुरुष इङ्गलिस्तान का इतिहास लिखे और उसमें दर्शावे कि "ऐलफ्रेड दी ग्रेट" कोई पुरुष विशेष नहीं हुआ किन्तु कल्पनामात्र है तो हम नहीं जानते कि यूरोप आदि देशों में उसके इतिहास को विद्वान् किस दृष्टि से देखेंगे? इस समय हमारा उद्देश्य पश्चिम के इतिहासकर्ताओं की समालोचना करने का नहीं है किन्तु हमने स्थाली-पुलाक न्याय से दर्शा दिया कि आजकल जो पश्चिमी ग्रन्थ प्राचीन भारत के इतिहास संबन्ध में हैं वे कदापि सर्वांश प्रामाणिक इतिहास नहीं हैं।

सच्चे इतिहास के लिये सामग्री विद्यमान है

यह सत्य है कि इस समय प्राचीन भारतवर्ष का कोई भी प्रामाणिक क्रमबद्ध इतिहास बना बनाया नहीं मिलता, परन्तु इससे कोई यह न समझ ले कि प्राचीन भारत के इतिहास लिखने के लिये सामग्री भी लोप होगई, नहीं कदापि नहीं। संस्कृत पुस्तकों के भंडार भरे हुये हैं जिनसे कि प्राचीन भारत के इतिहास की सामग्री संकलन की जा सकती है, परन्तु लेखक का काम निष्पक्ष होकर इस सामग्री को उपयोग में लाने का है। मेक्समूलर आदि विदेशियों ने प्राचीन भारतवर्ष के विषय में जो २ सम्मति प्रकाश की है उनका मूल यही सामग्री है जो कि संस्कृत पुस्तकों में नाना स्थल पर मिलती है, परन्तु विदेशियों ने पक्षपात से रहित होकर इस सामग्री से काम नहीं लिया। एक पुस्तक में लिखा है कि चन्द्रमा की ओर एक पादरी और उसकी भार्या देख रहे थे पुरुष ने स्त्री से कहा कि प्रिये! देखो तो चन्द्रमा में वह गिर्जा बना हुआ है और उसके निकट तू और मैं खड़े हुये हैं, उसने भी तथास्तु कह दिया। चर्खा कातने वाली बुढ़िया से

पूछो कि चांद में क्या है तो वह उत्तर देगी कि मुझ सरीखी एक बुढ़िया चर्खा कात रही है। हम यह नहीं कहते कि विदेशियों को प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास सम्बन्धी सामग्री मिलती नहीं, परन्तु हम यह कहते हैं कि विदेशीय लोग इस सामग्री से चांद में गिर्जा निकालने का यत्न करते हैं। मेक्समयुलर को यदि यह पक्ष न होता कि डार्विन का "एवोल्यूशन" (Evolution) ऋग्वेद से सिद्ध करना है तो वह क्यों ऐसा लेख लिखता कि ऋग्वेद के अन्त में ही ईश्वर का वर्णन है उससे पूर्व कहीं पर नहीं। कई पश्चिमी विद्वानों का यह पक्ष है कि सीता कोई विशेष स्त्री नहीं इसलिये उन्होंने सीता के अर्थ हल के लिख दिये। इतिहास में पुरुष-विशेष वाचक शब्द रूढ़ि होते हैं न कि यौगिक, इसलिये रामायण में सीता के अर्थ हल के नहीं हो सकते। हां वेद में शब्द रूढ़ि नहीं होते प्रत्युत यौगिक होते हैं, परन्तु इन इतिहासलेखकों की अनोखी चाल है कि वेद में इन्द्र, विष्णु आदि यौगिक शब्दों को रूढ़ि जानकर इन्होंने पुरुष विशेष बतलाया है, जहां कि पुरुष विशेष का अर्थ घट नहीं सकता। अच्छा हम मेक्समयुलर से पूछते हैं कि इन्द्र, विष्णु किस के पुत्र थे? उनकी माता का नाम क्या था, उन्होंने कब विवाह किया? उनके सन्तान क्या हुई? ये महाशय कदापि इन प्रश्नों के उत्तर दे नहीं सकते। जब कि यह ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं तो इनका इतिहास मिलेगा कहां से? आश्चर्यमय लीला तो यह है कि जो रामायण आदि में ऐतिहासिक पुरुष हैं उनको यह कल्पित पुरुष बतलाते हैं। हां यदि कोई हम से पूछे कि रामचन्द्र के पिता माता का क्या नाम था, उस ने कहां शिक्षा पाई, किस से विवाह किया, किस प्रकार जीवन व्यतीत किया, तो हम इन प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। क्योंकि हम उनको पुरुष विशेष मानते हैं। एक स्थल पर कई पश्चिमी विद्वान् लिखते हैं कि सीता को जो रावण लेगया उसके अर्थ यह हैं, कि हल को एक असभ्य पुरुष लेगया अर्थात् कृषिविद्या लंका में गई। इस बात को पढ़ते हुए हमें आश्चर्य होता है।

भारतके प्राचीन इतिहास के मुख्य दो ही भाग हैं एक वैदिक और दूसरा अवैदिक

विदेशियों ने भारत के इतिहास को मोम का पुतला बना दिया है जिधर चाहते हैं उधर खैंच कर लेजाते हैं। बहुत उस में वैदिक, ब्राह्मण, उपनिषद्, सूत्र, बुद्ध, पौराणिक इत्यादि समय-विभाग कल्पना कर लेते हैं अर्थात् वे बतलाते हैं कि भारत के इतिहास के निम्नलिखित समय थे:—

(१) वैदिक समय (२) ब्राह्मण ग्रन्थों का समय (३) उपनिषदों का समय (४) सूत्र ग्रन्थों का समय (५) बौद्धमत का समय (६) पुराणों का समय और कई भारत के प्राचीन इतिहास को निम्नलिखित रीति पर विभक्त करते हैं:—

(१) वैदिक समय (२) राजवृद्धि का समय जिसके अन्तर्गत उपनिषदें हैं (३) विद्यावृद्धि का समय जिसके अन्तर्गत दर्शनशास्त्र हैं (४) बौद्धमत का समय (५) पौराणिक समय, परन्तु यथार्थ रीति से देखा जावे तो प्रतीत होगा कि भारतवर्ष के इतिहास के दो ही मुख्य भाग हो सकते हैं एक वैदिक समय दूसरा अवैदिक समय, आगे वैदिक समय का व्यौरा दर्शाया जा सकता है और उसी रीति पर अवैदिक समय अवैदिक समय का भी व्यौरा हो सकता है।

एक मनुष्य के शरीर के अंग उपांग को हम उस से पृथक् नहीं कह सकते। शाखा वृक्ष से भिन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषदें, उपवेद, ज्योतिष, व्याकरण, दर्शन इत्यादि सब वेद के उपवेद, अंग, उपांग, व्याख्यान कहलाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह सारे ग्रन्थ वेदों से पीछे बनाये गये, परन्तु यह वेद की व्याख्या उसके मन्त्रों के व्याख्यान और उसकी विद्याओं के विस्तार करने वाले हैं। इनका उद्देश्य वेदों के महत्व को स्थापित करना है यह वेदों के रक्षक हैं। इन सब को यदि शाखा की उपमा दें तो वेद इन का मूल है। इसलिये इतिहास की रीति से वैदिक समय से उस समय का अभिप्राय लिया जा सकता है जिस में वेदानुकूल और वेद की व्याख्यारूप ग्रन्थ चाहे वह उपनिषद् हों वा सूत्र बनते रहे। जो लोग समझते हैं कि ब्राह्मण, उपनिषद्, व्याकरण, दर्शन, स्मृति आदि ग्रन्थ स्वतन्त्र हैं, वेदों के व्याख्यान नहीं, वे भ्रम में पड़े हुए हैं। ब्रह्म नाम वेद का है और जो वेद की व्याख्या करे उस ग्रन्थ का नाम ब्राह्मण है। महर्षि कणाद वैशेषिक दर्शन में लिखते हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों का काम वेद मंत्रों के आशय को समझ कर संज्ञानियत करना है और जब कोई ब्राह्मण ग्रन्थों को पढ़े तो वह उसमें पाता है कि वेदमंत्रों की प्रतीक रख कर उनका व्याख्यान किया हुआ है। इसलिये ब्राह्मण ग्रन्थों का आशय वेद की व्याख्या करने का है। विदेशीय लोग जो यह कल्पना करते हैं कि जब ब्राह्मण ग्रन्थ बने उस समय आर्य्य लोग वेदों के ज्ञान से बढ़ कर उच्च अवस्था को प्राप्त होगये यह सर्वथा निर्मूल है। उपनिषद् के अर्थ रहस्य अर्थात् गूढ़ आशय के हैं। चारों वेदों का गूढ़ आशय ओ३म् परमेश्वर की प्राप्ति कराने का है इसलिये

यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय उपनिषद् कहलाता है, जिसमें कि ब्रह्मविद्या का विशेष निरूपण है। वेदों के अनेक मंत्र जो ब्रह्मविद्या के विधायक हैं वे यथार्थ में उपनिषद् संज्ञक हैं। उपनिषदों का मूल यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय ही है और शेष नौ उपनिषदें उसकी व्याख्यारूप हैं।

अर्थवेद—ऋग्वेद का उपवेद है, उसका अभिप्राय अर्थविद्या के उन नियमों की व्याख्या करने का है जो वेदों में पाये जाते हैं।

धनुर्वेद—यजुर्वेद का उपवेद है, उसका अभिप्राय उन नियमों और साधनों की व्याख्या करने का है जो कि युद्धसम्बन्धी वेदों में मिलते हैं।

गान्धर्ववेद—सामवेद का उपवेद है, इसका अभिप्राय वैदिक गानविद्या की व्याख्या करने का है।

आयुर्वेद—अथर्ववेद का उपवेद है, इसका उद्देश्य नाना प्रकार के कला कौशल और विमान आदि यान तथा वैद्यक विद्या के नियमों की, जोकि वेदों में मिलते हैं, व्याख्या करने का है।

व्याकरण शास्त्र कह रहा है कि मैं वैदिक शब्दों का चौकीदार हूं। ज्योतिष, निरुक्त, छन्द आदि शास्त्र एक स्वर से अपने आपको वेदों का अंग कह रहे हैं। दर्शन शास्त्र बड़े गौरव से यह मानते हैं, कि हम वेदों के व्याख्यान होने से उपांग हैं। मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र **"प्रमाणं परमं श्रुतिः"** की जयध्वनि करते हुए वेद की ओर सब मनुष्यों को लिये जा रहे हैं। कौन निष्पक्ष मनुष्य ऐसा है जो यह कह सके कि जिस समय दर्शनशास्त्र बने उस समय वेदों से बढ़कर आर्य्यों ने उन्नति कर ली थी। वेद सत्य सिद्धान्तों के प्रतिपादक हैं, सत्य के ऊपर कोई क्या उन्नति कर सकता है? यदि ऋग्वेद ने दर्शाया है कि अग्नि उष्ण है तो क्या वैशेषिक दर्शन उसकी पुष्टि नहीं करता? क्या वैशेषिक दर्शन वेद से निराला कोई सिद्धान्त प्रचार करता है? क्या योगदर्शन में कोई ऐसी विद्या है जिसका कि मूल अथवा बीज चारों वेदों में न हो? जब यह बात नहीं है तो फिर विदेशीय इतिहासवेत्ताओं की यह कल्पना कि वैदिक समय से उपनिषद् का समय बढ़िया था और उपनिषद् के समय से दर्शन शास्त्रों का समय उच्च था क्या सर्वथा निर्मूल नहीं है? क्या वर्त्तमान समय में सरकारी कचहरियों में जो हाईकोर्ट के निर्णय (फैसलों) से कार्य्यवाही

होती है तो इससे कोई यह कल्पना कर सकता है कि हाईकोर्ट के जजों के निश्चय "पिनेलकोड" (Penal code) से अतिरिक्त हैं और हाईकोर्ट के जजों के अवधारण का समय "पिनेलकोड" के समय से उच्च है। नहीं, प्रत्युत प्रत्येक बुद्धिमान् यह जानता है कि "हाईकोर्ट" के जज "पिनेलकोड" को उपयोग में लाते हुए विवाद संबन्धी अपने अवधारण रूप लेख प्रकाशित करते हैं और जिस समय में कि "पिनेलकोड" वर्त्तमान हो रही है उसी समय में यह जजों के निश्चय प्रामाणिक माने जा रहे हैं। वास्तव में जजों के यह निश्चय "पिनेलकोड" के व्याख्यानरूप हैं।

वैदिक समय के लक्षण

जब तक सूर्य्य विद्यमान रहता है और लोग उससे काम लेते हैं तब तक सूर्य का समय है। जब दीपक जल जाय और लोग दीपक से काम लेने लग जावें वह समय दीपक का है। जब से अंग्रेज़ों ने भारतवर्ष में "पिनेलकोड" को राज्य-दंड पुस्तक माना है और जब तक अंग्रेज़ इस पुस्तक को ऐसा ही मानते चले जायंगे तब तक "पिनेलकोड" का समय कहलायेगा। इसी प्रकार जब तक प्राचीन आर्य्य वेद को आदर्शज्ञान मानते हुये उसके अनुसार व्यवहार करते रहे और जब तक अपने व्याख्यानों में उसके विरुद्ध आशय को प्रकट नहीं करते रहे तब तक का समय इतिहास के अन्दर "वैदिक समय" कहलाता रहा। जब आर्य्यजाति ने वेद के आदर्श को तज कर अपना आचार उसके विपरीत प्रारम्भ कर उसके स्थान में तंत्रमत, बौद्धमत, शङ्करमत, पौराणिकमत स्थापन कर लिया तो हम कह सकते हैं कि अवैदिक समय का आरम्भ हुआ। वैदिक समय को यदि सूर्य की उपमा दें तो अवैदिक समय को हम दीपक की उपमा दे सकते हैं। जब मनुष्य दीपक को बुझा कर फिर सूर्य से काम लेने लग जाते हैं उस समय कह सकते हैं कि फिर सूर्य का समय होगया, इसी प्रकार जब आर्य्यजाति वेद से विमुख हो गई, तब अवैदिक समय का आरम्भ हुआ। जब आर्य्यजाति फिर अवैदिक ग्रन्थों को छोड़ कर वैदिक आचरण करने के लिये वैदिक आदर्श की शरण लेगी तो हम कहेंगे कि पुनः वैदिक समय का आरम्भ होगा।

इतिहास में भी वे समय सर्वदेशीय हैं

पृथ्वी के नाना देशों के इतिहास में हम दो समयों के उदाहरण पाते हैं, इनको ही इतिहासवेत्ता डार्क एज (Dark age=अन्धकार का समय) और एनलाइटेण्ड एज (Enlightened age=प्रकाश का समय) बतलाते हैं। जब जातियां कुकर्म से पीड़ित होकर दीनता को प्राप्त हो जाती

हैं, उस समय का इतिहास अन्धकार का इतिहास कहलाता है। जिस समय जातियां सब प्रकार की उन्नति में प्रवृत्त होती हैं, उस समय का इतिहास प्रकाश का इतिहास कहलाता है। इसके अतिरिक्त सृष्टिक्रम के अनुसार मनुष्य की, दो ही दशा होसकती हैं। स्वास्थ्य की और रोग की, अर्थात् उन्नति की और अधोगति की। उन्नति की दशा सृष्टिनियम के अनुसार (Natural or Vedic) आचार व्यवहार का परिणाम होती है और अधोगति की दशा सृष्टिक्रम के विरुद्ध (Unnatural or Unvedic) आचार व्यवहार का फल होती है। उत्तम अवस्था स्वाभाविक (Natural) अवस्था कहला सकती है और अधम अवस्था कृत्रिम (Artificial) अवस्था कहलाने के योग्य है। हमें इस स्थल पर स्वाभाविक और कृत्रिम को समझने की आवश्यकता है। स्वाभाविक अवस्था में मनुष्य सृष्टि के नियमों के अनुकूल, जिन नियमों को कि उन्होंने स्वयं नहीं बनाया आचरण करते हैं और कृत्रिम अवस्था में उन नियमों पर चलते हैं जिनमें कि उनकी बनावट भी सम्मिलित है। कृत्रिम दशा यद्यपि स्वाभाविक दशा के कैसी ही विपरीत क्यों न हो परन्तु उसमें स्वाभाविक दशा का अंश तो अवश्य ही विद्यमान रहता है। यथा वृक्ष यदि स्वाभाविक वस्तु है तो चौकी कृत्रिम है। चौकी में काष्ठ विद्यमान है जो कि स्वाभाविक बना था किन्तु उस काष्ठ को विकृत करने से विशेष दशा उस काष्ठ की बनगई है। इसी बात का हम एक और दृष्टान्त से सिद्ध कर सकते हैं। सूर्य स्वाभाविक है और दीपक कृत्रिम। दीपक में अग्नि-अंश सूर्य का ही है, परन्तु दीपक की ज्योति परिमित और धूंए से रहित नहीं हो सकती। सूर्य की ज्योति महान् और रोग से सर्वथा रहित होती है। इसलिये सूर्य में काम करने वाला उन्नति को प्राप्त होता है परन्तु दीपक में काम करने वाला उसके विपरीत अधोगति को जा रहा है।

तन्त्रमत, बौद्धमत, शंकरमत, पौराणिकमत, ये सब कृत्रिम हैं और दीपक के समय हैं। इन सब को हम अवैदिकमत कह सकते हैं। इन सब में तेज का अंश विद्यमान है परन्तु धूंए से ये सर्वथा रहित नहीं हैं। इसलिये जब आर्यजाति वैदिक समय में थी तब इनका प्रादुर्भाव न था। जब इन अवैदिक समयों का आरम्भ हुआ तो कुछ अंश में वैदिक समय रहा और अधिक कर के अवैदिक समय वर्तमान होगया। यदि वैदिक समय में आर्यजाति सब प्रकार की उन्नति के शिखर पर थी तो अवैदिक समय में यह पाताल की ओर गिरने लगी यहांतक कि रसातल तक पहुंच गई। आर्यलोग वेद को ईश्वरीय ज्ञान और सत्यविद्या का मूल मानते हैं और सत्य

विद्या सूर्य की नाईं कृत्रिम नहीं होती। जब तक आर्यजाति वेद के स्वाभाविक सूर्य के प्रकाश की सहायता से अपना आचार व्यवहार करती रही तब तक यह उन्नतिशील रही, जब यह अवैदिक दशा में आगई तब यह अधोगति को प्राप्त होती गई।

किसी जाति की उन्नति अथवा सभ्यता का मुख्य कारण ज्ञान है

मिस्टर 'बकल' से लेकर अनेक महाशयों ने विशेष जातियों की सभ्यता के इतिहास लिखे हैं। इन इतिहासों में यह दर्शाया गया है कि जब कोई विशेष जाति उन्नति की दशा में होती है तब उस जाति में साइन्स (Science=ज्ञानकाण्ड) और आर्ट्स (Arts=कर्मकाण्ड) का प्रचार होता है और लौकिक उन्नति के यही दो मुख्य साधन हैं। पारलौकिक उन्नति के साधन उपासना और ब्रह्मज्ञान होते हैं, जिनका गौण रीति से वर्णन इस प्रकार के प्रचलित इतिहासों में मिलता है। हमें इस समय यह विवाद करना नहीं है कि किसी जाति की उन्नति के सम्पूर्ण साधन कितने हो सकते हैं। यदि एक सहस्र नियम भी किसी मनुष्य जाति की उन्नति के साधन माने जावें, तो भी उन में मुख्य एक साधन शिरोमणि हो सकता है उस शिरोमणि साधन का नाम पश्चिमीय भाषा में साइन्स और हमारी परिभाषा में ज्ञान है अथवा सत्यविद्या। आर्ट्स (कर्मकाण्ड) ज्ञान के विना नहीं हो सकता। उपासना ज्ञान के विना नहीं की जा सकती। सभा अथवा समाज की व्यवस्था विना ज्ञान के नहीं हो सकती। आयुर्वेद, धनुर्वेद इत्यादि नाना प्रकार के उपयोगी साधन जो कि उन्नति के सोपान हैं, विना ज्ञान जीवित नहीं रह सकते। अत: सार यह है कि किसी जाति की उन्नति का मुख्य कारण सत्यविद्या अथवा ज्ञान ही है।

ज्ञान का इतिहास

ज्ञान क्या है? यह प्रश्न स्वाभाविक ही उत्पन्न होता है। इस के उत्तर में हम कह सकते हैं कि ज्ञान शब्दार्थ के सम्बन्ध का नाम है। ज्ञान की मीमांसा करते हुये हमें शब्दों और उनके अर्थों की ओर जाना पड़ता है, जहां शब्द है वहां ज्ञान है क्योंकि शब्द किसी अर्थ के बोधक होते हैं और शब्द का अर्थ के साथ सम्बन्ध ही का नाम ज्ञान है।

इस विषय की पुष्टि न केवल ऋषि मुनियों के वचनों और शास्त्रों द्वारा ही हो रही है, बल्कि मेक्सम्युलर से विदेशीय भी इस विषय में हमसे सहमत हैं। जब यह बात है तो हमें सोचना है कि शब्द और उन के अर्थों का इतिहास क्या है?

क्योंकि ज्ञान का इतिहास वास्तव में शब्द और अर्थ का इतिहास हो सकता है। जब हम इस प्रश्न के निर्णय के लिये प्रस्तुत होते हैं, कि ज्ञान कहां से आया, तो हमें प्रथम यह सोचना चाहिये कि ज्ञान कृत्रिम है अथवा अकृत्रिम ? यदि यह कृत्रिम है तो मनुष्य इसको बना सकता है और किसी मनुष्य ने ही स्वयं उत्पन्न किया होगा ? यदि यह कृत्रिम नहीं तो यह ईश्वर की ओर से ही सकता है। सर्व शास्त्रकार मानते हैं कि ज्ञान कृत्रिम नहीं। मेक्समुलर ने "साइन्स आफ़ लेंग्वेज" (The Science of Language) नामी पुस्तक के प्रथम भाग में इस बात को स्वीकार किया है कि शब्द और अर्थ अथवा ज्ञान कृत्रिम नहीं। प्रत्येक बुद्धिमान् स्वयं विचार सकता है कि ज्ञान विना माता पिता अथवा गुरु से सीखे कभी प्राप्त नहीं होता और वे माता पिता आदि इसी प्रकार पूर्वज लोगों से सीखते आये हैं। पूर्वज लोगों ने आदि सृष्टि के ऋषियों से सीखा होगा। उन ऋषियों ने आदि सृष्टि के समय ईश्वर से ही निस्सन्देह धारण किया होगा। इस विषय में अमेरिका के एक विद्वान् डाक्टर ट्राल एम. डी. इस प्रकार कहते हैं:—

"यद्यपि हमारे पिता पितामह प्राचीन समय से एक अथवा अनेक भाषा सम्भाषण करते हुये मर गये परन्तु कोई भाषा हमारे दायभाग में नहीं आसकती। कभी भी कोई उदाहरण एक बच्चे का ऐसा नहीं मिला कि जिसको विना पढ़ाये पढ़ना आगया हो, चाहे उसके माता पिता आयुभर पढ़ते रहे हों। बच्चे विना सिखाये बोल भी नहीं सकते। यद्यपि उनके माता पिता और उनके अनेक पितृगण अनेक वर्षों से बोलते और सुनते चले आये हैं। भाषा सीखने के लिये बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है और इस बात को हम तब ही अनुभव कर सकते हैं जब कि हमें किसी भाषा के सीखने का अवसर मिले। "प्रोफ़ेसर वीनरमेन" इस बात को सत्य मानते हैं, कि सभ्य जातियों के बच्चे यदि जंगल में पाले जायं और मनुष्य का उन से मेल जोल न रहे तो ऐसी दशा में वे एक दूसरों के साथ बात चीत भी नहीं कर सकेंगे। उन युवा और छोटी आयु वाले लोगों के विषय में बहुत कुछ कहा जाता है जो कि जंगलों में जंगलीदशा में जीवन व्यतीत करते हुये पाये गये हैं और ऐसे दृष्टान्त समय २ पर गत शताब्दी तक जर्मनी, फ्रान्स, इंगलेण्ड और रूस में मिलते रहे हैं। इन सब के विषय में कहा जाता है कि वे जंगली पशुओं की सी बोली बोलते थे जिनके कि साथ वे मेल जोल करते रहे, परन्तु उन में से एक भी ऐसा न पाया गया जो कि मनुष्य के सदृश बात चीत कर सकता हो"।

यदि हम वर्त्तमान उन्नति का इतिहास खोजना आरम्भ करें तो भी हम उसी स्थल पर पहुंच जाते हैं। इस समय भारतवर्ष अंग्रेज़ों से ज्ञान को, जोकि उन्नति का मूल है, धारण कर रहा है। अंग्रेज़ों ने इसी ज्ञान को रोम वालों से धारण किया था, रोम वालों ने यवन लोगों से, यवनों ने मिश्रियों, अर्बियों, ईरानियों से। ईरानियों ने प्राचीन भारतनिवासियों से और प्राचीन भारतवासियों ने इस ज्ञान को किसी अन्य देशवासियों से नहीं ग्रहण किया था किन्तु ऋषि मुनियों से और उन ऋषि मुनियों ने वेदों से। वेद ज्ञान का दूसरा नाम है और वेद अर्थात् आदि ज्ञान ऋषियों ने परमात्मा से ही ग्रहण किया था अत: सत्य ज्ञान की योनि परमात्मा है।

सत्यविद्या ही का नाम वेद है

जिसको सत्यविद्या कहते हैं उसी का नाम वेद है। सर्व शास्त्रकार इस बात को जानते हैं "ठाकुर साहब गोंडाल" * ने "आर्य्य आयुर्वेद का इतिहास" नामी पुस्तक में इस बात की पुष्टि की है, मेक्समुलर भी इस बात को इसी प्रकार स्वीकार करता है †

"वेद के अर्थ क्या हैं? उसके अर्थ विद्या के हैं"।

वेद की विशेषता यही है कि यह सत्यविद्या है। वेद में कोई बात झूठ नहीं है वेद का एक २ वाक्य बुद्धिपूर्वक है और जो २ बात बुद्धिपूर्वक होती है वह सत्य होती है।

वैशेषिक दर्शन के कर्त्ता महर्षि कणादजी वेद की इस विशेषता को इस प्रकार वर्णन कर रहे हैं जिससे सिद्ध होता है कि वेद में कदापि "मिथालोजी" (Mythology) मिथ्या कहानियां नहीं हैं जैसा कि पश्चिम के अनेक महाशय कल्पना कर रहे हैं। न कोई वेद में बच्चों की बिलबिलाहट है और न गँवार लोगों की लीला, जैसा कि मेक्समुलर आदि लिख रहे हैं। महर्षि कणादजी का वह वाक्य यह है:—

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे ॥ वै० अध्या० ५। आ० २। सू० १॥
ब्राह्मणे संज्ञाकर्मसिद्धिलिङ्गम् ॥ २॥

* History of Aryan medicine by Thakur Shaib Sir Raja Bhagwant Singhji M.D., of Gondal.

† Physical religion by F. Maxmuller P. 56.

(अर्थ) वेद में जो वाक्यकृति अर्थात् शब्दार्थ का सम्बन्ध है वह बुद्धिपूर्वक है। ब्राह्मण ग्रन्थ में संज्ञाकर्म (परिभाषा) की सिद्धि का लिंग (चिह्न) है ॥

महर्षि कणाद के इस दूसरे सूत्र से पाया गया कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं है और ब्राह्मण ग्रन्थों का काम वैदिक आशय के अनुसार विशेष करके परिभाषा स्थिर करने का है। अतएव वेद के अर्थ सत्यज्ञान के सर्वसम्मत है और सत् ज्ञान अथवा वेद ईश्वर की ओर से ही मनुष्य जाति के प्रथम पितरों को हृदय में शब्दार्थ के स्वरूप में प्रेरणा द्वारा मिला था यह बुद्धिमान् स्वीकार करते हैं।

वेद सर्वदेशीय हैं

एक मनुष्य यदि दुशाला पहिनले अथवा मलमल ओढले दोनों दशाओं में उसके स्वरूप में भेद नहीं आजाता। ज्ञान का स्वाभाविक वस्त्र वह वाणी है जो कि वैदिक शब्दों के रूप में विराजमान है, परन्तु यदि कोई इन शब्दों को आगे पीछे करके कोई विकृत भाषा बनाले तो भी ज्ञान के स्वरूप को वह बदल नहीं सकता। तरु शब्द वृक्ष का वाचक है उसको बिगाड़ कर कोई "ट्री" बनाले तो बना सकता है परन्तु वृक्ष के ज्ञान में कोई भेद नहीं आसकता। हां इतना है कि उत्तम शब्द द्वारा सुगमता से ज्ञान उपलब्ध हो सकता है, विकृत शब्द द्वारा कठिनता से चिरकाल में वही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। वेदों के शब्द और अर्थ सर्वदेशीय हैं, सर्वभाषाओं में वैदिकशब्द व्यापक हो रहे हैं। पृथ्वी के सर्व ज्ञानकांड में वैदिकज्ञान विराजमान है। जिन जातियों ने पूर्वकाल में उन्नति की थी उन्होंने वेद के आश्रित होकर ही की। जो वर्त्तमान समय में उन्नति हो रही है वह भी वेद के आश्रय से ही उन्नत हैं। भावीकाल में जो उन्नति होगी वह भी वेद का आश्रय लेकर ही होगी। वैदिकज्ञान सर्व देशों के लिये है, वैदिकज्ञान के अनुसार आचार व्यवहार करने वाले किसी एक देश में नहीं हो सकते किन्तु सर्व देशों में रह सकते हैं। वेद जब सत् ज्ञान का नाम है तो निस्सन्देह मनुष्यमात्र के लिये है। जहां २ मनुष्य है उसको वेद की आवश्यकता है। स्वाभाविक पदार्थ कभी एकदेशीय नहीं होते। सूर्य किस देश का है ? पवन किस देश का है ? यही उत्तर दोगे कि यह सर्वदेशीय हैं इसी प्रकार वेद अथवा सत्य ज्ञान सर्वदेशीय और सर्वहितकारी है।

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः"

यह वेदवचन बतला रहा है कि वेद किसी एक पुरुष अथवा एक जाति के लिये नहीं किन्तु मनुष्यमात्र के लिये ज्ञान सूर्यवत् है।

मनुष्य जाति के पितर आदि समय में इकट्ठे एक देश में रहते थे

भारतवर्ष में जो इस समय आर्यजाति पाई जाती है इनके आदि-पितर भारतवर्ष में नहीं रहते थे परंच त्रिविष्टप (तिब्बत) के उच्चस्थल के रहने वाले थे, न केवल यही, परंच पृथिवी के सम्पूर्ण देशवासियों के आदि-पितरों का आदिगृह तिब्बत ही था। जब तिब्बत देश में मनुष्यसंख्या अधिक होगई तो जिस प्रकार आजकल इङ्गलिस्तान आदि देशों से निकल २ कर लोग आस्ट्रेलिया आदि देशों में जाबसे हैं उसी प्रकार उन आदि आर्यों की सन्तान भारतवर्ष अवगहनस्थान (अफ़ग़ानिस्तान) आर्यस्थान (ईरान) चीन, हरिवर्ष (यूरोप) पाताल (अमेरिका) अजप्त (ईजिप्ट) देश पालीस्थान (पेलेस्टाइन) अर्वस्थान (अरबस्थान) यवन (यूनान) शर्मन देश (जर्मनी) पवित्र खंड (स्विटजरलेंड) धेनुमार्ग (डेनमार्क) सुयोधन (स्वीडन) नारात्रज (नार्वे) आर्यखंड * (आयरलेंड) आदि स्थलों पर बसी और अपने साथ वेद और वैदिक आचरणों को लेगई।

भारतवर्षीय वर्त्तमान आर्यों के पितर जब अपने भाइयों से बिछुड़ कर इस देश में बसने को आये तो उस समय इस देश में पहिले से और कोई मनुष्य पाये न जाते थे। उन्होंने ही आदि सृष्टि के समय से इस देश को आनकर बसाया, परन्तु इस विषय में "मेक्सम्युलर" "लेथब्रिज" "हन्टर" आदि महाशयों ने कल्पनाओं के पुल बांध कर खड़े कर दिये हैं और जहां तहां अपनी पुस्तकों में लिख रहे हैं कि उस समय दस्यु जाति भारतभूमि में विराजमान थी। मेक्सम्युलर महाशय को यह जानना चाहिये कि आर्य, दस्यु यह दो जातियां गुण, कर्म, स्वभाव से सर्वदेशीय हैं। धर्मात्मा पुरुषों का नाम सर्वदेशों में आर्य और दुष्ट पुरुषों का नाम सर्व स्थानों में दस्यु है परन्तु मेक्सम्युलर ऐसा क्यों माने? उनको तो इस बात के सिद्ध करने का पक्ष लग रहा है कि भारतवर्षीय आर्य दस्यु लोगों से लड़े और उन्होंने अत्यन्त क्रूरता की। उन्हें तो यह सिद्ध करना है कि भारत के प्राचीन पितृगण क्रूर थे, परन्तु किसी ने सच कहा है कि जादू वह जो शिर पर चढ़के बोले, सच अन्त को निकल ही जाता है। यदि मेक्सम्युलर इस बात पर दृढ़ होते तो कभी कहीं पर ऐसा न कहते कि आदि सृष्टि के समय थोड़े ही मनुष्य उत्पन्न हुये थे और धीरे २ बढ़ते गये प्रत्युत ऐसा लिखते कि आदि सृष्टि के समय ही सर्व देशों में मनुष्य उत्पन्न होगये और वर्तमान समय की

* इन शब्दों की मीमांसा के लिये निम्नलिखित पुस्तकें देखो—
(1) Bible in India. (2) Science of language Vol. I. (3) Asiatic Researches.

तरह उनकी संख्या थी। आर्यावर्त्तीय प्राचीन आर्यों को क्रूर सिद्ध करने के लिये उन्होंने यह षड्न्त की कि भारतवर्ष में पहिले से ही आर्यजाति से भिन्न एक स्वतन्त्र-जाति भील, गोंड, संथाल आदि नाम से विराजमान थी परन्तु जब स्वयं इस प्रश्न का उत्तर देने लगे कि आदि सृष्टि के समय पर अनन्त पुरुष हुए थे अथवा अनेक तो उस समय इस बात को भूल गये। हम उनका परस्पर विरोध उन्हीं के शब्दों से दर्शाना चाहते हैं वह लिखते हैं कि:—

"हमें इस बात के चिन्तन करने का अधिकार है कि करोड़ों मनुष्यों के होजाने से पहिले थोड़े ही मनुष्य थे, आजकल हमें बतलाया जाता है कि यह कभी नहीं होसकता कि पहिली पहल एक ही मनुष्य उत्पन्न हुआ हो। एक समय था जब कि थोड़े ही आदि पुरुष और थोड़ी ही आदि स्त्रियां उत्पन्न हुई थीं *। मेक्सम्युलर मरण पर्य्यन्त इस बात को मानते रहे हैं और उनके लेखों से यह बात पाई जाती है कि "वह मनुष्य जाति का आदिगृह एशिया (Asia) में किसी स्थल पर मानते हैं" जब यह बात है तो हम विस्मित हैं कि मेक्सम्युलर के किस लेख को सच्चा और किस को झूठा समझें? यदि उनकी यह बात सत्य है कि आदि सृष्टि में अनेक पुरुष हुये नकि अनन्त और साथ ही एशिया के किसी स्थल पर मनुष्य जाति का गृह था तो हम नहीं समझते कि फिर उनकी और उनके सहयोगियों की यह कल्पना कैसे ठहर सकती है कि आर्य्यों के भारतवर्ष में आने से पूर्व ही एक दस्यु नाम की जाति यहां रहती थी इसलिये मेक्सम्युलर आदि महाशयों की यह कल्पना निर्मूल है कि भारतवर्ष में आर्यों के आने से पूर्व कोई बसता था।

आदि सृष्टि अमैथुनी होती है

तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजञ्च ॥ ५ ॥

(वै० द० अ० ४। आ० २। सू० ५)

इसकी व्याख्या गोतमजी ने प्रशस्तपाद में इस प्रकार की है:—

तत्रायोनिजमनपेक्षितशुक्रशोणितं देवर्षीणां शरीरं धर्मविशेषसहितेभ्योऽणुभ्यो जायते ॥

* Chips from a German Workshop Vol. I, P. 237. Essay on "Classification of mankind" by F. Maxmuller.

इन वचनों में अमैथुनी सृष्टि का यह निर्वचन किया है कि जो सृष्टि रजवीर्य के संयोग के विना हो। यजुर्वेद के पुरुषसूक्त से यह बात सिद्ध होती है कि आदि में ईश्वर ने ही मनुष्य ऋषि आदि रचे। यथा—**तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ यजु० अ० ३१ । मं० ९ * ॥**

बुद्धिमान् पुरुष भी अपने विचार से इसी सिद्धान्त को पुष्ट करते हैं मदरास हाईकोर्ट के † जज टी. एल. स्ट्रेञ्ज महाशय ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ २७ पर इस बात को स्वीकार किया है कि आदि सृष्टि अमैथुनी होती है और इस अमैथुनी सृष्टि में उत्तम सुडौल शरीर बनते हैं।

आदि आर्यों का गृह तिब्बत में था

"हारमोनिया" नामी पुस्तक के भाग ५ में अमेरिका के विद्वान् डेविस, जरमनी के प्रोफ़ेसर ओकन (Oaken) की साक्षी सहित इस बात को प्रतिपादन करते हैं कि यतः हिमालय सब से ऊंचा पहाड़ है इसलिये आदि सृष्टि हिमालय के निकट ही कहीं पर हुई होगी। हिमालय के निकटवर्त्ती देश को इसलिये आदि आर्यों का गृह बतलाया जाता है कि जिस समय यह पृथिवी बनकर तय्यार हुई होगी उस समय पहिला स्थल जो इस पर प्रकाशित हुआ होगा वह वही हो सकता है जो इस समय सब से ऊंचा पहाड़ है इसलिये उस ऊंचे पहाड़ के निकट के स्थान ही मनुष्य के रहने के योग्य होंगे।

भारतवर्ष के वैदिक समय के नियमों का वर्णन

जो आर्य्य कि तिब्बत से आनकर इस देश में बसे वे अपने साथ वेद और वैदिक आचरण लाये और अपने पुरुषार्थ द्वारा उन्होंने न केवल इस देश को ही बसाया किन्तु कई द्वीप द्वीपान्तरों को भी आबाद किया और पीछे विजय करते रहे। उनमें जो दुष्टकर्म के कर्ता होते थे उनको आर्य जाति (नेशन) से पतित हो जाने के कारण दस्यु कहलाते थे और जो दस्युकुलोत्पन्न श्रेष्ठ आचार करते थे उनको वे आर्य बना लेते थे उनकी

* सृष्टिविज्ञान नामी पुस्तक में यह विषय विस्तारपूर्वक सिद्ध किया गया है। मू० २) मिलने का पता—जयदेव ब्रदर्स बड़ोदा।

† The Development of creation on the Earth P. 27 by Thomas Lumsden Strange, late Judge of the High Court, Madras (Trubner & Co., London.)

लौकिक और पारलौकिक उन्नति का मूल वेद था और वेद के उपदेश के अनुसार उन्होंने यत्न करते हुए आर्यावर्त को जगद्गुरु और पृथ्वी के चक्रवर्त्ती राज्य का केन्द्र बना दिया था। इस समय हम मोटे मोटे कुछ नियम लिखते हैं जिनको कि मानने और जिनके अनुसार आचरण करने से उन्होंने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि की थी।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयो-रन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ ऋ० मं० १। सू० १६४। मं० २०॥

वैदिक समय में जीव, ईश्वर और प्रकृति का ज्ञान था

इस वेदवचन के अनुसार वे आर्य मानते थे कि ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन अनादि सत्ता हैं और यह कि जीव और परमात्मा दोनों चेतन हैं जीव स्वतन्त्रता से कर्म करता हुआ प्रकृति के भोगों को प्राप्त होता है और ईश्वर कर्मों के फलों को न भोगता हुआ सर्वत्र व्यापक हो रहा और जीव के कर्मों का फल देरहा है। आर्य लोग जानते थे कि जीव के कर्मों का फलप्रदाता और सृष्टि का निमित्त कारण अनादि पूजनीय एक परमात्मा है। इस सिद्धान्त को आधार बनाकर वेदों के उपदेशानुसार, जो कि वास्तव में ईश्वर की आज्ञा है, उन्होंने सामाजिक व्यवस्था, वर्णाश्रमव्यवस्था, यज्ञ, कला-कौशल आदि महान् धर्म-कार्यों को सिद्ध कर दिखाया था।

उस समय आर्य-जाति जीवित जागृत थी

कौन नहीं जानता कि ज्ञान, कर्म आदि का आधार ईश्वर से उतर कर मनुष्य-समाज (नेशन) अथवा जाति होती है आर्यों को वेद का उपदेश इस विषय में बतला रहा था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र मिलकर आर्यजाति को बनाते हैं और इस जाति में वही प्रविष्ट हो सकता है जो वर्णधर्म (Duty) पर आरूढ़ हो (देखो ऋग्वेद मं० १। सूक्त ५१। मं० ८)। जो वर्णधर्म (Duty) के योग्य नहीं है और जो कमाकर निर्वाह नहीं करना चाहता केवल लूट मार से पेट भरता है वह अधर्मात्मा मनुष्य दस्यु है। पूर्वोक्त जाति (नेशन) के चार भाग आपस में ऐसे मिले जुले रहते थे मानो कि एक शरीर के चार अंग हैं। सुख, दुःख, हानि, लाभ, हर्ष, शोक, सब में यह चारों वर्ण एक थे। ब्राह्मण का मुख्य काम सब को उपदेश तथा शिक्षा देना था, क्षत्रिय का काम सब के लिये युद्ध करना और न्याय द्वारा सब की रक्षा करना था, वैश्य का

काम सब के लिये कमाना और सब को धन बांटना था, शूद्र का काम सब की सेवा करना था। चारों वर्णों के इस निकट सम्बन्ध को वे लोग वर्णव्यवस्था * कहते थे। उन को यजुर्वेद के ३१ अध्याय का ग्यारहवां मन्त्र बतला रहा था कि वर्णव्यवस्था तब ही पूर्ण उन्नत अवस्था में समझनी चाहिये जब कि प्रत्येक वर्ण अपने आप को आर्यजातिरूपी एक महान् शरीर का एक एक अंग अनुभव करने लग जावे।

प्राणिमात्र से प्रेम और परोपकार

आर्य लोग यजुर्वेद अध्याय ३६ के मंत्र १८ की शिक्षानुसार हृदय से चाहते थे कि हम पृथ्वी भर के सर्व मनुष्यों और प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखें और वे सम्पूर्ण मनुष्य तथा प्राणी हमको मित्रवत् जानें। प्रेम का राज्य सर्वत्र फैले और सर्व मनुष्यजाति आनन्द मंगल से जीवन व्यतीत करे, इस वेद-वचन के अनुसार वह न केवल मनुष्यमात्र से ही प्रेम करते थे परंच पशु पक्षी की भी हिंसा नहीं करते थे प्रेम की महिमा का पूर्णता से उनको वैदिक उपदेश मिल रहा था फिर क्यों न वे प्रेममय और दयावान् होते।

सत्य

वर्णाश्रमव्यवस्था का स्थिर और जीवित रखना कुछ तुच्छ और साधारण काम नहीं परंच परम धर्म है। आर्यजाति के सहस्रों लोगों को एकमत होकर विचरना और सबको भ्रातृभाव से देखना, मिलकर एक दूसरे की रक्षा करना, मिलकर व्यवहार करना, मिलकर भोगों की सामग्री को प्राप्त होना, मिलकर विद्या की वृद्धि करना, मिलकर दुष्टों को दण्ड देना, मिलकर गुरुकुल में विद्या का दान देना, मिलकर संवाद करने और मिलकर एक दूसरे को मोक्षधाम तक ले जाना यह सब परम धर्म के कार्य हैं। मनुष्यों को मिलाने और इकट्ठे करने का यदि पहिला साधन प्रेम है तो इस प्रेम और संगति की रक्षा करने वाला दूसरा साधन सत्य है। यदि व्यवहार में सत्य नहीं, यदि वाणी में सत्य नहीं, यदि मन में सत्य नहीं तो समाज नष्ट भ्रष्ट होजाता है। सत्याचरण सभा, जाति, समाज, व्यवस्था आदि की स्थिति का दूसरा साधन है और इन साधनों पर आर्य लोग ऐसे आरूढ़ थे कि चाहे सर्वस्व नष्ट होजाय परन्तु प्रेम और सत्य को वह छोड़ नहीं सकते थे। इन साधनों को छोड़ने वाला सुसाइटी की हिंसा करता है, हिंसा जैसे महान् पातक का भागी वह पुरुष होता है जो प्रेमपूर्वक सत्य व्यवहार नहीं करता, वही अहिंसा की सिद्धि करता है वही सुसाइटी को स्थिर रखता है जो प्रेम तथा

* व्यवस्था शब्द के यौगिक अर्थ Organization के भी हैं।

सत्य पर आरूढ़ है। उन प्राचीन आर्यों ने सच पूछो तो प्रेम और सत्य का व्रत धारण किया हुआ था और यही कारण है कि वे अभय होकर जीवन व्यतीत करते थे। सुसाइटी की अवस्था ऐसी उत्तम बनाली थी कि उनको मोक्षरूपी जीवनफल के प्राप्त करने का अवसर पूर्णता से मिलता था। उन परोपकारी आर्यों को यह भली प्रकार विदित था कि समस्त व्यवहारों की सिद्धि के लिये सत्यव्रत होना आवश्यक है, उनको यजुर्वेद अध्याय प्रथम का पांचवां मंत्र सत्य के व्रत धारण करने का उपदेश दे रहा था। यदि हम उन नियमों को केवल गिनाते हुये चले जायें जो कि प्राचीन आर्य्यों ने वेद से धारण किये हुये थे तो एक ग्रन्थ में उनकी विस्तारपूर्वक सूची आ-सकती है। पुरुषार्थ को प्रारब्ध से उत्तम मानना, पंचमहायज्ञों का करना, नाना प्रकार के कला-यंत्रों का निर्माण करना, आश्रमों को मोक्षधाम का मार्ग बनाना, ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान से पूरित होकर आत्मा में निराकार ब्रह्म का दर्शन करते हुये मुक्ति पाजाना उनके महान् जीवन के उद्देश्य होते थे मनुष्य को जन्म से लेकर मरण पर्य्यन्त मुक्ति पाने के लिये जो जो साधन करने चाहियें उनका ज्ञान चारों वेदों में दिया हुआ है। सांसारिक और आत्मिक उन्नति मनुष्य इनके अनुसार पूर्णता से कर सकता है। ऋषि, मुनि वेदों को सर्व सत्यविद्याओं का भण्डार मानते आये हैं, विदेशीय विद्वान् जिन्होंने कि वेदों को स्थूल दृष्टि से पक्षपात रखते हुये देखा है वे भी वेदों में नाना विद्याओं के होने की साक्षी दे रहे हैं। हम संक्षेप रीति से विदेशियों की साक्षी इस विषय में लिखकर फिर "वैदिक समय" का वर्णन करेंगे।

"कपड़े बुनने का वर्णन ऋग्वेद (* २, ३, ६) में है और ताना पेटा उसी विधि पर बुनना बतलाया गया है जैसा कि वर्त्तमान समय में होता है, बढ़ई का काम लोग उत्तमता से जानते थे और ऋग्वेद (* ३, ५३, १६) में गाड़ियों और रथों के बनाने का विधान है। लोहे, सोने और अन्य धातुओं के उपयोग में लाने की विद्या उत्तमता से विद्यमान थी"।

"ऋग्वेद (* ५, ६, ५) में लोहार के काम की विधि पाई जाती है और ऋग्वेद (* ६, ३, ४) में सुनारों के लिये सोना पिघलाने का विधान है। ऋग्वेद के मण्डल १ सूक्त १४० मन्त्र १० तथा मण्डल २ सूक्त ३६ मन्त्र ४ में और मण्डल ४ सूक्त ५३ मन्त्र २ में योद्धा के लिये कवच (ज़िरहबक्तर) पहिन कर जाने का विधान है।

* (विवरण) पहिला अङ्क मंडल का, दूसरा सूक्त का और तीसरा मंत्र का बोधक समझें।

ऋग्वेद मण्डल २ सूक्त ३४ मन्त्र ३ में सुनहरी खोदों का वर्णन है और ऋग्वेद मंडल ४ सूक्त ३४ मन्त्र ६ में कन्धों और भुजाओं के लिये कवच पहिनने का विधान है। छठे मंडल के सूक्त ४६ मन्त्र ११ में तीरों के नोकदार परों का वर्णन है और इसी सूक्त के २६ व २६ मन्त्रों में संग्राम के लिये रथों और ढालों का वर्णन है। मंडल २ सूक्त ४१ के मन्त्र ५ में उत्तम मकान बनाने का विधान है"।

"मण्डल ४ सूक्त ४ के मन्त्र १ में राजपुरुषों के हाथियों पर सवार होने का विधान है, ऋग्वेद मण्डल ४ के सूक्त ५७ के पहिले आठ मन्त्रों में विस्तारपूर्वक कृषिविद्या का उत्तम विधान है और ऋग्वेद मण्डल १० के सूक्त १०१ के तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, सातवें मन्त्रों में कूप और हल की सामग्री बनाने तथा बीज बोने इत्यादि कृषिविद्या का विधान है। मण्डल १० सूक्त २५ के मन्त्र ४ में कूप बनाने की विद्या है और मण्डल १० सूक्त ६३ के १३ मन्त्र में कूप से पानी निकाल कर खेतों में सिंचन करने की विद्या है। मण्डल १० सूक्त ६६ के मन्त्र ४ में नहरों से खेतों में पानी पहुंचाने का विधान मिलता है मण्डल ५ सूक्त २७ के मन्त्र २ में सोने का सिक्का बरतने का विधान पाया जाता है और मण्डल १ सूक्त २५ के मन्त्र ७ से समुद्रों में जहाज़ चलाने की विद्या है। मण्डल ४ सूक्त ५५ के मन्त्र ६ में धन उपार्जन करने के लिये विदेशों में जलयात्रा करके जाने की विधि है"।

इस प्रकार विदेशियों के उद्धृत वाक्य इतिहासों में मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि वेदों में नाना विद्याओं का विधान विदेशी भी स्वीकार करते हैं।

वैदिक समय का महत्व

वेदों की विद्याओं को गिनाना इस समय हमारा काम नहीं है इसलिये हम इस विषय पर अधिक लेख करने की आवश्यकता नहीं समझते। अब हम दर्शाना चाहते हैं कि वैदिकज्ञान को आदर्श माननेवाले आर्य्यों ने कैसी विचित्र और अनुपम उन्नति की थी। आदर्श को देखकर जो पुरुष घर को आदर्शरूपी चित्र के अनुसार बनाता है वह स्तुति के योग्य है। सम्पूर्ण ज्ञान, उपासना और विज्ञानकाण्ड का चित्र (नक़शा) मानो वेद है पर जिन पुरुषों ने इस चित्र पर दृष्टि रखते हुये इसके अनुसार शारीरिक और आत्मिक उन्नतिरूपी गृह बनाये मनुष्यजाति में उनकी महिमा महान् रहेगी। ईश्वररचित बीज को लेकर जो किसान हल चलाकर खेत बोता और सहस्रों मन अनाज उत्पन्न करके

राजा और प्रजा का पेट भरता है उसका पुरुषार्थ सराहनीय है इसी तरह पर वेदों से नाना विद्याओं के बीज लेकर चारों वर्णों के स्त्री पुरुषों ने उनका विस्तार किया और उस विस्तार का चिह्न पुस्तकाकार में आने वाले मनुष्यों के लिये छोड़ गये। वैदिक समय एक मनोहर उद्यान के सदृश हमारे ज्ञान-नेत्रों के सन्मुख उपस्थित हो रहा है। इस बाग का एक एक वृक्ष सुन्दर सुगन्धि देता हुआ आकाश से बातें कर रहा है। इस उद्यान के सुन्दर लहलहाते पत्ते, मीठे फल और रंग बिरंगे फूल व्याकुल हृदय को शान्ति और नवजीवन प्रदान करने वाले हैं। इस उद्यान के एक कोने में कई एक ब्रह्मर्षि जीवन्मुक्त बैठे हुये ब्रह्मविद्या के पुस्तक रच रहे हैं जिनका कि नाम उपनिषद् है। इन उपनिषदों को पढ़ने से दग्धहृदय शान्ति को प्राप्त होते हैं, शोक और भय के समुद्र से पार होने के लिये आत्मा नवीन बल धारण करता है।

"दाराशिकोह" और "शोपनहार" से विद्वान् और महान् पुरुष उनकी महिमा गाते हुये नहीं थकते। प्राचीन ब्राह्मणों के यह पुस्तक, जो कि उन्होंने वैदिक समय में वेद के आश्रय से लिखे, आजतक ब्रह्मविद्या के शिरोमणि और अनुपम पुस्तक हैं। क्या पृथिवी पर कोई पुस्तक धर्म विषय में ऐसा विद्यमान है जो इन उपनिषदों का लग्गा खा सके। मेक्समयुलर और शोपनहार तथा स्वदेशीय और विदेशीय सम्पूर्ण विद्वान् एक स्वर से कह रहे हैं कि ब्रह्मविद्या के अनुपम ग्रन्थ उपनिषद् हैं। काम से कारीगर की महत्ता का अनुभव होता है। जब हम कहते हैं कि यह गृह अत्यन्त सुन्दर बना है तो इससे यह भी पाया जाता है कि इसका बनाने वाला भी अत्यन्त चतुर और बुद्धिमान् था। जब पृथिवी के विद्वान् इस समय इस बात को अङ्गीकार करते हैं कि ब्रह्मविद्या में उपनिषदें अनुपम हैं तो क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वे ऋषि जिन्होंने ९ उपनिषदें * यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय की व्याख्या में लिखीं वे सचमुच जीवन्मुक्त और अनुपम पुरुष थे। कोई यह न समझले कि वे ऋषि जिन्होंने कि उपनिषदें लिखीं केवल अन्धे भगत ही थे और पदार्थविद्या तथा नाना प्रकार की सांसारिक विद्याओं से शून्य थे। वे चारों वेदों के विद्वान् सम्पूर्ण शास्त्रों के वेत्ता और कलाकौ-

* (विवरण) उपनिषदें १० हैं (१) ईश (२) केन (३) कठ (४) प्रश्न (५) मुण्डक (६) माण्डूक्य (७) ऐतरेय (८) तैत्तिरीय (९) छान्दोग्य और (१०) बृहदारण्यक। ईशोपनिषद् वास्तव में यजुर्वेद का ४० वां अध्याय है, केवल एक दो शब्द बदले हुये हैं इसलिये यदि ईशोपनिषद् को यजुर्वेद का ४० वां अध्याय कहें तो उचित है शेष ९ उपनिषद् उस ब्रह्मविद्या का निरूपण करनेवाली हैं जो कि यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में बीजवत् हैं।

शल और नाना प्रकार के यंत्रादि बनाने में प्रवीण थे और जहां सम्पूर्ण सांसारिक विद्या जाकर समाप्त होती है वहां ब्रह्मविद्या का आरम्भ होता है इसलिये वे सर्व-विद्यानिधान थे। कठोपनिषद् में जो नाड़ियों की गणना दृष्टान्त देने की रीति से ऋषि ने की है उसको पढ़कर कई विद्वान् ऋषि के आयुर्वेद से विज्ञ होने का निश्चय करते हैं। ऋषि नारदजी का जो वर्णन आता है वह बतलाता है कि नारदजी चारों वेदों के जानने वाले और शस्त्रविद्या, आयुर्वैदिक विद्या तथा नाना प्रकार के कलाकौशल में प्रवीण होकर गुरुकुल से निकले थे परन्तु शोकसमुद्र के पार होना चाहते थे इस-लिये वह ब्रह्मवेत्ता ऋषि की शरण में गये, जिसने उनको ब्रह्मविद्या का उपदेश और ब्रह्म के साक्षात् करने की विधि दर्शाई। जिस तरह आजकल विद्याकोष नामी ग्रन्थ "एनसाइकलोपीडिया" (Encyclopedia) में जिस विद्या का वर्णन होता है उसका सारगर्भित इतिहास भी पहिले दिया जाता है इसी प्रकार ब्रह्मविद्या के इतिहास को भली प्रकार मुण्डक उपनिषद् के पहिले वचनों में दर्शाया गया है। कठ उपनिषद् में यम ऋषि ने जब नचिकेता को कहा है कि सुन्दर नानाप्रकार के सुरीले बाजे, शीघ्र गमन करने वाली गाड़ियां और नाना प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्य की सामग्री को, जो कि वहां पर गिनाई गई है, तू मुझ से मांग ले परन्तु ऐसा कठिन प्रश्न न कर। ऋषि के इन वचनों से दो बातें सिद्ध होती हैं एक तो यह कि ब्रह्मविद्या महान् कठिन विद्या है द्वितीय इतिहासवेत्ता इन वचनों से यह आशय निकाल सकता है कि जिस समय में यम ऋषि नचिकेता को सांसारिक पदार्थों की यह नामावली सुना रहा है उस समय में वर्त्तमान अमेरिका से अधिक नहीं तो उसके समान भौतिक ऐश्वर्य्य इस भारतभूमि में गृह-स्थियों के यहां अवश्य उपस्थित होगा जिसको कि नचिकेता प्रत्यक्ष देख सकता होगा। यदि कोई भूगोलविद्या (Geography) को इन उपनिषदों से संकलन करना चाहे तो कर सकता है। इस प्रकार का दृष्टान्त, कि जिस प्रकार यात्री पूछते पूछते गान्धार पहुंच जाता है, बतला रहा है कि गान्धार में प्राचीन आर्यों का आना जाना था, नदियों के समुद्र में गिरने और नामरूप के छोड़ने के कई दृष्टान्त भूपृष्ठविद्या के उदा-हरण हैं। खाये हुये अन्न से क्या क्या धातु बनते हैं और भौतिक मन अन्न से पुष्ट होता है यह वे वैद्यक की सूक्ष्म बातें हैं जिन तक कि वर्त्तमान समय के घमंडी पश्चिमी वैद्यों का अभी गमन भी नहीं हुआ। युद्ध के अलङ्कार, रथों के दृष्टान्त, हवन का वर्णन इत्यादि बातें बतलाती हैं कि उपनिषद् वेत्ता ऋषियों के समय में आर्यों ने वेदों से ये सब बातें कर्म द्वारा सिद्ध करली थीं। बिजली को विद्वान् दो प्रकार की मानते हैं इसको प्रश्नोपनि-षद् में प्राण और रयि के नाम से दर्शाया है। वे ऋषि कि जिन्होंने इन उपनिषदों को

सम्पादन किया उनकी विद्या और महत्व का अनुभव करना आजकल के इन्द्रियाराम और स्थूलदर्शी पुरुषों से कोसों दूर है। एक उपनिषद् बतलाती है कि जिसको ब्रह्मज्ञान होजाता है उसके हृदय की गांठ अर्थात् अविद्या नष्ट होजाती है, उसके सर्वसंशय निवृत्त होजाते और वह अमृत होजाता है। क्या इस समय पृथ्वी पर कोई विद्वान् ऐसा उपस्थित है जो कि सर्व विद्याओं को निर्भ्रान्त जानता हो अर्थात् सर्वसंशयों से रहित हो, यही उत्तर मिलेगा कि विना पूर्ण योगी और पूर्ण ऋषि के कौन हो सकता है ? ऐसा ऋषि यदि आजकल हमारे सामने हो तो हम आश्चर्य के सागर में डूब जाते हैं, परन्तु उस समय भी महान् विद्वान् मंत्रद्रष्टा और ब्रह्मवेत्ता ऋषियों के आगे जिज्ञासु नम्रभाव से झुकते थे। मुंडक उपनिषद् के अन्त में वह ऋषि, जिस को ब्रह्मज्ञान होगया है, अपने मुख से कह रहा है कि "नमः ऋषिभ्यः" अर्थात् ऋषियों को नमस्कार हो, आजकल के लोग एक दो विद्या के विषयों को ही कठिनता से जानते हैं परन्तु वैदिक समय में ऐसी उन्नति पर आर्य्यजाति पहुंच गई थी कि उसमें अनेक जीवनमुक्त ब्रह्मवेत्ता सर्व विद्याओं के निधान ऋषि महर्षि होते थे।

वैदिक समय में यदि केवल ६ उपनिषदें ही बनी होतीं तो भी इस समय को हम अनुपम कह सकते थे परन्तु अनेक विद्याओं में ऐसे ऐसे ही अनुपम पुस्तक इस समय में बने कि जिनकी तुलना हो नहीं सकती।

आओ हम ब्राह्मण ग्रन्थों की ओर दृष्टि दें जो कि ऋषियों के वेदों पर साररूप से व्याख्यान हैं। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ, यह चार ब्राह्मण ग्रन्थ हैं इनका मुख्य उद्देश्य कणादजी के कथनानुसार नाना विद्याओं और कर्मों की परिभाषा रचने का है परिभाषा बनाना कोई सहज काम नहीं है। "कारलायल" (Carlyle) सरीखे विद्वानों के विषय में पश्चिमी विद्वान् कहते हैं कि भाषा उनके आगे हाथ बांधे खड़ी रहती थी परन्तु अंग्रेज़ी भाषा ऐसी विस्तृत न थी कि जिसके द्वारा "कारलायल" अपने भाव प्रगट कर सकता इसलिये उसको नवीन शब्द घड़ने पड़ते थे। "वेबस्टर" (Webester) महाशय, जिन्होंने कि अंग्रेज़ी भाषा का कोश रचा है, ऐसे विद्वान् थे मानो कि विद्या के सागर से पार होकर आये हैं, परन्तु "कारलायल" और "वेबस्टर" आदि पुरुषों से कहीं बढ़कर वे ऋषि विद्वान् और महान् अनुभवी होंगे जिन्होंने कर्मकाण्ड की सिद्धि के लिये परिभाषा बांधी और वेदमन्त्रों के गूढ़ आशय को बुद्धि के अन्दर समाधि द्वारा अनुभव करते हुये मन्त्रों के अनेक अर्थ प्रगट किये

जो कि पक्षोत्कल्पित नहीं परन्तु सत्य सत्य हैं। उन सरीखा विद्वान् इस समय पृथ्वी पर कोई दृष्टि नहीं पड़ता अनेक विद्याओं के व्याख्यान इन्होंने सारगर्भित रीति से इन ग्रन्थों में किये हैं कि जिनको पढ़कर मनुष्य चकित हो जाता है और उनके विषय में स्वाभाविक ही कह उठता है कि जिन्होंने ये ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के व्याख्यान-रूप रचे, वे विद्या के समुद्र होंगे।

वैदिकसमय के महत्व का अनुभव करानेवाले ब्राह्मण ग्रन्थ पृथ्वी के विद्वानों की बुद्धियों को चकित कर रहे हैं।

अष्टाध्यायी, जिसको महर्षि पाणिनि ने बनाया है, व्याकरणशास्त्र का एक अनुपम स्तम्भ है। "गोल्डस्टूकर" और कई विद्वान् एक स्वर से कह रहे हैं कि पाणिनि सदृश वैयाकरण को आजतक पृथ्वी ने जन्म नहीं दिया।

"गोल्डस्टूकर" महाशय ने दर्शाया है कि वेद के शब्दों के अर्थ जानने के लिये अष्टाध्यायी आवश्यक साधन है और जिस समय यह ग्रन्थ रचागया उस समय लिपि (लिखने) की रीति आर्यजाति में विद्यमान थी। वैदिक और लौकिक सम्पूर्ण शब्दों का व्याकरण बनाना और फिर थोड़े ही सूत्रों में उसको समाप्त कर देना ऐसा काम है कि मानो समुद्र को घड़े में भर देना है। "यूक्लिड" (Euclid) की रचना पर बुद्धिमान् आश्चर्य करते हैं परन्तु पाणिनि की अष्टाध्यायी देख कर वे यह रचना भूल जाते हैं। महाभाष्यकार महर्षि पतञ्जलिजी लिखते हैं कि व्याकरणशास्त्र का मूल बोधक यजुर्वेद के १७ वें अध्याय का ९१ मन्त्र है जो कि इस प्रकार है:—

चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽअस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽअस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ२॥ आविवेश ॥ यजु० अ० १७। मं० ९१ ॥

महाभाष्य (आ० १। पा० १। अ० १) में अति उत्तम रीति से दर्शाया गया है कि किस प्रकार व्याकरणशास्त्र के सम्पूर्ण अङ्गों का इसमें उपदेश किया गया है उसको दोहराना हम यहां पर अनुचित समझते हैं। इस मंत्र से पाणिनि से पूर्व अनेक ऋषियोंने व्याकरणशास्त्र बनाया था जिनकेकि नाम आदरपूर्वक अष्टाध्यायी में आते हैं जैसा कि शाकल आदि परन्तु उन सब ऋषियों के आशय को संकलन कर सारगर्भित रीति से संसार के सामने रखना परम योगी पाणिनि का ही काम था। यह वैदिक

वर्ण-आश्रम मर्यादा की उत्तमता ही थी कि जिसके प्रताप से पाणिनि सरीखे मेधावी ऋषियों को आर्यावर्त्त में जन्म लेकर वैदिक समय के महत्व को अमर कर जाने का निमित्त मिलता था।

पाणिनि महर्षि की अष्टाध्यायी की उत्तमता दर्शाने और उस पर होने वाली शंकाओं को निवारण करने के लिये महर्षि पतञ्जलिजी ने महाभाष्य रचा है। हमारे सामने एक से एक ऋषि बढ़िया आ रहा है किसमें यह सामर्थ्य है कि एक ऋषि को दूसरे से छोटा कह सके? सारे ही प्रथमश्रेणी के ऋषि हैं। पतञ्जलिजी की ओर जब दृष्टि करते हैं तो आश्चर्य से सांस बन्द हो जाता है, एक अकेला विद्वान् और तीन अनुपम पुस्तकों को रचे, महाभाष्य, योगशास्त्र और चरकशास्त्र। एक पुरुष और उसके आगे शब्दविद्या, योगविद्या और चिकित्साविद्या हाथ बांधे खड़ी हो, फिर यही नहीं कि तीनों ग्रन्थ एक ही शैली के हों। योगदर्शन सूत्रों में रचता है महाभाष्य व्याख्यानरूप है चरकशास्त्र को केवल सम्पादन ही किया है। आजकल जो लोग कहा करते हैं कि योगी कोई भी परोपकार का काम नहीं कर सकते उनको पतञ्जलिजी की ओर देखना चाहिये, तीन पुस्तक परोपकारार्थ लिखकर अपने आप को अमर कर गये।

वैदिक शब्दों के बल को दर्शानेवाले ग्रन्थ निघन्टु और निरुक्त हैं जिनको कि महर्षि यास्कजी ने रचा है वर्त्तमान समय में जो "फिलालोजी" (Philology) विद्या का दीपक यूरोप में प्रकाशित हो रहा है उसकी क्या सामर्थ्य है कि निरुक्त का लग्गा खा सके। बंगाल के शिरोमणि पंडित सत्यव्रतसामश्रमीजी ने निरुक्तालोचन नामी ग्रन्थ प्रकाशित करके निरुक्त की अनुपम महिमा का बोध कराया है। शब्दविद्या में निरुक्त न केवल अनुपम रचना की पुस्तक ही है प्रत्युत वेदों की कुंजी है। एक लोहे के सन्दूक के अन्दर रत्न भरे पड़े हैं परन्तु कुंजी उसकी नहीं मिलती यदि सन्दूक तोड़ते हैं तो रत्न टूटते हैं यदि नहीं खोलते तो रत्न मिल नहीं सकते ऐसी दशा में यदि कुंजी मिल जाय तो सम्पूर्ण व्याकुलता दूर हो जाती है। इस समय वेदार्थ लोग मनमानी रीति से कर रहे हैं, इसलिये उनको वेदों के रत्न प्राप्त नहीं होते परन्तु प्राचीन आर्य निरुक्तरूपी यौगिक कुंजी से चारों 'वेदों' को खोल कर उनमें से अर्थरूपी रत्न निकालते थे, यही कारण था कि जिस समय यास्काचार्य सदृश महर्षि भारतवर्ष में विराजमान थे उस समय लोग प्राणों से प्यारा वेद को समझते थे। आज यद्यपि वे ऋषि नहीं रहे तथापि वे अपनी कुंजी हमें दे गये हैं और

जिन लोगों ने उनकी इस यौगिक कुंजी से वेदार्थ किये हैं उन्होंने वेदों जैसे रत्नों की झोलियें भर ली हैं। सच्चे "फिलालोजी" के गुरु पृथ्वी पर महर्षि यास्क हो गये हैं जिनके कि सदृश आजकल दूसरा मिलना दुर्लभ है।

पिंगलाचार्यजी ने छन्द विषयक पिंगलसूत्र रचे हैं, गायनविद्या की फिलासोफी और श्लोक रचने का विद्यालय इसको यदि कहें तो उचित है, जिन सप्त स्वरों का विधान पिंगलजी ने किया है उनकी महिमा करते हुये "हन्टर साहिब" (W. W. Hunter) एक स्थल पर लिखते हैं कि यही सात स्वर गायन विद्या के मूल हैं और यही सात स्वर आर्यावर्त्त से निकल कर सर्व देशों में पहुंचे हैं। गन्धर्व विद्या ऐसी रसीली है कि सांप से भयंकर प्राणियों को भी मोहित करलेती है, जिन्होंने इस विद्या को सिद्ध किया और उसके नियम वेदमंत्रों की सहायता से बनाये उनकी महिमा पृथ्वी के गन्धर्वगण यदि एक स्वर से गाकर प्रकाशित करना चाहें तो भी कठिनता से कर सकते हैं।

चार आश्रम और चार वर्ण के सम्पूर्ण धर्म (Duties) दर्शाने वाले राजविद्या और राजनीति के संस्थापक दीवानी, फौजदारी, माल के विभाग करनेवाले सम्पूर्ण मनुष्यजाति के हितकारी वैदिक मर्यादा में पृथ्वी को चलाने वाले महर्षि मनुजी पर हमारी ज्ञानदृष्टि पड़ती है।

महर्षि मनुजी ने जो धर्म उपदेश दिये उनके आशय को लेकर महर्षि भृगुजी ने श्लोक बनाये और उसको संसार में मानवधर्मशास्त्र अथवा मनुस्मृति के नाम से प्रख्यात किया। ब्रह्मचारियों को किस प्रकार भिक्षावृत्ति से अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करते हुये वेदों का अभ्यास करना चाहिये यह वही लोग जान सकते हैं जिनको कि मनुस्मृति पढ़ने का अवकाश मिला है।

"वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्" ॥

इस वाक्य में उस द्विज ब्रह्मचारी को गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होने की आज्ञा है जो चार, तीन, दो अथवा एक वेद सांगोपांग * पढ़कर आवे, वैदिक समय में

* मुण्डक उपनिषद् में वेद के छः अंगों का वर्णन किया हुआ है मालूम होता है कि प्राचीन समय में आर्यलोग वेदों को यथाक्रम अर्थात् अंग उपांग सहित पढ़ते थे।

आर्यों का यह नियम दर्शाता है कि उस समय आर्यों की विद्यासभा (यूनीवर्सिटी) की उच्च से उच्च "टेक्स्टबुक" वेद थे, चारों वर्णों के गृहस्थों को किस प्रकार और क्या क्या आजीविका करनी चाहिये ? विवाहित स्त्री पुरुष किस प्रकार वर्ताव करें ? विधवा का नियोग और पुनर्विवाह किस प्रकार हो ? बारह प्रकार के पुत्र और आठ प्रकार के विवाह क्या हैं ? वानप्रस्थ, संन्यास किस प्रकार लेना चाहिये ? इन सम्पूर्ण उच्च विषयों की ऐसी विस्तारपूर्वक व्याख्या की है मानो कि मनुजी सम्पूर्ण पृथ्वी के नाना प्रकार के मनुष्यों में से होकर उनके गुण, कर्म, स्वभावों को स्मरण रखते हुए उनके हितार्थ शास्त्र निर्माण कर रहे हैं। राजधर्म का व्याख्यान ऐसा उत्तम और अनुपम है कि आजतक सम्पूर्ण पृथ्वी के राजे महाराजे उसी को जीवन में चरितार्थ करके दर्शा रहे हैं। राजनीति, युद्ध के कर्म, राजसभा, जल स्थल पर महसूल की विधि, परिषद् स्थापना (Cabinet or Executive Committee)) आदि विषयों को अत्युत्तमता से दर्शाया है। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् "जिकालियट" (Jacolliot) महाशय अपनी पुस्तक में मनुजी की अनुपम महिमा के गीत गाते हुये दर्शा रहे हैं कि इस मनुस्मृति के अनुवाद यूनान, मिश्र और रोमन राज में वर्ते जाते थे, रोमन क़ानून के नियमों को मनु श्लोकों के संग संग लिखकर उस पुस्तक में इस विद्वान् ने सिद्ध कर दिखाया है कि सम्पूर्ण उन्नत जातियों के क़ानूनदानों के आदिगुरु महर्षि मनु ही हैं।

मनुस्मृति का निम्नलिखित वाक्य वैदिक समय के महत्व को दर्शा रहा है॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इतिहासवेत्ता इस वाक्य से न केवल यही सीखता है कि आर्यावर्त्त एक शिरोमणि देश था जिस में कि चारों वर्ण बाह्य शत्रुओं से निर्भय होकर उच्च से उच्च उन्नति के शिखर पर थे परन्तु उसको निश्चित रीति से पता लगता है कि आर्यावर्त्तीय लोगों का सम्पूर्ण पृथ्वी के मनुष्यों के साथ क्या सम्बन्ध था । यह श्लोक बतलाता है कि "पृथ्वी के सर्व मनुष्य आर्यावर्त्त निवासी अग्रजन पुरुषों से आन कर अपने अपने योग्य चरित्र और नाना विद्याओं को सीखें" इससे पाया जाता है कि महर्षि मनु के समय में आर्यावर्त्त पृथ्वी का विद्यालय और प्राचीन आर्यलोग जगत् के गुरु थे वैदिक समय के इस गौरव को अनुभव करते हुए उक्त महाशय इस प्रकार उसकी प्रशंसा कर रहे हैं।

"मैं अपने ज्ञाननेत्रों से भारतवर्ष को अपना राज शास्त्र, अपने संस्कार, अपनी नीति, अपना धर्म मिश्र, ईरान, यूनान और रोम को देते हुये देख रहा हूं कि पुराने भारतवर्ष के महत्व का अनुभव करने के लिये वह सम्पूर्ण विद्या जो वर्त्तमान समय में यूरोप में सीखी जाती है किसी काम नहीं आसकती, पुराने आर्यावर्त्त के महत्व को अनुभव करने के लिये हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जैसे कि एक बालक नई रीति से शिक्षा धारण करता है" इससे बढ़कर वैदिक समय की महिमा और क्या हो सकती है।

रामायण के कर्त्ता महाकवि वाल्मीकिजी हुये हैं जिस मधुर कविता में उन्होंने यह ग्रन्थ रचा है उसकी कविजन अत्यन्त प्रशंसा करते हैं। "ग्रीफ़िथ" साहिब को रामायण की कविता ने ऐसा मोहित किया कि उन्होंने यूरोप निवासियों तक इस कविता का रस पहुंचाने के लिये अंग्रेज़ी कविता में इसका अनुवाद किया है, रामायण न केवल महाराजा रामचन्द्रजी के क्षात्रधर्म को दर्शाता है, प्रत्युत आर्यों के परिवारों में धार्मिक जीवन का अनुभव कराता है, सेनाओं का वर्णन ऐसी उत्तम रीति से इसमें किया गया है मानो कि पढ़ने वाला युद्ध-भूमि में बिठलाया जा रहा है। रामचन्द्र का लंका से अयोध्या में पुष्पक विमान में बैठकर एक दिन के अन्दर ही पहुंच जाने का वर्णन पढ़ते हुये इतिहासवेत्ता को वैदिक समय के शिल्पियों की महिमा का दृश्य मिलता है। वर्त्तमान पश्चिमीय शिल्पविद्या की उन्नति के दो स्तम्भ रेल और तार हैं और इसी कारण पश्चिमीय उन्नति अनेक छिद्र रखती हुई भी ऐसे घमण्ड को प्राप्त हो रही है कि अपने साथ किसी की तुलना नहीं करती, परन्तु जिन्होंने पुष्पक विमान बनाये थे वे शिल्पी कैसे महान् होंगे उनका अनुभव बुद्धिमान् ही कर सकते हैं यदि रामायण में बिना इस विमान के और किसी वस्तु का वर्णन न होता तो भी यह पुस्तक वैदिक समय के शिल्पियों के महत्व को दर्शाने के लिये अनुपम था। परन्तु इस में नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रों का ब्यौरा पाया जाता है जिसके पाठ करने से यूरोप और अमेरिका के "डिनामाइट" तुच्छ प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थ द्वारा प्राचीन समय की यात्रा करनेवाले महान् कवि वाल्मीकिजी के उपकार को हम भूल नहीं सकते।

वैदिक समयरूपी उद्यान में भ्रमण करते हुये हमें कई ऋषियों की एक मण्डली दिखाई देती है। इस मण्डली का उद्देश्य वेदविद्या के गम्भीर विषयों को युक्ति द्वारा सिद्ध करके मन के संशयों को निवृत्त करने का है। इन ऋषियों ने अपने ग्रन्थों में उन

महान् विषयों को युक्ति से सिद्ध कर दिखाया है कि जिनको वर्त्तमान यूरोप के विद्वान् भी युक्ति से सिद्ध करने का साहस नहीं कर सकते। वर्त्तमान यूरोप और अमेरिका की दार्शनिक दशा, प्रसिद्ध विद्वान् "लैंग" साहिब की पुस्तक * के पाठ करने से भली प्रकार विदित हो सकती है। इस पुस्तक का नाम "भावीकाल के प्रश्न" है और ग्रन्थकर्त्ता इसमें दर्शाता है कि वर्त्तमान पश्चिमीय विद्वान् इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देने में समर्थ नहीं हैं। इसलिये वे आशा करते हैं कि भावीकाल के महान् विद्वान् अपनी महान् विद्या के बल से इन प्रश्नों का अपने लिये उत्तर दे सकेंगे। आओ हम "लैंग" महाशय के शब्दों में ही उन प्रश्नों की सूची सुनें जिनका वर्त्तमान यूरोप और अमेरिका के विद्वान् यथार्थ रीति से उत्तर दे नहीं सकते।

"इस ग्रन्थ में मैं भावीकाल के प्रश्नों का व्यौरा यथाशक्ति दूंगा जो प्रश्न कि आजकल उठाये गये हैं। परन्तु जिनका यथार्थ उत्तर नहीं मिला और उत्तर के लिये उत्कट अभिलाषा हो रही है इनमें से कई तो पदार्थविद्या सम्बन्धी हैं जैसे कि पृथ्वी कब से बनी? सूर्य और तारागण की बनावट और प्रकृति का अन्तिम स्वरूप क्या है? गति किसे कहते हैं? आदि सृष्टि में देहधारी कैसे उत्पन्न हुये? मनुष्यजाति कब से है?"

"लैंग" ने जितने प्रश्न उठाये हैं वे सब प्रकृति और दर्शन सम्बन्धी ही हैं। इन प्रश्नों के उत्तर सांख्यशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र और सूर्य्यसिद्धान्त में महान् अनुभवी तीव्रबुद्धि वाले ऋषियों ने इस उत्तमता से दिये हैं कि संशय नाम को न रह जावे। यह प्रश्न प्रत्येक समय में विद्वानों के सामने आते हैं, परन्तु प्राचीन आर्य्य ऋषि वेद के आश्रित होकर इनका यथार्थ उत्तर देते रहे और परोपकारार्थ पुस्तकों में भी लिख गये। वर्त्तमान यूरोप के विद्वानों की सामर्थ्य कहां कि बिना वेद अथवा वैदिक ऋषियों की सहायता के इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर पा सकें। "लैंग" महाशय ने जितने यह प्रश्न लिखे हैं वे सब विशेष कर प्राकृत पदार्थ सम्बन्धी ही हैं, यदि इन प्रश्नों में आत्मा और परमात्मा आदि अन्य सूक्ष्म विषय भी मिलादें तो भी उनका उत्तर ऋषियों के ग्रन्थों से मिल सकता है। पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त के कर्त्ता जैमिनि, कणाद, गौतम, पतञ्जलि, कपिल और व्यास सम्पूर्ण प्रश्नों के उत्तर देने के लिये वैदिक समय में विचरते हुये दृष्टि पड़ते हैं। लोग वर्त्तमान यूरोप को उन्नति के

* "The problems of the future" By S. Laing, 1894 London.

शिखर पर दर्शाते हैं जो कि इन कठिन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकता। परन्तु दर्शन शास्त्रों के छः ऋषि प्रकृति आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी प्रश्नों को छः भागों में बांट-कर जो उत्तर दे गये हैं उन ऋषियों को हम किस उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ समझें ? आजकल हमारी बुद्धि उस वैदिक समय रूपी हिमालय की ओर देखती हुई डगमगा जाती है।

आयुर्वेद सम्बन्धी दो मुख्य शास्त्र हैं, जिनका नाम सुश्रुत और चरक है। सुश्रुत के निर्माण कर्त्ता महर्षि धन्वन्तरिजी हैं, सुश्रुत का अनुवाद अरब, इटली और जर्मनी की भाषाओं में होचुका है और चरक जिसको कि चरक महर्षि ने निर्माण किया और पतञ्जलि ऋषि ने संपादन किया है उसका अनुवाद भी अरबी भाषा में होचुका है और हन्टर साहिब के वचनानुसार प्राचीन यूरोप के वैद्यों की पुस्तकों में उसके वचन उद्धृतरूप से मिलते हैं। रसायनविद्या (Chemistry) वनस्पतिविद्या (Botany) जंगमविद्या (Zeology) खंजविद्या (Minerolgy) शरीर तंत्रविद्या (Physiology) शल्यविद्या (Surgery) कायचिकित्सा (Medicine) पदार्थविद्या (Physical Science) अगाद अथवा विषनिवारक विद्याओं (Antidote) का पूर्णविस्तार से इन दो ग्रन्थों में वर्णन पाया जाता है।

शल्यविद्या का वर्णन करते हुए डाक्टर "रॉयल" लिखते हैं कि आर्य्यों की Surgery (शल्यविद्या) के अन्तर्गत छेदन, भेदन, लेखन सीवन आदि क्रियाएं थीं और ये सर्व, क्रियाएं नानाप्रकार के शस्त्रों से की जाती थीं। जिनका व्यौरा इस प्रकार से है—यंत्र, शस्त्र, क्षार, अग्नि, शलाका, शृङ्ग, अलाबु और जलायुका।

राजा सिकन्दर जब इस देश में आया तब सांप के विषनिवारण करने वाले दो वैद्यों को आर्य्यावर्त से लेगया और यूनान के महान् पुरुष हारूंरशीद ने "मानक" और "सुलेह" नामी दो आर्य्य वैद्यों को अपनी चिकित्सा के लिये रक्खा हुआ था। ठाकुर साहिब राजा भगवन्तसिंहजी "आर्य्य आयुर्वेद के इतिहास" नामी पुस्तक में लिखते हैं कि वर्त्तमान यूरोप की वैद्यक में शिर के छेदन और सीवन का एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता जब कि भोजप्रबन्ध नाम के ग्रन्थ से पाया जाता है कि दो वैद्यों ने महाराजा भोज का शिर छेदन करके फिर सी दिया था।

क्लोरोफार्म सरीखी एक औषध प्राचीन आर्य्यलोग छेदन कर्म के समय उपयोग में लाया करते थे। जिसका कि नाम उक्त ठाकुर साहब ने "संमोहनी" लिखा है

और दूसरी औषध जिससे कि रोगी को चेतन करते थे उसका नाम "संजीवनी" बतलाते हैं। सुश्रुत ग्रन्थ के पाठ करने से यह विदित होता है कि उस समय पृथ्वी पर आयुर्वेद शास्त्र के प्रचारार्थ इस देश के वैद्य जाया करते थे, वैद्य खुशीलालजी शास्त्री बरेली के अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "मांसभक्षणनिषेध" में इस विषय पर इस प्रकार लिखते हैं:—

"चरक का मनन करने से यह अच्छे प्रकार से विदित हुआ है कि भगवान् आत्रेय एक स्थान पर ही सकल व्याख्यानों को नहीं सुनाते थे किन्तु देश देशान्तरों में जाते थे, शिष्य और सकल सामग्री उनके संग रहती थी, कभी कहीं और कभी कहीं ठहरते और अपने सकल कार्य्यों का आरम्भ किया करते थे, इसलिये उन्होंने अपने शिष्यों को यह भी उपदेश किया कि अमुक २ देशवासी अमुक २ भोजन किया करते थे। यथा:—

बाह्लीकाः पल्लवाश्चीनाः सुलीका यवनाः शकाः।
माषगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वानरोचिताः॥
क्षारसात्म्यास्तथा प्राच्या मत्स्यसात्म्याश्च सैन्धवाः।
अश्मकावर्तिकानां तु तैलाम्लं सात्म्यमुच्यते॥
शाकमूलफलं सात्म्यं विद्यान्मलयवासिनाम्।
सात्म्यं दक्षिणतः पेयामंथश्चोत्तरपश्चिमे।
मध्यदेशे भवेत्सात्म्यं यवगोधूमगोरसाः।

(चरक ६ चिकित्सक स्थान अध्याय ३०)

भगवान् चरक कहते हैं कि बाह्लीक, पल्लव, चीन, सुलीक, यवन और शक देश के रहनेवाले उर्द, गेहूं, अंगूर को खाकर वृत्ति करते हैं इससे उनको यह भोजन अधिक हित है ये पुरुष शस्त्रविद्या में अत्यन्त चतुर हैं और शिल्पकला आदि को अच्छी प्रकार जानते हैं।

बाह्लीक बलखबुखारे का नाम है, पल्लव पुराने फारिस देश का नाम है, चीन को आप जानते हो जो एक अत्यन्त प्रसिद्ध देश है और जिसकी मनुष्यसंख्या भारतवर्ष से भी दूनी है, सुलीक एक देश भारत के पश्चिम उत्तर में था, यवन देश यूनान देश का नाम है, शक देश तिब्बत और तातार का नाम है, प्राच्य देश

अर्थात् ब्रह्मा देश में जिसको बरमा कहते हैं, इसमें मनुष्य दूध ही विशेष कर खाया करते थे, सैन्धव जिसको सिन्ध कहते हैं मछली खाकर वृत्ति करते थे, अश्मक और आवर्तक इन दो देशों में तेल और अम्ल पदार्थ अधिक खाये जाते थे, मलय पर्वत के वासी केवल मूल और फल ही खाकर जिया करते थे, दक्षिण के लोग यवागू (खिचड़ी) खाते थे, उत्तर और पश्चिम अर्थात् कश्मीर आदि देश चावल ही खाकर वृत्ति करते थे, मध्य देश में गेहूं और दूध मुख्य भोजन था।

इस प्रमाण से सब को यह सिद्ध होने में कुछ भी सन्देह नहीं दीखता कि सिंध को छोड़कर अनुमान सकल एशिया अर्थात् जम्बूद्वीप मांसभक्षी नहीं था *।

इतिहासवेत्ता इससे न केवल यही सिद्ध कर सकता है कि सिंध को छोड़कर भारतवर्ष तथा जम्बूद्वीप के अन्य देश और यूनान मांसभक्षण नहीं करते थे प्रत्युत वह यह भी देखता है कि चीन, ईरान, तुर्किस्तान, यवन आदि देशों में वेद शास्त्रों तथा कलाकौशल का प्रचार भी भारतवर्ष के सदृश अति उत्तम रीति पर था।

सुश्रुत में पहिले ही मेडिकेल कांग्रेस (Medical Congress) का वर्णन मिलता है और एक स्थल पर सुश्रुत में जहां गर्भ का रूप दर्शाया है कि प्रथम मास में क्या स्वरूप होता है वहां पर धन्वन्तरिजी ने अनेक वैद्यों के नाम उनकी सम्मति प्रकाश करने के लिये लिखकर फिर अन्त में अपनी सम्मति प्रकाश की है जिससे स्पष्ट पाया जाता है कि धन्वन्तरिजी से पहिले अनेक वैद्य उस वैदिक समय में हो चुके थे।

"ठाकुर साहिब गोण्डल" लिखते हैं कि आयुर्वेद का मूल अन्य शास्त्रों के समान वेद में ही मिलता है, यथा:—

"ऋग्वेद मंडल २ सूक्त ७ मन्त्र १६ में आयुर्वेद का विधान है। ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ११७ मन्त्र १३ में च्यवन अवलेह जैसी पुष्टिकारक ओषधियों का विधान है। ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ११६ मंत्र १५ में शल्यविद्या (सर्जरी) का तथा टूटी हुई टांग के स्थान में लोहे की कृत्रिम टांग लगाने की विद्या है, ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ११६ मन्त्र १६ में अंधों के लिये कृत्रिम आंखें लगाने की विद्या दर्शाई गई है"।

---

* रावलपिंडी के शास्त्री वैद्य सीतारामजी लिखते हैं कि चरक अध्याय ५ श्लोक १५ में यह लिखा है कि "जो मनुष्य धर्म तथा आरोग्यता चाहते हैं उनके लिये मांसभक्षण निषेध है"।

आयुर्वेद शास्त्र जो कि सम्पूर्ण लौकिक विद्याओं की अमूल्य खान है उसके महत्व को सर्व देशों के विद्वान् स्वीकार करते हैं। वैदिक समय से लेकर आज तक पृथ्वी के सम्पूर्ण वैद्यों के गुरु वास्तव में पूर्ण विद्वान् परम योगी धन्वन्तरि और परम मेधावी महर्षि चरक ही रहे हैं।

वैदिक समय का एक महत्व यही प्रतीत होता है कि इसका एक २ ऋषि अपने अपने विषय में जगद्गुरु ही रहा है।

आज कल वे लोग जिन्होंने इनसे ही सीखकर वनस्पतिविद्या, शल्यविद्या, पदार्थविद्या, रसायनविद्याओं में थोड़ीसी उन्नति की है अपने आपको महान् उन्नत बतलाते हैं तो उस समय के इन वैदिक ऋषियों को, जिन्होंने कि इनसे बढ़कर और भी कई विद्याओं में वेद के आश्रय से पूर्ण उन्नति की थी, किससे उपमा दें?

इस उद्यान की यात्रा करनेवालो! ज़रा सुनो तो सही कि सामने से कैसे मीठे राग की ध्वनि आरही है, वह देखो ऋषि नारदजी अपना बीना बजा रहे हैं, यात्रा की सारी थकावट इस मनमोहिनी वीणा को सुनते ही दूर होजाती है आओ तो देखें गन्धर्ववेद के कौन आचार्य सामवेद का गायन कर रहे हैं? शिष्यगण बैठे हुये हैं सामवेद का गायन महर्षि नारदजी उनको वीणा द्वारा सुना रहे हैं किसी शिष्य के हाथ में तानपूरा यन्त्र है और कोई वादित्र बजा रहा है कोई जलतरंग लिये बैठा है। नारदसंहिता का ग्रन्थ सब के सामने धरा हुआ है, इस आर्ष ग्रन्थ में स्वर, राग, रागनी, समय, ताल, ग्राम, तान आदि की विद्या सम्पूर्ण वर्णन की हुई है। जिस समय सब शिष्यगण महावामदेवगान का आलाप करते हैं उस समय मन शान्ति को धारण करता हुआ ईश्वर के प्रेम में लीन हो जाता और पृथ्वी पर गायनविद्या के आचार्य्य महर्षि नारदजी का धन्यवाद करता है।

जब हम आगे बढ़ते हैं तो हमारी दृष्टि एक कलाभवन पर पड़ती है इसके अन्दर जाते ही विचित्र रचना दीख रही है, अर्थवेद के एक आचार्य महर्षि विश्वकर्मा नाना प्रकार के विमान और कलायन्त्र बनाने की विधि बतला रहे हैं, इस कलाभवन के एक कोणे में श्रीकृष्ण से विद्वान् रणभूमि में रथ चलाने की विधि दर्शा रहे हैं, कहीं नल से विद्वान् पाकविद्या में नियुक्त हो रहे हैं, मयासुर से कई इन्जीनियर बिल्लौरी महल बनवाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वराहमिहिर से शिष्यगण और शुक्रनीति के निर्माणकर्त्ता नाना प्रकार के कोट (क़िले), सड़कें, पुल बांधने के करतब यहां से

ही सीख रहे हैं, कई शिल्पीजन "अश्वतरी" नामी जहाज़ बना रहे हैं, अर्थवेद के इतिहास की ओर जब दृष्टि करते हैं तब मुण्डक उपनिषद् बतलाती है कि अर्थवेद तथा ब्रह्मविद्या के प्रथम गुरु महर्षि ब्रह्माजी हुये हैं जिन्होंने कि मनुष्यजाति को अर्थ और परमार्थ के उत्तम रत्नों से सुभूषित कर दिया था।

प्राचीन आर्यों की विद्या का एक और ज्योतिस्तम्भ है जिसका नाम ज्योतिष-शास्त्र है, इसके मुख्य ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त आदि हैं, सूर्यसिद्धान्त आदि में गणितविद्या, बीजगणित (Algebra) रेखागणित (Euclid) भूगोल (Geography) खगोल (Astronomy) और भूगर्भविद्या (Geology) का वर्णन है। पृथ्वी को बने कितने वर्ष हो चुके हैं? ऐसे २ महान् प्रश्नों का उत्तर ज्योतिष-शास्त्र से मिल सकता है "कोलब्रुक" (Colebrook) से विद्वान् इसकी प्रशंसा कर रहे हैं और जहां तक जिज्ञासुओं ने खोज की है वहां तक यही पता लगता है कि सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष-विद्या में सब के गुरु हैं। ज्योतिष-शास्त्र का मूल वेद है इसको भली प्रकार पं० बालगंगाधर तिलक की प्रसिद्ध पुस्तक * दर्शा रही है, तिलक महाशय इस पुस्तक में ऐसा लिखते हैं कि:—

"ऋग्वेद मंडल १० सूक्त ८५ मंत्र १३ में अर्जुनी और मघा दो नक्षत्रों का वर्णन है और इसी सूक्त में साधारण रीति से नक्षत्रविद्या का विधान है और दर्शाया है कि ऋतुओं के परिवर्त्तन का कारण सूर्य है। ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६४ में ऋतुओं का फिर वर्णन मिलता है और इसी सूक्त के ४८ मन्त्र में वर्ष के दिनों का ब्यौरा है और निरुक्त (७—२४) के अनुसार अयन का वर्णन है। मध्यवर्ती मास का वर्णन ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २५ मन्त्र ८ में मिलता है और ऋग्वेद मंडल १ सूक्त २४ मन्त्र ८ में राशि मार्ग का वर्णन है और ऋग्वेद मंडल १ सूक्त ४१ मन्त्र ४ तथा मंडल १० सूक्त ८५ मन्त्र १, और मंडल ५ सूक्त ४५ मन्त्र ७ व ८ इसी राशि मार्ग का वर्णन करते हैं तथा ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १६४ मन्त्र ११ भी इसी राशि-विद्या का विधान करता है" (देखो पृष्ठ १५८)

"प्रोफ़ेसर 'लडविग' (Professor Ludwig) ऋग्वेद के मण्डल १ सूक्त ११०

* "The Orion or researches into the antiquity of the Vedas" by Lokmanya Pandit Bal Gangadhar Tilak B. A., LL. B., Poona (1893) p. p. 157—197·

मन्त्र २ तथा मण्डल १० सूक्त ८६ के मन्त्र ४ में अयन (Ecliptic) का व्यास (Equator) की ओर सरकना तथा पृथ्वी की कीली (Axis) का वर्णन बतलाते हैं"।

"यह अब सर्वसम्मति से माना जाता है कि सप्तर्षि तारों का वर्णन ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त २४ मन्त्र १० में मिलता है ऋग्वेद मण्डल ५० सूक्त ४० में सूर्यग्रहण का वर्णन है और इसी सूक्त के मन्त्र ५ के यह शब्द:—" **भुवनान्यदीधयुः** " सूर्यग्रहण के बोधक हैं और इससे अगले मन्त्र में यह शब्द आते हैं " **तुरीयेण ब्रह्मणाविन्दद्त्रिः** " में " **तुरीयेण ब्रह्मणा** " इसके अर्थ यह करता हूं कि तुरीय द्वारा, सिद्धान्तशिरोमणि (११—१५) में एक यन्त्र का नाम तुरीय (Quadrant) है और इसी प्रकार का कोई यन्त्र अवलोकनार्थ होगा ब्रह्म शब्द के अर्थ मन्त्र के हैं तथा ज्ञान अथवा ज्ञान के साधन के, ऋग्वेद मण्डल २ सूत्र २ मन्त्र ७ में यह शब्दक्रिया के अर्थ में आता है इसलिये उक्त शब्दों के अर्थ तुरीय द्वारा के हुये। ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १०५ मन्त्र १० में पांच ग्रहों (Planets) का विधान है और ऋग्वेद मण्डल ३ सूक्त ३२ मन्त्र २ तथा मण्डल ६ सूक्त ४६ मन्त्र ४ में शुक्र और मंथन का वर्णन है"।

" ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १२३ में वेन ग्रह का वर्णन है और इसी ग्रह को पश्चिमी विद्वान् 'विनस' (Venus) कहते हैं ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६१ का १३ मन्त्र जो निम्नलिखित है ज्योतिषविद्या में हमें बहुत कुछ उच्च शिक्षा देता है।

"सुषुप्वांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अबूबुधत्। श्वानं बस्तो बोधयितारमब्रवीत्संवत्सर इदमद्याव्यख्यत" ॥

" इसमें अलंकार की रीति से ऋभवस् को वर्ष की तीन ऋतुएं बतलाया गया है इससे पहिले ग्यारहवें मन्त्र में बतलाया गया है कि "यहां उन्होंने बारह दिन विश्राम किया, फिर चक्कर नया आरम्भ हुआ और पृथिवी ने नये फल उत्पन्न किये, नदियां बह रही हैं, वृक्ष पहाड़ों पर लग रहे हैं और पानी समुद्रों में भर रहा है" और अब हम तेरहवें मन्त्र का अर्थ करते हैं बारह दिन के विश्राम से ऋभवस् उठे और प्रश्न करने लगे कि किसने हमको जगाया है सूर्य उत्तर देता है कि श्वान ने, चांद के वर्ष में यदि १२ दिन जोड़े जावें तब वह सौर वर्ष हो जाता है, इसलिये ऋभवस् अर्थात् ऋतुओं के १२ दिन के विश्राम करने का भेद खुलगया और श्वान के

अभिप्राय " डागस्टार" (Dog star or Canis Major) से है इस श्वान तारे के वर्णन से वसन्तऋतु का बोधन होता है इस प्रकार लोकमान्य पण्डित बाल गंगाधर तिलक ने कई ज्यौतिषविद्या के शब्दों के नाम मूल वेदमन्त्रों में दिखाये हैं। जिससे पता लगता है कि ज्योतिश्शास्त्र वेदमन्त्रों का व्याख्यानरूप ही है ॥

महर्षि पाणिनि ने अपने व्याकरण में फल्गुनी, प्रोष्ठपद आदि कई नक्षत्रों का वर्णन किया है जिससे भी पाया जाता है कि यह शब्द आर्षग्रन्थों में आये हैं। मनुजी ने नक्षत्र नामवाली कन्या से विवाह का निषेध किया है जिससे विदित होता है कि प्राचीन समय में ज्योतिष-शास्त्र का बहुत प्रचार था। बनारस के पण्डित बापुदेव शास्त्रीजी इसी प्राचीन गणितविद्या के बल से वर्त्तमान "केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी" (Cambridge University) के कठिन से कठिन गणित सम्बन्धी प्रश्नों का प्राचीन सुगम शैली पर उत्तर देने के कारण इस समय में प्रसिद्ध होचुके हैं। "हन्टर" साहिब लिखते हैं कि "ब्राह्मण ज्योतिषियों की महिमा जब जगत् में फैली तब उनकी पुस्तकें अर्बी भाषा में अनुवाद की गईं और इसी प्रकार यूरोप में पहुंचीं। सन् १७०२ ई० में जब कि फ्रान्स के एक महान् ज्योतिषी "डिलाहायर" (Dela Hire) ने तारों की एक नामावली भेजी थी तो उस समय जयपुर के महाराजा जयसिंहजी ने अशुद्धियां निकाली थीं"।

बनारस, जयपुर, उज्जैन, श्रीनगर आदि अनेक स्थानों पर प्राचीन समय में ज्योतिष् के गृह बने हुये थे, आज कल केवल बनारस में मानमन्दिर प्राचीन ज्योतिष् के महत्व को खंडरात के रूप में बोधन करा रहा है। यद्यपि ज्योतिष्-गृह और यन्त्र इस समय लुप्त हो रहे हैं तथापि सूर्यसिद्धान्त आदि ज्योतिष्-शास्त्र अपनी अनुपम ज्योति से जाज्वल्यमान हैं और अपने प्रकाश से वैदिक समय के महत्व की ओर पृथ्वी के ज्योतिषियों को आकर्षण कर रहे हैं।

आज कल "लायल" सरीखे पश्चिमीय विद्वानों ने भूगर्भविद्या में आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया है परन्तु अभी वर्त्तमान भूगर्भवेत्ताओं की दशा सूर्यसिद्धान्तादि और मनुस्मृति आदि शास्त्रों के ऋषियों के सन्मुख बहुत ही न्यून है। जिस उच्च अवस्था तक कि भूगर्भविद्या पहुंच सकती है और पृथिवी की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की व्यवस्था लगाना जो इसका अन्तिम उद्देश्य हो सकता है वहां तक प्राचीन ऋषियों ने इस विद्या को वेदमन्त्रों की सहायता से पहुंचा दिया था जिसका कि समझना भी आजकल के विद्वानों के लिये कठिन होरहा है।

मनुस्मृति के प्रथम अध्याय श्लोक ४२, ४७ तथा अध्याय ३ श्लोक ३०४ के विषय में स्ट्रेञ्ज * साहिब ऐसा लिखते हैं:—

"पृथ्वी के मन्वन्तरों का सिद्धान्त निस्सन्देह उस दृश्य से बहुत मिलता है जिसका कि ज्ञान हमें अभी यूरोप में हुआ है अर्थात् यह कि पृथ्वी के कई भाग विशेष समय पर चिरकाल बरफ से ढक कर बंजर हो जाते हैं और फिर किसी समय के पश्चात् हरे भरे होने लगते हैं। प्राचीन आर्य्य लोग कहां से इस ज्ञान को धारण करते थे? यह निश्चय करना हमारे लिये कठिन है पर उन्होंने मन्वन्तरों का जो ब्यौरा बांधा है उसके चिह्न इस समय हमें ज्ञान द्वारा प्रतीत होने लगे हैं"।

यूरोप का विद्वान् स्ट्रेञ्ज अपनी पुस्तक में भूगर्भविद्या का वर्णन करता हुआ प्राचीन आर्य्यों के मन्वन्तरों के सिद्धान्त की प्रशंसा करता और आश्चर्य करता है कि आर्य्यों ने ऐसा उच्च ज्ञान "जिआलोजी" का कहां से धारण किया? आर्य्यों ने यह ज्ञान वेद से धारण किया था और इसी के बल से लौकिक और पारलौकिक सब प्रश्नों के यथार्थ उत्तर दिये थे। सन् १८८८ में आर्य्यसमाज लाहौर के वार्षिकोत्सव के अवसर पर महात्मा पं० गुरुदत्तजी एम. ए. ने दर्शाया था कि ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १८ के ३ मंत्र में जो कल्प शब्द आता है यथा:—"**सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।**"

उस कल्प की वर्षों में गिनती अथर्व काण्ड ८ अनुवाक १ सूक्त २ के मन्त्र २१ में जो निम्नलिखित है दर्शाई हुई है:—

"**शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः। इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनुमन्यन्तामहृणीयमानाः॥ २१॥**"

इसका अभिप्राय यह है कि दशलाख पर्य्यन्त शून्य देने के पश्चात् २, ३, ४ का योग करने से कल्प के वर्षों की गणना को जानो, यथा:—

४३२०००००० (चार अरब बत्तीस करोड़) वर्ष कल्प की संज्ञा की है उस व्याख्यान में महात्मा पं० गुरुदत्तजी ने सूर्य्यसिद्धान्त आदि की महिमा वर्तमान पश्चिमी

* The Development Of Creation on the Earth P. 68 and 108 by T. L. Strange.

ज्योतिष-शास्त्रों पर दिखाते हुए सिद्ध किया था कि ज्योतिष-शास्त्र के मूलविधायक कई मंत्र वेदों में मिलते हैं *।

यद्यपि इस वैदिक समय के अनुपम महत्व को दर्शाने वाले कई आर्षग्रन्थ और हैं परन्तु हम उनकी ओर स्थानाभाव के कारण न जाते हुए इतिहास सागररूपी महाभारत ग्रन्थ की ओर आते हैं यह ग्रन्थ महर्षि व्यास का बनाया हुआ है इसमें यद्यपि बहुत कुछ पीछे से मिलाया गया है परन्तु इतिहासवेत्ताओं के लिये सत्य का इससे ग्रहण करना बहुत कठिन नहीं है वैदिक क्षत्रियों के धर्म-युद्ध, राजनीति, सेना, राजसभाओं का वर्णन शस्त्र अस्त्र विद्या का व्यौरा इसमें भली प्रकार मिलता है, यह ग्रन्थ दर्शाता है कि श्रीमान् महाराजा स्वयम्भू से लेकर महाराजा युधिष्ठिर पर्य्यन्त अनेक चक्रवर्ती सार्वभौम राजे इस देश में हो चुके हैं। मनुस्मृति में भी स्वयम्भू आदि अनेक चक्रवर्ती राजाओं के नाम मिलते हैं।

मैत्रीय उपनिषद् नामी ग्रन्थ में सत्रह चक्रवर्ती राजाओं के नाम दिये हुए हैं महाभारत से निश्चय होता है कि स्वयम्भू राजा से लेकर पांडव पर्य्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती सार्वभौम राज्य रहा है और जब कि वैदिक समय का अन्त महाभारत के युद्ध के साथ होता है उस समय भी युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में चीन के राजा भगदत्त, अमेरिका का बभ्रुवाहन, यूरोप देश का विडालाक्ष, यूनान और ईरान का राजा शल्य आये थे और महाभारत के युद्ध में भी सहायता देते रहे जिस तरह कि वैदिक समय के ऋषियों के सदृश कोई विद्वान् आज उपस्थित नहीं है उसी प्रकार इस समय पृथिवी पर कोई भी चक्रवर्ती सार्वभौम महाराजा दृष्टि नहीं पड़ता जिससे कि इन अनेक चक्रवर्ती राजाओं को उपमा दे सकें। जिस प्रकार कि आजकल ऋषियों के विद्यासिद्धान्त समझने

---

* (विवरण) उक्त मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—शतं=१००, ते=वे, अयुतं = दशसहस्र, हायनान् = समय, द्वे = दो, युगे = मिले, त्रीणि = तीन, चत्वारि = चार, कृण्मः = करते हैं।

अर्थात् वे शत दशसहस्र दो तीन चार मिलाकर समय करते हैं।

विद्युत् और अग्नि के वेत्ता, सभ्यगण उनको मानें ग्रहण अर्थात् कल्प वा ब्रह्मदिन ॥ २१ ॥

इससे पूर्व के २० वें मंत्र का आशय इस प्रकार है:—

"ब्रह्मदिन और ब्रह्मरात्रि दोनों से तुझको मैं धारण करता हूं जो तेरे हिंसा करने वाले शत्रु हैं उनसे तेरी रक्षा हो" ॥ २० ॥

इससे अगले २२ वें मंत्र में हेमन्त, वसन्त, ग्रीष्म और वर्षा ऋतुओं का वर्णन है और उनमें औषधियों के सेवन का विधान है ॥ २२ ॥

कठिन हो रहे हैं उसी प्रकार वैदिक समय के इन राजाओं के क्षात्र-धर्म का अनुभव करना कठिन हो रहा है।

यह ग्रन्थ महाभारत न केवल क्षत्रिय वीरों के इतिहास का वर्णन करता है परंच यह आर्य उन्नति तथा सभ्यता को भी भलीभांति दर्शाता है। यह बतलाता है कि आर्यजाति "सोसाइटी" (Society or Nation) एक हृष्ट पुष्ट पुरुष के सदृश है जो कि धर्मात्माओं को अपने साथ मिला सकती और दुष्टों को अपने से पृथक् कर सकती है और यही सोसाइटी के जीवन के मुख्य चिह्न हैं। एक उपनिषद् में इसी प्रकार का दृष्टान्त आता है जिससे पाया जाता है कि जाबालि के पुत्र सत्य-काम को किस प्रकार जन्म जाति की अपेक्षा न करते हुये गुणकर्मानुसार ब्राह्मण बनाया था। उपनिषद् बतलाती है कि किस प्रकार ब्रह्मवादिनी गार्गी देवी विद्या-सभा की प्रधान बनाई गई थी इसमें भी अनेक इतिहास इस प्रकार के पाये जाते हैं जिनसे विदित होता है कि आर्य्यों की सभ्यता कैसी उच्च थी। स्त्री पुरुषों के अधिकार, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष विषय में एक समान थे, नियोग की उत्तम मर्यादा उप-स्थित थी। चारों वर्ण परस्पर विश्वास, परस्पर प्रेम करते हुये धार्मिक जीवन से युक्त थे और वैदिक सूर्य्य की सहायता से लौकिक और पारलौकिक उन्नति के शिखर पर पहुंच रहे थे॥

प्रथम भाग समाप्त हुआ

ओ३म्

भारत के इतिहास में अवैदिक समय का वर्णन

प्रथम

वाममार्ग ने भारत की अधोगति की भूमिका बांधी

महाभारत के युद्ध के कारण क्या थे ?

सृष्टि के आदि से लेकर पांच सहस्र वर्ष से पूर्व समय पर्यंत आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था अन्य देश में मांडलिक राजा रहते थे परन्तु यहां महाभारत के घोर युद्ध ने, जिसको पांच सहस्र वर्ष हुये हैं, न केवल इस चक्रवर्ती राज्य का ही नाश कर दिया प्रत्युत वैदिक समय को भी इतिहास में से लोप कर दिखाया। क्षत्रिय वीर ही इस युद्ध में मारे नहीं गये किन्तु अनेक ऋषि मुनि और विद्या के स्तम्भ भी काम आये। चारों वर्णों की व्यवस्था नष्ट हो गई। इतिहास ने इस बात को सिद्ध कर दिखाया है कि ईश्वर किसी महान् से महान् और तुच्छ से तुच्छ मनुष्य के अपराध क्षमा नहीं करता और इस हेतु से अब २ मनुष्य अपने कुकर्मों द्वारा अधोगति की सामग्री एकत्र करते हैं तो उनको उन्नतिरूपी हिमालय के शिखर से रसातल का मुंह अवश्य देखना पड़ता है। यह महाभारत का युद्ध केवल द्रौपदी और दुर्योधन के बखेड़े से ही उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु आर्यजाति में इस युद्ध से लग-

भग एक सहस्र वर्ष पूर्व ईर्षा, द्वेष, आलस्य, विषयासक्ति, प्रमाद और अभिमान के अंकुर बोये जा चुके थे, जो पकते २ यहांतक बढ़े कि विना गिरे रह नहीं सकते थे, चारों वर्ण विषयासक्ति, आलस्य और अभिमान की ओर सरकते हुये आ रहे थे और जब दुर्योधन ने जन्म लिया तो इस महान् जाति को इसके द्वारा अपना सर्वस्व नाश करने का मानो निमित्त मिलगया। दुर्योधन सच पूछो तो चारों वर्णों के उन कुकर्मों का फल था जिनका कि बीज आर्य्यजाति में बोया जा चुका था।

विदेशीय इतिहास बतलाता है कि यूरोप में जब रोमन राज्य का सत्यानाश हुआ तब विषयासक्ति और अभिमान ही कारण हुये थे। यूनान का राज्य जब नष्ट हुआ तब परस्पर का द्वेष ही मुख्य कारण था। मुग़लों के राज्य के नाशक विषयासक्ति, आलस्य और द्वेष ही हुये हैं। आर्यजाति जब इन रोगों से ग्रस्त होगई तो उसके नाश में क्या सन्देह था? जिस तरह रोग शरीर की मृत्यु के कारण होते हैं इसी प्रकार जातियों की व्यवस्था की मृत्यु करानेवाले रोग, ईर्षा, द्वेष, अभिमान और विषयासक्ति ही हैं॥

विषयासक्त होना ही मानो वाममार्ग है

जब २ कोई उन्नत देश गिरता है तब उसके प्रथम गिरानेवाला वाममार्ग ही होता है। वाममार्ग कुटिल मार्ग का नाम है यह इन्द्रियरूपी घोड़ों को खुले जंगल में बे-लगाम दौड़ना सिखाता है, विषयों में तद्रूप होजाना इसका जीवनोद्देश्य है और येन केन प्रकार से विषयासक्ति की सामग्री एकत्र करना इसका कर्त्तव्य है। महाभारत के युद्ध ने वीर क्षत्रिय धनपति वैश्य और ब्रह्मर्षियों की समाप्ति करदी थी और जो रहगये थे वे जब मर चुके तो भारत में कोई भी ऋषि-श्रेणी का उपदेशक न रहा, वैदिक प्रकाश की परम्परा के स्थान में विषयासक्ति की अन्धपरम्परा चलने लगी। जो अपने तईं ब्राह्मण कहलाने लगे उनमें से बहुत से लोगों ने कपट से शिव, भैरव, पार्वती आदि महान् पुरुष स्त्रियों के नाम से मनमाने श्लोक चैन उड़ाने के लिये घड़ लिये और मांस खाने के बहाने से हवन यज्ञों के निमित्त पशु बध कराने लगे जैसा कि आजकल आप लड्डू खाने के लिये ठाकुरजी को भोग लगाते हैं और यहांतक बढ़ गये कि मनुष्य को भी काटने लगे। स्वर्ग का ठेका नामधारी ब्राह्मणों ने लेने के लिये मृतक श्राद्ध का ढोंग रचा और गुप्त स्थलों पर भैरवी चक्र रचकर मद्य, मांस, मीन, मदिरा और मैथुन इन पांच मकारों में प्रवृत्त होने लगे॥

आज कल इतिहासवेत्ता आर्यसमय की समाप्ति करते हुये छलांग मारकर बौद्धमत पर आजाते हैं

पश्चिमी इतिहासों में यही चाल देखने में आती है कि ज्योंही उन्होंने आर्यसमय की समाप्ति की त्योंही बौद्ध मत पर आन कूदे, इन इतिहासों में वर्णन आता है कि बौद्ध ने ब्राह्मणों के यज्ञों में हिंसा की लीला देखकर उनका खण्डन किया था, परन्तु यह कोई नहीं बतलाता कि यज्ञों में पशु का मांस कब से पड़ना आरम्भ हुआ। इस आशंका को निवारण करने के लिये दो उपाय यह इतिहासवेत्ता * करते हैं।

(१) बुद्ध को कपिलजी का सहचारी बतलाते और कपिल को बुद्ध सदृश नास्तिक ठहराते हैं।

(२) प्राचीन आर्यों पर मांस खाने और हवन में मांस डालने का दोष आरोपण करते हैं।

यदि पश्चिमी इतिहासवेत्ताओं की यह दोनों बातें सत्य सिद्ध हो जातीं तो फिर हमको उन पर आशंका करने का कोई अधिकार नहीं था। आओ हम सुनें कि इन दो विषयों के सम्बन्ध में यह क्या २ युक्तियें सुनाते हैं।

बुद्ध को कपिल का सहचारी दर्शाने के लिये वे यह युक्ति देते हैं कि बुद्ध भी नास्तिक था, कपिल भी नास्तिक था, बुद्ध का उद्देश्य अहिंसा का प्रचार करना था और कपिल के सांख्य शास्त्र का पहिले सूत्र का उद्देश्य भी मनुष्य जाति के तीनों ताप निवारण करने का है। हम कहते हैं कि:—

(१) कपिल नास्तिक नहीं था। यदि होता तो उसका सांख्य शास्त्र वेदों का एक उपाङ्ग कैसे गिना जाता? वेद जब आस्तिकपन की शिक्षा देते हैं तो उसका उपाङ्ग किस प्रकार नास्तिकपन का निरूपण कर सकता है? क्या शाखा मूल से विरुद्ध गुण कभी रख सकती है? क्या गली सड़ी अंगुली जो अपने विष से शरीर में विष फैलावे काटी नहीं जाती? इसलिये जो कपिल को नास्तिक कहते हैं वे उसके शास्त्र की शैली को ही नहीं समझते।

(२) महर्षि कपिल ने प्रथम अध्याय के २६ सूत्र में:—

(क) नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ईश्वर के सत् स्वरूप का वर्णन किया है।

* "See Ancient India" By R. C. Dutta.

(ख) अध्याय २ के प्रथम सूत्र में मुक्ति के साधन निरूपण करते हैं और दूसरे सूत्र में बतलाते हैं कि अनेक जन्म में जब पूरा वैराग्य होजावे तब मुक्ति होती है। कपिलजी को नास्तिक बतलाने वालों से कोई पूछे कि जब वह योगशास्त्र की तरह वैराग्य को मुक्ति अर्थात् ईश्वरप्राप्ति का साधन दर्शाते हैं फिर नास्तिक हैं वा आस्तिक ?

(ग) पहिले अध्याय के पहिले सूत्र में जो तीन तापों से निवृत्ति कही है वही तो मुक्ति है परन्तु इसको इतिहासवेत्ता नहीं विचारते। हां इसमें सन्देह नहीं कि नास्तिकों के प्रश्नों को जो कहते हैं कि ईश्वर-सिद्ध नहीं होता वह पूर्वपक्ष में लिखकर सारे ऋषियों की शैली पर खण्डन करते हैं। वह पूर्वपक्ष कपिलजी का नहीं हो सकता, यदि माना जाय तो ऐसे विद्वान् फ़िलासफ़र की रचना में परस्पर विरोध का दोष आवेगा एक स्थल पर तो वह ईश्वर का वर्णन करे फिर मुक्ति अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति का साधन दर्शाये और फिर ईश्वर से ही विमुख होजाय, कदापि नहीं। हमारा इस समय में यह उद्देश्य नहीं कि कपिल के सांख्यशास्त्र की आलोचना करें।

(घ) "स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ॥ ५६ ॥
ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ॥ ५७ ॥" (सांख्यदर्शन अ० ३)

सांख्यशास्त्र के अध्याय ३ के ५५ सूत्र में लिखा है कि "कार्य्यपन होने पर भी उस प्रकृति के साथ ईश्वर का योग है क्योंकि प्रकृति परवश है" और इससे अगले ५६ सूत्र में जो हमने ऊपर लिख दिया है यह दर्शाया है कि:—

"जिसके प्रकृति वश में है सो (हि) अर्थात् **निश्चय करके** सर्वज्ञाता और सर्वकर्त्ता है" और फिर ५७ सूत्र में लिखते हैं कि:—

"ऐसे ईश्वर की सिद्धि सिद्ध होती है" इन वाक्यों को पढ़कर कौन विचारशील ऐसा है जो यह न माने कि सांख्यशास्त्र के कर्त्ता महर्षि कपिलजी ईश्वरवादी और पूर्ण आस्तिक थे।

(ङ) श्रीकृष्णजी आस्तिक थे उन्होंने गीता के अध्याय १० में कपिलजी को योगी और आस्तिकों का सर्दार माना है यथा:—

सिद्धानां कपिलो मुनिः ॥ (गीता अ० १०)

तथा गीता के दूसरे अध्याय में श्रीकृष्णजी के ये वचन हैं:—

सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः ।
एकं सांख्यं च योगञ्च यः पश्यति स पश्यति ॥ (गीता अ० २)

(अर्थ)—सांख्यशास्त्र और योगशास्त्र को बुद्धिहीन भिन्न भिन्न आशय वाले मानते हैं पण्डित लोग नहीं, सांख्य और योगदर्शन का आशय जो एक अर्थात् अविरुद्ध समझता है वही पण्डित है ।

बौद्धमत के प्रचारक को कपिलजी का सहचारी दर्शाने के लिये वर्त्तमान पश्चिमीय इतिहासवेत्ता कोई भी ऐतिहासिक अथवा अन्य प्रमाण नहीं देते । प्रत्युत हमने सिद्ध कर दिया कि कपिलजी बौद्ध के समय से कई सहस्र वर्ष पूर्व होचुके हैं । कपिलजी के सांख्यशास्त्र का वर्णन कृष्णजी ने गीता में किया है जिससे पाया जाता है कि महाभारत के युद्ध से पूर्व ही कपिलजी होचुके हैं इसलिये कपिलजी बुद्ध के सहचारी भी सिद्ध नहीं होते ।

अब हम इन इतिहासवेत्ताओं के दूसरे पक्ष का, कि प्राचीन आर्य मांस खाते और हवन यज्ञ में पशु मार कर डालते थे, खण्डन करने के लिये आन्दोलन करते हैं इनके पास इस बात के सिद्ध करने का यही प्रमाण है कि वेदमन्त्रों में ऐसा विधान पाया जाता है इसलिये प्रथम हम वेदमन्त्रों को ही लेंगे।

प्रमाण (१) ऋग्वेद के प्रथम मण्डल सूक्त प्रथम का यह चौथा मन्त्र है ।

" **अग्नेयं यज्ञमध्वरं०** " इसमें बतलाया गया है कि यज्ञ हिंसा से रहित होता है—

" (अध्वरं) हिंसाधर्मादिदोषरहितं ध्वरतिर्हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधो निपातः " (निरु० १ । ८)

(२) ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥ (ऋ० मं० १ । सू० १६२ । मं० १२) यजु० २५ – ३५

पदार्थः—(ये) (वाजिनम्) बहूनि वाजा अन्नादीनि यस्मिन् तमाहारम् (परिपश्यन्ति) सर्वतः प्रेक्षन्ते (पक्वम्) पाकेन सम्यक् संस्कृतम् (ये) (ईम्)

जलम्। ईमिति उदकना०। निघं० १। १२। (आहुः) कथयन्ति (सुरभिः) सुगन्धः (निः) (हर) (इति) (ये) (च) (अर्वतः) प्राप्तस्य (मांसभिक्षाम्) मांसस्य भिक्षामलाभम् (उपासते) (उतो) (तेषाम्) (अभिगूर्त्तिः) अभिगत उद्यमः (नः) अस्मान् (इन्वतु) व्याप्नोतु प्राप्नोतु ॥

इसका भावार्थ यह है कि "जो लोग अन्न और जल को शुद्ध करना पकाना उसका भोजन करना जानते और मांस को छोड़ कर भोजन करते वे उद्यमी होते हैं"।

"मांसऽभिक्षामुपासते०" इन शब्दों से मांस-भक्षण का निषेध स्पष्ट ही है।

(३) "पशून पाहि" (यजु० अ० १। मं० १) हे मनुष्य! तू भैंस, गाय, बकरी, हिरन, ऊंट, घोड़ा, हाथी आदि पशुओं की रक्षा कर अर्थात् इनको मत मार॥

(४) "इन्द्रो विश्वस्य राजति शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।" (यजु० अ० ३६। मं०८) हमारे द्विपद अर्थात् पक्षी आदि और चतुष्पद अर्थात् गौ आदि प्राणियों के लिये सुख होवे॥

(५) "मा हिंसीरेकशफं पशुम्" (यजु० अ० १३। मं० ४८) हे मनुष्य! एक खुरवाले पशुओं अर्थात् घोड़े गधे आदि की हिंसा मत कर॥

(६) घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः (यजु० अ० १३। मं० ४९) घी की दाता रक्षा के योग्य गाय को मत मार।

(७) इममूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदां मा हिंसीः (यजु० अ० १३। मं० ५०) दो पग वाले मनुष्य पक्षी आदि, चतुष्पाद अर्थात् गौ आदि पशु और "ऊर्णायुम्" (भेड़ बकरी आदि) की हिंसा मत कर॥

(८) "य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ऋविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितो नाशयामसि॥"
(अथर्ववेद का० ८। अनु० २। सू० ६। मं० २३)

(अर्थ)—जो कच्चे मांस को खाता है और जो किसी पुरुष से मोल लेकर अथवा किसी से बनवाकर खाता है और जो अण्डों को खाता है राजा उनको यहां से दूर कर दे ॥

क्या यह वेद के प्रमाण नहीं बतला रहे कि मेक्समूलर आदि महाशयों ने विना विचारे मांसभक्षण और पशुवध का दोष प्राचीन धर्मात्मा आर्य्यों के शिर मढ़ दिया है।

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३३६ के ३२ से लेकर ३८ तक श्लोकों में चक्रवर्ती महाराजा वसु के अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है जिसमें कपिल मेधातिथि आदि महर्षि विद्यमान थे उसमें कहीं भी किसी पशु को मार कर उसका मांस हवन में नहीं डाला गया।

"सर्वकर्मस्वहिंसां हि धर्मात्मा मनुरब्रवीत्। कामकाराद्विहिंसन्ति बहिर्वेद्यांपशून्नराः" ॥ (महा० शान्तिपर्व मोक्षधर्म)

(अर्थ)—यज्ञ आदि सब उत्तम कामों में धर्मात्मा मनुजी ने अहिंसा को ही धर्म कहा है स्वार्थी लोग मांस खाने के लोभ से यज्ञ में वा उससे पृथक् पशुओं की हिंसा करते हैं ॥

इस प्रमाण से वाममार्ग का आरम्भिक इतिहास विदित हो सकता है साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि मनुस्मृति में यज्ञ आदि सब कामों में हिंसा वर्जित है। वैशेषिक दर्शन में कणादजी हिंसा के अर्थ दुष्ट बतलाते हुये दुष्टभोजन अर्थात् मांस-भक्षण का निषेध करते हैं, योगशास्त्र में अहिंसा को पहिला यम दर्शाया गया है, चरक सुश्रुत में जैसे मूत्र विष्ठा आदि पदार्थों के गुण दर्शाये हैं वैसे ही मांसों के गुण दर्शाये हैं किन्तु मांस का विधान आर्यों के खाने के लिये कहीं पर भी नहीं मिलता परंच उससे यह तो सिद्ध होता है कि पूर्वकाल में सिन्ध देश को छोड़कर एशिया के किसी देश में मांस नहीं खाते थे।

योगदर्शन अथवा वैशेषिकशास्त्र वेद के उपांग कहलाते हुये जब मांसभक्षण का निषेध करते हैं तो क्या वेद का सिद्धान्त उनके विपरीत हो सकता है? कोई कह सकता है कि किसी और वेदमन्त्र से कदाचित् मांस खाना निकल आवे। परन्तु ऐसी कल्पना वेद जैसे बुद्धिपूर्वक परमशास्त्र में करनी सर्वथा निर्मूल है। क्या वेद से सत्यशास्त्र में परस्पर विरोध है? कदापि नहीं। इसलिये कहीं पर भी वेद और आर्ष ग्रन्थों में मांस खाने का विधान नहीं है और न प्राचीन आर्य यज्ञ में पशुवध करते थे।

महाभारत अनुशासन पर्व के अध्याय ११५ में शूरवीर भीष्मपितामह ने महाराज युधिष्ठिरजी से जो इस विषय में संवाद किया है वह प्रत्येक इतिहासवेत्ता के पढ़ने योग्य है उसमें से एक वाक्य सेनापति भीष्मजी का इस स्थल पर हम भी लिखते हैं:—

"ऋषयो ब्राह्मणा देवाः प्रशंसन्ति महामते !
अहिंसालक्षणं धर्मं वेदप्रामाण्यदर्शनात् ॥"

(अर्थ)—सम्पूर्ण ऋषि ब्राह्मण और विद्वान् सर्वसम्मति से वेद और दर्शन शास्त्रों के प्रमाण द्वारा अहिंसा को धर्म का लक्षण बतलाते हुये अहिंसा की प्रशंसा करते हैं ॥

ब्राह्मणग्रन्थों में जो अश्वमेध, गोमेध, नरमेध शब्द आते हैं उनके यथार्थ अर्थों को छिपाकर वाममार्गियों ने अनर्थ कर दिये। परन्तु इन शब्दों के अर्थ उन ब्राह्मण ग्रंथों में ही दिये हुये हैं जिससे विदित होता है कि अश्वमेध आदि शब्दों से हिंसा सिद्ध नहीं हो सकती। यथा:—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः । अन्नं हि गौः ॥ अग्निर्वा अश्वः । आज्यं मेधः ॥ (शतपथब्राह्मणे)

राजा को राष्ट्र का प्रबन्ध करना अथवा अग्नि में घी का होम करना अश्वमेध है। अन्न पृथ्वी इन्द्रिय आदि को पवित्र रखना गोमेध है, जब मनुष्य मरजाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध है, क्योंकि यजुर्वेद के ४० अध्याय के एक मंत्र में लिखा है कि:—

"भस्मान्तꣳ शरीरम्" (यजु० अ० ४० । मं० १५)

मृतक शरीर को भली प्रकार जलाकर भस्म कर देना चाहिये ॥

हम ऊपर महाराजा वसुजी के अश्वमेध का महाभारत से दृष्टान्त दे चुके हैं कि उनके अश्वमेध यज्ञ में कहीं भी किसी पशु की हिंसा नहीं हुई। राजशासन के महत्व के प्रकाश करने के लिये ही वसुजी ने अश्वमेध यज्ञ किया था और उस समय निस्सन्देह अश्व के अर्थ राष्ट्र वा राज्य के लिये जाते थे। जिस तरह कोई मनुष्य भले मानस के अर्थ दुष्ट कर दे अथवा चूहड़ों (भङ्गी) को मेहतर शब्द से पुकारे, ठीक

उसी प्रकार वाममार्गियों ने यज्ञ जिससे कि हिंसा का कोई सम्बन्ध नहीं है, इसके अर्थ लोगों में पशुबध के प्रचार करने आरम्भ कर दिये, परन्तु शतपथ में यज्ञ के अर्थ कर्म के हैं और मनु आदि धर्मशास्त्रों में यज्ञ से कर्म के ही अर्थ लिये गये हैं। क्या जब हम कहते हैं कि गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नरयज्ञ करे तो कोई इसके यह अर्थ कभी मान सकता है कि वह पांच प्रकार की हिंसा करे? कदापि नहीं, किन्तु प्रत्येक विद्वान् इससे पांच प्रकार के कर्मों का ज्ञान ग्रहण करते हैं। निरुक्त में यज्ञ के अर्थ सङ्गतिकरण, देवपूजा और दान तीनों किये हैं परन्तु हिंसा के कहीं नहीं और न किसी सत्शास्त्र में यज्ञ और हिंसा का कोई सम्बन्ध दर्शाया हुआ है। मेक्समुलर ने एक स्थल * पर स्वयं इस बात को स्वीकार किया है यज्ञ शब्द के अर्थ आर्ष ग्रन्थों में कुर्बानी अर्थात् पशुबध के नहीं हैं प्रत्युत कर्म के हैं, परन्तु आश्चर्य है तो यह कि मेक्समुलर यह भी मानता जाता है कि यज्ञ शब्द के अर्थ कर्म के हैं और फिर प्राचीन आर्यों पर पशुबध का दोष लगाने से भी नहीं चूकता! पक्षपात से रहित इतिहासवेत्ता के लिये उक्त प्रमाणों को देखकर यह निश्चय करना कुछ कठिन नहीं है कि वैदिक आर्य्य मांस नहीं खाते और न यज्ञ में किसी पशु अथवा मनुष्य को मार कर डालते थे।

अब इतिहास का आन्दोलन करनेवाला मान सकता है कि महाभारत के युद्ध के पश्चात् वाममार्ग अपने यौवन पर आगया और जो झूठे ग्रंथ इन लोगों ने रचे उनका नाम तंत्र ग्रंथ हुआ। इन्हीं वाममार्गियों के प्रचार को रोकने के लिये बुद्धदेव ने काम किया और अहिंसा धर्म्म का प्रचार करते हुये पशुबध का खण्डन किया।

तंत्र मत अथवा वाममार्ग के बुद्ध मत से पूर्व होने में एक ऐतिहासिक प्रमाण

आनन्दगिरि ने जो शङ्करजी का जीवनचरित्र लिखा है उसके पांचवें प्रकरण में यह लिखा है कि "जब लोग वेद से हीन होगये तंत्र का प्रचार हुआ, वेदार्थ हीन होगये, भस्म आदि लगाने लगे और कलियुग के तीन सहस्र वर्ष बीत जाने पर जब वे धर्म कर्म से नष्ट होगये तब फिर अद्वैत अर्थ के चिन्तन करने वाले सत्यधर्म के परायण हुये।"

इतिहास की गुप्तशृंखला ढूंढने वाले के लिये इन वचनों से बहुत कुछ निकल सकता है इसमें आनन्दगिरि दर्शाता है कि जब लोग वेद से हीन हुये तब उन्होंने तंत्र का प्रचार किया और फिर धर्म कर्म से नष्ट होगये तो अद्वैत मत अर्थात् शङ्कर-

* Physical Religion by F. Maxmuller.

मत हुआ, धर्म कर्म से नष्ट हुए पुरुषों से आनन्दगिरि का अभिप्राय उन पुरुषों से प्रतीत होता है, जो बौद्धमत में प्रवृत्त हो चुके थे, अन्त में जाकर इस में शङ्कर का भी समय दर्शाया है कि कलियुग के तीनसहस्र वर्ष बीत जाने पर शङ्करमत स्थापन हुआ, पश्चिमीय इतिहासवेत्ताओं को इससे शङ्कर के समय का निश्चय करलेना चाहिये।

इस प्रमाण से भी उसी विषय की, जो कि हमने शास्त्र की रीति से सिद्ध किया था, पुष्टि होगई अर्थात् यह ऐतिहासिक प्रमाण दर्शाता है कि शङ्कर से पूर्व तन्त्र का प्रचार होचुका है बौद्धमत का नाम कदापि तन्त्रमत हो नहीं सकता, क्योंकि बौद्ध का मत अहिंसा और तन्त्रमत हिंसा की शिक्षा देता है और बौद्धमत से तन्त्रमत पीछे भी नहीं हो सकता इसलिये निस्सन्देह यही सिद्ध होता है कि शङ्कर ने अपने से पूर्व बौद्धमत का खण्डन किया। बौद्धमत ने अपने से पूर्व उत्पन्न हुये तन्त्रमत का खण्डन किया और तन्त्रमत ने भारतवर्ष की अधोगति का बीज बोया।

तन्त्रमत स्वरूप बदलता है

तन्त्रमत जिसका परम उद्देश्य विषयासक्ति का प्रचार करना था उसने सत्य, न्याय, प्रेम इत्यादि वैदिकधर्म के चिह्नों को भी भारत के चार वर्णों के मनुष्यों से लुप्त कर दिये। दयालु ब्राह्मण पशुबध करने लगे और हवन में सुगन्धित घृत आदि पदार्थ डालने के स्थान में दुर्गन्ध युक्त मांस डालने से रोगों को बढ़ाने लगे। ब्राह्मणों ने शिव आदि उत्तम पुरुषों के नाम से कल्पितग्रन्थ मांस की सिद्धि के लिये रचने आरम्भ किये और चतुर्वर्णों को छल की शिक्षा देनी आरम्भ की। नरमेध के बहाने से मनुष्यों तक के बध होने लगे जब इस प्रकार घोर पाप का राज्य होगया, तो उस समय बृहस्पति नामी पुरुष खड़ा हुआ जिसने तंत्रमत के खण्डन के लिये यथाशक्ति काम करना आरम्भ किया।

चारवाक * आभाणक, बौद्ध अथवा जैनमत का प्रचार भारत में आरम्भ होता है ॥

वाममार्ग और चारवाक में भेद

वाममार्ग ने यदि वेद और वैदिक शिक्षाओं को छींके पर धर दिया था तो चारवाक ने उसको उतारा नहीं किन्तु वाममार्ग के वाह्य स्वरूप को इसने सुधार दिया। यदि पहिले वाममार्ग अंधा था तो इसने उसको बुद्धि की आंखें लगा दीं, यदि पहिले वाममार्ग बेलगाम दौड़ रहा था तो इसने उसके मुंह में युक्ति की लगाम डाल दी, यदि पहिले वह मर्य्यादारहित था तो उसने मर्य्यादा स्थापन कर दी। वाममार्ग का स्वरूप बहुत ही भयंकर और घिनोना था इसने उसको मोहनी बना दिया, वाममार्ग जीव ईश्वर आदि के विचार को छोड़ कर विषयों में प्रधावित हुआ था, चारवाक ने भी जीव ईश्वर के विचार को छोड़ दिया। चारवाक ब्राह्मणों के पशुवध और मृतकश्राद्ध का बुद्धि से खण्डन करते हुये विषयों में जीवन व्यतीत करने की यह शिक्षा दी:—

"जगत् का कर्त्ता कोई ईश्वर नहीं जगत् ऐसा ही स्वभाव से चला आ रहा है, जब तक जीवे सुख से जीवे ऋण उठाए और घी पीवे, देह भस्म हो जाना है आवागमन फिर किस का होगा" †।

यद्यपि चारवाक ने वाममार्ग की वाहरी भ्रष्टलीला का खण्डन किया परन्तु वाममार्ग के अन्तरीय वास्तविक स्वरूप को वह पलट न सका। पशुओं की हिंसा को इसने रोका किन्तु मनुष्य की हिंसा का सूक्ष्म रीति से प्रचार कर दिया। ऋण लेकर चैन उड़ाओ इस वचन ने आर्य्यजाति के व्यवहार को अशुद्ध कर दिया। दुःख देने का नाम हिंसा है इसलिये ऋण लेकर यदि किसी को न दिया जावे तो इससे भी उस मनुष्य को कष्ट पहुंचेगा। चारवाक की एक शाखा आभाणक मत के नाम से फैली परन्तु उसका उद्देश्य चारवाक से भिन्न न था।

चारवाक से पूर्व शैव और शाक्त मतों का बीज बोया गया था

वाममार्ग के पीछे शैव और शाक्त दो पौराणिक मतों का बीज भारत में बोया गया। नास्तिक चारवाक मत के श्लोकों में जहां वाममार्ग की लीला का खण्डन मिलता है वहां शैव लोगों की भ्रान्त लीला का भी खण्डन पाया जाता है, जिससे

* Materialism चारवाकमत।

† सर मोनियर विलियम्स "सर्वदर्शनसंग्रह" नामी पुस्तक में से चारवाकमत के विषय को उद्धृत किया है यथा:—

इतिहासवेत्ता के लिये यह निश्चय करना कुछ कठिन नहीं कि चारवाक की उत्पत्ति से पूर्व शैव और उसके सहचारी शाक्त मत का बीज बोया जा चुका था। बृहस्पति चारवाकमतप्रचारक कहता है कि—

"त्रिपुण्ड्र और भस्म का लगाना बुद्धिरहित पुरुषों ने जीविका बना ली है।" त्रिपुण्ड्र और भस्म शैवमत वाले लगाते हैं इसलिये पाया जाता है कि शैवमत चारवाक से पूर्व विद्यमान था। शङ्कराचार्य्य के माध्व जीवनचरित्र से भी विदित होता है कि उन्होंने वामाचारी और भस्म लगाने वाले शैवमत के आचार्य्यों से शास्त्रार्थ करके उनको पराजित किया था। इससे भी वाममार्ग और शैवमत की विद्यमानता शङ्करस्वामी से पूर्व प्रकट होती है। शैवमत ने यद्यपि भस्म का शरीर पर लगाना धर्म मान लिया था परन्तु अभीतक इसने शिव की मूर्त्ति नहीं बनाई थी, क्योंकि इतिहासवेत्ता क्या पश्चिमीय और क्या स्वदेशीय इस बात को निश्चित रीति से मानते हैं कि मूर्तिपूजा की शिक्षा बौद्धमत वालों से भारतवर्ष में फैली है, मेक्समुलर आदि महाशयों ने इस विषय को बहुत पुष्ट किया है।

शाक्तमत शैवमत का सहचारी था *। शैवमत ने यदि शिवजी का माहात्म्य

"No recompense for acts; let life be spent, in merriment; let a man borrow money and live at ease and feast on melted butter."

See 'Buddhism' by Sir Monier Williams, K. C. I. E. London 1889 pp. 9.

* मतों की परम्परा इस प्रकार चली:—
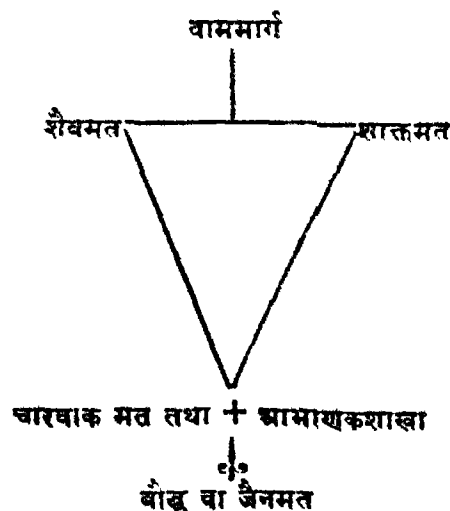
बड़ा और भस्म लगाने की लीला रची और वाममार्ग की गौण रीति से सहायता की तो शाक्तमत ने शिवजी की स्त्री शक्ति या देवी की लीला कपोलकल्पित लिखी और उस का माहात्म्य रचा। देवीभागवत शाक्तों ने बनाया है, देवीभागवत के बनाने वाले का काम वाममार्ग की शिक्षाओं को सर्वसाधारण में उपन्यास की रीति पर पहुंचाने का प्रतीत होता है, देवीभागवत के सृष्टिविषय में लिखा है ब्रह्मा, विष्णु देवी ने जीवित किये और उन्होंने अपनी भगिनियों से विवाह कर लिया इत्यादि अनेक बातें वाममार्ग लीला की पोषक हैं।

चारवाक के वेदों से विमुख होने का कारण महीधर वामी की टीका तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रक्षिप्त वचन थे

वाममार्ग भारत के सामाजिक जीवन की जड़ काटने के लिये हिंसारत तो हुआ ही था, परन्तु शेष चार यमों को भी इस ने नष्ट करते हुये आर्य्यजाति के सामाजिक बल को सर्वथा क्षीण कर दिया। पांच यमों के स्थान में पंचमकार रखलिये अहिंसा के स्थान में हिंसा और सत्य के स्थान में असत्य का यहांतक प्रचार किया कि प्रसिद्ध ऋषियों के नाम से जाली ग्रन्थ बनाने आरम्भ कर दिये और मनमाने पुस्तक रचने में असत् की भ्रष्ट शिक्षा आर्य्यसन्तान को प्रथम इसने ही दी, मुर्दों का तर्पण और श्राद्ध अथवा दशगात्र लीला इसने रचाई और इस आडम्बर से मांस-भक्षण का प्रचार वाममार्ग करने लगा(ब्राह्मण ग्रन्थों में वाम लीला के पोषक वचन घड़कर मिला दिये, ब्रह्मचर्य्य जो कि तीसरा यम था उसके स्थान में व्यभिचार फैला दिया और जिस प्रकार स्वार्थी लोग चांद में चरखा सिद्ध करने का यत्न करते हैं उसी प्रकार महीधर वामी ने वेदों में से वाममार्ग सिद्ध करने के लिये युक्ति और शास्त्रशून्य टीका घर घसीटी। देश में इस टीका के प्रचार होने से बहुत से लोगों को वेदों से घृणा ही गई। जिन लोगों को इस प्रकार वेदों से घृणा हुई वह चारवाक मतानुयायी बने इसलिये यदि वामी महीधर वेदों का अनर्थ न करता तो बृहस्पति को चारवाक मत खड़ा करना न पड़ता।

चारवाक का स्थानापन्न बौद्ध अथवा जैन मत बना

वाममार्ग के गिराने के लिये चारवाक कुछ काम कर चुका था कि इतने में गौतम बुद्ध वाममार्ग को और भी गिराने तथा नष्ट करने के लिये भारत में उत्पन्न हुए। योगशास्त्र के पांच यमों को जिनको कि प्राचीन वैदिक आर्य्यजाति अथवा सामाजिक जीवन के उत्तम साधन मानते थे प्रचार करना तथा अष्टांगयोग की शिक्षा देना बुद्ध के जीवन का उद्देश्य हुआ।

[illegible]

(१) यदि अमरकोष ग्रन्थ को देखें जो कि एक जैन पण्डित का बनाया हुआ है उसमें बौद्ध और जैन पर्यायवाची शब्द दिखाये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि बौद्ध और जैन एक ही हैं।

(२) मौनियर विलयम्स महाशय "बुद्धइज़म" नामी पुस्तक के पृष्ठ ११ पर लिखते हैं कि "एक मत की दो शाखावत् बौद्ध और जैन हैं"।

(३) परलोक, पुनर्जन्म, जीवात्मा, अहिंसादि सिद्धान्त बौद्ध और जैन दोनों एक समान मानते हैं इसलिये यह एक ही हैं।—

(४) श्रीमच्छङ्करदिग्विजय सर्ग प्रथम पृष्ठ २८ श्लोक ६५ के पाठ से विदित होता है कि बौद्ध और जैन एक ही थे)

(देखो विद्यारण्य स्वामिकृत ग्रन्थ पूना आनन्दाश्रम मुद्रित)——

महात्मा गौतम बुद्ध के उपदेश

आखेट (शिकार) करनेवाले मनुष्यों को बुद्ध ने एक स्थल पर अहिंसा की महिमा दर्शाई और अहिंसा के ११ लाभ श्रवण कराये। यथा:—

(१) वह सब प्राणियों पर दया करता है जो अहिंसा करनेवाला होता है।

(२) उसका शरीर स्वस्थ रहता है।

(३) उसको शान्ति से निद्रा आती है।

(४) पढ़ते समय उसका मन एकाग्र रहता है।

(५) बुरे २ स्वप्न उसको नहीं आते।

(६) देव अर्थात् सूर्य्यादि पदार्थ उसको कल्याणकारी प्रतीत होते हैं और मनुष्य उससे प्रेम करते हैं।

(७) विषवाले प्राणियों से वह पीड़ित नहीं होता।

(८) युद्ध के अत्याचार से वह बच जाता है।

(९) पानी अथवा अग्नि उसको पीड़ा देने का निमित्त नहीं बनते।

(१०) जहां कहीं वह रहे वह अपने प्रयोजन को सिद्ध कर सकता है।

(११) मरने पर ब्रह्मलोक (ब्रह्मदर्शन) पाता है * ।

विवरण:—इस ११ वें उपदेश से यह विदित होता है कि महात्मा बौद्ध ईश्वरवादी थे, शोक का विषय यह है कि बुद्ध के चेलों ने नास्तिकपन फैला दिया ।

बुद्धमत का इतिहास बतलाता है कि बुद्ध के यह वचन सुनकर शिकारी पुरुष स्त्रियों ने शिकार करना छोड़ दिया और उसके अनुयायी बन गये ।

एक स्थल † पर लिखा है कि एक राजा की माता रोगिणी थी, जब औषध से कुछ लाभ न हुआ तो वामी लोगों ने कहा कि नाना प्रकार के १०० पशुओं के शिर तथा एक मनुष्य का बालक बलिदान दिया जावे राजा ने हाथी, घोड़े, बैल, भेड़ें मंगाईं और उनके आर्तनाद (चीख़) से बुद्ध का दयालु हृदय हिल गया जिससे राजा के सन्मुख आनकर बुद्ध ने अहिंसा पर व्याख्यान दिया, जिससे राजा ने पशुवध का दुष्कर्म त्याग दिया ।

एक पुस्तक ‡ में लिखा है कि राजा बिम्बसार, जो हवन में पशु मार कर उनका मांस डालता था, बुद्ध के उपदेश से इतना दृढ़ होगया कि उसने अपने राज्य में डंका बजा दिया कि यज्ञ के लिये कोई हिंसा तथा कोई मांसभक्षण न करे ।

एक अन्य पुस्तक * में आचार विषयक बुद्ध के उपदेश लिखे हैं जिनमें बार २ अहिंसा, सत्य, अस्तेय आदि धर्म के लक्षणों का बुद्ध ने वामी लोगों को उपदेश दिया है । महाशय आर. सी. दत्त अपने इतिहास के पृष्ठ ३५६ पर लिखते हैं कि:—

"आचार और अहिंसा यह दो बातें बुद्ध ने खोज की थीं और यही बुद्धमत का सार है" ।

---

* Texts from the Buddhists Cannon, commonly known as Dhammapada with accompanying narratives translated from the Chinese, by Samuel Beal, Professor of Chinese University College, London, Trubner, 1878.

† The Ethics of Diet by Howard Williams M. A.

‡ The Light of Asia by Edwin Arnold.

* Buddhist Suttas by T. W. Rhys Davids (Sacred books of the East, Ed. by Maxmuller).

चारवाक और बौद्ध मत का भेद

बुद्ध के उपदेशों से बौद्धमत विलक्षण है। इस स्थल पर हम बुद्ध के उपदेशों को नहीं किन्तु बौद्धमत की चारवाक से तुलना निम्नलिखित प्रकार करते हैं:—

चारवाक.	बौद्ध अथवा जैनमत.
(१) देह की उत्पत्ति के संग जीव की उत्पत्ति मानता और देह के नाश के साथ जीव का नाश मानता है।	(१) अनादि जीव मानता है।
(२) परलोक और पुनर्जन्म नहीं है।	(२) पुनर्जन्म, परलोक और निर्वाण (मुक्ति) है।
(३) एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही है।	(३) प्रत्यक्षादि चार प्रमाण हैं।
(४) जगत् का कर्त्ता कोई नहीं।	(४) जगत् का कर्त्ता कोई नहीं।
(५) वेद में पशुबध है इसलिये वेद अच्छे नहीं।	(५) वेद में पशुबध है इसलिये वेद अच्छे नहीं।

इससे सिद्ध होता है कि ईश्वर और वेद से चारवाक और बौद्धमत वाले दोनों एक सम विमुख हैं, परन्तु जीव को अनादि और पुनर्जन्म परलोक प्रत्यक्षादि चार प्रमाण मानने से बौद्धमत वाले चारवाक से भेद रखते और अच्छे हैं।

बौद्धमत और क्या मानता है?

बौद्धमत के सर्व पंडित जगत् को केवल दुःखरूप मानते हैं और सकल वासनाओं की निवृत्ति से शून्यरूप निर्वाण को मुक्ति कहते हैं। तथा यह मानते हैं कि बुद्ध भगवान् बौद्धों के पूज्यदेव हैं। यथा:—

"बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्।"

इसी विषय की पुष्टि आर. सी. दत्त महाशय का निम्नलिखित लेख इस प्रकार कर रहा है कि "बौद्धमत में उपनिषदों के ब्रह्म की गणना की गई है, परन्तु उसको सब से महान् नहीं माना, केवल पवित्र जीवन ही सब से महान् कहा गया है, जिन्होंने निर्वाण पालिया है वह बौद्ध लोग महान् हैं—ब्रह्म से भी उच्च हैं" पृष्ठ (३८३)*

"फ़िज़िकल रिलीजन" के पृष्ठ ९५ पर महाशय मेक्सम्युलर लिखते हैं कि:— "बुद्ध का उद्देश्य ब्राह्मणों से द्वेष करने का नहीं था और नहीं वह ब्राह्मणों के मत पर कटाक्ष करने की रुचि रखता था वह केवल ब्राह्मणों के यज्ञों में पशु के बलिदान का और विशेष करके ब्राह्मण ग्रन्थों के ईश्वरोक्त होने का खंडन करता है और यह

*R. C. Dutta's ancient India P. 383.

आश्चर्यमय बात है कि वर्तमान समय का रिफ़ार्मर (आचार्य्य) दयानन्द सरस्वती भी वैसा ही करता है अर्थात् दयानन्द सरस्वती वेदमंत्रों को ईश्वरोक्त मानता है परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों को मनुष्यकृत कहता है"।

इसी पुस्तक के पृष्ठ ३४१ पर भट्ट मेक्समूलर लिखते हैं कि:—

"बौद्धमत में प्रवेश करने वाले को इन बातों की प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी:—

(१) अहिंसा, (२) चोरी त्याग, (३) इन्द्रियनिग्रह, (४) झूठ न बोलना, छल न करना, झूठी साक्षी न देना, (५) मादक द्रव्यों से बचना, इनके अतिरिक्त एक उच्च गृहस्थ को यह भी प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि (६) समय पर भोजन खावे, (७) नाचे नहीं, गन्दे गीत न गावे, (८) सुन्दर आभूषण न धारण करे, इतर न लगावे और अभिमानवर्द्धक पदार्थों से बचे और जो साधु बनना चाहे उसको यह भी प्रतिज्ञा करनी होती थी कि (९) मैं गुदगुदी खाट पर शयन नहीं करूंगा, (१०) अपनी इच्छा से त्यागी रहूंगा"। साथ ही मेक्समूलर लिखते हैं कि:-'प्राचीन हिन्दू यह धर्म के लक्षण जानते थे, मनुस्मृति अध्याय १० के श्लोक ६३ में यही चारों वर्णों के धर्म दर्शाये हुए हैं, यथा:—(१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) शौच, (५) इन्द्रियनिग्रह"।

अपने ग्रन्थों में पश्चिमी विद्वान् मानते हैं कि "बुद्ध मरते समय तक मानता रहा कि मैं केवल प्राचीन और पवित्र धर्म्म का, जो कि हिन्दुओं और ब्राह्मण आदि लोगों में प्रचलित रह चुका है, उपदेश दे रहा हूं" यदि हमें इतिहास के इस वचन का मान है तो हमको मानना चाहिये कि प्राचीन आर्य्य ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यन्त हिंसक न थे अर्थात् वह मांस नहीं खाते थे और नहीं यज्ञ के निमित्त पशुवध करते थे, न किसी प्राणी का मांस हवन में डालते थे। मेक्समूलर के उपर्युक्त वचनों से भी यही सिद्ध होता है कि बुद्ध ने मनुस्मृति अध्याय १० के श्लोक ६३ * की शिक्षा दी और इस श्लोक से सिद्ध होता है कि प्राचीन आर्य्य लोग ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्य्यन्त हिंसाशील न होने के कारण मांसादि नहीं खाते और नहीं हवन यज्ञ में कभी डालते थे। इस बात को मेक्समूलर मानकर फिर किस प्रकार स्वयं इसका खंडन करने के लिये अन्य स्थल पर उद्यत हो सकता है?

* मनु० अ० १० का श्लोक ६३ जिसका वर्णन मेक्समूलर ने किया है यह है:—
"अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥"

बुद्धदेव के स्मरणीय वचन

पश्चिमी विद्वान् यह प्रश्न उठाते हैं कि बौद्धमत के इतने भारी प्रचार का, कि यह भूगोल के $\frac{1}{3}$ मनुष्यों का धर्म होगया, क्या कारण था ? और स्वयं ही उत्तर देते हैं कि बुद्ध का शुद्धाचरण ही एकमात्र कारण था ।

जब बुद्धदेव के सत्यवादी और धर्मात्मा होने का इतिहास को निश्चय है तो फिर हमें सत्यवादी बुद्धदेव के वचनों पर पूरा ध्यान देना चाहिये बुद्धदेव तो मरते दम तक यह कहता रहा कि:—

" मैं केवल प्राचीन और पवित्रधर्म का, जो कि हिन्दुओं और ब्राह्मण आदि लोगों में प्रचलित रह चुका है, उपदेश देरहा हूं " ।

बुद्ध की इस साक्षी से सिद्ध होता है कि प्राचीन वैदिक आर्य्य यज्ञ में मांस नहीं डालते और न खाते थे, बीच में कुकर्मी लोगों ने मांसभक्षण का प्रचार कर दिया सो उसका खंडन करते हुये सत्यवादी बुद्ध लोगों को निश्चय दिला रहा है कि मैं तुम्हारा प्राचीन धर्म, जो कि अहिंसा है, प्रचार कर रहा हूं ।

बौद्धमत के दोष क्या थे ?

जो शिक्षा कि गौतम बुद्ध ने वेद, मनु अथवा योगशास्त्र के अनुसार दी वही सत्य होने के कारण उसकी विजय का कारण हुई, परन्तु जहां उसके चेलों ने अपनी बुद्धि पर निर्भर किया और वेद अथवा वेदानुकूल किसी शास्त्र का आश्रय नहीं लिया वहां ही उन्होंने ठोकरें खाईं । इन चेलों ने बुद्ध के शुद्ध उपदेशों में जो दोष मिला दिये उनको हम निम्नलिखित रीति पर दर्शाते हैं ये दोष **अशोक** के राज्य में मिलाए गये थे ।

(१) जगत् का कर्त्ता कोई नहीं ।

(२) वेद में पशुवध है इसलिये वेद अच्छे नहीं ।

(३) निर्वाण वासनाशून्य होने का नाम है ।

(४) जगत् दुःखरूप ही है ।

(५) जिन्होंने निर्वाण पा लिया है वे बुद्ध लोग ब्रह्म से भी उच्च हैं ।

यदि बुद्ध के शिष्य अहिंसादि पांच धर्म के सत्य लक्षणों की ही बुद्ध के सदृश शिक्षा देते रहते तो देश का कल्याण होजाता परन्तु इस उत्तम शिक्षा के संग शिष्यों ने ईश्वर और वेद से लोगों को विमुख कराते हुये नास्तिक बना दिया । इन्होंने निर्वाण को गाढ़ निद्रा का रूप ही दर्शादिया, जगत् को, जो कि सुख दुःख दोनों का रूप है,

केवल दुःखरूप ही ठहरा दिया और वासनाशून्य जड़ पदार्थ समान बुद्ध पुरुष को ही ब्रह्म अर्थात् ईश्वर से उच्च बतलाते हुए मनुष्यपूजा अथवा गुरुडम का ही बीजन केवल बोया किन्तु मूर्त्तिपूजा की गहरी नींव खोद दी। जो कि नानारूप से आज, पर्य्यन्त विद्यमान है और जिसने भारत सन्तान की भारी अधोगति करते हुये उसको नष्ट भ्रष्ट कर दिया है।

बुद्ध के नाना मन्दिर बनाए गये जिसमें उसकी मूर्त्ति को महान् समझ कर उसके अनुयायी पूजने लगे और भारतसन्तान वाममार्ग के फन्दों से निकल कर नास्तिकपन और मूर्त्तिपूजन के अथाह गढ़े में आ गिरी। भारतवर्ष देश बुद्ध की बड़ी छोटी मूर्त्ति से भर गया और यहांतक ही नहीं किन्तु इसके पीछे २४ तीर्थंकरों की मूर्त्तियों से जैनमन्दिर भर गये।

ईसाई, मुसलमान तथा सर्व मतवादियों ने मनुष्यपूजा अथवा अवतार की शिक्षा बुद्धमत से सीखी

क्या आश्चर्य की बात है कि मुसलमान मूर्त्तिपूजन के शत्रु हों परन्तु मुहम्मदसाहब को मुक्ति दिलाने का एक हेतु मानें। ईसाई आत्मा से प्रभु की भक्ति करना कहें परन्तु ईसा को ही अवतार बतलावें। श्री कबीर, श्री नानक, श्री दादूपन्थी आदि सब के सब मनुष्यपूजा में रत हैं। ईसाई मोनियर विलियम्स स्वयं इस त्रुटि को स्वीकार करते हैं, यथा:—

"बुद्ध लोगों की मुक्ति विनाश होना है, बुद्धमत सब अनोखा है इसलिये कि जीवन्मुक्त मनुष्य से बढ़कर यह ईश्वर नहीं मानता, वास्तव में इसको धर्म नहीं कहना चाहिये, उत्तरीय बौद्धों के धर्मपुस्तक शुद्ध संस्कृत में लिखे गये थे। बौद्धमत विना बुद्ध के कुछ नहीं जैसा कि ज़रदुश्त का मत विना ज़रदुश्त के कुछ नहीं, मुसलमानी मत विना मुहम्मद सा० के कुछ नहीं और मैं आदरपूर्वक कहूंगा कि ईसाई मत विना ईसा के कुछ नहीं है" (देखो पृष्ठ १२, १४, १८)

बौद्धमत के प्रचारकों की प्रार्थना यह है "**बुद्धं शरणं गच्छामि**" अर्थात् मैं बुद्ध की शरण जाता हूं। **धर्म "शरणं गच्छामि"** अर्थात् मैं धर्म की शरण आता हूं। **"संघर्म शरणं गच्छामि"** अर्थात् मैं सभा की शरण जाता हूं" (पृ० ७८)।

भारत में मूर्त्तिपूजा का प्रथमप्रचार बौद्धमत ने किया

आर. सी. दत्त मेक्सम्युलर आदि सर्व लेखक इस बात को मानते हैं कि मूर्त्तिपूजा की प्रवृत्ति भारत में बौद्धमत से हुई "बौद्धज़म" नामी पुस्तक के पृष्ठ ४६५ पर मोनियर विलियम्स

लिखते हैं कि मैंने भारतवर्ष के सर्व प्रान्तों की यात्रा की और बुद्धिमान् पण्डितों से पूछा कि मूर्त्तिपूजा कहां से आरम्भ हुई, उन्होंने उत्तर दिया कि पूर्वकाल में आत्मा से परमात्मा की उपासना होती थी, जब से बौद्धमत ने मूर्त्तिपूजन का प्रचार किया उसके देखा देखी लोग मूर्त्तिपूजक होगये। साथ ही मोनियर साहब लिखते हैं कि **"ऋग्वेद में मूर्तिपूजा का विधान नहीं मिलता और न मनु में ही है और बुद्ध की मूर्त्तियों से पूर्व की कोई भी** हिन्दू मूर्त्ति नहीं मिली"। यही महाशय एक स्थल पर लिखते हैं कि "दो जैनी पण्डित जो मुझे जयपुर में मिले वह यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे" (पृ० ५३४) इसके निम्नलिखित वचनों से पाया जाता है कि जैनियों के सदृश मन्दिर बनाने वाली कोई जाति नहीं है।

"प्रत्येक जैनी, जो धर्मभाव के लिये प्रसिद्ध हो, एक मन्दिर बना देता है। काठियावाड़ के पालीटाना नगर में सारा नगर ही जैनमन्दिरों से पूरित हो रहा है। जैनमत बौद्धमत के समान ब्राह्मण लोगों के धर्म से निकला और उसके भाग्य में फिर इन के धर्म में मिलजाना लिखा है" * (पृष्ठ ५३६)

बौद्धमत ने प्रत्येक मनुष्य से बुद्धि का चक्षु छीन लिया और प्रत्येक मनुष्य को अपनी बुद्धि से काम लेने के स्थान में उसको उपदेशकों के वचनों को चाहे वह निज बुद्धि के सर्वथा विपरीत भी क्यों न हो **"बाबावाक्यं प्रमाणम्"** कहकर मानने की शिक्षा दी। विचार कर देखें तो प्रतीत होता है कि बौद्धमत ने लोगों को ज्ञाननेत्रों से अन्धा कर दिया और धर्म में निजबुद्धि को काम नहीं लाना, इस भयङ्कर शिक्षा का चुपचाप रीति से भारत में बीज बो दिया, यही नहीं कि बौद्धमत ने मनुष्य की आत्मिक स्वतन्त्रता का मूल 'बुद्धि' छीनकर उसको अन्य मनुष्य का आत्मिक दास बना दिया, प्रत्युत यहांतक गिरा दिया कि जड़मूर्त्ति के आगे चेतन आत्मा को उपासना के लिये झुकना पड़ा। जो भौतिक पदार्थ कि मनुष्य के भोग के साधन थे और जिनको चेतन आत्मा ज्ञानपूर्वक उपयोग में ला सकता है उन जड़ पदार्थों के आगे चेतन आत्मा शिर झुकाने लगा। हाय! कैसा भयङ्कर यह दृश्य है! बुद्ध के चेलों ने धार्मिक † अत्याचार फैला दिया अर्थात् धर्म में एक उपदेशक की बुद्धि पर ही निर्भर करना आरम्भ किया अथवा यह कहो कि धर्म में एक मनुष्य का राज्य जहां स्थापन

* Buddhism by S. Monier Williams P. 596 London 1889.

† Divine rights of the Priests.

किया वहां धर्म में पराधीनता का बीज बोदिया । इतिहास बतलाता है कि महाभारत के पश्चात् और बौद्धमत से पूर्व यदि भारतवर्षीय राजा चक्रवर्ती नहीं रहे थे तो भी इतनी शक्ति थी कि भारत में खण्ड २ होकर अपना राज्य करते रहे । विदेशियों को भारत में आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ था । परन्तु बौद्धमत के यौवन के पश्चात् जब कि अशोक के प्रचार ने मनुष्यपूजा सर्वत्र फैला दी और भारतसन्तान अधिक बुद्धिहीन होकर अपनी स्वतन्त्रता का भाव बहुत न्यून कर बैठी, तो उस समय सिकंदर से विदेशी को भारत में आक्रमण करने का साहस हुआ । इसके पीछे शकदेश निवासी विदेशियों के आक्रमणों से भारत पीड़ित होता चला गया, यहांतक कि महाराज विक्रमादित्य ने विदेशियों से भारत की रक्षा की । विक्रमादित्य के पश्चात् पौराणिक मतमतान्तरों के प्रचार ने चारों वर्णों को बलहीन, मलीन और दीन कर दिया और इसी कारण यवनों ने आक्रमण करके भारत को पादाक्रान्त कर डाला ।

यूरोप के अन्धकार के इतिहास में पोपडम का समय वह था जिसमें कि रोम के पोप को धर्म अवतार, महान् गुरु मानकर लोगों ने अपनी बुद्धियां उसके अर्पण कर रक्खी थीं, ठीक वैसे ही भारत में पोपडम का बीज बौद्धमत के प्रचार ने गहरा बोदिया । काशी, कन्नौज, पश्चिम और दक्षिण देश वालों ने जैनमत स्वीकार नहीं किया । जो लोग पर्वतों में रहते थे वह भी इस मत में प्रविष्ट नहीं हुए । शेष सारा देश और लंकादि द्वीप बौद्धमत के अनुयायी बनगये । वेदों की सर्वत्र निन्दा फैल गई, वेद के पठनपाठन की रीति लुप्त होने लगी, यज्ञोपवीतादि विद्या के चिह्नों का बौद्ध लोगों ने नाश किया । दक्षिणी ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठस्थ करके वेदों की परम रक्षा की तो भी वेद की पुस्तकों का बहुत नाश हुआ । आर्य्यों पर बौद्धराजों के समय में क्रूरता की गई । **"तीन सौ वर्ष तक बौद्ध वा जैनियों का राज्य रहा इस बात को अनुमान से ढाई सहस्र वर्ष हुए हैं"** ।

गौतम बुद्ध ने स्वयं पुस्तक न रची

मोनियर विलियम्स लिखते हैं कि बुद्ध सुकरात के सदृश व्याख्यान और उपदेश ही देता रहा, परन्तु उसने स्वयं कोई पुस्तक नहीं लिखी । जो कुछ बौद्धमत के विषय में इस समय ज्ञान उपलब्ध हो रहा है वह उसका वास्तविक लेख अथवा उसका अनुवाद नहीं है । इसलिये लेखक लिखते हैं कि बुद्ध ने अपनी पूजा की शिक्षा नहीं दी थी । चेलों ने उसका महत्व बढ़ाने के लिये मनुष्यपूजा की लीला रचाई । मनुष्यपूजा तथा मूर्त्तिपूजा के दोष

के भागी उसके चेले हैं न कि स्वयं गौतम बुद्ध । अशोक के राज्य में जो "त्रीपिटक" रचे गये थे वह बुद्ध के उपदेशों से विपरीत चेलों ने चैन उड़ाने के लिये बनाए ।

बुद्ध के जीवन पर एक दृष्टि

"बुद्धमत" नामी पुस्तक के पृष्ठ २२६ पर मोनियर विलियम्स लिखते हैं कि "योग के साधन बुद्धमत ने नये प्रचलित नहीं किये, किन्तु योग के साधन गौतम बुद्ध से पूर्व भारतवर्ष में विद्यमान थे और बुद्ध के जीवनचरित्र का सर्बसम्मत वृत्तान्त यह है कि बुद्ध अपना घर और सांसारिक संग छोड़ने पर कई ब्राह्मण योगियों के पास गया, जो कि योगाभ्यास करते थे और प्रत्येक मनुष्य का, जो कि योगाभ्यास करता है, उद्देश्य परमात्मा की ही प्राप्ति है। एक सच्चा योगी, भगवद्गीता (६ । १३ । २५) बतलाती है, वह है जो सांसारिक पदार्थों से निर्मोह वा विरक्त हो। उसके लिये मिट्टी, पत्थर, सोना सब समान हैं " इण्डियन मैगेज़ीन " बाबत मास जुलाई सन् १८८७ ई० तथा मेरी पुस्तक " ब्राह्मणमत और हिन्दूमत " के पृष्ठ ५२६ पर वर्त्तमान समय के एक नये धार्मिक रिफ़ार्मर (आचार्य्य) का संक्षिप्त जीवनचरित्र है जिसका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है और जिससे मैं सन् १८७६ ईस्वी तथा सन् १८७७ में मिला था और जिसका देहान्त सन् १८८३ ईस्वी में हुआ है इसके जीवन का वृत्तान्त बहुत कुछ बुद्ध के जीवन से मिलता है। इसकी शिक्षा का उद्देश्य वेद के एक ब्रह्म के माने हुए सिद्धान्त का पुनः प्रचार करना है। यह लिखा हुआ है कि इसका पिता शैवमत की दीक्षा देने के लिये इसको एक शिवमन्दिर में लेगया परन्तु चूहों को प्रसाद खाते हुए और मूर्त्ति के ऊपर खेलते हुए देखकर उसका मन शिव की मूर्त्ति की पूजा से घृणा खागया कि यह परमात्मा की प्राप्ति का साधन नहीं है। ब्रह्मप्राप्ति की इच्छा करते हुए और वार २ जन्म मरण के दुःख से छूटने के लिये उसने विवाह न करने और त्यागी होने का दृढ़ संकल्प धारण कर लिया। २२ वर्ष की आयु में वह छिपकर घर से भाग निकला और रात्रि के अन्धकार ने उस के भागने को छिपा लिया। एक अप्रसिद्ध मार्ग से चलते हुए वह रातों रात तीस मील निकल गया। दूसरे दिन उसके पिता ने उसका पीछा किया जो कि उसको लौटाने का यत्न निष्फल करता रहा। अपने प्रान्त से बहुत दूर जाने पर उसने सत्य की जिज्ञासा में अपने आपको अर्पण करदेने का व्रत धारण कर लिया। फिर वह कई वर्ष भारतवर्ष के नाना स्थलों पर योगियों और विद्वानों के पास भटकता फिरा। अन्त को अहमदाबाद में जा ठहरा, इस स्थल पर उसने राजयोग में सिद्धि प्राप्त की। फिर वह एक नये समुदाय का, जिसका नाम आर्य्यसमाज है, आचार्य्य हुआ (पृष्ठ २२६, २२७)

मोनियर विलियम्स के इस लेख से सार यह निकलता है कि बुद्ध स्वामी दयानन्द के समान योगाभ्यास करता रहा और योग का परम उद्देश्य ईश्वरप्राप्ति है, इसलिये बुद्ध योगी तथा आस्तिक था और यही कारण है कि बुद्ध ने योग के पांच यमों तथा अन्य अङ्गों की शिक्षा देने में अपना जीवन लगा दिया।

मोनियर विलियम्स अपनी पुस्तक के पृष्ठ २३६ पर लिखते हैं कि योगशास्त्र के पांच यम बुद्ध की पांच शिक्षाओं से मिलते हैं, जैसे कि:—

१ पहला यम अहिंसा।
१ बुद्ध का पहला उपदेश हिंसा न करो।

२ दूसरा यम सत्य।
४ बुद्ध का चौथा उपदेश झूठ मत बोलो।

३ तीसरा यम अस्तेय।
२ बुद्ध का दूसरा उपदेश चोरी न करो।

४ चौथा यम ब्रह्मचर्य अथवा पवित्रता।
३ बुद्ध का तीसरा उपदेश पवित्रता धारण करो।

५ पांचवां यम अपरिग्रह।
५ बुद्ध का पांचवां उपदेश मद्य मत पीओ।

अपरिग्रह के साथ मद्य न पीने के अर्थों का विचार करते हुये मोनियर विलियम्स महाशय लिखते हैं कि इसमें कुछ भेद सा है क्योंकि अपरिग्रह के अर्थ उक्त महाशय सांसारिक भोगों से बचना लिखते हैं, परन्तु वास्तव में इसके अर्थ विषयासक्त न होने के हैं और शराब पीना भी एक विषय में आसक्त होना है इसलिये इसका न पीना अपरिग्रह के अन्तर्गत हो सकता है। उस समय वाममार्ग के प्रचार के कारण लोग शराब के विषय में लम्पट रहते थे इसलिये यदि बुद्ध ने केवल शराब न पीने पर इस यम का आशय घटाया तो उसने कोई अनर्थ नहीं किया। वास्तव में बुद्ध ने योगशास्त्र के पांच यमों की ही शिक्षा दी है।

योगशास्त्र में यमों के पीछे ५ नियमों का वर्णन है, मोनियर महाशय ने नियमों का वर्णन करते हुए स्वाध्याय यम के अर्थ जप के किये हैं और इसके अन्तर्गत लिखा है कि:—

"तिब्बत के बौद्ध लोगों में निम्नलिखित वाक्य का जप किया जाता है:—

Om Mani Padme Hum–Om !

(ओ३म् मने पद्मे हुं ओ३म् *)

इससे विदित होता है कि तिब्बत के बौद्ध गौतम बुद्ध के समान आस्तिक हैं और 'ओ३म्' का जप करते हैं।

गौतम बुद्ध और बौद्धमत सम्बन्धी हमारा विचार

इस प्रकार की सर्व सामग्री की विद्यमानता में हमारे लिये यह कहना कठिन है कि महात्मा बुद्ध स्वयं नास्तिक थे अथवा वेद को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे। उनको योगशास्त्र के (जो कि उपासना शास्त्र है) यम, नियम आदि अष्टांग योग की शिक्षा देते हुए जब हम विचारते हैं तो विदित होता है कि वह आस्तिक थे और उनके कई शिष्य आज पर्य्यन्त तिब्बत में ओ३म् † का जप ‡ करते हैं ÷।

अनुमान द्वारा प्रतीत होता है कि वाममार्गी लोगों ने वेद में कोई प्रक्षिप्त वाक्य डालने चाहे होंगे परन्तु दो कारणों से वे ऐसा कर नहीं सकते थे।

(१) प्रथम यह कि वेदमन्त्रों की रचना अत्यन्त कठिन तथा विचित्र है।

(२) दूसरा यह कि वेद को प्राचीन समय से ब्राह्मण लोग कण्ठस्थ रखते आये हैं और इस हेतु से कोई उन में न्यूनाधिक नहीं कर सकता।

* ओ३म् रूपी मणि पद्म (हृदय) में ही निवास मिलती है।

† महाराजा कपूरथला जापानयात्रा के सम्बन्ध में लिखते हैं कि जापान तथा चीन के बुद्धमन्दिरों में "ओ३म् नमो देवाय" यह वचन आजकल बोला जाता है।

‡ श्रीयुत महाशय गिरधारीलालजी आर्य्य कन्ट्रैक्टर ब्रह्मा कहते हैं कि ब्रह्मा में "ओ३म् नमो अमको देवाय" यह शब्द बोले जाते हैं।

÷ भारतवर्ष के जैनी आजकल सब से पवित्र मंत्र "णोमकार मंत्र" बोलते हैं। जैनियों में ओ को णो उच्चारण करने की शैली है। अतः "णोमकार मंत्र" ओमकार मंत्र ही है।

जब ऐसा वामी लोग न करसके तो उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों में वाममलीला के वाक्य रचकर मिला दिये और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद ही प्रचार कर दिया। गौतम बुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों को हिंसापरक होने के कारण निन्दा योग्य कहता होगा जैसा कि उपरोक्त मेक्समूलर के वचनों से पाया जाता है। यह भी संभव है कि बुद्ध ने ब्राह्मण ग्रंथों के एक अंश की, जिसमें कि हिंसाविधायक लेख है, निन्दा की हो, चेलों ने सारे ही ग्रन्थ त्याज्य बतला दिये।

यदि गौतम बुद्ध कोई पुस्तक रच जाते और वह सुरक्षित रह सकती तो इतिहासवेत्ताओं के लिये उत्तम रीति से यह बात प्रकट होजाती कि बुद्ध ने ब्राह्मण ग्रन्थों का किन २ हेतुओं से खण्डन किया था। अशोक आदि पुरुषों को सभा करके इसी लिये बौद्धमत के नियम निश्चय कराने की आवश्यकता पड़ती रही, क्योंकि बुद्ध कोई अपना लेख नहीं छोड़ गये थे और इसी रीति से बुद्ध के उपदेश के विरुद्ध बौद्धमत के सिद्धान्त अशोक की सभा में बनाये गये, जैसा आन्दोलन करने वालों के लेखों से पाया जाता है।

यह बात आज विचित्र प्रतीत होती है कि गौतम बुद्ध तो स्वयं आस्तिक और वेद के मानने वाले हों, परन्तु बहुतसे शिष्यगण नास्तिक और मूर्त्तिपूजक हों। एक धनी पिता की सन्तान निर्धन हो सकती है उसी प्रकार यह बात है।

गौतम बुद्ध को छोड़कर अब हम बौद्धमत अथवा जैनमत की ओर आते हैं तो पाते हैं कि इस वर्त्तमान मत ने उन सर्व दोषों की शिक्षा दी जिनको कि हम ऊपर गिना आये हैं। बुद्ध के चेलों ने ही भारतवर्ष में आर्यसन्तान को ईश्वर तथा वेद से विमुख करा मूर्ख बना मनुष्यपूजा और मूर्त्तिपूजन के अथाह समुद्र में गिरा दिया इसलिये बुद्ध के देहान्त के पश्चात् जब बौद्धमत यौवन पर आया तो निःसन्देह देश में नास्तिकता और मूर्तिपूजा छागई थी जिसको दूर करने के लिये कुमारिलाचार्य्य और स्वामी शङ्कराचार्य्य ने जन्म लिया।

मूर्त्तिपूजा के भारी खण्डनकर्त्ता स्वामी शङ्कराचार्य्य का समय

कुमारिलाचार्य्य ने शङ्कराचार्य्य के लिये सड़क बांध दी

जब बौद्धमत अपने यौवन के अन्तिम दिन भोग रहा था उस समय जिस देशहितैषी ने भारतसन्तान की रुचि ईश्वर और वेद की ओर कराई उसका नाम स्वामी कुमारिलाचार्य्य * था। कुमारिल स्वामी ने बौद्धमत का युक्ति और प्रमाण से उत्तम रीति से खण्डन किया। गौड़पादाचार्य्य ने जो उपनिषद् पर कारिका लिखी है और जिनमें उसने मायावाद दर्शाया है उसी मायावाद के शस्त्र को लेकर कुमारिल स्वामी बौद्ध पण्डितों के पराजय के लिये निकल पड़े। जिस समय इन्होंने शास्त्रार्थ करना आरम्भ किया उस समय जैन लोग बुद्धिहीन होरहे थे। कुमारिल स्वामी के जीवनचरित्र में ऐसे दृष्टान्त बहुत मिलते हैं जिनसे पाया जाता है कि बौद्ध पण्डित चमत्कार (करामात) के मानने वाले बन रहे थे, जब कुमारिलाचार्य्य ने इनके संग शास्त्रार्थ किया उस समय बौद्ध लोगों ने अपनी मूर्खता प्रकट करते हुए इनसे चमत्कार मांगे। चाहिये तो यह था कि जैनी पण्डित युक्ति वा शास्त्र का प्रमाण मांगते परन्तु बड़े २ पण्डितों ने चमत्कार ही मांगे।

थोड़े ही समय तक प्रचार करने से कुमारिलाचार्य्य ने लोगों के कई संशय मिटाकर उनको वेद और ईश्वर का भक्त बना दिया। जहां इनके प्रचार से लोगों की श्रद्धा वैदिक साहित्य की ओर बढ़ी वहां साथ ही गौड़पादाचार्य्य का मायावाद (नवीन वेदान्त) फैल गया। बड़े २ धनी और विद्वान् पुरुष कुमारिल स्वामी के अनुयायी बने। अमरावती का राजा भी इनका अनुयायी बन गया और देश में सर्वत्र आस्तिकपन की जयध्वनि होने लगी, कुमारिलाचार्य्य अपना काम करते हुए परलोक सिधार गये और शङ्कराचार्य्य के लिये काम करने की सड़क बांध गये। शङ्कराचार्य्य ने उनके काम की पूर्त्ति की और युक्ति तथा शास्त्रार्थ का अद्भुत शस्त्र लिये हुए प्रसिद्ध जैनी पण्डितों पर विजय प्राप्त की। राजा सुधन्वा ने शङ्करस्वामी को बहुत कुछ सहायता प्रचार में दी। शङ्करस्वामी के उद्योग से अनेक जैनी लोग गायत्री मन्त्र पढ़ तथा यज्ञोपवीत धारण कर मानो शुद्ध होकर वैदिकधर्मी बन गये।

* इनको कुमारिलभट्ट अथवा भट्टपाद भी कहते हैं।

शंकराचार्य्य ने मूर्त्तिपूजा का भारी खण्डन किया

यही नहीं कि शंकरस्वामी जैनियों से शास्त्रार्थ करते रहे हों परन्तु उन्होंने पौराणिक मतवादी शैव, शाक्त लोगों और तन्त्र-मतवादी वामी पण्डितों से भी उत्तम शास्त्रार्थ किये। उन-के शास्त्रार्थों से पता लगता है कि जैनमत के प्रचार के कारण वाममार्ग बहुत ही दब गया और बहुत कुछ नष्ट भी होचुका था, परन्तु सर्वथा निर्मूल नहीं हुआ था और भारत के अनेक स्थलों पर गुप्त रीति से विचर रहा था। शंकरस्वामी ने भस्म लगाने वाले शैव लोगों को दर्शा दिया कि तुम्हारा भस्म चिह्न लगाना अवैदिक कर्म है। शंकरस्वामी ने नास्तिकपन और मूर्त्तिपूजा को दूर करने के लिये भारी यत्न किये और राजा की सहायता से बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की। कौन कह सकता है कि कितने मन्दिर मूर्त्तियों से शून्य हुए अथवा कितनी मूर्त्तियां लोगों ने मन्दिरों से निकाल कर नदियों में डालीं वा भूमि में गाड़ दीं। जिस प्रकार संग्राम की समाप्ति पर पराजित शत्रु शस्त्र दबाते, छिपाते अथवा स्वयं त्यागन करते हैं उसी प्रकार उस समय लोगों ने शंकर की युक्ति और प्रचार के प्रताप से बुद्ध तथा तीर्थंकरों की मूर्त्तियां भूमि में गाड़नी आरम्भ करदीं। यदि शंकरस्वामी के भय से उस समय मूर्त्तियां दबाई न जातीं तो आज दिन अङ्गरेज़ी सरकार को पृथिवी खोदने से वे जैन-मूर्त्तियां कैसे प्राप्त होतीं? इस समय जितनी मूर्त्तियां भारतवर्ष तथा लण्डन आदि के अद्भुतालयों का शृङ्गार बन रही हैं वे सब जैनमूर्त्तियां उस समय शंकर के भय से दबाई गई थीं। अद्भुतालयों की इन मूर्त्तियों को देखने से एक जिज्ञासु अनुमान कर सकता है कि मूर्त्तिपूजा को नष्ट करने के लिये शङ्करस्वामी ने कैसा प्रबल काम किया होगा। सैकड़ों मूर्त्तियां लोगों ने जैन मत त्यागने पर स्वयं तोड़ डालीं। राजा सुधन्वा और कई अन्य राजे वैदिकधर्मी हुए। शंकरस्वामी गुरुकुल बनाने की सर्वत्र चिन्ता करने लगे ताकि वेदों के पठनपाठन का प्रचार हो और उपदेश देने लगे कि "वेदों को नित्य पढ़ो" परन्तु देश के भाग्य कहां थे कि यह गुरुकुलों का दर्शन करता, जो जैनी वेदों के जो कि चींटी तक की रक्षा करने को धर्म मानने वालों में से थे, वैसे महान् पुरुष की हिंसा में संकोच न करते हुए वेषधारण करके छल से उनको विष देदिया। जो वेदों के पठनपाठन के लिये सर्वत्र गुरुकुल खोलने की शुभ इच्छा शंकराचार्य्य के मन में थी वह मन में ही रह गई और स्वामी शङ्कर पृथिवी पर से स्वर्ग को पधार गये।

शंकराचार्य्य के जीवन पर एक दृष्टि

स्वामी शंकराचार्य्य वेद को छोड़कर अन्य कई शास्त्र पढ़े हुए थे वेदों पर इनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। उपवेद पढ़ने का इन

को अवसर नहीं मिला था, उपनिषदों में जो ऋषभ शब्द गर्भाधान प्रकरण में वाजीकरण औषध का वाची आता है और जिसके यथार्थ अर्थ वैदिक शास्त्र के पढ़ने से लगते हैं उसके साधारण अर्थ शंकरस्वामी ने बैल के ही किये हैं। जिससे यह बात निश्चित होती है कि इनको उपवेद पढ़ने का अवसर नहीं मिला यदि इनकी गम्यता वेदों तक पूरी होती तो वेदमंत्रों का भाष्य करते अथवा अपने पक्ष की पुष्टि में वेदमन्त्र देते उपनिषदों पर ही वह निर्भर रखते थे इससे पाया जाता है कि वे वेद के भारी पण्डित न थे। इसलिये उनकी गणना ऋषिश्रेणी के पुरुषों में नहीं हो सकती, हां महान् पण्डितों और सच्चे देशहितैषियों में वे प्रथमश्रेणी के गिने जा सकते हैं। जैनमत के पुस्तक भी भलीभांति पढ़े हुए थे। युक्ति के धनी थे। उज्जैन नगरी में आनकर सुधन्वा को वेदों का महत्व दर्शाया और कहा कि जैनों से हमारा शास्त्रार्थ करावो राजा ने शास्त्रार्थ कराया जिसमें शंकरस्वामी की युक्ति प्रबल रही इस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में बौद्ध पक्ष यह था कि:—

"सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं यह जगत् और जीव अनादि है इनकी उत्पत्ति और विनाश कभी नहीं होता"।

स्वामी शंकराचार्य्य का पक्ष यह था कि:—

"अनादि परमेश्वर ही जगत् का कर्त्ता है यह जगत् और जीव झूठा है, ईश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया है, यह जीव और प्रपंच स्वप्नवत् है"।

यह युक्ति शङ्करस्वामी ने गौड़पादाचार्य्य की उपनिषद् पर कारिकाओं से ग्रहण की थी। यह मायावाद की युक्ति यद्यपि जैनमत को गिराने में सफल हुई परन्तु मूर्त्तिपूजन के स्थान में प्रत्येक नरनारी को ब्रह्म ही ब्रह्म दर्शाने वाली हुई। इस अवैदिक युक्ति अथवा हेत्वाभास ने मायावाद (नवीन वेदान्त) का प्रचार सर्वत्र कर दिया।

जगत् मिथ्या ब्रह्म सच्चा इस भ्रान्त युक्ति को लेकर स्वामी शङ्कराचार्य्य ने दश वर्ष के भीतर आर्य्यावर्त में भ्रमण करते हुए जैनी पण्डितों का पराजय कर दिया। शङ्करस्वामी ने गौतम बुद्ध के विपरीत स्वयं ग्रन्थ रचे। इनके शारीरिक भाष्य आदि रचित ग्रन्थों का प्रचार इनके शिष्य करने लगे। इन संन्यासी शिष्यों ने मायावाद का सर्वत्र प्रचार कर दिया और जहां भारतसंतान में वेदादि शास्त्रों के पढ़ने के लिये

श्रद्धा उत्पन्न हुई वहां साथ ही मायावाद ने उनको कर्म करने के योग्य ही न रक्खा। लोग समझने लगे कि हम जब स्वयं ब्रह्म हैं तो ब्रह्म को पढ़ने की आवश्यकता क्या है? बुद्ध के चेलों ने जीवन्मुक्त बौद्धों को ब्रह्म अथवा ब्रह्म से उच्च दर्शा दिया था, स्वामी शङ्कर के मायावाद ने प्रत्येक जीव को ब्रह्म बना दिया।

गौतम बुद्ध जितने योगाभ्यासी थे उतने अन्य शास्त्रों के पण्डित न थे, योग-शास्त्र और मनुस्मृति पर उनकी विशेष रुचि थी, ऐसा प्रतीत होता है। शङ्कराचार्य्यजी महान् पण्डित थे, पर पूरे योगाभ्यासी न थे। इतिहास गौतम बुद्ध को योगाभ्यासी और शङ्करस्वामी को महान् पण्डित दर्शा रहा है। यदि शङ्करस्वामी योग में अभ्यास पूरा करते और उनकी आयु कुछ अधिक होती तो वे अवैदिक मायावाद के प्रचारक न होते, शङ्करस्वामी व्याकरण उपनिषदादि के विशेष पण्डित थे और साधारण रीति से शाब्दिक अर्थ करने की शैली से विज्ञ थे। वेद इन्होंने पढ़ा था परन्तु वेदों के गूढ़ अर्थ केवल व्याकरण से नहीं खुलते, इसलिये वेदों के गूढ़ अर्थों तक इनकी सफलता पूरी न हुई। जो विद्वान् वेद के बुद्धिपूर्वक अर्थ सृष्टिरूपी कोष में देखना चाहे उसको जहां व्याकरण आदि सर्व शास्त्रों में उत्तीर्ण होने की आवश्यकता है वहां योगदृष्टि, कि जो अभ्यास से प्राप्त होती है, धारण करने की आवश्यकता है। यह हो सकता है कि, जैनमत के भयंकर प्रचार से उनका महान् हृदय व्याकुल होगया और उन्होंने झटपट ही देशसुधार के काम को हाथ में छोटी अवस्था में ही लेलिया और इस हेतु से उनमें यह त्रुटि रहगई और फिर काम में पड़ कर उनको वेदार्थ मनन करने अथवा पूर्ण योगी बनकर साक्षात् करने का अवसर न मिला। वेदों में जब यह मन्त्र विद्यमान हो कि:—

"द्वा सुपर्णा सयुजा" इत्यादि

जिसमें द्वा शब्द दो का बोधक पायाजाय और मंत्र ईश्वर और जीव को स्वरूप से भिन्न २ दर्शा रहा हो तो स्वामी शंकराचार्य्य का केवल एक ही ब्रह्म मानना और जीव तथा प्रकृति को न दर्शाना विदित कराता है कि उन पर वेदमंत्रों के यथार्थ अर्थ नहीं खुले। यह मानते हुए कि वह वेदों के ऋषि न थे तो भी मूर्त्तिपूजा के खंडन में जो काम उन्होंने किया वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। वह हमें ज्ञाननेत्रों से एक बाल-ब्रह्मचारी और सच्चे देशहितैषी महान् पण्डित के रूप में जैनमत, शैवमत और वाम-मार्ग का खण्डन करते हुए और आर्य्यसंतान को वेद पढ़ने का उपदेश देते तथा अवैदिक मायावाद का बीज बोते हुए दृष्टि पड़ते हैं।

शंकरस्वामी के मायावाद का फल

शंकरस्वामी के लेखों तथा शास्त्रार्थों ने लोगों की बुद्धि को उज्ज्वल किया, परन्तु मायावाद ने चारों वर्णों के नरनारियों को महा आलसी और पुरुषार्थरहित बनादिया। मायावाद में पड़कर लोग कर्मकाण्ड से रहित होने लगे। मायावाद के प्रचार के संग २ झूठा वैराग्य देश में बढ़ने लगा, यहांतक कि मन्दालसा सरीखी रानियां झूठे वैराग्य की लोरियां बच्चों को देने लगीं।

दो सौ वर्ष के लगभग मायावाद बढ़ता रहा और जैसा कि उसका स्वाभाविक फल होना था लोग कर्म से हीन होते गये। पांच यम जो कि सामाजिक जीवन के मूल थे उनका प्रचार लुप्त होगया। सामाजिक जीवन से हीन आलसी भारत को शक आदि विदेशों के राजाओं ने दलन करना आरम्भ किया और शङ्कराचार्य्य के ३०० वर्ष पीछे उज्जैन नगर में आर्य्य राजा विक्रमादित्य हुये जिन्होंने विदेशियों से पीड़ित भारतसन्तान को शान्ति दिलाई। बुद्धमत और शङ्करमत की शिक्षा के उस अंश से, जो कि अवैदिक था, भारतसन्तान बुद्धि और शारीरिक बल से क्षीण होने के कारण संग्रामों से पीड़ित होने लगी। आलसी भारतसन्तान को पुनः पुरुषार्थी बनाने के लिये महाराज विक्रमादित्य ने बहुत यत्न किया। अपने निज जीवन को ऐसा नियमपूर्वक व्यतीत करना आरम्भ किया कि प्रजा पर नियम और मर्य्यादापूर्वक पुरुषार्थ करने का उत्तम प्रभाव पड़ा। कई विद्याओं का पुनः इस ने भारत में प्रचार कराया। जो वीर क्षत्रिय इसकी सेना में थे उनकी तथा उनके सम्बन्धियों की सन्तान ने, जो कि इतिहास में राजपूतों के नाम से प्रसिद्ध है, यवनों के समय आश्चर्यकारक वीरता दिखाई। विक्रमादित्य समस्त भारतवर्ष का महाराजा था, कुमारी से कश्मीर तक इसका ही राज्य था, मित्रगुप्त इसकी ओर से मांडलिक राजा बनकर कश्मीर आदि में राज्य करता था। मनुस्मृति की राज्यव्यवस्था तथा नीति का इसने पूर्ण रीति से देश में प्रचार किया। विक्रमादित्य उसी प्रकार का महाराजा था जिस प्रकार का बौद्धों का अशोक अथवा यवनों का अकबरशाह हुआ है। विक्रमादित्य के पश्चात् यद्यपि अनेक आर्य्य राजे भारत में हुए परन्तु किसी ने भी समग्र भारत का राज्य प्राप्त नहीं किया। पौराणिक समय में प्रान्त २ के भिन्न २ राजा होगये और परस्पर लड़ने झगड़ने में ही प्रवृत्त रहे।

विक्रमादित्य के पांच सौ वर्ष पीछे राजा भोज हुये उन्होंने शिल्पविद्या, आयुर्वेदिक विद्या और कविता की उन्नति की। पौराणिक समय के आरम्भ से पूर्व

कालिदास कवि हुआ है जिसके जीवनचरित्र से विदित होता है कि उसके समय तक भारत में जन्म से वर्ण नहीं माना जाता था। कालिदास पण्डित का विवाह विद्योत्तमा से स्वयंवर की रीति से हुआ और कालिदास मौन धारण किये हुये अन्य पण्डितों की सम्मत्यनुसार स्वयंवर के समय उससे अङ्गुलियां उठा २ कर शास्त्रार्थ करता रहा। इस वृत्तान्त से यह भी सिद्ध होता है कि घूंघट काढ़ने का प्रचार इस समय तक स्त्रीजाति में न था। विद्योत्तमा का जीवनचरित्र प्रकट करता है कि वह विदुषी थी और इतिहास दर्शाता है कि इस समय तक स्त्रियों को पुरुषों के समान विद्यादि का अधिकारी माना जाता था। स्त्री और शूद्र को वेद न पढ़ाने का वाक्य पौराणिक समय में स्वार्थी लोगों ने घड़ा और पौराणिक समय में ही स्त्रियों को लोग मूर्खा बनाने लगे।

शङ्करस्वामी के जीवनचरित्र से भी प्रकट होता है कि उस समय स्त्रियां पुरुषों के समान विदुषी हुआ करती थीं, यहांतक कि एक विदुषी विद्याधरी ने शङ्करस्वामी को भी शास्त्रार्थ में निरुत्तर कर दिया था।

महाकवि कालिदास के समय के पश्चात् यही निश्चय होता है कि भारत-सन्तान जन्म से वर्ण मानने लगी। पुरुषार्थी विक्रमादित्य के समय में ही मायावाद की अधोगति होगई थी। राजा भोज के समय से लोगों की रुचि इतिहास लिखने और काव्य ग्रन्थ बनाने की ओर होगई। पवित्र शास्त्रों और उपयोगी विद्याओं को तजकर काव्य ग्रन्थों की ललितभाषा पर भारतसन्तान लट्टू होने लगी। इसी रुचि को अनुभव करके नामधारी ब्राह्मणों ने मीठी कविता में भागवत आदि पुराण रचकर मिथ्या सिद्धान्त और भ्रान्त कथाओं का भारत में प्रचार कर दिया। इन काव्य ग्रन्थों ने वाममार्ग को पुनः जगाने का काम किया, क्योंकि जहां विषयाशक्ति की ओर लोग धावित हों वहां पर वाममार्ग क्यों न अपना राज्य जमाए। वाममार्ग के जागने के साथ ही शैव, शाक्त, जैन आदि मतों ने भी सुध संभाली और सबके प्रचार ने मिलकर भारतवर्ष को १८ पुराणों की टकशाल बना दिया।

ओ३म्

भारत के इतिहास में पौराणिक अमावास्या की घनघोर रात्रि और उसमें आदित्य ब्रह्मचारी का आगमन

कई इतिहासकर्ता पौराणिक समय के अन्तर्गत विक्रमादित्य को रखते हैं अर्थात् विक्रम से ही पौराणिक समय का आरम्भ करते हैं। हमने पौराणिक समय का आरम्भ राजा भोज के पश्चात् दर्शाया है। यदि कालिदास वैश्य पौराणिक समय में विद्या पढ़ना चाहता तो उसको ब्राह्मण कब पढ़ाते? जिस समय उसने विद्या पढ़ी वह पौराणिक यौवन का समय नहीं हो सकता। आजकल कालिदास के ग्रन्थ पढ़नेवाले पौराणिक पण्डित शास्त्री कहलाते हैं अर्थात् पौराणिक पण्डित लोगों का कालिदास गुरु बन रहा है। एक युक्ति यह भी है कि राजा भोज के समय में शल्यविद्या (सरजरी) * उन्नत दशा पर थी और जो ऐसे वैद्य होते थे वे गुणकर्मानुसार ब्राह्मण पदवी धारण करते और आर्य्य तथा दस्यु सब की औषध करते थे। पौराणिक यौवन के समय में ब्राह्मणों ने विद्या के निमित्त मृतशरीर का छूना, यन्त्रों से चीरना सर्वथा छोड़ दिया और छूतछात में पड़कर दस्यु जाति की औषध करना तो दूर रहा उन के दर्शन से भी पाप मानने लगे। छूतछात और जन्म से जाति पौराणिक समय की प्रधानता के दो मुख्य लक्षण हैं। यह दो लक्षण श्रीमान् राजा भोज के समय तक आर्य्यजाति में विद्यमान न थे। इसलिये विक्रमादित्य और भोज के पश्चात् ही पौराणिक समय अपने यौवन पर आया, यही माना जा सकता है।

---

* ठाकुर भगवन्तसिंहजी एम. डी. ने आर्य्य वैदिकइतिहास में भोजप्रबन्ध ग्रन्थ का वर्णन करते हुये सिद्ध किया है कि दो धन्वन्तरियों (सरजनों) ने उत्तमता से राजा भोज के सिर को वेधन और यन्त्र द्वारा सीवन किया था।

कल्पित पुराण घड़ने की विधि वामियों ने सिखाई

भारत के इतिहास में यदि किसी ने पहिले दूसरे के नाम पर झूठा अथवा कल्पित श्लोक वा वाक्य बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध किया है तो वे वाममार्गी थे। वामियों से शिक्षा लेते हुए पौराणिकों ने ऋषि व्यासजी का नाम रखकर कपोलकल्पित व्यर्थ ग्रन्थ रचने आरम्भ करदिये और उनका नाम "नवीन" रखने के स्थान में "पुराण" रख दिया। यह उलटी नींव डालते हुए पौराणिकों ने वाममार्ग, मूर्त्तिपूजा, अवतार, मायावाद से मेल करते हुये स्वयं पोप रोम के सदृश संस्कृत के शब्द पढ़ने का ठेका लेलिया और क्षत्रिय, वैश्य वर्णों को संस्कृत पढ़ाना छोड़ दिया। स्वयं बुद्धि खो दी और दूसरों की बुद्धि खोने के लिये पीछे पड़गये।

पौराणिक समय के यौवन का वर्णन

इस समय में सबसे पहिले शैवमत यौवन पर आया और वे शैवमत के अनुयायी, जिनके भस्म लगाने का शङ्करस्वामी ने खंडन किया था, जैनियों से शिक्षा पाते हुये शङ्कर को ही शिव का अवतार मानने लगे। इधर शङ्कर के शिष्य शङ्कर को साक्षात् ब्रह्म बनाकर झूठे वैराग्य की आड़ में अपने मठों में चैन उड़ाते हुये संन्यास के रूप में गृहस्थों को मात कर रहे थे। उन्होंने मुट्ठी गरम करने के लिये शैवमत से मेल करलिया और शङ्करमत के मायावादी साधु, संन्यासी शैवमत में पग अड़ाने लगे।

शैव शाक्त का मेल

शाक्तमत तो आगेही शैवमत का अर्द्धाङ्गी था अब उसने खुली रीति से शैवमत का आलिंगन कर लिया। दोनों ने मिलकर भस्म रमानी और रुद्राक्ष की माला धारण करनी आरम्भ करदी। शैव लोग रुद्राक्ष का धारण करना ही महादेव का रूप होना बतलाने लगे और उनके साथ शक्तिमत भी तथास्तु की माला फेरने लगा।

शैव और वाममार्ग की टिप्पणी

शैव और वाममार्ग दोनों इकट्ठे मिलगये और असभ्य मूर्त्ति बनाने में सभ्यता के भी कान कतर दिये। इन दोनों ने सम्मति करके विशेष मूर्त्ति बनाकर उसकी पूजा प्रचलित की जलहरी उसका नाम रक्खा।

जैनमत के [illegible] बदली

जैनमत जिसने मूर्त्तिपूजा की सब को शिक्षा दी थी उसने जब देखा कि शिर पर शङ्करस्वामी रोकने वाला नहीं और शङ्कर के चेले स्वयं मन्दिरों के पुजारी बन रहे तथा मायावाद की

गाढ़निद्रा में मूर्छित पड़े जीते हुए कर्महीन होने के कारण मुर्दा बन रहे हैं तो बस फिर किसका डर था बड़े ठाठ से मूर्त्तिपूजा आरम्भ की और घंटा घड़ियाल से कोलाहल मचा दिया, सारी कमाई को ईंट चूने के जोड़ने में लगाना ही जीवनोद्देश्य समझा।

ब्राह्मण जैनियों के [illegible] शिष्य बन गये

ब्राह्मणों ने मार्कण्डेय और शिवपुराण को तो राजा भोज के राज्य में कुछ घड़ ही लिया था परन्तु राजशासन के भय से पोपलीला फैला न सके अब जब कि विक्रमादित्य और भोज सरीखा कोई रोकने वाला दृष्टि न पड़ा तो मूर्त्तिपूजा के रण में खुले सरपट दौड़ने लगे। जैनियों के २४ तीर्थंकर थे इन्होंने भी २४ अवतार बनाए। जैसे जैनियों के आदि और उत्तर पुराण हैं वैसे ही इन्होंने १८ पुराणों की संख्या पूरी की। अवतार, मन्दिर, मूर्त्ति और कल्पित कथा के पुस्तक (पुराण) बनाने में ब्राह्मणों ने वह सिद्धि दिखाई कि कोई इनको जैनियों का चेला न कह सके। आगे जो लोग जैनमन्दिरों में जाते थे उनके लिये सर्व सामग्री पौराणिक ब्राह्मणों ने अपने घर में बना दी। और इस प्रकार के श्लोक सुनाने लगे कि:—

"चाहे प्राण कंठ में आजावें अथवा हाथी दलन करदे तो भी जैनमन्दिर में न जाना चाहिये"।

"बाबावाक्यं प्रमाणं" के मानने वाले हिन्दुओं ने जैनमन्दिरों से रुचि हटाकर इनकी सुध ली और हिन्दूमन्दिरों की लीला बढ़ने लगी। सदर से गये ग़दर हुआ, अनुकरण पर उतरे जैनियों के दासानुदास बन गये।

शाक्तों के मन्दिर

शाक्तों ने काली, ज्वालामुखी, शीतला, विन्ध्यवासिनी आदि अनेक देवियों के नाम से नाना स्थलों पर मन्दिर बना लिये और भैंसे बकरे उन मन्दिरों में कटवाने लगे।

हंटर साहब अपने इतिहास के पृष्ठ ६१ पर इस विषय में, ऐसा लिखते हैं कि:—

"१८६६ सन् के दुर्भिक्ष काल में काली के एक मन्दिर में, जो कलकत्ता से ८०० मील के अन्दर होगा, एक लड़का ऐसा मिला जिसका कि गला काटा गया था। उसकी आंखें बाहर को निकली हुई थीं और जिह्वा दांतों में पिचक गई थी। हुगली के एक और मन्दिर में काली की मूर्ति के आगे मनुष्य का शिर काट और उस पर फूल रखकर भेट किया गया था"।

सरकार अङ्गरेज़ी के उत्तम राजप्रबन्ध के कारण मनुष्य के बलिदान इस समय इन मन्दिरों में नहीं दिये जाते परन्तु यवनों के समय में मनुष्य के बच्चों के बलिदान बराबर दिये जाते थे। पंजाब में अंगरेज़ी राज्य से पूर्व कई माताएं देवियों के पुजारियों को जीता जागता अपना पहला बच्चा देआती थीं यह समझती हुई कि और बहुतसे बच्चे होंगे और वे जीवित रहेंगे। इस बच्चे की जो चाहे सो दुर्गति पूजारी बनाते थे।

वाममार्गियों की गुफाएं

जहां २ देवी अथवा भैरव आदि के मन्दिर होते हैं वहां २ स्वामियों ने अपनी लीला रचाने के लिये गुफाएं, जो कि कोटों की सुरंगों के सदृश हैं, बना रक्खी हैं। सन् १६०२ के वर्ष में सरकार ने हनुमानगढ़ी के निकट फ़ीरोज़ाबाद के प्रान्त में एक वामी गुफा की खोजना की थी, जिसके अन्दर सुन्दर स्त्रियां मन्दिर के पुजारी गुम (लोप) कर लेते थे।

पौराणिक समय में सर्वत्र नाना प्रकार की मूर्त्तियां तथा उनके मन्दिर बनने लगे और प्रत्येक मतानुयायी गुप्त अथवा प्रसिद्ध मन्दिर बनाने में प्रवृत्त हुआ।

वैष्णवमत और इसकी शाखा

हम कुछ थोड़ासा शैव, शाक्त आदि मतों का वर्णन कर चुके हैं। अब वैष्णव मत का वर्णन करते हैं "महाराजा भोज से १५० वर्ष पीछे वैष्णव मत प्रधान हुआ"। शठकोप और मुनिवाहन इसके आदि प्रचारक थे। फिर एक मुसलमान का नाम हरिदास रखकर वैष्णव लोगों ने उसको अपने में मिलाकर अपना गुरु बना लिया। हरिदास को यवनाचार्य्य भी कहते हैं। रामानुज पण्डित ने इसमें प्रविष्ट होकर इसकी बहुत उन्नति की। जिस प्रकार शैवों ने शिवपुराण, शाक्तों ने देवीभागवत बनाये थे उसी प्रकार वैष्णव लोगों ने विष्णुपुराण बनाया।

श्री रामानुज ने शङ्करमत के खंडन में ग्रन्थ रचा और अपना अनोखा अवैदिक विशिष्टाद्वैतमत खड़ा कर दिया। कंठी, तिलक, माला, मूर्त्तिपूजन इनका मुख्य उद्देश्य हुआ। इनके मन्दिरों में पुजारी रात दिन मूर्त्तियों के सजाने में लगे रहते हैं। घंटा घड़ियालादि बहुतसे आडम्बर रखते हैं।

श्री रामानुज का चेला श्री रामानन्द हुआ जिसका मत सन् १३०० ई० से सन् १४०० ई० तक अथवा उसके लगभग यौवन पर रहा। बनारस में इसने अपना स्थान

रहने का बनाया। इसने शूद्रादि वर्ण से १२ शिष्य बनाये, कोई मोची, कोई नाई और एक प्रसिद्ध शिष्य धुनिया कबीर साहेब था। रामानुज ने संस्कृत में ग्रन्थ रचे तथा हिन्दी भाषा से काम लिया।

कबीर साहेब अलीनूर धुनिये के पालक पुत्र थे। यह रामानन्द के चेले हुए। बङ्गाल देश में अपने मत का प्रचार किया। जिस प्रकार श्री रामानन्द चाहते थे कि छोटे बड़े सब एक हो जावें उससे अधिक श्री कबीर चाहता था कि वैष्णवमत और मुसलमानी मत का परस्पर मेल हो जावे। इसलिये उसने अपने वाक्यों में लिखा कि हिन्दुओं और मुसलमानों का ईश्वर एक है। राम रहीम को मिलाने का इसने अच्छा यत्न किया। यद्यपि इसने मूर्त्तिपूजन को वैष्णवमत से उड़ा दिया और स्वयं मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता था, परन्तु पौराणिक मगरमच्छ ने इसके उपदेश को भी इसके मरते ही निगल लिया और फिर कबीरपन्थी स्वयं कबीर को ही अवतार मान बैठे और खाट, तकिये, गद्दी, खड़ाऊं और दीपक आदि जड़ पदार्थों को वैष्णव लोगों के समान पूजने लगे। कान को बन्द करने से जो सां २ की ध्वनि होती है उसको अनहद शब्द सिद्धान्त ठहराया। मन की वृत्ति को सुरति कहा। उसको इस सां २ के सुनने में लगाना सन्त और ईश्वर का ध्यान बतलाया। बरछी के समान तिलक लगाने और चन्दन की कंठी बांधने और कबीर को अवतार बतलाने का नाम कबीर-पन्थ होगया।

कबीर के कई चेले थे परन्तु सब में प्रसिद्ध श्री नानकदेव हुए हैं। इस विषय में आर. सी. बोस 'हिन्दू हिटेोडक्सी' पुस्तक * का कर्त्ता इस प्रकार लिखता है कि:—

"इस में कुछ सन्देह नहीं हो सकता कि नानकशाह कबीर का चेला था और ऐसा चेला कि जिसके द्वारा कबीर के सिद्धान्त का प्रचार हुआ"। (देखो पृष्ठ ३१३)

सन् १३८० से सन् १४२० तक कबीर साहेब प्रचार का काम करते रहे। अकबरशाह का मन्त्री अबुलफ़ज़ल लिखता है कि "सिकन्दर लोधी के समय में कबीर था"।

* Hindu Heterodoxy. By R. C. Bose Calcutta 1887.

कबीर साहेब के वचन सिक्खों के आदि-ग्रन्थ में बहुत मिलते हैं और 'बोस' महाशय का वचन है कि " जितने नानकशाह के वचन ग्रन्थ में हैं उससे कुछ ही न्यून कबीर के वचन हैं " कबीर ने जो कुछ ईश्वरसम्बन्धी उपदेश दिया है वह शङ्करमत अथवा क़ुरानमत ही है अर्थात् जीव को ब्रह्म ही कहा है।

"कबीर का मत काशी से चला जो कि हिन्दू मत का केन्द्र था और पंजाब में आकर फैला"। (पृष्ठ ३२६)

श्री नानकदेव ने श्री कबीर के सदृश मूर्त्तिपूजा का खण्डन और एक ब्रह्म का उपदेश दिया ' बोस ' के लेखानुसार पृथिवी पर सिक्ख लोग ही केवल पुस्तक-पूजक हैं। सिक्ख लोग पौराणिकों के समान अपनी पुस्तक को भोग लगाते, उसकी सवारी निकालते, उस पर चंवर झुलाते और उसकी आरती करते हैं। अमृतसर और गोदंवाल के ताल और बावली को तीर्थ समझ कर उनके जल को पापनाशक मानते हैं जिस प्रकार यवन लोग मानते हैं कि मुहम्मद साहब 'खातमुलमुरसलीन' हैं उनके पीछे कोई उन के समान नहीं होगा इसी प्रकार सिक्ख लोग दशवें गुरु साहब के पश्चात् किसी का उनके समान होना नहीं मानते। जैनी लोग भी ऐसा ही मानते हैं कि २४ तीर्थंकरों के बिना कोई महात्मा नहीं है। अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३६३ पर 'बोस' लिखते हैं कि आदि-ग्रन्थ के रचने वाले निम्नलिखित हैं अर्थात् केवल सिक्ख महाशयों वा गुरुओं ने ही नहीं बनाया प्रत्युत अन्य पुरुषों ने भी, जो भक्त कहलाते थे, बनाया है। वे 'ग्रन्थसाहब' के बनाने वालों की नामावली यह देते हैं:—

नानक, अंगद, अमरदास, रामदास, अर्जनमल्ल, तेग़बहादुर, गोविन्द, कबीर, सूरदास, त्रिलोचन, धन्नाजाट, नरदेव, रयदास चमार, सदना कसाई, सनै नाई, शेखफ़रीद, पीपा, बेनी, भभीखन।

"डाक्टर अरनेष्ट ट्रम्प *" जिन्होंने सिक्खों के आदि ग्रन्थसाहेब का अङ्गरेज़ी अनुवाद किया है और जिसके अनुवाद की सरकार ने "मरदुमशुमारी" की रिपोर्ट में श्लाघा की है उसका जो विचार इस " ग्रन्थसाहब " सम्बन्धी है उसको बोस लिखते हुए अपनी पुस्तक के पृष्ठ ३८६ पर यह दर्शाते हैं कि:—

"जो कोई ब्रह्म को जानता है वह स्वयं ब्रह्म है, नानक कहता है"।

* Dr. Ernest Trumpp.

इससे पाया जाता है कि इस ग्रन्थ में जीव ब्रह्म की एकता की नवीन वेदान्त के समान शिक्षा दी गई है।

जिस प्रकार मायावादी एक ब्रह्म का महावाक्य (कलमा) बतलाते हैं। उसी प्रकार सिक्ख लोगों ने "वाहगुरु" इन शब्दों को अपना महावाक्य बना रक्खा है। वाहगुरु "वाहद गुरु" का अपभ्रंश है, वाहद के अर्थ यवनभाषा में एक के हैं इसलिये "वाहगुरु" के अर्थ "एकगुरु" के हुये।

पौराणिक समय के जितने भी भक्त सुधारक हुये हैं उन्होंने नाम की महिमा, मूर्त्तिपूजन का खण्डन, वैराग्य और जीव ब्रह्म की एकता, इन ४ बातों की विशेषकर शिक्षा दी है। नामस्मरण का माहात्म्य पौराणिकों के सदृश मानते हैं। मूर्त्तिपूजा का युक्तियों से खण्डन करते हैं। वैराग्य पर बहुत ज़ोर दिया है परन्तु वैराग्य के संग विवेक के साधन नहीं दर्शाये। विदित हो कि वैराग्य विवेक का फल है। आत्मा, ईश्वर और प्रकृति के यथार्थ स्वरूप के जानने का नाम ही विवेक है।

मोनियर विलियम्स * ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ ५४६ पर जो लिखा है वह इस प्रकार है इससे वे सिद्ध करते हैं कि सिक्ख लोग हिन्दू ही हैं:—

"मुझे एक बुद्धिमान् पंजाबी सिक्ख मिला और मैंने उससे उसका मत पूछा, उसने कहा कि मैं मूर्त्तिपूजक नहीं हूं, मैं एक ईश्वर को मानता हूं और "जपजी" मेरी प्रार्थना है उसका मैं प्रातःसायं पाठ करता हूं। 'जपजी' पाठ के ६ पृष्ठ छपे हुए हैं और मैं उस सब का पाठ दश मिनिट में कर लेता हूं। वह इस बात के कहने से अपना गौरव दिखाता था कि मैं जो बड़ी जल्दी पाठ कर लेता हूं इसमें बड़ापन है। मैंने उससे पूछा कि तुम्हारा मत और क्या करने को बतलाता है, उसने उत्तर दिया कि मैंने अमृतसर के निकट एक पवित्र बावली की एक यात्रा करली है। ८५ सीढ़ियां उसमें हैं मैंने उतर कर उस पवित्र जलाशय में स्नान किया जब मैं एक पौड़ी (सीढ़ी) चढ़ा और साथ ही बड़ी जल्दी से जपजी का पाठ किया, मैं फिर जलाशय में गया और फिर स्नान किया फिर दूसरी पौड़ी चढ़ा और दूसरी वेर पाठ किया, तब मैं तीसरी वेर फिर नीचे गया फिर ऊपर चढ़ा और तीसरी वेर 'जपजी' पढ़ी और इसी प्रकार ८५ पौड़ियां उतरा और चढ़ा ८५ वेर स्नान किया और ८५ वेर पाठ किया सायंकाल के पांच बजे से लेकर दूसरी प्रातः के ७ बजे तक मैं यह करता रहा और मैंने उस

* "Buddhism" By Sir Monier Willams. P. 546.

समय कुछ नहीं खाया, मुझे १४ घंटे लगे। मैंने पूछा ऐसा करने से तुम्हें क्या फल मिलने की आशा है? उसने कहा मैं आशा करता हूं कि मैंने बहुत पुण्य इकट्ठा कर लिया है जो कि चिरकाल रहेगा"।

इससे आगे उपरोक्त लेख पर आलोचना मोनियर साहब ने इस प्रकार की है:-

"मैं तुम्हें बतलाता हूं कि यह वास्तव में सच्चा हिन्दूपन है"।

सिक्खों की एक शाखा 'नामधारी' कहलाती है जिसको साधारण लोग कूके-सिक्ख भी कहते हैं। नामधारी सिक्ख मांसमदिरा का सर्वथा त्याग करते हैं। वीरता में अन्य सिक्खों से, जो मांस खाते हैं, चार गुणा बढ़कर हैं। यह रामसिंहजी को ग्यारहवां गुरु मानते हैं और जो भेनी ग्राम में वर्त्तमान गुरु है उसको बारहवां गुरु बतलाते हैं। 'ग्रन्थसाहब' की पूजा, परिक्रमा अन्य सिक्खों के सदृश करते और रामसिंहजी आदि को अवतार मानते हैं। श्री नानकजी ने अपनी गद्दी अपने पुत्र श्रीचन्द्जी को नहीं दी थी इसलिये श्रीचन्द्जी ने एक पृथक् शाखा खड़ी करली और अब श्रीचन्द्जी के अनुयायी उदासी सिक्ख कहलाते और सेली टोपी पहनते हैं। वर्त्तमान समय में साधु केशवानन्द उदासी ने अद्भुतगीता नामी पुस्तक संस्कृत में रचकर प्रचलित की है इसमें उसने इस गीता के पाठ करने का माहात्म्य यह लिखा है कि पापी से पापी भी पाठमात्र से पापों से रहित हो जाता है। वैष्णवमत के एक प्रचारक श्री चेतन हुए हैं जो कि सन् १४८५ ई० में उत्पन्न हुए थे। बंगाल और उड़ीसा में इन्होंने वैष्णवमत और उसके साथ जगन्नाथ की पूजा का प्रचार किया। उनके मरने पर चेले उनको विष्णु का अवतार मानने लग गये। भक्ति और विश्वास इन दो बातों का प्रचार करते थे। चेतन पन्थ के उपदेशक बहुधा गृहस्थ होने लगे। उड़ीसा में घर २ लोग चेतनजी की पूजा करने लग गये।

वल्लभस्वामी ने सन् १५२० के लगभग उत्तरीय भारत में राधा और कृष्ण की मूर्त्तियों की पूजा की शिक्षा दी। इस मत के अनुयायी गोकुलिये गोस्वामी कृष्ण को नानारूप में कलोलें करते हुये बतलाते हैं। गोस्वामी लोग प्रायः विद्या नहीं पढ़ते कंठी बांधने, नाम का मंत्र देने, चेले चेलियों से बहुत धन लेते हैं।

वैष्णवमत अथवा कबीरमत की एक और शाखा

शिवदयालसिंहजी खत्री जो सन् १८१८ में उत्पन्न हुए और १८७८ में मरे उन्होंने एकमत "राधास्वामी" के नाम से चलाया। लोगों में यह प्रसिद्ध है कि उसने अपनी स्त्री "राधाबाई" के

नाम से इस मत को चलाया था। "पहिले पहिल यह स्त्रियों को भक्ति मार्ग का उपदेश देते रहे" जैसा कि एक पुस्तक * के पाठ से विदित होता है। फिर १८६१ ई० में यह अपने मत का सब को प्रचार करने लगे। शिवदयालजी के पीछे इनकी गद्दी पर राय शालिग्रामजी कायस्थ बैठे। जिस प्रकार कबीर मत वाले शब्द और सुरत की खोजना करते हैं और कान बन्द कर लेते हैं उसी प्रकार यह लोग भी करते हैं और यही इनका सिद्धान्त है। राधास्वामी को ईश्वर का अवतार नहीं बरन उससे बड़ा मानते हैं।

"कबीर, दूलान, जगजीवन, चरनदास, तुलसी, दादू, दरया, सूरदास, नाभाजी, भीकाजी, इरानीसूफी और मौलाना रूम" के वचनों का संग्रह इनके मत की पुस्तक में, जैसा कि "बर्नसाहब" लिखते हैं, पाया जाता है।

गुरुडम को गोकुलिये गोसाइंयों से कुछ अधिक फैला रक्खा है यहांतक कि अपने मत वालों को जूठन खाना उत्तम बतलाते हैं और गुरु की जूठ खाना प्रत्येक शिष्य के लिये आवश्यक है। वर्त्तमान में ही कई ब्राह्मण अपनी हिंदू बिरादरियों से जूठन खाने के कारण निकाले भी गये। इस जूठन को प्रसादी अथवा सीतप्रसाद भी कहते हैं। पारसल द्वारा एक नगर से दूसरे नगर में गुरु का जूठन भेजा जाता है।

शास्त्रार्थ अथवा संवाद करने से यह लोग अन्य पौराणिक मत वालों के सदृश सर्वदा भागते हैं।

पौराणिक समय की अन्य बातें

पौराणिक समय में मूर्तिपूजा सर्वत्र फैल गई। वे शंकरमत के अनुयायी जोकि मूर्तिपूजा के भारी खंडनकर्त्ता थे वे भी इस के शिकार होगये। "मठाम्नाय" आदि ग्रन्थों के पाठ से विदित होता है कि शारदामठ ने, जो कि शङ्करमत के प्रचार के लिये पश्चिम में बना था, "सिद्धेश्वर देवता, भद्रकाली देवी और गङ्गा गोमती तीर्थ स्वीकार किये"। पूर्व के गोवर्द्धनमठ ने "जगन्नाथ देवता, विमला देवी, महोदधि तीर्थ स्वीकार किये"। उत्तर के जोशीमठ ने "बद्रीनारायण देवता, पुण्यागिरि देवी औ अलखनन्दा नदी तीर्थ स्वीकार किये"। दक्षिण के शृङ्गेरी-मठ ने "आदिवराह देवता, कामाक्षा देवी और तुङ्गभद्रा तीर्थ स्वीकार किये"।

पौराणिक समय में जड़ पदार्थ ही आर्य्यसन्तान के इष्टदेव बन गये और विद्या, ब्रह्मचर्य्य, यम, नियम, धर्म, कर्म के स्थान में जलादि तीर्थ बन गये। ऋषियों की

* Cencus of India 1901 Vol. XVI Part I Report By R. Burn, I. C. S.

संतान अज्ञान में पड़ गई और नाम के ब्राह्मणों ने जन्मजात की महिमा यहां तक बढ़ा दी कि ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होने से ही मनुष्य श्रेष्ठ और उच्च पदवी के अधिकारी माने गये। छूत छात का आडंबर अत्यन्त बढ़ाया गया यहांतक कि एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण के हाथ से खाना निन्दित और भ्रष्ट समझने लगा। बाप से पुत्र को और भाई से भाई को इस छूतछात के कारण घृणा हो गई। मनुष्य का मनुष्य वैरी बनगया। पौराणिक ब्राह्मणों ने छूतछात के कारण आयुर्वेद का पढ़ना बन्द कर दिया और वैद्यों को घृणित दर्शाने के लिये झूठे श्लोक रचकर मनुस्मृति में मिला दिये और इन श्लोकों में वैद्यों को उच्चश्रेणी से निकाल कर नीच श्रेणी में गिना दिया। एक वह दिन था कि सिकन्दर वैद्य ब्राह्मणों को संग ले गया था और अब ब्राह्मणों ने वैद्यों को घृणित मानना आरम्भ कर दिया। वैश्यधर्म का ब्राह्मणों ने ऐसा नाश किया जैसा अग्नि इन्धन का करती है। मनुस्मृति के तीसरे, चौथे और दशवें अध्याय में ऐसे अयुक्त श्लोक रचकर डाल दिये जिससे लोगों को वैश्यधर्म के पालने, धन कमाने, जलयात्रा करने, कलाकौशल में प्रवीण होने और नाना प्रकार व्यवहारों के करने से घृणा लज्जा उत्पन्न होजावे और यही कारण है कि आज दिन हिन्दू लोग भीख मांगना तो उत्तम समझते हैं पर कोई व्यवहार अथवा काम करके पेट भरना पाप समझते हैं। भारतवर्ष के कई नगरों में एक भी हिन्दू जुलाहा (तन्तुवाय) अब दृष्टि नहीं पड़ता। लुहार, तिरखान बहुत कम हिन्दू जाति के मिलते हैं। छूतछात के पुतलों ने व्यवहार नष्ट कर दिये इसी कारण मनुस्मृति के लिखित व्यवहार सम्बन्धी श्लोकों में बहुत कुछ असार मिला दिया गया:—

मनु० अध्याय ३ श्लोक, १५२, १५५, १६०, १६२, १६३, १६६। अ० ४। श्लोक ८२, २१०, २१२, २१५, २१६, २१६। अ० १० श्लोक ८३॥

इन पौराणिक ब्राह्मणों ने दुकानदार, गन्धर्व, पशुओं के सधानेवाले, शस्त्रविद्या के शिक्षक, मकान बनानेवाले, तैल निकालने वाले, बढ़ई, सुनार, लोहार, कुम्हार, शस्त्रों के बनानेवाले, ग्वाले, कृषिकार, जुलाहे आदि वैश्यों को घृणित और नीच दर्शाना आरम्भ किया और ऐसा करने से भारत में दरिद्रता, दीनता का ऐसा बीज बोदिया कि आज भारतवर्ष जैसा कि महाशय दादाभाई नौरोजी ने सिद्धकर दिखलाया है, यूरोप आदि सभ्य देशों की अपेक्षा अत्यन्त निर्धन देश है। देश का धन तभी बढ़ सकता है— (१) जब स्वदेशी लोग स्वदेशी वस्तुओं को स्वयं उपयोग में लावें, (२) कई प्रकार के स्वदेशी पदार्थों का विक्रय अन्य देशों में जाकर करें। पौराणिक समय के ब्राह्मणों ने

प्रथम बात को नाश करने के लिये वैश्यकर्मों की, जैसा ऊपर लिख चुके हैं, निन्दा करने के लिये मनु में खोट मिला दिया और दूसरे कर्म का विनाश करने के लिये विदेशों में जाना और स्वच्छ निरामिषभोजी लोगों से भी खाना वर्जित करदिया। नौका, पोत (जहाज़) पर चढ़ाना और जलयात्रा करना पापकर्म बतला दिया। आर्य्यजाति में जो बुद्धिहीन लोग थे उन्होंने इन ब्राह्मणों की प्रेरणा से व्यवहार से आजीविका करनी आरम्भ की और बुद्धिमान् लोग गंगा में डुबकी लगाने लगे। जब इस तरह से अनाड़ी लोग ही व्यवहार में रत हुए तो कलाकौशल कौन बनावे ? प्राचीन आर्य कलाकौशल के धनी थे उनकी सन्तान लोहे को शनि देवता का धन समझ कर छूना भी पाप समझने लगी इससे भयङ्कर और दृश्य क्या हो सकता है ?

वैदिक समय के सर्व ब्राह्मण लोग यजुर्वेद के सोलहवें अध्याय के अनुसार वैश्य वर्ण तथा धन ऐश्वर्य की सदैव वृद्धि करते थे। इस अध्याय में कुम्हार, लोहार, जुलाहे आदि सम्पूर्ण वैश्यों के कर्म्मों की महिमा दर्शाई गई है, यथाः—

"नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्यः कर्म्मारेभ्यश्च वो नमो०" * (बढ़ाई, रथकार, कुलालादि को अन्न से युक्त रक्खो)

पौराणिक समय में जन्मजाति और छूतछात के कारण इसके विपरीत आचरण होगया। यही नहीं कि जन्मजाति के अभिमान से निर्धनता का बीज बोया गया हो, प्रत्युत मेधावी पुरुषों को, जो कि ब्राह्मण से भिन्न वर्ण में उत्पन्न हों, वैदिक शिक्षा देना अथवा संस्कृत पढ़ाना ज़रूरी नहीं समझा जाता था। आजतक भी ब्राह्मण लोग व्याकरण,रागविद्या,वैदिकविद्या क्षत्रिय आदि लोगों को नहीं पढ़ाते। इसलिये देश में जहां धन की दरिद्रता फैली वहां संग २ ही विद्या की दरिद्रता भी फैल गई। ब्रह्मचर्य्य के नष्ट करने के लिये सर्वत्र बालविवाह के उपदेश होने और बालविधवाओं को पुनर्विवाह अथवा नियोग करने से रोकते हुए भ्रूणहत्या देश में फैलादी। धनी विधवाओं को तीर्थयात्रा की चाट लगाई अथवा सती होने का माहात्म्य सुनाया। साधुओं ने गेरुए वस्त्र धारण करने में ही सिद्धि मानकर लोगों से दान मांगना कर्त्तव्य बनालिया। मुर्दों के श्राद्ध की लीला खूब फैलाई और नरक स्वर्ग का ठेका ब्राह्मणों ने लेलिया। कहां वैदिक समय के अश्वपति और जनक से चक्रवर्त्ती राजे जो कि क्षात्र-

* आज यूरुप में सामाजिकविवाद यही होरहा है कि वैश्य और शूद्रों को भूख से पीड़ित न होने दो अर्थात् इनको अन्न से युक्त रक्खो और यही वेद का आशय है।

धर्म पालते हुए ब्राह्मणों को ब्रह्मविद्या के उपदेश देने को समर्थ हों और कहां पौराणिक समय के पृथ्वीराजसे राजे जो रात दिन विषयासक्त होने के कारण देश की हानि करावें ? विक्रमादित्य का रक्त राजपूत क्षत्रियों में कभी २ प्रकट होकर श्रीराणा प्रताप से वीरों और पद्मिनी, दुर्गावती सी वीर देवियों के दर्शन कराता रहा। जब जाति के चारों वर्ण धर्म, कर्म से रहित हों तो मुट्ठीभर वीर क्या कर सकते थे ? दाराशिकोह ने उपनिषदों के अनुवाद कराये परन्तु कभी इन ब्राह्मणों ने किसी अन्य भाषा में शास्त्रीय सिद्धान्त का आशय दर्शाकर परोपकार न किया। अन्दर और बाहर से पीड़ित भारत रसातल को जारहा था कि शिवाजी, गोविन्दसिंहजी, बन्दा वैरागी आदि देशहितैषियों ने वीरता को प्रकट करते हुए यवनों के अत्याचार को रोका। इसके पश्चात् फिर भारतसंतान परस्पर के द्वेष और सामाजिक मलीनता के कारण दुःख से पीड़ित होगई यहांतक कि सन् १८५७ में राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरियाजी ने अपने उत्तम राज्यशासन से सर्व भारतप्रजा को शान्ति प्रदान की। इस उत्तम शान्ति के राज्य में जैनी, पौराणिक सब अपने अपने मतों के प्रचार में शान्तिपूर्वक प्रवृत्त हुए। ईसाई पादरियों और पश्चिमी 'सायंस' (पदार्थविद्या) की शिक्षा ने हिन्दुओं को सभ्यतापूर्वक पौराणिक मत से गिराना आरम्भ किया। पादरी 'डफ़' के मीठे परन्तु भ्रान्त उपदेशों से बंगाल के शिरोमणि ब्राह्मण ईसाई मत में प्रविष्ट हुए। देहली के प्रोफ़ेसर रामचन्द्र सरीखे ईसाई होगये और पौराणिक ब्राह्मणों को ललकारते रहे कि यदि तुम में बल है तो हमें बचाओ परन्तु पौराणिक क्या कर सकते थे ?, इस समय में जब कि पौराणिक मत को तिलांजलि देकर हिन्दू विद्वान् प्रसन्नतापूर्वक ईसाई हो रहे थे तो राजा राममोहनराय ने बङ्गाल में एक युक्ति ब्रह्मसमाज के रचने की निकाली।

ब्रह्मसमाज और उसको वेदार्थ की कुंजी का न मिलना

सन् १८२८ ई० अथवा १८३० में राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की नींव डाली और एक ईश्वर तथा वेद का मानना मुख्य नियम ठहराया। राजा राममोहनराय यज्ञोपवीत धारण करते थे। इसके २० वर्ष पीछे ब्राह्मो लोगों ने वेदार्थ जानने के लिये दो चार ब्राह्मण जाति के पुरुष बनारस में भेजे परन्तु काशी में वेदों का पढ़ना पढ़ाना अनेक वर्षों से लोप होचुका था। पुरुषसूक्त आदि का पाठमात्र करनेवाले भी गिनती के पण्डित थे, मनुस्मृति आदि वैदिक ग्रन्थों को कोई हाथ तक नहीं लगाता था। वेद उनके लिये एक माननीय शब्द था जिसके अर्थ वह न तो स्वयं जानते थे और न किसी को जनाने के योग्य थे। सायण भाष्य के कहीं पर इन पण्डितों ने जो ब्राह्मो

लोगों ने भेजे थे दर्शन करलिये होंगे और सायणकृत भाष्य से कुछ वेदार्थ जानकर सुनाए होंगे। कहते हैं कि ब्राह्मो लोगों की वेदार्थ पर श्रद्धा न हुई और हो भी क्योंकर सकती, क्योंकि सायण ने बुद्धिपूर्वक भाष्य नहीं किया है भूमिका में तो सायण ने लिख दिया कि वेदों में इतिहास नहीं होसकते परन्तु ~~प्रत्येक शब्द के अर्थ यौगिक वा योगरूढ़ि करना सायण के सामर्थ्य से बाहर था~~। तत्पश्चात् ब्राह्मो ने वेदार्थ के आन्दोलन करने का यत्न सर्वथा छोड़ दिया।

शंकर और तंत्रमत से उत्पन्न हुए इसलाम का भारत में प्रवेश

आन्दोलन करने से पता लगता है कि मुसलमान मत, जिसने पौराणिक समय में भारत में विकाश पाया और जिसके मुख्य ५ यम निम्नलिखित हैं, शङ्कर तथा तन्त्रमत की एक विकृत शाखा थी।

(१) कलमा.
(२) नमाज़.
(३) रोज़ा.
(४) हज.
(५) ज़कात.

(१) प्रथम कलमा इसका पूर्वार्द्ध अर्थात् ला इलाहो इल लिल्ला यह "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" का ही अनुवाद है। शङ्कर के कलमा (महावाक्य) में मनुष्य-पूजा की गन्ध नहीं है। परन्तु अरब के कलमा में शङ्कर के महावाक्य के साथ "महम्मदुल रसूलिल्ला" यह वचन मोहम्मद साहब ने अपने यश वा कीर्त्ति के लिये बढ़ा दिये और साथ ही क़ुरान में लिखा है कि प्रत्येक देश वा पूर्व जातियों के यहां रसूल (धर्म-उपदेशक) ईश्वर ने भेजे हैं।

फिर अपने नाम का महावाक्य बनाना ठीक न था, अस्तु पीछे मुसलमान मत ऐसा होगया कि कोई एक ब्रह्म का माननेवाला क्यों न हो परन्तु जबतक वह मोहम्मद को धर्मोपदेशक न मानले तबतक मुसलमान आस्तिक नहीं समझते। सच्च तो यह है कि अब ईश्वर की तौहीद के समान रसूल साहिब की तौहीद धर्म का मुख्य अङ्ग होगई है। कबीर आदि महात्माओं ने आधे कलमे को माना हुआ था परन्तु आधा नहीं।

(२) नमाज़—संस्कृत के शब्द नमस् का अपभ्रंश है। क़ुरान की सूरत फातह में:—

"अग्ने नय सुपथा........"

इस यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के १६ वें मन्त्र का अक्षरार्थ अनुवाद है। सूरत बकर में जो ﺍﻟﻢ (अलम) आता है वह भारतभूषण मु० इन्द्रमणि के लेखानुसार ओ३म् का ही अनुवाद है। आर्य्यों की दो काल सन्ध्या के स्थान में ५ वेर नमाज़ नियत कीगई।

(३) मनु के चांद्रायण व्रत को बिगाड़ कर एक मास के रोज़े बनाये गये।

(४) जैनियों के तीर्थयात्रा के समान मक्का के मन्दिर की यात्रा बनाई गई।

(५) ज़कात दान का नाम है परन्तु इसके अन्तर्गत पशुबध करके पुण्यभागी होना अरबी बामियों से लिया गया।

क़ुरान में इस विषय में परस्पर विरोध है। जहां क़ुरबानी करने को लिखा है वहां यह भी सत्य स्वीकार किया है कि ईश्वर को नहीं पहुंचता तुम्हारा मांस और लोहू, फिर इसके विरुद्ध क़ुरबानी भी करते हैं। यह मुसलमानों के ५ यम समझ लीजिये। शौच के नियम अबतक इनमें नहीं हैं। ताज़ियापरस्ती, क़बरपरस्ती, पीर-परस्ती, जिन भूत का मानना, स्त्रियों को बुरके में रखना, शौच विरोधता आदि कई कुरीतियां अब भारतीय मुसलमानों में पाई जाती हैं। चूंकि मुसलमानों ने कई प्रकार के राज्यसम्बन्धी अत्याचार किये इसलिये भारतसंतान इनको घृणित अस्पर्शनीय समझ कर वर्ताव करती रही। अब परस्पर का द्वेष विद्यावृद्धि से दिनोदिन दोनों ओर से क्षय पारहा है। हिन्दुओं की छूतछात का लाभ उठाकर हज़ारों हिन्दू मनुष्य यवनों ने अपनी जाति में मिला लिये। कई मुसलमान कहते हैं कि कलमे में मोहम्मद साहिब का नाम इसलिये लिया जाना चाहिये कि वह धर्मगुरु वा धर्म-उपदेशक थे और मनुष्य को धर्मगुरु का मान करना चाहिये। हम कहते हैं कि क्या मनुष्य को केवल धर्मगुरु का ही मान करना चाहिये गुरु के समान वा उससे अधिक माता और पिता का मान क्या न करना चाहिये? जिस प्रकार सब के माता पिता एक नहीं हो सकते, उसी प्रकार सब के विद्यादाता, अध्यापक वा धर्मगुरु भी एक नहीं होसकते। इसलिये फिर सब को कहना कि तुम एक ही धर्मगुरु का मान करो ठीक नहीं। इस बात को अनुभव करते हुये ऋषियों ने कहा है कि प्रत्येक मनुष्य परमदेव तो परमेश्वर को माने परन्तु देवस्थानी माता, पिता, अध्यापक, अतिथि आदि को समझे। और इसी वास्ते सत्य शास्त्रों में यह नहीं कहा कि सब मनुष्य किसी एक ही माता पिता वा गुरु का मान करें प्रत्युत प्रत्येक मनुष्य अपनी

माता, अपने पिता, अपने गुरु आदि का मान करें। यदि मान भी लिया जावे कि मोहम्मदसाहब गुरु पदवी के योग्य थे तो वह अबूबकर, उमर, अली, उसमान चार वा अनेक मनुष्यों के गुरु होसकते हैं जिनको उन्होंने धर्म-उपदेश दिया। जिन्होंने उनको कभी देखा नहीं, जिनके पास वह कभी गये नहीं उनके वह कैसे गुरु हो सकते हैं। आर्य्यों में क्या अच्छी रीति है कि प्रत्येक बालक का धर्मगुरु उसका यज्ञोपवीत-दाता अर्थात् गायत्रीमन्त्र का उपदेशक ही होता है। जबतक मोहम्मदसाहब का नाम कलमें में रहेगा तबतक कलमा पूरी तौहीद का बोधक नहीं बन सकेगा।

मुसलमानों से हिन्दुओं ने स्त्रियों को घूंघट निकलवाने तथा पर्दे में रखने की हानिकारक रीति ग्रहण की। मुसलमानों के हिन्द में आने के पूर्व हिन्दू स्त्रियां दक्षिण देश की स्त्रियों के समान सभ्य, पवित्र तथा विना घूंघट वा बुरके के रहती थीं। बाल-विवाह भी हिन्दुओं ने मुसलमानों के भय से जारी करके अपना सर्वस्व नाश कर लिया।

बुद्ध तथा तंत्र मंत्र से उत्पन्न हुए ईसाई पंथ का भारतमें प्रवेश

ईस्ट इण्डिया कंपनी के राज्य में सैकड़ों ईसाई भारत में धर्म-प्रचार के लिये आये। बाइबल मुख्यकर * बुद्ध तथा तंत्रमत के उपदेश से पूरित है। "अपने समान अपने पड़ोसी से प्रेम करो" यह प्रेम का महावाक्य बुद्ध का था। क़ुरबानी करना तंत्रमत का अंश है। अशोक आदि के समय में जिस प्रकार बुद्ध उपदेशक रोगी, मरते हुये मनुष्यों, पतित स्त्रियों को धर्मकथा सुनाकर बौद्ध बनाते थे उसी प्रकार सर्व इतिहासकर्त्ता मानते हैं कि ईसाइयों ने प्रचारविधि उनसे सीखी और Medical mission तो बिल्कुल ही बौद्ध उपदेशकों का अनुकरण है। अशोक राजा ने अनुभव करलिया था कि उपदेशक ही संसार की काया पलट सकते हैं। यही बात ईसाई मानते हैं। इसलिये तन मन से धर्मप्रचार करना ईसाइयों को ही आता है। शास्त्रार्थ वा तर्क से दूर भागते हैं। पतित नीच लोगों को अपने मत में अब भी लिये चले जारहे हैं।

---

* A history of pedagogy by Mani Shanker Ratanjee Bhatta B.A. (Education society's Steam Press Bombay 1895)

"अशोक के समय में बौद्ध भिक्षुक, पेलेस्टाइन तथा इजिप्ट में उपदेश करने गया था यह बात शिलालेख पर से प्रकट होती है और इसने अपने धर्म जैसा एक धर्म वहां प्रचलित किया। इस बात के मानने में सबूत है कि इस धर्म का रहस्य जीसस क्राइस्ट ने ग्रहण किया। मिस्टर लिली एक लेखक ऐसी विलक्षण हकीकत प्रसिद्ध करता है कि कोलंबस से १०० वर्ष पूर्व बौद्ध उपदेशक अमेरिका में गया था" (P. 19)

यद्यपि बाइबल में "I A M" (इ, अ, म) शब्द अउम के बोधक उत्पत्ति प्रकरण तृ० समु० १३, १४ वीं आयत में आते हैं तो भी ईसाई ब्रह्मोपासना के स्थान में ईसा-उपासना पर अधिक ज़ोर देते हैं। यह ठीक है कि ईसा बालब्रह्मचारी और भला पुरुष था परन्तु महान् पंडित न था। ईसाइयों ने उसको वैसा ही तरन तारन मानलिया, जैसा कि जैनी वा बौद्ध तीर्थंकरों को मानते हैं।

ईसाइयों ने अपनी संख्या बढ़ाने के लिये दुष्कालादि में हज़ारों हिन्दू स्त्री, पुरुष, बूढ़े, बच्चे अपनी समाज में ले लिये। गुजरात काठियावाड़ में ईसाई विश्वासी के नाम से प्रसिद्ध हैं। पौराणिक समय के अन्धकार में इनकी खूब दाल गलती रही। जब से तर्कऋषि ने भारत में प्रवेश किया है तब से सुबोध हिन्दू इनके मत में नहीं आते। विश्वास ही इनका मूलमत है, परन्तु ज्ञानरहित विश्वास कभी आत्मिक शान्ति का कारण नहीं हो सकता।

सामाजिक उन्नति के लिये बाबू केशवचंद्र ने विवाह सम्बन्धी एक प्रस्ताव सरकार से स्वीकृत करादिया, परन्तु पूर्ण आत्मिक बल न होने के कारण स्वयं बाबू केशव ने अपनी पुत्री के विवाह पर अपने ही प्रस्तावित नियम का उल्लंघन किया जिससे समस्त भारतवर्ष में ब्राह्मनायक के गिर जाने का समाचार फैलगया और भारतवर्षीय लोग ब्राह्मसमाज से सामाजिक संशोधन की आशा करनी सर्वदा के लिये छोड़ बैठे। केशव बाबू के कई अनुयायी उसके विषय में कहते हैं कि वह स्वयं अवतार * बनना चाहता था। स्वदेशियों में जब सन्मान विशेष न रहा तो केशव बाबू ने ईसाइयों से अपनी प्रशंसा करानी चाही और इङ्गलैण्ड में जाकर ईसा की वह महिमा गाई कि विलायत के रहनेवाले उसको ईसाई समझने लगे। एक † पुस्तक में मेक्समयुलर ने लिखा है कि जब बाबू केशव इङ्गलैण्ड में आकर मुझ से मिला तो मैंने कहा कि बाबू तुम तो ईसाई हो, क्यों नहीं प्रकट रीति पर इस बात को स्वीकार करते ?, केशवचन्द्र ने उत्तर दिया कि साहब क्या डर है यदि यह बात कुछ वर्ष पीछे लोगों को विदित होजावे। ब्राह्मसमाज का मत सर्वथा दार्शनिक नहीं है। मूर्त्तिपूजा, छूतछात और जातपांत का उत्तम खंडन करता है। स्त्रीशिक्षा और सामाजिक सुधार (Social Reform) दिल से चाहता है। वेद शास्त्र के प्रचार में रुचि नहीं रखते हैं।

---

* Census of India 1901, Vol. XVI, Chap. III.

† Auld Lang Syne or my Indian Friends, By F. Max Muller.

आदित्य ब्रह्मचारी ऋषि दयानन्द का आगमन

जिस समय पुराणों के अन्धकार के घनघोर बादल भारत में छा रहे थे। जिस समय पत्थरों को परमेश्वर मानकर सब लोग पूजा कर रहे थे। जिस समय नदियों में स्नान करने से मुक्ति मान रहे थे। जिस समय बालविधवाओं को जातिदण्ड का भय देकर पुनर्विवाह वा नियोग से रोका जाता था। जिस समय स्त्री और शूद्र को पशुवत् समझ रहे थे। जिस समय मुसलमान और ईसाई वेदों की निन्दा करते हुये आर्य्यसन्तान को अपने में मिलाने के लिये बाजे बजा रहे थे। जिस समय कि ब्राह्मसमाज ईसाईमत से हिन्दुओं को बचाने के लिये जन्म धारण कर सफल नहीं हो सका था। जिस समय कि चार वर्णाश्रम की मर्य्यादा लुप्त हो रही थी। उस समय जगत्पिता के नियमानुसार ५००० वर्ष के पीछे भारतदेश में एक ऋषि को उत्पन्न होकर पृथिवी को फिर वैदिक ज्योति दिखानी थी। काठियावाड़ के मोरवी राज्य के टंकारा ग्राम में ब्राह्मणकुल में एक बालक ने जन्म लिया। यह बालक जब बड़ा हुआ तो उसके संस्कृत हृदय पर उसकी भगिनी तथा चचा की मृत्यु के दृश्यों ने बड़ा प्रभाव डाला। "मृत्यु क्या है और मैं उससे किस प्रकार बच सकता हूं?" यह प्रश्न इस विचित्र बालक के मन में बस गया। इसी प्रश्न का उत्तर पाने के लिये यह युवावस्था को प्राप्त हुआ बालक, घर को त्यागता है। विवाह पर लात मारता हुआ जंगलों में योगियों के पास जाकर अभ्यास करता है। किस प्रकार अमृत के लिये यह पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करके योगसम्पन्न होता हुआ ऋषि विरजानन्द का मथुरा में शिष्य बनकर वेद के यौगिक अर्थ करने की शैली उनसे प्राप्त करके वेद के ज्ञान में आनन्द लेता हुआ परोपकार के लिये उद्यत होता है? किस प्रकार आदित्य ब्रह्मचारी, ब्रह्मा पदवी का अधिकारी, पूर्ण योगी ऋषिश्रेणी का आत्मा दयानन्द नामी पृथिवी पर पुनः वैदिक समय को लाने के लिये उपदेशक बनकर भ्रमण करता हुआ दिग्विजय को प्राप्त होता है?, किस प्रकार कानपुर में शास्त्रार्थ करने से सत्य की जय कराते हुए मूर्त्तिपूजकों के हाथों से नदी में मूर्त्तियां फिंकवाता है?, काशी आदि अनेक स्थलों पर पौराणिक ब्राह्मणों के साथ शास्त्रार्थ करता हुआ, किस प्रकार पुराणों के कोट उड़ाता है? बङ्गाल, पश्चिमोत्तरदेश, बम्बई, पञ्जाब और राजस्थान की यात्रा करते हुए वाममार्ग, जैनमत, नास्तिकमत, मायावाद, पौराणिकमत, यवनमत, ईसाईमत आदि अवैदिक मतों के दोषों का निर्भयता से खण्डन करते हुए भारत की काया पलटाने के लिये किस प्रकार आर्य्यसमाजें स्थापन करता है? जोधपुर में निर्भयता से सत्य उप-

देश करते हुए किस प्रकार विष खिलाये जाने पर अपूर्व धैर्य्य धारण किये हुए अंत को अजमेर में शान्तिपूर्वक योग की रीति से प्राण त्यागते हुए एक पञ्जाबी महान् विद्वान् नास्तिक को बिन बोले आस्तिक बनाता हुआ मुक्ति को पाता है। पूर्ण ऋषि होने पर अपने पीछे कोई गद्दी नहीं छोड़ता। नहीं किसी पुरुष विशेष को अपना प्रतिनिधि बनाता है, किन्तु आर्य्यसमाज को ही अपना प्रतिनिधि बना कर किस प्रकार उसको वेदप्रचार का साधन बनागया यह और इन सरीखे अनेक प्रश्नों के उत्तर विस्तारपूर्वक इस पुस्तक के उत्तरार्द्ध में मिलेंगे। जिस उत्तरार्द्ध में कि इस महान् ऋषि दयानन्द का जीवनचरित्र वर्णित है और जिस उत्तरार्द्ध का यह लेख उपोद्घात है।

ऋषि अथवा आप्त शब्द की मीमांसा

(१) गौतम और वात्स्यायन ऋषियों का सिद्धान्त इस विषय में यह है:—

"आप्तोपदेशः शब्दः" (न्यायदर्शन सूत्र ७)

इस पर वात्स्यायनजी ने इस प्रकार भाष्य किया है:—

"आप्तः खलु साक्षात् कृतधर्मा यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्त उपदेष्टा साक्षात्करणमर्थस्याप्तिस्तया प्रवर्त्तत इत्याप्तः ऋष्यार्य्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम्। तथा च सर्वेषां व्यवहाराः प्रवर्त्तन्त इति एवमेभिः प्रमाणैर्देवमनुष्यतिरश्चां व्यवहाराः प्रकल्पन्ते नातोऽन्यथेति ॥ ७ ॥

भावार्थः—इसमें दर्शाया गया है कि आप्त वह मनुष्य होसकता है जिसने निश्चय करके अर्थात् भ्रांतिरहित होकर धर्म का साक्षात् (प्रत्यक्ष) करलिया हो। और जो उस साक्षात् किये हुए धर्म का उपदेश करे इत्यादि।

इसमें जानने योग्य बात यह है कि आप्त लोग वही होते हैं जिन्होंने भ्रान्तिरहित होकर धर्म का साक्षात्कार किया हो अर्थात् धर्म को प्रत्यक्ष करलिया हो। यदि आंखों से धर्म प्रत्यक्ष होता तो प्रत्येक पुरुष आप्त ही था किन्तु नहीं, शास्त्र का अभिप्राय यह है कि जिसने आत्मा के शक्तिरूप नेत्रों से धर्म प्रत्यक्ष करलिया हो। प्रश्न होता है कि जिन्होंने ज्ञाननेत्रों से धर्म प्रत्यक्ष करलिया है उनका ज्ञान भ्रान्तियुक्त होता है अथवा निर्भ्रान्त। शास्त्र उत्तर देता है कि निर्भ्रान्त होता है क्योंकि

शास्त्रोक्त प्रत्यक्ष ज्ञान में भ्रान्ति नहीं होती, इसलिये जब कहा कि प्रत्यक्ष (साक्षात्) होता है तो इसके अर्थ यह हैं कि उनका ज्ञान निर्भ्रान्त होता है। इसलिये ऋषि अथवा आप्त वही कहलाता है जो योगसाधनों से समाधिस्थ होकर निर्भ्रान्त ज्ञान को प्राप्त होता है।

(२) जैमिनि और व्यास ऋषियों का सिद्धान्त भी हमारे उक्त लेख को पुष्ट करता है, यथा:—

'सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ १ ॥ ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ २ ॥ चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ३ ॥ एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥ ४ ॥ शारीरिक सूत्र"।

अर्थ:—"जबतक जीव अपने स्वकीय शुद्ध स्वरूप को प्राप्त सब मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता, तबतक योग से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामी ब्रह्म को प्राप्त होकर आनन्द में स्थित नहीं होसकता ॥ १ ॥ इसी प्रकार जब जब पाप आदि रहित ऐश्वर्ययुक्त योगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है ऐसा जैमिनि आचार्य्य का मत है ॥ २ ॥ जब अविद्यादि दोषों से छूट शुद्ध चेतनमात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है तब ही ब्रह्मस्वरूप के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य्य और **शुद्ध विज्ञान** को जीते ही जीवन्मुक्त होता है तब अपने निर्मल पूर्व स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनिजी का मत है" ॥ ४ ॥

भावार्थ:—इससे पाया गया कि जीव स्वभाव से शुद्ध है जब प्रकृति का अधर्मपूर्वक सम्बन्ध करता है तब भ्रान्त अथवा अशुद्ध होजाता है जब योग द्वारा ब्रह्म के साथ सम्बन्ध करता है तब फिर **शुद्ध विज्ञान** को अविद्यादि दोषों से रहित होने के कारण पाता है। शुद्ध विज्ञान का दूसरा नाम निर्भ्रान्त ज्ञान है इसलिये सिद्ध हुआ कि योगी ही ऋषि होता है और ऋषि निर्भ्रान्त रीति से सर्व विद्याओं के सिद्धान्तों अथवा चारों वेदों को जान सकता है इत्यादि। जो लोग जीव को स्वभाव अथवा स्वरूप से भ्रांतियुक्त वा अशुद्ध मानते हैं जैसा कि ईसाई लोग, उनको जानना चाहिये कि यदि यह स्वभाव से ही ऐसा है तो फिर कभी भी भ्रान्तिरहित नहीं होसकेगा, उनके लिये विद्यादि पढ़ना व्यर्थ ही है। जो मानें कि किसी निमित्त से भ्रान्ति आजाती

है तो उस निमित्त के दूर करने से भ्रान्ति वा अज्ञान के दूर होने से आप आत्मा समाधि अवस्था में निर्भ्रान्त होसकता है।

(३) यही नहीं कि योगी समाधि अवस्था में जिस विद्या को निर्भ्रान्त रीति से जानना चाहे जान सकता है प्रत्युत योगी समाधिदशा में ब्रह्म को भी साक्षात् (प्रत्यक्ष) जान सकता है और ब्रह्म के विषय में योगी का ज्ञान इस दशा में निर्भ्रान्त होता है। सत्यार्थप्रकाश के प्रथम पृष्ठ पर ही उपनिषद् का वचन लिखा हुआ है जिसका आशय यह है कि योगी के लिये ब्रह्म प्रत्यक्ष होता है अर्थात् योगी ब्रह्म को निर्भ्रान्त रीति से जान सकता है। सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार चार ज्ञान विज्ञान के साधन लिखे हैं। साक्षात्कार आदि के विषय में ऋषि दयानन्द का लेख इस प्रकार है:—

"साक्षात्कार अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप गुण और स्वभाव हो वैसा याथातथ्य जान लेना"।

"निदिध्यासन अर्थात् जब सुनने और मनन करने से निःसंदेह होजाय तब समाधिस्थ होकर उस बात को देखना समझना कि वह जैसा सुना था विचारा था वैसा ही है वा नहीं, ध्यानयोग से देखना"। (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २४४)

"धन्य वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं जानकर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं"। (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २२२ अष्टम समु०)

"धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थित हुए तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मंत्रों के अर्थ जनाये"। (सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमु० पृष्ठ २०४)

निरुक्तकार ने "ऋषयो मंत्रदृष्टय:" लिखा है जिसका अर्थ यह है कि ऋषि लोग मन्त्रों के अर्थों को ठीक २ अर्थात् निर्भ्रान्त जाननेवाले होते हैं।

(४) मुण्डक उपनिषद् में भी इस विषय में ऐसा लिखा है कि:—

"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे"।

इस वाक्य से यही सिद्ध होता है कि ईश्वर की प्राप्ति पर योगी के सर्व संशय नष्ट होजाते हैं, संशयों का ही नाम भ्रम है। जब सब संशय नष्ट होगये तो योगी समाधिदशा में निर्भ्रान्त होगया।

इसी मुण्डक उपनिषद् में पहिले प्रश्न उठाया गया है कि वह कौन पदार्थ है जिस एक के जानने से शेष सब जाना जाता है। उपनिषद्कर्त्ता ने उत्तर दिया है कि वह ब्रह्म है जिस एक के जान लेने पर योगी अन्य सब कुछ जान लेता है।

ब्रह्मा और वेदव्यास शब्दों वा उपपदों के अर्थ भी प्रकट करते हैं कि जो चारों वेदों को पूर्णता से जाने वह ब्रह्मा वा व्यास है। भ्रान्ति से वेद जाननेवाले का ऐसा नाम नहीं हो सकता।

"व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः" । (योगशास्त्र)

इस वाक्य में योग के नव विघ्न गिनाये हैं उनमें एक विघ्न भ्रान्तिदर्शन है। भ्रान्तिदर्शन के अर्थ व्यासजी भाष्य में विपर्य्यय ज्ञान (उल्टे ज्ञान) के करते हैं। जब पुरुष भ्रान्तिदर्शन से रहित होजाता है तब ही वह योगी कहलाता है। योगी को निर्भ्रान्त वा यथार्थ दर्शन होता है।

(४) इस प्रकार के अनेक प्रमाण शास्त्रों से दिये जासकते हैं जिनसे एक जिज्ञासु के लिये यह निश्चय करना कुछ कठिन नहीं है कि योगी समाधि अवस्था में जिस २ विषय को जानना चाहे निर्भ्रान्त जान सकता है। प्रत्येक विद्वान् ऋषि नहीं है इसलिये यह अवस्था विद्वान् अभ्यासी योगियों की ही होसकती है। योगी कदापि किसी दशा में ईश्वर-अवतार नहीं होते। वह ईश्वर के किसी नियम को तोड़ नहीं सकते। वह करामातें नहीं करते। स्वामी दयानन्द ऋषि थे परन्तु उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि मैं मुहम्मद के सदृश "खतमुलमुरसलीन" हूं। नहीं परन्तु उन्होंने कहा कि:—

"मुझ से अनेक उपदेशक इस देश में उत्पन्न हों"।

सर्व ऋषि सदैव सब विद्यार्थियों को यह उपदेश देते आये हैं और इसको ही स्वामी दयानन्दजी ने सत्यार्थप्रकाश के प्रथम तथा द्वितीय समुल्लासों में लिखा है, अर्थात्:—

"यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि । यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि" ।

इसका अभिप्राय यह है कि सर्व मनुष्यों को ऋषि आदि वृद्धों के उन आचरणों तथा कर्मों को, जो धर्मयुक्त हों, ग्रहण करना चाहिये । अधर्मयुक्त कर्मों को नहीं क्योंकि यह नियम नहीं कि ऋषि जन्म से ही जीवन्मुक्त हो । ऋषि लोग सदैव से शिक्षा देते आये हैं कि किसी के उपदेश को विना परीक्षा के मत मानो । तर्क वा बुद्धि तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विचार कर उपदेश को धारण करो । इसलिये ऋषि लोगों ने कभी मनुष्यपूजा की शिक्षा नहीं दी और नहीं अपने चरण पुजवाये । दयानन्द, मनु, गौतम, व्यासादि समान ऋषिश्रेणी के पुरुष थे । जिस प्रकार ये आप्त थे उसी प्रकार दयानन्द आप्त था । ऋषि दयानन्द वेदों के सर्वविद्यामय मूलरूपी सिद्धान्तों को योगदृष्टि से निर्भ्रान्त जानते थे जैसा कि सर्व ऋषिगण जानते आये हैं और आगे जानेंगे भी ।

ऋषि लोग सत्य की शिक्षा देते हैं

ऋषि लोगों का कोई मन्तव्य विना सत्य के नहीं होता सत्य के वे ठेकेदार नहीं होते किन्तु प्रचारक होते हैं । वे अपने किसी निज के सिद्धान्त की शिक्षा नहीं देते परन्तु सत्य की जो सब का सिद्धान्त होने योग्य है । इसीलिये जिन सिद्धान्तों की ऋषि दयानन्दजी ने शिक्षा दी उनको कोई बुद्धिमान् उनके निज सिद्धान्त नहीं कह सकता, परन्तु सत्य होने के कारण वे सब के सिद्धान्त हैं । ऋषि दयानन्दजी का कोई सिद्धान्त निज का वा पृथक् न था उनके और हम सब के एक ही सत्य सिद्धान्त हैं । उन्होंने इस विषय पर ऐसा लिखा है कि:—

"सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न हो सके, यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जाने वा माने उसको स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता । अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं मैं अपना मन्तव्य

उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सब को एकसा मानने योग्य है, मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है"। (सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ६३५)

जो लोग मानते अथवा कहते हैं कि आर्य्यसमाज ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों को अपना सिद्धान्त मान रहा है वह भ्रम में पड़े हुए हैं। आर्य्यसमाज अपने नियमानुसार सत्य को सिद्धान्त मान रहा है और सत्य ऋषि दयानन्द अथवा किसी अन्य ऋषि का दायभाग नहीं है। सच तो यह है जैसा कि ऊपर के उद्धृत लेख से विदित होता है कि ऋषि दयानन्द को अपना वा निज का कोई भी सिद्धान्त न था। वे सत्य को मानते थे जिसको कि वेदों में ईश्वर ने प्रतिपादन किया है और जिसको ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक सर्व ऋषिगण मानते आये अथवा यह कहो कि ऋषि दयानन्द केवल सत्य के माननेवाले थे और सत्य तीन काल में एकरस रहता है और सब के मानने योग्य है। दो और दो मिलके चार होते हैं। आदि सृष्टि से आजतक सब विद्वान् इसको ऐसा ही मानते आये हैं और मानेंगे भी, यह सत्य सिद्धान्त है। सत्य किसी पुरुष का एकला नहीं परन्तु सब का सिद्धान्त होता है। अमेरिका के एक विद्वान् का वचन है कि:—

"Truth is the repion of Union" अर्थात् सत्य वह स्थल है जिसमें सब मिल जाते हैं।

आर्य्यसमाज के सिद्धान्त सत्य सिद्धान्त ही हैं और यही ऋषि दयानन्द तथा मनुष्यमात्र के हैं। इसलिये यह कहना कि आर्यसमाज ऋषि दयानन्द के निज सिद्धांत को मानता है, भ्रममूलक और असत्य है। ऋषि दयानन्द और आर्य्यसमाज दोनों सत्य सिद्धान्त, जो वेदप्रतिपादित हैं, मानते हैं और ऐसा ही सब बुद्धिमान् मानेंगे।

कल्प पर्य्यंत मुक्ति, विधवाविवाह अथवा नियोग नए सिद्धान्त नहीं

संसार में इससे बढ़कर क्या भ्रम होसकता है कि लोग सत्य को नवीन वा प्राचीन का नाम दें। सत्य तो नित्य नया और सदा पुराना है। यह तीन काल में एकरस रहता है परन्तु अज्ञानी ऐसा स्वार्थवश होकर नहीं समझते। पौराणिक विद्वान् आजकल कहते हैं कि ऋषि दयानन्द ने दो सिद्धान्त नये बना लिये। (१) विधवाविवाह अथवा नियोग, (२) कल्पपर्य्यन्त मुक्ति। प्रथम सिद्धान्त के विषय में हम इतना ही लिखना उचित समझते हैं कि वे मनु अध्याय ६ का एक वार पाठ करजाएं फिर सत्य हृदय से कहें कि यह प्राचीन सिद्धान्त है वा नवीन।

इसके युक्तिपूर्वक होने में तो उनको भी शङ्का नहीं इसलिये इस पर अधिक लेख करना व्यर्थ है। कल्पपर्य्यन्त मुक्ति के विषय में नियोग सदृश वेदमन्त्रों को छोड़कर छान्दोग्यो-पनिषद् का निम्नलिखित लेख ही पढ़ें और उस पर शङ्करस्वामी तथा आनन्दगिरि की सम्मतिरूपी टीका देखें तो उनका भ्रम दूर होसकता है।

"स एनान्ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्मपथ एतेन प्रतिपद्यमाना इमं मानवमावर्तं नाऽऽवर्तन्ते नाऽऽवर्तन्ते" ॥ छान्दोग्योपनिषत् अध्याय ४। खंड १५। श्रुति ५॥

इस पर शंकराचार्य्य इस प्रकार टीका करते हैं:—

"एतेन प्रतिपद्यमाना गच्छन्तो ब्रह्मेमं मानवं मनुसंबन्धिनं मनोः सृष्टिलक्षणमावर्तं नाऽऽवर्तन्त आवर्तन्तेऽस्मिञ्जननमरणप्रबन्धचक्रा-रूढा घटीयन्त्रवत्पुनः पुनरित्यावर्तस्तं न प्रतिपद्यन्ते। नाऽऽवर्तन्त इति"।

इस पर ही आनन्दगिरि इस प्रकार लेख करते हैं:—

"स परमात्मा प्रत्यक्त्वेनाज्ञातः सन्नेनमधिकारिणं मुक्तिप्रदानेन पालयतीत्यर्थः। प्रकृतां गतिमुपसंहरति। एष इति। गतिफलं निगमयति। एतेनेति। इममिति विशेषणादनावृत्तिरस्मिन् कल्पे कल्पान्तरे त्वावृत्तिरिति सूच्यते" छान्दोग्योपनिषदि। आनन्दाश्रम मुद्रणालय पृष्ठ २२६, २१७ देखो।

शंकरस्वामी के लेख का अर्थ यह है:—

"इससे ब्रह्म को प्राप्त हुए मन्वन्तर सम्बन्धी सृष्टि के आवर्त को नहीं आते। इसमें जन्ममरणप्रबन्धचक्रारूढ घटीयंत्र के समान बारंबार नहीं आते"।

आनन्दगिरिजी के लेख का अर्थ यह है:—

"वह परमात्मा जो कि इन्द्रियों से अगम्य है इस अधिकारी को मुक्तिदान से पालता है। गति के फल को बतलाते हैं। "इमं" इस विशेषण से इस कल्प में अनावृत्ति कही है परन्तु कल्पान्तर में तो आवृत्ति (लौट आना) इसने सूचित कराई है"।

ऋषि दयानन्द ने आर्य्यसमाज के दस वैदिक नियम बनाये

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् सामानि यस्य लोमान्यथर्वांगिरसो मुखं स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः * ॥ अथर्व० कां० १० । प्रपा० २३ । अनु० ४ । मं० २० ॥

इत्यादि मंत्रों के आशय को लेकर ऋषि दयानन्द ने आर्य्यसमाज का प्रथम नियम बनाया जो कि इस प्रकार है:—

(१) "सब सत्यविद्या और विद्या से जो पदार्थ जाने जाते हैं उन का आदिमूल परमेश्वर है"।

विवरण—सत्यविद्या से अभिप्राय वेदविद्या से है क्योंकि वेद ईश्वरोक्त होने से सर्वांश में सत्य हैं। सत्यविद्या की उन्नति वा अधोगति नहीं होती जैसे दो और दो मिलकर सदैव चार होते हैं अत: सत्यविद्या तीन काल में एकरस रहती है। पदार्थ शब्द के अर्थ इस स्थल पर कार्य्य जगत् के हैं। आदिमूल के अर्थ मुख्य निमित्तकारण के हैं। सांख्यदर्शन में मूल शब्द कारण के अर्थों में आया है जैसा कि मूल का मूल नहीं होता। यह नियम दर्शाता है कि ईश्वर सत्यविद्या (वेद) और कार्य्य जगत् दोनों का निमित्तकारण है। वेद का उपादान कारण ईश्वर को कहना ठीक नहीं है। जो द्रव्य किसी द्रव्य से उत्पन्न हो तो कारण द्रव्य को उपादान कारण कहते हैं। वेद द्रव्य नहीं किन्तु गुण है इसलिये वेद का ईश्वर निमित्तकारण है।

कोई आशङ्का करे कि आप को मूल के अर्थ कारण लेने थे निमित्तकारण क्यों लिये तो उसका उत्तर यह है कि प्रकरण तथा ऋषि के आशय को लेकर निमित्तकारण के किये हैं। संस्कृत के एक प्रसिद्ध ग्रन्थ में यह लेख है कि:—

"संसारमहीरुहस्य बीजाय"

अर्थात् "संसार ही 'महीरूप' वृक्ष उसका जो बीज"।

इसके टीकाकार ने बीज शब्द के अर्थ **निमित्तकारण** के लिये हैं। इसलिये कि उसके ग्रन्थकर्त्ता का आशय यही है। यह बात भली प्रकार समझ में आसकती है कि आदिमूल के अर्थ आदिकारण के हैं। यदि हम सत्यार्थप्रकाश का आठवां समु-

* देखो ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदोत्पत्ति विषय ॥

ल्लास पढ़ें तो इस समुल्लास में एक स्थल पर ऋषि दयानन्द का लेख इस प्रकार है:-

" जो केवल कारणरूप ही हैं वे कार्य्य किसी के नहीं होते और जो किसी का कारण और किसी का कार्य्य होता है वह दूसरा कारण कहाता है जैसे पृथिवी घर आदि का कारण और जलादि का कार्य्य होता है परन्तु जो आदिकारण प्रकृति है वह अनादि है मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता" । सत्यार्थ० पृ० २२६ ।

कोई पुरुष इस नियम के शब्दों को तोड़ फेर कर इस प्रकार इस नियम को लिखना चाहता है कि:—

"सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदिमूल परमेश्वर है" ।

ऐसा करने की दशा में दर्शाता है कि सत्यविद्या के अर्थ ब्रह्मविद्या और पदार्थ विद्या के अर्थ सायंस (Science) के हैं परन्तु उनका ऐसा विचार संगत नहीं हो सकता यह बात तो तब घटती जब वेदों में पदार्थविद्या न होती। वेद में पदार्थविद्या तथा ब्रह्मविद्या दोनों हैं। इसलिये सत्यविद्या के अर्थ ब्रह्मविद्या के इस स्थल पर करने ठीक नहीं हैं। तीसरे नियम में जो आगे चलकर लिखा है कि वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है तो फिर क्या वह लोग इस तीसरे नियम से यह दर्शाना चाहते हैं कि वेद केवल ब्रह्मविद्या के पुस्तक हैं ? ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि में क्या पदार्थविद्या नहीं है। विदेशीय तक तो मानते हैं कि ऋग्वेद पदार्थविद्या का भण्डार है। तीसरे नियम में सत्यविद्या नहीं प्रत्युत सत्यविद्याओं का पुस्तक वेद को माना फिर इसकी संगति वह कैसे करेंगे ? एक ब्रह्मविद्या के लिये विद्या शब्द होना चाहिये था "विद्याओं" शब्द के होने से उनका विचार निर्बल होजाता है इसलिये सत्यविद्या के अर्थ सम्पूर्ण सत्यविद्या के हैं पदार्थविद्या उससे बाह्य नहीं है ।

(२) अम्भो अमो महः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ अम्भो अरुणं रजतः रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ उरुः पृथुः सुभूर्भुव इति त्वोपास्महे वयम् ॥ प्रथो वरो व्यचो लोक इति त्वोपास्महे वयम् ॥ अथर्व० कां० १३ । अनु० ४ । सू० ५-६ । तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासना विषय ॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ (यजु० अ० ४० । मं० ८)

इत्यादि मन्त्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि दयानन्द ने आर्य्यसमाज का दूसरा नियम निम्नलिखित प्रकार बनाया:—

दूसरा नियम

" ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्य्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है "।

विवरण—इन नियमों तथा आर्य्यों के सत्य सनातन मन्तव्यों का व्याख्यानरूप सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ है। सत्यार्थप्रकाश समुल्लास सप्तम में न्यायकारी और दयालु को पर्यायवाची दिखाया गया है और ऋषि ने यह सिद्ध किया है कि ईश्वर कभी किसी अपराध को क्षमा नहीं करता। अमेरिका के एक बुद्धिमान् वैद्य * का कथन है कि ईश्वर कभी क्षमा नहीं करता और सर्व विद्वान् इस बात की साक्षी आजकल अपने लेखों द्वारा देरहे हैं कि ईश्वर क्षमा करनेवाला नहीं है। सत्यार्थप्रकाश के ७ समुल्लास में सर्वशक्तिमान् के अर्थ यह दर्शाए हैं कि जो अपने काम करने में किसी के आधीन न हो इससे इस बात का निषेध पाया जाता है कि वह स्वरूप बदल सकता अथवा अवतार लेसकता है। ईश्वर सर्वशक्तिमान् होने पर भी पाप कदापि नहीं कर सकता।

पातालदेश (अमेरिका) के एक दार्शनिक विद्वान् ने भी सर्वशक्तिमान् के अर्थ ऐसे ही माने हैं यथा:—

"(Q.) Can God do all things ?

(A.) God is not sufficiently powerful to accomplish self-destruction. There are, therefore, necessities to Omnipotence."

(The Penetralia) †

* Trall, M.D., Author of Sexual Physiology.

† "The Penetralia" by A. J. Davis, Page 114.

इसके अर्थ यह हैं:—

"(प्रश्न) क्या ईश्वर सब कुछ कर सकता है? (उत्तर) ईश्वर अपने आपको नष्ट नहीं करसकता, इसलिये सर्वशक्तिमत्ता के यह्‌कुछ अर्थ नहीं होसकते"।

उपासना के अर्थ यह हैं कि जीवन में हम ईश्वर के गुणकर्म को धारण करें। मुण्डक उपनिषद् का वचन है कि ब्रह्मज्ञानी और ब्रह्म की उपासना करने वाला "ब्रह्मैव" * अर्थात् ब्रह्मवत् अथवा उसके अनुकूल गुणकर्म रखने वाला होजाता है। जैसे ब्रह्म न्यायकारी है, वह न्याय करता है। जैसा ब्रह्म दयालु अर्थात् हिंसा से रहित है उसी प्रकार वह दया को साध्य समझता है।

ईश्वर के दयालु और न्यायकारी होने और उसकी उपासना को अभीष्ट मानते हुए कोई भी आर्य्य हिंसा करना अथवा हिंसा से प्राप्त हुए मांस के खाने को आर्य्य-समाज के इस दूसरे नियम के अनुकूल धर्म नहीं मान सकता। चोरी करने से जो पदार्थ प्राप्त होते हैं वे यद्यपि दुःखदायी न हों परन्तु वे सर्वथा त्याज्य हैं क्योंकि वे हिंसा से प्राप्त होते हैं। मांसादि पदार्थ यदि कल्पना करलें कि कुछ अच्छे हैं परन्तु हिंसा से प्राप्त होने के कारण सर्वथा सर्वदा त्याग के योग्य ही हैं।

सत्यार्थप्रकाश के १४ वें समुल्लास के प्रथम पृष्ठ पर ऋषि दयानन्द ने मुसल-मानों पर आक्षेप किया है कि तुम लोग अल्लाह को दयालु मानते हुए फिर मांस क्यों खाते हो?, यथा:—

"जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर, मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं? और मुसल-मानों का खुदा दयालु भी न रहेगा क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही"।

यह नियम आर्य्यसमाज के हैं इसलिये यदि हम प्रथम आर्य शब्द के अर्थों पर ही विचार करें तो निश्चय होता है कि आर्य्य कभी हिंसाशील को नहीं कहते।

सत्यार्थप्रकाश के मन्तव्य विषय में ऋषि ने इस विषय में ऐसा लिखा है:—

"जैसे आर्य्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूं"। पृष्ठ ६४० सत्यार्थ०।

---

* बंबई के निर्णयसागर प्रेस के छपे हुए ग्रन्थ में 'ब्रह्मैव' पाठ मिलता है। अन्य नगरों के छपे हुए ग्रन्थ में जो 'ब्रह्मैव' पाठ है वह अशुद्ध है।

"आर्य्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है"। सत्यार्थप्र०। अष्टमसमु० पृ० २३७ (सोलहवीं आवृत्ति)

"दस्यु—अनार्य अर्थात् जो अनाड़ी आर्य्यों के स्वभाव और निवास से पृथक् डाकू, चोर, हिंसक कि जो दुष्ट मनुष्य है, वह दस्यु कहाता है"। आर्य्योद्देश्यरत्नमाला। पृ० ८।

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला में ऋषि ने दस्यु के अर्थ दर्शाते हुए हिंसक के अर्थ दुष्ट मनुष्य के दर्शाए हैं। कणाद ऋषि ने भी "दुष्ट हिंसायाम्" इस सूत्र से ऋषि दयानन्द के सदृश हिंसक के अर्थ दुष्ट के लिये हैं। इसलिये जब हम कहते हैं कि "आर्य्य श्रेष्ठ और दस्यु दुष्ट" मनुष्य होते हैं, तो इसके अर्थ यह हुए कि आर्य्य हिंसा न करने वाले और दस्यु हिंसक तथा डाकू, चोर कहलाने वाले हुए। आर्य्यसमाज के अर्थ ऐसी सभा के हैं कि जिसके सभासद् हिंसादि दुष्टकर्मों के त्यागने वाले श्रेष्ठ स्त्री पुरुष हों।

वर्णाश्रम धर्म के पालन करनेवाले मनुष्यों को भी आर्य्य कहा जाता है और उन में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सम्मिलित हैं। इन चारों वर्णों का जो सामान्यधर्म मनुजी ने दर्शाया है उसमें सब के लिये अहिंसाशील होना एक बात बतलाई है, यथा:—

(३) अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः॥ मनु० अ० १०। श्लोक ६३॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥ य० अ० ३४। मं० ५॥ यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ य० अ० २६। मं० २॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का तीसरा नियम बनाया जो कि इस प्रकार है:—

तीसरा नियम

"वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है"।

विवरण—इन नियमों में चारों वेदों के लिये वेद शब्द ही आया है। लड़कों को वेद पढ़ाने के लिये गुरुकुलें स्थापन की गई हैं और सर्वसाधारण को वैदिक उपदेश सुनाने के लिये उपदेशक मण्डली नियत की गई है और उपदेशक मण्डली के निर्वाहार्थ पंजाब, पश्चिमोत्तरदेश, राजस्थान, बंबई, बङ्गाल, विहार सब आर्य्यसमाजों का प्रतिनिधिसभाओं ने वेदप्रचारनिधि (फण्ड) स्थिर की है। जालन्धर में कन्याओं को वैदिक शिक्षा देने के लिये कन्यामहाविद्यालय स्थापन किया गया है।

गुरुकुलनिधि, वेदप्रचारनिधि और कन्यामहाविद्यालयनिधि की दान द्वारा वृद्धि करना आर्य्यों का परम कर्त्तव्य है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि * ॥ यजु० अ० १। मं० ५ ॥ सत्येनावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता † ॥ अथर्व० कां० १२। अनु० ५। मं० २ ॥

इत्यादि वेदमन्त्रों के आशय को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का चौथा नियम बनाया:—

चौथा नियम

"सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये"।

विवरण—जैनी, मुसलमान, ईसाई और पौराणिक लोग इस नियम की उत्तमता को नहीं समझते और भय करते हैं कि यदि ऐसा नियम हम मानलें तो हमारे मत के अन्य नियम जो मिथ्या हैं वह निर्मूल हो जावेंगे, परन्तु यह गौरव आर्य्यसमाज को ही प्राप्त है कि वह इस नियम के अनुसार संवाद, शास्त्रार्थ करने पर सर्वथा उद्यत रहता है। सत्य असत्य के निर्णय करने का एकमात्र साधन प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक संवाद ही है।

* देखो व्यवहारभानु लघुपुस्तक ऋषि दयानन्द कृत।

† ऋ० भूमिका वेदोक्तधर्म पृ० १०१ ॥

बंग देश में जो सरकार ने एशियाटिक सोसाइटी की नींव डाली है वह भी इसी नियम के एक अंश को पूर्ण करने वाली है, क्योंकि संवाद करने के लिये आन्दोलन करने की बड़ी आवश्यकता है और आर्य्य लोग आन्दोलन और संवाद करते हुए सत्य असत्य का निर्णय सर्वदा करते रहते हैं। —

(५) स्वधया परिहिता श्रद्धया पर्य्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ अथर्व० कां १२। अनु० ५। मं० ३। तथा भूमिका पृष्ठ १०२ "धर्मश्च" अथर्व० कां० १२। अनु० ५। मं० ७। भूमिका पृ० १०२ " धर्मासि सुधर्मा मे न्यस्मे " ॥ यजु० अ० ३८। मं० १४ ॥

इत्यादि मन्त्रों के अनुसार ऋषि ने यह पांचवां नियम रचा।

पांचवां नियम — " सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें "।

विवरण—इस नियम में व्यवहार-शुद्धि की शिक्षा दीगई है भारतवर्ष में क्यों नहीं देशी लोग मिलकर बड़े २ कार्य्य वाणिज्यादि कर सकते? इसलिये कि वह परस्पर सत्य व्यवहार नहीं करते। एकता की पुकार तो सब मचाते हैं परन्तु एकता का साधन सत्य व्यवहार ही है। आर्य्यों को व्यवहार में शुद्ध होना चाहिये। इस नियम की व्याख्या में मानो ऋषि ने व्यवहारभानु नामी लघुपुस्तक रचा है जो कि सब के पढ़ने योग्य है।

(६) शारीरिक उन्नति के बोधक:—

"तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥" यजु० अ० ३६। मं० २४ ॥

"ओजश्च तेजश्च सहश्च बलञ्च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥" भूमिका पृ० १०२ तथा अथर्व० कां० १२। अ० ५। मं० ७॥ "पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं० ॥" अथर्व० कां० १२। अनु० ५। मं० १० ॥ तथा भूमिका पृष्ठ १०४ ॥

"ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु॥" ऋ० मं० १। सू० १६२। मं० १२॥

आत्मिक उन्नति के बोधकः—

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥" यजु० अ० ३६। मं० ३॥

"विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह। अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥" यजु० अ० ४०। मं० १४॥

सामाजिक उन्नति के बोधकः—

"संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ २॥ समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥ ३॥ समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥ ४॥" (ऋग्वेद अ० ८। अ० ८। व० ४६। मं० २, ३, ४)

"सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः॥" अथर्व० कां० १६। अनु० ७। व० ५५। मं० ६॥

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥" (यजु० अ० ३६। मं० १८)

इत्यादि मन्त्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि ने यह छठा नियम बनाया किः—

छठा नियम — "संसार का उपकार करना आर्य्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

विवरण—जो लोग कहते हैं कि आर्य्यसमाज केवल हिन्दुओं के ही सुधार के लिये है वे इस नियम के "संसार" शब्द से अज्ञ हैं। वे "**सर्वाणि भूतानि**" और "**यथेमां वाचं......जनेभ्यः**" वैदिक शब्दों के अर्थ नहीं जानते। इस वि-

षय की पुष्टि कि ऋषि दयानन्द किस प्रकार अपने जीवन में इङ्गलैण्डादि विदेशों में वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार की आवश्यकता समझते थे निम्नलिखित लेख कर रहा है:-

SANSKRIT AS A LIVING LANGUAGE,

Oxford, October, 1880.

Few are aware of the extent to which Sanskrit is at present used as a medium of conversation and correspondence in India, and of its extreme convenience when employed as a kind of *lingua franca* among learned men in a country where there may be no affinity between the spoken vernaculars, or not sufficient affinity to make two persons living in adjacent districts mutually intelligible.

Mr. Cust has shown that about two hundred languages and dialects are spoken by the inhabitants of our Indian Empire. What a barrier would this variety of speech be to the interchange of ideas were it not for the universal employment of Sanskrit and Hindustani as vehicles of intellectual intercourse by the educated classes in all parts of the country! Sanskrit is supposed to be dead, and often called a dead language; but can any language be pronounced devoid of life which still lives and breathes in daily thought and daily speech, which still animates and inspires daily correspondence, and which still exerts a living influence over literature, science, and religion from the Hindu Kush to Ceylon?

The readers of the *Athenæum* may remember that about a year ago I announced the arrival in this country of a young Hindu of the Kshatriya caste, named Shyamaji Krishna Varma, whose knowledge of Sanskrit and power of speaking and writing that language were so great that the title of Pandit had already been accorded to him. I also mentioned that he had had the advantage of the instruction of a remarkable person who is not only profoundly versed in ancient Sanskrit literature, but is now causing considerable stir in Indian religious circles by denouncing polytheism, pantheism, and idolatry and preaching pure monotheism as the only true religion of the Aryan race founded on the Veda.

The name of this rising religious reformer is Dayananda Saraswati Swami. He is an eloquent speaker and writer of Sanskrit, as I can myself testify; for when I was at Bombay I heard him deliver a sermon with great earnestness and fluency, before an attentive congregation of the Arya Samaj, on the original religion of the Aryas. He has lately written a letter in Sanskrit to his pupil, now a member of Balliol College Oxford, which, with the permission of the addressee, I here translate :—

"May the benediction of Dayananda Saraswati Swami rest upon Shyamaji Krishna Verma, who deserves all commendation for his learning and his perseverance in the path of Vedic religion, &c. I am sorry you have not cheered me for some time by a letter. I now write hoping you will rejoice my heart by replying to the following questions :—

"What sort of men are there in England? What are their characteristic qualities, dispositions, and actions? What is the nature of the land, water, and air there? What kind of eatables, solid and liquid, and what things are fit for licking and sucking (lehya, chushya), can be had there? Have you been in good health ever since you left this country? Is the object of your visit to England being accomplished every day. How many men read Sanskrit with you, and what books do they study?

"What is your monthly income and what are your expenses? What time have you for study, for teaching, and for meditating? How is it that your fame for discoursing on the doctrines of the true religion has not spread so rapidly in England as it formerly did here in different parts of India? Perhaps you have already acquired a reputation without our having heard of it, being at a long distance from you; or perhaps you have had no leisure. If that be the case, it is my earnest recommendation that, as soon as you have finished reading and teaching (parhna, parhana), you should deliver addresses for the propagation of Vedic doctrines, and then return here, but not before; for a good reputation so acquired is preferable to making

money, nay, it confers a great blessing (siva-karah), What is the present opinion of our beloved Professors Monier Williams and Max Muller (Mokshamular) about the Vedas and other Sastras? Have they and others any regard for the dissemination of the meaning of those works (tadartha-pracharaya)? Is it a fact that the Theosophical Society has established a Vedic branch (Vaidiki sakha) in London (*Nandanagra*, the city of joy)? Have you ever seen Her Majesty, the great Queen, Empress of India? Have you seen the assembly called Parliament (Parliament-akhya sabha)?

"Please to answer these questions as soon as you can, and write to me at length about other topics which you may think worth mentioning. This will suffice for the present, as it is not necessary to write long letters to the intelligent. Written on Tuesday, the sixth day of the white half of the month Ashadha of the Samvat year, measured by the earth the numerical symbols, the Ramas, and the sages (1937 = A.D. 1880)."

The above letter is well and clearly written in pure classical Sanskrit. I constantly receive similar Sanskrit letters from learned Hindus who live in countries as widely separated and distinct from each other as Cashmere and Travancore. The specimen translated is valuable for other purposes than a mere illustration of the fact that the educated classes of India use Sanskrit as a medium of communication. It affords an insight into the ideas that prevail among learned natives and thoughtful religious reformers in regard to the condition of the country under whose rule they are able to pursue their studies are or propagate their reforming opinions in peace and security. I may note, for the benefit of those who were interested in the controversy as to the proper translation of the title "Empress of India" that the expression employed by Dayananda is *Rajarajes'vari*. MONIER WILLIAMS.

उक्त अङ्गरेज़ी का अनुवाद यह है:—

"संस्कृत जीवित जागृत भाषा है"

"जब कि भारतवर्ष के नाना प्रान्तों की भाषायें एक दूसरे से सर्वथा न मिलें

अथवा बहुत कम मिलती हों और ऐसा होने पर निकटवर्त्ती नगरों के दो पुरुष भी एक दूसरे की बात भली प्रकार न समझ सकते हों तो यह बात बहुत थोड़े मनुष्य जानते होंगे कि संस्कृत आजकल बोल चाल और लिखने पढ़ने का भारतवर्ष में भारी साधन है और पण्डित लोगों को इससे बड़ी सुगमता परस्पर व्यवहार के लिये मिलती है और वे इसको एक प्रकार की सामाजिक सार्वभौमिक भाषा समझते हैं। मिस्टर कस्ट ने दर्शाया है कि हमारे भारतवर्ष के राज्य में लगभग २०० भाषाएं अपनी शाखा सहित प्रचलित हैं । यदि भारतवर्ष देश के सर्व स्थानों में विद्वान् लोग संस्कृत और हिन्दुस्तानी से काम न लेते तो इतनी भाषाओं की विद्यमानता पर इनको परस्पर भाव प्रकट करने भी कठिन हो जाते । कल्पना की जाती है कि संस्कृत मृतभाषा है और बहुधा मृतभाषा कहलाती है परन्तु क्या वह भाषा जो प्रतिदिन के भावों और बोलचाल में जीवित जागृतरूप से विद्यमान हो, जिसके द्वारा ही प्रतिदिन पत्रव्यवहार किये जाएं और जिसका जीवित प्रभाव साहित्य, शास्त्र और धर्म पर हिन्दूकुश पहाड़ से लेकर लंकाद्वीप पर्यन्त हो, कभी निर्जीव कहला सकती है?

इस 'अथीनियम' पत्र के पाठकों को स्मरण होगा कि गत वर्ष मैंने सूचना दी थी कि इंगलैण्ड में एक हिन्दू युवा पुरुष क्षत्रिय वर्ण का, जिसका नाम श्यामजीकृष्ण-वर्मा है और जिसकी संस्कृतविद्या में विद्वत्ता और संस्कृत में वक्तृता करने तथा लेख लिखने की योग्यता ऐसी महान् है कि उसको पण्डित की पदवी दी जा चुकी है, आया है । मैंने यह भी वर्णन किया था कि इसने सौभाग्यता से एक महान् पुरुष से शिक्षा भी ग्रहण की है जो महान् पुरुष न केवल प्राचीन संस्कृत साहित्य में पूर्ण विज्ञ है परञ्च आजकल भारतवर्ष के सर्व मतमतान्तरों में अनेक ईश्वरपूजन, मायावाद और मूर्त्तिपूजन का खण्डन करने और इस बात के मण्डन करने से कि आर्य्य-जाति का एकमात्र सच्चा धर्म वेदोक्त एक ईश्वर की उपासना करना है भारी चर्चा फैला रहा है । इस नये धार्मिक रिफ़ार्मर का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है । मैं अपनी साक्षी से कह सकता हूं कि स्वामी दयानन्द संस्कृत के प्रभावशाली वक्ता और लेखक हैं । जब मैं बम्बई में था तो मैंने इनको बड़ी धार्मिकवृत्ति और उत्तमता से आर्य्यसमाज के लोगों के मध्य में, जो ध्यानपूर्वक श्रवण कर रहे थे, आर्य्यों के प्राचीन-धर्म के विषय में उपदेश देते हुए सुना था । आज कल ही इनका एक पत्र संस्कृत में इनके शिष्य के नाम आया है जो कि आजकल 'बेलिअलकालिज ऑक्सफ़ोर्ड' का एक मेम्बर है और उसकी आज्ञापूर्वक मैं उस पत्र का अनुवाद नीचे लिखता हूं:—

श्यामजीकृष्णवर्मा को, जो कि अपनी विद्या और वैदिकधर्म के मार्ग में दृढ़ता के कारण प्रशंसा के योग्य है, दयानन्द सरस्वती स्वामी का आशीर्वाद पहुंचे। मैं शोक करता हूं कि कुछ काल से तुमने पत्र भेजकर मुझे आनन्दित नहीं किया। अब मैं इस आशा से पत्र लिखता हूं कि तुम इस का उत्तर देकर मेरे मन को प्रसन्न करोगे।

इंगलैण्ड के लोग किस प्रकार के हैं? उनके विशेष गुण, स्वभाव और कर्म क्या हैं? वहां का जल, स्थल और वायु कैसा है? खाने, पीने, चाटने, चूसने के योग्य कौन से पदार्थ वहां मिल सकते हैं? जब से तुमने यह देश छोड़ा है तब से तुम्हारा शरीर आरोग्य तो रहता है? क्या उस प्रयोजन में तुम को प्रतिदिन सफलता प्राप्त होती है जिस के लिये कि तुम इंगलैण्ड की यात्रा को आये हो। कितने मनुष्य तुम से संस्कृत पढ़ते हैं और किन २ पुस्तकों का वे पाठ करते हैं? तुम्हारा मासिक आय और व्यय कितना है? किस २ समय तुम स्वयं पढ़ते, पढ़ाते और उपासना करते हो? सत्यधर्म के सिद्धान्तों पर व्याख्यान देने से जो तुम्हारा यश इंगलैण्ड में शीघ्र फैलना चाहिये था, जैसा कि भारतवर्ष के नानास्थलों पर फैल चुका है, उसके न फैलने का क्या कारण है? कदाचित् तुम्हारी कीर्त्ति फैल रही हो और हमको उसकी सूचना न मिली हो इस कारण कि हम तुम से दूरी पर हैं, अथवा यह कि तुमको अवकाश ही न मिला हो। यदि अवकाश न मिला हो तो मैं सत्यहृदय से प्रेरणा करता हूं कि जब तुमको पठनपाठन से अवकाश मिले तब ही * **वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के निमित्त व्याख्यान देना और तब ही यहां आना इससे पूर्व नहीं**। क्योंकि इस प्रकार के यश का प्राप्त करना धन संग्रह करने से उत्तम है, न केवल यही परन्तु यह कल्याणकारी काम है। आजकल हमारे प्यारे प्रोफ़ेसरों अर्थात् मोनियर विलियम्स और मेक्समयुलर की वेद और अन्य शास्त्रों के विषय में क्या सम्मति है? क्या यह और अन्य लोग वेदादि शास्त्रों के अर्थ प्रचार करने के लिये कुछ भाव रखते हैं? क्या यह सत्य है कि थियासोफ़िकल सोसाइटी ने लन्दन नगर में वैदिकीय शाखा स्थापन की है? क्या तुम कभी श्रीमती भारतराजराजेश्वरी से मिले हो? क्या तुमने कभी पारलियामेंट नामी सभा देखी है? कृपा करके शीघ्र ही इन प्रश्नों के उत्तर देना और अन्य विषयों पर विस्तारपूर्वक लिखना जिनको कि तुम

* (नोट) अक्षर मोटे हमने किये हैं।

वर्णन के योग्य समझो। इस समय इतना लेख ही पुष्कल है, क्योंकि विचारशीलों को विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

मङ्गलवार आषाढ़शुक्ल ६ संवत् १९३७

(तदनुसार सन् १८८०)

उक्त पत्र उत्तम और शुद्ध प्राचीन संस्कृत की शैली में स्पष्ट लिखा हुआ है। इसी प्रकार के मुझे नित्यप्रति संस्कृत के पत्र विद्वान् हिन्दुओं से आते रहते हैं, जो भिन्न २ प्रान्तों में रहते हैं जिनकी दूरी इतनी होती है जितना कि कश्मीर और ट्रावनकोर एक दूसरे से दूर हैं। इस अनुवाद से न केवल यही दृष्टान्त मिलता है कि भारतवर्ष के पण्डित लोग पत्रव्यवहार संस्कृत में ही करते हैं, परंच इससे अन्य बातें भी विदित होती हैं। इससे भारत के विद्वान् और बुद्धिमान् धार्मिक रिफ़ार्मरों के अन्तरीय भावों का इंगलैंड के विषय में पता लगता है जिसके राज्यप्रबन्ध में वे लोग शान्तिपूर्वक निर्विघ्न रीति से पुस्तकों को पढ़ते और सुधार विषयक प्रचार करते हैं, जो लोग इस संवाद में दत्तचित्त थे कि "एम्प्रेस आफ़ इण्डिया" का यथार्थ अनुवाद क्या है उनके लाभ के लिये मैं यह भी दर्शाना चाहता हूं कि दयानन्द ने "राजराजेश्वरी" प्रयोग लिखा है।

स्थान ओक्सफोर्ड
अक्तूबर १८८० ई०

भवदीय—
मोनियर विलियम्स

(७) "मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि"। (यजु० अ० १६। मं० ६)

"अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः। जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्"। (अथर्व० कां० ३। अ० ६। सू० ३०। मं० २)

"मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा। सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया"। अथर्व० कां० ३। अ० ६। सू० ३०। मं० ३। तथा संस्कारवि० पृ० १६१ (शताब्दी संस्करण)

इत्यादि मन्त्रों के अनुसार ऋषि ने सातवां नियम यह बनाया:—

सातवां नियम "सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये"।

शताब्दी-संस्करण

महर्षि के हस्तलिखित एक पत्र का चित्र

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

विवरण—इसका अभिप्राय यह है कि धर्मात्मा मनुष्यों, सज्जन बन्धुओं और मित्रोंसे प्रेम करना, मूर्खों से सहनशीलता का वर्ताव और चोरादि दुष्ट पुरुषों को न्यायपूर्वक यथायोग्य दण्ड देना अथवा पंचायत वा न्यायालय से दिलवाना चाहिये। योगशास्त्र में लिखा है कि संसार में ४ प्रकार के मनुष्य हैं उनसे इस प्रकार मानसिक वर्ताव करना चाहिये:—

१—सुखी जन से मित्रता की वृत्ति रक्खो।
२—पुण्यात्मा जन से मन में आनन्दित हो।
३—पापी से उपरामवृत्ति।
४—दुखी पर दयावृत्ति धारो।

अनाथों पर कर्मद्वारा दया करने के प्रयोजन से अजमेर, बरेली, फ़ीरोज़पुर आदि कई नगरों में आर्य्यसमाज ने लड़के तथा लड़कियों के अनाथालय स्थापन किये हुये हैं। इनकी ओर दया की दृष्टि रखना सज्जनों का काम है। निज जीवन में प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन अनेक प्रकार के सुखी, दुखी, पापी, धर्मात्मा मनुष्यों से मेल होता है, इसलिये प्रत्येक आर्य्य को सब से प्रेमपूर्वक धर्मानुसार मन वचन तथा कर्म द्वारा यथायोग्य वर्ताव सदैव करना चाहिये।

(८) "अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः"। यजु० अ० ४०। मं० ९॥

"अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्। इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे"। यजु० अ० ४०। मं० १०॥

"सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह। विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते"॥ ११॥

"अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः"॥ यजु० अ० ४०। मं० १२॥

इत्यादि मन्त्रों के भावार्थ को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का आठवाँ नियम यह बनाया:—

आठवां नियम "अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये"।

इसी नियम के आशय को लेकर आर्य्यसमाज मूर्तिपूजन, नास्तिकपन, मायावाद, जलस्थलरूपी तीर्थ और भ्रमजनक मतमतांतरों के मिथ्या सिद्धान्तों का युक्ति और प्रमाण द्वारा खंडन करता हुआ उसके स्थान में सच्चा विवेक प्रचार करता है। यजु० अ० ४० के १२ वें मंत्र की व्याख्या वेदभाष्य में ऋषि ने इस प्रकार लिखी है जिसके पाठ करने से इस नियम का मूल विदित होजाता है।

"(अन्धम्) दृष्टथावरकम् (तमः) गाढमज्ञानम् (प्र) (विशन्ति) (ये) (अविद्याम्) अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्येति ज्ञानादिगुणरहितं वस्तु कार्य्यकारणात्मकं जडं परमेश्वराद्भिन्नम् (उपासते) अभ्यस्यन्ति (ततः) (भूय इव) अधिकामिव (ते) (तमः) अज्ञानम् (ये) पण्डितं मन्यमानाः (उ) (विद्यायाम्) शब्दार्थसम्बन्धविज्ञानमात्रेऽवैदिके आचरणे (रताः) रममाणाः ।

(६) सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ अथर्व० कां० ३ । वर्ग ३० । मं० १ ॥

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौष्ट संराधयन्तः सधुराश्चरन्तः । अन्यो अन्यस्मै वल्गु वदन्त एत सध्रीचीनान्वः संमनसस्कृणोमि ॥ अथर्व० कां० ३ । वर्ग ३० । मं० ५ ॥ तथा संस्कारविधि पृष्ठ १६२ ॥ (श० सं०)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो अजायत ॥ (य० अ० ३१ । मं० ११)

इत्यादि मन्त्रों के आशय को लेकर ऋषि ने आर्य्यसमाज का नवां नियम इस प्रकार रचा कि:—

नवां नियम — "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये"।

विवरण—परस्पर अत्यन्त प्रेम से उपकार अथवा कार्य्य करने की शिक्षा इसमें दी गई है। जिस प्रकार गाय प्रेमबद्ध होकर बछिया की रक्षा तथा उपकार में अपना जीवन समझती वा ज्ञानी लोग दूसरों को उन्नत करते हुए उन्नति को परस्पर की

सहायता के कारण प्राप्त होते अथवा चारों वर्ण परस्पर सहायता करते हैं जिस प्रकार कि शरीर के अङ्ग एक दूसरे की उन्नति करते हुए उन्नत होते हैं इसी प्रकार आर्य्यों को दूसरे की उन्नति में अपनी उन्नति समझते हुये सदैव परस्पर सहायता तथा एक दूसरे की उन्नति करनी चाहिये।

(१०) स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्य्याचन्द्रमसाविव । पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥ (ऋ० मं० ५ । सू० ५१ । मं० १५)

इत्यादि मन्त्रों के आशय के अनुसार ऋषि ने दशवां नियम बनाया जो कि इस प्रकार है:—

दशवां नियम

"सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें"।

विवरण—उपरोक्त वेदमन्त्र में प्रत्येक हितकारी और सामाजिक उन्नति के नियम का अलङ्कार से वर्णन किया है। मन्त्र दर्शाता है कि जिस प्रकार सूर्य चन्द्र अपने २ कक्षा में भ्रमण करते हुए एक दूसरे के हित के लिये नियमों में बंधे हुए विचरते हैं और सर्वहितकारी नियमों का उल्लंघन नहीं करते इसी प्रकार मनुष्यों को सर्वहितकारी नियमों में चलना चाहिये ताकि निज की उन्नति के संग २ सामाजिक उन्नति होती जाय। इस वैदिक अलङ्कार की उत्तमता इस स्थल पर विशेष रीति से हम वर्णन करना नहीं चाहते, किन्तु यह दर्शाते हैं कि पातालदेशी एक विद्वान् ने इस विषय में क्या लिखा है ?

"The Perfect harmony between Liberty and Law, is beautifully revealed to us in the world of planets."*

इसका अर्थ यह है कि:—

"स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के मध्य में पूर्णता से समता का दृष्टान्त ग्रहमंडल में मिलता है"।

* The Harmonial man. p.p. 12-13. By A. J. Davis.

वैदिक आशय को लेकर महर्षि मनु तथा पतञ्जलिजी ने सामाजिक अथवा सर्वहितकारी और निजसम्बन्धी अथवा प्रत्येक हितकारी नियमों को दो भागों में करके उनके यम और नियम नाम रक्खे हैं ।

सामाजिक सर्वहितकारी यम विशेष करके पांच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह । जब हम कहते हैं कि किसी की हिंसा न करो तो इससे पाया जाता है कि एक हिंसा करने वाला और उससे भिन्न कई प्राणी हैं जिनके साथ शान्तिपूर्वक वर्ताव करने के लिये यह उपदेश है । एक से अधिक प्राणियों के लिये जो नियम वर्ताव में आवे वही सामाजिक अथवा सर्वहितकारी है जैसे कि अहिंसा का नियम ।

सत्य तब ही बोला जाता है जब बोलनेवाले से भिन्न कई मनुष्य हों जो उसको सुन सकें और उसका उनसे व्यवहार पड़े । सत्य विश्वास का मूल है विश्वास समाज की जान है विश्वासघाती अनेक मनुष्यों की हानि करता है वह अनेक पुरुषों के व्यवहार के नाश करने से उनको हानि पहुंचाता है । चोरी के अर्थ दूसरों के पदार्थों को बलात्कार अथवा अन्याय से ग्रहण करने के हैं। अपने ही पदार्थ इधर से उधर रखना चोरी नहीं है । चोरी के त्याग करने से हम न केवल अपने आपको ही वरन अन्य मनुष्यों को भी लाभ पहुंचाते हैं इसलिये चोरीत्याग (अस्तेय) सामाजिक सर्वहितकारी नियम है । ब्रह्मचर्य्य रखनेवाला न केवल अपने शरीर में बलवीर्य्य को धारण करता है किन्तु दूसरों की बहू बेटी को दूषित न करने से समाज के अनों को लाभ पहुंचाता है इसलिये ब्रह्मचर्य्य सर्वहितकारी नियम है । अपरिग्रह दर्शाता है कि हम विषयासक्त तथा अभिमानी न बनें, विषयासक्त मनुष्य समाज के निर्बलों पर क्रूरता करता हुआ उनकी हानि का कारण बनता है और अभिमानी पुरुष अन्त में हिंसक बनकर समाज के मनुष्यों को पीड़ा पहुंचाता है। इसलिये विषयासक्ति तथा अभिमान का त्याग सर्वहितकारी नियम है ।

कोई यह न समझले कि सर्वहितकारी सामाजिक नियम प्रत्येक हितकारी होते ही नहीं । विचार कर देखो तो निश्चय होगा कि सर्वहितकारी के अन्तर्गत प्रत्येक का हित भी रहता है । जब सर्व का हित कहा गया तो क्या प्रत्येक का हित सर्व से बाहर रहगया ? कदापि नहीं। सर्वोपकारी, सर्वहितकारी सामाजिक नियमों के अन्तर्गत एक व्यक्ति का निज उपकार रहता है । हां यह देखने में आता है कि सर्वोपकारी

नियम पहिले फल समाज को पहुंचाते हैं पीछे एक व्यक्ति को, परन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि उनसे औरों का ही भला हो और एक व्यक्ति का न हो।

यह भी कोई न समझले कि प्रत्येक हितकारी नियमों से एक व्यक्ति विशेष को ही लाभ पहुंचता है समाज को नहीं। हां यह ठीक है कि प्रत्येक हितकारी नियम पहिले एक व्यक्ति का भला करते हैं फिर उस व्यक्ति द्वारा समाज को लाभ अवश्य मिलता है। प्रत्येक हितकारी नियमों के अन्तर्गत समाज का उपकार रहता है। जब कोई देश उन्नत होता है तो वहां सामाजिक नियमों के साथ २ निज सम्बन्धी नियम पाले जाते हैं फल अन्त में दोनों का सर्वहित है। सामाजिक नियमों के अन्तर्गत अपना भला और अपने भले के अन्तर्गत समाज का भला बना रहता है। जब कोई देश अधोगति को प्राप्त होता है तो वहां केवल प्रत्येक हितकारी नियम पाले जाते हैं और सामाजिक नियम त्याग किये जाते हैं क्योंकि मूर्ख लोग दूरदर्शी तो होते नहीं इसलिये उनकी समझ में यह सहज से नहीं आता कि परोपकार के अन्तर्गत अपना उपकार क्योंकर हो सकता है? वह प्रत्येक हितकारी नियमों के प्रभाव को अपने निज पर शीघ्र अनुभव करते हुये एकमात्र नियमों के सेवन करनेवाले बन जाते और यमों को छोड़ देते हैं। मनुष्य की इस निर्बलता को अनुभव करनेवाले ऋषि मनुजी ने इसी वास्ते यह लिख दिया कि नियमों के संग २ यमों को अवश्य पालें और इसीलिये ऋषि दयानन्द ने यमों के पालन करने के लिये आर्य्यों को परतन्त्र रहने की आज्ञा दी। मनुजी की यह चितावनी वास्तव में अति उत्तम है:—

"यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः। यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्" ॥ मनु० अ० ४ ॥

(अर्थ) बुद्धिमान् यमों का निरन्तर सेवन करे और नियमों का केवल न करे। यमों का सेवन न करता हुआ पतित होजाता है जो केवल नियमों को ही सेवन करता है॥

इसी पर ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में इस प्रकार लिखा है कि:—

"यमों के विना केवल इन नियमों का सेवन न करे किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे जो यमों का सेवन छोड़कर केवल नियमों का सेवन करता है वह उन्नति

को नहीं प्राप्त होता किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है" सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ४४ (सोलहवींबार) ॥

मनु और दयानन्द ऋषि के उक्त लेखों से विदित हुआ कि सर्वहितकारी यमों का सेवन आवश्यक है अर्थात् यमों के सेवन के लिये इस दशवें नियम की परिभाषा में सब को परतन्त्र रहना चाहिये और वास्तव में यह ठीक है कि परतन्त्रता सामाजिक नियमों के सेवन में होनी ही चाहिये। इसलिये यम सर्वहितकारी सामाजिक जीवन अथवा मिलकर काम करने के महान् नियम हैं इससे अतिरिक्त मेल मिलाप, सभा समाज, एक लिपि एक भाषा, एक धर्म, एक हानि लाभ, परस्पर विवाह, परस्पर भोजन आदि अनेक सामाजिक उन्नति के नियम हैं, परन्तु ५ यम उनमें मुख्य हैं। यह यम समाज की शान्ति एकता के मुख्य साधन हैं।

नाना देशों की सभ्यता के इतिहास बतलाते हैं कि किसी जाति के उन्नत होने का एक महान् लक्षण यह है कि उस जाति के लोग मिलकर काम करना जानते हों अथवा यह कहो कि उन मनुष्यों में सामाजिक जीवन पाया जावे।

"भारत हमें क्या शिक्षा दे सकता है*, इस नाम के ग्रन्थ में भट्ट मेक्समुलर ने दर्शाया है कि संस्कृत का "सत्य" शब्द ऐसा उत्तम है कि अन्य किसी भाषा में इस सरीखा सार्थक सारगर्भित शब्द मिलता ही नहीं। जिस प्रकार मेक्समुलर सत्य शब्द पर लट्टू हो रहे हैं उसी प्रकार एक जिज्ञासु संस्कृत के एक और शब्द पर भी मोहित हो सकता है जो कि यह है, अर्थात्:—

'**सभ्य**' जिसके अर्थ "सभा के योग्य" के हैं।

सभ्य पुरुष उन्नत पुरुष को कहते हैं परन्तु उन्नत वही होता है जो सभा के योग्य है, जिसमें सामाजिक जीवन है, जो यमों का सेवी है, जो औरों के साथ मिलकर काम कर सकता है। उन्नति के इतिहास लिखने वाले बहुत अक्षरों में लिखते हैं कि उन्नत होने से अभिप्राय सभा के योग्य होने से है, परन्तु इस सब बात को सभ्य शब्द ही एकला उत्तमता से बोधन कराता है। मेक्समुलर ने एक स्थल पर लिखा है कि प्राचीन आर्य्य पुरुष सामाजिक जीवन से शून्य थे और इस समय में भारत-

* India what can it teach us ? By F. Max Muller.

वासियों ने 'नेशन' (समाज) शब्द हमसे सीखा है और इसी प्रमाण को शिर पर धर-कर मद्रास के पादरी मरडक ने कई लघु पुस्तक लिख डाले जिसमें यह दर्शाया है कि प्राचीन भारत में कभी उन्नति नहीं हुई क्योंकि इनके यहां 'नेशन' और 'नैशनल लाइफ' अर्थात् समाज और सामाजिक जीवन शब्द ही नहीं थे। यदि मेक्समूलर और 'मरडक' ने मनुजी के इस लेख पर विचार किया होता अथवा पांच यमों पर विचार दृष्टि की होती वा सभ्य शब्द के अर्थ अनुभव किये होते तो ऐसी निर्मूल शङ्का न करते।

भारत में आजकल शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान इन पांच प्रत्येक हितकारी नियमों की कुछ चर्चा सी रह गई है। आर्य्यसन्तान शौच के एक अंश अर्थात् नहाने धोने के लिये प्रसिद्ध है। मन की प्रसन्नता वा सन्तोष तो इन में से उड़ गया और अब भूल से आलस्य को यह सन्तोष मानने लगे। तप, स्वाध्याय और ईश्वरभक्ति भी कुछ है। हिन्दुओं की गणना संसार की अर्द्ध सभ्य जातियों के संग विदेशी विद्वान् करते हैं और उसका कारण यही बतलाते हैं कि हिन्दुओं में सामाजिक जीवन का अभाव है वास्तव में यह सत्य भी है क्योंकि सामाजिक जीवन के पांच यमों का पालन हिन्दू लोग इस समय नहीं करते, यथा:—

पहिले यम को लें तो निश्चय होगा कि अहिंसक होने के स्थान में आर्य्य सन्तान हिंसाशील यहांतक बन गई है कि भाई से सगे भाई की नहीं बनती। पुत्र पिता को दुःख देता है, मा बेटी को नहीं चाहती वैर फूट सर्वत्र फैलगया है सच तो यह है कि पहिला यम नाम को भी वर्तमान समय में भारत में नहीं मिलता। दूसरा यम सत्य है वह भी इस देश में नहीं रहा स्वदेशियों को स्वदेशियों पर विश्वास इसलिये नहीं कि सत्य आचरण नहीं करते। चोरी सूक्ष्मरूप से नर नारी में मानों व्याप्त हो गई है। ब्रह्मचर्य्य की जो दुर्दशा भारत में है कदाचित् अफरीका में भी न होगी। आठ २ वर्ष के बच्चे व्याहे जाते हैं और आयु भर विवाह के रूप में व्यभिचार करते हैं। स्त्रियों को घूंघट काढ़ना पड़ता है क्योंकि पुरुषसमाज मलिन हो रहा है। अपरिग्रह इस यम का भी अभाव ही है। अभिमान यहांतक बढ़ गया है कि दो विद्वान् मिलकर काम नहीं कर सकते। भारतवर्ष के विद्वानों, पण्डितों का एकमात्र काम दूसरे की निन्दा और अपनी बड़ाई करना रहगया है। सभाएं, समाजें बन २ कर टूट जाती हैं क्योंकि सभासद् कोई नहीं बनना चाहता सब ही अभिमान के कारण आयुभर के लिये प्रधान बनना चाहते हैं।

अमेरिका आदि देशवासियों ने जो सामाजिक जीवन उपलब्ध किया है उसका

कारण यही पांच यम हैं। वैदिक समय के आर्य्यों की अपेक्षा ये लोग अभी पूर्ण रीति से इन पांच यमों पर आरूढ़ नहीं हुये परन्तु भारतवासियों से फिर भी बहुत उत्तम हैं। पांच यम बहुत अंश तक इनमें चरितार्थ पाये जाते हैं। हिंसाशील भारतवासियों से कम हैं यद्यपि उन में कई पशुहिंसा करते हैं तथापि अपने अपने देश के मनुष्यों से हिंसा वा वैर का करना परम दुष्टकर्म समझते हैं। सत्याचरणी यहां तक हैं कि भारत में कह दो कि यह विदेशी (विलायती) बैंक है सब को विश्वास हो जायगा कि यही सुरक्षित है। परस्पर की चोरी इन में बहुत न्यून है, ब्रह्मचर्य्य और पवित्रता में भारतवासियों से कई गुणा बढ़कर हैं, अभिमानत्यागी हैं, अपने अपने पालन में तत्पर रहते हैं, छोटे बड़ों की यथावत् आज्ञा पालन करते हैं, विद्वान् परस्पर मिलकर काम करते हैं। हमारे ऋषि मुनि इसीलिये उन्नत थे कि वे यम नियम अर्थात् सर्वहितकारी और प्रत्येक हितकारी नियमों को संग२ पालन करते हुए मोक्षमार्ग में पग धरते जाते थे यदि प्राचीन आर्य्यों में से कोई सामाजिक नियम के पालन में शिथिल होजाता था तो वह सभा वा समाज की मर्य्यादा से दण्ड का भागी होता था जिसका अभिप्राय यह है कि वे सर्वहितकारी नियमपालन में परतन्त्र और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र रहते थे।

प्राचीन आर्य्यों के सामाजिक जीवन की उत्तमता जानने के लिये हमें उनके वर्ण, आश्रम की ओर विचारदृष्टि देना चाहिये। आजकल पश्चिमीय देशों में ऐसे विद्यालय नहीं बने जिनमें कि चारों वर्णों के पुत्र पुत्री विना फ़ीस दिये न केवल शिक्षा प्रत्युत साथ ही भोजन वस्त्र भी पासकें, परन्तु यह कठिन बात प्राचीन आर्य्यों ने अपने सामाजिक जीवन की पूर्णरूप से उत्तमता के कारण अपने लिये सुगम कर रक्खी थी। उनके गुरुकुलों में विद्यार्थी विद्या तथा भोजनादि का विना फीस दिये दान पाते थे। आजकल पश्चिमीय देशों में वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रमों की प्रणाली उत्तम नहीं है परन्तु प्राचीन आर्य्यों की सामाजिक दशा के उत्तम होने के कारण ये आश्रम उत्तम होते थे। यदि वैदिक समय के चारों वर्णों के मनुष्य अनुपम और उत्तम होगये थे तो उसका कारण उनकी सामाजिक तथा निज सम्बन्धी व्यवस्था की उत्तमता ही थी।

आजकल आर्य्यसन्तान "पब्लिक" (सामाजिक) कार्य्यों का नाम तक भूलगई है परन्तु प्राचीन आर्य्य "पब्लिक" कार्य्य को * यज्ञ के नाम से पुकारते थे।

* यज्ञ में जो ब्रह्मा होता है उसके अर्थ ऐसे पुरुष के हैं जो चारों वेदों का ज्ञाता और यज्ञ का अधिष्ठाता Director-General हो। पुरोहित-Public spirited, learned man or Brhamin.

निरुक्तकार ने यज्ञ के अर्थ ऐसे कर्म के किये हैं जिसमें ये तीन बातें हों:-

(१) देवपूजा, (२) संगतिकरण, (३) दान, विद्वानों का प्रेमपूर्वक आदर सत्कार करना तथा उनको दक्षिणा देने का नाम देवपूजा है नाना प्रकार के पदार्थों को संयुक्त करने और उनसे कला कौशल रचने का नाम संगतिकरण है। समाज में जो निर्बल, निर्धन हैं उनको स्वत्वाभिमान छोड़कर धन देने का नाम दान है। यूरोप की "जीवन का बीमा करनेवाली" सभाएं केवल धनियों की सन्तान को धन दे सकती हैं किन्तु निर्धनों की सन्तान की सहायता का कोई उत्तम प्रबन्ध उन देशों में नहीं है यदि हो तो दरिद्रता पश्चिमीय देशों में इतनी न होती कि सर्व विद्वान् उसको असाध्यरोग अपनी समाज का बतलाते। प्राचीन आर्य्यों ने अपने दान के बल से दरिद्रता अपनी समाज से सर्वथा दूर कर रक्खी थी और यह दान उनके यज्ञ "पब्लिक कार्य्य" का एक अंश था। देवपूजा तब ही हो सकती है जब कि देवगण परस्पर मिलें वा एकत्र हों इसलिये यज्ञ शब्द वैसा ही महान् आशय वाला एक जिज्ञासु के लिये हो सकता है जैसा कि मैक्सम्युलर के लिये सत्य शब्द हुआ है। यज्ञ शब्द आर्य्यों के परोपकारी, सर्वहितकारी सामाजिक जीवन का बोधन करा रहा है।

कोई यह न समझे कि प्राचीन आर्य्यों ने पांच यम और पांच नियम साधारण बात समझी हुई थी परन्तु उन्होंने इनको ही धर्म के दश लक्षणों का नाम दिया था और धर्म को वे प्राणों से प्यारा समझते थे। इनहीं यम नियमों का अनुवाद करके मनुजी ने धर्म के १० लक्षण बनाए हैं, यथा:—

यम नियम	योगशास्त्र	मनुस्मृति	विवरण
१. यम	अहिंसा	अक्रोध	
२. यम	सत्य	सत्य	
३. यम	अस्तेय	अस्तेय	
४. यम	ब्रह्मचर्य्य	इन्द्रियनिग्रह	
५. यम	अपरिग्रह	दम	मानसिक लोभ को अभिमान कहते हैं जो कि विकृत अहंकार वृत्ति होता है। मन के इन्द्रिय द्वारा विषयों के लोभ को विषयासक्ति कहते हैं।
१. नियम	शौच	शौच	
२. नियम	संतोष	धृति	मन की सम्यक् तुष्टि का नाम संतोष है, प्रत्येक दशा में प्रसन्न रहने को संतोष वा धृति कहते हैं।
३. नियम	तप	क्षमा	मानसिक तथा शारीरिक क्षमा करने वा सहने का नाम तप है।
४. नियम	स्वाध्याय	धी	
५. नियम	ई० प्रणिधान	विद्या	विद्या के अर्थ ब्रह्मदर्शन के हैं जो कि यजु० के ४० अ० में लिये गये हैं।

योगसूत्र,	मनुस्मृति का श्लोक,
तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥	धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

आर्य्यसमाज के इन दश नियमों के प्रसंग को हम समाप्त करते हुए आगे चलते हैं।

प्रामाणिक जीवनचरित्र पर आशंकाएं और उनका उत्तर

भारतवर्ष में आजकल सामाजिक जीवन का अभाव सा हो रहा है। आश्चर्य्य है कि लोग भारत में सामाजिक महान् बल को एक मनुष्य के बल से भी न्यून समझते हैं, यही कारण है कि जो जीवनचरित्र ऋषि दयानन्द का पंजाब के आर्य्यसमाजों की शिरोमणि सभा अर्थात् आर्य्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब की ओर से प्रामाणिक रीति पर प्रकाशित हुआ उसकी विद्यमानता में साधारण लोग निज की रीति पर उसके विरुद्ध मनमाने जीवनचरित्र प्रकाशित करने से कोलाहल मचा रहे हैं। क्या कभी संभव है कि जो काम सहस्र उत्तम मनुष्य मिलकर करें वह एक साधारण मनुष्य वैसा ही कर सके? निःसन्देह कभी नहीं कर सकता यदि कर सकता तो क्यों न इस पुरुष ने सभा के जीवनचरित्र प्रकाशित होने से पूर्व वैसा काम किया? आर्य्यप्रतिनिधिसभा ने कितना व्यय किया, पण्डित लेखराम से जिज्ञासु और सच्चे धर्मवीर ने, जिसका कि नाम भारत में विख्यात है, कठिन से कठिन यात्रा करने के कारण यात्री (मुसाफ़िर) के उपपद को धारण करते हुए उस सामग्री को किस निष्पक्षभाव से एकत्र किया उसको समझना सहज नहीं है। यदि अमेरिका में पण्डित लेखराम होता और इस निष्पक्षभाव से जो कुछ सामग्री प्राप्त हुई बिना नमक मिरच लगाए सर्वसाधारण के सन्मुख रख देता तो पश्चिम के बुद्धिमान् उसकी अति प्रशंसा करते, परन्तु इस अभागे देश में चटनीदार नमक मिरच के लेखों का मान है शब्दजाल में फंसने वाले बहुत हैं ऐसी मन्दावस्था से लाभ उठाने के भाव से प्रेरे जाकर एक पुरुष ने ऋषि की एक जीवनचरित्र रूपी कहानी लिख डाली और कई लोगों को भ्रम में डाला।

आशंका

इस कहानी के पृष्ठ ११८ पर लिखा है कि:—

(क) "स्वामीजी ने जून १८७७ में आर्य्यसमाज लाहौर स्थापित किया और अक्टूबर १८८३ में उनका देहान्त हुआ इस छः साल और ४ मास के अन्दर किसी आर्य्यसमाजी को यह ख्याल उत्पन्न नहीं हुआ कि वह स्वामीजी के सिद्धान्तों पर शंका करे। यदि किसी एक वा दो पुरुषों के मन में कोई शंका कभी उत्पन्न भी हुई तो उन्होंने इस ख्याल से उसको दबाए रक्खा कि इससे स्वामीजी के तेज और उनके महत्व में न्यूनता होगी"।

(ख) "स्वामीजी के मरजाने के पश्चात् जब एक सभासद् ने मांस खाने के विषय में स्वामीजी के प्रसिद्ध सिद्धान्त पर प्रश्न किया उसी वक्त सर्व आर्य्यसमाज हिल गया हालांकि स्वामीजी को इस सभासद् की इस राय का मुद्दत पहिले इल्म (ज्ञान) था और बावजूद उस इल्म के उन्होंने कभी उसको समाज से पृथक् करने का इशारा भी नहीं किया परञ्च मरने से कुछ मास पूर्व ही उसको परोपकारिणी सभा में एक निहायत ही आला पदवी दी" ।

दूसरा खण्डन

प्रथम तो (क) (ख) इन लेखों में परस्पर विरोध है क्योंकि एक स्थल पर यह लिखना कि यदि किसी एक वा दो पुरुषों के मन में कोई शंका कभी उत्पन्न हुई तो उन्होंने दबा रक्खी । और फिर यह लिखना कि इस सभासद् की इस राय (विचार) का कि वह मांसभक्षण को वेदानुकूल समझता है स्वामीजी को ज्ञान था । इन दोनों में से एक बात सत्य हो सकती है यदि यह सत्य है कि इस पुरुष ने छः साल और ४ मास अपनी राय को दबाए रक्खा तो दूसरी बात ठीक नहीं हो सकती कि स्वामीजी को उक्त सभासद् की इस बात का ज्ञान था कि वह मांसभक्षण वेदधर्म के अनुकूल समझता है । दोनों में से एक बात तो अवश्य झूठ है ।

(२) लेखक ने बतलाया है कि स्वामीजी ने जान बूझकर एक ऐसे पुरुष को समाज में रक्खा हुआ था जो कि वैदिक सिद्धान्त नहीं मानता था । उस ऋषि को जिसने महाराजा उदयपुर से प्रतापी का भय न करते हुए लाखों की गद्दी पर, जो कि एक मन्दिर की थीं लात मारी, जिसने थियासोफ़िस्टों और लाहौर समाजियों के परमसहायक की पदवी को तृणवत् परे फेंक दिया, उस ब्रह्मऋषि को जिसने महाराजों का भय न करते हुए जोधपुर में सत्य उपदेश किया और प्राण दिये, उस सत्यप्रिय को जिसने बम्बई के हरिश्चन्द्र और मुरादाबादी मुन्शी इन्द्रमणि से प्रसिद्ध आर्यों को धर्म से गिरते हुए देखकर आर्य्यसमाज से बाहर निकलवा दिया, उस सच्चे योगी को जो कपट और छल को निर्मूल करने के लिये रात दिन जान हथेली पर लिये विचरता था, उस आप्त पुरुष को जिसने कभी पाप से मेल करना सीखा ही नहीं था, उस शुद्धाचरणी को जिसके साथ संवाद करते हुए ह्यूम साहिब से विदेशी उसके सत्याचरण की स्तुति करते हुए नहीं थकते उस पर लोग मनोकल्पित दोष लगाकर मांसभक्षण से पापकर्म को सिद्ध करना चाहते हैं ।

आर्य्यसमाज अजमेर की ओर से एक मासिकपत्र "देशहितैषी" नामी निकला करता था उसके खंड २ के अङ्क १० बाबत मास माघ संवत् १६४० के पृष्ठ ८ पर परोपकारिणी सभा के अधिवेशन का वर्णन करते हुए ऐसा लिखा है किः—

"पश्चात् श्रीयुत रावबहादुर गोपालरावहरि देशमुखजी ने निम्नलिखित श्रीस्वामीजी का सिद्धान्त सुनाया और कहा कि इस समय दूर २ स्थानों के आर्य्यगण उपस्थित हैं सब कोई जान लें कि स्वामीजी का क्या सिद्धान्त था। जहांतक हो सके उसी के अनुसार वर्ताव करें। मन्त्रसंहिता वेद हैं, ब्राह्मण इत्यादि वेद नहीं हैं। **वेदों में किसी जन्तु के मारने की आज्ञा नहीं है** *। वेदों में सब सत्य विद्याओं का मूल है। पाषाणमूर्तिपूजन वेदविरुद्ध है। ईश्वर निराकार, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, अजर, अमर, नित्य, पवित्र इत्यादि है उसी की उपासना करनी योग्य है। जो बात नीति और बुद्धि से विरुद्ध हो वह धर्म नहीं। वेदों का अधिकार सब वर्णों को है। कर्म और गुणों से वर्ण हैं वीर्य्य से नहीं। जहांतक होसके बालविवाह से बचकर ब्रह्मचर्य्य रखना, वायु की शुद्धि के कारण हवन की आवश्यकता है। मृतकों को भोजन श्राद्ध कदापि नहीं पहुंचता। वेदों की आज्ञा है कि सब मनुष्य देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तरों की यात्रा करें। आर्य्यों को उचित है कि पाठशाला नियत करें और प्राचीन ग्रन्थों का पठनपाठन रक्खें। स्वार्थसाधकों ने उनमें यत्र तत्र मिला दिया हो उसको वेदों की कसौटी से परीक्षा कर उससे दूर करें इस पर सब सभासदों के हस्ताक्षर कराये गये और सब ने उत्साहपूर्वक कर दिये"।

"देशहितैषी" पत्र के पृष्ठ २ पर परोपकारिणी सभा के १० सभासदों के नाम दिये हुए हैं जिन्होंने हस्ताक्षर किये उनमें लाला मूलराज एम. ए. और रावबहादुर महादेव गोविन्दराव रानडे के नाम भी हैं।

यदि राय मूलराज सच्चे हृदय से मानते थे कि वेद में हिंसा की आज्ञा है तो अत्यन्त शोक का स्थान है कि उन्होंने आत्मा के ज्ञान के विरुद्ध हस्ताक्षर कर दिये। लेखक का उक्त लेख क्या मिथ्या नहीं है जो बतलाता है कि स्वामीजी को ज्ञान था कि यह मांसभक्षण को धर्म मानता है जब कि इस महाशय ने सभा में हस्ताक्षर कर दिये तो किसको भ्रम हो सकता है कि यह मन में इस के विरुद्ध मानता होगा? यदि

* यह अक्षर मोटे हमने कर दिये हैं।

मन में कुछ और था और कर्म में कुछ और तो राय मूलराज दूषित होते हैं न कि श्रीस्वामीजी महाराज ।

जब कोई मनुष्य आर्य्यसमाज में प्रविष्ट होता था उस समय भी निवेदनपत्र पर स्वामीजी इस प्रकार के हस्ताक्षर करा लेते थे कि मैं इन दश नियमों को सत्य मानता हूं और इनके अनुसार चलने का यत्न करूंगा । क्या राय मूलराज बिना हस्ताक्षर किये ही आर्य्यसमाज के सभासद् बन सकते थे ? कदापि नहीं । उन्होंने हस्ताक्षर किये जब कि वह आर्य्यसमाज में प्रविष्ट हुए । क्या दूसरे नियम में ईश्वर को दयालु और न्यायकारी मानते हुए और दया और न्याय की उपासना करने की प्रतिज्ञा करते हुए वह हिंसा को धर्म मान सकते थे ? कदापि नहीं । बात यह है कि राय मूलराज ने कभी स्वामीजी को मन का भाव नहीं बतलाया और हस्ताक्षर करने में कभी त्रुटि नहीं की । इसलिये लेखक का यह दोष कि स्वामीजी ने जान बूझ कर ऐसे पुरुष को आर्य्यसमाज में रख छोड़ा था सर्वथा मिथ्या है ।

फिर लेखक लिखता है कि "मांस खाना वेदविरुद्ध है या नहीं यह प्रश्न ऐसा है जिस पर इस पुस्तक में संवाद करने की ज़रूरत नहीं" सत्य है अभी अंगूर कच्चे हैं कौन दांत खट्टे करे ।

दूसरी आशंका

ऋषि दयानन्द के प्रामाणिक जीवनचरित्र में हमने लिखा था कि "जब उन्होंने ऋषियों की शैली पर वेदों का भाष्य किया तो वह निःसंदेह पृथिवी से लेकर ईश्वरपर्य्यन्त सर्व विद्याओं के मूलरूपी सिद्धान्तों को योगदृष्टि से निर्भ्रान्त जानते थे यदि मिस्टर हरबर्ट स्पेंसर दार्शनिक है तो क्या वर्तमान पदार्थविद्या के सिद्धान्तों से अज्ञ है यदि मनुष्यश्रेणी के एक दार्शनिक विद्वान् के लिये सर्वविद्याओं के मूलरूपी सिद्धान्तों का जानना आवश्यक है तो क्या पूर्ण ब्रह्मचारी और पूर्ण योगी के लिये सर्व विद्याओं का निर्भ्रान्त जानना कठिन है" हमारे इस लेख का लेखक वह आशय निकालते हैं जो कि है नहीं, अर्थात् लिखते हैं कि एक दल स्वामी दयानन्द को निर्भ्रान्त मानता है । दूसरा मानता है कि कोई मनुष्य निर्भ्रान्त न हुआ न होगा और न होसकता है ।

इसका खंडन

हमने यह कहां लिखा है कि कोई ऋषि स्वरूप से निर्भ्रान्त होता है अथवा स्वामीजी स्वरूप से निर्भ्रान्त थे वा यह कि वह जन्म से ही जीवन्मुक्त थे हमने तो यह दिखाया कि योगदृष्टि से वह सर्वविद्याओं

को निर्भ्रान्त जानते थे इसके अर्थ यह नहीं हैं कि योगी विना समाधि के भी यथार्थ दर्शन पासकता है। स्पेन्सर के दृष्टान्त से हमने संभावना भी दर्शाई परन्तु उसको कौन समझे? अच्छा यह क्या मानते हैं कि कोई मनुष्य समाधिदशा में भी निर्भ्रान्त हो नहीं सकता अर्थात् स्वभाव से आत्मा मलिन है जैसा कि ईसाईमत मानता है। अस्तु, फिर क्या मुक्ति कभी जीव की होगी वा नहीं? इनके मत में तो न कभी किसी की हुई, न होगी और न होनी चाहिये। अथर्ववेद भी इनके मत में, जो संशयों की निवृत्ति के लिये है, निष्फल ही हो जायगा। क्योंकि इनके लेखानुसार कभी जीव भ्रान्तिरहित हो ही नहीं सकता इस विषय को हम 'ऋषिमीमांसा' शीर्षक में पूर्व पृथक् लिख आये हैं वहां देखलो यहां पर कुछ थोड़ासा और लिखते हैं बुद्धिमान् उस पर विचार कर हम से सहमत होसकते हैं।

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मेभ्य उपदेशेन मन्त्रान्संप्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च" । निरुक्तं, नैगमकाण्डम् । अ० १ । खंड २० । पृष्ठ ६ । तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० ३६७ ।

इस पर ऋषि दयानन्दजी यह लिखते हैं:—

"यैः सर्वा विद्या यथावद्विदितास्तऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतवेदेभ्यो मनुष्येभ्य उपदेशेन वेदमन्त्रान्संप्रादुः मन्त्रार्थांश्च प्रकाशितवन्तः" । (ऋग्वे० भूमिका पृष्ठ ३६७-६८)

"विद्यां चाविद्यां"—(यजु० अ० ४० । मं० १४) इस मन्त्र का भाष्य करते हुए ऋषि दयानन्द इस प्रकार विद्या शब्द के अर्थ दर्शाते हैं "**(विद्यया) आत्मशुद्धान्तःकरणसंयोगधर्मजनितेन यथार्थदर्शनेन**" ।

(देखो वेदभाष्य)

"समानो मन्त्रः" (ऋ० अ० ८ । अ० ८ । व० ४९ । मं० ३) की व्याख्या ऋ० भूमिका में इस प्रकार करते हुए ईश्वर से लेकर पृथिवीपर्यंत अर्थात् सब पदार्थों की ज्ञानोपलब्धि का उपदेश देते हैं।

"हे मानवा वो युष्माकं मंत्रोऽर्थान्मामीश्वरमारभ्य पृथिवीपर्यन्तानां गुणप्रसिद्धसामर्थ्यगुणानां पदार्थानां भाषणमुपदेशनं ज्ञानं वा भवति"।

इस पर विशेष लेख करने की हम इसलिये आवश्यकता नहीं समझते कि पूर्व इस पर लिख चुके हैं इस स्थल पर ये अधिक प्रमाण देने ही उचित समझे गये।

अच्छा अब हम यह दर्शाना चाहते हैं कि आक्षेपकर्त्ता जो कुछ स्वयं लिख चुके हैं उसको वह स्वयं समझते भी हैं वा नहीं, क्योंकि जो आशंका हम पर करते हैं उसके विरोध में इनकी कहानी में से हम इनका ही लेख दिखाते हैं।

उनकी पुस्तक खोलते ही पहिले एक पृथक् पृष्ठ पर यह लिखा हुआ है जिसको इन्होंने अपनी पुस्तक का Motto (सिद्धान्त) बनाया है। इसके विरुद्ध मानो यह कभी हो नहीं सकते। वह यह है:—

"ऋग्वेद मं० १। सू० १२२। मं० १२" यह लिख कर फिर यह मंत्र लिखा है—

एतं शर्द्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे। द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्"।

फिर मोटे अक्षरों की उर्दू लिपि में इस के यह अर्थ दिये हैं:—

"जो विद्वान् मनुष्य पूर्ण विद्याओं को जाननेहारे समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं वे यशस्वी होते हैं"।

यह अपनी पुस्तक का Motto (सिद्धान्त) आक्षेपकर्ता ने स्वयं स्वीकार किया है और स्वामीजी पर घटाया है क्योंकि जिस पुस्तक का यह Motto है वह जीवनचरित्र की है। जब स्वयं लेखक साहिब मानते हैं कि स्वामी दयानन्दजी पूर्ण विद्याओं को जानने हारे और समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते थे तो फिर हम पर विदित नहीं होता कि क्यों वृथा आशंका करने को उद्यत हुए। हमने भी तो यही बात लिखी थी। इन्होंने तो वह बात की जो पंजाब में कही जाती है कि एक धनी ने एक नौकर को चोरों से गृह बचाने के लिये रक्खा और उसको कह दिया कि चोर को पकड़ना तेरा काम है। उसने कहा अच्छा, यह कहकर नौकर कई दिन मकान की रखवाली करता रहा चोर कोई न आया। एक दिन एक भले पुरुष को प-

पकड़ कर धनी के पास ले गया और कहा कि लो मैंने अपना काम पूरा कर दिया। धनी ने कहा कि यह तो चोर नहीं है। नौकर ने कहा कि कोई चोर कभी न आवेगा, तो क्या मैं अपना काम छोड़ दूंगा। सचमुच आक्षेपकर्ता ने अपना काम हम पर तथा धर्मवीर पण्डित लेखरामजी पर वृथा आक्षेप करना ही समझ रक्खा है। चाहे आशङ्का बने न बने इन्होंने कर ही डालनी, इनसे कोई पूछे कि जब आपकी पुस्तक का Motto (सिद्धान्त) यह लेख है तो आपने फिर निर्भ्रान्त के चक्र में कोलाहल मचा कर हमारे लेख पर वृथा आक्षेप क्यों किये? उस समय यही उत्तर दे सकते हैं कि आक्षेप करना ही हमारा काम है। लोग आक्षेप के योग्य लेख न करेंगे तो क्या हम भी आक्षेप करना छोड़ सकते हैं।

और लीजिये अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८३ पर लेखकजी लिखते हैं कि:—

"दुर्दशा देख के भारतभूमि की दयामय को दया आई। एक महर्षि को उत्पन्न करके दीनी उन्हें प्रभुताई। वैदिक पूर्ण पंडिताई"।

हिंदू लोग तो इनके इस लेख से अनुमान कर सकते हैं कि लेखक स्वामीजी को अवतार मान रहे हैं परन्तु यह स्वयं लिखते हुए विचारते तक नहीं दूसरों के शास्त्रोक्त लेख पर आशङ्का करने को झट उद्यत हो जाते हैं।

फिर आप इसी पुस्तक के पृष्ठ १३६ पर लिखते हैं कि:—

"आओ युवा पुरुषो! तुम को बालजितेन्द्रिय, पूर्णब्रह्मचारी, महापरोपकारी, देशहितैषी, विद्वान्, योगी महर्षि दयानन्द के जीवन की कहानी सुनाएं"।

क्या हमने इन शब्दों से कोई बढ़कर लिख दिया था जिस पर आप आशङ्का करने लगे थे। सच तो यह है कि लेखक साहिब संस्कृत के महर्षि आदि शब्दों के शास्त्रीय अर्थ जानते ही नहीं। बिन जाने उनका प्रयोग कर रहे हैं। फिर लिखते हैं कि:-

"स्वामी दयानन्द परमयोगी थे"।

(देखो इनकी कहानी पृष्ठ ४५२)

"उसके चेहरे से (मुख पर से) इस प्रकार का तेज टपकता था जो क्षणभर में उसके विरोधियों को भयभीत कर देता था"। (पृष्ठ ४५४)

"हे मानवा वो युष्माकं मंत्रोऽर्थान्मामीश्वरमारभ्य पृथिवीपर्य्यन्तानां गुप्तप्रसिद्धसामर्थ्यगुणानां पदार्थानां भाषणमुपदेशनं ज्ञानं वा भवति"।

इस पर विशेष लेख करने की हम इसलिये आवश्यकता नहीं समझते कि पूर्व इस पर लिख चुके हैं इस स्थल पर ये अधिक प्रमाण देने ही उचित समझे गये।

अच्छा अब हम यह दर्शाना चाहते हैं कि आक्षेपकर्त्ता जो कुछ स्वयं लिख चुके हैं उसको वह स्वयं समझते भी हैं वा नहीं, क्योंकि जो आशंका हम पर करते हैं उसके विरोध में इनकी कहानी में से हम इनका ही लेख दिखाते हैं।

उनकी पुस्तक खोलते ही पहिले एक पृथक् पृष्ठ पर यह लिखा हुआ है जिसको इन्होंने अपनी पुस्तक का Motto (सिद्धान्त) बनाया है। इसके विरुद्ध मानो यह कभी हो नहीं सकते। वह यह है:—

"**ऋग्वेद मं० १। सू० १२२। मं० १२**" यह लिख कर फिर यह मंत्र लिखा है—

एतं शर्द्धं धाम यस्य सूरेरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे। द्युम्नानि येषु वसुताती रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु वाजम्"।

फिर मोटे अक्षरों की उर्दू लिपि में इस के यह अर्थ दिये हैं:—

"जो विद्वान् मनुष्य पूर्ण विद्याओं को जाननेहारे समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते हैं वे यशस्वी होते हैं"।

यह अपनी पुस्तक का Motto (सिद्धान्त) आक्षेपकर्ता ने स्वयं स्वीकार किया है और स्वामीजी पर घटाया है क्योंकि जिस पुस्तक का यह Motto है वह जीवनचरित्र की है। जब स्वयं लेखक साहिब मानते हैं कि स्वामी दयानन्दजी पूर्ण विद्याओं को जानने हारे और समस्त विद्याओं को पाकर औरों को उपदेश देते थे तो फिर हम पर विदित नहीं होता कि क्यों वृथा आशंका करने को उद्यत हुए। हमने भी तो यही बात लिखी थी। इन्होंने तो वह बात की जो पंजाब में कही जाती है कि एक धनी ने एक नौकर को चोरों से गृह बचाने के लिये रक्खा और उसको कह दिया कि चोर को पकड़ना तेरा काम है। उसने कहा अच्छा, यह कहकर नौकर कई दिन मकान की रखवाली करता रहा चोर कोई न आया। एक दिन एक भले पुरुष को प-

कड़ कर धनी के पास ले गया और कहा कि लो मैंने अपना काम पूरा कर दिया। धनी ने कहा कि यह तो चोर नहीं है। नौकर ने कहा कि कोई चोर कभी न आवेगा, तो क्या मैं अपना काम छोड़ दूंगा। सचमुच आक्षेपकर्ता ने अपना काम हम पर तथा धर्मवीर पण्डित लेखरामजी पर वृथा आक्षेप करना ही समझ रक्खा है। चाहे आशङ्का बने न बने इन्होंने कर ही डालनी, इनसे कोई पूछे कि जब आपकी पुस्तक का Motto (सिद्धान्त) यह लेख है तो आपने फिर निर्भ्रान्त के चक्र में कोलाहल मचा कर हमारे लेख पर वृथा आक्षेप क्यों किये ? उस समय यही उत्तर दे सकते हैं कि आक्षेप करना ही हमारा काम है। लोग आक्षेप के योग्य लेख न करेंगे तो क्या हम भी आक्षेप करना छोड़ सकते हैं।

और लीजिये अपनी पुस्तक के पृष्ठ ८३ पर लेखकजी लिखते हैं कि:—

"दुर्दशा देख के भारतभूमि की दयामय को दया आई। एक महर्षि को उत्पन्न करके दीनी उन्हें प्रभुताई। वैदिक पूर्ण पंडिताई"।

हिंदू लोग तो इनके इस लेख से अनुमान कर सकते हैं कि लेखक स्वामीजी को अवतार मान रहे हैं परन्तु यह स्वयं लिखते हुए विचारते तक नहीं दूसरों के शास्त्रोक्त लेख पर आशङ्का करने को झट उद्यत हो जाते हैं।

फिर आप इसी पुस्तक के पृष्ठ १३६ पर लिखते हैं कि:—

"आओ युवा पुरुषो ! तुम को बालजितेन्द्रिय, पूर्णब्रह्मचारी, महापरोपकारी, देशहितैषी, विद्वान्, योगी महर्षि दयानन्द के जीवन की कहानी सुनाएं"।

क्या हमने इन शब्दों से कोई बढ़कर लिख दिया था जिस पर आप आशङ्का करने लगे थे। सच तो यह है कि लेखक साहिब संस्कृत के महर्षि आदि शब्दों के शास्त्रीय अर्थ जानते ही नहीं। बिन जाने उनका प्रयोग कर रहे हैं। फिर लिखते हैं कि:-

"स्वामी दयानन्द परमयोगी थे"।

(देखो इनकी कहानी पृष्ठ ४५२)

"उसके चेहरे से (मुख पर से) इस प्रकार का तेज टपकता था जो क्षणभर में उसके विरोधियों को भयभीत कर देता था"। (पृष्ठ ४५४)

"उनके चेहरे की ज्योति और उनके तेज ने उनकी हिम्मतों को आन की आन में चकनाचूर कर दिया"। (पृष्ठ ४५५)

"जहां जहां दयानन्द जाता है बहुत लोग उसके सामने उसके पगों की धूलि में सिजदा करते हैं (शिर झुकाते हैं)"। (पृष्ठ ४५६)

फिर स्वयं ही लिखते हैं कि:—"उस पुरुष की ज़िन्दगी में ज़रूर कुछ न कुछ जादू का असर है"। (पृष्ठ ४६१)

"उसको वेद बरज़बान याद थे। उसके तमाम दिलोदिमाग़ में वेद सरायत किये हुए थे उसने ऋग् यजु का बड़ाभारी भाष्य किया है, यूं कहो कि एक गूना वेदों पर उसको तसल्लत हासिल था"। (पृष्ठ ४७१)

हम इसी प्रकार के कई और वाक्य आक्षेपकर्त्ता की लेखनी से निकले हुए दिखा सकते हैं। इन लेखों से निष्पक्ष सज्जन अनुभव कर सकते हैं कि इनके लेख में किस प्रकार का परस्पर विरोध है। एक स्थल पर तो ऋषि दयानन्द को कोसते हैं दूसरे स्थल पर महर्षि, परमयोगी सब कुछ दर्शा रहे हैं। यह लेखक अपनी कहानी के पृष्ठ ८६, ८७ पर कृष्ण, बुद्ध, कालिदास, नानक, अशोक, ईसा, महम्मद, मूसा, लूथर, कणाद, गौतम, व्यास, बोनापार्ट, मेज़नी, गैरीबालडी सब को एक ही श्रेणी के महापुरुष बतलाते हैं।

आजतक तो सब विद्वान् महाकवि कालिदास की तुलना शेक्सपीयर से करते रहे, परन्तु लेखक ने अब पण्डित कालिदास और बोनापार्ट को एक ही श्रेणी का बतला दिया। क्षत्रिय ब्राह्मण सब एक कर दिये। ब्राह्मो लोग तो ईसा, नानक, मूसा आदि भक्तों को एक श्रेणी का दर्शाते थे। यह ऐसे उदारचित्त निकले कि ऋषि व्यास, गौतम और कणाद को अशोक और बोनापार्ट से क्षत्रियों के समान कर दिया।

आर्य्यसमाजों के नायक कौन है ?

आर्य्यसमाजों का नायक (लीडर) कौन है ? यह प्रश्न बहुधा सुनने में आता है। अपनी अन्तिम पुस्तक में महाशय मेक्सम्युलर ने यह दर्शाया है कि ऋषि दयानन्द के पश्चात् अब आर्य्यसमाजों का कोई नायक नहीं रहा। इसलिये वह आर्य्यसमाजों को ब्राह्मसमाजों से मिलने का उपदेश करते हैं और यह इसलिये कि उनको मन में निश्चय है कि ब्राह्मसमाजी अन्त को ईसाई मत में मिल जावेंगे वा उसके लिये भारत में सबूक बांध

देंगे। यदि उन को पता होता कि **आर्य्यप्रतिनिधि सभाएं** भी हैं तो वह आर्य्य-समाजों को विना नायक के कभी न मानते। अस्तु, भारतवर्ष में जो ७०० से अधिक आर्य्यसमाजें हैं वह अपने २ प्रान्त की आर्य्यप्रतिनिधि सभा को अपना २ नायक मानती हैं। पंजाब, सिंध, बिलोचस्थान की आर्य्यसमाजों का नायक आर्य्यप्रतिनिधि-सभा पंजाब है। इसी प्रकार पश्चिमोत्तर तथा अवध देश की समस्त आर्य्यसमाजों का नायक आर्य्यप्रतिनिधिसभा पश्चिमोत्तर देश व अवध है। राजस्थान प्रान्त की सर्व आर्य्यसमाजों का नायक आर्य्यप्रतिनिधिसभा राजस्थान है। और इसी प्रकार बंगाल विहार तथा बम्बई प्रान्त की समाजों का नायक वहां की प्रतिनिधिसभा है। सर्व आर्य्य संन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ, ब्रह्मचारी आदि अनेक धार्मिक विद्वान् अपने अपने प्रान्त के आर्य्यसमाजों की लीडर (नायक) अपनी प्रतिनिधिसभा को समझते हुए उस की सामाजिक व्यवस्थानुसार सामाजिक कार्य्यवाही करते हैं।

अमृतसर
ता० २ जनवरी १६०३ ई०
संशोधन करने की ता० २६ जुलाई १६२४.

वैदिकधर्मियों का
एक तुच्छ सेवक—
आत्माराम, अमृतसरी.

॥ ओं शम् ॥

सूचना—इस लेख में जो कुछ हमने लिखा है उसके उत्तरदाता हम हैं कोई आर्य्यसमाज वा प्रतिनिधिसभा नहीं।

ओ३म्
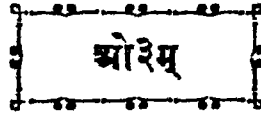
महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र

(रावसाहब रामविलासजी शारदा लिखित)

स्वामीजी का जन्मस्थान

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी काठियावाड़ देश के रहने वाले थे, उन्होंने संन्यासधर्म्म के नियमानुसार अपने जन्मस्थान और पिता आदि का नाम कभी नहीं बतलाया। क्योंकि वे कहते थे कि गुजरात देश में मोह अधिक है। यदि मेरा पता मेरे सम्बन्धियों को मिल जायगा तो वे मुझ को फिर गृहस्थ में घसीटने का यत्न करेंगे, जिससे मेरे योगसाधन आदि में बाधा पड़ेगी और जो देशोपकार व धर्म्मोद्धार का काम मैंने उठाया है वह योंही रह जायगा।

नाम व जन्मदिन व कुल

श्रीयुत पंडित लेखरामजी ने अपनी छानबीन के पश्चात् लिखा था कि वे शहर मोरवी के (जो मछुकांहाटा नदी के किनारे पर वसा हुआ है और जो काठियावाड़ की एक रियासत की राजधानी है) रहनेवाले थे, और इनका जन्मनाम "मूलशंकर" था। इन्होंने संवत् १८८१ अर्थात् सन् १८२४ ई० में जन्म लिया था। इनके पिता का नाम "अंबाशंकर" था। स्वामीजी औदीच्य ब्राह्मण थे, परन्तु इनके कुल में भिक्षावृत्ति नहीं थी। इनके यहां ज़मींदारी के अतिरिक्त साहूकारी व लेन देन का काम भी होता था, जिससे उनका निर्वाह भले प्रकार से होता था। इनके यहां ज़मादारी का पद, जो कि आजकल के तहसीलदारी के बराबर था, पीढ़ियों से चला आता था और इसी कारण मालगुज़ारी उघाने का काम भी इनके यहां था, जिसके लिये राज से सिपाही मिले हुए थे। श्रीयुत बाबू देवेन्द्रनाथ मुकर्जी ने कई वर्षों के अनुसन्धान के पीछे निश्चय किया है कि स्वामी दयानन्दजी मोरवी राज्य के टंकारा ग्राम के निवासी थे और इनके पिता का नाम अम्बाशंकर

नहीं था, किन्तु कर्षनजी था। उक्त बंगाली बाबूजी का मत इस समय स्वीकार करने योग्य है। क्योंकि श्रीयुत प्रो० रामदेवजी ने भी खोज के पश्चात् उसे समर्थन किया है।

विद्यारम्भ और यज्ञोपवीत

स्वामीजी को पांच वर्ष की अवस्था में देवनागरी अक्षरों का लिखाना प्रारम्भ किया गया और इनके माता पिता और कुटुम्ब के बड़े बूढ़ों ने इनको अपने कुल की रीति के अनुसार शिक्षा देना प्रारम्भ किया और इनको बहुत से स्तोत्र मंत्र और श्लोक आदि कंठ करा दिये थे। आठवें वर्ष में इनका यज्ञोपवीतसंस्कार कराया गया और इनको गायत्री संध्या, उपासना करने की विधि भी सिखलाई गई। इनको इनके पिता पढ़ाया करते थे जो असल में सामवेदी ब्राह्मण थे परन्तु शैवमत को मानते थे। इनके पिता ने यजुर्वेद संहिता प्रारम्भ कराके रुद्री कंठ करादी और बाल्यावस्था से ही शैवमत के संस्कार डालने प्रारम्भ किये। इनके पिता इनको इस मत सम्बन्धी प्रदोष आदि समस्त व्रतों के रखने की आज्ञा दिया करते और कहा करते थे कि मृत्तिका का शिवलिङ्ग बनाकर उसकी पूजा किया कर।

शिवरात्रि का व्रत

साधारण प्रकार से इनके पिता चाहते थे कि वह नियमानुसार शिवरात्रि का व्रत रक्खे, कथा सुने और जागरण करे, परन्तु इनकी माता कहा करती थी कि यह बालक है इससे व्रतादि नहीं रक्खे जासकते। इनके पिता इनको संस्कृत व्याकरण और वेद का पाठमात्र पढ़ाया करते थे और मन्दिरों और सत्संगों में अपने मित्रों के यहां इनको अपने साथ लेजाया करते थे और शिवपुराण की कथा अपने पास बिठला कर सुनाया करते थे और सदैव समझाया करते थे कि शिव की उपासना सब से श्रेष्ठ है संवत् १८६४ में जब कि इनकी अवस्था १४ वर्ष की थी तब इन्होंने सारी यजुर्वेद संहिता कंठस्थ करली थी और दूसरे वेदों का पाठ भी सीख लिया था। शब्दरूपावली आदि व्याकरण की छोटी २ पुस्तक भी पढ़ली थीं। इसी वर्ष स्वामीजी के पिता ने इन्हें शिवरात्री का व्रत करने की आज्ञा दी परन्तु वे इसके लिये राज़ी नहीं हुए तब इनको इस व्रत के माहात्म्य की कथा सुनाई गई जो इन्हें अच्छी मालूम हुई और यह व्रत रखने को राज़ी होगये। इनका स्वभाव प्रातःकाल ही कुछ कलेवा करने का था इस कारण इनकी माता ने कहा कि इससे व्रत नहीं हो सकेगा यदि रक्खेगा तो बीमार हो जायगा परन्तु इनके पिता ने एक भी न सुनी और कहा कि कुल की रीति के अनुसार पूजा अवश्य करनी चाहिये

और स्वामीजी को व्रत रखने की कठोर आज्ञा दी। अन्य देशों की प्रणाली से भिन्न काठियावाड़ में यह व्रत फाल्गुन के बदले माघ बदी १४ को होता है। इस दिन संध्या को इन्हें समझाया गया कि तुम्हें रात भर जागना पड़ेगा नहीं तो व्रत का माहात्म्य जाता रहेगा इसी रात को इन्हें पूजा पाठ की विधि भी सिखलाई गई थी। इनके नगर के बाहर एक बड़ा शिवालय था, जहां नगर के बड़े बड़े प्रतिष्ठित व सर्व साधारण लोग इस व्रत को रख कर जाया करते और पूजा पाठ किया करते थे। इस मंदिर में स्वामीजी, उनके पिता, बहुत से लोग शिवरात्री को इकट्ठे हुए। रात्रि के पहिले पहर की पूजा समाप्त हुई और दूसरे पहर की पूजा भी लोगों ने ज्यों त्यों करके पूरी की, परन्तु आधीरात होने पर लोग ऊंघने लगे और एक २ करके सब सोगये। स्वामीजी के पिता को सब से पहिले नींद आई जिनको सोता देख कर मंदिर के पूजारी भी बाहर जाकर सोगये परन्तु स्वामीजी यह सोच कर कि सोने से कहीं व्रत का फल नष्ट न होजाय अपनी आंखों पर पानी छिड़क छिड़क कर जागते रहे।

शिवलिंग पर चूहा

जब बहुत रात्रि बीत गई और मंदिर में सुनसान होगई तब एक चूहा बिल से निकल पिंडी के चारों तरफ फिरने लगा और जो सामग्री उस पर चढ़ी हुई थी उसको मूर्ति पर चढ़कर खाने लगा स्वामीजी इस समय जाग रहे थे और चुपके बैठे हुए सारा तमाशा देख रहे थे। इस घटना से अनेक प्रकार के संकल्प विकल्प उनके चित्त में उठने लगे। बालक दयानन्द के दिल में प्रश्न पैदा हुआ कि क्या यह वही महादेव है कि जिसका वर्णन कथा में आया था? वह जो आदमी की तरह एक देवता है, जो चलता, फिरता, खाता, पीता, त्रिशूल धारण करता, डमरू बजाता और बैल की सवारी करता है और किसी को वर और किसी को शाप देता है, वह कैलाश पर्वत का स्वामी बतलाया जाता है और यह मूर्त्ति तो एक तुच्छ मूसे को भी हटाने की शक्ति नहीं रखती यह क्या बात है? यह घटना एक साधारण मनुष्य के लिये तो कुछ भी नहीं थी परन्तु स्वामी दयानन्द जैसे महान् आत्मा पर विना असर डाले कब रह सकती थी? सच पूछो तो इसी रात को उस धार्मिक परिवर्तन की नींव रक्खी गई कि जिसने इस देश ही नहीं वरन सुशिक्षित जगत् में एक हलचल मचादी। यह किसको मालूम था कि संवत् १८९४ के माघ सुदी १४ की रात को एक छोटासा बालक शिवालय में जायगा और उसकी आत्मा ज्ञानरूपी आवाज़ से एक चूहे और मूर्त्ति के द्वारा यह पुकार कर कहेगी कि हे दयानन्द! मूर्ख लोग परमात्मा को भूलकर एक पत्थर के लिङ्ग का पूजन करते हैं

तू उठ, विद्याध्ययन कर, वेदों को जो कि ईश्वरीय ज्ञान का भंडार है, पढ़ कर लोगों को सत्य उपदेश कर कि सच्चा शिव कल्याणकारी एक परमात्मा है जिसकी कोई मूर्त्ति नहीं है। अए लोगो! तुम इस अंधेरे से निकलो, ज्ञान और योग द्वारा अपने कल्याण के साधन करो। इस घटना पर आनरेबल सर सय्यद अहमदखां साहब सी. एस. आई. लिखते हैं;कि यदि यह इलहाम नहीं था तो क्या था कि जिसने स्वामी दयानन्द के दिल को मूर्त्तिपूजा से फेर दिया, परन्तु यह सय्यद साहब की भूल है, इलहाम कोई नहीं था यह तो महान् पुरुषों के आत्माओं की निर्मलता और शुद्धता का दृष्टान्त था।

अन्त को स्वामी दयानन्द अपने विचारों को बहुत समय तक न रोक सके और शीघ्र ही अपने पिता को जगाकर निर्भय होकर पूछा कि आप सत्य उपदेश करके मेरी शंका निवारण कीजिये कि क्या यह महादेव वही है जो इस मंदिर में है, जिसका वर्णन मैंने कथा में सुना था? इस प्रश्न ने स्वामी दयानन्द के पिता को चकित और क्रोधित कर दिया और उन्होंने लाल २ नेत्र करके पूछा कि तू यह प्रश्न क्यों करता है? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इस पाषाण के महादेव पर तो मूषिक दौड़ते और खराब करते हैं जिस महादेव का वर्णन कथा में सुना था वह तो चेतन है, वह अपने ऊपर चूहों को क्यों चढ़ने देता यह तो शिर तक नहीं हिलाता और न अपने आपको बचाता है इसके उत्तर में स्वामीजी के पिता ने उन्हें यह कहकर समझाने का यत्न किया कि कैलाश पर्वत पर जो महादेव रहते हैं उनका आवाहन करके यहां पूजते हैं क्योंकि इस कलिकाल में उनके दर्शन नहीं होते और इसी करके पाषाण आदि की मूर्त्ति बना उसमें महादेव की भावना कर उसका पूजन करते हैं तुझे शंका करने की बहुत खराब बान पड़ गई है परन्तु ऐसी बातों से स्वामी दयानन्द की कब शान्ति हो सकती थी उनके चित्त पर उसी समय से यह बात जम गई कि मूर्त्तिपूजा ठीक नहीं है और उन्होंने अपने मन में यह ठान लिया कि जबतक मैं महादेव को प्रत्यक्ष न देखलूं तबतक उसकी पूजा नहीं करूंगा। इससे थोड़ी देर के पश्चात् स्वामीजी ने क्षुधा और थकावट के कारण अपने पिता से घर जाने की आज्ञा मांगी उन्होंने आज्ञा देदी और कहा कि सिपाही को साथ लेजा परन्तु भोजन कदापि न करना, स्वामीजी ने घर पहुंच कर अपनी माता से कहा कि मुझे बहुत भूख लगी है, उसने कुछ मिठाई खाने को दी और कहा कि मैं तो पहिले ही कहती थी कि तुझ से व्रत नहीं हो सकेगा तूने नाहक व्रत रक्खा और मिठाई खाले और अपने पिता के पास पीछे मत जाना। स्वामीजी मिठाई खाकर एक बजे के पश्चात् सोगये और दूसरे दिन ८ बजे उठे। जब इनके पिता

प्रातःकाल घर पर आये और इनके रात को मिठाई खालेने के समाचार सुने तो बहुत क्रुद्ध हुए परन्तु इन्होंने स्पष्ट यह उत्तर दिया कि जिस महादेव का वर्णन मैंने कथा में सुना वह महादेव मंदिर में नहीं था इस कारण मैं उसकी पूजा नहीं करूंगा और अपने चचा से भी कहा कि पढ़ने लिखने के कारण मुझ से व्रत पूजनादि नहीं होसकते जिस पर इन के चचा और माता ने इनके पिता को इस बात पर विशेष आग्रह करने से रोक दिया और वे भी शान्त होगये कि अच्छा पढ़ने दो। इस प्रकार इस व्यर्थ कार्य्य से बचकर स्वामीजी बड़ा चित्त लगाकर पढ़ने लगे और एक पण्डित से निघण्टु, निरुक्त, पूर्वमीमांसा और कर्मकाण्ड सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ीं।

छोटी बहिन की मृत्यु

इस घटना के दो वर्ष पश्चात् एक और ऐसी घटना हुई जिसने स्वामीजी की महान् आत्मा को पूरा २ अपनी ओर खैंच लिया और उनकी काया पलटदी। यह उनकी छोटी बहिन की मृत्यु थी, स्वामीजी से छोटे दो भाई और दो बहिनें थीं। संवत् १८९६ में, जब कि इनकी आयु १६ वर्ष की थी, यह एकदिन अपने कुटुम्ब वालों के साथ एक मित्र के यहां नाच देखने गये थे। अचानक नौकर ने आकर कहा कि उनकी छोटी बहिन को जिसकी कि आयु १४ वर्ष की थी हैज़ा होगया, घर के सारे आदमी दौड़े गये, बहुत कुछ वैद्यों के द्वारा चिकित्सा कराई परन्तु किसी से आराम नहीं हुआ और ४ घंटे पश्चात् वह मरगई, घर में रोना पीटना मचगया और सब शोकसागर में डूबगये।

दुःखसागर से पार उतरने का विचार

स्वामीजी के जीवन में यह पहिला ही अवसर था कि उन्होंने मृत्यु को अपनी आंखों से देखा। एक ओर तो सारे कुटुम्बियों के रोने का दृश्य था और दूसरी ओर मृत्यु का भयानक दृश्य इनकी बुद्धि को घेरे हुए था। संसार कुछ नहीं है, जन्ममरण क्या है और उनसे रहित मनुष्य किस प्रकार से हो सकता है? यह प्रश्न उनके मन में उत्पन्न होने लगे, यह सोचते थे कि मरना सब को है, इस अटल नियम को कोई नहीं टाल सकता, इसलिये कोई ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे इस दुःख से छुटकारा होजाय। जिस आत्मा ने शिवलिंग पर चूहे दौड़ते देख मूर्तिपूजा के मिथ्यापन को जान लिया था उस पर मृत्यु का दृश्य विना असर डाले कब रह सकता था। मौत क्या है और संसार में मनुष्य-जीवन नलिनीदल पर बिन्दुवत् है, इस बात ने इनके हृदय पर पूरा २ प्रभाव डाला और इस खेलकूद और खाने पीने की उमर में बालक को वैराग्य की चाट ने बेसुध कर दिया। इसी कारण जहां एक ओर सारे कुटुम्बी

हाहाकार करते थे वहां दूसरी ओर बालक दयानन्द मृतक शरीर के निकट एक दीवार के सहारे खड़ा २ इस चलायमान जगत् को जानता हुआ यह सोचरहा था कि किस प्रकार इस दुःख से मनुष्य मुक्त हो सकता है ? इस सोच विचार में रोना पीटना सब भूल कर मूर्त्तिवत् खड़ा रहा, इनके पिता माता ने ताने से यह कहा कि यह लड़का बड़ा पाषाणहृदय है । अन्य लोगों ने भी इनको रोने पीटने में शामिल न होने के कारण बहुत कुछ बुरा भला कहा, परन्तु लाख ताने मारो इनकी आत्मा इन बन्धनों से रहित होने की युक्ति में लगी हुई थी । माता पिता ने इनको टालने के लिये कहा कि जाओ सो रहो परन्तु वहां नींद किसे आती थी, मृत्यु ने घोरनिद्रा लेनेवाले बालक को अशान्त कर दिया था । सोच यह था कि एक दिन मुझे भी इसके मुंह में जाना है उस समय के दुःख से बचने का क्या उपाय है ? इस साधन के खोज में अपने आपे से बाहिर होगये और रात दिन इसी चिन्ता में कटने लगे परन्तु इन्होंने इस बात को किसी पर प्रकट नहीं किया और नियमानुसार पढ़ने में लगे रहे ।

चचा का देहान्त

स्वामी दयानन्द के चचा एक बड़े धार्मिक विद्वान् पुरुष थे, वे स्वामीजी से बहुत प्यार रखते थे, जब स्वामीजी की अवस्था १६ वर्ष की हुई तो उनके चचा का भी देहान्त हैज़े की बीमारी से हो गया, जब वे मृत्युरूपी ग्राह के मुख में जानेवाले ही थे कि उन्होंने स्वामीजी को अपने बिस्तर के पास बुलाया, लोग उनकी नाड़ी देख रहे थे और वे स्वामीजी की ओर देखकर आंसुओं की धारा बहा रहे थे । इस दृश्य को बालक दयानन्द देख नहीं सके और वे भी फूट २ कर रोने लगे, यहांतक कि उनकी आंखें सूज गईं । छोटी प्यारी बहिन की मृत्यु ने जिस आत्मा को शोकसागर से निकाल ज्ञानरूपी नौका पर बिठलाया था उसी को प्यारे हितैषी चचा की मौत ने पिघला दिया और बेकाबू कर दिया । जो विचार कि बहिन की मृत्यु से आरम्भ हुए थे वे चचा की मृत्यु के दृश्य से और भी दृढ़ हो गये ।

अमरफल की प्राप्ति का दृढ़ संकल्प

बुद्धिमान् बालक ने अपने चचा के मृतकशरीर के सामने ही अपने जीवन का निश्चय कर लिया और यह प्रण कर लिया कि सारी आयु अमर करनेवाली ओषधि के खोज में लगाऊंगा । सारांश चचा की मृत्यु से वैराग्य का वेग ऐसा बढ़ा कि उसका छिपा रहना कठिन होगया । यद्यपि उन्होंने अपने विचारों को अपनी प्यारी मा पर प्रकट नहीं

किये परन्तु अपने मित्रों और विद्वान् पण्डितों से यह पूछना आरम्भ करदिया कि अमर होने का क्या साधन है ? उत्तर मिला कि योगाभ्यास।

घर त्यागने का विचार

अन्त को शनैः २ यह विचार पुष्ट होता गया कि घर से निकल जाना चाहिये क्योंकि इस असार संसार में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसके कारण जीने की इच्छा की जावे, इस विचार को उन्होंने अपने मित्रों पर प्रकट किया, शनैः २ इनकी माता को भी यह सब बातें प्रकट हो गईं जिससे इनके माता पिता को बड़ा सोच पड़ गया और वे वह साधन ढूंढने लगे कि जिससे उनका यह संकल्प पूरा न होने पावे।

विवाह का विचार

अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि जहां तक हो सके शीघ्र ही इनका विवाह करके इनको गृहस्थ के बन्धनों में जकड़ दिया जावे। अब मूलशंकर को अपने पिता के ऐसे विचारों के समाचार मिले कि २० वर्ष की अवस्था होते ही इनका विवाह कर दिया जावेगा तब इन्होंने अपने पिता को ऐसे विचारों से रोकने के लिये अपने मित्रों द्वारा बहुत यत्न किया; जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके पिता ने इस वर्ष उनके विवाह को रोक दिया। स्वामी दयानन्द को यह कठिनाई ब्रह्मचर्य्य आश्रम के प्राचीन नियम के प्रचलित न रहने से हुई। लोग शास्त्रानुकूल गुरुकुल की मर्य्यादा को छोड़ नाममात्र के लिये विद्याध्ययन के समय को ब्रह्मचर्य्याश्रम कहते हैं। हम कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द ५ वर्ष की आयु से ही ब्रह्मचर्य्याश्रम में प्रविष्ट हो गये। जब उन्होंने देखा कि माता पिता ब्रह्मचर्य्य भंग करने के विचार में हैं तो विवाह करने से नाहीं करदी और यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि घर से बाहर निकल कर विद्याध्ययन करूंगा।

काशी जाने का विचार

संवत् १९०० में जब कि स्वामीजी २० वर्ष के हो गये तब उन्होंने अपने पिता से निवेदन करना प्रारम्भ किया कि मुझे काशी में विद्योपार्जन के लिये भेज दें कि वहां जाकर व्याकरण, ज्योतिष और वैदिक ग्रन्थ पढ़ आऊं। इस बात का विरोध उनकी माता और कुटुम्ब के सब आदमियों ने किया और कहा कि घर ही में जहां तक पढ़ सको पढ़ो, तुम्हारे विवाह का थोड़ा समय शेष है, लड़की वाले अधिक समय तक नहीं ठहर सकते और हमें विशेष विद्या पढ़ाने की आवश्यकता भी नहीं। उनकी माता ने कहा कि मैं भली प्रकार जानती हूं कि जो मनुष्य विशेष पढ़ जाता है वह विवाह

करना नहीं चाहता और तुम्हारे काशी चले जाने से तुम्हारे विवाह में भी बाधा पड़ जावेगी। जब स्वामीजी ने काशी जाने के लिये अपने पिता से बहुत हठ किया तो उनकी माता जो सदैव उनके अनुकूल रहा करती थी वह भी विरुद्ध हो गई और कहा कि हम तुम्हें कहीं नहीं भेजेंगे, तुम्हारा विवाह शीघ्र ही कर देवेंगे। स्वामीजी को उनके इस प्रकार के विचारों से हटाने के लिये उनके पिता ने उनको ज़मींदारी के कार्य्य में लगाने की इच्छा प्रकट की परन्तु उन्होंने इसको स्वीकार नहीं किया और थोड़ा समय व्यतीत होने के पश्चात् अपने पिता से निवेदन किया कि यदि आप मुझे काशी नहीं भेजते तो गांव से ३ कोस की दूरी पर एक दूसरे ग्राम में, जहां अपनी ज़मींदारी है, भेज दें क्योंकि उस ग्राम में एक वृद्ध विद्वान् पण्डित अपनी जाति का रहता है, मैं उसी से पढ़ा करूंगा। इस बात को उनके पिता ने मान लिया और स्वामीजी उस ग्राम में जाकर कुछ समय तक उस भद्रपुरुष से पढ़ते रहे। एक दिवस अचानक स्वामीजी ने बातचीत करते हुए अपने गुरु से स्पष्ट कह दिया कि मुझे विवाह करने से ग्लानि है।

विवाह की तैयारियां

पंडित ने यह समाचार उनके पिता को कहलवा भेजे, जिन्होंने उनको ग्राम से पीछे बुलाकर विवाह का प्रबन्ध प्रारम्भ कर दिया उस समय इनकी अवस्था २१ वर्ष की होगई थी इन्होंने विचार किया कि विवाह से बचने का सिवाय इसके और कोई उपाय नहीं कि यहां से चले जावें जिस किसी मनुष्य से वे इस विषय की बात चीत करते सब ही विवाह कर लेने के लिये सम्मति देते। इन शुभचिन्तक निर्बलात्माओं को क्या मालूम था कि स्वामी दयानन्द का महान् आत्मा गृहस्थ की तमाम आवश्यकताओं को पार करने की शक्ति रखता है और उस देशोपकारी यज्ञ को सम्पूर्ण करने के लिये जो उन्हीं से होना है यह आवश्यक है कि वह विवाह न करें। माता पिता की चेष्टाओं से उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि वे विना विवाह किये नहीं मानेंगे और न विशेष विद्योपार्जन करने देंगे। अन्त में सब ओर से निराश हो घर को छोड़ देने की ठानली, परन्तु उस समय तक अपने इस विचार को किसी पर प्रकट नहीं किया, जब देखा कि एक मास में ही विवाह की सब तय्यारियें होगईं तो इन्होंने सोचा कि अब देर करने का समय नहीं है। आत्मा ने पुकार कर कहा कि चल, नहीं तो सारे विचार निष्फल हो जायेंगे और जिस महान् कार्य्य का तूने संकल्प किया है वह पूरा न हो सकेगा। अन्त को ज्येष्ठ मास की एक संध्या को ब्रह्मचारी मूलशंकर ने अन्तिम बार

प्यारे घर की ओर देखा जहां उसका जन्म हुआ था और जहां उसने २१ वर्ष काटे थे। प्यारे पाठको! यह दृश्य भी कैसा विचित्र होगा कि एक २१ वर्ष का युवक एक धनाढ्य घर की सम्पत्ति पाने वाला इन सब सांसारिक धन दौलत प्रीति और प्रेम आदि को लात मारकर आयुभर के लिये वैराग्य के कठिन मार्ग में पांव रखता है। प्यारे माता पिता की रक्षा से निकल कर अपने आप को जगत्पिता व जगन्माता की गोद में डालता है और जगत् के तमाम सम्बन्धियों से मुंह मोड़ जगद्बन्धु परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़ता है और उसी पर भरोसा, उसी पर विश्वास करके और उसी का सहारा लेकर उसी की विद्या ग्रहण करने के लिये ऋषिसन्तान ऋषिपदवी की प्राप्ति के लिये घर से निकलता है और सांसारिक घर को छोड़कर कभी न नष्ट होनेवाले, कभी न गिरनेवाले आत्मिक घर की खोज में आगे बढ़ता है।

घर से निकलते ही पहिली रात तो स्वामीजी ने अपने गांव से ४ कोस की दूरी पर एक दूसरे गांव के निकट व्यतीत की, वहां से एक पहर रात्रि बाक़ी रहने पर चलकर दूसरे दिन शाम तक १५ कोस मंज़िल करके एक गांव में हनुमान् के मंदिर में जा विश्राम किया। यह सारी मंज़िल उन्होंने प्रसिद्ध मार्ग से नहीं की वरन पगडंडियों और टेढ़े रास्ते से, ताकि इधर उधर से आने जाने वाले पथिक उन को पहिचान न लें। यह सावधानी उनके बड़े काम आई क्योंकि इस जगह पहुंचने पर एक सरकारी कर्म्मचारी के द्वारा उनको मालूम हुआ कि यहां मूलशंकर नामी एक लड़के को कुछ सवार और प्यादे ढूंढने आये थे। यह घर से भागने का तीसरा दिन था।

साधु ठगों की संगत

यहां से चलकर स्वामीजी को साधु ठगों की एक संगत से पाला पड़ा जिन्होंने उनसे कुछ रुपये और अंगूठी आदि भूषण यह कहकर ठगलिये कि जबतक तुम यह न त्याग दोगे तुम्हें पूरा वैराग्य न होगा। इन ठगों को क्या मालूम था कि यही युवक इन ठगों की जड़ काटने जारहा है।

शुद्ध चेतन नामी नैष्ठिक ब्रह्मचारी बनना

मोरवी रेलवे पर मूली नाम एक स्टेशन है, इस स्थान से ४ कोस की दूरी पर एक सामले नामी ग्राम है इन दिनों यहां पर लाला भगत के स्थान पर बहुत से साधु जमा थे, स्वामीजी भी वहां जा पहुंचे जहां एक ब्रह्मचारी ने उन्हें नैष्ठिक ब्रह्मचारी होजाने को कहा और दीक्षा दे काषायवस्त्र धारण करा इनका नाम "शुद्धचेतन ब्रह्मचारी" रखदिया और एक तूंबा हाथ में देदिया। इन साधुओं के संग में रहकर नये ब्रह्मचारी योगसाधन करने लगे।

भूत का भय

यद्यपि मूर्त्तिपूजा से इनका चित्त हट गया था परन्तु अन्य झूठे विश्वास अभी दूर नहीं हुये थे। एक रात्रि को अब वे एक वृक्ष के नीचे योगाभ्यास कर रहे थे तो ऊपर से घूघू आदि पक्षियों के अनोखे शब्द सुनकर उन्हें भूत का भय लगा और वे वहां से झट उठकर अपनी संगत में आमिले।

वैरागियों का फंदा

यहां से वे कोठगांगड़ नामी ग्राम में पहुंचे, यह स्थान अहमदाबाद के निकट गुजरात की एक छोटीसी रियासत में है। इस समय इस स्थान पर बहुतसे वैरागी इकट्ठे होरहे थे और उनके फंदे में एक रानी भी फंसी हुई थी जो कि उनके साथ थी। स्वामीजी को गेरुवे वस्त्रों में देख वैरागियों ने हंसी की और उनको अपने फंदे में फंसाने का यत्न करने लगे। उनके कहने से हमारे शुद्धचेतन ब्रह्मचारी ने रेशमी किनारे की धोतियां जो उस समय तक उनके पास उपस्थित थीं फैंक दीं और सादी धोतियें धारण करलीं। इस स्थान पर इन्होंने ३ मास तक डेरा रक्खा।

सिद्धपुर को जाना

इन्हीं दिनों में उनको मालूम हुआ कि सिद्धपुर में कार्त्तिक का मेला है (यह स्थान राजपूताना मालवा रेलवे का स्टेशन है और सरस्वती नदी पर बसा है) यहां कार्त्तिक मास में प्रतिवर्ष मेला होता है और औदीच्य ब्राह्मणों का मुण्डन संस्कार यहीं होता है। स्वामीजी इस नगर को इसलिये रवाने हुए कि वहां कोई मेले में ऐसा योगी मिल जावे जो अमर होने का मार्ग बतावे।

जान पहिचान वाले एक वैरागी से भेट

थोड़ी दूर गये थे कि उन्हें एक वैरागी मिला जो उनके कुटुम्ब के लोगों से भले प्रकार परिचित था। जब उस वैरागी से बात चीत हुई तो दोनों की आंखों में आंसू भर आये और दोनों अपनी पूर्वावस्था को याद करके रोने लगे। स्वामीजी ने वैरागी से अपने भाग आने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। पहिले तो वह कुछ हंसा और फिर घर से निकल आने के लिये बुरा भला कहा, परन्तु अब क्या होसकता था, यह सब निष्फल था।

दण्डी स्वामियों से मिलना

उस वैरागी से जुदे होकर स्वामीजी सिद्धपुर पहुंचे और नीलकंठ महादेव के मंदिर में उतरे यहां पहिले से ही कई एक दण्डी स्वामी और ब्रह्मचारी उतरे हुए थे, स्वामीजी भी उनमें जा मिले। मेले में जहां किसी विद्वान् की प्रशंसा सुनते उसीसे मिलने के लिये जाते और सत्संग से लाभ उठाते

स्वामीजी के पिता का आगमन

सिद्धपुर के मार्ग में जो बैरागी स्वामीजी को मिला था उसने उनका सारा वृत्तान्त उनके पिता को लिख भेजा कि मूलशंकर इस समय सिद्धपुर में कार्त्तिक के मेले में आया है। इस पत्र के पहुंचते ही स्वामीजी के पिता चार सिपाहियों को साथ ले सिद्धपुर में आ पहुंचे और उनको ढूंढने लगे और एक दिन प्रातःकाल स्वामीजी को उसी मन्दिर में पण्डितों के बीच में जा पकड़ा कि जहां वे उतरे हुये थे। वे उन्हें गेरुवे वस्त्र धारण किये हुए देख अति क्रुद्ध हुए। स्वामीजी उनके मुंह की ओर नहीं देख सके। क्रोध में आकर उन्होंने स्वामीजी को बहुत बुरा भला कहा और झिड़क कर कहा कि तूने हमारे घराने को सदैव के लिये बदनाम कर दिया है, तू हमारे कुल में कलंक लगाने वाला उत्पन्न हुआ है। इन सब बातों से स्वामीजी दब गये और मारे डर के अपनी जगह से उठ कर पिता के पांवों पर गिर पड़े और कहने लगे कि आप क्रुद्ध न हूजिये मुझे क्षमा कीजिये। अच्छा हुआ कि आप पधार गये मैं आपके साथ ही चलने को राज़ी हूं। इन बातों से भी उनके पिता का क्रोध शान्त नहीं हुआ और उन्होंने झपट कर उनके कपड़े फाड़ डाले और तूंबा खोस कर पृथ्वी पर दे मारा और बहुत बुरा भला कह कर नये श्वेत वस्त्र धारण करवा कर जहां आप ठहरे हुए थे वहीं ले गये और कहा कि तू अपनी माता की हत्या किया चाहता है।

पहरे में से भागना

यद्यपि स्वामीजी ने उनके साथ जाना स्वीकार किया था परन्तु उन्होंने इनकी बात का भरोसा न करके इन पर सिपाहियों का पहरा बिठला दिया और आज्ञा दी कि इस निर्मोही को क्षण भर के लिये भी कहीं न फिरने दो। रात्रि को भी इस पर पहरा रहे। यद्यपि स्वामीजी ऊपर से अपने पिता के साथ घर जाने को कहते रहे परन्तु मन में वे अपने संकल्प पर वैसे ही दृढ़ थे जैसे कि उनके पिता उनको घर ले जाने में। रात्रि के समय उन पर पहिरा था परन्तु दैवयोग से ३ बजे के क़रीब पहिरे वाले को बैठे २ निद्रा ने घेर लिया तो स्वामीजी, जो जागते थे, अवसर पाकर शौच के बहाने पानी का लोटा लेकर उस जगह से निकल पड़े और आध कोस की दूरी पर एक बग़ीचे में एक पुराने मन्दिर के शिखर में एक वट के वृक्ष के सहारे चढ़ कर जा छिपे, पानी का लोटा भी साथ ले लिया और उस जगह छिप कर इस बात की प्रतीक्षा में रहे कि देखें अब क्या होता है? प्रातःकाल के ४ बजे क्या देखते हैं कि सिपाही उनको ढूंढ रहे हैं और उस मन्दिर के मालियों और आने जाने वालों से उनका पता पूछ रहे हैं। जब कुछ पता न चला

तो निराश होकर पीछे चले गये। स्वामीजी सारे दिन वहीं चुप चाप सांस को रोक बैठे रहे, ताकि किसी नई आपत्ति में न जा फंसें जब सूर्य अस्त हुआ और कुछ अन्धेरा हुआ तो स्वामीजी उस स्थान से उतर सड़क के मार्ग को छोड़, लोगों से पूछते पाछते वहां से दो कोस की दूरी पर एक ग्राम में जा ठहरे। प्रातःकाल वहां से भी चल पड़े। अपने पिता से स्वामीजी का यह अन्तिम मिलाप था।

बड़ौदा होते हुए चेतनमठ में जाना

यहां से अहमदाबाद होते हुए स्वामीजी बड़ौदे पहुंचे। वहां चेतनमठ में ब्रह्मानन्द आदि संन्यासियों और ब्रह्मचारियों से वेदान्त विषय की बहुत बातें कीं, इनके सत्संग से वे नवीन-वेदान्ती (अहं ब्रह्मास्मि) बन गये अर्थात् जीव और ब्रह्म का अभेद यानी उनको एक मानने लगे।

सच्चिदानन्द परमहंस से भेट और नर्मदा के तट पर जाना

यहां पर बनारस की रहने वाली एक बाई से उन्होंने सुना कि नर्मदा तट पर बड़े २ विद्वानों की एक सभा होने वाली है, फिर देर क्या थी, उस सभा के देखने के लिये चल दिये और वहां पहुंच कर सच्चिदानन्द परमहंस नामी एक महात्मा से शास्त्र-विषयक वार्तालाप किया, उससे मालूम हुआ कि नर्मदा के किनारे चाणोदकल्याणी में बहुत से विद्वान्, संन्यासी, ब्रह्मचारी और ब्राह्मण विद्वान् रहते हैं। स्वामीजी उसी स्थान पर पहुंचे और दीक्षित और चिदाश्रम आदि स्वामी, संन्यासियों से अनेक विषयों पर संलाप किया। यहां पर इन्होंने परमहंस परमानन्द नामी एक महात्मा से पढ़ना प्रारंभ किया और थोड़े से दिनों में वेदान्तसार, आर्य्यहरि-मीडे, तोटक, वेदान्तपरिभाषा आदि ग्रन्थ पढ़ लिये और दर्शन सम्बन्धी भी कुछ पुस्तकें पढ़ीं।

पूर्णानन्द सरस्वती से सन्यास धारण करना और "दयानन्द सरस्वती" नाम पाना

ब्रह्मचर्य्यावस्था में स्वामीजी को प्रचलित प्रणाली के अनुसार अपने हाथ से भोजन बनाना पड़ता था, जिससे उनके विद्याध्ययन में बड़ी बाधा पड़ती थी इसको दूर करने के लिये उनका विचार संन्यास धारण करने का हुआ, इस विचार को उन्होंने एक दक्षिणी पण्डित द्वारा चिदाश्रम स्वामी नामक एक संन्यासी से प्रकट किया कि वह संन्यास धारण करावें, परन्तु उन्होंने इनकी युवावस्था होने के कारण ऐसा करने से नाहीं की परन्तु इस नाहीं से स्वामीजी का संकल्प ढीला नहीं पड़ा वे नर्मदा नदी के तट पर अनुमान १॥ वर्ष तक विचरते रहे और इस

समय में चालोद्र नामी ग्राम के निकट एक कोस की दूरी पर जङ्गल में एक स्थान पर शृङ्गेरीमठ के एक दंडी स्वामी और एक ब्रह्मचारी आ उतरे। इन दंडी स्वामी का नाम पूर्णानन्दसरस्वती था जो द्वारिका की तरफ़ जाने वाले थे। वही दक्षिणी पण्डित स्वामीजी को बड़े प्रेम से उन दंडी स्वामी के पास लेगया और यह उनके साथ ब्रह्मविद्या पर बातचीत करते रहे। स्वामीजी ने जान लिया कि ये संन्यासी बड़े विद्वान् हैं, उस समय उस दक्षिणी पण्डित ने उन दंडी स्वामी से हमारे शुद्धचेतन ब्रह्मचारी को संन्यासाश्रम में दीक्षित करने का निवेदन किया और कहा कि यह ब्रह्मचारी बड़ा शुद्ध है, किसी प्रकार का अवगुण नहीं, ब्रह्मविद्या प्राप्त करने की बड़ी अभिलाषा रखता है परन्तु अपने हाथ से भोजन बनाने आदि का बखेड़ा जो इसके पीछे लगा हुआ है इस कारण अपना बहुतसा समय विद्याध्ययन में नहीं लगा सकता, आप कृपा करके इसको संन्यास धारण कराइये, स्वामीजी की युवावस्था को देख कर पहिले तो इन्होंने भी संन्यास देने से नाहीं की और कहा कि हम महाराष्ट्र हैं यह मनुष्य किसी गुजराती संन्यासी से संन्यास धारण करे तो ठीक है। दक्षिणी पंडित ने कहा कि जब दक्षिणी संन्यासी पंचगौड़ों को संन्यास देदेते हैं तो गुजराती ब्रह्मचारी को, जो उच्चश्रेणी का औदीच्य ब्राह्मण है और जो पञ्चद्राविड़ों में है, संन्यास देने से क्यों संकोच किया जाता है? बहुतसी आनाकानी के पश्चात् स्वामी पूर्णानन्दसरस्वती हमारे शुद्धचेतन ब्रह्मचारी को संन्यास देने पर राज़ी होगये और तीसरे दिन उन्होंने स्वामीजी को संन्यास आश्रम में दीक्षित कर दण्ड ग्रहण करा इनका नाम "दयानन्दसरस्वती" रक्खा स्वामीजी उनके पास थोड़े दिनों तक ब्रह्मविद्यासम्बन्धी पुस्तक पढ़ते रहे और फिर दण्ड का विसर्जन भी उन्हीं के सामने कर दिया क्योंकि दण्ड की भी बहुत क्रिया हैं जिनसे विद्याध्ययन में विघ्न पड़ता था फिर वे संन्यासी तो द्वारिका की तरफ़ चले गये और स्वामीजी चाणोद कल्याणी ही में रहकर पढ़ते रहे, उस समय उन्होंने यह सुना कि योगानन्द स्वामी एक बड़े योगी हैं, स्वामी ने उनके पास जाकर व्यासाश्रम में उनसे योगक्रिया सीखनी प्रारम्भ की। योगविद्यासम्बन्धी कुछ पुस्तकें पढ़कर छिनोड़े को गये क्योंकि उन्होंने सुना था कि कृष्णशास्त्री नामी एक ब्राह्मण व्याकरण में बड़े निपुण हैं इसलिये उनसे व्याकरण पढ़ा और पीछे चाणोद कल्याणी में आगये और वहां से एक दूसरे स्थान पर आ एक पंडित से वेद पढ़ते रहे। इस स्थान पर इनको ज्वालानन्दपुरी और शिवानन्दगिरी दो योगी मिले उनके साथ रहकर स्वामीजी योगाभ्यास करते

(योगानन्द स्वामी से योग सीखना)

(कृष्ण शास्त्री से व्याकरण पढ़ना)

(वेद का पढ़ना)

दो योगियों से योगाभ्यास सीखना

रहे। स्वामी और ये योगी दोनों आपस में योगशास्त्र पर प्रायः बातचीत भी किया करते थे। थोड़े दिनों के पश्चात् यह दोनों योगी अहमदाबाद की तरफ़ चले गये और कह गये कि एक महीने के पश्चात् तुम भी अहमदाबाद में आना, हम नदी तट पर दुधेश्वर महादेव में ठहरेंगे, वहां तुम्हें योगाभ्यास की रीति सिखलावेंगे। स्वामीजी प्रतिज्ञानुसार एक महीने के पश्चात् अहमदाबाद जा पहुंचे और उन दोनों योगियों से मिले, उन्होंने भी अपने कथनानुसार स्वामीजी को योगविद्या के समस्त मर्म, जो वे जानते थे, समझा दिये और उनकी कृपा से स्वामीजी को इस विद्या में भी अच्छा अभ्यास होगया। स्वामीजी इन दोनों योगियों को प्रायः धन्यवाद दिया करते थे।

आबू पर योगाभ्यास करना

अहमदाबाद में स्वामीजी ने सुना कि आबू पर्वत पर बहुतसे विद्वान् योगी रहते हैं इस कारण वे उस तरफ़ चल पड़े और अर्बदा, भवानी आदि पहाड़ की चोटियों पर भवानीगिरि आदि प्रसिद्ध राजयोगियों से मिले। ये योगी पहिले के दोनों योगियों से विशेष दक्ष थे, इनके पास रहकर स्वामीजी ने इस विद्यासम्बन्धी अनेक गुप्त भेदों को जाना। इस प्रकार संवत् १९११ विक्रमी तक स्वामीजी इधर उधर फिरकर बहुत से महात्मा विद्वानों और योगियों के सत्संग से लाभ उठाकर शारीरिक और आत्मिक उन्नति करते रहे इन का यह स्वभाव था कि जो विद्वान् आदमी इनको मिलता उसके विद्यार्थी बन उस

हरिद्वार के कुम्भ के मेले में आना

से विद्याध्ययन करते। इस प्रकार भ्रमण करते करते ३० वर्ष की आयु में संवत् १९१२ में पहिलीवार हरिद्वार के कुंभ में जा पहुंचे क्योंकि यहां प्रायः सुयोग्य योगी एकत्र होकर आपस में मिलते हैं जिनकी यह व्यवस्था किसी को ज्ञात नहीं होती यहां आकर बहुत से सुयोग्य साधुओं और संन्यासियों से मिले, जबतक मेला रहा स्वामी चंडी के पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करते रहे और मेले की समाप्ति पर ऋषिकेश की ओर चले गये और वहां कई एक महात्मा संन्यासी और योगियों से मिलकर सत्संग किया और योगाभ्यास को बढ़ाया इसके पश्चात् कुछ समय तक अकेले ही ऋषिकेश में रहे वहां इन्हें एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधु मिले और यह तीनों मिलकर टिहरी की तरफ़

टिहरी जाना तथा मांसभोजन का निमंत्रण और बमन हुआ

चले गये। यह स्थान विद्या के लिये बड़ा प्रसिद्ध था। यहां इन आदमियों में से एक ने एक २ दिन स्वामीजी को भोजन के लिये निमंत्रण दिया और नियत समय पर एक मनुष्य को बुलाने के लिये भेजा, उस आदमी के साथ स्वामीजी और

एक ब्रह्मचारी दोनों गये वहां जाकर क्या देखते हैं कि एक पंडित मांस को काटकर बना रहा है, यह देखते ही स्वामीजी को बड़ी घृणा हुई। आगे चलकर बहुत से पंडितों को वहां बैठा देखा जो हड्डी मांस और भुने हुए सिर पर काम कर रहे थे इस घर के मालिक पंडित ने स्वामीजी को बड़े आदर भाव से आगे पधारने के लिये निवेदन किया, परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप अपना काम किये जायं मेरे वास्ते इतना परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं यह कह कर वहां से पीछे अपने स्थान को चले आये और आराम किया, इतने में वह ब्राह्मण भी आन पहुंचा और कहने लगा कि आप पधारिये, मांसादि स्वादिष्ट भोजन सब आप ही के लिये बनाये गये हैं। स्वामीजी ने स्पष्ट कह दिया कि यह सब निष्फल है, आप मांसाहारी हैं, मेरे वास्ते तो फल मूल ही अच्छे हैं, मांस का खाना तो दूर रहा मैं तो उसे देखकर ही बीमार हो जाता हूं यदि आपको मेरा सत्कार ही करना है तो कुछ अन्न फलादि यहां भिजवा दें, मेरा ब्रह्मचारी सब कुछ बना लेगा। यह सुन वह पण्डित लज्जित हो अपने घर च-

तन्त्र ग्रन्थों का अवलोकन

लागया। कुछ समय के पश्चात् स्वामीजी ने उन पंडितों में से एक से वे समस्त पुस्तकें, जिनकी वे लोग प्रशंसा किया करते थे, देखने के लिये मांगी, जब उन पुस्तकों के नाम स्वामीजी के आगे लिये गये तो उन्होंने तन्त्र की पुस्तकों को देखने के लिये मांगा क्योंकि वह उन्होंने पहिले नहीं देखी थीं उनको खोलकर देखते ही उनकी दृष्टि ऐसे स्थान पर पड़ी कि जिसको पढ़कर वे कांप उठे। उसमें लिखा था कि मा, बहिन, बेटी, चूहड़ी, चमारी आदि से भोग करने, उन्हें नंगी खड़ी करके पूजन करने और इसी प्रकार पञ्चमकारों (मद्य, मांस, मछली, मदिरा, मैथुन) के सेवन करने और ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक एक स्थान पर भोजन करने से मोक्ष होती है।

यह तन्त्रग्रन्थ वामियों के बनाये हुये हैं और ऐसी २ निन्दित और निर्लज्जता की बातों से भरे हुये हैं कि जिनसे बढ़कर दुनियां में निर्लज्जता हो ही नहीं सकती। ये पुस्तकें आर्य्यजाति के पवित्र यश में कलंक लगाने वाली हैं और वामियों के कुकर्मों और भ्रष्टता का फोटो बतलाने वाली यह आर्य्यावर्त्त को अधोगति में पहुंचाने वाले समय की बनी हुई हैं इसीलिये स्वामीजी जैसे महान् आत्मा में जो कुछ घृणा इनसे उत्पन्न हुई वह आयु पर्य्यन्त दूर नहीं हुई।

हिमालय केदारघाट

वहां से स्वामीजी श्रीनगर को चले गये और केदारघाट पर एक मन्दिर में ठहरे। वहां जब किसी पण्डित से शास्त्रार्थ होता तो

स्वामीजी इन्हीं तन्त्र ग्रन्थों का प्रमाण दे इनको निरुत्तर कर देते। यहां पर एक गङ्गागिरि नामी बड़े विद्वान् साधु मिले जो दिन के समय में अपने पहाड़ पर से नहीं उतरते थे इनसे स्वामीजी की बड़ी प्रीति हो गई और ये दोनों दो मास से अधिक इकट्ठे रहे।

रुद्रप्रयाग और सिद्ध आश्रम को जाना

वसन्त के प्रारम्भ में स्वामीजी अपने ब्रह्मचारी और दो साधुओं समेत केदारघाट से दूसरे स्थान की ओर चले गये और रुद्रप्रयाग आदि होते हुए अगस्तमुनि की समाधि तक पहुंचे यहां से उत्तर की ओर सिद्ध-आश्रम नाम एक पहाड़ की चोटी पर गये। यह वही स्थान है जहां योगीजन मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं। यहां शरदृऋतु के ४ मास व्यतीत किये और फिर अपने साथियों से जुदा होकर इकहले बेखटके केदारघाट को वापिस चले आये। गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड और भीमगोड़ा से होते हुए त्रियुगीनारायण के मन्दिर में पहुंचे। यहां इनका चित्त नहीं लगा इस कारण शीघ्र ही केदारघाट को लौट आये, जो स्थान इनको बहुत पसन्द था, यहां के पुजारी जंगम थे। जब यहां के मनुष्यों के स्वभाव को भले प्रकार जान लिया और जब इनके पहिले साथी ब्रह्मचारी और दोनों साधु भी आगये तो इनका विचार आसपास के पहाड़ों की छवि देखने का हुआ। पहाड़ों पर सर्वदा बर्फ़ जमा रहता है और स्वामीजीने सुन रक्खा था कि वहां बड़े २

हिमालय पर्वत पर महात्माओं की खोज में भ्रमण करना

महात्मा रहते हैं इन्हीं महात्माओं के खोजमें वे इन पहाड़ों की तरफ़ गये। वहां जिस किसी मनुष्य से उनके विषय पूछते तो वे या तो कहते कि हम नहीं जानते हैं या तत्सम्बन्धी ऐसी ऐसी गप्पें हांकते कि जिसको कोई बुद्धिमान् मनुष्य नहीं मान सकता था। शरदृऋतु थी स्वामीजी कठिन सर्दी को सहन करते हुए बीस दिवस इधर उधर भटक फिर केदारघाट की तरफ़ पीछे चले आये।

तुंगनाथ पर चढ़ना

इन दिनों स्वामीजी को पर्वतों पर चढ़ने का बड़ा चाव था, वे तुंगनाथ की चोटी पर चढ़गये और वहां के मन्दिरों को उन्होंने पुजारियों और मूर्त्तियों से भरा पाया। वहां से यह उसी दिन पीछे चले आये, आते समय दो पगडंडियें मिलीं एक तो पश्चिम को जाती और दूसरी नैऋतगामी स्थान को। उन्होंने जंगल का मार्ग पकड़ा और थोड़ी दूर जाकर ऐसे घने जंगल में पहुंच गये जहां ऊंची नीची बेडौल चट्टानें थीं और नदी नाले सब शुष्क थे, कहीं आगे जाने का मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता था, इस भयानक दृश्य को देखकर यह सूझी

जंगल की झाड़ियों में फंसजाना

घास व सूखी झाड़ियों की जड़ों को पकड़ कर एक नले के किनारे पर आ चढ़े और एक चट्टान पर खड़े होकर जब चारों ओर दृष्टि फैलाई तो सिवाय विकट पहाड़ों, टीलों और जंगलों के कुछ न दिखाई दिया। इस समय सूर्य अस्ताचल को जा रहा था और इन्हें यह सोच पड़ा कि इस सुनसान निर्जन वन में विना पानी और ईंधन के कैसे रात कटेगी, लाचार बस्ती के खोज में चल खड़े हुए परन्तु मार्ग में ऐसे २ विकट स्थानों से निकलना पड़ा जहां कांटों के मारे सारे वस्त्र फटगये और शरीर से रक्त बहने लगा और पांव से भी लँगड़ाने लगे। बड़ा कष्ट उठाकर हज़ार कठिनाइयों से पहाड़ के नीचे उतरे और अपने आप को प्रसिद्ध मार्ग पर पाया। इस समय चारों ओर अंधेरा छा गया था और यह अटकल से मार्ग ढूंढ २ कर चलरहे थे, चलते २ बस्ती के चिह्न दिखाई दिये बस्ती क्या थी थोड़ीसी टूटी फूटी झोंपड़ियें थीं। वहां से पूछकर कि यह मार्ग ओखीमठ को जाता है यह उसी ओर रवाने हुए और रात्रि वहां जाकर काटी भोर होते ही गुप्तकाशी को चले आये परन्तु ओखीमठ को देखने की अभिलाषा अभी बाक़ी थी इस कारण वे फिर उधर गये और वहां जाकर जानलिया कि तमाम गुफाएं पाखण्डी साधुओं से भरी हुई हैं।

मठ का महन्त बनाने का लालच

इस स्थान के एक बड़े महन्त ने इनको अपना शिष्य बनाना चाहा और बहुत से द्रव्यादि का लालच देकर कहा कि अन्त में तुझको गद्दी का मालिक बना दूंगा। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यदि मुझे द्रव्य की इच्छा होती तो अपने घर से क्यों निकलता और पिता की सारी जायदाद को, जो तुम्हारी जायदाद से कितनी ही अधिक थी, क्यों छोड़ता? इसके अतिरिक्त जिस इच्छा से मैंने संसार के सर्व प्रकार के सुख और भोगों के लात मारी है वह इच्छा तुम्हारे पास रहने से पूरी नहीं हो सकती। महन्त ने पूछा कि वह कौनसी वस्तु है जिसकी तुम्हें खोज है और तुम इतना परिश्रम उठा रहे हो?, स्वामीजी ने उत्तर दिया कि सत्य योगविद्या और मोक्ष को, जो विना आत्मिकशुद्धि और सदाचरण के प्राप्त नहीं होती, ढूंढ रहा हूं और जब तक यह प्राप्त न होगी मैं बराबर अपने देशवासियों का उपकार करता रहूंगा।

इस महन्त ने स्वामीजी को अपने पास अधिक ठहरने के लिये कहा परन्तु वे दूसरे दिन ही जोशीमठ को चले आये, वहां पर इन्हें बहुत से अच्छे विद्वान् महाराष्ट्र संन्यासी और योगी मिले, जिनसे इन्होंने योगविद्या सम्बन्धी बहुतसी नई बातें सीखीं।

बदरीनारायण जाना

इन महात्माओं से जुदे होकर स्वामीजी बदरीनारायण की ओर चले गये, उन दिनों यहां रावलजी नामी एक विद्वान् पण्डित इस मन्दिर के महन्त थे। कई दिवस तक इनकी और स्वामीजी की वेदों और दर्शनों पर बातचीत होती रही। स्वामीजी को यह सुनकर बड़ा शोक हुआ कि बदरीनारायण के आस पास पहाड़ों में कोई बड़ा योगी नहीं रहता, परन्तु ऐसे योगी प्रायः दर्शनों के लिये आजाया करते हैं। यहां पर स्वामीजी ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वे पहाड़ी स्थानों में घूम २ कर योगियों की खोज करेंगे और इसी विचार से वे एक दिन सूर्य निकलने से पूर्व बदरीनारायण से चल पड़े और पर्वत की जड़ों में होते हुये अलकनंदा नदी के किनारे जा पहुंचे। इनका बिचार इस नदी को पार करने का नहीं था क्योंकि दूसरी तरफ़ मांस नामी एक ग्राम था, इस कारण नदी के निकास की तरफ़ पहाड़ की जड़ों में जंगल में उन्होंने चलना प्रारम्भ किया। इस समय सारा पर्वत श्वेत बर्फ से ढका हुआ था इस कारण स्रोत तक पहुंचने में बड़ा कष्ट हुआ। जब गोमुख पर पहुंचे तो उन्होंने अपने चारों ओर ऊंची २ पर्वतमालाएं देखीं और कोई मार्ग आगे चलने का दृष्टिगोचर नहीं हुआ ऐसी दशा में सिवाय नदी को पार करके इस ओर चले आने के और कोई उपाय नहीं था, इनके वस्त्र बड़े पतले थे और सरदी ऐसी कड़ी पड़ती थी कि वे उसे सहन नहीं कर सकते थे। खान पान की भी कोई वस्तु पास नहीं थी, यहां क्षुधा ने भी ऐसा पीड़ित किया कि बर्फ खा खा कर उसको निवारण करने लगे, परन्तु कहीं बर्फ से भी क्षुधा मिटी है? अन्त को इन्होंने नदी को पार करने का दृढ़ निश्चय कर लिया। यह नदी किसी २ ठिकाने तो घुटने २ तक थी और कहीं २ बहुत गहरी चौड़ाई में १० हाथ के अनुमान थी इसके अतिरिक्त इसमें बर्फ के छोटे २ तिरछे टुकड़े इतने विशेष थे कि उन्होंने स्वामीजी के नंगे पांवों को घायल कर दिया और उनसे रक्त बहने लगा, पांव मारे सरदी के सुन्न होगये यहांतक कि मूर्छा आगई और कुछ समय तक उनको अपने घावों की कुछ भी खबर नहीं हुई शीत के कारण मूर्छा अधिक बढ़ने लगी और वे बर्फ पर गिरने वाले ही थे परन्तु यह सोच कर कि यदि इस जगह गिर गये तो फिर उठना कठिन हो जायगा और मृत्यु हो जायगी, जिस वस्तु की खोज में घर बार माता पिता आदि छोड़े हैं उसको पाये विना ही मृत्युरूपी ग्राह निगल जावेगा अन्त को बहुतसी दौड़ धूप के पश्चात् ज्यों त्यों करके नदी पार की परंतु आगे बढ़ने की शक्ति नहीं थी। स्वामीजी ने सारे शरीर के कपड़े उतार पांवों से लेकर जंघाओं तक अपने आप ही लपेट लिये और शक्तिहीन आगे हलने चलने में अशक्त

घबराये हुए खड़े रहे और दिल में यह अभिलाषा रही कि कोई सहायता देने वाला मिले परन्तु वहां इस प्रकार की सहायता देने वाला कोई नज़र नहीं आता था यह सोच ही रहे थे कि दो पहाड़ी आदमियों को अपनी ओर आते हुए देखा उन्होंने स्वामीजी को प्रणाम करके अपने घर चलने के लिये निवेदन किया, जब इन मनुष्यों ने स्वामीजी का वृत्तान्त सुना तो उन्होंने उनको सिद्धपथ नामी एक तीर्थस्थान पर पहुंचाने का प्रण किया स्वामीजी ने उनके निवेदन को अस्वीकार किया और कहा कि मुझ में विशेष चलने की शक्ति नहीं है मैं यहां से हिल नहीं सकता, उचित है कि यहीं पर प्राण छोड़दूं तुम्हारे संग चलने की शक्ति नहीं। स्वामीजी के नाहीं करने से उन दोनों पहाड़ी आदमियों ने अपना रस्ता लिया और थोड़ी देर में पर्वतों में छुप गये अन्त को थोड़े समय पश्चात् जब इनकी प्रकृति कुछ ठीक होगई तो वे आगे चले और कुछ समय तक वसुधा नामी एक तीर्थस्थान पर ठहर कर संगम के आस पास होते हुए सन्ध्या के आठ बजे बद्रीनारायण में पीछे आगये।

पुनः महन्तजी से भेट और रामपुर को प्रस्थान

यहां के महन्त रावलजी स्वामीजी के इतने दिनों तक गुप्त रहने से बड़े घबड़ाये हुये थे, जब ये सन्ध्या को पीछे आये तो इन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया और थोड़ासा भोजन करके सो रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्वामीजी महन्त रावलजी से विदा होकर रामपुर की ओर प्रस्थान किया मार्ग में एक योगी के पास जा ठहरे और रात भर उसी के पास काटी। स्वामीजी वर्णन करते हैं कि यह मनुष्य बड़ा विद्वान् था और अपने को प्रसिद्ध ऋषि समझता था इससे धर्मसम्बन्धी बात चीत करके स्वामीजी ने अपने विचारों को विशेष दृढ़ कर लिया।

रामपुर में रामगिरि के आश्रम में विश्राम

दूसरे दिन वहां से चल पड़े। जंगलों और पर्वतों में से होते हुए चिलकिया घाटी से उतर कर अन्त को रामपुर में आपहुंचे और रामगिरि के मकान पर विश्राम लिया। रामपुर में रामगिरि अपने शुद्ध आचरणों के कारण प्रख्यात था उसका स्वभाव विचित्र था रात को वह सोया नहीं करता किन्तु प्रायः कई रात्रियें बराबर बातें करने में व्यतीत कर देता यद्यपि उसके पास कोई मनुष्य नहीं होता था तो भी ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी से बातें करता है कभी २ वह बड़े ज़ोर से ढाढ़ें मारता और जब उसके कमरे में आकर देखते तो वह अकेला ही मिलता। इन बातों ने स्वामीजी को बहुत चकित कर दिया उन्होंने इन सब बातों का कारण पूछा तो

सिवाय इसके और कुछ उत्तर नहीं मिला कि उसका स्वभाव ही ऐसा है इस मनुष्य से एकान्त में बातें करने से स्वामीजी को यह ज्ञात हुआ कि यह योगविद्या की सिद्धि किया चाहता है, परन्तु इस विद्या का उसे अभ्यास नहीं।

द्रोणसागर से मुरादाबाद होते हुए गढ़ मुक्तेश्वर जाना और वहां गंगा में मुर्दे की परीक्षा करना

यहां से चलकर स्वामीजी काशीपुर पहुंचे और वहां से द्रोणसागर को गये और सारी शरदृऋतु वहीं व्यतीत की, यहां पर एक वार यह मन में आया कि हिमालय पर्वत पर जाकर देह छोड़ देनी चाहिये परन्तु बहुत सोच विचार के पश्चात् निश्चय किया कि मरजाना तो कोई पुरुषार्थ नहीं है ज्ञानप्राप्ति के पश्चात् देह का छोड़ना उत्तम है। द्रोणसागर से चल कर स्वामीजी मुरादाबाद, संभल और गढ़मुक्तेश्वर होते हुये गङ्गा किनारे जा पहुंचे उस समय उनके पास और पुस्तकों के अतिरिक्त, हठप्रदीपिका, योगबीज केसराना-संगत संस्कृत में वैदिक व चीरा फाड़ी की भी कुछ पुस्तकें थीं इनमें नाड़ी चक्र आदि का वर्णन विस्तारपूर्वक था जिनको वे बहुधा देखा करते थे, ये पुस्तकें इस ढंग पर लिखी हुई थीं कि उनको कण्ठस्थ करना कठिन था और इनके प्रामाणिक होने में भी स्वामीजी को शङ्का थी परन्तु अभी तक उनकी परीक्षा करने का कोई अवसर नहीं मिला था।

एक दिवस गङ्गा में एक मुर्दा बहता हुआ स्वामीजी के दृष्टिगोचर हुआ उसे देखते ही स्वामीजी को उन पुस्तकों के शुद्धाशुद्ध की परीक्षा करने का ध्यान आया इसलिये वस्त्र उतार वे गङ्गा में कूद पड़े और मुर्दे को पकड़ किनारे पर ले आये तेज चाकू से उसको चीरा उसके कलेजे को निकाल कर देखा कि पुस्तक के बयान से मिलता है वा नहीं फिर शिर और गर्दन के भागों को काटा और पुस्तक से मिलान किया तो जाना कि वे पुस्तकें झूठी हैं तब स्वामीजी ने उनको यह कहकर कि मेरा यह निश्चय होगया कि सिवाय वेदों, उपनिषदों, पातञ्जल आदि दर्शनों के जो और पुस्तकें योगविद्या पर लिखी गई हैं असत्य हैं, फाड़डाला और मुर्दे के साथ ही नदी में बहा दिया। यह घटना सिद्ध करती है कि सत्यविद्या की प्राप्ति का चाव और खोज करने की शक्ति स्वामी दयानन्द में कैसी प्रबल थी। कहां तो एक हिन्दू संन्यासी और कहां मुर्दे का चीरना?, साधारण मनुष्य तो उसके स्पर्श से ही अशुद्ध होना समझते हैं फिर उसको भले प्रकार चीरकर जांच करना और पुस्तक से मिलान करना कैसा! यह छानबीन की ही शक्ति थी जिसने स्वामी दयानन्द को महान् पुरुष बना दिया।

इसी प्रकार गङ्गा के तट पर थोड़े दिवस और रहकर स्वामीजी संवत् १९१२ के अन्त में फ़र्रुखाबाद पहुंचे। संवत् १९१३ में पहिले पहिल स्वामीजी ने कानपुर और इलाहाबाद के बीच के कई एक स्थान देखे फिर मिरज़ापुर के समीप बनारस में कुछ दिवस रहे इसके पश्चात् विन्ध्याचल अशोंची के मन्दिर में एक मास तक रहे फिर खास बनारस में पहुंच कर उस गुफ़ा में ठहरे जो बरना और गङ्गा के संगम पर है और जो उस समय भवनन्दसरस्वती के अधिकार में थी, इस स्थान पर कई एक विद्वानों से मिले यहां से चलकर चांडालगढ़ में पहुंचे और दुर्गा कोह के मन्दिर में जा उतरे यहां उन्होंने चावल खाना छोड़ दिया और केवल दूध पीकर रात दिन योगाभ्यास और तत्सम्बन्धी पुस्तकों के अध्ययन में लगे रहते, यहां पर स्वामीजी को भङ्ग पीने का व्यसन होगया था जिससे वे बहुधा उन्मत्त होजाते।

भंग के नशे में स्वप्न का देखना

एक दिवस जब वे चांडालगढ़ से एक निकटवर्त्ती ग्राम को जा रहे थे तो उनको उनका एक पुराना साथी मिला इन्होंने ग्राम के दूसरी ओर एक शिवालय में जाकर रात्रि व्यतीत की। भङ्ग के नशे में उन्होंने स्वप्न में महादेव और पार्वती को बातें करते हुये सुना। पार्वती कहती थी कि दयानन्द सरस्वती का विवाह होजाय तो अच्छा है परन्तु महादेव उसका निषेध करते थे और उनके भंग के नशे के विषय में कहते थे जब स्वामीजी जगे और उस स्वप्न का स्मरण आया तो बड़े दुःखित हुए उस समय वर्षा मूसलाधार हो रही थी और स्वामीजी मन्दिर के बरांडे में आराम कर रहे थे।

नांदिये के पेट में चोर

यहां भी एक नन्दी की मूर्त्ति थी जैसी कि शिवालयों में हुआ करती है इन्होंने अपने वस्त्र और पुस्तकें इस मूर्त्ति के पेट में रखदीं और अपने स्वप्न पर विचार करने लगे ज्यों ही उनकी दृष्टि मूर्त्ति के अन्दर के भाग की ओर पड़ी उनको एक आदमी छिपा हुआ दिखाई दिया इन्होंने उसकी ओर हाथ पसारा और वह मारे डरके निकल कर गांव की ओर भाग गया अब यह स्वयं उसके अन्दर घुसकर सोगये और सारी रात वहीं काटी भोर होते ही एक बुढ़िया ने आकर उस सांड देवता की पूजा की और गुड़ और दही चढ़ाया इनको भूख लगी हुई थी बड़े मज़े से दही खाया चूंकि यह खट्टा था इस कारण नशे के उतारने में बड़ा लाभकारी हुआ। इस दिन से स्वामीजी ने भंग पीना छोड़ दिया।

नर्मदा नदी के स्रोत की खोज में मार्ग में रीछ का सामना

चैत्र संवत् १९१४ को स्वामीजी इस स्थान से नर्मदानदी के स्रोत को देखने के लिये रवाने हुए और दक्षिण की ओर जाते जाते एक बड़े घने सुनसान जङ्गल में पहुंचे उस में कहीं कहीं झोपड़ियां थीं इनमें से एक झोपड़ी में ठहर कर इन्होंने कुछ दूध पिया और आगे को रवाने हुए डेढ़ मील के अनुमान चले होंगे कि अपने को ऐसे भयानक जङ्गल में पाया कि जहां बहुत से बेरियों के वृक्ष थे और घास इतना लंबा था कि मार्ग दिखाई नहीं देता था यहां इनको एक बड़ा काला रीछ मिला जो अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो चिंघाड़ें मारता हुआ मुंह खोले हुए इन्हें खाने के लिये आरहा था यह बिना हिले चले उसके सामने खड़े होगये और अपना सोटा संभाल उसकी ओर किया जिससे डरकर वह पीछे की तरफ़ चिंघाड़ें मारता हुआ दौड़ा इस शब्द को सुनकर झोपड़ियों के आदमी सोटे और शिकारी कुत्ते ले इनकी सहायता के लिये आन पहुंचे और इनसे कहा कि आप आगे न जावें यह जङ्गल सिंह, रीछ, हाथी आदि बहुतसे भयंकर पशुओं से भरा पड़ा है परन्तु इन्होंने उनकी इन बातों पर कुछ ध्यान न दिया और जब इन लोगों ने एक लम्बा सोटा दिया तो इन्होंने उस सोटे को भी वहीं फेंक दिया और आगे को चल दिये दिन भर चलते रहे सूर्यास्त हो गया चारों ओर अंधेरा छागया और कई घंटों तक इन्हें बस्ती के कोई चिह्न दिखाई नहीं दिये मार्ग में बहुत से ऐसे वृक्ष देखे जिनको मस्त हाथियों ने जड़ों से उखेड़ डाला था।

दुर्गम जंगल में जा फंसना

आगे चलकर इन्हें एक ऐसा जङ्गल दिखाई दिया कि जिस में घुसना अतिकठिन था इसमें कांटेदार बेरियों के बहुत वृक्ष थे जो कि एक दूसरे से गुंथे हुए थे। इस जङ्गल से पेट के बल और घुटने टेकते हुए धीरे२ सांप की नाईं निकले सारे वस्त्र फट गये, शरीर घायल होगया और यह अधमरे से होगये इतने में बिलकुल अंधियारी छागई और चारों ओर सिवाय इसके और कुछ दीख नहीं पड़ता था, परन्तु ऐसी दशा में भी उन्होंने आगे बढ़ने के विचार को नहीं छोड़ा अन्त में एक ऐसे भयानक स्थान पर पहुंचे कि जहां चारों ओर घने वृक्ष और नाना प्रकार की वनस्पतियों से लदे हुए ऊंचे २ पर्वत दिखाई देने लगे इनमें कहीं २ बस्ती के चिह्न पाये जाते थे थोड़ी देर में इनकी दृष्टि कई झोपड़ियों और कुटियों पर पड़ी इनके चारों ओर गोबर के ढेर के ढेर पड़े हुए थे एक स्वच्छ जल की छोटीसी नदी के किनारे बकरियां चर रही थीं झोपड़ियों के अन्दर से टिम-

◇ रात्रि भर एक वृक्ष पर निर्वाह करना ◇

टिमाते हुए दीपक भी दिखाई देने लगे। सब से पहिले एक बड़ा वृक्ष मिला जिसकी छाया में एक झोपड़ी थी झोपड़ी के अन्दर जाकर उन्होंने वहां के मनुष्यों को कष्ट देना उचित न समझा इसलिये उस वृक्ष पर चढ़गये और सारी रात वहीं व्यतीत की प्रातःकाल होते ही नीचे उतरे और नदी के किनारे जाकर अपने घायल पांव और शरीर को धोकर उपासना के लिये बैठने ही वाले थे कि एक जंगली जानवर की सी गरज का शब्द सुनाई दिया परन्तु यह आवाज़ गाड़ी की थी थोड़ी देर में बहुतसे स्त्री पुरुषों का झुंड, बहुतसी गायें और बकरियों को साथ लिये हुए अपनी ओर आते हुए देखा, वे लोग कोई त्यौहार मनाने के लिये इकट्ठे होकर जा रहे थे जब उन्होंने स्वामी दयानन्द को देखा तो सब के सब उनके चारों ओर होगये और उनमें से एक बूढ़े आदमी ने आगे बढ़कर उनसे पूछा कि आप कहां से आये हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं बनारस से आया हूं और नर्मदा नदी के स्रोत की ओर यात्रा के लिये जा रहा हूं यह पूछ कर वे लोग तो आगे बढ़गये और स्वामीजी अपनी उपासना में लगे, आध घण्टे के पश्चात् उनका सरदार दो पहाड़ी आदमियों को लेके पीछे आया और एक तरफ़ स्वामीजी के पास बैठ गया उसने स्वामीजी से कहा कि आप चलकर हमारी झोपड़ियों में आराम करिये हम लोग तन मन से आप की सेवा और भोजन आदि से सत्कार करेंगे, परन्तु स्वामीजी ने इस बात को स्वीकार नहीं किया लाचार उसने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि स्वामीजी के इर्द गिर्द आग जलादो और रात को इनकी रक्षा के निमित्त यहीं रहो फिर इसने स्वामीजी से भोजन के लिये पूछा स्वामीजी ने कहा कि मैं केवल दूध पीता हूं इस पर वह इनका तूंबा लेगया और दूध से भर कर दे गया इसमें से दूध पीकर स्वामीजी उस रात्रि को उन पहरे वालों की रक्षा में सो रहे और भोर होते ही सन्ध्या आदि से निवृत्त हो वहां से आगे को चल दिये। नर्मदा तट पर वे ३ वर्ष तक विचरते रहे और अनेक महात्माओं, साधुओं और विद्वानों के सत्संग से लाभ उठाते रहे यहां से पीछे मथुरा की ओर रवाने हुए और वहां जाकर स्वामीजी ने विरजानन्दजी से विद्याध्ययन आरंभ किया।

स्वामी विरजानन्दजी सरस्वती *

स्वामी विरजानन्दजी असल में दुवावावस्त, जालंधर के रहने वाले थे बाल्या-

* स्वामी विरजानन्द सरस्वती का पूरा जीवनचरित्र इस पुस्तक के अंतिम भाग में देखियेगा।

वस्था में ही माता (चेचक) की बीमारी से इनकी दोनों आंखें चली गईं थी यदिच बाहर की आंखें जाती रही थीं परन्तु हृदय की आंखों ने बड़ी ज्योति का प्रकाश किया, ११ वर्ष की अवस्था में विचारे अन्धे बालक के माता पिता मर गये थे अन्धे तो पहिले ही से थे अब अनाथ हुए और शरण भी अब ऐसे भाई की रहे जो कलियुग का नमूना था वह पवित्र घर जिसमें जन्म लेकर ११ वर्ष माता पिता के लाड़ प्यार में स्वर्ग के समान व्यतीत किये थे उनके परमधाम को जाते ही नरक के सदृश होगया, अन्धा अनाथ भाई के क्रोध को आखिर न सहन करके घर से निकल पड़ा और भिक्षा मांगता ठोकरें खाता हरिद्वार पहुंचा इसने अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से वह विद्या प्राप्त की कि अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान् कहलाया। स्वामी दयानन्द इनको व्याकरण का सूर्य्य कहा करते थे। विरजानन्द भी स्वामी दयानन्द की नांई दण्डी स्वामी थे। यह पहिले अलवर में रहते थे उनकी आयु तब ८१ वर्ष की थी उनकी वेदशास्त्रों से लेकर आर्षग्रन्थों में बड़ी रुचि थी वे आधुनिक कौमुदी, शीघ्रबोध आदि ग्रन्थों को अच्छा नहीं समझते थे और भागवत आदि पुराणों का बड़ाही तिरस्कार करते थे, सारे आर्षग्रन्थों में उनकी बड़ी भक्ति थी।

मथुरा में स्वामी विरजानन्दजीसे बातचीत

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी यमद्वितीया अर्थात् कार्त्तिकसुदी २ संवत् १९१७ तदनुसार १४ नवम्बर सन् १८६० को मथुरा में पहुंचे और सीधे दण्डाजी के डेरे पर गये दण्डीजी ने पूछा कि कौन है? उत्तर दिया कि संन्यासी (वि०) क्या नाम है? (दया०) दयानन्दसरस्वती (वि०) कुछ व्याकरण पढ़ा है? (दया०) सारस्वत आदि पढ़ा हूं दण्डीजी ने दर्वाज़ा खोल दिया यह अन्दर गये प्रथम कुछ थोड़ीसी परीक्षा ली और कहा कि ऋषिकृत शास्त्र और हैं। दयानन्द ने कहा कि महाराज! हमें बतलाओ? उत्तर दिया कि यदि मनुष्यकृत को छोड़ दे तब उसको पासकता है।

मनुष्यकृत ग्रन्थों का त्याग

स्वामी दयानन्द ने संकल्प किया कि मैंने वे सब छोड़ दिये, तब विरजानन्दजी ने उनको सारस्वत की व्यवस्था सुनाई कि अनुभूतिस्वरूप आचार्य्य ने इसको बनाया है। बूढ़ा होने से मुंह में दांत न रहने के कारण "पुंसु" के स्थान में "पुंक्षु" शब्द अशुद्ध मुंह से निकल गया पण्डितों ने आक्षेप किया यह क्रुद्ध होगये और इसकी सिद्धि के लिये यह झूठा ग्रन्थ बनाया और अपने मन में इस अशुद्धि को शुद्ध कर दिखाया, परन्तु यह सब निष्फल हुआ अर्थात् "पुंक्षु" शब्द शुद्ध सिद्ध न हुआ।

दण्डीजी ने उस समय यह भी कहा था कि हम संन्यासी को विद्या नहीं पढ़ाते क्योंकि वे लोग भोजन कहां से लावें और किस प्रकार सबर से पढ़ें परन्तु स्वामीजी ने बहुत हठ किया तीन चार दिवस तक ठहरे और उनके सब नियमों को स्वीकार किया यह बात प्रसिद्ध है कि भट्टोजिदीक्षित जो सिद्धान्तकौमुदी के बनाने वाले हैं उनके नाम पर दण्डीजी विद्यार्थियों से जूते लगवाया करते थे और जबतक उसकी प्रतिष्ठा विद्यार्थियों के हृदय से दूर नहीं होती थी तबतक अष्टाध्यायी आरम्भ नहीं कराते थे। स्वामी दयानन्दजी ने भी जब उनकी आज्ञा का पालन किया तब दण्डीजी ने विद्या आरंभ कराई सारे शहर में चंदा करवाके उनके वास्ते महाभाष्य का पुस्तक मंगवाया जिसपर ३१) रुपये खर्च पड़े।

विद्याध्ययन में सहायता

स्वामीजी के विद्यारंभ करने के थोड़े समय पश्चात् ही बड़ा भयंकर काल पड़ा लोगों को बड़े कष्ट पड़े विशेष कर विद्यार्थियों को, परन्तु स्वामीजी इन समस्त कठिनाइयों को झेल कर दुर्गा खत्री डाकेवाले के यहां से कभी सूखे चने और कभी चने की रोटी खाकर गुज़ारा करते रहे अकाल के अंत में एक दिन इनकी भेट बाबा अमरलाल जोशी से, जो कि मथुरा के रईस और जाति के औदीच्य ब्राह्मण थे, होगई, जिसने कि इनके खान पान और पुस्तकों का सारा प्रबन्ध अपने ऊपर उठा लिया, स्वामीजी जबतक मथुरा में रहे इन्हीं के यहां भोजन पाते रहे। इस रईस के यहां प्रतिदिन सौ सवासौ ब्राह्मणों को भोजन मिला करता था, इस पुरुष का प्रेम स्वामीजी के साथ इतना होगया था कि यह इन्हें अपने घर लेजाकर खाना खिलाता और जब कभी आप कहीं जीमने को जाता तो पहिले इनको अपने घर में भोजन करा जाता पीछे बाहर जाता।

स्वामीजी रात्रि के समय भी विद्याध्ययन में लगे रहते थे लाला गोवर्द्धन सर्राफ़ इनको चार आने मासिक तेल के लिये दिया करता था और हरदेव पत्थर वाला २) रुपये मासिक दूध के वास्ते।

भक्ति स गुरु की सेवा करना

जबतक स्वामीजी मथुरा में रहे तो अपने गुरु के स्नान के वास्ते बहुतसे घड़े पानी के यमुना से भरकर लाया करते बड़े पुरुषार्थी फुरतीले और परिश्रमी थे। लक्ष्मीनारायण के मन्दिर में जहां यह रहा करते थे बैठक पर प्रतिदिन व्यायाम करते और एक या दो कोस तक भ्रमण करने भी जाया करते थे और दण्डीजी के पीने के लिये स्वच्छ निर्मल जल

जमना के बीच जाकर भर लाया करते थे कभी उन्होंने किसी स्त्री से हँसी मज़ाक नहीं की और न इस प्रकार की बात चीत उन्हें अच्छी लगती थी। यदि कोई ऐसी बातें करता तो उसे यह धुत्कार देते थे। स्वामीजी को अभ्रक (अबरक) फूंकना और पारे की गोला बनाना भी आता था।

संस्कृतभाषण का अभ्यास करना

यह विद्यार्थियों को बहुधा ब्रह्मचर्य्य साधने का उपदेश किया करते और ब्राह्मणों को संध्या, उपासना और अग्निहोत्र करने को कहा करते अपने सहपाठियों के साथ संस्कृत बोलते और शास्त्रार्थ भी किया करते रात के ग्यारह२बजे तक पढ़ा करते थे और योगाभ्यास भी बराबर साधते रहते, बहुतसे विद्यार्थी इनके स्थान पर आया करते थे इन्हीं दिनों में ये मूर्त्तिपूजा, कंठी तिलक और सम्प्रदायों का खंडन भी करते और लोगों को सच्चिदानन्द परमात्मा की भक्ति का उपदेश देते।

गुरुजी की लाठी से उनका स्मरण करना

स्वामीजी ने २॥ साल के अनुमान विरजानन्दजी से पढ़ा, ये अपने गुरु की सदैव आज्ञा पालन करते थे परन्तु कभी २ विरजानन्दजी क्रोध में आकर इनको अपने यहां से निकाल भी देते परन्तु यह फिर उनके पास चले जाते। एक दिन उन्होंने किसी बात से रुष्ट हो स्वामीजी के लाठी मारी जिससे उनके हाथ पर बड़ी चोट आई और जिसका चिह्न उमर भर तक बना रहा वह इस चिह्न को देखकर महर्षि विरजानन्द के उपकार को याद किया करते। स्वामीजी ने लाठी खाकर अपने गुरु से निवेदन किया कि महाराज! आप मुझे न मारा करें मेरा शरीर कठोर है मारने से आपके कोमल हाथों को दुःख होता होगा।

एक समय स्वामी विरजानन्द का रंगाचार्य्य से वृन्दावन में शास्त्रार्थ हुआ स्वामी दयानन्द भी साथ गये थे वहां रंगाचार्य्य का एक चेला संस्कृत में बोलने लगा तो इन्होंने उसकी गलतियें प्रकट कीं परन्तु दण्डीजी ने रोक दिया।

एक बार संध्या लेते समय दंडीजी ने क्रुद्ध होकर स्वामीजी को गालियें दीं और सोटा मारा। नयनसुख जड़िया जो कि यद्यपि संस्कृत का अक्षर भी नहीं लिख सकता था परन्तु सत्संग के प्रभाव से उसको अष्टाध्यायी और महाभाष्य कंठ था और संस्कृत का उच्चारण भी अतिशुद्ध था, इसने दण्डीजी से कहा कि महाराज यह कोई गृहस्थी नहीं है साधु संन्यासी है इसको न तो गालियें देनी चाहियें न मारना चाहिये

दण्डीजी ने उत्तर दिया कि अच्छा हम आगे को प्रतिष्ठा से पढ़ावेंगे जब संथा लेकर स्वामीजी बाहर आये तो नयनसुखजी पर क्रुद्ध हुए कि तुमने मेरे लिये ऐसा क्यों कहा ? दण्डीजी तो सुधार के लिये मारते हैं ईर्षा द्वेष से नहीं, जैसे कुम्हार पीट २ कर घट बनाता है इसी प्रकार यह मेरे सुधार के लिये यत्न करते हैं ।

रुष्ट हुए गुरुजी को प्रसन्न करना

जब विद्या समाप्ति के १५ वा २० दिवस रहगये तो एक दिन विरजानन्दजी ने कहा कि दयानन्द ! ऊपर जहां हम बैठते हैं झाड़ देदेना, स्वामीजी ने बुहारी लगाकर कूड़ा एक जगह कर दिया टहलते समय दण्डीजी का पांव कहीं उस कूड़े में पड़ गया जिस पर क्रुद्ध होकर गालियें दीं और कहा कि यहां से निकल जा तूने हमारी आज्ञा नहीं मानी तेरी डोढ़ी बन्द है इस पर स्वामीजी को बड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने नन्दन चौबे और नयनसुख जड़िये से सिफारिश कराई इन दोनों से स्वामी ने यह भी कह दिया कि यद्यपि गुरुजी वास्तव में क्रुद्ध नहीं हैं परन्तु अब मेरी विद्या समाप्ति के दिन पूरे होने वाले हैं इसलिये मैं योग्य नहीं समझता कि महाराज किसी प्रकार भी उदास रहें इन दोनों की सिफ़ारिश से दण्डीजी राजी होगये स्वामीजी ने पांव को हाथ लगाया और क्षमा मांगी, वहां क्या देर थी प्रसन्न होगये ।

जाते समय गुरु-दक्षिणा देनी और आशीर्वाद लेना

जब स्वामीजी ने अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्त सूत्र और बहुतसी पुस्तकें पढ़लीं तो मथुरा से विदा होने की इच्छा उत्पन्न हुई, प्राचीन परिपाटी के अनुसार भेट लेकर गुरु के सन्मुख उपस्थित हुए संन्यासी विद्यार्थी के पास भेट के लिये कोई बहुमूल्य पदार्थ तो था ही नहीं दण्डीजी की प्रिय वस्तु अर्थात् आधसेर लौंग नजर करके विदा मांगी और कहा कि मेरे पास कुछ नहीं जो आपके भेट करूं, विरजानन्दजी ने उत्तर दिया कि मैं तुझ से ऐसी चीज़ मांगूंगा जो तेरे पास उपस्थित है, स्वामीजी ने निवेदन किया कि जो कुछ मेरी शक्ति में है आप पर न्यौछावर करने को तत्पर हूं। इस उत्तर से प्रसन्न हो महर्षि विरजानन्दसरस्वतीजी ने कहा "बेटा ! जा लिखा पढ़ा सफल कर देश का सुधार और उपकार कर, सत्यशास्त्रों का उद्धार कर, मतमतान्तरों की अविद्या को मिटा और वैदिकधर्म्म जो लोप होगया है उसको फिर फैला" । स्वामीजी ने बड़ी नम्रता और उदासीन भाव से इसको स्वीकार किया और पूरा करने की प्रतिज्ञा की । गुरुजी ने आशीर्वाद दिया और विदा होते समय एक अमूल्य बात और भी कह

दी कि मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषि मुनियों की निन्दा भरी पड़ी है आर्षकृत ग्रन्थ इस दोष से रहित हैं इस कसौटी को हाथ से नहीं छोड़ना। स्वामीजी यहां से रवाने हुए और किस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया इसको सब लोग जानते हैं इन्होंने अपनी सारी आयु धर्म्मप्रचार में व्यतीत की, कष्ट पर कष्ट सहे परन्तु अपने कर्त्तव्य से कभी मुंह न मोड़ा।

विद्याध्ययन की समाप्ति

धन्य है स्वामी दयानन्द को जिसने लोकोपकार के लिये अपने जीवन को जीवन न समझा, मनुष्यों का अविद्यान्धकार दूर करने के लिये नाना प्रकार के दुःख सहे, लोगों को अपना शत्रु बनाया, ऐसे समय में गुरु की आज्ञा पालन करना प्रारम्भ किया कि जिस समय संसार में कोई भी उनका सहायक व रक्षक न था और धन्य है वह गुरु जिसने सांसारिक किसी पदार्थ को अपने शिष्य से न मांगकर धर्म्म और देश की अधोगति पर विचार कर वेद और शास्त्रों के प्रचार ही को अपनी गुरुदक्षिणा समझी। इनका विश्वास था कि हमारे शिष्यों में से यदि कोई हमारा अभीष्ट सिद्ध करेगा तो दयानन्द ही करेगा इसलिये उन्होंने अपना सारा विद्याभण्डार इनको सौंप दिया था और जो कुछ ऋषिकृत ग्रन्थों से बातें निश्चयात्मक की हुई थीं वह सब ही इनको समझा दी थीं। स्वामी दयानन्द के हृदय से भी अपने गुरु की मान व प्रतिष्ठा कभी दूर नहीं हुई वह अपनी पुस्तकों में जगह २ पर बड़े गर्व से अपने तईं "विरजानन्द का शिष्य" लिखते हैं यद्यपि दयानन्द सरस्वती ने पहिले से ही संन्यास धारण कर लिया था परन्तु वास्तव में यह उनके ब्रह्मचर्य्याश्रम की समाप्ति का समय था।

विद्या पढ़कर महर्षि दयानन्द धर्म्मप्रचार में प्रवृत्त होता है

आगरे में पहुंच कर धर्मोपदेश करना

मथुरा में महर्षि विरजानन्द सरस्वती से विद्यारत्न प्राप्त करके और उनकी आज्ञा लेकर वैशाख संवत् १९२० के अन्त में स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये आगरे की ओर रवाने हुए और वहां पहुंच कर यमुना के किनारे भैरव के मन्दिर के पास लाला गल्लामल रूपचन्द अग्रवाल के बगीचे में उतरे, यहां एक साधु रहता था जिसने जाके डिप्टी पोस्टमास्टर जनरल के दफ़्तर में राय सुन्दरलालजी आदि गृहस्थ विद्वानों को कहा कि एक महात्मा आये हुए हैं, इस समाचार को सुन बहुत से लोग सत्संग के लिये स्वामीजी के पास आने लगे। आगरा उन दिनों में रौनक पर था क्योंकि

तबतक हाईकोर्ट भी वहीं था स्वामीजी के आने के थोड़े दिनों बाद ही एक कैलाशपर्वत नामी स्वामी भी इसी बगीचे में आकर उतरे, एक दिन यह स्वामी गीता का एक श्लोक लोगों को समझा रहे थे परन्तु किसी की सन्तुष्टि नहीं होती थी जब एक मनुष्य ने स्वामी दयानन्दजी से इसके अर्थ पूछे तो आपने ऐसी उत्तमता से उसकी व्याख्या की कि सब श्रोता चकित होगये। स्वामी कैलाशपर्वत ने आप की विद्या की प्रशंसा की और लोगों को कहा कि यदि कुछ पढ़ना हो तो इस साधु से पढ़ा करो उस दिन से कई मनुष्य पढ़ने के लिये आने लगे।

पंचदशी ग्रन्थ में झगड़ा होगी.

कुछ दिनों तक स्वामीजी ने यहां गीता की कथा सुनाई जो दिवाली के दिवस समाप्त हुई, यह देवीभागवत में से भी कुछ सुनाया करते थे फिर लोगों के कहने पर पञ्चदशी ग्रन्थ की कथा प्रारम्भ की, कथा सुनाते २ कहीं यह आगया कि ईश्वर को भी भ्रम होजाता है इसको देखते ही आपने पुस्तक हाथ से रखदी और कहा जिसको भ्रम फिर वह ईश्वर कैसा? मैं इस को नहीं पढ़ूंगा यह मनुष्यकृत है ऋषिकृत नहीं, मुझे गुरु की आज्ञा है कि ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ूं और सुनाऊं।

सन्ध्या की पुस्तक का बनाना

यहां पर स्वामीजी ने एक सन्ध्यापुस्तक भी बनाई थी जिस को रूपलाल नामी एक पुरुष ने छपवाकर ३००० के अनुमान मुफ़्त बांटी थी, स्वामीजी आगरे में दो वर्ष के लगभग रहे थे समय २ पर आप स्वामी विरजानन्द के पास स्वयं जाकर या पत्रद्वारा शङ्कासमाधान करते रहे।

रोग के निवारणार्थ योग की न्यौलीक्रिया का करना

स्वामीजी ने आगरे में कई मनुष्यों को योगक्रिया सिखाना प्रारम्भ कर दिया था, परन्तु जब वहां से जाने लगे तो सब को छुड़ादी और कहा कि तुम गृहस्थ हो नियमपूर्वक नहीं रह सकोगे ऐसा न हो कि हमारे जाने के पश्चात् तुमको कोई रोग उत्पन्न हो जावे। एक दिन स्वामीजी के पांव पर कुछ फुन्सियें निकलीं जिनको देखकर वे कहने लगे कि उदर में विकार होगया है चलो न्यौलीक्रिया करें और तीन चार पुरुषों को साथ लेकर राजघाट यमुना तट पर जाकर जल में बैठ मूलद्वार से तीन दफ़े जल चढ़ाया और निकाल २ दिया पहिली वार जल दुर्गंधयुक्त था, दूसरी वार पीलासा, तीसरी वार बिलकुल सफ़ेद निकला। जल चढ़ाने के पश्चात् नाभिचक्र घुमाते थे और नदी से बाहर

निकल कर जल निकाल देते थे इस क्रिया के विषय में स्वामीजी कहते थे कि हमने एक कनफटे योगी से बिन्ध्याचल पर नर्मदा के किनारे बड़े परिश्रम से बहुत दिवस उसके पास रहकर सीखी थी। आगरे में स्वामीजी के पास एक नौकर था जो कि हठयोग के ८४ आसन जानता था, ये कभी २ उसका यह तमाशा देखा करते थे।

मूर्तिपूजा का खंडन करना

स्वामीजी बराबर मूर्त्तिपूजन का खंडन किया करते थे जिसके प्रभाव से दो प्रतिष्ठित पण्डितों ने स्पष्ट कह दिया था कि यह ठीक नहीं है, परन्तु हम जीविकावश नहीं कह सकते। इनके उपदेश से राय सुन्दरलाल आदि कई बड़े २ आदमियों ने मूर्त्तिपूजा छोड़दी स्वामीजी सायं और प्रातः समाधि लगाते थे।

वेदों की खोज में भ्रमण करना

आगरे से वेदों की तलाश में स्वामीजी धौलपुर पहुंचे। धौलपुर से स्वामीजी चार विद्यार्थियों सहित लशकर ग्वालियर में पहुंचे। सन् १८६५ के आरम्भ में महाराजा साहिब ने अपनी राजधानी में भागवत की सप्ताह को बड़ी धूमधाम से बिठलाया था स्वामीजी के पधारने पर महाराज साहब ने अपने आदमियों द्वारा उनसे भागवत की सप्ताह का माहात्म्य पूछा, स्वामीजी ने उत्तर दिया कि सिवाय दुःख उठाने और कष्ट पाने के और कोई फल नहीं चाहे करके देखलो, यह सुनकर महाराज साहब हँस पड़े और कहा कि आप समर्थ हैं जो चाहें सो कहें हम तो सब तय्यारी कर चुके हैं जब स्वामीजी को कथा में आने के लिये कहा तो स्वामीजी ने यह कहला भेजा कि गायत्री का पुरश्चरण होना चाहिये परन्तु महाराज ने यह कहकर टाल दिया कि जो कुछ तय्यारी होनी थी हो गई अब नहीं टाल सकते। एक ओर तो बड़ी धूमधाम से कई स्थानों पर बड़े २ सजधज के मंडपों में काशी, पूना, अहमदाबाद, सितारा, नासिक आदि के आये हुए बड़े २ पण्डित कथा बांच रहे थे जिनको दो लाख रुपये तक महाराज ने दक्षिणा दी और बड़ा आदर और सन्मान किया। सारी रियासत इस उत्सव में लगी हुई

राजा के विरुद्ध भगवत का खण्डन करना

थी, दूसरी ओर स्वामी दयानन्द बिना किसी की सहायता के रामकुई पर उसी भागवत का खण्डन कर रहे थे जिसके लिये यह आडंबर रचे गये थे, यद्यपि राज का भय था फिर भी बहुत लोग सुनने आते थे और उनकी धाराप्रवाह संस्कृत को सुन दंग रह जाते थे और अपने हृदय में उपदेशों की सत्यता का अनुभव करते थे जिस रात सप्ताह की कथा समाप्त हुई रियासत में खुशी के डंके बजे परन्तु थोड़ी

देर में यह खुशी शोक से बदल गई अर्थात् महारानी साहब का पांच महीने का गर्भ-

रंग में भंग

पात होगया और इसी महीने में शहर में बड़े ज़ोर शोर से हैज़ा फैल गया और छोटे महाराजकुमार का, जिनकी दीर्घायु के लिये यह कथा बिठलाई गई थी और जिनको पण्डितों ने आशीर्वाद दिया था, शोक है कि देहान्त होगया !! सारी राजधानी में हाहाकार मचगया स्वामीजी ७ मई सन्

शास्त्रार्थ के विज्ञापन से हिन्दू पण्डितों का पलायन

१८६५ ई० तक बाबा साहब के बाग़ में रहे बराबर शास्त्रार्थ के विज्ञापन देते रहे परन्तु बड़े २ नामी पण्डितों के होते हुए भी किसी ने शास्त्रार्थ नहीं किया। रानाचार्य्य, गोपालाचार्य्य तो सुनकर नासिक को चले गये और नाना पौराणिक, ढूंढू शास्त्री, रावजी शास्त्री वार २ ललकारे जाने पर भी सामने नहीं आये।

करौली पधारना

ग्वालियर से स्वामीजी करौली पधारे और राजा साहिब से धर्मविषय पर वार्तालाप होती रही, कई पण्डितों से भी शास्त्रार्थ हुआ, यहां कई महीने ठहर कर स्वामीजी ने वेदों का दुबारा अभ्यास किया यहां से जयपुर को पधारे।

जयपुर पधारना

जयपुर में स्वामीजी रामकुमार और नंदराम मोदी के बाग़ में उतरे, इनके साथ ३ विद्यार्थी भी थे, एक गोपालानन्द परमहंस ने, जो घाट में रहते थे, जीवब्रह्मविषयक कुछ प्रश्न लिखकर भेजे उनके उत्तर स्वामीजी ने ऐसी योग्यता से लिखकर भेजे कि गोपालानन्दजी ऐसे प्रसन्न हुये कि घाट का निवास त्याग स्वामीजी के पास ही आ ठहरे और प्रतिदिन अपनी शंकाएं निवृत्त करने लगे, इसके पश्चात् श्रवणनाथजी के शिष्य लक्ष्मणनाथजी का, जिनको महाराज रामसिंहजी जोधपुर से लाये थे, स्वामीजी के साथ बृजनन्दजी के मन्दिर में सम्भाषण हुआ, लक्ष्मणनाथजी ने स्वामीजी को शास्त्रसम्पन्न और योगी समझकर निवेदन किया कि आप कृपाकर इसी मन्दिर में रहें और सम्प्रदायी लोगों के शास्त्रार्थ में हमको सहायता दें स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यदि शास्त्रार्थ में मैं बुलाया जाऊंगा तो अपनी सम्मति के अनुकूल कथन करूंगा फिर स्वामीजी ने व्याकरण के दश या पन्द्रह प्रश्न लिखकर जयपुर की संस्कृतपाठशाला में पंडितों के पास भेजे, पंडित महाशयों ने इनके उत्तर में गाली गलौच के सिवाय और कुछ नहीं लिखा स्वामीजी ने इस पत्र में आठ प्रकार के

दोष निकाल कर हरिश्चन्द्रादि महान् पुरुषों के पास भेज दिये उस पत्र को पढ़कर सब ने अत्यन्त शोक प्रकट किया और पत्र का कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

शास्त्रार्थ में पंडितों को निरुत्तर करना।

फिर सब पंडित एकत्रित होकर व्यास बख्शीरामजी के पास गये और कहा कि हमारा स्वामीजी से शास्त्रार्थ करवादो पंडितों के कहने से व्यासजी ने स्वामीजी को महलों में बुलवाया, सब पंडित भी एकत्रित हुए और शास्त्रार्थ होने लगा अन्त में पंडित निरुत्तर होकर चुप होगये और एक मैथिल पंडित ने कहा कि महाभाष्य की गणना व्याकरण में नहीं है स्वामीजी ने उसको यही बात लिख देने के लिये कहा परन्तु उन्होंने नहीं लिखा और रात्रि विशेष होगई यह बहाना करके चुप होगये।

जैनगुरु को परास्त करना

इसके पश्चात् जैनियों के एक गुरु ने शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की परन्तु वह स्वामीजी को अपने मकान पर ही बुलाना चाहता था इस कारण मौखिक शास्त्रार्थ न हुआ और स्वामीजी ने १५ प्रश्न लिखकर उसके पास भेज दिये जिनका उत्तर यतीजी से न बनपड़ा परन्तु उन्होंने ८ प्रश्न लिखकर स्वामीजी के पास भेज दिये जिनका उत्तर स्वामीजी ने बड़ी योग्यता से दिया।

अचरौल के ठाकुर को उपदेश करना

अचरौल के ठाकुर रणजीतसिंहजी को साधुओं से बहुत प्रीति थी, स्वामीजी से मिलने के पहिले वह राधाकृष्ण को मानते और उन्हीं का भजन किया करते थे। एक ठाकुर हमीरसिंहजी राज बीकानेर के रहनेवाले किसी मुक़द्दमे में जयपुर आये हुए थे वह स्वामीजी से परिचित थे और मूर्त्तिपूजा की पोल से विज्ञ थे इन्होंने अचरौल ठाकुर साहब को समझाया जिसपर उन्होंने पूछा कि तो फिर हम किससे सदुपदेश लें ठाकुर हमीरसिंह ने स्वामीजी का नाम बतलाया इस पर वे स्वामीजी से मिले और दूसरे दिन मझोली अपने आदमी के साथ भेज स्वामीजी को बुलवाया स्वामीजी भी निमन्त्रण मान कर पैदल चले आये वार्त्तालाप करने से ठाकुर साहब के बहुतसे संदेह निवृत्त हो गये और मूर्त्तिपूजा से विश्वास हट गया। ठाकुर साहब ने निवेदन किया कि जब तक आप जयपुर में रहें मेरे यहां ही रहें, स्वामीजी ४ रोज़ महलों में रहे, परन्तु एकान्त स्थान न देख कर बाग़ में चले गये।

सदुपदेश से मद्य मांस छुड़ाना

यहां नगर के बहुत से विद्यार्थी और खुद ठाकुर साहब प्रतिदिवस स्वामीजी के पास आकर मनुस्मृति, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि उपनिषद् श्रवण किया करते थे इन उपदेशों के प्रभाव से हीरालालजी कायस्थ कामदार ठाकुर साहब ने मदिरा पीना और मांस खाना बिलकुल छोड़ दिया।

भागवत के खंडन में एक पत्र छपाना

स्वामीजी चार मास के लगभग जयपुर में रहे, उपनिषद् और गीता की कथा किया करते थे मूर्त्तिपूजा का खण्डन करके कहा करते थे कि परमात्मा का ध्यान मन में करो, यहां पर इन्होंने एक पत्र भागवत के खण्डन में छपवाया था जिसमें लिखा था कि महात्मा श्रीकृष्ण पर जो कलंक भागवत में लगाये गये हैं वे सर्वथा मिथ्या हैं, एक परचा तत्त्वबोध का लिख कर ठाकुर साहब को दिया था इन दिनों में स्वामीजी वेदान्त का उपदेश किया करते और निराकार परमात्मा को शिव नाम से बतलाया करते थे पार्वती के पति शिव का कुछ वर्णन नहीं था।

वैष्णव मत का खंडन और शैव मत का मंडन करना

इन्हीं दिनों महाराजा रामसिंहजी वैष्णवों और शैवों का शास्त्रार्थ करा रहे थे शैवमत का स्थापन और अन्य मूर्त्तियों का तिरस्कार प्रारंभ कर दिया था, व्यास बख्शीराम और उनके भाई कनीराम इस काम के अधिष्ठाता थे इन लोगों ने पंडितों के साथ जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें भले प्रकार देख लिया था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती विद्या में पूर्ण हैं यदि यह हमारे पक्ष में हो जायँ तो फिर किसी का भय नहीं, ऐसा विचार कर ये स्वामीजी के पास गये और वार्त्तालाप करके पीछे चले आये और महलों में जाकर महाराजा रामसिंहजी से स्वामीजी के समाचार कहे महाराजा साहब ने कहा कि ठाकुर रणजीतसिंहजी द्वारा स्वामीजी को महलों में बुलाओ ठाकुर रणजीतसिंहजी ने स्वामीजी को पधारने के लिये निवेदन किया तब स्वामीजी ने जाना स्वीकार किया प्रातःकाल कनीराम व्यास स्वामीजी के पास आया तब उसको १० बजे चलने के लिये कहा और नियत समय पर पीनस पर सवार होकर गये और राजराजेश्वर के मन्दिर में जाकर बैठे परन्तु मूर्त्ति को नमस्कार न किया। व्यास बख्शीराम ने कहा कि मैं महाराजा साहब को आपके पधारने की सूचना देता हूं इतने ही में किसी मनुष्य ने बख्शीराम व्यास से कहा कि ये स्वामी तो हर प्रकार की मूर्तियों को उखाड़ना चाहते हैं अगर तुमने इनका दखल यहां करा दिया तो तुम्हारा सब

कारखाना भ्रष्ट करा देंगे इन सब बातों से उसको शङ्का उत्पन्न हो गई और उसने बहाने बना कर स्वामीजी को महाराज से न मिलने दिया तब स्वामीजी ने कहा कि हमें महाराज की क्या परवा है हम कभी मिलने नहीं जावेंगे।

कृष्णगढ़ होते हुए अजमेर पधारना

स्वामीजी ४॥ मास के लगभग जयपुर में रहे जिस से अचरौल के ठाकुर के अतिरिक्त अन्य सरदारों की भक्ति भी स्वामीजी में उत्पन्न हुई। स्वामीजी चैत्र के महीने में बगरू के ठाकुर साहब के यहां गये और वहां दो दिवस निवास करके दूदू को पधारे ठाकुर इन्द्रसिंहजी रईस दूदू ने दो दिवस तक उपदेश श्रवण किया और उनके शिष्य हुये। यहां से रवाने होकर स्वामीजी रियासत कृष्णगढ़ में पहुंचे और दो दिन के पीछे वहां से अजमेर पधारे और राय दौलतरामजी के बाग़ में रह कर पुष्कर पधारे।

पुष्कर के मेले का वृत्तान्त और मूर्तिपूजा का खण्डन

चैत्र कृष्णपक्ष संवत् १९२३ ता० १२ व १३ मार्च सन् १८६६ को स्वामीजी पुष्कर पहुंचे और वहां ब्रह्माजी के विशाल मन्दिर में उतरे, यहां उन्होंने खुल्लमखुल्ला मूर्त्तिपूजा का खण्डन प्रारम्भ कर दिया जिस पर बहुतसे ब्राह्मण शास्त्रार्थ करने को आये परन्तु जब कोई भी सामने न ठहर सका तो सब मिल कर वंकटशास्त्री के पास, जो कि नागपहाड़ की एक कन्दरा में रहता था, गये, इसने स्वामीजी के सन्मुख जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया परन्तु जब वह नहीं आया तो स्वामीजी स्वयं उसके पास चले गये इस समय ३०० या ४०० के अनुमान ब्राह्मण उपस्थित थे पहिले भागवत के विषय पर बात चीत हुई वंकटशास्त्री ने मंडन किया और स्वामीजी ने धाराप्रवाह संस्कृत में प्रबल युक्तियों से ऐसा खण्डन किया कि शास्त्रीजी इस विषय को छोड़ साधारण पण्डितों की नाईं शुद्धि और अशुद्धि पर उतर पड़े। एक घण्टे तक व्याकरण विषयक बातचीत रही अन्त को स्वामीजी का कथन ही सत्य ठहरा। फिर दुर्गा विषय पर बातचीत हुई। शास्त्रीजी ने स्वामीजी की बहुत प्रशंसा की और कहा कि आप की विद्या बहुत प्रबल है और स्वामीजी को अपने गुरु अघोरी से मिलाया यह अघोरी बड़ा लंबा चौड़ा हृष्ट पुष्ट आदमी था और लोगों को पत्थर मारा करता और गालियें दिया करता था, मुर्दों को चिता से निकाल कर खालिया करता था, संस्कृत का अच्छा विद्वान् था। स्वामीजी की इससे बातचीत हुई उसने सब के सामने कह दिया कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं सब सत्य है और वङ्कट शास्त्री ने सब ब्राह्मणों

को भाषा में कह दिया कि तुम व्यर्थ हठ मत करो ये सत्य कहते हैं यह सुनते ही सब ब्राह्मण चले गये। कहते हैं कि वङ्कटशास्त्री बालशास्त्री के बराबर नैयायिक थे उन्होंने स्वामीजी से कहा कि जब कभी शास्त्रार्थ में काम पड़े तो मुझको लिखना मैं चला आऊंगा। स्वामीजी इन दिनों में उपनिषदों का अभ्यास करते और मार्कण्ड ऋषि की गुफा से, जो इसी पर्वत में है, भस्म के गोले मंगवाकर अपने बदन पर मला करते थे।

कंठियें तुड़वाना

स्वामीजी मूर्त्तिपूजा, पुराणों और कंठी तिलक का निषेध बहुत करते थे यहांतक कि बहुत से मनुष्यों की कंठियें तुड़वा कर ब्रह्मा के मन्दिर के एक कोने में ढेर लगवा दिया था जिससे पुष्कर में बड़ी खलबली पड़ गई थी लोग भागकर वङ्कटशास्त्री के पास पहुंचे कि आप स्वामीजी को समझावें परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि बात उनकी अच्छी है परन्तु यह चलेगी उसी समय जब कि कोई राजा उनका शिष्य हो जावेगा।

एक पुजारी को उपदेश से ईश्वरभक्त बनाना

स्वामीजी सत्य उपदेश करने में ऐसे निर्भय थे कि पुजारी को कहा करते थे कि अरे तेरा ब्रह्मा मुंह से बोलता है या बात करता है? फिर पूजा करने से क्या लाभ और चमड़ा कूटने से (नक्कारे बजाने) और कांसी पीटने (झांझ बजाने) से क्या लाभ? तेरे पास यह ढाई मन की मूर्त्ति मानों पारस पत्थर है, रंडी भड़वों से द्रव्य को बचा साधुओं को लड्डू खिलाया कर। स्वामीजी के उपदेश से पुजारी ने पूजा करना, घाट पर मांगना और कंठी बांधना छोड़ दिया और डाकखाने की नौकरी कर स्वामीजी के बतलाये हुए ईश्वर के सच्चे नाम सच्चिदानन्द का जप करने लगा, स्वामी रत्नगिरी व अन्य संन्यासियों को भी कहा करते थे कि आप लोग विद्याध्ययन करके सत्य का मण्डन करें खीर पूरी के जाने का भय न करें विद्या से यह ज्यादा मिलेगी।

रामानुजीय मत का खण्डन करना

स्वामीजी रामानुज सम्प्रदाय वालों का विशेष खण्डन किया करते थे इन्होंने शास्त्रार्थ के लिये विज्ञापन भी दिया परन्तु कोई रामानुजी नहीं आया, स्वामीजी कहा करते थे कि "अतसतनू: स्वर्गं गच्छति" का अर्थ यह नहीं है कि शरीर दग्ध करने से स्वर्ग मिलता है वरन् यह है कि व्रत, तप, नियम से शरीर को तपावे और मन को विषयों से रोक कर जप आदि में लगावे तब सुख को प्राप्त होता है।

द्राविड़ संन्यासी को शास्त्रार्थ से हटाना

एक ब्राह्मण जो सब संन्यासियों का पुरोहित कहलाता था स्वामीजी के पास भी गया और सरटीफ़िकेट के तौर पर एक श्लोक लिखवाना चाहा परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि अरे! क्या तू हमारा पुरोहित बनता है? यह कहकर टाल दिया इन दिनों चन्द्रघाट पर एक द्राविड़ संन्यासी आया हुआ था जो पुराणों की कथा करवा कर ब्राह्मणों को भोजन करवाया करता था स्वामीजी इससे शास्त्रार्थ करने के लिये २०० के अनुमान ब्राह्मणों को संग लेकर गये परन्तु यह सामने नहीं आया। स्वामीजी २२ दिवस के अनुमान पुष्कर में रहे। एक दिन ब्रह्माजी के बड़े पुजारी ने ब्रह्मा को भोग लगाकर दूध स्वामीजी को पिला दिया जब स्वामीजी को यह बात मालूम हुई तो उससे कहा कि अरे! पत्थर को भोग लगाकर हमको पिला दिया? इस पर वह क्रुद्ध होगया और फिर कभी दूध नहीं पिलाया स्वामीजी भिन्न २ आचार्य्यों के नाम से प्रसिद्ध स्तोत्रों के लिये कहा करते थे कि ये उनके बनाये हुए नहीं लोगों ने उनका नाम डाल दिया है कि वे प्रचलित होजायं। भागवत व्यासजी का बनाया हुआ नहीं है वरन बोपदेव का। हम उस शिव को मानते हैं जिसका नाम कल्याणकारी है, पार्वती के पति को नहीं।

यहां से स्वामीजी का विचार मारवाड़ की ओर जाने का था और एक दिन जोधपुर का वकील भी प्रार्थना करने आया था परन्तु इन्हीं दिनों में अचरौल के ठाकुर साहब का आदमी स्वामीजी को लेने के लिये आगया क्योंकि जयपुर के महाराज लाटसाहब से मिलने के लिये आगरे जाने वाले थे। वृन्दावन में रंगाचार्य्य नामी एक पंडित रहता था उससे कहीं शास्त्रार्थ न होजाय इसलिये महाराज ने स्वामीजी को ठाकुर साहब द्वारा बुलवाया था।

फिर अजमेर पधारना और मूर्तिपूजा आदि के खंडन का विज्ञापन देना

द्वितीय ज्येष्ठ संवत् १९२३ तथा २० मई सन् १८६६ ई० को स्वामीजी पुष्कर से अजमेर आये और बंशीलालजी सरिश्तेदार के बाग में ठहरे उस समय इनके साथ ६ आदमी थे स्वामीजी ने नगर में विज्ञापन लगवा दिया कि जिस किसी को मूर्तिपूजा आदि पर शंका हो वह हम से आकर शास्त्रार्थ करले कुछ लोगों ने कोलाहल मचाया परन्तु सन्मुख कोई नहीं आया यह प्रश्न लिखकर भेज दिये कि संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक नहीं रहना चाहिये, बग्घी पर सवार नहीं होना चाहिये, स्वामीजी ने उनका युक्ति और शास्त्र प्रमाणों से उत्तर दिया कि जहां अन्धकार फैला

हुआ हो वहां संन्यासी को उपदेश के लिये अधिक ठहरना चाहिये और उस पत्रे की बहुतसी अशुद्धियें निकालकर भी भेज दीं स्वामीजी भागवत को भडुवा पुराण और मन्दिरों को अड्डा बतलाते थे, मालाओं को गले में काष्ठ का भार बतलाया करते थे इस पर बहुतसे मनुष्यों ने भागवत की अशुद्धियों का पता पूछा जिस पर उन्होंने ३-४ पत्रे अपने हाथ से लिखकर दो एक आदमियों को दिये।

पादरियों के साथ शास्त्रार्थ करना

यहां पर स्वामीजी का शास्त्रार्थ पादरी ग्रे, रोबिन्सन और शूलब्रेड साहब से ३ दिनों तक ईश्वर, जीव, सृष्टिकर्म्म और वेद विषयों पर होता रहा, स्वामीजी ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया चौथे दिवस ईसा के ईश्वर होने और मरने के पश्चात् जीवित हो आकाश पर चढ़जाने विषयक प्रश्न किये, पादरियों से कुछ उत्तर बन नहीं पड़ा इस पर स्कूल के लड़कों ने ताली पीट दी परन्तु स्वामीजी ने रोक दिया, फिर भी पादरी लोग शास्त्रार्थ के लिये दूसरे रोज़ नहीं आये इस शास्त्रार्थ में पादरियों ने एक वेदमन्त्र का प्रमाण दिया था परन्तु जब स्वामीजी ने उसको वेद में बतलाने के लिये कहा तो नहीं बतला सके फिर स्वामीजी बड़े पादरी रोबिन्सन से मिलने के लिये गये जिसने यह पूछा कि ब्रह्माजी ने जो अपनी पुत्री से व्यभिचार किया उसका क्या उत्तर है? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि क्या एक ही नाम के बहुतसे मनुष्य नहीं होते? क्या प्रमाण है कि यह वे ही ब्रह्मा थे? प्राचीन शास्त्रों से सिद्ध है कि महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे, इस पर पादरी साहब ने प्रसन्न होकर एक पत्र लिख दिया कि स्वामी दयानन्द वेदों के एक प्रसिद्ध पण्डित हैं हमने अपनी उमर में ऐसा संस्कृत का विद्वान् नहीं देखा ऐसे मनुष्य संसार में कम होते हैं, जो इन से मिलेगा बहुत लाभ उठावेगा जो कोई इनसे मिले तो बहुत सन्मान करे।

कमिश्नर आदि कई बड़े २ अफ़सरों से मिलना

स्वामीजी मेजर ए० जी० डेविड्सन साहब बहादुर कमिश्नर अजमेर से भी मिलने गये थे, बातचीत में आपने कहा कि राजा प्रजा का पिता है और प्रजा उसकी पुत्र, जब पुत्र कोई खोटा काम करने लगे तो पिता का धर्म्म है कि उसको बचावे आप राजा हैं देश में अन्धकार फैल रहा है मतमतान्तर के लोग आपकी प्रजा को लूट लूटकर खा रहे हैं आपको उसका प्रबन्ध करना चाहिये, साहब ने उत्तर दिया यह धर्म्मसम्बन्धी विषय है गवर्नमेन्ट इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकती, यदि कोई खास बात हो तो हम आपकी सहायता दे सकते हैं।

कर्नल ब्रुक साहब से गोरक्षा पर बात-चीत करना

इसके पश्चात् आप रेप्टन साहब असिस्टेन्ट कमिश्नर से भी मिले, स्वामीजी की मुलाकात कर्नल ब्रुक से, जो एक विख्यात एजेन्ट गवर्नर जनरल हुए हैं, होगई, यह साहब गरवे वाला वालों से बहुत चिड़ते थे, एक दिन जब स्वामीजी बाग़ में कुरसी पर बैठे हुए थे तो साहब बहादुर उधर चले आये लोगों ने कुरसी हटा लेने के लिये कहा परन्तु स्वामीजी ने उलटी आगे बढ़ाली वह देखते २ अन्दर घुस आया, लोग घबराने लगे स्वामीजी ने कहा कुछ परवा नहीं आने दो और आप उनके आने के पूर्व ही कुरसी पर से उठकर टहलने लगे ताकि ताज़ीम आदि का रगड़ा न रहे वे आते ही टोपी उतार स्वामीजी से हाथ मिला सामने की कुरसी पर बैठ गये और बातें करने लगे स्वामीजी ने पूछा आप लोग धर्म्म को स्थापन करते हो या खंडन ? साहब ने उत्तर दिया कि धर्म्म का स्थापन करना तो हमारे यहां भी अच्छा है परन्तु जिसमें लाभ हो वह करते हैं। स्वामीजी ने कहा कि आप लाभ की बात नहीं करते, हानि करते हैं। साहब ने पूछा कि कैसे ? स्वामीजी ने कहा कि एक गौ से कितना लाभ होता है और उसको मारखाने से कितनी हानि ? तब एजेन्ट साहब ने कहा कि होती तो हानि ही है तब स्वामी ने कहा कि आप गोवध क्यों करते हो ? तब उन्होंने कहा कि यह बात हम आपकी मानते हैं। आप कल हमारे बंगले पर आवें वहां हम वार्त्तालाप करेंगे। फिर साहब चले गये। दूसरे दिन साहब बहादुर के यहां से गाड़ी आई और स्वामीजी जोशी रामस्वरूपजी के साथ बंगले पर गये, पौन घन्टे तक स्वामीजी की साहब से गोरक्षा विषय पर बातचीत होती रही। जब वे गोरक्षा में लाभ और हत्या में हानि मान चुके तो स्वामीजी ने कहा कि फिर आप इस को बन्द क्यों नहीं करते ? साहब ने उत्तर दिया कि महाराज ! मेरा अधिकार नहीं है मैं आपको चिट्ठी देता हूं आप लाट साहब से मिलें जिस साहब को आप मेरी चिट्ठी बतलावेंगे वह आप से अवश्य मिलेगा। यह चिट्ठी लेकर स्वामीजी चले गये। साहब बहादुर ने स्वामी से जयपुर का हाल भी सुना था, इस कारण एक चिट्ठी उन्होंने महाराजा रामसिंह के नाम भी भेजी कि शोक ! ! तुमने ऐसे वेदवक्ता के साथ बातचीत नहीं की। इस चिट्ठी को सुनकर महाराज साहब ने बड़ा पश्चात्ताप किया और अचरौल ठाकुर साहब को बुलाकर स्वामीजी से मिलने की अभिलाषा प्रकट की और कहा कि मुझे उस समय स्वामीजी का ज्ञान नहीं था अब मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं।

दो तपस्वियों से मिलना और उनके अहंकार की परीक्षा करना

अजमेर में काले वर्ण के दो युवा तपस्वी नागपहाड़ के जंगलों से स्वामीजी से मिलने आये, ये सिवाय संस्कृत के दूसरी भाषा नहीं बोलते थे। योग विषय पर कुछ बात चीत हुई, जिस पर उन्होंने कहा कि महाराज! हम तो बड़े शान्त हैं। स्वामीजी ने कहा कि नहीं, अभी अहंकार नहीं जीता। इन्होंने कहा कि हां जीत लिया, तिस पर स्वामीजी ने अपने ब्रह्मचारी को कुछ इशारा किया जिसने बाहर जाकर किसी बात पर उन साधुओं से तक़रार कर उन्हें पकड़ लिया और उनकी कुश्ती होगई और उसने उनको और उन्होंने उसको पछाड़ा स्वामीजी और हम सब लोग बाहर गये और समझा कर छुड़ा दिया फिर अन्दर बुलाकर संस्कृत में समझाया कि हम कहते थे कि तुमने अहंकार नहीं जीता, जिस पर उन्होंने क्षमा मांगी और 'नमो नारायण' कह के चले गये, इन्हीं दिनों रामसनेहियों के बड़े महन्त यहां आये हुये थे, स्वामीजी ने उनको शास्त्रार्थ करने के लिये कहला भेजा, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि हमसे शास्त्रार्थ नहीं हो सकता क्योंकि दूसरे के स्थान पर तो हम जाते नहीं और यहां कोई आवे तो हम उत्थानिका अर्थात् गद्दी से उठकर ताज़ीम नहीं देते। जब स्वामीजी से जाकर यह बात कही तो उन्होंने उत्तर दिया कि हमें उनकी गद्दी की आवश्यकता नहीं हम तो शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। जब यह बात महन्तजी से कही तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि बाबा! हम तो राम २ करते हैं और रोटियें खाते हैं शास्त्रार्थ कुछ नहीं जानते, इस पर स्वामीजी ने एक पत्र संस्कृत में लिखकर भेज दिया जिसका उत्तर उन्होंने कल देने के लिये कहा परन्तु उत्तर कहां था, दूसरे दिन प्रातःकाल ही अजमेर छोड़ चले गये। यहां पर देहली के एक पण्डित से, जो हरिश्चन्द्रजी के गुरुभाई थे, मनुस्मृति और उपनिषदों पर शास्त्रार्थ होता रहा, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुये और स्वामीजी का आतिथ्य किया, यहां पर स्वामीजी की जैनियों से भी छेड़छाड़ रही। स्वामीजी की चर्चा सुन कई स्त्रियें भी स्वामीजी के पास आने लगीं परन्तु यह उनको नहीं आने देते थे और कहते थे कि माइयो! अपने पतियों को भेज दो। हम उनको उपदेश कर देंगे। यहां पर भी स्वामीजी ने बहुतसी कंठियें लोगों से तुड़वा डाली थीं, सावर के ठाकुर साहब भी स्वामीजी का उपदेश सुनने आये थे और उनकी बहुत बातें मानने लगे थे, स्वामीजी के पास एक ६० वर्ष का ब्रह्मचारी, जिसकी भवें सफ़ेद होगई थीं, आन ठहरा था और संस्कृत में बातचीत किया करता था।

कृष्णगढ़ में वल्लभमत खण्डन कर पुनः जयपुर पधारना

अजमेर से स्वामीजी को दो एक श्रद्धालु भक्त कृष्णगढ़ लेगये और वहां जाकर उपदेश कराया, यहां के राजा वल्लभकुल के सेवक हैं जब इन्होंने अपने मत के खंडन का हाल सुना तो ठाकुर गोपालसिंहजी और बहुतसे राज के पंडितों को हल्ला गुल्ला करने के लिये भेजा स्वामीजी इनके अभिप्राय को समझ गये और शौच आदि से निवृत्त हो स्नान कर भस्म रमा लकड़ी के तख़्त पर आन बैठे वे लोग भी पास आनकर बैठ गये तब स्वामीजी ने आने का कारण पूछा उनमें से एक पंडित ने पुस्तक के कुछ पत्रे आगे किये स्वामीजी ने कहा कि तुम पढ़ो हम उत्तर देंगे पंडित ने पढ़े जिसका यह आशय था कि वल्लभमत सब से श्रेष्ठ है स्वामीजी ने इसका खूब खंडन किया जिसका वे कुछ उत्तर नहीं देसके और हल्ला करने का विचार किया यह देखकर स्वामीजी तख़्त पर खड़े होगये और बोले कि तुम यह न समझना कि मैं अकेला हूं मैं अकेला ही तुम्हारे लिये काफ़ी हूं अगर शास्त्रार्थ करना है तो भी मैं तय्यार हूं शास्त्रार्थ में भी पीछे नहीं हटने का। इतने में बहुतसे श्रीमाली ब्राह्मण आगये और वे लोग चले गये यहां से स्वामीजी दूदू गये और ठाकुर साहब के महलों में तीन दिवस पर्यन्त उपदेश कर बगरू को गये वहां केवल एक रात बागीचे में रह कर जयपुर को चले आये।

जयपुर में राजमहल में जाना

अचरौल ठाकुर साहब ने महाराजा रामसिंहजी को ख़बर कराई कि स्वामीजी महाराज पुष्कर से यहीं आगये हैं, महाराज साहब ने व्यास बख़्शीरामजी को भेजकर निवेदन कराया कि आप महलों में पधारें महाराज आपके दर्शन करना चाहते हैं, स्वामीजी ने कहा कि व्यासजी आप भले प्रकार जानते हैं कि मैं महलों में जाने की कुछ भी इच्छा नहीं रखता, यदि महाराज को कुछ संभाषण करना हो तो किसी समय कुछ काल के लिये यहीं पधार जावें व्यासजी ने महलों में जाकर इसी प्रकार महाराज से निवेदन किया पश्चात् महाराजा रामसिंहजी ने ठाकुर रणजीतसिंहजी से कहा कि आप स्वामीजी को महलों में लावें, ठाकुर साहब बहुतसे प्रतिष्ठित पुरुषों को साथ ले स्वामीजी के पास गये कि एक वार आप महलों में अवश्य ही पधारें, बड़ी कठिनाई से इनके निवेदन को स्वीकार कर स्वामीजी महलों में पधारे और मौजमंदिर में जाकर विराजमान हुए, वहां पर सब राजपंडित भी उपस्थित थे दैवयोग से महाराजा रामसिंहजी किसी कार्य्यवशात् ज़नाने में चले गये थे चेले ने आनकर कहा कि उनका आना अभी न होगा

यह सुन कर स्वामीजी और सब आदमी उठ कर चले आये इसके पश्चात् महाराजा रामसिंहजी ने बहुत प्रयत्न किया कि स्वामीजी किसी तरह महलों में पधारें परन्तु स्वामीजी ने सर्वथा इन्कार किया इस बार स्वामीजी आधे आश्विन तक यहां रहे फिर हरिद्वार का संकल्प करके आगरे की ओर रवाने हुए, विदा के समय ठाकुर रणजीतसिंहजी और उनके कामदार रोने लगे तो आपने कहा कि हमने तुम्हें उपदेश रोने के लिये नहीं वरन् हँसने के लिये किया था।

आगरे के दर्बार में भागवत का खंडन कर मथुरा में गुरुजी से अन्तिम मिलाप

कार्तिक बदी नवमी संवत् १९२३ अर्थात् १ नवम्बर सन् १८६६ ई० के लगभग आगरे में पहुंचे, यहां बड़ा भारी दर्बार होने वाला था इसमें देशभर के सब राजा बुलाये गयेथे। स्वामीजी ने इस समय को धर्मोपदेश के लिये उत्तम समझ एक सात आठ पृष्ठों की पुस्तक भागवत खण्डन पर बना कई हज़ार कापियें उसकी छपवाईं कितनी ही तो वहां दर्बार में बांटीं बाक़ी कई हज़ार हरिद्वार के लिये साथ लेकर मथुरा में पहुंचे इस समय इनके साथ ५ विद्यार्थी थे, स्वामीजी अपने गुरु से मिले और दो अशरफ़ी और एक मलमल का थान उनके भेट किया अपनी पुस्तक गुरुजी को दिखला हरिद्वार पर जाकर धर्म्मप्रचार करने की आज्ञा मांगी, विरजानन्दजी इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए और इन्हें आशीर्वाद दिया, स्वामीजी ने बहुतसी बातें इनसे पूछीं और सत्यशास्त्रों के विषय अपने विचार भी प्रकट किये, स्वामीजी का यह अपने गुरु से अन्तिम मिलाप था।

मेरठ होते हुए हरिद्वार को प्रस्थान करना

मथुरा में कुछ दिवस रहने के पश्चात् स्वामीजी मेरठ पधारे वहां पंडित गंगारामजी रईस से मिले और एक देवी के मन्दिर में ठहरे एक ब्रह्मचारी साथ था, गोरक्षा और वेदों के पढ़ाने की बहुत रुचि थी, पंडित गंगारामजी ने कृष्णाभ्रक के विषय इनसे पूछा इन्होंने एक पुड़िया दी तब पंडितजी ने कहा कि महाराज कामदेव ने तो सब को ख़राब किया है तुम क्योंकर बचे हो। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इसका विधान है यदि नियमपूर्वक रहे तो कामदेव मन्द हो जाता है, जब चढ़ जाता है तब नहीं उतरता। विधान यह है कि मनुष्य एक स्थान पर रहे कहीं नाच व तमाशे में न जाय न स्त्रियों की ओर देखे। विषय, भोग से बढ़ता है, जप प्रणव रात दिन करे, जब बहुत आलस्य हो सोजाय यह सुषुप्ति की नींद होती है फिर सुषुप्ति के दो घंटे

पश्चात् उठकर भजन शुरू करदे अधिक सोने से एक भ्रम का वृक्ष उत्पन्न होजाता है प्रात:काल शौच से निवृत्त होके ५ दाने मालकंगनी के खालिया करे, न तो बुरा देखे, न बुरा सुने और न स्मृति दौड़ावे वरन ब्रह्म के ध्यान में मग्न रहे। यहां से रवाने होकर स्वामीजी हरिद्वार की ओर पधारे।

स्वामीजी महाराज का इस समय तक का अनुभव

अखीर फाल्गुन संवत् १९२३ तक स्वामीजी ने यह निश्चय कर लिया कि निम्नलिखित बातें सत्यसनातन वैदिकधर्म्म और ऋषि आचरण के विरुद्ध हैं:—

१–सर्व प्रकार की मूर्त्तिपूजा।
२–वाममार्ग।
३–वैष्णवमत।
४–चोलीमार्ग।
५–वीजमार्ग।
६–अवतार।
७–कंठी।
८–तिलक, छाप।
९–माला।
१०–पुराण, उपपुराण।
११–शंख, चक्र, गदा, पद्म को तप्त करके दग्ध करना।
१२–गङ्गा आदि नदियों से पाप का कटना।
१३–काशी आदि क्षेत्रों से मुक्ति का मिलना।
१४–नामस्मरण और एकादशी आदि व्रतों से भवसागर पार उतरना।

हरिद्वार का वर्णन

यह हरिद्वार हिन्दुओं की उन पवित्र सात पुरियों में से है जिनका वृत्तान्त जहां तहां पुराणों में माहात्म्य के तौर पर आया है, यहां तक कि कालिदास की कविता की अनुपम छटा का प्रसिद्ध काव्य मेघदूत भी इसके वर्णन से खाली नहीं रहा, क्यों रहे जब कि क़ुदरत ने इसको ऐसा रमणीक स्थान प्रदान किया है जहां पहाड़ी और मैदानी दोनों दृश्य अपूर्व हैं इसकी अनुपम छवि को देखकर ही लोगों ने इसका नाम हरिद्वार अर्थात् वैकुंठ का दर्वाज़ा ही मानलिया, गंगा यहां पर ही पर्वतों को चीरकर निकली है और अपना अपूर्व दृश्य मनुष्यों को दिखलाया है और इसी स्थान पर नहाने का बड़ा माहात्म्य माना गया है इसके दोनों ओर पर्वतों ने गङ्गा के जोबन को दुगुना कर दिया है और नहर ने सोने में सुगन्ध का काम किया है यहां पर मनुष्य अद्भुतसृष्टि की विचित्रता को देखकर उस बनानेवाले महान् पुरुष की ओर ध्यान

दौड़ाता है। ऐसे सुन्दर स्थान में प्रत्येक १२ वर्ष के पश्चात् बड़ा मेला होता है जो कि कुंभ के नाम से प्रसिद्ध है जिसमें लाखों मनुष्य गङ्गा में स्नान से मुक्ति माननेवाले इकट्ठे होते हैं और अपने भिन्न २ प्रकार के आचरण व व्यवहारों से भारत की अधोगति का जीता जागता दृश्य दिखलाते हैं। इसी मेले में हज़ारों त्यागी साधु कहलाकर भी सैकड़ों हाथी, घोड़े, पालकी, बल्लम, छत्र आदि राजसी ठाठ से निकलते हैं, हज़ारों लज्जा को भी लज्जित करके नंगे मादरज़ाद बाज़ारों में स्त्रियों के सन्मुख होकर निकलते हैं, हज़ारों पहिले स्नान करने के बहाने लड़ाई झगड़ा कर अपनी अविद्या का परिचय देते हैं और अन्य मतावलम्बियों के हास्य के पात्र बनते हैं जैसा कि जहांगीर ने अपनी तुज़कजहांगीरी में इस मेले के वृत्तान्त में लिखा है। यह मेला अन्य मेलों की अपेक्षा प्राचीन प्रतीत पड़ता है इस तीर्थ का पता सातवीं शताब्दी तक चलता है क्योंकि इसका वृत्तान्त चीन के प्रसिद्ध पथिक ह्वानथिसांग ने भी लिखा है।

जिन स्थान का नाम हर की पेड़ी रक्खा गया है उसके थोड़ेऊपरी पहाड़ों को देखने से प्रतीत होता है कि प्राचीन समय में कोई बुद्धिमान् इंजीनियर पहाड़ों को काट गङ्गा को इस स्थान पर लाया है, अनुमान से यह इंजीनियर भागीरथ ही हुआ था, पहाड़ तो कनखल के पास ही समाप्त होजाते हैं और नदी वहां से आगे मैदान ही मैदान में चली जाती है और जिस स्थान पर नदी के बहाव को रोककर उसके पानी का बहुतसा भाग नहर में लेगये हैं वह मनुष्य को चकित करता है। गंगा का पानी बर्फीला और बिना मेल होने के कारण निर्मल और मीठा है और क्षुधा को बढ़ाता है इन गुणों के कारण भोले मनुष्यों ने इसमें स्नान करने से पापों का कटजाना मान लिया है और हरिद्वार की पैड़ियों पर स्नान करने में बड़ा माहात्म्य गिनते हैं और पर्वों और कुम्भ पर (जो बारहवें वर्ष हुआ करता है) इतना बड़ा मेला लगता है कि शायद ही दूसरे स्थान पर लगता हो। हरिद्वार पर्वतों के पिता हिमालय के चरणों में होने के कारण ऐसा रमणीय है कि प्राचीन ऋषि मुनियों ने सत्संग के लिये इसको एक मुख्य तीर्थस्थान बनाया था।

मेले में पाखंडखंडनी झंडी गाड़ना

सारांश यह है कि ऐसे अवसर को हाथ से न जाने देने के लिये ही स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी विद्या में निपुण होकर मतमतान्तरों पर विचार करते हुए कुम्भ की संक्रान्ति से एक मास पूर्व अर्थात् १२ मार्च सन् १८६७ को हरिद्वार में पहुंच गये। एक विश्वेश्वरानन्द दूसरे

शङ्करानन्द और ईश्वरीप्रसाद ब्राह्मण गौड़ और ५ या ६ दूसरे आदमी साथ थे। स्वामीजी ने हृषीकेश के मार्ग पर, जो कि एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है, सप्तस्रोत के निकट बाड़ा बनवा उसमें आठ दश छप्पर डलवा वहां डेरा डाल दिया और एक झंडी गाड़ दी जिसका नाम "पाखण्डखण्डनी" रक्खा।

स्वामी विशुद्धानन्द कृत असत्यार्थ का खंडन करना

आर्य्यावर्त्त के अनेक मतमतान्तरों के प्रतिनिधि भी वहां उपस्थित थे और सब आपस में लड़ते थे प्रत्येक मनुष्य अपनी ही बड़ाई करता था और एक दूसरे को भला बुरा कहता था बहुतसे राजा महाराजा इस अवसर पर आये थे, स्वामी विशुद्धानन्द काशी के प्रसिद्ध संन्यासी भी आये हुए थे यह स्वामी समस्त पौराणिक पंडितों के गुरु थे। महाराजा जम्बू, काश्मीर भी इनके चेलों में से थे। विशुद्धानन्द ने पुरुषसूक्त में से वेद की उस ऋचा का, जिसमें जातियों का वर्णन है, यह अर्थ किया कि ब्राह्मण परमात्मा के मुख से उत्पन्न हुए हैं स्वामीजी ने यह अर्थ सुनकर उसका खंडन किया और कहा कि यदि यह अर्थ ठीक हो तो पापी भी उसी मुख से उत्पन्न हुआ। ब्राह्मण मुख से उत्पन्न नहीं हुए वरन ब्राह्मण, वर्णों में मुख के समान हैं, क्षत्रिय भुजा, वैश्य जंघा, शूद्र पांव। इस पर लोगों ने कहना प्रारम्भ किया कि यह नास्तिक है, वेदों का खण्डन करता है। इसके पश्चात् गुसाइंयों और विशुद्धानन्द में झगड़ा होगया गुसाइंयों ने विशुद्धानन्द पर नालिश की और स्वामीजी के पास सहायतार्थ आये परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हम न तुम्हारे न विशुद्धानन्द के पक्ष के हैं सत्य की ओर हैं उस समय कैलाशपर्वत भी उपस्थित थे।

इस पौराणिक मेले में स्वामीजी के पास क्या गृहस्थ, क्या साधु, क्या संन्यासी, क्या पंडित सब ही आते थे और उपदेश सुन चलेजाते थे कोई २ शंकासमाधान व शास्त्रार्थ भी करता था परन्तु अन्त में निरुत्तर हो दांत पीस रहजाते थे और घर को पीछे चले जाते थे मन ही मन में कहते जाते थे कि शोक! हिन्दू मा बाप से पैदा होकर और उस पर भी संन्यासी होकर ऐसा काम करता है क्या करें अंग्रेज़ी राज्य है नहीं तो अभी इसको मज़ा चखा देते। पंडों के कलेजे पर तो सांप लोटता था परन्तु कुछ कर नहीं सकते थे यही कहते थे कि घोर कलियुग आगया। एक दिन एक पंजाबी ब्रह्मचारी स्वामीजी के पास आया और दो घंटे तक संस्कृत में बात चीत करता रहा, इस प्रकार सब भांति के मनुष्य उनके दर्शनों को आया करते थे, गद्दीधारी मह-

न्तों को छोड़ और सब लोग इनके पास चर्चा और वार्त्तालाप के लिये आया करते थे, जिनमें से मुख्य २ ये थे–पंडित श्यामसिंह ठाकुरों के डेरे वाले, आत्मस्वरूप अमृतसर वाले, संत अमीरसिंहजी निर्मला, स्वामी महानन्द सरस्वती दादूपन्थी जो संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं, साधु देवेन्द्र सरस्वती, पंडित वस्तीराम, स्वामी रत्नगिरि आदि। जो गृहस्थ लोग स्वामीजी के दर्शनार्थ जाते वे कुछ भेट चढ़ाने को भी लेजाते जिसका सायंकाल तक एक ढेर लग जाता था, स्वामीजी इस सबको कंगलों को बांट दिया करते थे अपने लिये कुछ नहीं रक्खा करते थे इस प्रकार पौराणिक महोत्सव के दश दिनों पीछे तक धैर्य्य और निर्भयता से समस्त पौराणिक मतमतान्तरों का खण्डन करते रहे और उपनिषदों की कथा सुना लोगों को सच्चे ज्ञान का उपदेश करते रहे। यह स्वामी दयानन्द जैसे प्रतापी संन्यासी की ही हिम्मत थी कि इस मेले पर लाखों हिन्दुओं से न डर उनके बड़े तीर्थस्थान पर ही झंडा गाड़ कुंभ के दिन उस तीर्थ का खंडन करे।

पाठकगण! आप उस समय का चित्र अपने सामने खींचें कि एक ओर तो हज़ारों वर्षों के फैले हुए पाखंडजाल और दूसरी ओर स्वामी दयानन्द की अकेली ध्वनि क्या थी परन्तु यह ध्वनि सत्य की नाद थी इसमें परमात्मा के ज्ञान की गूंज थी इस कारण वह निर्भय होकर अपने मन्तव्य को प्रकट करती थी और समस्त हिन्दुओं को सुनाती थी कि मूर्त्तिपूजा, श्राद्ध, झूठे तीर्थादि सब भ्रमजाल हैं इन सब लीलाओं को छोड़कर वेदरूपी झरने से अमृतपान करो नहीं पछताओगे। सत्य तो यों है कि इस कुंभ पर स्वामीजी ने पौराणिक मत की जड़ को खोखला कर दिया लाखों मनुष्यों ने स्वामीजी के सदुपदेश को सुना और कितनों ही ने इसको माना।

देश की अधोगति पर पश्चात्ताप करना

स्वामीजी ने इसके पूर्व इतने बड़े तमाशे को कभी नहीं देखा था जिसमें इतनी बड़ी संख्या साधु, संन्यासियों, वैरागियों और पण्डितों की हो इनको उनकी अवस्था पर विचार करने का अवसर भी मिला, क्या देखते हैं कि संन्यासी जिनका धर्म्म जगत् का सुधार करने का था वे गिरी, पुरी, भारती, अरण्य, पर्वत, आश्रम, सरस्वती, सागर, तीर्थ, गुसाईं आदि दश विभागों में विभक्त हो आपस में जूतमपैज़ार कर रहे हैं गुसाईं विवाह करके भगवे बाने को लज्जित कर रहे हैं और अपने कलियुगी मन्त्र के अनुसार भोग और याग को मिला रहे हैं नाम के त्यागी वास्तव में गृहस्थों के भी कान का-

टते हैं मदिरा मांस और व्यभिचार जो वाममार्ग, चोलीमार्ग और बीजमार्ग के साधन हैं उन्हें अहं ब्रह्मास्मि की तरंग में दुग्धवत् पी रहे हैं सत्य का मार्ग भुला स्वयं ईश्वर बन गये हैं, साधु सत्य धर्म्म की निर्मलता और उज्ज्वलता से कोसों दूर हैं और जगत् माया से उदासीन रहने के बदले उसमें लिप्त हैं, हाथी घोड़े रुपहरी और ज़रदोज़ी झूलें मखमली तकिये और जरबफ़्त के गदेले, सोने के कंगन और चांदी के उगालदान सब कुछ रक्खे हुए हैं ।

वैरागियों की दशा

वैरागियों को मुंह से कहने को सब कुछ वैराग्य और त्याग है परन्तु वास्तव में लोगों के द्रव्य फूंकने को आग का अंगीठा पास रक्खे हुए हैं काला अक्षर भैंस बराबर है, सिवाय खाने और पड़े रहने या राग रंग में जीवन बिताने के और कुछ काम नहीं । गीता का केवल पाठमात्र भी हज़ारों में से एक को याद, अर्थ करोड़ों में से सौ पचास जानते होंगे, परन्तु तंबाखू, चरस, गांजा और भांग से एक भी नहीं बचा हुआ है । योगी गोरखनाथ के नाम को कलंकित करनेवाले कानों में स्वर्ण के मुद्रा डाले हुए कोई किसी गद्दी का महन्त कोई किसी का, धर्म्म कर्म्म से शून्य, योग के पूरे शत्रु, मद्य मांस सेवन में बड़े तत्पर, लोगों के भोले भाले बच्चों के कान फाड़ने में बड़े दक्ष । राजा महाराजा अक़ल के अन्धे गांठ के पूरे इसी प्रकार के संडे मुस्टंडों के चेले तन, मन, धन गुसाईंजी और गुरुजी के अर्पण करने वाले, झूंठी प्रशंसा चाहनेवाले, डरपोक कारकुनों के भरोसे सब काम छोड़ धर्म्म कर्म्म से बेखबर, विषयासक्ति में निमग्न, अफीम के गोले चढ़ाने में पक्के, फ़क़ीरों की सियाही, गृहस्थों की तबाही, विद्वानों और बुद्धिमानों की संगत से लापरवाही और ज्ञानवानों की जान बूझकर चुप आदि धर्म्म की इस भयानक अवस्था और आर्य्य जाति की दुर्गति को देख स्वामी दयानन्द पर उदासी छागई ।

दुर्दशा को मेटने के लिये आत्मा में उत्तेजना होनी

जबतक मेला रहा तबतक तो जोश भरा रहा जब यह समाप्त होगया तो विचार का समय आया । धर्म्म की इस मन्द अवस्था को देखकर और प्राचीन समय का ध्यान करके बहुत दुःख हुआ, ऋषि मुनियों की सन्तान व्यास और कपिल की औलाद को सच्चे ईश्वर की उपासना छोड़ मूर्त्तिपूजा आदि ढकोसलों में फंसे हुए देख इनका मन भर आया और लोगों की वैदिक धर्म्म से अनभिज्ञता और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को ईसाई मुसलमान होते देख और सुनकर उसका दयावान् मन स्थिर न रह सका और

शताब्दीसंस्करण

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

उसने न चाहा कि अन्य लोगों की भांति भेड़िये धसान के प्रवाह में बहता चला जाऊं, बार २ देखा सोचा विचारा एक दिन नहीं दश बारह दिवस तक सोचता रहा अन्त को उसके सत्यग्राही आत्मा और उसकी मनुष्यों को पहचानने वाली आंखों ने दिव्यदृष्टि और बारीक निगाह से यही निश्चय किया कि ऐ दयानन्द ! तू औरों की भांति अचेत मत पड़ा रह, रोग को जानकर उसकी चिकित्सा न करना बड़ा पाप है, तुझे परमेश्वर ने आंखें दीं, सत्य धर्म्म का ज्ञान दिया, उठ खड़ा हो और सोते हुओं को जगा, कमर हिम्मत बांध क्योंकि जो औरों की सहायता करता है ईश्वर उसकी सहायता करता है।

परोपकारार्थ सर्वस्व त्याग कर गंगातट पर अकिंचन होकर भ्रमण करना

"परोपकाराय सतां विभूतयः" यह विचार दृढ़ होते ही व्याख्यान देते २ दिल भर आया और यह सोचने लगे कि यह अधर्म जो फैला हुआ है उसको हटाने की शक्ति है या नहीं ? हृदय के कोने से आवाज़ आई कि अभी तप करो और जो विद्या पढ़ी है उसको विचारो तब तुम कुछ कर सकोगे, बस यह अनुभव होना ही था कि व्याख्यान की समाप्ति पर "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" करके सब कुछ त्याग दिया जो कुछ माल असबाब इस समय डेरे में था अर्थात् पलंग, वर्तन, पीताम्बरी धोतियां, रेशमी कपड़े दुशाले, ऊनी वस्त्र रोकड़ आदि सब कुछ लोगों में बांट दिया एक पुस्तक महाभाष्य ३५) रुपये का और एक थान मलमल का गुरुजी के निमित्त एक पुरुष को दे दिया कि मथुरा में पहुंचा दे और नग्न हो लंगोट बांध भस्म रमा अवधूतमूर्ति बन डेरा उखाड़ गंगातट का मार्ग लिया। जब लोगों ने पूछा कि तुम ऐसा क्यों करते हो तो उत्तर दिया कि हम सत्य २ कहना चाहते हैं और यह बात बेखटके हुये विना नहीं हो सकती जबतक हम अपनी आवश्यकताओं को कम न करेंगे इसमें सफलता प्राप्त न होगी।

कोपीनधारी होकर गढ़मुक्तेश्वर में गंगा-तट पर विचरना

स्वामीजी प्रथम हृषीकेश की ओर गये और पांच छः रोज़ में पीछे आकर दक्षिण की ओर चल पड़े, हरिद्वार से चलकर कनखल होते हुये गंगा के किनारे २ लंढोरा पहुंचे तीन दिन तक कुछ न खाया था जब बहुत भूख लगी तो एक खेत वाले से कहा, उसने तीन बैंगन दिये उन्हें खा क्षुधा निवृत्त की वहां से शुकताल को गये यहां लोग कहते हैं कि शुकदेवजी ने कथा सुनाई थी, फिर परीक्षितगढ़ होते हुए गढ़मुक्तेश्वर में आये वहां १५ दिन रहे। दिनरात बालू में पड़े रहते थे और संस्कृत के सिवाय दूसरी भाषा नहीं बोलते थे यहां के पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ, रुड़की से २० कोस उरे मीरां-

पुर में भी किसी से दो दिन तक शास्त्रार्थ हुआ था इस प्रकार स्वामीजी निर्द्वन्द्व जीवन व्यतीत करते थे और ईश्वर के ध्यान में मग्न रहते थे इस आनन्द का अनुभव वही मनुष्य कर सकता है जिसने योगबल से अपनी इन्द्रियों को जीत लिया हो और परमात्मा का ध्यान करता हो, इस आनन्द में केवल एक ही पीड़ा की रेखा थी जो सनातन वैदिक धर्म्म और आर्य्यजाति की अधोगति के चिन्तन करने से खड़ी होती थी।

ढाई वर्ष तक गंगा-तट पर भ्रमण कर उपदेश करना

अहा! कैसा ही अद्भुत दृश्य है! एक संन्यासी भस्म लगाये नग्न गङ्गारज में बैठा हुआ मनुष्यों की धार्मिक अधोगति पर चिन्तन कर रहा है और परमात्मा से इस अधोगति को दूर करने के लिये बल की प्राप्ति की प्रार्थना करता हुआ तप से अपने आप को धार्मिक युद्ध के लिये तय्यार कर रहा है। आर्य्यावर्त्त के इतिहास में यह दृश्य एक ही है। इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती ढाई वर्ष गङ्गा के किनारे किनारे विचरते, और उपदेश करते रहे चाहे गर्मी हो चाहे सर्दी नग्न रहते और भस्म रमाते थे केवल एक लंगोट बांधते थे। लोगों को संध्या गायत्री सिखाते किसी २ जगह मनुस्मृति और उपनिषद् भी पढ़ाते थे जब चाहते चले जाते थे न किसी को आने की खबर देते न जाने की। जहां जाते यज्ञ कराते और द्विज लोगों को यज्ञोपवीत धारण कराते, गङ्गा-तट की अनेक जाति के सैकड़ों मनुष्यों ने उनके उपदेश से यज्ञोपवीत लिया और संध्या गायत्री सीखी, इस ढाई साल में उपदेश करते हुए कानपुर तक गये फिर वहां से पीछे लौटते हुए गङ्गा के किनारे २ उन्हीं स्थानों पर फिर ठहरे और कर्णवास तक आये।

कर्णवास में शास्त्रार्थ करना

वैशाख शुक्ल संवत् १९२४ अर्थात् माह मई सन् १८६७ में स्वामीजी कर्णवास पहुंचे और एक दिन ठहर कर चले गये फिर आषाढ़ सुदी ५ (६ जुलाई) को पक्के घाट पर आ उतरे और नागा बाबा की मढ़ी के आगे बसेन्दू वृक्ष की छाया में गङ्गारज लगाये अकेले लंगोटी बांधे रहने लगे, गांव-ठाकुर व पंडितों ने जाना आना प्रारम्भ किया तब गांव में चर्चा फैली कि बड़े भारी महात्मा और संस्कृत के विद्वान् हरिद्वार के कुम्भ से सभा जीतकर आये हैं ऐसे महात्मा न पहिले कभी सुने गये न देखे गये इसी आन्दोलन में स्वामीजी को श्रावण मास बीतकर भादों आगया इन्हीं दिनों में पंडित भगवानदास भागवती को एक दिन स्वामीजी महाराज ने कण्ठी तिलक धारण करने का

साधारण प्रकार से निषेध किया वह सुनकर चुप के ही चला गया और ग्राम में आकर स्वामीजी के विरुद्ध उद्योग करना प्रारम्भ किया कि स्वामीजी मूर्तिपूजा, अवतार, कंठी, माला, तिलक, भागवत, सम्प्रदाय आदि को मिथ्या और पाखंड बतलाते हैं और कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिये [illegible] है। आश्विन के महीने में बाहिर के आये हुए पंडितों से भगवानदास ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया जिससे पास २ के ग्राम २ और नगर २ में स्वामीजी की बड़े आश्चर्य के साथ चर्चा फैल चली और दानपुर के पंडित निगाहलाल व अहमदगढ़ के पंडित कमलनयन ने शरद्पूर्णिमा को आकर स्वामीजी से कुछ बातचीत की, इन दोनों पंडितों ने नन्दकिशोर उपाध्याय कर्णवास वाले से कहा कि पंडित [illegible] वैद्य अनूपशहर वाले को बुलाकर इनसे शास्त्रार्थ कराया जाय तब तो भले ही अर्थ सिद्ध हो नहीं तो औरों से कुछ न होगा, यह सुनकर उन्होंने पंडित अम्बादत्तजी को बुलाया और स्वामीजी से संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ।

शास्त्रार्थ से पौराणिकों पर प्रभाव पड़ना और यज्ञ होना

पण्डित अम्बादत्तजी ने स्वामीजी के कथन को स्वीकार कर कहा कि यदि पण्डित हीरावल्लभजी पर्वती, जो वेदपाठी और व्याकरणी हैं, इन बातों को मानलें तो निश्चय हो जाय। पण्डित अम्बादत्तजी के इतना कहते ही और ढंग होगया, ठाकुर लोग स्वामीजी से प्रार्थी हुए कि जो कर्म्म बतलाया जाय उसे हम करने को उद्यत हैं स्वामीजी महाराज ने सबको यज्ञोपवीत संस्कार कराने की आज्ञा दी और अनूपशहर, दानपुर, कर्णवास, अहमदगढ़, रामघाट आदि से ४० विद्वान् ब्राह्मण गायत्री का जप करने के लिये बुलाये गये और स्वामीजी की कुटिया के आगे ही कुंडादि निर्माण हो यज्ञ प्रारम्भ हुआ और १५ व २० आदमियों का यज्ञोपवीत हुआ जिसमें कुमरजी नामक एक पंडित कंठी तोड़ तिलक मिटा दीक्षित हुए थे, इस कर्म्म से स्वामीजी महाराज के विजय का सूर्य्य उदय हुआ और एक अपूर्व अग्नि प्रज्वलित हो धर्म्मात्माओं के हृदयकुण्ड में प्रकाशित होने लगी और चारों ओर से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आकर संस्कार कराने लगे।

गप्पों का खण्डन करना

अब स्वामीजी महाराज निर्भय होकर इन आठों गप्पों का खंडन करने लगे (१) अठारह पुराण मिथ्या और अप्रमाणिक हैं व्यासजी के बनाये हुए नहीं, (२) मूर्तिपूजा वेदविरुद्ध है, (३) शैव, शाक्त, रामानुज आदि सम्प्रदाय बनावटी और मिथ्या हैं, (४) तन्त्रग्रन्थ वाममार्ग आदि महाभ्रष्ट हैं, (५) भंग, शराब आदि सब नशों की चीजें, (६) पर-

अभिगमन करना, (७) चोरी करना, (८) कुल, अभिमान, झूठ आदि ये आठों वर्ज्य हैं इन्हें सब मनुष्यों को छोड़ना चाहिये।

एक मूर्तिपूजक ने मूर्तियों को गंगा में बहा दिया

पौष के मास में पंडित हीरावल्लभ पर्वती स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये अनूपशहर से आये उस दिन दो सहस्र मनुष्यों की भीड़ थी, पण्डितजी सभा के मध्य में एक छोटे से सुन्दर सिंहासन पर बालमुकुन्द गोमतीचक्र शालिग्राम आदि की मूर्त्तियां रखकर यह प्रतिज्ञा करके बैठे कि स्वामीजी महाराज के हाथ से भोग चढ़वाके उठूंगा परन्तु वह दिन तो दोनों के धाराप्रवाह संस्कृत बोलने में समाप्त हुआ और इसी प्रकार ६ दिन पर्य्यन्त शास्त्रार्थ होता रहा अन्तको किसी मूर्त्ति ने सहायता न की और पंडित हीरावल्लभजी ने शुद्ध अन्तःकरण से स्वामीजी महाराज की ओर उच्च स्वर से सबको सुनाकर कहा कि भाइयो! जो कुछ स्वामीजी कहते हैं वह सत्य और प्रामाणिक है इसके पश्चात् सिंहासन समेत सब मूर्त्तियों को उठा गङ्गा में डालदीं यह देख स्वामीजी महाराज ने शास्त्रीजी के सत्य ग्रहण करने और मिथ्या के त्यागने की बड़ी महिमा की इस बात की बड़ी धूम मची। हठी और स्वार्थी मूर्त्तिपूजक दुम दबाकर भाग गये। जगह २ लोगों ने मूर्त्तियें उठाकर गङ्गा में डालनी शुरू कीं मन्दिरों के मन्दिर मूर्त्तियों से खाली होगये सैकड़ों ब्राह्मण बेरोज़गार हो स्वामीजी की घात में फिरने लगे, गङ्गा के तट पर रहनेवाले हिन्दुओं में कोलाहल मच गया।

तलवार से न डर के शान्तिपूर्वक उपदेश करना

माघ मास के अन्त में स्वामीजी रामघाट की ओर चले गये और अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए ज्येष्ठवदी १३ संवत् १९२५ अर्थात् २० मई सन् १८६८ को कर्णवास में उसी कुटिया में आ फिर विराजमान हुए। ज्येष्ठ सुदी १० को यहां गंगास्नान का मेला हुआ करता है उस में बहुत पुरुष एकत्रित होते हैं, इस मेले में राव करणसिंह बड़गूजर रईस बरौली भी आये थे ये कुछ दिनों पहिले रंगाचारी से तिलक छाप ले चुके थे, स्वामीजी की चर्चा सुन उनसे मिलने के लिये आये और स्वामीजी ने बड़े आदर सत्कार से बैठने को कहा परन्तु रईस साहब, जो पहिले से ही भरे हुए आये, बोले कि कहां बैठें स्वामीजी ने कहा जहां इच्छा हो, रईस ने कहा जहां तुम बैठे हो वहां बैठेंगे स्वामीजी महाराज ने शीतलपट्टी के एक सिरे की ओर हट कर कहा कि आइये बैठिये परन्तु वह न बैठे और बोले कि आप गङ्गाजी को क्यों नहीं मानते स्वामीजी ने कहा कि जितनी गङ्गाजी हैं उतनी मानते हैं उसने कहा कितनी? स्वामीजी ने कहा कि हम

लोगों का तो गङ्गाजी कमंडलु ही है इस पर उसने कुछ श्लोक गंगाजी की स्तुति के पढ़े स्वामीजी ने कहा कि यह बात तुम्हारी गप्प है यह केवल पीने का पानी है इस से मोक्ष नहीं हो सकती मोक्ष तो केवल कर्मों से होती है तुमको पोपों ने बहकाया है। उनके तिलक आदि को देखकर संस्कृत में कहा कि तुमने क्षत्रिय होकर यह भिखारियों का चिह्न मस्तक पर क्यों धारण किया है उसने कहा कि हमारे स्वामी के सामने आपसे बातचीत भी नहीं होगी तुम उनके सामने कीड़े के तुल्य हो तुमसे उस- के आगे जूतियां उठाते हैं। स्वामीजी ने हँसकर बड़ी शान्ति से कहा कि उनको शास्त्रार्थ के लिये बुलाओ यदि उनमें आने का सामर्थ्य न हो तो हम वहां चलें, इस पर वह बहुत क्रुद्ध होगया और गाली गलौच दे कहने लगा कि यदि तुम हमारे सामने खण्डन मण्डन करोगे तो तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है स्वामीजी महाराज ने उसके कटु वाक्यों को सह कर कुछ भी चिन्ता न करते हुए सिंहवत् शृगाल से भयभीत न होकर बड़ी गम्भीरता और शान्ति से सत्य का उपदेश और चक्रांकित मत का भले प्रकार खंडन किया और कहा कि तुम कैसे क्षत्रिय हो जो रामलीला में लौंडों का सांग भरवा महा- पुरुषों की नक़ल उतरवा उनको नचवाते हो, अगर तुम्हारी बहन बेटी को कोई नचावे तो कैसा बुरा मानो, इस पर राव करणसिंह को अत्यन्त क्रोध आगया और उसने तल- वार की मूंठ पर हाथ रक्खा और उसके एक साथी पहलवान ने आगे बढ़कर स्वा- मीजी पर हाथ डालना चाहा मगर स्वामीजी ने ज्यों ही उसका हाथ पकड़ कर धक्का दिया कि वह पीछे जा पड़ा और उससे कहा कि अरे धूर्त ! यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर और धौलपुर के राजाओं से जा लड़ो, यदि शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य्य को वृन्दावन से बुलालो इतने पर बहुत कोलाहल होगया। कोई २ यह भी कहते हैं कि स्वामीजी ने उसके हाथ से तलवार भी छीन ली इतने में ठाकुर कृष्णसिंह लट्ठ लेकर खड़े होगये और रईस से कहा कि अगर तुम महात्मा को ज़राभी छेड़ोगे तो लट्ठों के मारे तुम्हारी तमाम शेखी निकाल देंगे, इस पर वह वहां से अपने साथियों को लेकर चला गया, इसके पश्चात् बहुतसे लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप पुलिस में रिपोर्ट करें परन्तु स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जब वह अपने क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो हम क्यों अपने संन्यास धर्म्म से पतित होवें सन्तोष करना ही हमारा परमधर्म्म है। स्वामीजी यहां कार्त्तिक पर्य्यन्त ठहरे और इस अन्तर में स्वामी विशुद्धानन्द कृष्णानन्द आदि कई संन्यासियों से वेदान्त व योगाभ्यास पर बातचीत हुई।

हुंकार मात्र से घातकों का पलायन या धैर्य का धारण करना

आश्विन शुक्ला शरद्पूर्णिमा को ठाकुर कर्णसिंह रईस बरौली फिर गङ्गास्नान को आये और स्वामीजी की कुटी से थोड़ी दूर पर पश्चिम को बारहदरी में ठहरे। स्वामीजी को भी यहीं विराजमान सुनकर रात्रि के समय अपने दो तीन आदमियों को स्वामीजी के मारडालने को शस्त्र देकर भेजा परन्तु इस घटना से कुछ दिनों पहिले कर्णवास के ठाकुरों ने ठाकुर कैथलसिंह को वहां नियत कर दिया था कि जब रात्रि को स्वामीजी सो जाया करें तो उन पर कम्बल डाल दिया करो क्योंकि स्वामीजी का जब रात्रि को कम्बल उतर जाता तो आप नहीं ओढ़ा करते थे वैसे ही नग्न पड़े रहते थे राव कर्णसिंह के आदमी गये परन्तु कुटि में जाने की हिम्मत नहीं पड़ी स्वामीजी उस समय सोते थे और कैथलसिंह भी सोता था खटका सुनके स्वामीजी बैठ गये वे आदमी लौटकर चले गये और कहा कि हमारी हिम्मत नहीं चलती इस पर रावसाहब ने उनको बहुत धमकाया और दूसरी वार भेजा स्वामीजी ने यह सब सुन लिया क्योंकि अनुमान से १२५ क़दम का फासला था और रात्रि का समय था स्वामीजी ध्यानावस्थित हो चौकी पर बैठ गये इस वार भी वे आदमी औसान भूलकर वापिस चले गये इस पर रावसाहब ने गालियें देकर उनको फिर भेजा वे तीसरी वार आये और हाथ में तलवार ले अपने औसान को कायम रखने के लिये यह कहते हुए कि कौन है कुटी में अन्दर घुसने लगे स्वामीजी ने चौकी पर से उठ कुटि के दरवाज़े पर खड़े होकर जोर से "हुम्" की आवाज़ लगाई ऐसी भारी आवाज़ को सुन वे घबरा के भगने लगे और रास्ते में गिरपड़े परन्तु सँभल सँभला कर भगगये इतने में ठाकुर कैथलसिंह भी जग पड़े और स्वामीजी से कहा कि आप किसी गढ़े में छिप रहें परन्तु स्वामीजी ने हंसकर कहा कि, "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः" हम नहीं डरते ईश्वर हमारा सहायक है तुम मत जाओ परन्तु कैथलसिंह गांव की ओर दौड़े और ठाकुरों को जाके खबर दी ठाकुर कृष्णसिंहजी लट्ठ लेकर दौड़े और कई आदमी उनके पीछे होलिये उन्होंने जाते ही राव कर्णसिंहजी को ज़ोर २ से गालियें देना शुरू किया और कहा कि यदि वीर और असली क्षत्रिय का पुत्र है तो हमारे सामने आ, देख तेरी बन्दूक और तलवार कैसे एक २ थप्पड़ में छीनते हैं और बहुतसी कड़ी २ बातें कहीं जहां सिपाई गिरे थे वहां चिह्न भी देखे स्वामीजी ने ठाकुर कृष्णसिंह से कहा कि तुम संतोष करो वह तो स्वयं भीरु है क्रोध मत करो वह हमारा कुछ नहीं कर सकता परन्तु ठाकुर कृष्णसिंह का क्रोध शान्त न हुआ और उसने प्रतिज्ञा की कि

यदि राव कर्णसिंह यहां रहगया तो उसको बिना पीटे नहीं छोड़ूंगा जब यह बात ठाकुर कर्णसिंह के ससुर मोहनसिंह ने सुनी तो उसने अपने दामाद से जाकर कहा कि यदि तुम्हारे अच्छे दिन हैं तो यहां से इसी समय चले जाओ नहीं तो यहां के क्षत्रिय तुम्हें मारे व हथियार छीने बिना नहीं रहेंगे।

पाप का फल अवश्य दुःख होता है रावसाहब फौरन रवाने होगये और घर में जाते ही बीमार होगये और पागल होकर कपड़े फाड़ने लगे, प्रयाग में एक ५० हज़ार का मुक़दमा भी हारगये अपने मत के विरुद्ध मदिरा मांस का सेवन प्रारम्भ कर दिया और इनका जीवन बड़ी दुर्दशा में कटा।

शान्ति ऐसी होती है स्वामीजी पर आक्रमण की बात राजघाट की तरफ़ प्रसिद्ध हो गई थी दूसरे दिवस २०–२५ हथियारबन्द पंजाबियों ने आकर स्वामीजी से निवेदन किया कि यदि आप आज्ञा देवें तो सब बदमाशों को भगा देवें हमारी नौकरी जाती रहे तो कुछ परवा नहीं परन्तु स्वामीजी ने उनको समझाया, राव कर्णसिंह ने कुछ वैरागियों से भी कहा था कि तुम स्वामी दयानन्द का शिर काट लाओ मैं रुपया खर्च करके तुम्हें बचा लूंगा अगर तुम में से एक दो मर भी गये तो क्या बात है, कौनसी लुगाई रोती है परन्तु किसी वैरागी की हिम्मत नहीं पड़ी।

सूर्यग्रहण में उपदेश व बनावटी तीर्थों का खण्डन करना यहां पर एक दारोग़ा साहब से क़ुरान के विषय में बातचीत हुई थी जिसमें दारोग़ा साहब से कुछ उत्तर नहीं बन पड़ा इसके पश्चात् रईस धर्म्मपुर, जो नये मुसलमान थे, स्वामीजी के पास आये और पूछने लगे कि क्या वह किसी प्रकार शुद्ध हो सकते हैं? स्वामीजी ने कहा हां वैदीक आचरण करने से। यहां पर जब स्वामीजी ठहरे हुए थे तो सूर्यग्रहण का पर्व आया हज़ारों मनुष्य गङ्गास्नान के लिये एकत्रित हुए जिनको अवतार व तीर्थखण्डन पर उपदेश किया लोगों ने ग्रहण में सूतक के लिये पूछा उत्तर दिया कि सूतक ऊतक कुछ नहीं भोजन उस समय करना चाहिये जब क्षुधा लगे।

चाशनी होते हुए ताहरपुर पधारना गङ्गातट पर विचरते २ स्वामीजी चाशनी में पहुंचे यहां पण्डित नन्दराम नामी एक ब्राह्मण आसपास के ग्रामों के जाटों को चक्राङ्कित बनाना चाहता था, जाटों के मुखिया छीतरसिंह ने कहा कि यदि महात्मा दयानन्दजी इसको ठीक बतलावें तो हम चक्राङ्कित हो जावेंगे

इस पर नन्दराम आदि बहुतसे पण्डित गङ्गातट पर आये परन्तु सूरत देखते ही दूसरे ग्राम को भाग गये उसके पीछे आदमी दौड़ाये गये परन्तु वह नहीं आया इससे सब को निश्चित होगया कि जो स्वामीजी कहते हैं वह ठीक है और कोई भी चक्राङ्कितों के फन्दे में न फँसा, यहां आठ दिवस रहकर मनुस्मृति व महाभारत पढ़ने का उपदेश करके ताहरपुर की ओर रवाने हुए। स्वामीजी का नियम था कि जो पहिले रोटी लाकर देता उसी की खा लेते थे एक वैरागी ईर्ष्या से जली हुई रोटियें पहिले लाकर इनको देदिया करता था।

अनूपशहर होते हुए अहार में सत्योपदेश करना.

ताहरपुर से स्वामीजी अनूपशहर को गये और वहां से अहार में आये। यहां श्रीवल्लभ की कुटी में ठहरे एक कौपीन के सिवाय कुछ नहीं रखते थे रात्रि के २ बजे गङ्गा में गोता लगाकर समाधिस्थ होजाते थे और एक घंटा दिन चढ़े तक लगाये रखते थे और जाटों को उपदेश दिया करते थे। एक मनुष्य ने स्वामीजी को अपना हाथ दिखलाया स्वामीजी ने कहा इसमें हाड़, चाम, मांस और रुधिर है और कुछ नहीं। एक मनुष्य ने जन्मपत्र दिखलाया, कहा कि जन्मपत्र किस काम का कर्म्मपत्र श्रेष्ठ है, गङ्गास्नान को जो यात्री आते उनको भी उपदेश करते जिससे इनकी चर्चा गाँवों में बहुत फैली, मुर्दों के श्राद्ध का खण्डन और जीतों के श्राद्ध का मण्डन किया करते थे।

अनूपशहर में रामलीलाका बन्द कराना.

अनूपशहर में स्वामीजी श्रावण से लेकर कार्तिक की पूर्णिमा तक पहिले लालाबाबू की कोठी में फिर नर्मदेश्वर में ठहरे यहां रामलीला बड़ी धूमधाम से हुआ करती थी इस कारण इसका खंडन किया जिस का ऐसा प्रभाव हुआ कि दूसरे साल यह बन्द होगई। यहां राजा जयकृष्णदासजी इनसे मिलने के लिये आये थे बहुत देर तक बातचीत करके अलीगढ़ को चले गये यहां पर तहसीलदार सय्यद मोहम्मद से, जो बड़ेभारी मौलवी थे, बातचीत हुई जिस का प्रभाव ऐसा हुआ कि उसने स्वामीजी की सब बातों को स्वीकार कर लिया।

पौराणिक पण्डितों के ही हाथ से मूर्त्तियों का गंगा में प्रवाह कराना

यहां स्वामीजी के पास गुजराती ब्राह्मण बहुत आया करते थे, यहां हीरावल्लभ नामी पण्डित से शास्त्रार्थ किया, प्रातःकाल से दुपहर तक खूब मुठभेड़ रही अन्त को पं० हीरावल्लभ परास्त होगये और उन्होंने शुद्ध अन्तःकरण से अपनी शालिमाम

की मूर्ति को गङ्गा में फेंक दिया और उसी समय पं० टीकाराम ने भी अपने ठाकुरजी फेंक दिये और पण्डित टीकाराम ने, जो गङ्गामन्दिर के पुजारी थे, पूजा करना छोड़ दिया और कई ठाकुरों ने यज्ञोपवीत धारण करने का प्रण किया। दूसरी वार जब स्वामीजी इस नगर में आये तो एक पण्डित महात्मा नाम सिकन्दराबाद का रहनेवाला एक खर्रा लिखकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने आया, स्वामीजी ने उसे देखकर कहा कि क्या यह लग्नपत्र लाये हो? बस उसे उत्तर देने और बोलने का सामर्थ्य नहीं रहा, यहां जब स्वामीजी बीमार होगये तो तुलसीदल और कालीमिरच घुटवा कर पीलेते थे और फूंस पर सोया करते थे तर्कसंग्रह को नर्कसंग्रह बतलाते थे। यहां कृष्णानन्द, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को आये थे परन्तु न मालूम सन्मुख क्यों नहीं आये। स्वामीजी के उपदेश से बहुतसे लोगों ने शालिग्राम और माखनचोर की मूर्त्तियों को गङ्गा में डाल दिया इस कारण पोपों ने स्वामीजी को लालाबाबू की कोठी से निकलवाने का यत्न किया परन्तु कृतकार्य्य नहीं हुए। यहां पर रामदास वैरागी परमहंस राजा बूंदी के गुरु रहते थे उनकी स्वामीजी से बड़ी प्रीति हो गई थी जब स्वामीजी अनूपशहर को जाने लगे तो इन्होंने कहा कि तुम भागवत का खण्डन करते हो और शहर में कथा हो रही है कोई रोटी तक न देगा स्वामीजी ने उत्तर दिया कुछ चिन्ता नहीं हमारे कर्म्म हमारे साथ हैं। यहां कई साधु लोग भी शङ्कासमाधान को आया करते थे जब कोई सूक्ष्म विषय स्वामीजी समझाते तो ये तर्कवितर्क करते जिस पर स्वामीजी ने एक वार उत्तर दिया कि मोटी बुद्धिवाले सूक्ष्म बात नहीं समझ सकते जैसे बालू में मिली हुई चीनी को हाथी नहीं निकाल सकता परन्तु चींटी निकाल लेगी।

पान में ज़हर

यहां पर एक दिन एक ब्राह्मण ने स्वामीजी के मूर्त्तिखण्डन से रुष्ट होकर उनको पान में ज़हर दे दिया, स्वामीजी ने जान लिया और अन्दर जाकर न्यौली क्रिया करके बचे परन्तु इस आदमी से कुछ न कहा।

संसार को क़ैद कराने नहीं वरन छुड़ाने आया हूं

जब सय्यद मोहम्मद तहसीलदार को मालूम हुआ तो उन्होंने उस आदमी को क़ैद कर दिया और यह समझ कर कि स्वामीजी इस कार्य्यवाही से प्रसन्न होंगे उनके पास गये परन्तु स्वामीजी उनसे बोले तक नहीं, जब उन्होंने कारण पूछा तो स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं संसार को क़ैद कराने नहीं आया हूं वरन क़ैद से छुड़ाने को। यदि वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें। अन्त में उस ब्राह्मण को छुड़वा दिया।

मृतकश्राद्ध का खण्डन — श्राद्ध के खण्डन में कहा करते थे कि अरे मूर्खो ! जल में जल मत डालो अगर डालना ही है तो वृक्ष में डालो कि उसको लाभ हो।

बेलौन में स्वामीजी ने एक पीपल के वृक्ष के नीचे आसन जमाया और सैकड़ों लोगों को संध्या गायत्री का उपदेश किया कुछ कापियें लिखवाकर लोगों को बांटी भी थीं।

राम व कृष्ण के अवतार का उत्तर — श्रीकृष्ण पण्डा से रामचन्द्रजी व श्रीकृष्णजी के विषय बातचीत हुई तो आपने फ़रमाया कि प्रतापी राजा हुए और श्रीकृष्णजी भी अवतार नहीं एक राजा थे। गोपियों के साथ रास की बात झूंठी है इससे तो वे साधारण मनुष्य सिद्ध होते हैं।

बदन पर मिट्टी लगाने का कारण — आप मिट्टी बदन पर क्यों लगाते हैं जब ऐसा पूछा तो स्वामीजी ने कहा कि यह इसलिये लगाता हूं कि इससे कई रोग दूर होते हैं ठंड भी नहीं लगती मक्खी मच्छर डंक भी नहीं मारते।

रामघाट पर उपदेश — स्वामीजी गङ्गातट पर पद्मासन लगाये प्रातः १० बजे से सायंकाल तक बैठे रहे जिसको देखकर लोगों ने उनकी चर्चा सब जगह फैला दी और वे उनको बनखंडी महादेव के मंदिर में लेगये जहां दो पंडितों में शास्त्रार्थ हो रहा था जब स्वामीजी ने धाराप्रवाह संस्कृत में दोनों का खंडन किया तो सब दंग रह गये। एक कृष्णानन्दसरस्वती को शास्त्रार्थ के लिये लाये जिससे गीता के इस श्लोक "यदा यदा हि" के सिवाय और कुछ न बन पड़ा स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर निराकार है शरीरधारी कैसे हो सकता है ? फिर वह कहने लगा कि लक्षण का भी लक्षण होता है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि लक्ष्य का तो लक्षण होता है लक्षण का लक्षण नहीं। क्या किसी ने आटे का भी आटा सुना है इसपर सब लोग हँस पड़े। यहां खेमकरण नामी साधु ने जो २० सेर के अनुमान पूजन की सामग्री घोड़े पर लादे २ ग्रामों में फिरा करता था इनके सदुपदेश से सब पाखण्ड को छोड़ दिया। यहां स्वामीजी ने चरक और सुश्रुत को ठीक बतलाया और तुलसी के वृक्ष को वायु की शुद्धि के लिये लगाना बतलाया।

अतरौली में उपदेश — यहां दो वार स्वामीजी पधारे और भैरव के मन्दिर में उपदेश किया।

कुलेसर में २० मन्दिरों की मूर्त्तियों को कालिन्दी में बहाना

यहां स्वामीजी ३ बार पधारे इनके उपदेशों से ठाकुर मुकुन्दसिंहजी रईस कुलेसर ने अपनी ज़मींदारी के २० मन्दिरों से मूर्त्तियें उठवा कर कालिंदी नदी में डलवादीं, जिससे इनकी बड़ीभारी मुख़ालफ़त हुई। स्वामीजी ने यहां पाठशाला स्थापत की हज़ारों लोगों को धर्म्मोपदेश किया मुसलमान लोगों से भी बातचीत हुई। राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई. भी यहीं आकर अपनी शंकाओं का समाधान कर गये थे और स्वामीजी को अलीगढ़ बुला गये थे।

बरादिया में मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करना

यहां स्वामीजी चैत्र संवत् १९२५ में गये। पं० गयानारायण आदि कई चक्राङ्कितों से शास्त्रार्थ कर उनको परास्त किया और एक मास तक धर्म्मोपदेश करते रहे जिसको सुनने के लिये सैकड़ों मनुष्य आते रहे। इसके पश्चात् स्वामीजी सोरों में पधारे जहां १० हज़ार ब्राह्मण बतलाते हैं यहां अम्बागढ़ में ठहरे, यहां नारायण चक्राङ्कित अपना मत छोड़ स्वामीजी की शरण आया जिससे शहर में हलचल मची और सैकड़ों पण्डित व साधारण मनुष्य स्वामीजी के पास आये और मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ जिसमें पौराणिक पण्डित परास्त हुए और पं० गोविंदराम स्वामीजी की शरण आया फिर बाक़ी पण्डित कोलाहल करके चले गये।

प्रसिद्ध पण्डित अंगद शास्त्री से शास्त्रार्थ

सोरों के पास बदरिया ग्राम में एक संस्कृत के विद्वान् पंडित अंगदराम शास्त्री रहते थे इन जैसा दूसरा पण्डित दूर दूर तक न था इसी कारण किसी का साहस नहीं होता था कि इनकी सम्मति के विरुद्ध कुछ कहे सैकड़ों पण्डित इनके शिष्य थे जो कि व्याकरण में अच्छे थे। यह शालिग्राम की बटिया का पूजन किया करते थे और भागवत की कथा लोगों को सुनाया करते थे, सर्वसाधारण में इनकी बड़ी मान प्रतिष्ठा थी इनके एक शिष्य नारायण चक्राङ्कित स्वामीजी के अनुयायी होगये थे जिन्होंने जाकर इनके सन्मुख स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि ऐसे महात्मा संन्यासी कभी इधर नहीं आये, आप अवश्य चलकर उनसे वार्त्तालाप करें इस पर अंगद शास्त्री स्वामीजी के आसन पर आये और सबसे पहिले मूर्त्तिपूजा पर चर्चा चली स्वामीजी ने वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया और अंगद शास्त्रीजी को चुप होना पड़ा। इसके पश्चात् भागवत के विषय में बातचीत हुई सर्वसाधारण में प्रसिद्ध है कि भागवत की संस्कृत अत्युत्तम है परन्तु स्वामीजी ने अशु-

व्याकरण के प्रमाणों से उसकी अनेक अशुद्धियें पण्डित अंगद शास्त्री को बतलाईं तो उन सबको स्वीकार किया और शास्त्रीजी पर स्वामीजी के सत्य उपदेशों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपनी सब शंकाओं को स्वामीजी से वर्णन किया और जब उन्होंने शास्त्रीजी की प्रत्येक शंका का समाधान कर उनकी शान्ति करदी तो उन्होंने एक दिन शालिग्राम की मूर्त्ति को, जिसकी वे कई वर्षों से प्रतिदिन पूजा किया करते थे, सबके सन्मुख गंगा में डालदिया और पुराणों का और भागवत का निःशंक होकर खंडन करने लगे। शास्त्रीजी का यह हाल देखकर उनके कई सम्बन्धियों ने भी अपनी २ मूर्त्तियें गंगा में डालदीं। इन्हीं दिनों स्वामीजी के सहपाठी पण्डित युगलकिशोरजी कुछ अप्रसन्न हुए और संस्कृत में कुछ बोलने लगे पण्डित अंगद शास्त्री ने उनकी व्याकरण की कुछ अशुद्धियें पकड़लीं और शास्त्रार्थ होने लगा। अंत में स्वामीजी ने बतलाया कि यह शब्द दोनों प्रकार से बोला जाता है। पं० युगलकिशोरजी ने मथुरा पहुंचने पर दंडीजी से शिकायत की कि स्वामी दयानन्दजी सोरों में तिलक छाप कंठी शालिग्राम आदि का खंडन करते हैं दंडीजी ने उत्तर दिया कि फिर बुरा क्या करते हैं? शालिग्राम शब्द ही ठीक नहीं है फिर उसकी पूजा करना तिलक छाप आदि लगाना सब पाखण्ड है इनसे कुछ लाभ नहीं यदि इनको तुम ठीक समझते हो तो वेदादि सत्य शास्त्रों का प्रमाण दो हमारी राय में तो कोई प्रमाण नहीं है इस पर पण्डित युगलकिशोरजी कहने लगे कि यदि इन बातों का प्रमाण नहीं है तो यह लीजिये मैं भी इनको दूर करता हूं और यह कहकर अपनी कण्ठी तोड़ डाली।

सत्य उपदेश का प्रभाव

अंगद शास्त्री के स्वामीजी के अनुयायी होने और पत्थरों को गंगा में डाल देने से सारे सोरों और उसके आसपास के ग्रामों में कोलाहल मच गया, पौराणिक लोगों की सीटी गुम होगई। चक्राङ्कितों का गुरु रंगाचार्य्य जो प्रतिवर्ष वृन्दावन से सोरों आया करता था और सैकड़ों मनुष्यों को अपना चेला बना उनके शरीर को तप्तमुद्रा से दग्ध कर सहस्रों रुपये नकद व सामान ले जाया करता था उसने जबसे स्वामीजी के उपदेशों की चर्चा सुनी कभी उस ओर मुंह नहीं किया। भला यह कब हो सकता है कि सत्य के सूर्य्य के सन्मुख अंधकार में शिकार करने वाला चिमगादड़ ठहर सके? स्वामीजी के सत्य उपदेशों को सुनकर सोरों और उसके आसपास के ग्रामों के बहुतसे मनुष्यों ने, जो पहले रंगाचार्य्य के फन्दे में फंसे हुये थे, चक्राङ्कित मत को त्याग कण्ठियें तोड़ संध्या गायत्री याद कर प्रातः सायं ब्रह्मयज्ञ व देवयज्ञ करने लगे। अश्लील भागवत व मिथ्या

पुराणों के बदले आर्षग्रन्थों की कथायें होने लगीं। सोमवती अमावास्या पौर्णमासी और वारुणी पर सहस्रों मनुष्य दूर २ से आकर गंगा किनारे स्वामीजी के सत् उपदेश सुनते थे और संध्या गायत्री सीखकर जाते थे खास सोरों के सैकड़ों पंडे और ब्राह्मण स्वामीजी के उपदेशानुसार कार्य्य करने लगे जिस समय स्वामीजी सोरों में थे वहां ब्राह्मणों के २५०० घर थे परन्तु इनमें से पांच भी ऐसे नहीं थे जो भले प्रकार संध्या आदि कर्म्म जानते हों ये लोग केवल भोले भाले मनुष्यों को ठगने की विद्या जानते थे और यजमानों को लूट २ कर खाते थे स्वामीजी के उपदेशों से सैकड़ों अपना नित्यकर्म्म करने लग गये थे परन्तु शोक है कि स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् वे फिर अविद्या के अन्धकार में फंस गये क्योंकि उनको हर समय ताड़ना करने व सन्मार्ग पर लाने वाला कोई नहीं रहा परन्तु फिर भी थोड़ा बहुत प्रभाव अभीतक बाक़ी है।

सब पुराण व वर्तमान महाभारत आधुनिक ग्रन्थ हैं

जब अंगद शास्त्री पौराणिक धर्म्म को मानते थे तो उन्होंने कैलाशपर्वत नामी एक साधु के कहने से उनके स्थापित किये हुए वराह के मन्दिर की प्रशंसा में बहुतसे श्लोक बनाये थे परन्तु जब उन्होंने सत्यसनातन धर्म्म ग्रहण किया तो उसके खण्डन में बहुतसे श्लोक बनाकर प्रचलित किये जिससे चिढ़कर कैलाशपर्वतजी ने अपनी सहायता के लिये एक जगन्नाथ चक्राङ्कित को बरेली से बुलवाया परन्तु उसका साहस न हुआ कि स्वामीजी के सन्मुख आवे। एक दिवस मनुस्मृति का एक श्लोक लिखकर भेजदिया जिसमें पुराण शब्द आता है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इसका अर्थ प्राचीन है न कि १८ पुराणों का। और चौबे रामदास वैद्य ने इस चक्राङ्कित को बहुत लज्जित किया और कहा कि जिन पुराणों को तुम प्राचीन बतलाते हो वे बहुत अर्वाचीन हैं देखो कवि कालिदासजी ने अपने ग्रन्थसंजीवनी में लिखा है कि इस समय १० पुराण हैं परन्तु अब देखो १८ होगये व्यासजी ने महाभारत को केवल ४००० श्लोकों में रचा था परन्तु महाराजा भोज के समय में १०००० श्लोक होगये और अब तो १००००० (एक लक्ष) से भी ऊपर निकलते हैं यह सब घड़न्त नहीं तो और क्या है? अन्त को जगन्नाथ चक्राङ्कित विना शास्त्रार्थ किये अपनासा मुंह लेकर चला गया।

मूर्त्तिपूजा की जड़ अर्थात् पुराणों का खण्डन करना

एक दिन स्वामीजी ने कैलाशपर्वत को बड़ा साधु समझकर कहा कि हम इन चार मतों की पोल भले प्रकार खोलना चाहते हैं (१) रामानुज, (२) वल्लभाचार्य्य, (३) धमाचार्य्य, (४) माध्वाचार्य्य। क्योंकि इनके जाल में बहुतसे मनुष्य आगये हैं और

जाते जाते हैं जिससे देश में बड़ी खराबी फैलगई है आपको हमें सहायता देनी चाहिये। कैलाशपर्वतजी ने उत्तर दिया कि हम तय्यार हैं यदि आप (१) मूर्त्तिपूजा का खंडन करना छोड़दें क्योंकि इसमें लाखों मनुष्यों की रोज़ी जाती रहेगी, (२) यह कहना छोड़दें कि सब पुराण व्यासजी के बनाये नहीं हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि चाहे आप सहायता दें वा नहीं यह कदापि सम्भव नहीं है कि मैं यह बात स्वीकार करूं जिन मतमतान्तरों को मैं छिन्न भिन्न करना चाहता हूं उनकी जड़ ही मूर्त्तिपूजा है और जबतक कि जड़ न काटी जायगी यह सम्भव नहीं कि केवल शाखों के काटने से पापरूपीवृक्ष उखड़ जावे रहे पुराण यह उन सब बुराइयों के भण्डार हैं जिनसे यह देश गारत हुआ है उनके भ्रष्ट उपदेशों से ही सारे देश में दुर्गंध फैली है और मूर्त्तिपूजा का पता सिवाय पुराणों के और किसी ग्रन्थ में नहीं चलता ऐसी दशा में आप कैसे मुझसे आशा रखते हैं कि मैं आप की बातों को मानूं। सारांश कैलाशपर्वतजी स्वामीजी के ऐसे वचनों से चुप होगये और स्वामीजी ने तो पहिले से विशेष वेग के साथ काम करना प्रारम्भ करदिया कैलाशपर्वतजी ने स्वामीजी के सत्य उपदेशों का प्रभाव लोगों के हृदय से दूर करने के लिये एक पुस्तक भी छपवाई जिसमें पौराणिक मत पर दृढ़ रहने की लोगों से विनय की थी परन्तु इसका फल उनकी इच्छा के विरुद्ध हुआ और सैकड़ों मनुष्यों ने उनके वराह के मन्दिर में जाना छोड़ दिया और पुराणों से घृणा करने लगे।

पीलीभीत के एक पंडित से शास्त्रार्थ

सारे सोरों और उसके आस पास के ग्रामों में गुसाईं बलदेवगिरी का ऐसा प्रभाव था कि किसी का साहस नहीं होता था कि स्वामीजी को कोई कष्ट पहुंचावे परन्तु शास्त्रार्थ के लिये सब को हर समय अधिकार था इन्हीं दिनों में पीलीभीत से एक पौराणिक पण्डित अङ्गदराम नामी सोरों में आये और स्वामीजी के विरुद्ध कुछ कहने लगे स्वामीजी ने उस समय अङ्गद शास्त्री को कह दिया कि इनसे शास्त्रार्थ करो और देखो कि यह क्या जानते हैं! शास्त्रीजी ने पीलीभीत के पण्डित को एक स्थान पर शास्त्रार्थ करने के लिये लाचार किया और नियम आदि भी निश्चित होगये परन्तु वे बहुतसे मनुष्यों के सन्मुख निरुत्तर होकर अपने देश को चले गये।

नंगा साधु

इसके थोड़े दिनों पश्चात् ही एक नङ्गा साधु आया जो थोड़ी सी संस्कृत भी जानता था इसने आते ही हल्ला मचाया कि हम शास्त्रों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करेंगे यह सुनकर स्वामीजी ने उसे शास्त्रार्थ के लिये

एक पत्र लिखा जिसमें यह भी था कि या तो आप जिस स्थान में मैं ठहरा हूं पधारें या मुझे लिखें तो मैं आपके यहां आऊं परन्तु सर्वसाधारण के सम्मुख शास्त्रार्थ अवश्य होना चाहिये, नङ्गे साधुजी ने इसका उत्तर कुछ नहीं दिया सारे दिन लोगों से वृथा गप्पें हांका किये जब ४ घड़ी दिन रहा तो सोरों से गंगा की बड़ी धारा की ओर चले गये किसी ने साधु के भाग जाने के समाचार स्वामीजी से आ कहे इस पर स्वामीजी भी वायुसेवन के लिये उसी ओर चले गये जिधर नङ्गा साधु गया था और थोड़ी देर में उसको जा पकड़ा और कहा कि तुमने तो मूर्त्तिपूजा को वेद आदि सत्य शास्त्रों से सिद्ध करने का प्रण किया था और अब भगे जाते हो यह क्या बात है। आपको चाहिये कि मुझसे इसी समय यहां पर इस विषय पर बातचीत करें या पीछे लौटकर सर्वसाधारण के सन्मुख शास्त्रार्थ करें परन्तु उस विचारे नङ्गे साधु की कुछ भी हिम्मत नहीं चली कि बात करें स्वामीजी ने बहुत कुछ चाहा कि वह कुछ तो बोले परन्तु उसने तो पूरी मौन साधली और हां हूं तक नहीं की, अन्त में स्वामीजी ने कहा कि ज्ञात होता है झूंठ, असत्य पक्ष और आत्मा के विरुद्ध बात ने आपके मुंह को सीं दिया है आपको आगामी के लिये ऐसी बातों से लज्जित होना चाहिये लोगों को धोखे में डालना और सत्यमार्ग से भुलाना बहुत बुरा कर्म्म है यह कहकर स्वामीजी पीछे चले आये।

शहबाज़पुर आना और व्याकरणरूपी सूर्य का अस्त होना सुन दुःखित होना

सोरों से चलकर स्वामीजी शहबाज़पुर में पहुंचे और वहां कुछ दिवस टिके यहां उनको समाचार मिले कि मथुरा में दण्डी स्वामी विरजानन्दजी का देहान्त होगया जिसको सुनकर बड़े उदास होगये और यह कहने लगे कि आज संस्कृत व्याकरण का सूर्य्य अस्त होगया। शहबाज़पुर में एक वैरागी साधु को स्वामीजी के सत्य उपदेश बड़े बुरे लगे और इसने स्वामीजी को मार डालने की सोची और अपने जान पहिचान के एक ठाकुर से कहा कि मुझे तलवार मांगी दीजिये ताकि मैं स्वामी दयानन्द का सीस उतार लाऊं ठाकुर साहब ने वैरागी साधु को बहुत आड़े हाथों लिया और उसको बड़े घर पहुंचाना चाहा परन्तु अन्त में उसके बहुत गिड़गिड़ाने पर छोड़ दिया और शीघ्र ही स्वामीजी की सेवा में उपस्थित होकर सारा वृत्तान्त आ सुनाया स्वामीजी ने कहा कि आप कुछ चिन्ता न कीजिये उसकी क्या शक्ति है कि मेरी ओर आंख उठाकर भी देख सके परन्तु इस पर भी ठाकुरसाहब ने अपने शस्त्रधारी सिपाहियों को वहां पहरे पर रख दिया।

ककोड़े के मेले पर धर्म्मप्रचार

शहबाज़पुर से स्वामीजी ककोड़े पहुंचे यह ग्राम बदायूं के ज़िले में गंगाजी के किनारे बसा है और यहां प्रतिवर्ष कार्तिक मास में एक बड़ाभारी मेला होता है जिसमें हज़ारों आदमी दूर २ से आते हैं स्वामीजी मेले के दिनों में पहुंचे और वैदिक धर्म्म का प्रचार करना प्रारम्भ किया ज़िला बदायूं के कलक्टर साहब, जो प्रबन्ध के निमित्त यहां आये हुए थे, स्वामीजी से मिलने को आये और बड़े अदब से टोपी उतार कर सलाम की और थोड़ी देर वार्त्तालाप करके चले गये इसके पश्चात् पादरी व मौलवी लोग भी आते और स्वामीजी से बहस कर और उनकी युक्तियों से निरुत्तर होकर चले जाते, इन्हीं दिनों एक प्रसिद्ध उदासी साधु ने स्वामीजी से कहा कि ब्राह्मण लोग आपको बहुत बुरा भला कहते हैं आप वृथा क्यों कष्ट उठाते हैं और मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं हम लोगों की नाईं क्यों नहीं चैन करते किसी को छेड़ने से क्या लाभ ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हम परब्रह्म परमात्मा के ध्यान में हर समय मग्न रहते हैं और हम को आनन्द वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचार में आता है आप अपनी चिन्ता कीजिये हमारी कोई निन्दा करे या स्तुति हमें कुछ परवा नहीं है हमारा धर्म्म ईश्वर की आज्ञा पालन करना है और जो कुछ हम जानते हैं उसको औरों पर प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि लोग सत्य मार्ग पर आवें।

वैरागी की लीला

नोली ज़िले बदायूं के एक कायस्थ वैरागी होगये थे और उन्होंने यह ढंग डाला हुआ था कि ब्राह्मणों के लड़कों को अपना चेला करके अपना जूंठा उन्हें खिलाया करते थे और उनसे अपनी टहलचाकरी करवाते थे एक दिन स्वामीजी गंगा किनारे घूम रहे थे इतने में यह वैरागी महाशय अपने आठ दश चेलों को लिये हुए आ निकले सब के हाथों में गोमुखियां थीं और मुंह से यह जप कर रहे थे "हरि जपो सब छोड़ो धंधा" स्वामीजी ने इनको रेत के टीले पर वहीं बिठला लिया और आप सामने बैठ गये और बोले कि आप सब से सब धंधे क्योंकर छुड़वाते हैं, क्या आप की सम्मति में सब भले काम भी छोड़ देने चाहियें जबतक कुछ कार्य्य न किया जावे तबतक तो रूखी सूखी रोटी और सादा पानी भी नहीं मिलता सारांश वैरागीजी की हरएक बात की पूरी २ पोल खोल दी और वह चुप होकर चला गया।

नरौली व कम्पिल

ककोड़े घाट से विदा होकर स्वामीजी नरौली व कम्पिल होते हुए क़ायमगंज पहुंचे मार्ग में एक ब्राह्मण मिला स्वामीजी

ने पूछा कि तुम कौन हो? उसने उत्तर दिया कि ब्राह्मण, फिर पूछा कि कहां रहते हो? उसने कहा कि कसबा क़ायमगंज। तीसरी बार पूछा कि तुम वहां क्या करते हो उत्तर दिया कि भागवत आदि पुराणों की कथा करते हैं स्वामीजी ने कहा कि हम भी वहां २० दिन तक पहुंच जावेंगे यह अच्छा होगा कि तुम अपनी कथा को शीघ्र समाप्त करदो नहीं तो तुम को हानि होगी।

क़ायमगंज में प्रचार स्वामीजी ने क़ायमगंज में पहुंचते ही वैदिक धर्म्म का उपदेश प्रारम्भ किया और बहुत लोग उनके सत्य उपदेशों को सुनने के लिये आने लगे जहां स्वामीजी बैठे थे उससे कुछ ऊपर कुछ गँवार आदमी बैठ गये इस पर कुछ समझदार आदमियों ने उनको मना किया परन्तु स्वामीजी ने उनको समझाया कि भाई पक्षी भी तो ऊपर बैठे हुये हैं आप इन सीधे साधे लोगों को कष्ट न दें इन्हें भी पक्षी समझलें।

भागवत मिथ्या है एक दिन स्वामीजी से लाला कृष्णप्रसाद तहसीलदार क़ायमगंज ने पूछा कि श्रीमद्भागवत सत्य है या असत्य? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मिथ्या है इस पर तहसीलदार कायमगंज कहने लगे कि आप ऐसा न कहें मेरा दिल दुखता है स्वामीजी ने कहा कि यह कोई बात नहीं है जो सत्य है वह सत्य ही है और जो असत्य है वह असत्य ही है यदि ऐसा ही दिल दुखने का खयाल था तो पहिले निश्चय करने की क्यों ठानी।

फ़र्रुख़ाबाद में धर्म-प्रचार कायमगंज से प्रस्थान करके स्वामीजी फ़र्रुख़ाबाद पहुंचे और गङ्गा के किनारे ठहरे यहां के प्राय: सब प्रसिद्ध पण्डितों से स्वामीजी की बातचीत हुई और सब को निश्चय होगया कि पौराणिक गाथायें थोड़े दिनों की हैं परन्तु स्वार्थी ब्राह्मण अपने पेट के लिये सत्य को छिपाते रहे परन्तु सत्यवादी लोग खुल्लमखुल्ला स्वामीजी के अनुयायी होगये और किसी के कहने सुनने की परवाह न की अपने में शास्त्रार्थ करने की शक्ति न देख कुछ पौराणिक पण्डित काशीजी दौड़े गये और वहां से अपने पक्ष में एक व्यवस्था लिखवा लाये और उसे लेकर जगह २ फिरने लगे और बड़े अभिमान के साथ उसे स्वामीजी को दिखलाया स्वामीजी उसे पढ़कर हंसे और बोले कि काशी के पंडितों की योग्यता बहुत कुछ इससे ज्ञात होगई। कई बदमाश लोगों ने स्वामीजी को मार डालना चाहा परन्तु कर कुछ भी नहीं सके सर्वसाधारण पर स्वामीजी के उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा

और एक साहूकार ने जिसने बड़ी लागत से एक मन्दिर शिवजी की मूर्ति स्थापन करने के लिये बनवाया था उसने स्वामीजी के उपदेशों से वहां संस्कृत की पाठशाला खोलदी जो कई वर्षों तक चलती रही, बहुतसे मन्दिरों में जहां दर्शन करने वालों की भीड़ रहा करती वहां अब थोड़े लोग जाने लगे स्वामीजी ने बहुतसे लोगों के यज्ञोपवीत संस्कार करवाये और बहुतसों को सन्ध्या गायत्री सिखाई दूसरी वार स्वामीजी जब इस नगर में आये तो संस्कृत के विद्वान् पण्डित विश्वम्भरनाथजी इनके अनुयायी होगये जिससे समस्त नगर में तहलका मच गया। एक दिन स्वामीजी गंगा में पांव लटकाये बैठे थे कुछ बदमाश लड़के रेत के गोले बनाकर दूर से फेंकने लगे स्वामीजी चुपचाप अपने ध्यान में लगे रहे और लड़कों से कुछ नहीं कहा परन्तु जब कुछ रेत आंख में पड़ गई तो उठकर एक ओर चले गये स्वामीजी में यह एक बड़ी बात थी कि कोई कैसा ही लखपती करोड़पती उनके पास आता तो उसकी बुराइयें उसके सन्मुख बता देते थे और कभी कोई लाग लपेट की बात नहीं करते थे।

भोजन भ्रष्ट कैसे होता है

एक दिन एक साधु (यह एक क़ौम है जो फ़र्रुख़ाबाद के ज़िले में बहुत रहती है, आम हिन्दू इनके हाथ का पानी नहीं पीते,) स्वामीजी के लिये बहुत अच्छी कढ़ी भात बनाकर लाया स्वामीजी ने उसे प्रसन्नता से खालिया इस पर फ़र्रुख़ाबाद के कुछ पोपों ने स्वामीजी से कहा कि आपने साधु के हाथ का खालिया भ्रष्ट होगये स्वामीजी ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है एक तो किसी की हिंसा करके या कष्ट पहुंचा कर प्राप्त किया हुआ दूसरा जिसमें कोई ख़राब वस्तु पड़जाय। जो भोजन साधु लाया था उसमें यह दोनों अवगुण नहीं थे फिर भ्रष्ट कैसे हुआ ? एक मनुष्य ने पूछा कि संध्या सायं वा प्रातः दोनों काल करनी चाहिये या तीन वार। स्वामीजी ने उत्तर दिया दो वार इस पर उसने कहा कि एक स्थान पर ऐसा लिखा है कि राजा कर्ण दो पहर को संध्या करके भोजन किया करते थे स्वामीजी ने कहा कि यह ठीक नहीं देखो महाभारत में महाराज श्रीकृष्णजी जब द्वारिका से हस्तिनापुर को गये तो मार्ग में दो काल संध्या करते थे।

फ़र्रुख़ाबाद में पहिला शास्त्रार्थ

फ़र्रुख़ाबाद में जब पौराणिक लोगों ने देखा कि स्वामीजी के सत्य उपदेशों से उनकी बड़ी हलकी होती जाती है और लोग अनेक प्रकार के प्रश्न करते हैं यहांतक कि लड़के भी बहस को तय्यार होजाते हैं और तमाम रईस सेठ साहूकार उनसे फिरते जाते हैं तो उन्हों-

ने दूर २ तक के पौराणिक पण्डितों को अपना रोना रोया और उनको सहायता के लिये बुलवाया परन्तु किसी का साहस नहीं हुआ कि मैदान में सन्मुख आवे, हां ज़िले मेरठ के एक श्रीगोपाल नामी पौराणिक आये और स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को राजी होगये, समय भी नियत होगया और लाला पीताम्बरदासजी सभापति नियत होगये। सब से पहिले पण्डित श्रीगोपालजी ने संस्कृत में स्वामीजी से पूछा कि आप मूर्त्तिपूजा का क्यों खण्डन करते हैं इसकी तो आज्ञा है। स्वामीजी ने पहिले तो पंडितजी की संस्कृत में बहुतसी गलतियें निकालीं फिर उत्तर दिया कि मैं मूर्त्तिपूजा का खंडन करता हूं क्योंकि इसकी कहीं आज्ञा नहीं है आप बतलावें कि किस जगह आज्ञा है? इस पर पंडितजी ने मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७६ पढ़ा स्वामीजी ने कहा—इसके अर्थ कीजिये पंडितजी ने अर्थ किया कि देवता की पूजा करें और प्रातः सायं हवन करें क्योंकि पूजा केवल मूर्त्ति की ही होती है और की नहीं इसलिये मूर्त्तिपूजा सिद्ध होती है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप का यह अनुमान अत्यन्त पोच है अर्चन् शब्द "अर्च पूजायाम्" धातु से बनता है जिसका अर्थ पूजा अर्थात् सत्कार है। इससे स्पष्ट सिद्ध है कि मनु महाराज ने जो लिखा है कि प्रातः सायं अग्निहोत्र किया करो और धर्म्मात्मा विद्वानों का सत्कार किया करो इसका अर्थ कदापि मूर्त्तिपूजा का नहीं इस पर थोड़ीसी बहस कर श्रीगोपालजी चुप होगये और परिणाम यह हुआ कि स्वामीजी की विद्वत्ता की चर्चा शहर में पहिले से विशेष हो गई।

काशी के टकाधर्मी पंडितों की व्यवस्था। जब पंडित श्रीगोपाल से कुछ नहीं बन पड़ा तो वे सीधे काशीजी को भागे और वहां पण्डित शालिग्राम शास्त्री से मिले उन से कहने लगे कि आप फ़र्रुखाबाद के रहनेवाले हैं आपके नगर के ब्राह्मणों की रोज़ी स्वामी दयानन्द बन्द कर रहे हैं मूर्त्तिपूजा में अश्रद्धा उत्पन्न कर रहे हैं आप कृपा कर इतनी सहायता कीजिये कि हमें काशी के पंडितों से एक व्यवस्था दिलवा दीजिये पंडित शालिग्रामजी पर इन बातों का कुछ असर हुआ और उन्होंने कुछ लिखना प्रारम्भ किया परन्तु उनके गुरु पंडित राजारामजी शास्त्रीजी ने कहा कि क्यों वृथा परिश्रम करते हो थोड़े समय पूर्व दक्षिण में मूर्त्तिपूजा के विरुद्ध कुछ चर्चा चली थी तब एक व्यवस्था बनाकर भेजी थी उसी की नक़ल करके भेजदो सारांश उसी व्यवस्था पर कुछ रुपया खर्च करके फिर हस्ताक्षर कराये गये और पंडित श्रीगोपाल इसको लेकर फूलते २ फ़र्रुखाबाद में आये और अपनी जीत की डींग मारने लगे इन्होंने अपनी सहायता के लिये एक ज्वालाप्रसाद नामी कान्यकुब्ज को, जो

शाक्त मत में था और प्रथम श्रेणी का शराबी था, लिया एक दिन पंडित श्रीगोपाल ने गङ्गा किनारे एक बांस गाड़ा जिसका नाम 'धर्मध्वजा' रक्खा जब हज़ारों आदमियों का मेला लग गया तो पंडित श्रीगोपालजी ने एक और बांस गाड़कर अपने अनुयायियों को आज्ञा दी कि इस पर जल चढ़ाओ कई मूर्ख लोग जल चढ़ाने लगे इससे थोड़ी दूर पर एक घाट पर स्वामीजी ठहरे थे और इस समय उनके पास कई सेठ साहूकार और पढ़े लिखे आदमी बैठे हुये तमाशा देख रहे थे स्वामीजी ने कहा कि देखो आज पंडित श्रीगोपाल ने बहुतसे मनुष्यों को सिड़ी बना दिया है पंडित श्रीगोपाल ने पहिले अपने कुछ फ़िसादी आदमी स्वामीजी के पास भेजकर कहलवाया कि हमारे पास आकर शास्त्रार्थ करो स्वामीजी ने उत्तर दिया कि वह क्या शास्त्रार्थ करेगा एक ही दिन के शास्त्रार्थ से सब को ज्ञात होगया कि उसको व्याकरण का ज्ञान नहीं है फिर कुछ मनुष्यों ने पं० श्रीगोपालजी से कहा कि आप स्वामीजी के पास चलकर सभ्यता से शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते इस प्रकार हुल्लड़ मचाने से क्या लाभ ? उसके उत्तर में उन्होंने कहा कि हम वहां जहां स्वामीजी ठहरे हैं नहीं जासकते क्योंकि उन्होंने यह स्थान कील दिया है यदि मैं वहां जाऊंगा तो हार जाऊंगा यदि वे नीचे उतरेंगे तो वे पराजित हो जावेंगे पंडित श्रीगोपाल ने एक भंगड़ चौबे को भी स्वामीजी को अपने अखाड़े में बुलाने के लिये भेजा था परन्तु जब स्वामीजी ने उससे शास्त्रार्थ के अर्थ पूंछे तो वह बिचारा मुंह ताकने लगा और कुछ नहीं बोल सका अन्त में लोगों ने उसे समझाया कि विद्वान् लोगों के शास्त्रार्थ करने के जो नियम हैं उनके अनुकूल यदि पंडित श्रीगोपाल कार्य्य करें तो शास्त्रार्थ होसकता है नहीं तो सर्वसाधारण में वे अपनी हलकी तो एक समय से करवा रहे हैं उजड्ड चौबे यह उत्तर लेकर चले गये इनहीं दिनों में किसी ने ज़िले के हाकिमों को यह झूठी खबर दी कि यहां एक ऐसे संन्यासी आये हैं कि जिनके उपदेश से लड़ाई दंगा होजाने का भय है पुलिस ने जब अनुसंधान किया तो ज्ञात हुआ कि स्वामीजी न किसी को बुलाते हैं न भड़काते हैं स्वतन्त्रता से केवल धर्मोपदेश करते हैं प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि अच्छा लगे तो सुने वरना न सुने थोड़े दिनों पश्चात् वह डाकमुन्शी ज्वालाप्रसाद कनौजिया जब शराब पीकर और घर से कुरसी लेकर स्वामीजी के यहां पहुंचा और बड़ी बे अदबी से कुरसी बिछाकर उनके सामने बैठा और नशे में चूर होने के कारण मनमाना अस्तव्यस्त बकने लगा। स्वामीजी के पास जितने आदमी बैठे हुए थे वे इस उन्मत्त की कुचेष्टाओं से बहुत भड़के परन्तु स्वामीजी के इस कहने पर कि इस उन्मत्त

आदमी की बातों की परवा नहीं करनी चाहिये सब शान्त होगये परन्तु जब यह मदोन्मत्त अपनी सीमा से बाहर हो गया तो दो तीन आदमियों से न रहा गया और उन्होंने इसकी कुरसी को उठाकर फेंक दी और इस को एक तरफ़ लेजाकर इसकी उन्मत्तता उतार दी सारांश यह कि वह शाक्त ब्राह्मण बहुत दुर्दशा में गिरता पड़ता अपने घर पहुंचा।

किसी के कहने सुनने से उसने पुलिस में रिपोर्ट भी लिखवाई थी परन्तु कुछ विशेष कार्य्यवाही करने की हिम्मत नहीं पड़ी स्वामीजी से जब लोगों ने पूछा कि यदि मुक़द्दमा अदालत में चला तो आप क्या कहेंगे स्वामीजी ने कहा कि सत्य २ कहूंगा लोगों ने कहा कि इसमें तो जुर्माना होने का भय है स्वामीजी ने उत्तर दिया कुछ हो क्यों न हो मैं झूठ नहीं बोलूंगा इसके पश्चात् सुना कि इस मनुष्य का एक सम्बन्धी बीस पचीस मनुष्य लेकर स्वामीजी पर आक्रमण करेगा परन्तु यह सब गीदड़-भबकियें थीं किसको सामर्थ्य थी कि स्वामीजी की ओर आंख उठा कर भी देखता, सेठ जगन्नाथप्रसादजी ने स्वामीजी से कहा कि आप बाहर के मकान के बदले अन्दर के मकान में रहा करें इस पर स्वामीजी ने उत्तर दिया कि अगर इस स्थान पर आप मेरी रक्षा करेंगे तो और जगह कौन करेगा सच्चा रक्षक हर स्थान पर मेरे साथ है वही मेरी सहायता करता है मुझे किसी से भय नहीं है मैं गंगाजी के किनारे अकेला पड़ा रहता हूं और कभी मुझ पर भय नहीं व्यापता ऐसी २ आफ़तें कई वार मेरे ऊपर आ चुकी हैं परन्तु ईश्वर की कृपा से आजतक मेरा बाल बांका नहीं हुआ सोरों में कुछ बदमाशों ने आपस में यह सलाह करी कि या तो मुझे विष दे दिया जावे या सोते हुये को उठा कर नदी में फेंक दिया जावे अतएव एक रात्रि को मेरे धोखे में एक और साधु को चारपाई सहित उठाकर नदी में डाल दिया जब वह चिल्लाया तो उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई ज्यों त्यों करके उसे निकाल लिया इसी प्रकार जब मैंने गंगाजी के किनारे आचार्य्यों के मत की पोल खोली और उनकी घृणित कार्यवाहियों को सब पर प्रकट कर दिया तो उन्होंने एक दिन मुझे जान से मार डालने की ठानली परन्तु जिस वृक्ष के नीचे मैं बैठा हुआ था उसी वृक्ष के समीप कई कामार्थी साधु, जिनका पेशा हिमालय पर्वत पर से गंगोत्तरी का पानी लाना और लोगों से कुछ लेकर शिवलिङ्ग पर चढ़ाना था, दोपहर में विश्राम के लिए ठहरे हुए थे जब उन्हें इन लोगों की कुचेष्टा प्रतीत हुई तो उन्होंने अपने बड़े २ कुत्ते छोड़ दिये और बड़ी २ लाठियां लेकर उनके पीछे होगये, इस पर वे आचार्य्यों के चेले भाग गये थोड़ी देर के पश्चात् ही यह समाचार सारे गांव में फैल गया और तत्काल ही गांव के सब निवासी एकत्रित

होगये उन्होंने उन आदमियों की, जो मुझे मारडालने के लिये गये थे, खूब खबर ली इसके पश्चात् किसी मनुष्य ने मुझ से छेड़ छाड़ न की और मैं पहिले की अपेक्षा विशेष बल से चक्राङ्कितों का खण्डन करने लगा।

फ़र्रुख़ाबाद का दूसरा शास्त्रार्थ

फ़र्रुख़ाबाद के पहिले शास्त्रार्थ में जब पण्डित श्रीगोपाल को बहुत नीचा देखना पड़ा और बनारस की व्यवस्था भी, जिसे उन्होंने बड़े परिश्रम और ख़ुशामद से सत्य असत्य बोलकर और अपने पास से कुछ खर्च करके प्राप्त की थी, कुछ काम न आई तो पौराणिक मतावलम्बियों को भी एक प्रकार की लज्जा आई, अन्त को यहां के लाला प्रेमदास देवीदास ने पण्डित हलधर ओझा मैथिल ब्राह्मण को, जो दूर २ तक संस्कृत का एक विद्वान् प्रसिद्ध था, कानपुर से बुलवाया। जब ओझाजी पधार गये तो उनके सहायकों ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि यदि कोई हारजीत की बदें तो हम हलधर का स्वामीजी से शास्त्रार्थ कराते हैं इस पर सेठ जगन्नाथप्रसादजी ने, जो स्वामीजी के पूर्ण भक्त थे, अढ़ाई हज़ार रुपये नक़द पं० सतावनलाल के हाथ लाला प्रेमदासजी देवीदासजी को भिजवा दिये और साथ ही यह भी कहलवा दिया कि आपने हलधर ओझा को बुलवाया है और स्वामीजी से रुपये की हारजीत पर शास्त्रार्थ कराना चाहते हैं सो हमें यह भी स्वीकृत है यह अढ़ाई हज़ार रुपये मैं भेजता हूं इतने ही आप अपने पास से मिलाकर पांच हज़ार रुपये किसी साहूकार की दुकान पर जमा करा दीजिये, यदि स्वामीजी शास्त्रार्थ में हार जायं तो आप यह पांच हज़ार रुपये लेलीजिये और उनका जो चाहे कीजिये यदि हलधरजी हारगये तो यह पांच हज़ार रुपये हमारे हो जायंगे। यह सुनकर ला० देवीदासजी बहुत घबराये और कहने लगे कि हमने हारजीत की कभी इच्छा प्रकट नहीं की हमने तो हलधरजी को केवल स्वामीजी से मित्रभाव से वार्त्तालाप करने के लिये बुलाया है। इसके पश्चात् हलधरजी के सहायक उन्हें अपने साथ लेकर स्वामीजी के उतारे के स्थान पर पहुंचे। कुशल क्षेम के पश्चात् मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ होने लगा परन्तु थोड़ी देर के पश्चात् ही हलधरजी ने अपना पक्ष गिरते देख प्रकरण बदल दिया और अब मद्यपान पर शास्त्रार्थ होने लगा। कारण यह था कि हलधर ओझा मैथिल ब्राह्मण थे और मैथिल प्रायः तांत्रिक होते हैं जिनके लिये मद्य और मांस आवश्यक पदार्थ है। ओझा ब्राह्मणों का कार्य प्रायः झाड़ फूंक जादू मंत्र टोने टोटके करना और भूत चुड़ैल उतारना होता है। हलधरजी ने एक प्रमाण दिया जिससे सिद्ध होता था कि मद्य का पीना ठीक है स्वामीजी ने

प्रबल युक्तियों से उसका खंडन किया और कहा कि जिस शब्द के अर्थ मद्य के करते हैं उसके वास्तविक यह अर्थ नहीं हैं वरन उत्तम फलों का रस है जो कि ओषधिवत् काम में लाया जाता है जब इस पर ओझाजी निरुत्तर हो गये तो स्वामीजी से संन्यासी के लक्षण पूछने लगे स्वामीजी ने सत्य शास्त्रों के अनुसार संन्यासी के लक्षण वर्णन कर दिये इसके पश्चात् स्वामीजी ने हलधरजी से ब्राह्मण के लक्षण पूछे तो हलधरजी बगलें झांकने लगे और अटक २ कर अशुद्ध संस्कृत बोलने लगे। यह देखकर स्वामीजी ने संस्कृत में हलधरजी से कहा हलधर भाषा में वार्त्तालाप करो जो कुछ कहना है भाषा में कहो और प्रकरण मत छोड़ो। बहुत लज्जित होकर हलधरजी शब्दों की झंझट पर उतर आये और स्वामीजी से कहने लगे कि आप यह बताइये कि प्रकरण शब्द किस प्रकार सिद्ध होता है स्वामीजी ने शीघ्र ही उत्तर दिया कि प्रपूर्वक "कृञ् धातु" से ल्युट् प्रत्यय लगने से प्रकरण शब्द सिद्ध होता है फिर हलधरजी ने पूछा कि "कृ" धातु समर्थ होता है या असमर्थ? जब उसका भी उत्तर स्वामीजी ने दे दिया तो हलधरजी ने असली प्रकरण और आशय के विरुद्ध व्याकरण की शुष्क बातों में समय खराब करना चाहा और यह पूछा कि समर्थ किसको कहते हैं और असमर्थ किसको? स्वामीजी ने महाभाष्य के प्रमाण से जब इसका भी उत्तर देदिया तो हलधरजी कहने लगे कि महाभाष्य में ऐसा नहीं लिखा है यह सुनकर स्वामीजी ने पं० व्रजकिशोरजी को कहा कि आप महाभाष्य के दूसरे अध्याय का पहिला अङ्क निकालिये और हलधरजी को समझा दीजिये। अपनी ग़लती स्पष्टतया देखकर हलधरजी बहकी २ बातें करने लगे और कहने लगे कि ख़ैर महाभाष्य भी मनुष्य ने ही बनाया है और मैं भी मनुष्य हूं। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि महाभाष्य एक ऐसे ऋषि का बनाया हुआ है कि जिसके आप बाल के बराबर भी नहीं यदि हों तो बतलाओ कि कल्प संज्ञा किसकी है। हलधर इसका कुछ उत्तर न दे सके तब स्वामीजी ने कहा कि "अकथितं च" इस सूत्र के भाष्य में देखलो कि कल्प संज्ञा कर्म्म की है इस पर सब लोग जान गये कि हलधर की कितनी विद्या है इस प्रकार व्याकरण पर शास्त्रार्थ करते २ रात का १ बज गया अन्त को यह बात ठहरी कि "समर्थः पदविधिः" यह सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो हलधरजी की हार होगी यदि एक स्थान पर तो स्वामीजी की। इसके पश्चात् सभा विसर्जन होगई दूसरे दिन रात्रि के आठ बजे से फिर सभा जुड़ी उस समय मालूम हुआ कि कुछ बदमाशों का विचार कोलाहल करने का है इस पर सब लोगों को पुकार कर कह दिया गया कि यदि कोई शास्त्रार्थ के बीच में विना कारण के बोलेगा तो सभा से उठा दिया जायगा और जिन लोगों पर शङ्का

थी उनको सभ्यतापूर्वक चबूतरे के नीचे बैठा दिया इस पर पंडित गौरीशंकर कश्मीरी क्रुद्ध होकर चले गये और उसी दिन से स्वामीजी को गाली गलौच देने लगे। स्वामीजी ने गत रात्रि की प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाकर महाभाष्य की पुस्तक से "समर्थ: पदविधि:" इस सूत्र को सर्वत्र लगाकर बता दिया और पंडितों से फैसला चाहा। हलधर मौन साध गये और पंडित लोग दूसरी बातें करने लगे। स्वामीजी ने पूर्व प्रतिज्ञा पर बल दिया और सेठ जगन्नाथप्रसाद ने भी सब पंडितों को पुकार कर कहा कि सत्य के प्रकट करने में क्यों झिझकते हो इस पर सबने कहा कि जो बात हलधर ने कही थी वह ठीक सिद्ध नहीं हुई पंडितों की यह व्यवस्था सुन कर हलधर की आंखों के आगे अन्धेरी छागई और वो मूर्छित होने लगा परन्तु उसके साथियों ने उसको सम्भाल लिया और बड़ी कठिनाई से उसको घर ले गये। लाला प्रेमदास देवीदासजी ने चलते वक्त हलधर को कुछ नहीं दिया और वह निराश होकर कानपुर चला गया। आज की रात्रि में भी शास्त्रार्थ एक बजे तक होता रहा और कई आदमी एकादशी के कारण रात भर जागते रहे और बातचीत करते रहे। लाला जगन्नाथप्रसादजी रईस फ़र्रुखाबाद रात भर जगने, ओस में बैठे रहने और ठंडे पानी में नहाने से बीमार पड़ गये। पौराणिक लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया चूंकि उक्त सेठजी ने हलधर को स्वामीजी से हरवा दिया इसलिये हलधर ओझा ने इन पर प्रयोग किया है सेठजी ने इसकी कुछ परवाह न की परन्तु हलधर स्वयं डर के मारे सेठजी के यहां आकर कह गया कि लोग उस पर मिथ्या कलंक लगाते हैं उसने कुछ नहीं किया है।

फ़र्रुखाबाद से चलकर स्वामीजी सिंहीरामपुर में पहुंचे और यहां गङ्गा के किनारे ठहरे यहां से प्रस्थान करके मौज़े जलालाबाद में उतरे एक ब्राह्मण ने भोजन का निमन्त्रण दिया, स्वामीजी ने मान लिया, नियत समय पर वह स्वामीजी के पास आया और कहने लगा कि भोजन तय्यार है मेरा घर पवित्र कीजिये। स्वामीजी ने हंस कर उत्तर दिया कि यदि वहां चलना होता तो यहां क्यों ठहरते जो कुछ आपने हमारे लिये बनवाया है यहां ही ले आइये हम आपके सामने खालेंगे उसने कहा बहुत ठीक परन्तु मैंने कच्चा भोजन बनवाया है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि कच्चा भोजन कोई किसी के लिये नहीं बनवाता आप ले आइये और कुछ न बनवाइये रात्रि को जब सोने का समय आया तो कई आदमियों ने चाहा कि स्वामीजी के लिये बिस्तर बिछावें परन्तु उन्होंने नांही की और केवल दो ईंटें मंगवाय उनका तकिया लगाय गंगारज पर सोगये और कहा कि यही हमारा बिस्तर है।

कन्नौज में धर्मोपदेश

जलालाबाद से चलकर स्वामीजी कन्नौज पहुंचे और यहां धर्मोपदेश करने लगे सारी कन्नौज के पण्डित स्वामीजी से धर्म-सम्बन्धी बातचीत किया करते थे और उत्तर सुनकर चुप होजाया करते थे। पंडित गुलजारीलाल व हरिशंकर शास्त्री ने कई दिन तक स्वामीजी से मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया परन्तु अन्त में परास्त होगये पण्डित हरिशङ्कर शास्त्री खुल्लमखुल्ला स्वामीजी के अनुयायी होगये जिससे सारी कन्नौज में स्वामीजी की विद्वत्ता का सिक्का बैठ गया, एक मनुष्य ने कहा कि सदाचार में मूर्त्तिपूजा भी शामिल है। स्वामीजी ने इन्हें भले प्रकार समझा दिया कि सदाचार में पञ्चमहायज्ञ हैं न कि मूर्त्तिपूजन।

कानपुर में वैदिकधर्मप्रचार।

स्वामीजी कन्नौज से चलकर बिठूर होते हुये मौज़ मदार में पहुंचे और यहां के सामवेदियों से मिले। मदार से प्रस्थान करके वर्षाऋतु के आरम्भ में कानपुर पहुंचे और गंगाजी के किनारे विश्रान्त घाट पर ठहरे क्योंकि स्वामीजी की प्रसिद्धि दूर २ तक होगई थी इस कारण भिन्न २ जाति व सम्प्रदायों के हज़ारों मनुष्य उनका उपदेश सुनने जाया करते हर समय प्रश्नोत्तर व शास्त्रार्थ की चर्चा रहती थी। पण्डित हृदयनारायण कौलदत्तात्रेय और उनके दो छोटे भाई प्रतिदिवस दश बजे भोजन करके स्वामीजी के पास चले जाते थे और सायंकाल तक वहीं बैठे रहते थे थोड़े ही दिनों में इनको संस्कृत समझने व समझाने का ऐसा महावरा हो गया कि प्राय: लोगों को स्वामीजी की संस्कृत का उलथा करके समझाया करते थे।

ऊंट का चारा

श्रावण में कई लोग पाषाण के महादेव पर बिल्वपत्र चढ़ा कर स्वामीजी का उपदेश सुनने आ जाया करते थे स्वामीजी उन से पूछा करते थे कि आप कहां से आते हैं तो वे साफ २ कह दिया करते थे कि शिवजी पर बिल्वपत्र चढ़ा कर आये हैं इस पर स्वामीजी कहा करते थे कि यदि वे पत्ते किसी ऊंट को खिला देते तो उसका चारा होजाता, पाषाण पर चढ़ाने से क्या लाभ?

यदि जागती ज्योति है तो हमें उठाकर फेंक दे

कानपुर में जहां स्वामीजी ठहरे हुये थे वहां पास ही पहिले सरकारी मेगज़ीन था जहां अस्त्रशस्त्र रहा करते थे यहां पर संगीन का पहरा रहता था लोगों में एक कहावत प्रसिद्ध थी कि एक समय उधर से भैरवजी की सवारी निकली थी पहरे वाले ने टोका था इस पर

भैरवजी क्रुद्ध होकर पहरे वाले को ऊपर की मंज़िल से ज़मीन पर पटक दिया, मेगज़ीन के अफ़सर ने उस तरफ़ का पहरा उठा दिया और कह दिया कि इस ओर के रक्षक भैरवजी हैं ऐसी झूठी करामात की बातें लोग प्राय: स्वामीजी को सुनाया करते थे, एक दिन स्वामीजी ने सब को कहा कि हम तो प्रतिदिवस इन भैरवजी के विरुद्ध कहते हैं यदि ये जागती ज्योती हैं तो हमें उठाकर क्यों नहीं फेंक देते पहरे वाले को भैरवजी ने नहीं गिराया नींद ने धक्का दिया होगा इसके थोड़े दिनों पश्चात् गंगाकी बाढ़ से भैरवजी मय चबूतरे के बह गये और लोगों को गप्प मारने का मौक़ा न रहा।

हमारे ठाकुरजी को जाड़ा नहीं लगता

फ़र्रुखाबाद के सेठ दुर्गाप्रसादजी कानपुर में स्वामीजी से मिलने आये और बातचीत में कहने लगे कि आपके सदुपदेश से सेठ पन्नालालजी ने मूर्त्तिपूजा बिलकुल छोड़ दी है और अब एक ईश्वर परमात्मा की स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं एक दिन उनके मंदिर के पुजारी उनके पास पत्थर के ठाकुरजी के लिये जाड़े के कपड़े मांगने के लिये आये थे सो उन्होंने उसे झिड़क कर कहदिया कि जाओ हमारे ठाकुरजी को जाड़ा नहीं लगता

महादेव की बटियों से मसाला पीसने लगे

स्वामीजी के सदुपदेशों से कानपुर में लोगों को मूर्त्तिपूजा से ऐसी घृणा होगई कि अपनी मूर्त्तियों को गंगा में बहादेना और कण्ठी वग़ैरह तोड़ डालना एक साधारण बात होगई। यहां तक की पुजारियों ने अपनी कई पीढ़ियों के मूर्त्तिपूजा के रोजग़ार को छोड़ दिया और ईमानदारी से अपनी भुजाओं से कमाई करने लगे। कानपुर के पण्डित शिवरामजी गौड़ ने जो कई वर्षों से एक बड़े पत्थर को महादेव के नाम से पूजा करते थे और उनके पिता भी बड़े मूर्त्तिपूजक थे उन पर स्वामीजी के सत्संग और उपदेशों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने पत्थर के महादेवों से मसाला पीसना प्रारम्भ कर दिया बहुतसे बड़े २ व बूढ़े पण्डित, जो उपदेश सुनने जाया करते, प्राय: कहा करते थे कि जो कुछ स्वामीजी कहते हैं है तो सब सत्य परन्तु क्या किया जावे रोज़ी में फरक़ आता है। यदि यह मूर्त्तिपूजा का खण्डन न करें तो लोग इनको इस समय ब्रह्मा का अवतार मानने लगें यदि यह किसी एक मत का खण्डन करें तो उसका नाम निशान न रहे परन्तु यह तो सब को एक लाठी से हांकते हैं।

एक साधु की अविद्या का परिचय

जिन दिनों स्वामीजी इस प्रकार प्रचार कर रहे थे उन्हीं दिनों वहां एक ब्रह्मानन्द वेदान्ती साधु आ निकला जिसने यह प्रसिद्ध करदिया कि स्वामीजी अङ्गरेज़ों की ओर से लोगों को

ईसाई बनाने के लिये नियत हुए हैं कोई आदमी उनके व्याख्यानों में न जावे नहीं तो धर्मभ्रष्ट हो जावेगा परन्तु लोगों पर ऐसी निर्मूल बातों का कुछ भी असर नहीं हुआ, यह साधु कुछ पौराणिक पंडितों को लेकर एक दिन स्वामीजी के पास भी गया परन्तु उन्होंने उसकी मूर्खता की बातें सुनकर कह दिया कि तुमको विद्या की बातें नहीं आतीं अस्तव्यस्त बकने से क्या लाभ ? इस पर साधुजी पीछे चले आये और कुछ भोले भाले लोगों को यह डर दिलाया कि तुमने स्वामीजी के उपदेशों में देवताओं की निन्दा सुनी है इस कारण तुम पर बहुत पाप चढ़गया है शीघ्र ही गङ्गातट पर चलकर प्रायश्चित्त करो नहीं तो तुम पर कोई बलाय आने वाली है २०, २५ मनुष्य इस मूर्ख साधु की बहकावट में आगये और उसने उनको एक दिन लेजाकर गङ्गाजल में खड़ा रक्खा और फिर उनके जनेऊ बदलवाये और गौ का गोबर और मूत्र आदि भी पिलाये और उपदेश दिया कि आगामी को कभी स्वामीजी के उपदेश सुनने मत जाना। इस साधु ने एक विज्ञापन भी लगाया था कि जो ब्राह्मण स्वामी के उपदेशों में जावे उसको जाति में से छेक देना चाहिये परन्तु इस मूर्ख साधु की बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और लोग पहिले से भी विशेष उपदेशों में जाने लगे।

वैष्णवों की घृणित दीक्षा

एक दिन स्वामीजी ने अपने व्याख्यान में वर्णन किया कि वैसे तो चक्राङ्कित लोग कहते हैं कि हमें मांस आदि से बड़ी घृणा है परन्तु वास्तव में देखो तो यह नरमांस खाते हैं क्योंकि जब इन लोगों के आचार्य्य किसी को अपना चेला बनाते हैं तो उसके शरीर को तप्तमुद्रा से दागते हैं और फिर उसी लोहे को जिसमें मनुष्य की जली चमड़ी मांस आदि लगा रहता है पानी में बुझा चरणामृत करके पीते हैं, यह नरमांस खाना नहीं तो और क्या है ?।

तोबाह करने से पाप नहीं छूटते

कानपुर की पुलिस के इन्स्पेक्टर सुलतानमोहम्मद साहब प्रायः स्वामीजी के पास आया करते थे और उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुना करते थे एक दिन स्वामीजी ने उनसे कहा कि आप के दीन में जो यह बतलाया गया है कि तौबाह करने से सब पाप क्षमा हो जाते हैं यह बात ठीक नहीं है ऐसा कभी नहीं हो सकता पाप और पुण्य का फल अवश्य मिलेगा इसको सुनकर मियां सुलतानमोहम्मद ने कहा कि महाराज जो कुछ आप कहते हैं सब सत्य है और मैं भी उसको मानता हूं। यह इन्स्पेक्टर साहब स्वामीजी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे और जिस समय लक्ष्मण शास्त्री और हलधर ओझा से शास्त्रार्थ हुआ

तो खुद मियां सुलतानमोहम्मद पचास साठ पुलिस कान्स्टेबिल सहित प्रबन्ध करने आये थे और किसी प्रकार का गुल गपाड़ा नहीं होने दिया।

मुक्ति की प्राप्ति का उपाय

एक ब्राह्मण ने स्वामीजी से एक दिन पूछा कि मैं क्या २ कर्म करूं कि जिससे मुक्ति होजाय स्वामीजी ने उत्तर दिया कि प्रतिदिन सन्ध्या और पंचमहायज्ञ किया करो लड़कों को विद्या पढ़ाया करो यज्ञोपवीत कराया करो परन्तु मूर्त्तिपूजा कभी न किया करो यह अन्तिम बात सुनकर, वह कुछ संकोच करने लगा और कहने लगा कि मूर्त्तिपूजा तो पुरानी चली आई है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि यह कोई बात नहीं है चोरी करना भी पुराना चला आया है सत्य को सदैव ग्रहण करना चाहिये और असत्य को परित्याग करना चाहिये यह कोई आवश्यक नहीं है कि यदि एक खोटा काम जो हम अविद्या या भूल से करते आये हैं ठीक प्रतीत होने पर भी पुराना होने के कारण करते चले जावें।

बुरे काम से शिर नीचा होजाता है

पण्डित गुरुनारायण ब्राह्मण के घर में एक मेम थी यह महाशय कभी २ स्वामीजी के यहां उपदेश सुनने जाया करते थे एक दिन स्वामीजी ने उचित रीति से इनकी खबर ली और कहा कि आपने यह क्या भ्रष्ट काम कर रक्खा है पण्डितजी ने शिर नीचा कर लिया।

मुंहतोड़ उत्तर ऐसा होता है

एक दिन एक मसखरे ने स्वामीजी से हंसी भी करी थी परन्तु ऐसी मुंह की खाई कि चुप होना पड़ा यह इस प्रकार हुआ कि स्वामीजी के पास एक लोटा रक्खा हुआ था उसने कहा कि आप थोड़े समय के लिये लोटा मुझे देदें स्वामीजी ने पूछा क्या करोगे उस ने उत्तर दिया कि इसमें पानी भर २ कर महादेवजी पर चढ़ाऊंगा स्वामीजी ने कहा आप के पास तो कुदरती लोटा मौजूद है उससे यह काम क्यों नहीं लेते उसने आश्चर्य्य में होकर पूछा कि वह क्या? स्वामीजी ने कहा कि तुम्हारा मुंह, उसमें पानी भर २ कर क्यों नहीं महादेवजी पर चढ़ाते यह उत्तर सुनकर मसखरा चुप होगया।

कानपुर में बड़ा भारी शास्त्रार्थ

यहां पर स्वामीजी के लगातार सत्य उपदेशों से दूर २ तक सब मतमतान्तरों के लोगों में खलबली मचगई विशेष कर पौराणिक लोगों में जो बहुत ही हतोत्साही और निराश थे। उस समय कानपुर में पंडित गुरुप्रसाद शुक्ल और पंडित प्रयागनारायण तिवाड़ी दो बड़े धनाढ्य मनुष्य थे इन्होंने कई मन्दिर बहुत रुपया लगाकर बनाये थे यह भी स्वामीजी

के उपदेश सुनने आया करते थे एक दिन स्वामीजी ने इनको समझाया कि आपने वृथा लाखों रुपये इन मन्दिरों के बनवाने में लगाये जिसमें सिवाय हानि के और कुछ लाभ नहीं है थोड़े दिनों में यह गिर जावेंगे, क्या ही उत्तम होता यदि तुम यही रुपया किसी देशोपकारी कार्य्य में लगाते जिससे सर्वसाधारण को लाभ पहुंचता परन्तु यह लोग पौराणिक ब्राह्मण थे स्वामीजी के सत्य उपदेशों से लाभ उठाने के बदले उलटा अपना हलकापन समझने लगे और उसी घड़ी से मन में ठान ली कि जिस प्रकार होसके स्वामीजी को नीचा दिखाना चाहिये। उधर हलधर ओझा फ़र्रुखाबाद की पराजय के कारण खार खाये बैठा ही था जब इसको यह ज्ञात हुआ कि शुक्लजी और तिवाड़ीजी भी स्वामीजी के विरुद्ध हैं तो इसकी हिम्मत बढ़गई और दश बीस आदमी और भी इनमें मिलगये जो रुपये पैसे से सहायता देने को तय्यार थे इसके पश्चात् पौराणिक पण्डितों ने भी अपने यजमानों को उकसाया कि यदि ऐसे समय में जब कि सनातनधर्म्म की हानि होरही है सहायता नहीं दोगे तो कब दोगे, सारांश यह है कि सारे पौराणिक समुदाय में हलचल मच गई दूसरी ओर स्वामीजी ने भी एक विज्ञापन संस्कृत में छपवाकर वितीर्ण कर दिया कि इस समय २१ ग्रन्थ प्रामाणिक माने जावेंगे परन्तु यदि किसी पुस्तक में कोई बात वेदविरुद्ध होगी तो वह अप्रामाणिक ठहरेगी क्योंकि बहुतसे धूर्त्त पण्डित धोखा देने को हस्तलिखित पुस्तकों में कुछ का कुछ बढ़ा देते हैं और छपी हुई पुस्तकों में भी चालाकी करते हैं इसी विज्ञापन में अष्ट गप्पों और अष्ट सत्य उपदेशों का वर्णन था सारांश शुक्लजी और तिवाड़ीजी के कहने से पण्डित स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये नियत हुए एक बिठूर के लक्ष्मण शास्त्री दूसरे हलधर ओझा। ३१ जुलाई सन् १८६९ शास्त्रार्थ के लिये नियत हुई, इस दिन कानपुर के भैरवघाट के नीचे फ़रश होगया सारे नगर के सेठ साहूकार रईस व अफ़सर सरकारी अहलकार उपस्थित थे मिस्टर डबल्यू, थैनसाहिब जाइन्ट मैजिस्ट्रेट कानपुर इस सभा के सभापति नियत हुए क्योंकि आप संस्कृत के भी विद्वान् थे और किसी पक्ष के नहीं थे। शास्त्रार्थ के प्रारम्भ में ५० हज़ार मनुष्यों की भीड़भाड़ थी साहब इन्सपेक्टर पुलिस ५०-६० कान्स्टेबिलों सहित प्रबन्ध कर रहे थे ठीक दो बजे हलधर ओझा और स्वामीजी की बातचीत प्रारम्भ हुई।

वेदों में मूर्त्तिपूजा नहीं है

पहिले हलधर ओझा ने, जो फ़र्रुखाबाद में परास्त हो चुका था, प्रश्न किया कि संस्कृत के विज्ञापन में जो आप ने अभी दिया है जो अष्ट गप्पम् और अष्ट सत्यम् लिखा है यह व्या-

करण से अशुद्ध है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इन वृथा बातों में समय मत नष्ट करो ऐसी २ बातें पाठशाला के छोकरे किया करते हैं मेरे विज्ञापन में व्याकरण की एक भी अशुद्धि नहीं है यदि शंका है तो फिर किसी दिन अपने मित्रों को लेकर चले आना मैं समाधान करदूंगा इस समय तो वह चर्चा होनी चाहिये कि जिसके लिये इतने मनुष्य एकत्रित हुए हैं और ऐसा प्रबन्ध किया गया है इस पर ओझाजी ने दूसरा प्रश्न किया कि क्या आप महाभारत को मानते हैं स्वामीजी ने उत्तर दिया कि हां जहां तक यह वेदानुकूल है। यह सुनकर ओझाजी ने एक श्लोक बोला जिसका अभिप्राय यह था कि एक भील ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर अपने सामने रक्खी थी और उससे धनुषविद्या सीखी थी इस को सुनकर स्वामीजी ने पूछा कि क्या इस श्लोक में मूर्तिपूजा की आज्ञा है इसमें स्पष्ट लिखा है कि एक भील ने ऐसा किया जैसा प्रायः कुपढ़ जंगली गंवार मनुष्य किया करते हैं जिस भील ने ऐसा किया उस के विषय ऐसा नहीं लिखा कि वह कोई विद्वान् था या ऋषि मुनि था और न यह ही सिद्ध होता है कि किसी विद्वान् आदमी ने उसको ऐसा करने की प्रेरणा की यदि खैंचतान करके आप उससे यह अभिप्राय निकालें कि उसके ऐसा करने से उसको धनुषविद्या आगई तो यह द्रोणाचार्य्य की मूर्ति सामने रखने से नहीं आई वरन घोर अभ्यास करने से जैसा कि आजकल चांदमारी में चांद बनाकर निशाना लगाते हैं स्वामीजी का यह उत्तर सुनकर ओझाजी चुप होगये थोड़ी देर के पश्चात् फिर प्रश्न किया कि यदि वेदों में मूर्त्तिपूजा की आज्ञा नहीं है तो मनाई कहां है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि कोई स्वामी यदि अपने भृत्य को पूर्व की ओर जाने की आज्ञा देवे तो यह स्पष्ट है कि वह पश्चिम उत्तर और दक्षिण की ओर न जावे और वेदों में तो स्पष्ट मूर्तिपूजा का निषेध है, यह सुनकर ओझा चुप होगया।

संस्कृतज्ञता का परिचय

इसके पश्चात् सभापति मिस्टर थैनसाहब ने यह जानने के लिये कि स्वामीजी केवल शास्त्रार्थ करना ही जानते हैं या कुछ पढ़े भी हैं एक पत्रा संस्कृत की पोथी का, जो ओझाजी के पास था, लेकर स्वामीजी को दिया कि ज़रा इसे पढ़िये इस में क्या लिखा है स्वामीजी ने जो कुछ उस में लिखा था पढ़कर सुना दिया अन्त में मिस्टर थैन ने प्रश्न किया कि आप किसको मानते हैं स्वामीजी ने उत्तर दिया कि एक ईश्वर को, यह सुनकर मिस्टर थैन उठ खड़े हुए और स्वामीजी की विजय की व्यवस्था देखकर इनको सलाम करके चल दिये।

◆ हारने पर भी पौराणिकों का जीत का कोलाहल मचाना ◆

सभापति के जाते ही सभा विसर्जन हो गई और इस अवसर पर भी पौराणिक लोग अपनी शरारत से नहीं चूके पं० प्रयागनारायण तिवाड़ी ने ८) रु० के पैसे पंडित हलधरजी के शिर पर से वारकर लुटा दिये और शोर मचाया कि ओझाजी जीत गये और स्वामीजी हार गये फिर ओझाजी को गाड़ी में बिठला कर घर ले गये दूसरे दिन पं० गुरुप्रसाद शुक्ल शोलेतूर नामी अखबार के कारखाने में पहुंचे और शोलेतूर के मालिक से, जो उनका किरायेदार था, कहा कि कल के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त अखबार में छापो अखबारवाले ने कहा क्या छापें शुक्लजी ने कहा यही कि ओझाजी जीते और स्वामीजी हारे। अखबार वाले ने कहा कि इस महासभा में क़रीब २ सब ही हाकिम लोग थे इसलिये बिना उनकी आज्ञा के कुछ लिखना उचित नहीं होगा इस पर शुक्लजी ने कहा उचित न होगा तो क्या होगा ? अखबार वाले ने कहा शायद जुर्माना होजाय इसपर शुक्लजी ने कहा कि १० हज़ार तक तो मैं जुर्माना देदूंगा अन्त को शुक्लजी के बहुत ही कहने सुनने पर अखबार में यह निकाला कि स्वामीजी निरुत्तर हो गये और ओझाजी जीते चूंकि इस सभा में ५० हज़ार मनुष्य उपस्थित थे और सब को सत्य हाल प्रकट था, इस कारण शोलातूर वाले को झूठ लिखने पर सब ने धिक्कार दी और स्वयं हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री अपनी पराजय को अनुभव करने लगे।

◆ सत्योपदेश से मूर्त्तियों का गंगामें फेंका जाना ◆

इस भारी शास्त्रार्थ के पश्चात् पौराणिकों का रहा सहा अभिमान चूर होगया और सर्वसाधारण का चित्त मूर्तिपूजा से हट गया और प्रतिदिन ढेर के ढेर शिवलिङ्ग और शालिग्राम गंगाजी में फेंके जाने लगे समस्त नगर में हलचल मच गई कि पौराणिक मत नष्ट हुआ जाता है इसपर हलधर ओझा ने संस्कृत, नागरी और उर्दू में विज्ञापन ज़ारी किये कि कोई मूर्त्तियों को गङ्गा में न डाले या तो वे स्वयं शुक्लजी या तिवाड़ीजी के मन्दिर में पहुंचा देवें या खबर कर देवें ताकि आदमियों से उठवा मंगवावें।

विज्ञापन की नक़ल यह है।

जो कि दयानन्द सरस्वती के मत के अनुसार बहुतसे लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि अपना कुलधर्म्म छोड़कर देवताओं की मूर्त्ति गङ्गाजी में प्रवाह कर देते हैं यह बात बड़ी अनुचित है इसलिये यह विज्ञापन दिया जाता है कि जो लोग उन के मत को स्वीकार करें उनको उचित है कि मूर्त्तियों को कृपाकर एक मन्दिर कैलास

नामी महाराज गुरुप्रसाद शुक्ल का है उसमें या मन्दिर महाराज प्रयागनारायण तिवाड़ी में पहुंचा दिया करें यदि उनको पहुंचाने की शक्ति न हो तो हमको इत्तला दें हम उनको उठवा लिया करेंगे इनके वहां फेंकने में बहुत पाप है।

ह० हलधर ओझा.

शोलेतूर में ही सत्योपदेश के प्रभाव का वर्णन

किस को सामर्थ्य है कि सत्य को सदैव छिपा सके वही अखबार शोलेतूर जिसने मकान वाले के दबाव से असत्य लिखा था उसी ने लाचार यह लिखा कि संन्यासी के सत्सङ्ग से बाजे हिन्दू मूर्त्तियों को दरिया में डालने लगे ओझाजी ने इश्तिहार दिया कि वेदों व शास्त्रों में ऐसा करना बुरा लिखा है जिसको दरिया में मूर्त्ति डालना हो वह उनके पास भेजदें नदी में डालकर पाप न लें।

स्वामीजी की जीत का प्रमाणपत्र

अखबार शोलेतूर की झूठी लिखावट व धोखेबाजी को पं० हृदयनारायणजी ने सभा के प्रधान मिस्टर डबल्यू, थेन साहब के सन्मुख पेश की जिन्होंने अखबार के शब्द सुनकर फ़रमाया कि नहीं २ उस दिन स्वामीजी की फ़तह हुई थी और उक्त साहब ने एक पत्र भी लिख दिया।

Gentlemen! At the time in question I decided in favor of Swami Dayanand Saraswati Faqir, and I believe his arguments are in accordance with the Vedas, I think he won the day. If you wish it, I will give you my reasons for my decison in a few days.

(Sd.) THANKS.

रामनगर बनारस में प्रचार

कानपुर से रवाने होकर स्वामीजी ग़ाज़ीपुर आदि स्थानों में एक २ दिन ठहरते हुए २१ सितम्बर सन् १८६९ को रामनगर में पहुंचे वहां महाराज साहिब बनारस के लघुभ्राता के उत्साह व सहायता से रामलीला का मेला बड़े समारोह के साथ हुआ करता था दूर २ से लोग इसको देखने के लिये आया करते थे स्वामीजी ने यहां पहुंचते ही मेले में वैदिक धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया सारे मेले में इनकी धूम मच गई पण्डितों और उनके शिष्यों ने प्रश्न किये जिनके उत्तर सुन २ कर चकित हो जाते थे कई रईस भी छिप २ कर उपदेश सुना करते थे और उनके हृदयों पर सत्य उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ता था यद्यपि लोकलाज से वे सब के सन्मुख प्रकट नहीं करते थे बहुतसे

अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोग भी स्वामीजी के पास शंकानिवारणार्थ आया करते थे और शान्तिदायक समाधान सुनकर स्वामीजी के अनुयायी हो जाया करते थे।

काशी में धर्मप्रचार

२२ अक्टूबर सन् १८६१ ई० को स्वामीजी खास काशी में पहुंचे आनन्दबाग में जा डेरा जमाया स्वामीजी का रामनगर में विशेष रहने का यह भी अभिप्राय था कि वे काशी के पण्डितों की विद्या की परीक्षा स्वयं करते थे एक दिन स्वामीजी के पास महाराजा भरतपुर, महाराजा रीवां, महाराजा नरवा और एक अंगरेज़ आये और ऐसी बातें कीं कि जिससे प्रतीत होता था कि वे ईश्वर को नहीं मानते परन्तु स्वामीजी ने उनको ऐसी प्रबल युक्तियों से समझाया कि अन्त में उनको मानना पड़ा और वे हृदय से स्वामीजी की प्रशंसा करने लगे यह सब रईस उन दिनों बनारस कालेज में पढ़ते थे काशी के पण्डितों ने यह चाल चल रक्खी थी कि वे अपने शिष्यों द्वारा स्वामीजी से संस्कृत में प्रश्न किया करते थे और उत्तर सुन कर चुप होजाया करते थे।

पौराणिक शास्त्री की सभ्यता

एक दिन काशी के शिरोमणि पण्डित राजाराम शास्त्री को पं० बलदेव शुक्ल के द्वारा एक प्रश्न लिख कर भेजा पं० राजाराम शास्त्री उसको देखकर घबरा गये और क्रुद्ध होकर असभ्य मनुष्यों की नाईं बकने लगे कि स्वामीजी से कहदो कि पहिले बीच में एक छुरी रखलें तब हम उनका उत्तर देंगे यदि हमने उनका उत्तर दे दिया तो उनकी नाक काट लेंगे जब स्वामीजी ने शास्त्रीजी के ऐसे अमूल्य वचन सुने तो उन्होंने उत्तर दिया कि शास्त्रीजी से जाकर अभी कहदो कि एक नहीं २ छुरियें बीच में रख लें और जो पराजित हो जाय तो वह अपनी नाक आप काट ले यह सुनकर शास्त्रीजी चुप होगये और यह कहकर टाल दिया कि अब वे काशी में आगये हैं शीघ्रता क्या है, शनैः २ सब ज्ञात हो जायगा।

शास्त्रार्थ के लिये काशीनरेश को उत्साहित करना

आनन्दबाग में पण्डितों और विद्यार्थियों की भीड़ हरसमय रहने लगी और स्वामीजी ने निडर होकर सब मतमतान्तरों की पोल खोलनी प्रारम्भ करदी और साथ ही वैदिकधर्म्म के सिद्धान्तों का प्रचार। स्वामीजी महाराज ने काशीनरेश से कहला भेजा कि या तो आप स्वयं हम से अपनी शंकाओं की निवृत्ति कर लेवें या काशी के प्रसिद्ध और विद्वान् पण्डितों से अपने सन्मुख हमारा शास्त्रार्थ करावें ताकि सत्य और असत्य का निर्णय होजाय। अन्त को महाराज ने काशी के नामी २ पण्डितों को बुलाकर कहा

कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ कीजिये नहीं तो ठीक नहीं होगा। महाराज साहब के भ्राता, जो बड़े कट्टर पौराणिक थे, पण्डितों से कहने लगे कि जैसे बने वैसे मूर्तिपूजा को सिद्ध करो। महाराज काशी ने पण्डितों से कहा कि यदि स्वामीजी मूर्तिपूजा का खण्डन न करते तो हम उन्हें अपना गुरु बनाते और अपने हाथ से सोने का छत्र उन पर चढ़ाते। हम स्वयं वेद और शास्त्र से विज्ञ नहीं इस कारण हम उनसे बातचीत नहीं कर सकते आप सब लोग हमारा लाखों रुपया खर्च करवाते रहे हैं अब अवसर है कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ करके मूर्तिपूजा को सिद्ध करो नहीं तो बड़ी खराबी होगी। यह सुनकर काशी के सब पण्डित सोच में पड़गये और कहने लगे कि स्वामीजी बार २ वेदों का प्रमाण मांगते हैं और हम में से किसी ने आज तक वेद देखे नहीं हैं अन्य पुस्तकें तो बहुत पढ़ी हैं यदि हमें कुछ अवकाश मिले तो हम वेदों को देखकर उनमें से जो कुछ मूर्तिपूजा के विषय लिखना होगा पेश करेंगे। महाराज साहिब ने उत्तर दिया कि शास्त्रार्थ तुमको अवश्य करना पड़ेगा और १५ दिवस की अवधि तय्यारी के लिये देदी और रोशनी का प्रबन्ध भी करा दिया कि पण्डित लोग रात्रि को भी तय्यारी करें १५ दिन के पश्चात् पंडितों में से एक मनुष्य स्वामीजी के पास यह पूछने को गया कि आप कौन से ग्रन्थ प्रामाणिक मानते हैं। स्वामीजी ने कहा कि वेदों को स्वतःप्रमाण और अन्य ऋषिकृत ग्रन्थों को परतःप्रमाण। जब ज़िले के हाकिमों ने सुना कि स्वामीजी से एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ होने वाला है तो उन्होंने महाराज साहिब काशी से इच्छा प्रकट की कि यदि यह रविवार को हो तो हम सब लोग भी इसमें सम्मिलित हो सकते हैं परन्तु महाराज काशी को तो उनका बुलाना अभीष्ट नहीं था इस कारण कुछ कहला दिया क्योंकि उनके होते हुए सारा प्रबन्ध महाराज के हाथ में नहीं रहता और न वे अपनी इच्छानुसार धांधल कर सकते।

काशी में शास्त्रार्थ की तय्यारी

ता० १६ नवम्बर १८६९ ई० शास्त्रार्थ के लिये नियत हुई। महाराज काशी ने अपने सांसारिक वैभव व प्रतिष्ठा का प्रभाव स्वामीजी पर डालना चाहा और काशी के पण्डितों को नियत काल से कुछ पूर्व बड़े ठाट बाट से भेजना प्रारम्भ किया पौराणिक पण्डितों की डोलियों पर डोलियां आने लगीं और कई पण्डित तो बड़ी सजी हुई पालकियों व नालकियों में चंवर दुलवाते हुये आये इस उन्नीसवीं शताब्दी के बड़े भारी शास्त्रार्थ को देखने के लिये ५०-६० हज़ार मनुष्य एकत्रित हो गये थे पंडित रघुनाथप्रसादजी बुन्देलखण्ड निवासी इस समय पुलिस इन्स्पेक्टर थे यद्यपि यह मूर्तिपूजक थे परन्तु सत्यग्राही व स्वतन्त्रविचार के मनुष्य थे काशी

के पण्डितों ने शास्त्रार्थ से बहुत टालबाज़ी करनी चाही परन्तु पण्डित रघुनाथप्रसाद के बीच में रहने से कुछ उनकी चाल न चल सकी इसका कारण यह था कि पं० रघुनाथप्रसादजी सत्य २ वृत्तान्त महाराज काशी से कह दिया करते थे और स्वयं स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुआ करते थे और जो कुछ विपक्षियों की ओर से कहना हुआ करता था आप कहा करते थे शास्त्रार्थ के दिवस आप मय सब-इन्सपेक्टर व ५० सिपाहियों के प्रबन्ध के लिये उपस्थित थे और आपने ऐसा उत्तम प्रबन्ध कर दिया था कि यदि उसके अनुकूल चलते तो किसी प्रकार की हा हू नहीं होती अर्थात् आपने एक कमरे में दो ऊंचे २ स्थान नियत किये थे एक स्वामीजी के लिये और दूसरा विपक्षियों के लिये और तीसरा स्थान काशीनरेश के लिये रक्खा था ताकि एक समय में एक एक मनुष्य ही बोल सके और दूसरे मनुष्य बीच में न बोल सकें जिससे सब लोगों को आपस की बातचीत सुनाई देवे परन्तु शोक है कि महाराज काशी ने आते ही सारे प्रबन्ध को बिगाड़ दिया और बहुतसे पण्डित महाराज की हिमायत पर आगे बढ़कर स्वामीजी को घेरकर बैठ गये और सब से आगे स्वयं महाराजा हो गये स्वामीजी के सहायकों के लिये संकेत से मार्ग बन्द कर दिया आखिर किसी ने स्वामीजी के पास रुक्का लिख कर भेजा कि उनको लोग नहीं आने देते जिस पर उन्होंने पण्डित रघुनाथप्रसादजी को कह कर उनको अन्दर बुला लिया और बड़ी प्रतिष्ठा से अपने पास बिठलाया परन्तु महाराज काशी ने पण्डितों के कहने सुनने से उनको उठवा कर दूसरे स्थान पर बिठला दिया स्वामीजी को बुरा तो बहुत लगा परन्तु यह समझ कर कि यह लोग किसी बहाने से शास्त्रार्थ को टालना चाहते हैं चुप हो गये।

काशी के शास्त्रार्थ में प्रसिद्ध पंडित ये थेः—

वैसे तो काशी के सब पंडित इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे जिनमें से निम्नलिखित प्रसिद्ध थे—स्वामी विशुद्धानन्द, पं० बालशास्त्री, पं० शिवसहाय, माधवाचार्य्य, वामनाचार्य्य, पं० देवदत्त शर्म्मा, पं० जयनारायण शुक्ल वाचस्पति, पं० चन्द्रशेखर त्रिपाठी, पं० राधामोहन तर्कवागीश, पं० दुर्गादत्त, पं० बस्तीराम दुबे, पं० काशीप्रसाद शिरोमणि, पं० हरिकृष्ण व्यास, पं० अम्बिकादत्त, पं० घनश्याम, पं० ठाकुरदास, पं० हरदत्त दुबे, पं० भैरवदत्त, पं० श्रीधर शुक्ल, पं० विश्वनाथ मैथिल, पं० नवीननारायण तर्कालङ्कार, पं० मदनमोहन शिरोमणि, पं० कैलाशचन्द्र शिरोमणि, पं० मेवकृष्ण वेदान्ती, पं० गणेश श्रोत्रिय, पं० धनीरामनारायण शास्त्री, पं० देवधर नृसिंह शास्त्री,

महाराज काशी, महाराज के भ्राता, राजकुमार शिववीरनारायणसिंह व फ़तहनारायणसिंह वर्म्मा, बा० ईश्वरीनारायणसिंह शर्मा।

शास्त्रार्थ का संक्षिप्त वृत्तान्त

इस शास्त्रार्थ का सविस्तर वृत्तान्त काशीशास्त्रार्थ नामी पुस्तक में है संक्षेप से यहां भी दिया जाता है। पहिले ही पहिल मूर्त्तिपूजा पर बातचीत प्रारम्भ हुई पण्डितों ने अपनी आदत के अनुसार प्रकरण बदल कर जगत् के कारण और कर्त्ता पर प्रश्न के दौड़े जब स्वामीजी उत्तर देते तो दो दो चार चार पण्डित बीच में बोलने लग जाते चार घण्टे तक बराबर शास्त्रार्थ होता रहा जिसमें पौराणिक लोगों ने बहुत ही हठधर्मी की, जब काशी के सब पण्डित मूर्त्तिपूजा को सिद्ध नहीं कर सके और स्वामीजी ने बार २ ललकारा कि मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करो कोई वेद का प्रमाण दो तो सब पंडित चुप हो जाते थे अन्त में पंडित माधवाचार्य्य ने एक संस्कृत की पुस्तक के कुछ पृष्ठ सामने रख कर कहा कि यह वेद के पृष्ठ हैं और इनमें लिखा है कि यज्ञ की समाप्ति पर यजमान दशवें दिन पुराणों की कथा सुने असल में यह पृष्ठ गृह्यसूत्र के थे वेदों के नहीं स्वामीजी से प्रश्न किया गया कि यहां पुराण शब्द का क्या अभिप्राय है स्वामीजी ने उत्तर दिया कि पहिले असली संस्कृत को पढ़ो और फिर उसके आगे पीछे के सम्बन्ध को मिलाओ इस पर स्वामी विशुद्धानन्दजी ने पृष्ठ उठाकर स्वामीजी के हाथ पर रख दिये और कहा कि आप ही पढ़िये स्वामीजी ने पृष्ठ पीछे देकर कहा कि उत्तम यह है कि आप ही पढ़ें स्वामी विशुद्धानन्दजी ने कहा मेरा चश्मा नहीं है आप ही पढ़ स्वामीजी ने उनके हठ करने पर पृष्ठ ले लिये कमरे में सन्ध्या के कारण अन्धेरा हो गया था इसलिये उन्होंने रोशनी मांगी एक पौराणिक एक रद्दीसी लालटेन जिसके एक ओर से प्रकाश हो सकता था लाकर खड़ा हो गया जब स्वामीजी पृष्ठ देखने लगे तो यह चालबाज़ी से लालटेन को हिलाने लगा स्वामीजी को पृष्ठ देखने में दो मिनट भी नहीं लगे होंगे कि स्वामी विशुद्धानन्दजी खड़े हो गये और कहने लगे कि हम विशेष देर तक नहीं ठहर सकते और जीत की आवाज़ें लगाने लगे स्वामीजी ने यह दृश्य देखकर बड़े ज़ोर से कहा कि यह सब कार्यवाही बड़ी असभ्य व शोचनीय है परन्तु वहां कौन सुनता था बाहर चालीस पचास सहस्र मनुष्यों की भीड़ भाड़ थी उन्होंने असभ्यता का राज्य फैला दिया उस समय पुलिस इन्सपेक्टर रघुनाथप्रसादजी ने महाराज काशी से कहा कि महाराज आपके सम्मुख सत्य के गले पर छुरी फिर रही है मैंने जो प्रबन्ध किया था उसको तो आपने आते ही बदल

दिया मैं आपका मान रखने के लिये चुप हो रहा अब यह असभ्यता फैल रही है इस पर महाराज साहिब पण्डित रघुनाथप्रसादजी की बांह में हाथ डाल कर अपने साथ ले गये और मार्ग में कहने लगे कि आपको इन बातों से क्या प्रयोजन आप भी तो मूर्त्तिपूजक हैं पस अपने शत्रु को जिस प्रकार हो सके विजय करना चाहिये। इसके पश्चात् बड़े २ समाचारपत्रों में इस शास्त्रार्थ का वर्णन छपा जिससे सत्य स्वयं प्रकट हो गया यहांतक कि विपक्षी समाचारपत्रों को अपनी निर्बलता स्वीकार करनी पड़ी सत्य तो यह है कि इस शास्त्रार्थ से काशी के पौराणिक पण्डितों की सारी ढोल की पोल निकल गई और विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुषों को प्रकट होगया कि पौराणिक ढकोसला बहुत समय तक नहीं चलेगा।

काशी में तीसरी वार पधारना और अहं ब्रह्मास्मि का खण्डन

तीसरी वार स्वामीजी १६ मई १८७० को काशी में पधारे और ला० माधवदासजी के बाग़ में उतरे इनको काशी के पण्डितों की विद्या व बुद्धि का पता तो पूर्व लग ही चुका था परन्तु फिर भी शास्त्रार्थ का अवसर दिया गया परन्तु किसी ने चूं तक भी न की इन दिनों में स्वामीजी ने नवीनवेदान्तियों का विशेष कर खण्डन किया और एक पुस्तक अद्वैतमतखण्डन नामी लिखी जो लाइटप्रेस बनारस में छपवाकर बांटी गई थी जिसका फल यह हुआ कि नवीनवेदान्त की कई ख़राब पुस्तकें, जो पहिले बहुत प्रचलित थीं, बन्द होगईं और सबको प्रकट होगया कि नवीनवेदान्तियों का (अहं ब्रह्मास्मि) "मैं ही ब्रह्म हूं" बिलकुल असत्य सिद्ध हुआ।

काशी में चौथी वार पधारना और मूर्त्तिपूजा का खण्डन

चौथी वार स्वामीजी १ मार्च सन् १८७२ को काशी में पधारे और लाला माधवदासजी के भ्राता लाला मधुसूदनदासजी के बग़ीचे में ठहरे और फिर बड़े ज़ोर शोर से मूर्त्तिपूजा का खण्डन किया और पौराणिक पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा परन्तु कोई भी सन्मुख नहीं आया।

५ वींवार काशी में हिन्दी भाषा में व्याख्यान

पांचवीं वार स्वामीजी काशी में जून १८७४ में पधारे और गुसाईं रामप्रसाद के बाग़ में ठहरे दो मास तक निवास किया और अपनी स्थापित की हुई पाठशाला को भी देखते रहे यहां ही पहिली वार भाषा बोलना प्रारम्भ किया और एक मनुष्य से कहा कि हम तीसरे पहर को भाषा में व्याख्यान देंगे इन्होंने मने किया कि ऐसा न करें स्वामीजी

ने उत्तर दिया कि हम तो आप यही चाहते हैं कि भाषा न बोलें परन्तु तजुर्बे ने यह बतला दिया है कि सर्वसाधारण को हमारी बातों का अभिप्राय उलटा समझाया जाता है हम कुछ कहते हैं और पण्डित लोग लोगों को कुछ समझा देते हैं इस कारण लाचार हमें भाषा बोलनी पड़ेगी और आपने तीसरे पहर भाषा बोलने का साहस किया परन्तु वास्तव में वह भाषा क्या थी निरी संस्कृत थी कहीं २ कोई शब्द भाषा का आजाता था लाला माधवदासजी की श्रद्धा स्वामीजी पर बहुत थी स्वामीजी को एक दिन ज्ञात हुआ कि उनके बाग़ से प्रतिदिवस एक टोकरी पुष्प उनके घर पर मूर्त्तियों पर चढ़ने के लिये जाया करते हैं सो आपने उक्त लालासाहब से कहा कि हमें शोक है कि आप अभीतक मूर्त्तिपूजा करते हैं नित्यप्रति आप सेरों पुष्पों को नष्ट कराते हैं यदि यह बाग़ में लगे रहें तो बाग़ की सुंदरता बढ़ाने के अतिरिक्त दूर २ तक वायु को सुगन्धित करें यदि गुलदस्ते बनवाकर ही आप अपने घर या कोठी में रखवावें तब भी कुछ बात है परन्तु पत्थरों पर चढ़ाकर उनको फेंक देना बुद्धिमता नहीं कहलाती इन्होंने उत्तर दिया कि मैं तो मूर्त्तिपूजक नहीं हूं परन्तु मेरे घर के और सब लोग मूर्त्तिपूजा करते हैं यदि बाग़ से पुष्प भेजना बंद करदूं तो वे बाज़ार से डेढ़ दो रुपये रोज़ के पुष्प लाया करेंगे और हानि वास्तव में मुझे ही होगी यह सुनकर स्वामीजी हंसने लग गये और कहा कि ऐसी दशा में कठिन है।

काशी के सबजज साहब के बंगले पर व्याख्यान

इस वार स्वामीजी ने सर सैयद अहमदखां साहब के बंगले पर जो इन दिनों बनारस के सबजज थे दो तीन वार व्याख्यान दिये सैयदसाहब ने स्वामीजी की मुलाक़ात शेक्सपीयर साहब कमिश्नर से कराई महाराज बनारस ने भी अपने पिछले अपराधों की क्षमा के तौर पर स्वामीजी से भेट करनी चाही और अपनी बग्घी भेजी परन्तु स्वामीजी ने स्वीकार नहीं किया फिर दूसरे दिन अपनी बग्घी व आदमी भेज और बड़े आदर सत्कार के साथ स्वागत किया और बातचीत करते समय स्पष्ट कह दिया कि आप जिसका जी चाहे खण्डन करें मुझे कुछ संबन्ध नहीं होगा मैं आपसे अपने पिछले अपराधों की क्षमा का प्रार्थी हूं अन्त में एक मन मिठाई भेट की जिसको स्वामीजी ने बांट दिया।

छठी वार भी काशी के पण्डित स्वामीजी के सन्मुख नहीं आये

छठी वार स्वामीजी २७ नवम्बर १८७६ को काशी में पधारे और उत्तमगिरिजी के बग़ीचे में ठहरे और आते ही वैदिकधर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया और कई वार काशी के पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा विज्ञापन भी दिये और

प्रतिष्ठित मनुष्यों के द्वारा जुबानी भी कहलवाया परन्तु हठी और स्वार्थी पौराणिकों का क्या मुख था कि सन्मुख आते ।

सातवीं बार स्वामीजी काशी में २७ नवम्बर सन् १८७६ को पधारे और महाराजा विजयनगर के आनन्दबाग में ठहरे स्वामीजी के पधारने की खबर सारे नगर में अपने आप फैल गई और पौराणिक लोग घबरा उठे कि यह तो हमें चैन से नहीं रहने देगा और इसमें कुछ सन्देह भी नहीं कि स्वामीजी ने सारी काशी के पौराणिक पंडितों को बहुत क्षोभित (खिन्न) कर दिया था।

स्वामीजी का कथन था कि काशी पौराणिक धर्म का केन्द्र है, प्रत्येक अनर्थ जो धर्म की आड़ में किया जाता है उसके प्रचार की व्यवस्था काशी से दीजाती है। काशी के पंडितों को धर्म के बेचने में तनिक भी संकोच नहीं। आज एक मनुष्य कुछ धन व्यय करके यहां के पौराणिक पंडितों से किसी एक बात की व्यवस्था लेजाता है, कल दूसरा मनुष्य उसके सरासर विरुद्ध उन्हीं पंडितों से कुछ अधिक धन लगाकर लिखवा लेजाता है।

प्रत्येक मत के नेताओं को शास्त्रार्थ का चेलेंज देना

ये पौराणिक पंडित इस बात को मानते हुए भी कि हमने अपनी सारी आयु में वेदों को आंख से भी नहीं देखा, सर्वसाधारण लोगों के सामने यह कहते हैं कि हमारे सारे मन्तव्य और कर्त्तव्य वेदों के अनुसार हैं इन्हीं कारणों से स्वामीजी ने लगातार सातवार काशी को जड़ से हिला दिया। निदान इस वार भी एक विज्ञापन दिया, जिसके द्वारा कुल पौराणिकों, ईसाइयों और मुसलमानों तथा प्रत्येक मत के नेताओं और अनुयायियों को सूचना दी कि वे अपनी शंकायें निवारण कर सकते हैं और यदि चाहें तो नियमपूर्वक शास्त्रार्थ भी कर सकते हैं। साथ ही शास्त्रार्थ के नियम भी संक्षेप से लिख दिये। काशी के सब गली, कूचों, मन्दिरों, घाटों, सड़कों और चौराहों पर ये विज्ञापन चिपकाये गये और केवल इसी पर सन्तोष नहीं किया किन्तु ये विज्ञापन इस देश के बड़े बड़े नगरों और प्रसिद्ध पंडितों के पास भी भिजवाये गये इसलिये कि इस कठिन समय में यदि कोई काशी के पंडितों की सहायता कर सकता है तो करे, इस पर भी सन्नाटा ही रहा।

काशीवालों ने झूठी रिपोर्ट करदी

इसी अवसर में कर्नल अलकाट साहब और मैडम ब्लवस्टकी साहबा बम्बई से स्वामीजी से मिलने को बनारस पधारे और स्वामीजी के समीप ही एक बंगले में ठहरे। जब स्वामीजी ने

देखा कि सब लोग शास्त्रार्थ से घबराते हैं तो उन्होंने प्रत्येक मत और सम्प्रदाय का तत्व और साथ ही साथ सत्य मत के प्रकाश करने का सङ्कल्प किया। निदान उन का पहिला व्याख्यान २० दिसम्बर सन् १८७९ ई० को काशी के बंगाली टोले के पीरथोरी स्कूल में होना निश्चित हुआ और सर्वसाधारण को विज्ञापन दिया गया। साथ ही यह भी विज्ञापित किया गया था कि कर्नल अलकाट साहब भी इस अवसर पर कुछ कथन करेंगे।

कलेक्टर साहब ने बिना विचारे व्याख्यान बन्द करा दिया

यह व्यवस्था देखकर काशी के भिन्न २ मत और सम्प्रदाय के लोग बहुत घबराये, निदान उन्होंने धोखा देने और झूठ बोलने पर कमर बांध ली। सबने मिलकर बनारस के कलेक्टर साहब के यहां एक निवेदनपत्र प्रस्तुत किया कि स्वामीजी के व्याख्यानों से यहां उपद्रव और अशान्ति का भय है, निवारण किया जावे। बड़े शोक की बात है कि कलेक्टर साहब ने इस अवसर पर अपनी निर्बलता प्रकट की अर्थात् बिना परीक्षा करने और बृटिश गवर्नमेण्ट की शासनप्रणाली के विरुद्ध (जो धार्मिक स्वतन्त्रता के लिये उसने प्रत्येक को दी हुई है) स्वामीजी का व्याख्यान रोक दिया। ठीक उस समय जब कि स्वामीजी व्याख्यान देने के लिये निर्दिष्ट स्थान में पहुंचे, कलेक्टर साहब की चिट्ठी उन्हें दीगई, जिसमें व्याख्यान न देने की आज्ञा थी। स्वामीजी ने बड़ी प्रसन्नता के साथ कलेक्टर साहब की आज्ञा को शिरोधार्य किया, परन्तु यह बात छिप कब सकती थी, नियत समय पर स्वामीजी के स्थान पर कर्नल अलकाट साहब खड़े हुए और उन्होंने स्वामीजी के अभिप्राय को बड़ी गम्भीरता और स्पष्टता के साथ अंगरेज़ी में प्रकट किया। यद्यपि कलेक्टर साहब ने स्वामीजी के व्याख्यान को रोक दिया था, परन्तु एक यूरोपियन के व्याख्यान को रोकना सहज काम नहीं था। स्वामीजी के व्याख्यान बन्द होने से बड़ी हलचल फैली यहांतक कि यह बात पश्चिमोत्तर व अवध की गवर्नमेण्ट के कानों तक पहुंची, समाचारपत्रों में भी इसका आन्दोलन होने लगा परिणाम यह हुआ कि कलेक्टर साहब को अपनी पहिली आज्ञा का प्रतिवाद करना पड़ा और उन्होंने स्वामीजी को एक चिट्ठी लिखी जिसमें स्पष्ट शब्दों में आज्ञा प्रदान कीगई कि आपको पब्लिक में अपने धर्मसम्बन्धी विचार प्रकट करने की पूरी स्वतन्त्रता है।

स्वामीजी के २२ व्याख्यान और आर्यसमाज का स्थापन होना

तत्पश्चात् काशी के पौराणिक पण्डितों की ओर से स्वामीजी के विरुद्ध अश्लील और असभ्यता से भरे हुये विज्ञापन निकलने लगे। यह रंग ढंग देखकर कुछ काल पश्चात् स्वामीजी ने एक और विज्ञापन दिया, जिसका अभिप्राय यह था कि काशी में इस समय दो संस्कृत के पंडित विद्यमान हैं एक स्वामी विशुद्धानन्द दूसरे बालशास्त्री (और उस समय यही दोनों सम्पूर्ण काशी के पण्डितों में शिरोमणि माने जाते थे), यदि इनमें से कोई महाशय शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हों तो मैं सर्वथा उद्यत हूं, परन्तु उक्त दोनों महाशय पहिले ही से ऐसे भयभीत थे कि स्वामीजी का नाम सुनकर कांपने लगते थे और प्राइवेट बातचीत में किसी किसी से कह दिया करते थे कि हमारा उनका शास्त्रार्थ क्या हो सकता है? यदि हम गृहस्थ या गृहस्थों से विशेष सम्बन्ध रखने वाले न हों तो हम भी वही कहेंगे जो वे कहते हैं। निदान इस वार स्वामीजी ने काशी में २२ व्याख्यान दिये जिनका परिणाम यह हुआ कि काशी में आर्य्यसमाज की नींव रक्खी गई और थोड़े दिन पश्चात् सभासदों के उद्योग से उत्तम स्थान पर समाज भी होने लगा।

स्वामीजी कहते तो सच हैं

इन्हीं दिनों काशी के एक पौराणिक पंडित को कहीं से एक गांव दान मिला, अकस्मात् एक आर्य्यसमाज के सभासद् से उनका मेल जोल होगया, एक दिन बातचीत में पंडितजी कहने लगे कि स्वामीजी कहते तो सच हैं, परन्तु (पेट दिखाकर) हम क्या करें, पेट नहीं कहने देता। देखो अभी एक गांव मिला है, चैन करते हैं, यदि स्वामीजी जैसे हो जावें तो क्योंकर निर्वाह हो? कोई एक फूटी कौड़ी भी हाथ से न दे।

राजा शिवप्रसाद साहब सी. एस. आई. की टेढ़ी चाल

दौर्भाग्य से काशी के स्वर्गवासी राजा शिवप्रसाद साहब अपने समय में सदा ऐसे कामों में अग्रणी रहे जो सचाई, देशहित और परमार्थ से शून्य होते थे स्वार्थ और खुशामद के कामों में बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे। राजा साहब जैनी थे इसलिये जैनियों का विशेष पक्ष किया करते थे। आप की सम्मति भी बहुत शीघ्र बदल जाया करती थी। एकबार उन्होंने अविद्यान्धकार दूर करने के लिये एक इतिहास लिखा जिसमें जैनियों को बौद्ध सम्प्रदाय की एक शाखा बतलाई, पर जब इससे जैनी अप्रसन्न होने लगे तो झट आपने उसका प्रतिवाद (खंडन) करके अपनी

ऐतिहासिक विज्ञता का प्रमाण दे दिया। जब तक बनारस में स्वामीजी विराजमान रहे तब तक एक नाममात्र भी राजा साहब को साहस न हुआ कि वे कुछ स्वामीजी से कहें सुनें, परन्तु वे अपनी कुटिल चाल चलने के लिये समय की प्रतीक्षा करते रहे। निदान जिस दिन स्वामीजी बनारस से प्रस्थान करने को थे और रेल पर अपना असबाब भेज चुके थे उस दिन राजा साहब ने एक चिट्ठी स्वामीजी को लिखी और उस का उत्तर मांगा। उनका अभिप्राय यह था कि या तो ऐसी दशा में स्वामीजी चिट्ठी नहीं लेंगे या उत्तर दिये विना चले जावेंगे या यदि चिट्ठी देर में मिलेगी तो यह प्रसिद्ध करेंगे कि उन्हें इस चिट्ठी के आशय का किसी प्रकार पता लग गया था इसलिये उन्होंने जाने में शीघ्रता की। अस्तु, परन्तु स्वामीजी इन बातों को खूब समझते थे, उन्होंने अवकाश न होने पर भी चिट्ठी का उत्तर लिख भेजा और कहला भेजा कि यदि कुछ और पूछना है तो यहां पधारिये पर कौन आता था और किसे पूछना था? स्वामीजी नियत समय पर प्रस्थित हो गये। पीछे नामवरी के लिये राजासाहब ने यह प्रसिद्ध किया कि हमने कई वार स्वामीजी को शास्त्रार्थ के लिये लिखा, परन्तु उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और मुंह छिपाकर काशी से चले गये। पर सच को कोई छिपा नहीं सकता, इसका भेद सब को मालूम था इसलिये राजासाहब की बातों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया।

प्रयाग का कुम्भ और वैदिकधर्म का प्रचार

प्रयाग में माघ (मकर) की संक्रांति पर बड़ा भारी कुम्भ का मेला हुआ करता है इसमें बड़ी २ दूर से लोग आते हैं। इस मेले में वैदिकधर्म का प्रचार करने के लिये स्वामीजी जनवरी सन् १८७० ई० में प्रयाग पहुंचे और गङ्गा के किनारे निवास किया। उनके आते ही पंडितों और साधु संन्यासियों की इनके आसपास भीड़भाड़ रहने लगी रात दिन प्रश्नोत्तर और शङ्कासमाधान होते थे। बड़े २ प्रसिद्ध पंडित दो चार बातों में परास्त हो जाते थे और साश्चर्य्य होकर लौट जाते थे, सहस्रों मनुष्यों को स्वामीजी के उपदेशों से वैदिकधर्म्म के सिद्धान्त विदित हुये।

आपके मुंह को जाड़ा क्यों नहीं लगता

जिन दिनों स्वामीजी प्रयाग में निवास करते थे उन दिनों शीत अधिक पड़ता था, स्वामीजी रात दिन सिर्फ एक कोपीन पहने रहते थे और कोई कपड़ा न पहनते थे, न ओढ़ते थे यहांतक कि रात को भी जब कि बर्फ पड़ती थी गङ्गा के किनारे खुले मैदान में रेत पर या किसी चबूतरे पर ऐसे आराम से सो जाया करते थे जैसे कोई किसी गरम

कमरे में लिहाफ़ तोशक के अन्दर सोता है यह दशा देख कर एक दिन मिरज़ापुर निवासी पण्डित रामाधीन तिवाड़ी ने स्वामीजी से कहा कि इन दिनों बड़ी सर्दी पड़ती है परन्तु आपको जाड़ा नहीं लगता, इसका क्या कारण है ? स्वामीजी ने यह सुनकर तिवाड़ीजी से पूछा कि आप के मुंह को जाड़ा क्यों नहीं लगता, तिवाड़ीजी ने कहा कि हमारा मुंह तो सदा खुला रहता है स्वामीजी ने कहा कि यही दशा हमारे शरीर की है, यह बारह महीने बराबर खुला रहता है। वस्तुतः स्वामीजी में सर्दी गर्मी आदि द्वन्दों के सहन करने की शक्ति इस कारण से थी कि वे पूर्ण ब्रह्मचारी थे अर्थात् ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पालन यथार्थरूप से करते थे।

पं० शिवसहाजी कृत वाल्मीकि रामायण की टीका

पण्डित शिवसहायजी जो काशी के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में और पण्डितों के साथ स्वामीजी के सन्मुख आये थे, उनकी प्रयाग में ही स्वामीजी ने खबर ली थी। सारांश यह है कि किसी ने स्वामीजी से आकर, यह कहा कि इन दिनों पं० शिवसहायजी ने वाल्मीकि रामायण पर टीका लिखी है। स्वामीजी ने कहा कि वह कहीं से लाकर हमें अवश्य दिखाओ, जब वह लाकर स्वामीजी को दिखाई गई तो उन्होंने उसमें सैकड़ों अशुद्धियां निकाल दीं और कहा कि जिन्होंने यह लिखी है यदि वे यहां पधारें तो हम उनसे कुछ वार्तालाप भी करना चाहते हैं। निदान पं० शिवसहायजी स्वामीजी के पास आये और जब उनको उनकी टीका की अशुद्धियां दिखलाईं गईं तो वे विवाद करने लगे। इस पर स्वामीजी ने प्रमाण और हेतु देने प्रारम्भ किये, परन्तु पण्डितजी को वहां ठहरने की शक्ति कब थी ? तुरन्त उठकर चल दिये।

मिरज़ापुर में वैदिक-धर्म का प्रचार

मिरज़ापुर पहुंचकर स्वामीजी ने गंगा के किनारे निवास किया और वैदिकधर्म का प्रचार करने लगे। मिरज़ापुर और आसपास के प्रायः संस्कृतज्ञ पण्डित स्वामीजी के पास आया करते थे और अनेक प्रकार के प्रश्न उनसे किया करते थे। स्वामीजी के सदुपदेश से मिरज़ापुर के कई पौराणिक पण्डितों ने मूर्त्तिपूजन को त्याग दिया और सैकड़ों ब्राह्मण सन्ध्या और अग्निहोत्र करने लगे। यह लोग स्वामीजी के यहां आने से पहिले सन्ध्या और गायत्री का अर्थ तो क्या नाम भी नहीं जानते थे। मिरज़ापुर के बाबा बालकृष्ण वैरागी ने महाभारत और उपनिषदों पर टीका लिखी थी, एक महाशय उनका कुछ भाग स्वामीजी को दिखाने के लिये लाये, स्वामीजी ने उनमें बहुतसी व्याकरण की अशुद्धियां निकाल दीं। इस पर बाबा बालकृष्णजी स्वामीजी से यहांतक भयभीत हुये

कि जबतक वे यहां रहे, इधर उधर आना जाना भी बन्द कर दिया इसलिये कि कोई स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को न कहे।

उद्दण्ड आदमी समझाने से नहीं मानता

एक दिन मिरज़ापुर के कुछ गुण्डे झगड़ा करने के लिये स्वामीजी के पास गये और उनमें से एक मनुष्य ने (जिसका नाम गुसाईं छोटूगिर था) स्वामीजी को भड़काने के लिये कुछ अपशब्द भी कहे। पहिले तो स्वामीजी अपनी सरलता से उन्हें समझाते रहे, परन्तु जब उनकी उद्दण्डता समता की सीमा से बहुत ही बढ़गई तब स्वामीजी ने उनको डाटा। उनकी एकही डाट से वे सब के सब बैंत की तरह कांपने लगे और उनका नायक जगन्नाथ मालवी हाथ जोड़ कर सामने खड़ा होगया और क्षमाप्रार्थी हुआ। फिर यही लोग स्वामीजी से बड़े विनयपूर्वक अपने सन्देह निवारण करते रहे। यहां के पौराणिक पण्डितों से कई वार स्वामीजी का वार्त्तालाप हुआ, परन्तु कोई उनके सामने ठहर न सका।

डुमरांव, आरा और पटने में स्वामीजी का पधारना

मार्च सन् १८७१ ई० से लेकर एक वर्ष तक गंगा के किनारे स्वामीजी वैदिकधर्म का उपदेश करतेरहे और यत्र तत्र अपनी पाठशालाओं को देखते रहे। अप्रैल सन् १८७२ ई० में डुमरांव पधारे और यहां नागाही उदासी के पास ठहरे, नागाही सच्चे मन से स्वामीजी पर श्रद्धा रखते थे। डुमरांव से चलकर आरा पहुंचे और ला० हरवंशरायजी वकील के यहां ठहरे, यहां के पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ भी हुआ था, सबके सब उनकी वक्तृता को सुनकर चकित होगये। आरे से प्रस्थित होकर पटने पहुंचे यहां मु० मनोहरलालजी व डिप्टी सावनमलजी व राय मोहनलालजी ने इनके ठहरने का बहुत अच्छा प्रबन्ध कर दिया। आते ही स्वामीजी ने वैदिकधर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया, पटने और आसपास के पौराणिक पण्डित प्रतिदिन इनसे अनेक विषयों पर बातचीत किया करते थे।

गरुड़पुराण की गड़बड़

एक दिन यहां के प्रसिद्ध पण्डित रामजीवन भट्ट पचास साठ नामी पौराणिक पण्डितों को साथ लेकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने को आये, पर दो चार बातों में ही उखड़ गये और शास्त्रार्थ को अधूरा छोड़कर ही उठगये। उस दिन स्वामीजी ने गरुड़पुराण की खूब ही गड़बड़ दिखाई और दुर्गापाठ की भी, जिसे वे प्रायः मुर्गापाठ कहा करते थे, खूब पोल खोली।

शालिग्राम की मूर्त्ति गंगा में फेंकदी

पटना कालिज के पण्डित रामलाल साकलद्वीपी ने स्वामीजी के उपदेश सुनकर अपनी शालिग्राम आदि की मूर्तियां (जिनकी वह पूजा किया करते थे) गंगा में फेंकदीं। एक दिन पटने में एक महाशय ने स्वामीजी से पूछा कि हम आप की बात कबतक मानें? कहा कि जब तक हमारा मस्तिष्क ठीक रहे और उस में कोई विकार न हो।

संसार को त्याग देना ठीक है वा नहीं

बांकीपुर पटने के रईस बा० गुरुप्रसाद सेन ने स्वामीजी से यह पूछा कि संसार को त्याग देना ठीक है वा नहीं? स्वामीजी ने उन से पूछा कि संसार आश्रम से आपका क्या अभिप्राय है? उन्होंने कहा कि स्त्री, पुत्र, गृह, कुटुम्ब और सम्बन्धी आदि में रहना, यह सुनकर स्वामीजी ने फिर पूछा कि आदि में आप किन वस्तुओं को गिनते हैं प्रश्नकर्त्ता ने कहा कि धन का संग्रह करना। पुनः स्वामीजी ने कहा कि आपने अपने प्रश्न में संस्कृत के "गृह" शब्द का प्रयोग किया था और पूछा था कि क्या इसे भी छोड़ देना चाहिये, अब कृपा करके "गृह" शब्द की भी व्याख्या कर दीजिये। इस पर प्रश्नकर्त्ता महाशय मौन होगये और कहने लगे कि मेरे प्रश्न का उत्तर स्वयमेव मिलगया, कारण यह कि "गृह" शब्द में खाना, पीना, श्वास लेना और विद्या एवं बुद्धि सीखना ये सब बात आजाती हैं।

स्वामीजी का बिना रुकावट श्लोक बनाना

पटने में एक दिन एक तिरहुत के रहने वाले पण्डितजी स्वामीजी के पास आये और संस्कृत में वाद करने लगे। पण्डितजी ने अपने कथन की पुष्टि में भागवत का प्रमाण दिया, स्वामीजी ने भागवत का खण्डन किया और कहा कि यह एक अश्लील पुस्तक है जो कभी प्रामाणिक नहीं हो सकती इस पर पण्डितजी कहने लगे ऐसा भी हमें कोई नहीं देख पड़ता कि जो भागवत जैसे १८ हज़ार श्लोक बनावे दोष निकालना और खण्डन् करना सहज है। यह सुनकर स्वामीजी ने पंडितजी से कहा कि आप भूल पर हैं, केवल श्लोक घड़ लेना कोई वीरता का काम नहीं है। आप विश्वास करें भागवत वाले ने तो सिर्फ १८ हज़ार श्लोक घड़े हैं, हम आपके सन्मुख ३८ हज़ार घड़ सकते हैं, यदि निश्चय न हो तो कागज़ कलम सम्भालिये और लिखते जाइये, विषय भी बहुत सरल होगा अर्थात् जूते और खड़ाऊं के प्रश्नोत्तर। पंडितजी भी स्वामीजी की परीक्षा करने के लिये लिखने बैठ गये, स्वामीजी बिना रुकावट के श्लोक लिखवाने लगे। अभी कुछ थोड़े से ही श्लोक लिखे गये थे कि पंडितजी स्वामीजी का धाराप्रवाह

देखकर चकित होगये और कागज़ रखकर खड़े होगये और बहुत नम्रता के साथ झुककर प्रणाम करके चले गये।

शास्त्रार्थ से पौराणिकों का पलायन

स्वामीजी ने पटने में मूर्त्तिपूजा, मद्य मांस भक्षण, पुराणों और मृतकों के श्राद्ध का बड़े समारोह से खंडन किया, जिसका फल यह हुआ कि लोग पटने और आसपास के प्रसिद्ध पौराणिक पंडितों को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उकसाने लगे परन्तु इतना साहस और बल किस में था कि जो सिंह के सामने आता निदान बहुतसे पौराणिक पंडित इस आपत्ति से बचने के लिये इधर उधर टल गये और उनके पीठ दिखाने से सर्वसाधारण पर स्वामीजी का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। पटने में कुछ पौराणिक पंडित एक दिन स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये आये थे, परन्तु जिन पंडित महाशय को उन्होंने अपनी ओर से शास्त्रार्थ करने के लिये चुना उनसे "श्रीगणेशाय नमः" ही ऐसी अशुद्धि हुई कि लाचार चुनने वालों को ही उन्हें चुप कराना पड़ा, इन पंडितजी का नाम पं० रामावतार तिवाड़ी था और यह उस प्रान्त में संस्कृत के विद्वानों में गिने जाते थे।

मुंगेर में वैदिकधर्म्म का उपदेश

अक्टूबर सन् १८७२ ईस्वी में स्वामीजी मुंगेर पहुंचे और लगातार वैदिकधर्म का उपदेश आरम्भ कर दिया, इस नगर और आसपास के निवासी जन बड़े उत्साह से उनके मधुर उपदेश सुनने को आया करते थे, एक दिन स्वामीजी ने बड़े धड़ल्ले के साथ मूर्त्तिपूजन का खंडन आरम्भ किया उस समय उस प्रान्त के अनुमान चालीस प्रसिद्ध पंडितों के उपस्थित थे किसी ने होठ तक नहीं हिलाये। यद्यपि उनको शंका करने का अवसर भी दिया गया तथापि वह कुछ भी नहीं कह सके, किन्तु एक प्रकार से अनुमोदन करते रहे, एक दिन एक मौनी साधु स्वामीजी के पास आकर बैठगया, मुख से यह साधु कुछ नहीं कहता था, इस कारण मौनी प्रसिद्ध था, स्वामीजी ने इसकी ओर देखकर कहा कि यदि तू महामूर्ख है तो तेरा एक प्रकार मौन रहना ही योग्य है और यदि तू कुछ जानता है और समझदार है तो तुझे चाहिये कि अपनी कहे दूसरों की सुने, यह उत्तम उपदेश सुनकर वह मौनी साधु स्वामीजी से बातचीत करने लगा स्वामीजी ने उसके सन्मुख मूर्त्तिपूजन और पुराणों का खंडन किया उसने शुद्धमन से स्वीकार किया कि निस्सन्देह मूर्त्तिपूजन और पुराणों की अनुयायिता दुर्गति का कारण है।

भागलपुर में वैदिकधर्म का प्रचार

मुंगेर से प्रस्थान कर २० अक्टूबर सन् १८७२ ईस्वी को स्वामीजी भागलपुर पहुंचे और वैदिकधर्म का प्रचार प्रारम्भ कर दिया। दो तीन दिन के भीतर सब प्रान्त में उनके आने की खबर फैल गई। और लोग उमड़ २ कर स्वामीजी के विश्रामस्थान पर आने लगे और उनके उपदेशों को बड़े ध्यान से सुनने लगे कई बड़े प्रसिद्ध और मानी पंडित भी वाद-विवाद करने के अभिप्राय से स्वामीजी के पास गये थे परन्तु उनकी बातें सुनकर और उनकी योग्यता देखकर भौंचक रहगये किसी में इतना साहस न हुआ कि किसी प्रकार का सन्देह या तर्क प्रस्तुत करे, प्रतिदिन स्वामीजी के व्याख्यान के समय एक मेला सा लग जाता था और बाहर मेवा मिष्टान्न आदि बेचनेवाले अपनी अपनी दुकानें लगा देते थे एक दिन पण्डित भयरामजी ने बर्द्धवान के राजा साहब से उन की कोठी पर स्वामीजी की प्रशंसा की उस पर राजा साहब ने चार प्रसिद्ध नैयायिक पंडित स्वामीजी के पास भेजे और उनसे कहा कि लौटकर हमसे सविस्तर वृत्तान्त कथन कीजिये इन पंडितों ने दोपहर के १ बजे से लेकर सन्ध्या के ५ बजे तक स्वामीजी से शास्त्रार्थ किया और अन्त में निरुत्तर होकर यह कहने लगे कि हम राजा साहब बर्द्धवान को अवश्य आप के दर्शनार्थ लावेंगे पण्डितों ने राजा साहिब के सन्मुख सत्य २ सब वृत्तान्त वर्णन कर दिया और राजा साहिब ने वचन दिया कि हम अवश्य चलेंगे, सुसंयोग से जिस समय राजा साहिब स्वामीजी के पास आये उस समय उनके पास देशी ईसाइयों, पादरियों और मौलवियों का एक झुंड उपस्थित था, राजा साहिब बर्द्धवान के विषय में उस समय यह प्रसिद्ध था कि वह ईसाई मत की ओर किसी कारण से कुछ २ प्रवृत्ति रखते हैं राजा साहिब स्वामीजी की ईसाइयों और मुसलमानों के साथ जो बातचीत हो रही थी, उसको ध्यानपूर्वक सुनते रहे और अन्त में उन्हीं चारों नैयायिक पंडितों से, जिन्हें उन्होंने स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ करने को भेजा था, यह कहकर चले गये कि स्वामीजी को हमारी कोठी पर अवश्य ले आओ, परन्तु स्वामीजी ने यह अनुरोध (उज़र) किया कि हम एकान्तसेवी हैं ऐसे स्थान पर, जहां हमारे ध्यान, उपासना आदि में विक्षेप हो, नहीं जासकते और जो स्थान उनके लिये नियत किया गया था ठीक भी न था पुनर्वार जब राजा साहिब बर्द्धवान स्वामीजी के पास आये उस समय कुछ ब्रह्मो स्वामीजी से बातचीत कर रहे थे, स्वामीजी की बातों से जब वे बिलकुल निरुत्तर होगये तो कहने लगे कि कलकत्ते में हमारे धर्माचार्य रहते हैं यदि वह आप से सहमत होजावें तो हम भी उद्यत हैं।

एक ब्राह्मण ईसाई को पश्चात्ताप

इस अवसर पर एक और बात भी निवेदनीय है कि जिस समय स्वामीजी का ईसाई पादरियों से वार्त्तालाप हो रहा था उस समय एक ब्राह्मण, जो ईसाई होगया था, कातर होकर बड़े दुःख से सब उपस्थितों के सामने रुदन करने लगा जब उससे इस महादुःख भरे विलाप का कारण पूछा गया तो वह निश्शङ्क होकर कहने लगा—शोक है कि मुझे ऐसे (स्वामीजी की ओर संकेत करके) पंडित पहिले न मिले, अन्यथा मैं ईसाई न होता जब मैं स्कूल में पादरियों के आक्षेप सुनता था तो मेरे हृदय में अधीरता उत्पन्न होजाया करती थी, घर आकर पंडितों से उनके उत्तर पूछा करता था तो वे या तो टाल देते थे अथवा ऐसे उत्तर देते थे, जो मुझे स्वयम् ही अयोग्य प्रतीत होते थे अन्त को मैं ईसाई होगया, यदि पहिले स्वामीजी का उपदेश सुनने का मुझे अवसर मिल जाता तो मैं कदापि अपने धर्म का त्याग न करता। भागलपुर के एक रईस ने स्वामीजी से योगविद्या सीखी और तत्पश्चात् वह विरक्त होगया।

आर्य्यावर्त्त की राजधानी कलकत्ता में स्वामीजी का सुशोभित होना

दिसम्बर सन् १८७२ ई० में स्वामीजी कलकत्ता (भारतवर्ष की राजधानी) में सुशोभित हुये। वास्तव में इनका यहां पर स्वागत और आतिथ्य करने में मिस्टर चन्द्रशेखरसेन बैरिस्टर एटला कलकत्ता ने अधिक परिश्रम किया, प्रथम यह श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर के पास गये और उनसे अपना अभिप्राय प्रकट किया परन्तु उन्होंने किसी कारण से अधिक ध्यान न दिया तत्पश्चात् वो बाबू (वर्त्तमान राजा) सुरेन्द्रमोहन टगोर के पास गये और उन्होंने भी कुछ उत्साह प्रकट न किया परन्तु जब मिस्टर चन्द्रशेखरसेन अपने साहस पर स्वामीजी का हवड़ा के रेलवे स्टेशन पर स्वागत करने गये तो बाबू सुरेन्द्रमोहनजी को पता लग गया जब उन्होंने स्वामीजी को देखा तो उनके हृदय में स्वतः अनुराग उत्पन्न होगया और वे बड़े आदर और सन्मानपूर्वक स्वामीजी से मिले। उसी समय अपने साथ उनको अपनी प्रमोदकानन नाम वाली वाटिका में लेगये और उन्हें बड़े आराम के साथ बंगले में ठहराया और सब आवश्यकीय प्रबन्ध बड़ी उत्तमता के साथ करदिया।

सांख्य का रचयिता ईश्वर और वेद को मानता था

कलकत्ता पहुंचते ही स्वामीजी के आगमन के समाचार बड़े बड़े समाचारपत्रों में मुद्रित होगये और प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों का समुदाय स्वामीजी के पास पहुंचने लगा, उनका अधिक समय बंगाली पौराणिक पण्डितों के साथ वादविवाद करने

में व्यतीत होता था, पण्डित हेमचन्द्रजी चक्रवर्ती आदि ब्रह्मोसमाज के उपदेशक भी स्वामीजी की ख्याति सुनकर उनके पास गये और वर्णाश्रम और ईश्वर विषय में कुछ प्रश्न किये थे स्वामीजी के उत्तरों से वे पूर्णतया संतुष्ट हो गये थे और स्वामीजी पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था अतएव स्वामीजी से उन्होंने अष्टांग योग सीखा था और उन्होंने उन्हें उसकी क्रिया भी बतलादी थी तथा गायत्री मन्त्र के अर्थसहित जप करने की आज्ञा दी थी एक दिन इन्हीं बाबू साहिब ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि लोग सांख्यशास्त्र के रचयिता को नास्तिक कहते हैं, आपकी क्या सम्मति है? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि जो मनुष्य ऐसा कहते हैं वे मूर्ख हैं सांख्य शास्त्र का रचने वाला ईश्वर और वेदों को शुद्ध मन से मानता था यदि आप इस शास्त्र को अवलोकन करना चाहते हैं तो ऋषिकृत भागुरीभाष्य देखिये फिर आपके सर्व संशय स्वत: निवृत्त हो जावेंगे, स्वार्थी और बुद्धिहीन मनुष्यों की इस शास्त्र के विषय में व्याख्यायें पढ़ना निरर्थक है कारण यह है कि वह सच्चा मार्ग दर्शाने के विपरीत भ्रम में डाल देती हैं। इन्हीं दिनों में ब्रह्मोसमाज कलकत्ता में किन्हीं धर्म विषयों पर वादविवाद हो रहा था बा० केशवचन्द्रसेन, जो अङ्गरेज़ी भाषा के एक बड़े योग्य वक्ता हुए हैं, इस विषय में आग्रह करते थे कि जो लोग ब्राह्मोसमाज की चौकी पर बैठ कर उपासना प्रार्थना करावें उन्हें यज्ञोपवीत कदापि नहीं पहरना चाहिये इसका कारण यह था कि यह महाशय संस्कृत नहीं जानते थे और वेदादि सत्यशास्त्रों के सिद्धान्तों से नितान्त अपरिचित थे, हां पाश्चात्य विद्याओं में अच्छे प्रवीण थे और ईसाई मत की भी बहुतसी पुस्तकें देखी हुई थीं तथा मेल मिलाप उनका विशेष कर अङ्गरेज़ी विद्या के जानने वाले महाशयों से रहा करता था, निदान उनके हृदयपट पर बहुत कुछ रंग उन्हीं बातों का चढ़ा हुआ था, जिन्हें यह बाल्यावस्था से सीखते रहे थे परन्तु आदि ब्रह्मोसमाज के आचार्य श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर केशव बाबू के इस विषय में सर्वथा विरुद्ध थे और वो ऐसे मनुष्य के समाज की वेदी पर बैठने के कदापि सहमत नहीं थे जिसके गले में यज्ञोपवीत न हो इसका कारण यह था कि आदि ब्रह्मोसमाज में विशेषत: वे लोग थे जिन्हें संस्कृतभाषा और आर्षग्रन्थों से बहुत कुछ प्रेम था और वे किसी प्रकार यह नहीं चाहते थे कि ब्रह्मोसमाज ईसाई मत की एक शाखा बन जावे या सामान्य रीति पर ईसाइयों के यूनिटेरियन चर्च की श्रेणी में अपने आप को गिनने लग जावे।

यज्ञोपवीत बारह में ब्राह्मसमाज

जिन दिनों ब्रह्मोसमाज में जनेऊ रखने न रखने का विवाद चल रहा था उन्हीं दिनों पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती उपदेशक आदि ब्रह्मोसमाज ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि हमें यज्ञोप-

वीत रखना उचित है या नहीं ? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि आप ब्राह्मण हैं आपको यज्ञोपवीत रखना अत्यावश्यक है परन्तु जो कोई मूर्ख ब्राह्मण हो उसका यज्ञोपवीत तोड़ डालना चाहिये, जो लोग पण्डित, ज्ञानवान्, वेदवक्ता और धार्मिक हैं उनको अवश्य यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये अतएव पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने कभी अपना यज्ञोपवीत नहीं उतारा इसी प्रकार और कई ब्रह्मो स्वामीजी से जनेऊ के विषय में पूछने आये, सब को स्वामीजी ने ऐसा ही उत्तर दिया अन्त में बहुतसे ब्रह्मो एक वैदिक सिद्धान्त से पतित होते २ बच गये। पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती उपदेशक आदि ब्रह्मोसमाज से एक दिन स्वामीजी ने पूछा कि आपने सब उपनिषद् भी पढ़ी हैं उन्होंने उत्तर दिया कि नहीं थोड़ी २ पढ़ी हैं, इस पर स्वामीजी ने उन्हें स्वयं पढ़ाना आरम्भ कर दिया पंडितजी को स्वामीजी से इतना प्रेम होगया था कि वो पुनः उनसे कानपुर में जाकर मिले और फ़र्रुखाबाद तक उनके साथ रहकर उपनिषदें समाप्त कीं कलकत्ते में पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न व पण्डित तारानाथ तर्कवाचस्पति और कई अन्य प्रसिद्ध शास्त्री स्वामीजी से शास्त्रार्थ करते रहते थे। बाबू केशवचन्द्रसेन, तथा राजनारायण वसु तथा द्विजेन्द्रोनाथ टगोर विशेषतः स्वामीजी के पक्ष की पुष्टि किया करते थे। राजा सुरेन्द्रमोहन टगोर और श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर भी प्रायः स्वामीजी के समीप बैठे हुए प्रश्नोत्तरों को ध्यानपूर्वक श्रवण किया करते थे। तथा बाबू क्षेत्रनाथ वन्धोपाध्याय और बाबू कृष्णचन्द्र मित्र स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। कलकत्ते में स्वामीजी प्रातःकाल से लेकर दो बजे पर्यन्त एकान्त में योगाभ्यास और शास्त्रावलोकन किया करते थे। चार बजे पश्चात् सभा आरम्भ हो जाती थी सहस्रों मनुष्य उनका उपदेश सुनने आया करते थे और अपनी २ योग्यता के अनुसार लाभ उठाते थे एक दिन बाबू केशवचन्द्रसेन और बाबू राजनारायण वसु से स्वामीजी का पुनर्जन्म और हवन के विषय में शास्त्रार्थ हुआ था, स्वामीजी ने प्रबल-युक्ति और प्रमाणों से दोनों महाशयों को निरुत्तर कर दिया था, केशव बाबू वास्तव में स्वामीजी का बड़ा आदर और सत्कार किया करते थे और उन्होंने उनका अपने गृह पर उपदेश भी कराया था, जिसमें प्रायः प्रतिष्ठित और माननीय पुरुष सम्मिलित हुए थे, स्त्रियां भी बड़े ध्यान से उनके व्याख्यान को सुनती थीं, कलकत्ता ब्रह्मोसमाज के वार्षिकोत्सव पर श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर ने स्वामीजी को निमन्त्रित किया और अपने ज्येष्ठ पुत्र बाबू द्विजेन्द्रनाथ टगोर को उन्हें अपने साथ लिवालाने को भेजा। दो दिन तक बराबर स्वामीजी इस अधिवेशन में सम्मिलित होते रहे और अनेक धार्मिक विषयों पर उनका लोगों से वार्तालाप होता रहा, श्रीमद्देवेन्द्रनाथ टगोर

के गृह में एक मण्डप था जिसमें एक वेदी बनी हुई थी, उसके चारों ओर संस्कृत के चुने २ श्लोक लिखे हुए थे इसको देखकर स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए श्रीमद्देवेन्द्रनाथजी ने स्वामीजी के ठहरने के लिये अपने महल का तीसरा खण्ड प्रस्तुत किया, परन्तु स्वामीजी ने यह उज़र कर दिया कि गृहस्थों के गृह में निवास करना मैं पसन्द नहीं करता, मेरे लिये बाहर का स्थान अत्यन्त उचित है। एक बार स्वामीजी ने श्रीमद्देवेन्द्रनाथजी का रचा हुआ ब्राह्मधर्मग्रन्थ ध्यानपूर्वक सुना और अन्त में यह कहा कि यह एक प्रकार उपनिषद् की टीका है, ब्राह्मधर्म ग्रन्थ इसका नाम व्यर्थ रखदिया यह सर्वथा सत्य है कि श्रीमद्देवेन्द्रनाथजी से स्वामीजी को स्नेह होगया था और उनकी सम्मति थी कि श्रीमत्‌जी महर्षिमण्डल पर श्रद्धा रखते हैं।

पं० महेशचन्द्र की चाल का खण्डन

२३ फरवरी सन् १८७२ ई० को कलकत्ते में स्वामीजी ने बाबू गुरुचरणदत्त के गृह पर ईश्वर और धर्म के विषय में संस्कृत में व्याख्यान दिया जिसमें भीड़भाड़ अधिक थी और कलकत्ते के कतिपय प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित पुरुष भी विद्यमान थे, व्याख्यान के अन्त में पण्डित महेशचन्द्रजी न्यायरत्न ने खड़े होकर बंगाली भाषा में लोगों को स्वामीजी के व्याख्यान का अनाप शनाप अर्थ समझा दिया यह देखकर संस्कृत कालेज कलकत्ता के विद्यार्थियों को बहुत बुरा मालूम हुआ और उन्होंने अन्त में आज्ञा लेकर पण्डित महेशचन्द्रजी के अन्यथा वर्णन का भलीप्रकार खण्डन किया और सबको विदित करादिया कि पण्डितजी ने ऐसी बातें अपनी ओर से कहदी हैं कि जो स्वामीजी ने नहीं कहीं और किन्हीं २ बातों पर अनावश्यक टिप्पणी चढ़ादी है, इत्यादि २, वास्तव में पंडित महेशचन्द्रजी के विरोध का यहीं से अङ्कुर उत्पन्न हुआ था, इसी अवसर पर बाबू केशवचन्द्रसेन ने स्वामीजी से कहा कि आप संस्कृत में व्याख्यान देते हैं अनुवाद करने वाले उसका अन्यथा अनुवाद करके लोगों को धोखा देते हैं आप कुछ कहते हैं और लोग अनुवादकर्त्ताओं की कृपा से कुछ समझ लेते हैं इससे उचित यह है कि आप भाषा में उपदेश किया कीजिये। स्वामीजी ने इस सम्मति को सत्य समझकर स्वीकार करलिया, एक दिन प्रमोदकानन वाटिका में स्वामीजी तालाब के तट पर बैठे हुए कुछ जनों से वार्त्तालाप कर रहे थे कि इतने में किसी ने उनसे आकर कहा कि आपको राजा सुरेन्द्रमोहनजी याद करते हैं स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं इस समय इन सज्जनों से वार्त्तालाप कर रहा हूं यह उचित नहीं समझता कि इस समय इनको छोड़कर उठजाऊं। यह सुनकर राजासाहिब स्वयं स्वामीजी के पास आगये और धार्मिक विषयों

पर बातचीत होने लगी। २ मार्च सन् १८७३ ई० को स्वामीजी ने बड़ानगर बोरिन्यू कम्पनी के बड़े कमरे में ईश्वर, जीव, भक्ति, हवन और पञ्चमहायज्ञ की आवश्यकता पर व्याख्यान दिया, ६ मार्च सन् १८७३ ई० को बुरहानपुर के नाइटस्कूल में वैदिक सिद्धान्तों पर प्रभावशालिनी वक्तृता की इसमें उन्होंने बालविवाह और जातिभेद की हानियें विस्तारपूर्वक दिखलाईं। इनके उपदेश सुनने को कलकत्ते के प्रतिष्ठित और सुशिक्षित पुरुष बड़े प्रेम से आया करते थे, इन्हीं दिनों में बंगाल के लाट साहब का यह विचार था कि संस्कृत कालिज कलकत्ता तोड़ दिया जावे जब स्वामीजी को यह विदित हुआ तो उन्होंने प्रकाश्य रीति पर यह कहा कि वास्तव में ऐसे संस्कृत कालिज से कुछ लाभ नहीं, जिसमें वेदों की शिक्षा नहीं दी जाती, उन्हीं दिनों में बा० प्रसन्नकुमार टगोर ने एक संस्कृत कालिज स्थापन किया, वहां जाकर स्वामीजी ने यह सम्मति दी कि वेदों की शिक्षा इसमें अवश्य होनी चाहिये, इसी विषय में उन्होंने मिस्टर नव गोपाल मित्र सम्पादक नेशनलपत्रिका को एक लेख भी भेजा था वैद्यक की प्रणाली आयुर्वेद से स्वामीजी पूर्णतयासहमत थे, अतएव डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार से उन्होंने देर तक इस विषय में वार्त्तालाप किया था, जिन दिनों स्वामीजी कलकत्ते में सुशोभित थे उन्हीं दिनों यह निर्धारण हुआ कि जितने व्याख्यान स्वामीजी ने यहां दिये हैं उन्हें पुस्तकाकार बा० केशवचन्द्रसेन के प्रबन्ध से प्रकाशित कराया जावे परन्तु स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् केशव बाबू की उपेक्षा के कारण यह कार्य्य पूर्णता को प्राप्त न हुआ, एक दिन केशव बाबू ने स्वरचित एक पुस्तक स्वामीजी को दिखाई जिसके आरम्भ में एक श्लोक था और उसमें ईश्वर के चरण आदि वर्णन किये थे स्वामीजी ने उचित रीति पर उसे पुस्तक की अशुद्धियां प्रकट करदीं फिर यह कहा कि ऐसे श्लोक आरम्भ में लिखने अयोग्य हैं, कारण यह है कि ईश्वर के जिस अलङ्कार में हाथ पग आदि वर्णन किये गये हैं वह रीति ठीक नहीं है, एक दिन केशव बाबू ने स्वामीजी के अङ्गरेज़ी न जानने पर शोक प्रकट किया और कहा कि यदि अङ्गरेज़ी जानते होते तो इङ्गलिस्तान चलने के लिये मेरे उपयुक्त सहयोगी होते, स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर दिया कि मुझे भी आपकी संस्कृत की अनभिज्ञता पर अत्यन्त शोक है और इसका विशेष कारण यह है कि आप इस देश के सर्वसाधारण जनों को ऐसी भाषा के द्वारा धर्मोपदेश करना चाहते हैं जिसको वे समझ भी नहीं सकते जिन दिनों स्वामीजी कलकत्ते में वैदिकधर्म का प्रचार कर रहे थे उन दिनों वहां एक ब्राह्मसभा थी जिसका साप्ताहिक अधिवेशन इतवार को हुआ करता था इस सभा के सर्व सभासद् स्वामीजी

के व्याख्यानों में सम्मिलित हुआ करते थे और कभी २ कुछ प्रश्नोत्तर भी किया करते थे पंडित तारानाथ भट्टाचार्य्य तर्कवाचस्पति इस ब्राह्मसभा के मुख्य उपदेष्टा थे और यह बाहर लोगों से कहा करते थे कि जिस समय मैं स्वामीजी के सन्मुख जाऊंगा तो उनका मुख बन्द हो जायगा किसी ने स्वामीजी से भी कह दिया कि पण्डित तारानाथ इस प्रकार लोगों में डींग मारते फिरते हैं स्वामीजी ने कहा कि उन्हें हमारे पास ले आओ फिर सारी व्यवस्था स्वतः विदित हो जावेगी। लोगों ने स्वामीजी के पास चलने के लिये पं० तारानाथ को उकसाना आरम्भ किया, अन्त में वो क्रुद्ध होकर स्वामीजी के पास शास्त्रार्थ करने के निमित्त आये और आते ही सत्तर प्रश्न स्वामीजी से कर दिये, यह मन में समझे हुये थे कि इनका उत्तर स्वामीजी से कुछ भी न बन पड़ेगा परन्तु स्वामीजी ने बड़ी योग्यता और सरलता के साथ २२-२३ उत्तरों में उनके सत्तर प्रश्नों का उत्तर दे दिया, यह देखकर पंडित तारानाथजी चकित रह गये और बड़ी नम्रता से स्वामीजी के चरणों पर गिर पड़े। निदान कलकत्ते में स्वामीजी ने वैदिकधर्म के प्रचार में जो कुछ उस समय हो सकता था किया और उसमें उन्हें बहुत कुछ सफलता भी हुई। कलकत्ते में स्वामीजी ने यह दृढ़ संकल्प करलिया था कि पाठशाला आदि के प्रबन्ध से मुक्तभार होकर हम वेदप्रचार और वेदभाष्य करेंगे।

शास्त्रार्थ हुगली

१ अप्रैल सन् १८७३ ईस्वी को स्वामीजी हुगली में पधारे और वहां के प्रसिद्ध ज़मीदार बाबू वृन्दावन मंडल की वाटिका में निवास किया। स्वामीजी के आते ही सारे प्रान्त में धूम मच गई और प्रत्येक धर्म व सम्प्रदाय के लोग उनके पास आने लगे हुगली कालिज के ईसाई प्रिन्सिपल रेवरेन्ड लालविहारीदेव भी स्वामीजी से मिलने गये और वर्णाश्रम पर कुछ प्रश्न किये स्वामीजी के उत्तरों को सुन कर बहुत प्रसन्न हुये और कहने लगे कि अनभिज्ञता के कारण मैं वैदिक सिद्धान्तों को अन्यथा समझता था। ६ अप्रैल सन् १८७३ ई० को हुगली के रईसों ने एक सभा की जिसमें स्वामीजी को उपदेश के लिये आमन्त्रित किया जिस समय स्वामीजी उपदेश कर रहे थे उस समय पण्डित ताराचरण भी आ पहुंचे परन्तु दूर खड़े होगये हुगली के प्रतिष्ठित पुरुषों ने उन्हें भीतर बुलाया परन्तु उन्होंने कुछ ध्यान न दिया और मकान के ऊपर चढ़ गये और वहां से बड़बड़ाने लगे पण्डितजी की यह बालक्रीड़ा देखकर लोग समझ गये कि इनमें स्वामीजी के सन्मुख आने की शक्ति नहीं है, दूर से अपनी बड़ाई दिखाना चाहते थे अन्त में

बहुत कुछ कह सुनकर बाबू वृन्दावन मण्डल ज़मींदार हुगली ८ अप्रैल को पण्डित-जी को स्वामीजी के पास ले आये और परस्पर शास्त्रार्थ आरम्भ होगया सब से प्रथम यह बात स्थिर हो गई थी कि चार वेद, वेदाङ्ग और ६ शास्त्रों के अतिरिक्त और किसी ग्रन्थ का प्रमाण स्वीकार नहीं किया जावेगा। सब से प्रथम पण्डित ताराचरणजी ने एक संस्कृत श्लोक पढ़ा तत्पश्चात् यह कहा कि यह सूत्र पातंजल शास्त्र का है और व्यासजी का ऐसा वचन है कि मन विना किसी स्थूल वस्तु के एक स्थान पर ठहर नहीं सकता, स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ऐसा कदापि पातंजल सूत्र नहीं है और यह स्पष्ट है कि आप इस विषय में स्वयं संदिग्ध हैं। अर्थात् प्रथम इसे पातंजल सूत्र कहकर फिर व्यासजी का वचन बतलाते हैं इसके पश्चात् पण्डितजी ने वाचस्पति का प्रमाण दिया स्वामीजी ने तुरन्त रोक दिया कि यह प्रथम ही स्थिर हो चुका है कि वेद वेदांग व ६ शास्त्रों के अतिरिक्त और किसी का प्रमाण स्वीकार न होगा और दृष्टान्त के लिये यदि आपके ही कथन को लिया जावे तो प्रकट है कि स्थूल वस्तुओं में तो सारा संसार और उसके पदार्थ आ जाते हैं। क्या गदहा, घोड़ा, वृक्ष, ईंट, पत्थर आदि २ आप किस २ वस्तु के पूजन को सिद्ध करेंगे दो चार बातें और कहने के पश्चात् पंडित ताराचरणजी कहने लगे कि प्रत्येक प्रकार की पूजा व्यर्थ है, इस पर स्वामीजी ने उन्हें सूचित कर दिया कि इस समय आपने स्वयं मूर्त्तिपूजन का भली प्रकार खंडन कर दिया, यह दशा देखकर बाबू भूदेवमुकरजी, पंडित हरिहर तर्कसिद्धान्त, बाबू वृन्दावनचन्द्र आदि यह कहकर उठ खड़े हुए कि पंडितजी घर से यह प्रतिज्ञा कर के आये थे कि हम मूर्त्तिपूजन को सिद्ध करेंगे, यहां उसका स्वयं खण्डन करने पर उद्यत हो गये, लज्जित और निरुत्तर होकर पं० ताराचरणजी मकान के ऊपर के खण्ड पर चले गये स्वामीजी भी उठ खड़े हुए और ऊपर के खंड पर जाकर उन से कहने लगे कि बनावट कब तक चल सकती है? आप सत्य के अनुमोदन में इस प्रकार क्यों भयभीत हैं? यह सुनकर पंडित ताराचरण, बाबू वृन्दावनमंडल और कई अन्य महाशयों के सन्मुख कहने लगे कि हृदय से तो मैं भी मूर्त्तिपूजनादि को बालक्रीड़ावत् समझता हूं परन्तु क्या करूं अन्य रीति पर निर्वाह होना कठिन प्रतीत होता हैं, यदि कहीं मेरे विश्वास की महाराजा साहब काशीनरेश को सूचना हो जावे तो वे अपने यहां मुझे घुसने न दें और जो वृत्ति मिलती है तत्काल ही बंद होजाय, जिस प्रकार आप बेधड़क सत्य का प्रचार करते हैं उस प्रकार मैं नहीं कर सकता।

आर्यसन्मार्गसन्दर्शनी सभा कलकत्ता और श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज

मथुरा और वृन्दावन में स्वामीजी के लगातार धर्म उपदेश ने वहां के साम्प्रदायिक नेताओं को घबराहट में डाल दिया और वे यहांतक लज्जित और दीन हुये कि जबतक स्वामीजी वहां रहे वे धार्मिक विषयों की छेड़छाड़ से बचते रहे अन्त में उन्हों-ने मथुरा के प्रसिद्ध सेठ नारायणदासजी की प्रशंसा (खुशामद) करनी आरम्भ की, निदान उन्हें अपने धर्म का संरक्षक नियत कर उनसे प्रार्थना की कि आप इस कठिन समय में हमारी सहायता करें। सेठ साहब पौराणिक ब्राह्मणों की चाटुकारिता में आगये और उनके बढ़ावनों से अत्यन्त प्रफुल्लित होगये निदान सब प्रकार उचित तथा अनुचित रीति से उनकी सहायता करने पर उद्यत होगये, इसमें संशय नहीं कि सेठ साहब की थैली का पेट बहुत फूला हुआ था और पौराणिक ब्राह्मणों की उसी पर दृष्टि थी और जगह दाल गलती न देखकर स्वामीजी के विरुद्ध मनमानी कार्रवाइयां करने के लिये बंगाल में जाकर शरण ली अर्थात् २२ जनवरी सन् १८८१ ई० को कलकत्ते के सीनेट हॉल में एक सभा की जिसमें वहां के कई नामी धनाढ्य और बंगाल के बड़े प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित सम्मिलित हुए, इस सभा के प्रबन्धकर्त्ता पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न प्रिन्सिपल संस्कृतकालिज कलकत्ता थे अतिरिक्त इनके अनुमान ३०० पंडित दूर २ से एकत्रित हुये थे जिनमें से पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति, पंडित जीवानन्द विद्यासागर बी. ए., नवद्वीप के पंडित भुवनचन्द्र तर्करत्न, जसलद के पंडित रामधन, कानपुर के पंडित बांकेविहारी बाजपेयी तथा पंडित यमुनानारायण तिवारी, वृन्दावन के सुदर्शनाचार्य्य, इलाके तनजोर के अदोश तल्लू, विदंग्राम मदरास प्रान्त के पंडित रामसुब्रह्मण्य शास्त्री (जिनको रामसुवा शास्त्री भी कहते हैं) विशेषकर गणनीय हैं तथा बंगाल के धनाढ्य और माननीय पुरुष भी इस सभा में सम्मिलित हुये थे, यथा आनरेबुल महाराजा ज्योतीन्द्रमोहन टगोर, महाराजा कमलकृष्ण बहादुर, राजा सुरेन्द्रमोहन टगोर, डाक्टर आफ़ म्यूजिक सी. एस. आई., राजा राजेन्द्रलाल मलिक, बाबू जयकृष्ण मुखोपाध्याय, कुमार देवेन्द्र मलिक, बाबू चारुचन्द्र मलिक, आनरेबुल बाबू कृष्टोदासपाल, सेठ नारायणदासजी रईस मथुरा, राय बद्रीदासजी, सेठ जुगलकिशोरजी, सेठ नाहरमलजी, सेठ हंसराजजी, यद्यपि पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र एल. एल. डी. इस सभा में सम्मिलित नहीं हुये परन्तु लेख द्वारा उन्होंने इस सभा के उद्देश्य और प्रयोजनों से अपनी सहानुभूति प्रकट की। पंडित महेशचन्द्र न्याय-

रत्न ने निम्नलिखित प्रश्न इस सभा में निर्णयार्थ प्रस्तुत किये:——

(१-प्रश्न) वेदों के मन्त्रभाग की भांति ब्राह्मणभाग भी मानने योग्य है अथवा नहीं, मनुस्मृति की भांति अन्य स्मृतियां भी मानने योग्य हैं वा नहीं ?

(उत्तर) दोनों मानने योग्य हैं अर्थात् मूल एवं भाष्य दोनों समान हैं ।

(२-प्रश्न) विष्णु, शिव और दुर्गा की पूजा, मृतकों का श्राद्ध और तीर्थ आदि शास्त्रविहित हैं या नहीं ?

(उत्तर) हां ये सब शास्त्रविहित हैं इस व्यवस्था के देते समय किसी शास्त्र का नाम नहीं लिया गया केवल सामान्य रीति पर शास्त्र का नाम ले देना पर्याप्त समझा गया ।

(३-प्रश्न) ऋग्वेद संहिता में "अग्निमीळे पुरोहितम्" यह मन्त्र है, इससे ईश्वर किसको समझना चाहिये ?

(उत्तर) भौतिक अग्नि को अर्थात् जलाने की आग ईश्वर है ।

(४-प्रश्न) यज्ञ जल वायु की शुद्धि के लिये किया जाता है या मुक्ति के उद्देश्य से ?

(उत्तर) मुक्ति के उद्देश्य से अर्थात् हवन से जल वायु की शुद्धि नहीं होती, किन्तु इस कर्म से इन लोगों की दृष्टि से सहज मुक्ति मिल जाती है ।

इन उत्तरों की समाप्ति पर सब पंडितों के हस्ताक्षर कराये गये और उदारता से पुष्कल पारितोषिक देकर उनको विदा किया गया, आर्य्यसमाज की ओर से पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न के प्रत्येक प्रश्न का यथार्थ और हेतुगर्भित उत्तर दिया गया, परन्तु वहां इसकी कौन परवाह करता था वहां तो यह चाल चली गई थी जिसका आशय यह था कि यह बात सब में प्रसिद्ध हो जावे कि बंगाल और दक्षिण के बड़े २ धुरंधर पंडितों ने मूर्त्तिपूजा, मठपूजा, मृतकपूजा और जड़पूजा आदि की शास्त्रानुसार व्यवस्था देदी है और मुट्ठी गरम हो गई सो अलग ।

इस सभा के हो चुकने के पश्चात् एक भेदी ने (जिसके हाथ में शायद थैली थी जिससे पंडितों के जेब व दामन भरे गये थे) एक फड़कता हुआ लेख भारतीविलास आगरे में "अपूर्वसभा" के शीर्षक से छपवाया था, जिसमें प्रकट किया गया था कि पौराणिक पण्डितों ने द्रव्य के लोभ से अपने धर्म और कान्शेन्स को बेचा,

बाहर कुछ कहते हैं भीतर कुछ कहते हैं और भीतर जाकर कुछ और ही सम्मति देते थे। यदि कोई भूल में कुछ विरुद्ध कहने को उद्यत होता था तो उसे तुरन्त रोक दिया जाता था और जता दिया जाता था कि यदि कुछ भी विरुद्ध बोलोगे तो रिक्तहस्त (खाली हाथ) यहां से लौटना पड़ेगा। इस सभा में परिडत गुणीआगर और रत्नगिरि आदि महात्मा, जो लोभ को त्याग चुके थे, आमंत्रित किये जाने पर भी नहीं पधारे कारण यह था कि उन्हें वास्तविक सभा का उद्देश्य विदित होचुका था।

कलकत्ते से स्वामीजी की प्रत्यावृत्ति (लौटना)

१६ अप्रेल सन् १८७३ ई० को हुगली से चलकर १७ अप्रेल को स्वामीजी भागलपुर में पहुंचे और एक मास तक वहां उपदेश करते रहे। यहां से मन्मथनाथ चौधरी बी० ए० संस्कृत पठनार्थ स्वामीजी के साथ हो लिये और डेढ़ वर्ष तक साथ रहे। १८ मई सन् १८७३ ई० को स्वामीजी पटने में पहुंचे और एक सप्ताह तक बराबर उपदेश करते रहे। परिडतों को विज्ञापन द्वारा सूचना दी गई कि यदि किसी को कुछ पूछना है या विचार करना है तो वे प्रसन्नता से हमारे पास आवें। नगर के प्रतिष्ठित जन और पटना कालिज के छात्रगण बड़े उत्साह से स्वामीजी का उपदेश सुनने आया करते थे। परन्तु यह बात प्रकट करने के योग्य है कि यहां का कोई परिडत स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत न हुआ अन्त में पौराणिक लोगों ने अनजान लोगों में यह गप्प उड़ादी कि यह कोई जरमन ईसाई है, लोगों का धर्म भ्रष्ट करता फिरता है।

पर्दे में छिपकर शास्त्रार्थ करना

२५ मई सन् १८७३ ई० को स्वामीजी छपरे में पधारे, यहां के प्रसिद्ध रईस श्रीमान् रायबहादुर शिवगुलामशाह ने इन को एक विशाल मन्दिर में ठहराया। पौराणिक परिडतों ने रायसाहब को अनेक प्रकार की विरुद्ध और झूठी बातें कहकर भड़काना चाहा, परन्तु उन्होंने किसी की नहीं सुनी। नगर के छोटे बड़े बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वामीजी के धर्मोपदेश सुनने आया करते थे, यह दशा देखकर दिन प्रतिदिन पौराणिक परिडत डाह के मारे कोयला हुए जाते थे, निदान वे स्वामीजी पर आक्रमण करने की घात में रहने लगे, जब इसमें भी सफलता होती न देखी तब अन्त में जाकर परिडत जगन्नाथ की शरण ली। यह परिडत महाशय स्वामीजी के पास नहीं जाते थे, जब कोई कारण पूछता था तो यह कह दिया करते थे कि यदि मैं वहां जाऊंगा तो मुझे एक नास्तिक का मुंह देखना पड़ेगा जब यह बात स्वामीजी को मालूम हुई तो उन्होंने लोगों से कहा कि आप

ऐसा कीजिये कि जब पण्डितजी यहां आवें तो हमारे और उनके बीच में एक पर्दा डाल दीजिये ताकि वे मेरा मुंह न देख सकें। प्रयोजन तो शास्त्रार्थ से है न कि एक दूसरे का मुंह तकने से, निदान लोग पण्डित जगन्नाथजी को खींच तान कर स्वामीजी के पास लेही आये और वास्तव में जब पण्डितजी आये तो स्वामीजी ने बीच में एक पर्दा डलवा दिया। जब संस्कृत में बातचीत होने लगी तो दो चार बातों में ही पण्डितजी बहकने लगे और शास्त्रीय प्रमाणों की भरमार ने पण्डितजी को चकित कर दिया, निदान वे परास्त होकर अपने साथियों सहित उठ खड़े हुये।

छपरे से आरा होते हुए डुमरांव पहुंचना

छपरे से प्रस्थित होकर स्वामीजी ११ जून १८७३ ईस्वी को आरा पहुंचे और २२ जुलाई १८७३ ईस्वी तक वहीं निवास रहा। यहां बाबू हरवंशलालजी वकील ने स्वामीजी का यथोचित आतिथ्य व सत्कार किया। स्वामीजी ने यहां धड़ल्ले के साथ धर्म्मोपदेश किया परन्तु किसी ने विरोध नहीं किया। यहां से विदा होकर २६ जुलाई १८७३ ईस्वी को स्वामीजी डुमरांव पहुंचे और महाराजा साहब डुमरांव के बंगले में ठहरे। राज्य की ओर से स्वामीजी के आतिथ्य का सब प्रकार प्रबन्ध कर दिया गया था, महाराजा साहब अपने प्रधान मन्त्री सहित स्वामीजी से मिलने आये और देर तक अपने संशय निवृत्त करते रहे। यहां के पौराणिक पण्डित भी स्वामीजी के पास जाया करते थे और धार्मिक विषयों पर वार्तालाप किया करते थे, परन्तु किसी को उनका प्रतिद्वंद्वी बनने का साहस न हुआ। एक दिन महाराजा साहब के कहने से पण्डित दुर्गादत्तजी, जो आत्मश्लाघा के रोग में ग्रस्त थे, स्वामीजी के पास पहुंचे और अपने साथ एक पत्थर का बट्टा (जिसको वे शिवजी कहते थे) लेते आये। उसको सामने रखकर स्वामीजी से बातचीत करने लगे, परन्तु दो चार पग ही चलकर ठिठक गये और इधर उधर की बातें बनाकर चलते बने। कुछ दिन पश्चात् पण्डितजी ने एक अण्डबण्ड पुस्तक लिखी। जिसमें यह लिख दिया कि स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के अन्त में यह कहा कि पं० दुर्गादत्तजी आप ब्रह्म हैं और मैं जीव हूं, भला जीव का क्या सामर्थ्य है कि ब्रह्म से बात कर सके। यद्यपि यह उपहास पण्डितजी के योग्य न था तथापि जिनको आत्मश्लाघा का रोग लग जाता है वे इसी प्रकार अण्डबण्ड बका करते हैं।

मिर्ज़ापुर होते हुए कानपुर पधारना

डुमरांव से स्वामीजी मिर्ज़ापुर गये और वहां पाठशाला का कुप्रबन्ध देखकर उसे तोड़ दिया और साधु जवाहरदास को बुलवाकर उनसे खास काशी में पाठशाला खोलने के विषय

में परामर्श (मशवराह) किया। वहां से रवाना होकर स्वामीजी कानपुर पहुंचे और वहां गङ्गा के किनारे एक कुटी में निवास किया। ब्रह्मसमाज के उपदेशक पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती कलकत्ते से यहां स्वामीजी के पास आये और उनके साथ रहने लगे। मध्याह्न के समय स्वामीजी गङ्गा में घण्टे आधघंटे तैरा करते थे और न्हाने के पश्चात् शारीरिक व्यायाम करने लगते थे, थोड़ी देर पीछे भोजन करके आराम करते थे इसके उपरान्त धर्मोपदेश करने लगते थे, रात को प्राय: समाधि लगाया करते थे। अत्यन्त शीत पड़ने पर भी कोई कपड़ा न पहनते थे, मिठाई नहीं खाया करते थे, यदि कोई ले आता था तो लोगों को बांट दिया करते थे। बाबू क्षेत्रनाथ बंगाली वकील कानपुर ने मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर परट में शामियाना खड़ा करके स्वामीजी से उपदेश कराया था। उस समय वहां के कोतवाल ने विरोध किया था, परन्तु मजिस्ट्रेट ने उसे प्रबन्ध रखने की आज्ञा दे दी थी इस पर भी कुछ ईंटें आईं थीं और यह कोतवाल साहब की शरारत थी। दूसरी वार खज़ानची शिवप्रसादजी के मकान बेंगाल बैंक में स्वामीजी का व्याख्यान हुआ, इसमें किसी प्रकार का विघ्न न होने पाया।

फर्रुखाबाद अलीगढ़ आदि होते हुए मथुरा जाना

कानपुर से प्रस्थित होकर २० नवम्बर १८७३ ईस्वी को स्वामीजी फ़र्रुखाबाद पधारे और अपनी पाठशाला के समीप एक वाटिका में ठहरे। यहां स्वामीजी सर विलियम म्यौर लेफ्टिनेण्ट गवर्नर पश्चिमोत्तर व अवध से मिले थे और उनसे बातचीत करते हुए कहा कि हमने सुना है कि आप इङ्गलैंड जाकर इण्डिया कौंसिल में भरती होंगे। आशा है कि आप भारतवर्ष से सहानुभूति रखते हुए गोहिंसा को बन्द कराने का यत्न करेंगे, सर विलियम ने प्रतिज्ञा की थी कि हम इस विषय में यथाशक्ति प्रयत्न करगे। फ़र्रुखाबाद से स्वामीजी कासगञ्ज गये और वहां आठ दश दिन तक पाठशाला के प्रबन्ध में तत्पर रहे इसके पश्चात् २० दिसम्बर १८७३ ईस्वी को छलेसर के लिये प्रस्थित हुए। मार्ग में राजघाट पर कर्णवास के ठाकुरों से मिले और वहां से चलकर छलेसर में पहुंचे, कुछ दिन यहां धर्मोपदेश करते रहे। इसी बीच में राजा जयकृष्णदास साहब सी. एस. आई. डिप्टीकलेक्टर अलीगढ़ से पधारे, स्वामीजी से मिलकर और अलीगढ़ पधारने का वचन लेकर वापिस चले गये, पाठशाला के प्रबन्ध से निवृत्त होकर स्वामीजी ठाकुर मुकुन्दसिंहजी रईस छलेसर को अपने साथ लेकर २६ दिसम्बर १८७३ ईस्वी को अलीगढ़ पहुंचे और चाऊलाल की वाटिका में ठहरे। स्वामीजी के पहुंचते ही वहां के लोगों की भीड़भाड़ रहने लगी, परन्तु स्वामीजी भी

किसी को निराश नहीं करते थे, प्रत्येक के प्रश्न का उत्तर दे देते थे और जबतक वह चुप न होजावे उसके संशय निवारण करते रहते थे। २७ दिसम्बर १८७३ ईस्वी को वाटिका में स्वामीजी का व्याख्यान हुआ, जिसमें नगर के प्रतिष्ठित जन, राजकीय अधिकारी और सर्वसाधारण बड़े उत्साह से सम्मिलित हुये, व्याख्यान की समाप्ति पर प्रश्न करने की आज्ञा सब को दी जाती थी इसी प्रकार लगातार कई दिन तक व्याख्यान होते रहे। अलीगढ़ और उस प्रांत के पण्डितों को तनिक भी साहस न हुआ कि वे शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होते, हां यह तो हुआ कि कुछ भंगड़ी, चरसी अनपढ़ साधुओं से स्वामीजी को गालियां दिलवाते रहे। २२ जनवरी १८७४ ईस्वी को अलीगढ़ से चलकर स्वामीजी ठाकुर मुकुन्दसिंहजी सहित हाथरस पहुंचे। राजा जयकृष्णदासजी स्वामीजी से पहिले प्रबन्ध के लिये हाथरस पहुंच गये। हाथरस मथुरा के समीप है इसलिये वहां मूर्त्तिपूजा और मनुष्य पूजा का बड़ा प्रचार है, स्वामीजी ने बड़े धड़ल्ले के साथ मूर्त्तिपूजा, मृतकपूजा और झूठे विश्वास का खण्डन किया जिससे हाथरस और उसके आसपास एक कोलाहल मच गया।

वृन्दावन में श्रङ्गाचार्य पर मूर्तिपूजा का खण्डन

यहां से स्वामीजी मुरसान गये और वहां कुछ दिन ठहर कर मथुरा पधारे, इस समय मथुरा वृन्दावन जाने का मुख्य कारण यह था कि स्वामीजी ने फ़र्रुखाबाद की पाठशाला के लिये मथुरा से पण्डित गङ्गादत्तजी को बुलवाया था, यह जाने को तैयार थे कि मथुरा के चौबों और पौराणिकों को ख़बर होगई, उन्होंने पण्डितजी को बहुत बुरा भला कहा और कई प्रकार के दबाव डाले जिनसे पण्डितजी दब गये और स्वामीजी को लिखा कि यहां पर मूर्त्तिपूजा का बड़ा प्रचार है और रङ्गाचार्य्यजी सर्वत्र कहते फिरते हैं कि मूर्त्तिपूजा शास्त्रविहित है, पहिले यहां आकर मूर्त्तिपूजा की पोल खोलिये फिर मैं वहां आसकूंगा। स्वामीजी ने तुरन्त उत्तर लिख दिया कि बहुत अच्छा हम अवश्य आवेंगे। निदान स्वामीजी ठीक उस अवसर पर जब कि रथयात्रा का मेला था जिस में दूर २ से वैष्णवमत के आचार्य्य और अनुयायी एकत्रित होते हैं, मथुरा पहुंच गये। सच तो यह है कि जिस प्रकार स्वामीजी मूर्तिपूजा की जड़ उखाड़ने पर तुले हुए थे उसी प्रकार वृन्दावन के रङ्गाचार्य्यजी मूर्त्तिपूजा की जड़ जमाने में अड़े हुये थे वह रङ्गाचार्य्यजी जो कृष्णजी के स्थानापन्न समझे जाते थे और जिनके दर्शन करने के लिये सहस्रों, लाखों स्त्री पुरुष चारों ओर से वृन्दावन में आते थे। निदान स्वामीजी ने रङ्गाचार्य्य की वाटिका के बराबर अपना डेरा जमादिया। सैकड़ों पौराणिक तथा अन्य

मतावलम्बी प्राय: स्वामीजी के पास बैठे रहते थे और स्वामीजी बड़ी योग्यता और प्रेम के साथ सब के संदेह निवारण करते रहते थे। निदान बख़्शी महबूबमसीह सुप-रिण्टेण्डेण्ट चुंगी वृन्दावन की ओर से जहां तहां हिन्दी में विज्ञापन लगाये गये कि होली के पश्चात् चैत बदी २ तदनुसार ५ मार्च सन् १८७४ ई० से (जब कि रथयात्रा का मेला या ब्रह्मोत्सव आरम्भ होता है) स्वामीजी व्याख्यान देवेंगे। बख़्शी महबूब-मसीह एक सज्जन, धर्मात्मा, सत्यग्राही और उदार प्रकृति के मनुष्य थे इसलिये उन्हों-ने स्वामीजी के व्याख्यानों का विज्ञापन अपनी ओर से देने में तनिक भी संकोच नहीं किया। इधर स्वामीजी ने धड़ल्ले के साथ वैष्णवमत का खंडन प्रारम्भ किया, उधर वैष्णवमत के नेता रङ्गाचार्य्यजी को लेखबद्ध सूचना दी कि आप हमसे जिस प्रकार चाहें मूर्त्तिपूजा और अपने वैष्णवमत के विषय में शास्त्रार्थ कर लीजिये जिससे कि सत्यासत्य का निर्णय होसके। रङ्गाचार्य्यजी पहिले तो शास्त्रार्थ को टालते रहे, अन्त में जाकर चंगे भले होकर भी अस्वस्थता का बहाना करदिया और एक दिन कले-क्टर साहिब ज़िले मथुरा से प्रार्थना की कि स्वामीजी हमारे मत का खंडन करते हैं और हमें शास्त्रार्थ के लिये तंग करते हैं। रङ्गाचार्य्यजी के कट्टर चेलों ने स्वामीजी पर आक्रमण करने के कईवार मन्सूबे बांधे परन्तु उनका एकवार भी साहस न हुआ कि उनके पास जावें। एक दिन स्वामीजी के कुछ शुभचिन्तकों ने उनसे कहा कि आप अकेले बाहर न पधारा करें, ऐसा न हो कि किसी दिन कोई धूर्त धूर्तता कर बैठे। स्वामीजी ने हंसकर कहा कि कल को आप हमसे कहेंगे कि कोठरी में छिपकर बैठा कीजिये कहीं ऐसा न हो कि मकान के भीतर कोई घुस आवे। एक दिन शास्त्रार्थ के बहाने मथुरा के उजड्ड चार पांचसौ चौबे लट्ठ ले २ कर स्वामीजी के निवासस्थान पर चढ़ आये थे परन्तु कुछ रिसाले के सिपाही वहां बैठे थे, उन्होंने फाटक बन्द कर दिया, इतने में कर्णवास के १५ ठाकुर, जो स्वामीजी के विशेष भक्त थे, वहां पर पहुंच गये और कुछ प्रतिष्ठित कर्मचारी भी आगये इसलिये फाटक खोल दिया गया और सू-चना दीगई कि जिसको नियमपूर्वक शान्ति के साथ शास्त्रार्थ करना है वह भीतर आजावे परन्तु इस समूह में सिवाय भंगड़ों और मूर्खों के कोई भी पंडित नहीं था जो शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होता। निदान वह उपद्रवी लोग शीघ्र तितर बितर हो गये परन्तु उनके आकस्मिक आपात से स्वामीजी किञ्चिन्मात्र भी नहीं घबराये और न उनकी चेष्टा से कुछ भय या क्षोभ के चिह्न प्रकट हुये। कारण यह था कि ऐसे सै-कड़ों अविवेककृत उत्पात उन्हों के देखे हुये थे और अकेले आप ही ने उनका शमन

किया था, इसके उपरान्त प्रायः पौराणिक लोग स्वामीजी के पास आते रहे और जिज्ञासु होकर अपनी शंकायें निवारण करते रहे।

स्वामीजी के उपदेशों से शालिग्राम यमुना में डाल दिये

एक दिन स्वामीजी के उपदेश का पं० मदनदत्तजी पर इतना प्रभाव हुआ कि वे उसी स्थान पर मूर्त्तिपूजा आदि का खंडन करने लगे, इस पर लोगों ने प्रसिद्ध करदिया कि स्वामीजी के पास कोई जादू है जिससे जो कोई उनके पास जाता है वह उन्हीं की सी कहने लगता है, उक्त पंडितजी ने अपने शालिग्राम आदि यमुना में डाल दिये थे। मथुरा में राजा टीकमसिंह साहब रईस मुरसान ज़िला अलीगढ़ स्वयं अपनी फ़िटन लेकर स्वामीजी को लेने के लिये आये और स्वामीजी उनके साथ मुरसान चले गये। राजा टीकमसिंह साहब ने ठाकुर गुरुप्रसादसिंहजी रईस बेसवान को कहला भेजा कि आप सदा कहा करते हैं कि हमने यजुर्वेद का भाष्य किया है और वह बिलकुल ठीक है परन्तु स्वामीजी उसे अशुद्ध बतलाते हैं। यदि आपको सत्य का जिज्ञासा है तो यहां आकर वार्तालाप कीजिये, स्वामीजी आजकल यहां पर हैं ऐसे अवसर को हाथ से नहीं जाने देना चाहिये, परन्तु इतना बोधित करने पर भी ठाकुर साहब स्वामीजी के सन्मुख नहीं आये दूर से ही बात बनाते रहे। निदान ठाकुर टीकमसिंहजी ने उन से कह दिया कि अब हमको आपकी वास्तविक योग्यता विदित होगई। कुछ दिन पश्चात् राजा साहब स्वयं स्वामीजी को मैंढू के रेलवे स्टेशन पर सवार करा गये यहां से स्वामीजी प्रथम छलेसर गये और वहां से इलाहाबाद ठहरते हुये बनारस पहुंचे।

प्रयाग में धर्मप्रचार और पर्दे की रीति का खण्डन

इलाहाबाद में स्वामीजी १ जुलाई सन् १८७४ ईस्वी से सितम्बर १८७४ के अन्त तक रहे और रात दिन वैदिकधर्म का प्रचार करते रहे। पण्डित, पादरी और मौलवी लोग प्रायः उनसे शास्त्रार्थ किया करते थे, स्वामीजी शास्त्रार्थ में इंजील और क़ुरान के भी प्रमाण दिया करते थे और उनकी समीक्षा सुनकर सब चकित रह जाते थे। इलाहाबाद में स्वामीजी ने एक बंगाली महाशय के मकान में व्याख्यान भी दिया था, इस व्याख्यान में स्वामीजी ने पर्दे की रीति का खण्डन किया था और यह भी कहा था कि स्त्रियां इस कुरीति के कारण बहुतसे लाभों से वञ्चित रह जाती हैं और कालिज के उस समय के छात्रगण स्वामीजी के अत्यन्त श्रद्धालु हो गये थे और अबतक वे जहां २ हैं आर्य्यसमाज के सहायक हैं।

जबलपुर से चल कर पञ्चवटी में धर्म्मोपदेश करना

मास अक्टूबर सन् १८७४ ई० में स्वामीजी जबलपुर पहुंच गये और एक वाटिका में ठहरे। यहां के प्राय: प्रसिद्ध पंडित स्वामीजी के पास जाया करते थे, परन्तु स्वामीजी के बार बार कहने पर भी उनमें से कोई मूर्त्तिपूजा को वैदिक सिद्ध न कर सके। यहां पर स्वामीजी ने एक व्याख्यान भी दिया था जिसका बहुत अच्छा प्रभाव हुआ। जबलपुर से प्रस्थित होकर स्वामीजी २४ अक्टूबर को नासिक त्र्यम्बक पहुंचे और यहां धर्म्मोपदेश प्रारम्भ कर दिया। यह स्थान पञ्चवटी कहलाता है और कहते हैं कि महाराज रामचन्द्रजी लंका को जाते हुये यहां ठहरे थे इसलिये यह तीर्थ माना जाता है और यहां पांच सात हज़ार पौराणिक ब्राह्मण भिक्षावृत्ति करते हैं। स्वामीजी ने यहां पर मूर्त्तिपूजा, पृथिवीपूजा और मनुष्यपूजा का बड़े समारोह से खण्डन किया जिससे यहां के याचकवृत्ति वाले ब्राह्मण कोलाहल मचाने लगे और अपनी कटुभाषिता का परिचय देने लगे, परन्तु स्वामीजी के सन्मुख उनकी क्या मजाल थी कि कोई बात भी मुंह से निकाल सकें, दूर से ही लोगों को भड़काते रहे पर विचारों की एक न चली।

आर्य्यसमाज की स्थापना और वैदिकधर्म का लगातार प्रचार

बम्बई में पहुंचना

नासिक से चल कर २६ अक्टूबर सन् १८७४ ई० को स्वामीजी बम्बई पहुंचे। मार्ग में से ही एक सेठजी के नाम अपने आने का तार दे दिया था। नियत समय पर सेठजी सवारी के सहित रेलवे स्टेशन पर उपस्थित थे। जब स्वामीजी वहां पहुंचे तो बड़े सत्कार के साथ उनका स्वागत करके उन्हें नगर से दो कोश बाहर बालकेश्वर महादेव के पहाड़ पर एक रमणीय स्थान पर ठहराया, साथ ही धर्माधर्म के निर्णयार्थ चार भाषाओं में विज्ञापन वितरित किये गये। पण्डित सेवकलाल कृष्णदास आकस्मिक संयोग से स्वामीजी के काशी के शास्त्रार्थ में उपस्थित थे इससे एक मास पहिले उन्होंने इस शास्त्रार्थ का विवरण "आर्य्यमित्र" नामक गुजराती समाचारपत्र में छपवा दिया था इसलिये दक्षिण के पण्डितों को स्वामीजी का परिचय हो चुका था, परन्तु उनको यह मालूम न था कि इतनी शीघ्रता से वे हमारे शिर पर आ कूदेंगे। जब स्वामीजी ने भिन्न २ सम्प्रदायों की पोल खोलनी प्रारम्भ की और विशेष कर पौराणिकों के पुस्तकों से ही उनके मन्तव्यों की समीक्षा की गई तो सारे नगर में एक कोलाहल मच गया और पौरा-

णिकों को मुंह छिपाना कठिन होगया। जब उनसे कुछ न बन पड़ा तब उन्होंने हार कर अनुचित उपायों का अवलम्बन किया, स्वामीजी के विषय में अनेक प्रकार की निर्मूल बातें उड़ाने लगे और अपने चेलों को पट्टियां पढ़ाकर स्वामीजी के पास भेजने लगे, परन्तु उन कायरों की क्या मजाल थी कि स्वामीजी के सन्मुख आंख उठाकर भी देख सकते। निदान पौराणिक मतावलम्बियों ने अपनी ओर से स्वामीजी के विरोध में कोई कसर उठा न रक्खी पर उनकी एक भी न चली।

वल्लभमतानुयायियों की पोल

बम्बई पहुंच कर स्वामीजी को उस प्रान्त के समस्त सम्प्रदायों की गुप्तलीला और उनकी रहस्य की बातें पूर्णतया विदित हो गई थीं। उनमें से वल्लभ सम्प्रदाय के अत्यन्त भ्रष्ट आचरणों को सुन कर स्वामीजी को बहुत ही उद्वेग हुआ और उनके दुष्ट चरित्रों पर क्रोध भी आया इसलिये उन्होंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि सब से पहिले इसी सम्प्रदाय की खबर लेनी चाहिये और इनका वास्तविक स्वरूप अन्धेरे से निकाल कर उजाले में लाना चाहिये निदान उन्होंने इस सम्प्रदाय के खण्डन में लगातार व्याख्यान देने प्रारम्भ किये और इस सम्प्रदाय के समस्त नेताओं, आचार्यों और विश्वासियों को बलपूर्वक आह्वान किया कि यदि किसी में साहस है तो सन्मुख आवे और शास्त्रार्थ करे। मुख्यकर स्वामीजी ने गुसाइयों की (जो इस सम्प्रदाय के आचार्य माने जाते हैं) उस रीति की खूब पोल खोली जिसके द्वारा ये अपने चेलों (जिनमें स्त्री पुरुष दोनों सम्मिलित हैं) का तन, मन, धन गुसाईंजी के अर्पण कराकर उनसे कह देते हैं कि अब तुम्हारा साक्षात् भगवान् कृष्णचन्द्र से सम्बन्ध होगया है।

स्वामीजी को विष दिलाने का उद्योग

इस सम्प्रदाय के लोगों से जब और कोई उपाय स्वामीजी के विरुद्ध न बन पड़ा तो उन्होंने यह सोचा कि चाहे जिस प्रकार हो उनको समाप्त कर देना चाहिये जिससे कि यह कांटा सदा के लिये दूर होजावे। निदान एक दिन अवसर पाकर जीवनजी गोसाईं ने स्वामीजी के रसोइये बलदेवसिंह को (जो कान्यकुब्ज ब्राह्मण था) कहा कि यदि तुम स्वामीजी को विष देदो जिससे उनका काम समाप्त होजावे तो मैं तुम्हें एक हज़ार रुपया नक़द दूंगा और प्रसन्न कर दूंगा। हज़ार रुपये का तो रुक्का लिख दिया और उसी समय पांच रुपये और पांच सेर मिठाई साई में दी। अकस्मात् कोई स्वामीजी का हितैषी किसी कोने में से इस कुमन्त्रणा को सुन रहा था, उसने तुरन्त स्वामीजी के पास जाकर सूचना देदी कि आपका रसोइया बलदेवसिंह अभी गोसाई जीवन से कुछ म-

अभिसन्धि (साज़िश) की बातें कर रहा था और उसे कुछ रुपया और मिठाई भी मिली है। इतने में बलदेवसिंह आगया। स्वामीजी ने उससे पूछा कि क्या तुम गोकुलियें गोसाइयों के मन्दिर में गये थे। उसने सच २ कह दिया कि हां महाराज! मैं गया था। यह सुनकर स्वामीजी ने फिर पूछा कि क्या ठहरा है? बलदेवसिंह ने उत्तर दिया कि एक हज़ार रुपया, जिसका यह रुक्का मेरे पास है, पांच रुपये और पांच सेर मिठाई मेरे पल्ले में बन्धी हुई है। स्वामीजी ने हंसकर कहा कि मुझको कईवार विष दिया गया परन्तु मैं अबतक जीवित हूं। काशी में विष दिया गया, कर्णवास में राव करणसिंह ने पान में विष दिलाया, तब भी कुछ नहीं हुआ और अब भी क्या होने लगा है इस पर बलदेवसिंह ने गिड़गिड़ा कर निवेदन किया कि महाराज! मेरा काम विष देना नहीं है और फिर मुझसे कभी ऐसा हो सकता है कि आप से महात्मा और संसार का उपकार करनेवाले को विष देदूं। निदान स्वामीजी ने मिठाई फिकवादी और रुक्का फाड़कर फेंक दिया और बलदेवसिंह को कह दिया कि खबरदार फिर कभी उनके यहां न जाना।

चौबीस प्रश्न

बम्बई के किसी गुप्तनाम मनुष्य ने २४ प्रश्न छपवाकर स्वामीजी के पास उत्तर देने के लिये भेजे, स्वामीजी ने इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर छपवा दिया और यह भी प्रकट करदिया कि धार्मिकवाद और निर्णय में संकोच या मुंह छिपाने का कोई कारण नहीं है जिसको अपने सन्देह निवारण करने हों या शास्त्रार्थ करना हो वह बे रोक टोक कर सकता है। इन प्रश्नों में एक प्रश्न का उत्तर वर्णन करने के योग्य है और वह यह है कि "मैं स्वतन्त्र नहीं हूं किन्तु वेदों का अनुयायी हूं"।

स्वामीजी के विरुद्ध वक्तृतायें

जब स्वामीजी पहिलीबार बम्बई पहुंचे उस समय वहां वैष्णवमत बड़ी उन्नति पर था उस में वहां के बड़े २ धनाढ्य और शक्तिसम्पन्न लोग सम्मिलित थे। इस सम्प्रदाय के मुख्य आचार्य्य बम्बई में जीवनजी गोसाई (जिनका परिचय हमारे पाठकों को होचुका है) और गुसाईं गट्टूलालजी थे। अन्तिम महाशय यद्यपि प्रज्ञाचक्षु थे परन्तु इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि वे संस्कृत के धुरन्धर पण्डित थे। चिरकाल तक उनको भी साहस न हुआ कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ कर सकें या मूर्तिपूजा की सिद्धि में कोई प्रमाण दे सकें परन्तु जब स्वामीजी के व्याख्यान सुन २ कर उनके चेले उनसे फिरने लगे और सैकड़ों स्त्री पुरुष उनके पंजे से निकलने लगे तब से बहुत घबराये। मथुरापंथ नामी उनका एक योग्य शिष्य और प्रसिद्ध वैष्णव स्वामीजी के उपदेश सुन-

कर सच्चे मन से उन पर विश्वास ले आया और उसने बहुतसे वैष्णवों की कंठियां तुड़वा कर उन्हें वैष्णवमत के विरुद्ध बना दिया। इन लोगों की प्रेरणा से एक दिन स्वामीजी ने एक तिमंजिले मकान पर व्याख्यान दिया श्रोताओं की संख्या दश हज़ार के लगभग थी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस का जनरैली पहरा था इसलिये कि किसी प्रकार की हलचल वा दङ्गा न होने पावे। मध्याह्न के उपरान्त दो बजे से सायंकाल के ६ बजे तक स्वामीजी ने लगातार व्याख्यान दिया। विषय मूर्त्तिपूजा और भिन्न भिन्न सम्प्रदायों का खण्डन था। इस व्याख्यान में स्वामीजी ने वैष्णवमत की विशेषता से पोल खोली। इस व्याख्यान को सुनकर सब लोगों की आंखें खुल गईं और वैष्णवमत की गुप्त लीला प्रकट हो जाने के कारण सर्वसाधारण को इससे अश्रद्धा उत्पन्न होगई। यह दशा देखकर गोस्वामी जीवनजी ने गोस्वामी गट्टूलालजी से कहा कि आप किस निद्रा में हैं? यहां सारा बना बनाया काम बिगाड़ा जाता है। सर्वसाधारण अब हम पर उंगली उठाते और मथुरापंथ भाटिये के निकल जाने से बहुतसे हमारे चेले हमारे शत्रु बनगये यदि थोड़े दिन यही हाल रहा तो बैठने को भी कहीं जगह न मिलेगी, तुम्हारी योग्यता और विद्वत्ता किस दिन काम आवेगी? यह अवसर है कि स्वामीजी के विरुद्ध लगातार व्याख्यान दिये जावें और कम से कम लोगों के ध्यान को उस ओर से हटाकर अपनी ओर आकर्षित किया जावे निदान गोस्वामी गट्टूलालजी ने एक सभा की जिसमें बहुतसे पौराणिक पण्डित बुलाये गये। इस सभा में स्वामीजी के विरुद्ध अनर्गल और अश्लील भाषण हुए। जब अप्रासंगिक बातें होने लगीं तो पं० छोटेलाल ने सभा में खड़े होकर गोस्वामी गट्टूलालजी से कहा कि महाराज! स्वामीजी की यह प्रतिज्ञा है कि मूर्त्तिपूजा का वेदों में नाम तक नहीं प्रत्युत प्रत्येक प्रकार की भौतिक पूजा का निषेध किया गया है। आपको चाहिये कि वेदों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करें। परन्तु ऐसी बातें वहां कौन सुनता था। दो एक सामवेद के अप्रासङ्गिक मन्त्र पौराणिक पण्डितों से पढ़वा कर सभा का विसर्जन कर दिया गया। इस परिश्रम के बदले में पण्डितों को ॥) प्रतिमनुष्य दक्षिणा दी गई और सर्वसाधारण में यह प्रसिद्ध कराने का उद्योग किया गया कि गोस्वामी गट्टूलालजी ने मूर्त्तिपूजा को प्रामाणिक सिद्ध कर दिया।

मरवाने का उद्योग करना

जब वैष्णव सम्प्रदाय के गोस्वामी जीवनजी ने यह देखा कि स्वामीजी के सम्मुख हमारी एक भी नहीं चलती तब उन्होंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि जिस प्रकार होसके उनका

जीवन समाप्त करदेना चाहिये । निदान उन्होंने चार मनुष्य उस मार्ग पर नियत किये, जिस पर स्वामीजी टहलने के लिये जाया करते थे । यह मार्ग समुद्र के तट पर आता था और रमणीय होने से स्वामीजी को प्रिय था । जीवनजी के डरपोक भृत्यों को किसी दिन यह साहस न हुआ कि स्वामीजी के सामने आवें । एक दिन स्वामीजी ने गर्ज कर उनसे कहा कि क्या तुम लोग प्रतिदिन हमारे मारने के लिये आया करते हो । वे स्वामीजी की आकृति देखते ही कांपने लगे जिससे स्पष्ट यह जाना जाता था कि उनका शरीर नहीं कांपता किन्तु भीतर से आत्मा कांपता है । उनमें इतनी शक्ति कहां थी कि वे उत्तर भी देसकते, उसी समय वहां से पलायमान होगये और फिर कभी वहां नहीं आये । स्वामीजी बराबर उस सड़क पर जब तक बम्बई में रहे टहलने जाया करते थे उनको इस घटना का स्मरण तक नहीं रहा । जब गोस्वामी जीवनजी की सब ओर से निराशा होगई तब वे मद्रास की ओर चले गये और स्वामीजी ने इधर वल्लभसम्प्रदाय के खण्डन में एक पुस्तक छपादी ।

पुस्तकालय बम्बई में शास्त्रार्थ

बम्बई के कतिपय मुख्य पौराणिक पण्डितों ने लज्जित होकर एक दिन स्वामीजी से पुस्तकालय बम्बई में मूर्त्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया किन्तु उन्हें सर्वसाधारण के सन्मुख अत्यन्त ही लज्जित होना पड़ा । कारण यह कि उनकी यह प्रतिज्ञा थी कि हम मूर्त्तिपूजा को वेदों से सिद्ध करेंगे सो कुछ भी न कर सके ।

पं० जयकृष्णजी व्यास से शास्त्रार्थ

बम्बई के पौराणिक पण्डितों के गुरु पण्डित जयकृष्ण व्यास से एक दिन स्वामीजी का सेठ गोलाधर की वाटिका में जीव और ब्रह्म की एकता पर शास्त्रार्थ हुआ पण्डितजी शीघ्र ही निरुत्तर होगये और इसी उपलक्ष्य में स्वामीजी ने अद्वैतवाद के खण्डन में "वेदान्तिध्वान्तनिवारण" नामक एक पुस्तक छपवा कर प्रकाशित कर दी ।

भिन्न २ मतानुयायी लोगों की निराशा

बम्बई में भिन्न २ सम्प्रदाय के लोगों ने अपने मन में यह समझ कर कि स्वामीजी के द्वारा हमारा समुदाय बढ़ेगा या हमारे मत का अधिक प्रचार होगा, उन्हें आमंत्रित करने में विशेष उत्साह प्रकट किया था, परन्तु परिणाम में उन्हें निराश होना पड़ा । कोई चाहता था कि वैष्णवों की पोल खुले और कोई शैवों की । कितने ही ब्राह्मसमाज या प्रार्थनासमाज वाले इस आशा में बैठे थे कि स्वामीजी के उपदेश से हमारे समाज की उन्नति

होगी। परन्तु जब उन्होंने देखा कि स्वामीजी उन सब मतों का (जो वेदादि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध हैं) समानरूप से खण्डन करते हैं तो वे निराश और उदास मन होगये और उनका सारा उत्साह शिथिल पड़गया तथापि वे सचाई के सम्मुख कर क्या सकते थे वादविवाद की तो कथा क्या है उनका यह साहस भी नहीं होता था कि स्वामीजी की किसी उक्ति वा युक्ति पर परोक्ष में भी कोई आक्षेप करें। जिज्ञासु, सत्यग्राही और स्वामीजी के शुभचिन्तकों ने जब यह देखा कि यद्यपि आज कल प्रायः लोग बाहर से तो परीक्षक, सत्य के खोजी, सत्यग्राही और आस्तिक देखने में आते हैं, परन्तु भीतर से वे कट्टर और निज मत के आग्रहरूप रोग में ग्रस्त हैं, तो उन्होंने यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि स्वामीजी से ऐसी प्रार्थना करें कि जिसके द्वारा उनके उपदेश का चिरस्थायी प्रभाव हो और वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार का नये सिरे से सन्तोषजनक प्रबन्ध हो सके। निदान २४ नवम्बर सन् १८७४ ई० से ३० नवम्बर सन् १८७४ ई० तक स्वामीजी से बराबर इस विषय में परामर्श होता रहा। फलतः ६० मनुष्यों ने उन के सम्मुख यह प्रतिज्ञा की कि यदि आप आर्य्यसमाज स्थापन करें तो हम उसमें सम्प्रविष्ट होंगे।

काठियावाड़ (गुजरात) में परिभ्रमण

दिसम्बर सन् १८७४ ईस्वी में रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख सेशन जज अहमदाबाद के पुत्र (जो बैरिस्टर हैं) स्वामीजी को बम्बई से अहमदाबाद (गुजरात) लेगये अहमदाबाद के एक प्रतिष्ठित सेठ साहब स्टेशन पर स्वामीजी का स्वागत करने के लिये उपस्थित थे स्वामीजी जब उनकी गाड़ी में सवार होचुके तो वे भी विनीतभाव से एक उचित जगह पर बैठ गये और मार्ग में स्वामीजी से कहने लगे कि अभी कुछ दिन हुए मैंने लगभग तीनलाख रुपया लगाकर एक मन्दिर बनवाया है स्वामीजी ने गाड़ी में हाथ मारकर और रुष्ट होकर कहा कि आपने कुछ नहीं किया कि जो इतना रुपया एक व्यर्थ काम में लगादिया। यदि इतना रुपया किसी पाठशाला में लगाते वहां से वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण निकलते जो संसार भर को लाभ पहुंचाते। ऐसी ही ना समझी और मूर्खता के कारण हम लोगों की यह दुर्दशा होरही है, वेद अब जर्मनी से छपकर यहां आते हैं तब हम लोगों को उनके दर्शन का सौभाग्य मिलता है। सेठजी ने कहा कि मैं मूर्त्तिपूजा पर आपका पण्डितों से अवश्य ही शास्त्रार्थ कराऊंगा। निदान सेठजी ने राजा मलहारराव से कुछ परामर्श करके कई पण्डित दूर२ से बुलाये और एक जज साहब की वाटिका में नियम पूर्वक शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

इस अवसर पर दो हजार के लगभग पौराणिक प्रसिद्ध पण्डित उपस्थित थे । पूरे पांच छः घण्टे तक शास्त्रार्थ होता रहा । जब पौराणिक पण्डितों से कुछ न बन पड़ा तब गालियों पर उतर आये । यह व्यवस्था देखकर रावबहादुर गोपालराव हरि देशमुख जज अहमदाबाद व भोलानाथ भाई खड़े हुये और उन्होंने कहा कि पौराणिक पण्डित वेदों से अणुमात्र भी मूर्त्तिपूजा सिद्ध न कर सके, अब यह प्रत्येक मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है कि वह माने या न माने ।

राजकोट (काठियावाड़) में वैदिक-धर्म प्रचार

२८ दिसम्बर सन् १८७४ ईस्वी को स्वामीजी अहमदाबाद से राजकोट की ओर प्रस्थित हुए और ३१ दिसम्बर १८७४ ईस्वी को वहां पहुंच गये । उन दिनों यहां बम्बई के लाट साहब का दरबार था । स्वामीजी ने यहां पर लगातार १२ व्याख्यान दिये । यहां के साधारण और प्रतिष्ठित जन बड़े प्रेम से स्वामीजी के व्याख्यान सुनते थे एक दिन राजकुमार कालिज के अध्यापक स्वामीजी को कालिज में लेगये और अपने प्रिंसिपल साहब से मिलाया । प्रिंसिपल साहब इनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुये और कहा कि इस समय आप हमारे छात्रों को समयोचित शिक्षा दीजिये । स्वामीजी ने उन के कथनानुसार उस समय छात्रों के प्रति एक शिक्षापूर्ण उपदेश दिया । विदा होते समय प्रिंसिपल साहब ने स्वामीजी को दो प्रति ऋग्वेद की भेट कीं जिन्हें उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया । यहां के भद्रपुरुषों ने स्वामीजी का फोटो लिया था । कालिज में स्वामीजी ने मांसभक्षण के विरुद्ध एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया था जिसका श्रोताओं पर अच्छा प्रभाव हुआ ।

अहमदाबाद में स्वामीनारायणमत की पोल

१८ जनवरी १८७५ ईस्वी को राजकोट से चलकर २१ जनवरी सन् १८७५ ईस्वी को पुनः अहमदाबाद लौट कर आगये और यहां एक सप्ताह ठहर कर स्वामीनारायण मत की खूब पोल खोली । साथ ही इस मत का आन्तरिक भेद प्रकट करने के लिये एक पुस्तक भी लिखी । यहां से बड़ौदे जाने का विचार था परन्तु उन्हीं दिनों बड़ौदा राज्य में कुछ उपद्रव होगया था इसलिये वहां का जाना रोक कर सीधे बम्बई को प्रस्थान किया और २९ जनवरी सन् १८७५ ईस्वी को पुनः बम्बई आ विराजे ।

सब से पहिला आर्यसमाज

स्वामीजी ने बम्बई पहुंच कर देखा कि लोगों का वह उत्साह जो कुछ दिन पहिले आर्यसमाज स्थापन करने के विषय में था; उनके चले आने के पश्चात् कुछ शिथिल पड़ गया है । यह देख-

कर उन्हें खेद हुआ और उन्होंने फिर इस विषय में प्रेरणा की। उनके उकसाने की देर थी कि सब लोग पहिले से भी अधिक उत्साह के साथ समाज की स्थापना करने के लिये उद्यत होगये। फरवरी सन् १८७५ ईस्वी में एक साधारण अधिवेशन में (जिसके सभापति रायबहादुर दादूबा पाण्डुरङ्गजी थे) आर्यसमाज की स्थापना और उसके नियमोद्देश्य पर विचार करने के लिये चुने हुये पुरुषों की एक उपसभा नियत कीगई परन्तु इस सभा के सभासदों में से किसी २ सभासद् ने किसी कारण से यह सम्मति दी कि अभी समाज के स्थापन करने का समय नहीं आया है, अतः कुछ दिनों के लिये यह प्रस्ताव फिर विचाराधीन होगया। तत्पश्चात् कतिपय भद्रपुरुषों ने सर्वसम्मति से राजमान्य राजेश्वरी पानाचन्द आनन्दजी पारिख को आर्य-समाज के उपनियम बनाने के लिये चुना और उन्होंने इस काम को उत्तमता से शीघ्र पूर्ण किया और स्वामीजी ने इनको पसन्द किया। निदान चैत्रसुदी ५ संवत् १६३२ वि० तदनुसार १० अप्रेल सन् १८७५ ईस्वी को बम्बई के मुहल्ले गिरगांव में सायं-काल के समय डाक्टर माणिकचन्दजी की वाटिका में नियमपूर्वक "आर्य्यसमाज" स्थापित हुआ और उसी दिन समाज के अधिवेशन में सामान्य रीति पर आर्यसमाज के नियम सुनाये गये।

आर्यसमाज के नियम जो पहिलीवार बम्बई में निर्धारित हुये थे

(१) सब मनुष्यों के हितार्थ आर्य्यसमाज का होना अत्यावश्यक है।

(२) इस समाज में मुख्य स्वतःप्रमाण वेदों का ही माना जावेगा, साक्षी के लिये तथा वेदों के अर्थज्ञान के लिये एवं आर्य्य इतिहास के लिये, शतपथादि ब्राह्मण वेदाङ्ग ६, उपवेद ४, दर्शन ६ और ११२७ शाखा वेदों के व्याख्यानरूपी आर्ष सनातन ग्रन्थों का भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जायगा।

(३) इस समाज में प्रतिदेश के मध्य एक प्रधान समाज होगा और अन्य उसकी शाखा समझे जावेंगे।

(४) प्रधान समाज के अनुकूल और सब समाजों की व्यवस्था रहेगी।

(५) प्रधान समाज में वेदोक्त धर्मानुकूल संस्कृत और आर्य्यभाषा में सदुपदेश के लिये नाना प्रकार के पुस्तक रहेंगे और एक "आर्य्यप्रकाश" साप्ताहिक पत्र निकलेगा। ये सब समाज में प्रवृत्त किये जावेंगे।

(६) प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष और दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री ये सब सभासद् होंगे।

(७) प्रधान पुरुष इस समाज की व्यवस्था का यथावत् पालन करेगा और मन्त्री सब के पत्र का उत्तर तथा सब के नाम व्यवस्था लेख करेगा।

(८) इस समाज में सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद् किये जावेंगे।

(९) प्रत्येक गृहस्थ सभासद् को उचित है कि वह अपने गृहकृत्य से अव-काश पाकर जैसा घर के कामों में पुरुषार्थ करता है उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिये करे और विरक्त तो नित्य ही समाजोन्नति में तत्पर रहे।

(१०) प्रति सप्ताह में एक दिन प्रधान, मन्त्री और सब सभासद् समाजस्थान में एकत्रित हों और सब कामों से इस काम को मुख्य जानें।

(११) एकत्र होकर सर्वथा स्थिरचित्त हों, परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर पक्षपात छोड़ कर करें। फिर सामवेद का गान, परमेश्वर, सत्यधर्म, सत्यनीति, सत्य उपदेश के विषय में ही बाजे आदि के साथ गान हो और इन्हीं विषयों पर मन्त्रों का अर्थ और व्याख्यान हो, फिर गान फिर मन्त्रों का अर्थ फिर व्याख्यान फिर गान आदि।

(१२) प्रत्येक सभासद् न्यायपूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करे उसमें से "आर्य्यसमाज" "आर्य्यविद्यालय" और "आर्य्यप्रकाशपत्र" के प्रचार और उन्नति के लिये आर्यसमाज कोष में १) रु० सैकड़ा देवें। 'अधिकस्याधिकं फलम्' यह धन उक्त कार्यों में ही व्यय होगा अन्यत्र नहीं।

(१३) जो मनुष्य इन कार्यों की उन्नति और प्रचार के लिये जितना प्रयत्न करे उसका उतना ही अधिक सत्कार उत्साह वृद्धि के लिये होना चाहिये।

(१४) इस समाज में वेदोक्त प्रकार से अद्वैत परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना कीजायगी। स्तुति-निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, अजन्मा, अन-न्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार और सच्चिदानन्द इत्यादि विशेषणों से परमात्मा के गुणकीर्तन करना। प्रार्थना-उससे सब श्रेष्ठ कार्यों में सहाय चाहना। उपासना-उसके आनन्दस्वरूप में मग्न होजाना, सो पूर्वोक्त निराकारादि लक्षणयुक्त परमात्मा की ही भक्ति करनी उसको छोड़कर और किसी का आश्रय नहीं लेना चाहिये।

(१५) इस समाज में निषेकादि और अन्त्येष्टिपर्यन्त संस्कार वेदोक्त किये जावेंगे।

(१६) आर्यविद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रन्थों का पठनपाठन हुआ करेगा और वेदोक्त रीति से ही सत्यशिक्षा सब पुरुष और स्त्रियों को दी जावेगी।

(१७) इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिये प्रयत्न किया जावेगा, एक परमार्थ, दूसरे व्यवहार, इन दोनों का शोधन तथा सब संसार के हित की उन्नति कीजावेगी।

(१८) इस समाज में न्याय जो पक्षपात से रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्य धर्म वेदोक्त ही माना जावेगा, इससे विपरीत कदापि नहीं।

(१९) इस समाज की ओर से श्रेष्ठ विद्वान् लोग सर्वत्र सदुपदेश करने के लिये समयानुकूल भेजे जावेंगे।

(२०) स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिये पृथक् २ आर्यविद्यालय प्रत्येक स्थान में यथासम्भव बनाये जावेंगे। स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा ही किया जावेगा और पुरुषों की पाठशाला में पुरुषों द्वारा, इससे विरुद्ध नहीं।

(२१) इन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्य्यसमाज के अनुकूल पालन की जावेगी।

(२२) इस समाज में प्रधान आदि सब सभासदों को परस्पर प्रीतिपूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोध आदि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सब के साथ वर्त्तना होगा।

(२३) विचारसमय सब व्यवहारों में न्याययुक्त सर्वहितसाधक जो सत्य बात भली प्रकार विचार से ठहरे, उसी को सब सभासदों को प्रकट करके वही सत्य बात मानी जावे।

(२४) जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करनेवाला, धर्मात्मा, सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना इसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना परन्तु पक्षपात से यह काम नहीं करना किन्तु यह दोनों बातें श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही कीजावें अन्यथा नहीं।

(२५) आर्य्यसमाज, आर्य्यविद्यालय, आर्य्यप्रकाशपत्र और आर्य्यसमाज का कोष इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधान आदि सब सभासद् तन, मन, धन से सदा किया करें।

(२६) जबतक नौकरी करने और कराने वाला, आर्य्यसमाजस्थ मिलेतबतक और को नौकरी न करे और न किसी और को नौकर रक्खे, वे दोनों परस्पर स्वामि-सेवक भाव से यथावत् वर्तें।

(२७) जब विवाह, जन्म, मरण या और कोई अवसर दान करने का उपस्थित हो तब २ आर्य्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें, ऐसा धर्म का काम और कोई नहीं है ऐसा समझ कर इसको कभी न भूलें।

(२८) इन नियमों में से यदि कोई नियम घटाया बढ़ाया जायगा तो सब श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही सब को विदित करके ऐसा करना होगा।

नियम बनजाने के पश्चात् अधिकारी चुने गये, तत्पश्चात् प्रति शनिवार सायंकाल को आर्य्यसमाज के अधिवेशन होने लगे। परन्तु कुछ दिन उपरान्त शनिवार सामाजिक पुरुषों के अनुकूल न होने से आदित्यवार रक्खा गया जो अबतक है।

पं० कमलनयनजी आचार्य से शास्त्रार्थ

बम्बई में नियमपूर्वक समाज स्थापित करके स्वामीजी द्वितीयवार अहमदाबाद पधारे और वहां प्रबल युक्तियों से स्वामीनारायणमत की समीक्षा की, बम्बई से स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् वहां के पौराणिक पण्डितों ने यह प्रसिद्ध किया कि स्वामीजी शीघ्र यहां से चले गये नहीं तो हम उनसे शास्त्रार्थ करने को उद्यत थे जब इनके मिथ्या प्रवाद से लोगों में कुछ भ्रान्ति सी होने लगी तो समाज के मंत्री ने बम्बई से तार भेजकर स्वामीजी को अहमदाबाद से बुलवाया स्वामीजी के आते ही पौराणिक पण्डितों को मुंह दिखाना कठिन होगया, लोगों के आग्रह करने पर भी शास्त्रार्थ से जी चुराने लगे। पं० कमलनयनजी आचार्य्य भी, जो बम्बई के पौराणिक पण्डितों के शिरोमणि माने जाते थे, शास्त्रार्थ से बचने लगे निदान बहुतसे प्रतिष्ठित सभ्य लोगों के बाधित करने पर उन्होंने बड़ी कठिनता से स्वामीजी के सन्मुख आना स्वीकार किया १२ जून शास्त्रार्थ की तिथि नियत हुई, शास्त्रार्थ का स्थान "फ्रामजी काउसजी इन्स्टीट्यूट" नियत हुआ। नियत समय से पहिले लोग आने लगे, दोपहर के तीन बजे पश्चात्

स्वामीजी पधारे और उन्हें बड़ी प्रतिष्ठा के साथ एक उच्चस्थान पर कुर्सी पर बिठाया गया। उनके सामने ही एक कुर्सी आचार्य्य कमलनयनजी के लिये बिछाई गई, बीच में लगभग डेढ़सौ के प्रामाणिक संस्कृत की पुस्तकें रक्खी गई जिससे कि दोनों पक्षों को प्रमाणों के देखने का सुभीता रहे। चौतरे के नीचे आठ कुर्सियां समाचारपत्रों के पत्रप्रेरकों के लिये क्रम से लगाई गई थीं। ये वास्तव में निष्पक्षभाव से दोनों ओर की उक्तियां लिखने के लिये आये थे। इस सभा में बम्बई के लगभग समस्त सेठ, साहूकार, अधिकारी, प्रतिष्ठित और शिक्षित पुरुष उपस्थित थे। यथा-रावबहादुर बेचरदास अलबाईदास, सेठ लक्ष्मीदास खेमजी, सेठ मथुरादास लौजी, रावबहादुर दादूबा पाण्डुरङ्ग, भाईशङ्कर नानाभाई, गङ्गादास किशोरदास, हरगोविन्ददास नाना, मनसुखराम सूरजराम, रणछोड़ भाई उदयराम, विष्णु परशुराम शास्त्री इत्यादि प्रायः श्रीमान् और विद्वान् उपस्थित थे इस समय यह खबर उड़ी कि आचार्य्य कमलनयनजी यहां इसलिये नहीं आवेंगे कि यह जगह एक पारसी की है कारण यह था कि रामानुज सम्प्रदाय के यह आचार्य्य थे और इनके अनुयायी नहीं चाहते थे कि हमारे आचार्य के गौरव में अन्तर पड़े परन्तु ज्यों त्यों आध घण्टे के पीछे आचार्यजी अपने २५-३० शिष्यों के सहित सभा में सुशोभित हुये और स्वामीजी के सामने वाली कुर्सी पर विराजमान होगये, निदान रावबहादुर बेचरदास अलबाईदासजी को सभापति बनाया गया और उन्होंने आरम्भ में एक उपयुक्त वक्तृता की कि जिसका सार यह था कि हम सब वास्तव में पौराणिक और मूर्तिपूजक हैं और मैं स्वयं भी मूर्त्तिपूजा किया करता हूं, परन्तु हम सब यहां पर इसलिये एकत्र हुये हैं कि आग्रह और पक्ष को अपने चित्त से हटाकर स्वामीजी और आचार्यजी की विद्यापूरित और सारगर्भित वक्तृताओं को सुनें और सत्य को ग्रहण करें हठ और विवाद से काम न लें। इस समय सब से प्रधान विषय मूर्तिपूजा है। स्वामीजी का यह पक्ष है कि मूर्त्तिपूजा वेदों से निषिद्ध है और इसलिये वह पापकर्म है। आचार्यजी का पक्ष इस के सर्वथा विपरीत है अर्थात् वे मूर्त्तिपूजा को वेदविहित समझते हैं। बस अब हमें दोनों महाशयों की उक्ति प्रत्युक्तियों को एकाग्र मन होकर बड़े ध्यान से सुनना चाहिये। किसी प्रकार क्रोध, आवेग और कोलाहल नहीं करना चाहिये, अन्त में सेठ साहब ने यह भी विज्ञापित कर दिया था कि वास्तव में यह शास्त्रार्थ दो महाशयों की परस्पर प्रतिज्ञाओं का परिणाम है जिन्होंने इसके व्यय का सारा भार परस्पर आधा २ बांटकर अपने ऊपर लिया है उनके नाम ठक्कर जीवनदयालुजी और मारवाड़ी शिवनारायण

बेनीचन्द हैं। ठक्करजी ने मारवाड़ी शिवनारायण बेनीचन्द से (जो सदा आचार्य कमलनयनजी के पक्ष का आश्रय लिया करते हैं) यह कहा था कि यदि आचार्यजी शास्त्रार्थ में स्वामीजी को जीत लेंगे तो मैं आचार्यजी का शिष्य होजाऊंगा अन्यथा आपको स्वामीजी का भक्त होना पड़ेगा। शास्त्रार्थ का विषय मूर्त्तिपूजा है मैं फिर निवेदन करता हूं कि आप सब महाशय स्वस्थचित्त होकर आचार्यजी और स्वामीजी की पाण्डित्य भरी वक्तृताओं को सुनें और अपने लिये उसका परिणाम निकालें।

सेठ साहब अपनी वक्तृता समाप्त करके बैठ गये तदनन्तर मारवाड़ी शिवनारायण बेनीचन्दजी ने यह विवाद उपस्थित किया कि ठक्करजी से मैंने यह भी कह दिया था कि मूर्त्तिपूजा की सिद्धि में पुराणों के भी प्रमाण दिये जावेंगे परन्तु ठक्करजी के प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत करने पर वे मौन होगये, यह प्रतिज्ञापत्र सेठ साहब ने सभा में उच्च स्वर से सब को सुना दिया उसमें इस बात की गन्ध भी नहीं थी, निदान मारवाड़ीजी को चुप होना पड़ा। अब आचार्य्य कमलनयनजी की वारी आई, वे कहनेलगे कि जितने पण्डित इस सभा में उपस्थित हैं, पहिले वे मुझे अपने २ मत से सूचना देवें कि किन २ सम्प्रदायों से सम्बन्ध रखते हैं यह सुनकर विचारशील पुरुषों ने कहा कि यह एक अत्यन्त असङ्गत और व्यर्थ प्रश्न है, आपको इस समय साधारण रीति पर किसी के विश्वास या मत से कुछ प्रयोजन न होना चाहिये सभापति आपकी सम्मति से नियत होचुके हैं, शेष सब श्रोतागण हैं उनको शास्त्रार्थ की समाप्ति पर अधिकार है कि कुछ सम्मति निर्धारण करें परन्तु आचार्यजी ऐसी युक्तियुक्त बातों को कब सुनते थे कहने लगे कि हम कैसे समझें कि यह लोग किन २ सम्प्रदायों के हैं और ठीक २ सम्मति निर्धारण कर सकेंगे या नहीं? यह सुनकर पण्डित कालिदास गोविन्दजी शास्त्री खड़े हुये और आचार्यजी को सम्बोधन करके कहने लगे कि आप व्यर्थ इस प्रकार की बातों से अपना और उपस्थित लोगों का समय नष्ट करना चाहते हैं मैं आपके सम्मुख प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं निष्पक्ष और सत्य २ जो कुछ मेरी समझ में आवेगा अन्त में प्रकट करदूंगा और जो कुछ शास्त्रार्थ सुनने के पश्चात् मेरी सम्मति होगी वह भी नहीं छिपाऊंगा और आप दोनों महाशयों की वक्तृता अक्षरशः लिखता आऊंगा। शोक कि आचार्यजी ने इस पर भी कुछ ध्यान नहीं दिया तब स्वामीजी ने बड़ी कोमलता और प्रीति के साथ आचार्यजी से कहा कि आज का दिन मैं अत्यन्त माङ्गलिक समझता हूं कि आप धर्म के एक अत्यन्त आवश्यक विषय पर मुझ से वार्तालाप करने के लिये यहां पधारे हैं और लोगों के इतने संघट्ट से यह प्रकट

है कि लोगों में सत्यासत्य के निर्णय करने का सच्चा और प्रबल उत्साह है मेरा जो पक्ष है वह सभापति महाशय ने बड़ी उत्तमता के साथ सर्वसाधारण को अभी सुना दिया है, इसी प्रकार अब आपको भी उचित है कि मूर्तिपूजा को वेदों से सिद्ध करें और प्रामाणिक ग्रन्थों के (जो निर्धारित होचुके हैं) प्रमाण देवें, जिनसे प्रकट हो कि प्राणप्रतिष्ठा (जिससे मूर्ति में प्राण का सञ्चार होजाता है), आवाहन (जिससे उनको बुलाया जाता है), विसर्जन (जिससे उनको विदा किया जाता है), पूजन (जिससे उन्हें प्रसन्न और आनन्दित किया जाता है) इत्यादि करना सार्थक और उचित है। यों तो इस समय एक सज्जन और विचारशील सेठ साहब सभापति हैं परन्तु मेरी सम्मति में मेरे और आपके वास्तविक मध्यस्थ चारों वेद हैं। आप विश्वास रक्खें, वे हम में से लेशमात्र भी किसी का पक्ष न करेंगे उचित रीति यह है कि हमारे कथनोपकथन अक्षरश: पीछे से प्रकाशित कर दिये जावें जिससे कि सर्वत्र पण्डितों को अपनी स्वतन्त्र सम्मति निर्धारण करने का अवसर मिलसके। स्वामीजी की यह समीचीन उक्ति सुनकर भी आचार्यजी की समझ में न आया और वे अपनी हठ करते रहे कि हमने जो कुछ कहा है जबतक वह नहीं होगा शास्त्रार्थ नहीं हो सकता, जिसका स्पष्ट यह आशय था कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते। यह व्यवस्था देखकर सेठ मथुरादास लोजी खड़े हुये और उन्होंने आदि से अन्ततक वह काररवाई सुनाई जो उन्होंने कुछ प्रतिष्ठित पुरुषों की प्रेरणा से आचार्य कमलनयनजी से शास्त्रार्थ के विषय में की थी। इस में उन्होंने प्रकट किया कि आदि में किस प्रकार आचार्यजी शास्त्रार्थ से बचने के लिये विचित्र और अपूर्व नियम प्रस्तुत करते रहे और अन्त में बिलकुल विवश और निरुत्तर होने पर उन्होंने यहांतक आना स्वीकार किया और अब यहां आकर क्या कहते हैं आचार्य्यजी में इतना साहस कब हो सकता था कि सेठजी के एक शब्द का भी प्रत्याख्यान करें। निदान अत्यन्त लज्जित होकर बिना कुछ कहे सुने सभा से उठकर चलदिये, इस पर प्रधान सभा ने आचार्य्यजी को संबोधन करके कहा कि आप इस प्रकार बिना कुछ कहे जाते हैं यह उचित नहीं है। सहस्रों मनुष्य आज बड़े उत्साह से आपके पाण्डित्य का चमत्कार देखने आये थे, उनको बड़ी भारी निराशा होगी स्वामीजी ने फिर आचार्यजी से कहा कि आजकल मूर्त्तिपूजा से लाखों मनुष्यों का निर्वाह होता है यदि आप उनकी आजीविका स्थिर रखना चाहते हैं तो इससे बढ़कर और कौनसा अवसर होगा परन्तु आचार्यजी को तो वहां एक क्षणभर ठहरना भी कठिन होगया था वे अपने मन में कहते

थे कि वह कौनसी घड़ी हो जो मैं अपने घर पहुंच जाऊं। परिणाम यह हुआ कि आचार्यजी जैसे कोरे आये थे वैसे ही चले गये। आचार्यजी के चले जाने के पश्चात् सेठ छबीलदास लल्लूभाई और राजमान राजेश्वरी बोलजी ठाकुरजी ने रामानुज संप्रदाय के आचार्य की इस उदासीनता पर अत्यन्त शोक प्रकट किया। इसी सभा में सेठ गोविन्ददास बाबा ने स्वामीजी से प्रश्न किया कि मूर्त्तिपूजा सनातन से चली आती है वा यह आधुनिक है? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि बहुत थोड़े काल से यह प्रवृत हुई है। बुद्ध और जैन के पश्चात् बहुतसे कम समझ मनुष्यों ने इसको चला दिया था नहीं तो संस्कृत के प्राचीन और प्रामाणिक ग्रन्थों में इसका कहीं नाम तक नहीं पाया जाता। इसके पश्चात् स्वामीजी ने इसी सभा में अपना यौक्तिक व्याख्यान मूर्त्तिपूजा के खण्डन में प्रारम्भ किया और वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा को महापाप सिद्ध करदिया। समाप्ति पर सभापति ने स्वामीजी के गले में फूलों का हार डाला और सेठ छबीलदास लल्लूभाई इन्हें अपनी जोड़ी में सवार कराकर इनके आश्रम तक पहुंचा आये।

पूना में वैदिकधर्म का प्रचार

जुलाई सन् १८७५ ई० की आदि में स्वामीजी पूना पहुंचे और अगस्त सन् १८७५ ई० के अन्त तक अर्थात् पूरे दो मास वहीं रहे। समझदार लोग तो इनसे प्रसन्न थे परन्तु मूर्ख और उजड्ड लोग लड़ाई, दङ्गा तक करने को उद्यत थे, जिनमें से कई को स्वयं अपने किये का फल भी मिलगया। यहां स्वामीजी ने १५ व्याख्यान दिये थे जो संक्षेप से मराठी भाषा में छपगये थे इन्हीं दिनों में पूना में आर्यसमाज भी स्थापित होगया था लोकहितवादी पत्र ने स्वामीजी की बहुत प्रशंसा लिखी थी और सच २ उनके उपदेश और व्याख्यानों की समालोचना की थी।

बम्बई में धर्म प्रचार

पूना से चलकर स्वामीजी बम्बई लौट आये और इसबार समाज मन्दिर में ठहरे। प्राय: लोगों से धर्मचर्चा होती रहती थी और प्रत्येक जिज्ञासु के सन्देह को निवृत्त कर देना स्वामीजी अपना कर्त्तव्य समझते थे। यहां बाबू नवीनचन्द्र राय, बाबू प्रतापचन्द्र मोज़मदार और डाक्टर भण्डारकर से (जिनका सम्बन्ध ब्रह्मसमाज से था) स्वामीजी की बातचीत होती रहती थी परन्तु ये तीनों महाशय प्राय: निरुत्तर होजाने पर भी कभी अपना आग्रह नहीं छोड़ते थे। यद्यपि स्वामीजी इनको अपने सन्देह निवारण करने के प्राय: अवसर दिया करते थे परन्तु ये महाशय सत्य के ग्रहण करने में सदा हठ से काम

लेते रहे। उस समय प्राय: ब्राह्मो लोग यह समझते थे कि स्वामीजी जबतक हम लोगों की पूरी २ सहानुभूति प्राप्त न करेंगे और जबतक हमको संरक्षक वा सहायक न बनायेंगे, तबतक उन्हें कदापि सफलता प्राप्त न होसकेगी। इण्डियनमिरर कलकत्ते में जो उस समय ब्राह्मो लोगों के हाथ में था इस प्रकार के विचार प्रकट किये गये थे। परन्तु पीछे से अनुभव ने यह सिद्ध करदिया कि सूर्य्य को खद्योत से प्रकाश लेने का कुछ आवश्यकता नहीं।

लड़का सिवाय साधुओं और वैरागियों के और कोई नहीं देसकता

बम्बई में स्वामीजी एकदिन धर्मोपदेश कर रहे थे, उस समय उनके पास बहुतसे भद्रपुरुष बैठे हुये थे। अचानक वहां बहुतसी स्त्रियां (जो अच्छे घरानों की थीं) आगईं। स्वामीजी ने उनसे पुछवाया कि तुम यहां सब मिलकर क्यों आई हो? उन्होंने अपनी इच्छा प्रकट की कि हमें सन्तान की इच्छा है आप दया करके हमें निहाल कर दीजिये। उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे पास सत् उपदेश है, लड़के इन दिनों सिवाय साधुओं और वैरागियों के और कोई नहीं देसकता। यह सुनकर वे स्त्रियां तो निराश होकर चली गईं परन्तु वहां जितने सेठ साहूकार बैठे थे वे लज्जा के मारे पानी २ होगये। इसका कारण यह था कि प्राय: उन्हीं लोगों की बहू बेटियां सन्तान के लिये मूर्ख और नीच साधुओं और वैरागियों की शरण में आकर उनकी सेवा और भेट आदि भी चढ़ाया करती थीं।

हमारे राजाओं की अवनति का कारण

एक दिन बम्बई में कई सहस्र मनुष्यों के सन्मुख स्वामीजी ने एक व्याख्यान दिया, जिसमें इस देश के राजाओं की अवनति और ह्रास का कारण मूर्खता और दुष्ट मन्त्रियों का होना बतलाया। उन्होंने कहा कि आजकल के राजाओं के मन्त्री चार प्रकार के रह गये हैं:—(१) फलित ज्योतिषी, (२) तेलवाला, (३) ऊंटवाला, (४) नपुंसक, इस पर यह दृष्टान्त दिया कि एक वार किसी राजा पर कोई शत्रु चढ़ आया और देश में लगभग उसने अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु राजा साहब को अपनी रंगरलियों में कुछ खबर न हुई। जब उसने क़िले को चारों ओर से घेर लिया तब राजा साहब चौंके कि यह क्या हलचल है, उस समय उन्हें मालूम हुआ कि शत्रु ने हम को चारों ओर से घेर लिया है। अब आपने सब से पहिले अर्द्ध पोप ज्योतिषी से परामर्श किया कि इस अवसर पर क्या करना चाहिये। उसने पत्रा खोलकर और मीन मेष विचार कर कहा कि अभी भद्रा लगी हुई हैं आपको कुछ नहीं करना चाहिये। अस्तु इसके पश्चात्

उन्होंने तेलवाले डाकोत से सलाह पूछी कि तुम्हारी क्या सम्मति है? उसने कहा कि महाराज आप घबराते क्यों हैं? अभी तेल देखिये तेल की धार देखिये। इसके बाद उन्होंने एक ऊंटवाले से पूछा कि तुम क्या कहतेहो? उसने कहा कि महाराज! आप कुछ चिन्ता न करें, देखिये तो सही कि ऊंट किस करवट पर बैठता है। यहां ये अपनी २ सम्मति ही दे रहे थे कि इतने में शत्रु की सेना क़िले का द्वार तोड़ कर भीतर घुस आई तब राजा साहब ने अपने नपुंसक मन्त्री से पूछा कि अब बताओ क्या किया जाय? उसने ताली बजाकर और कमर को बल देकर कहा कि एहे महाराज! यह कौनसी बड़ी बात है आप अपनी कनात चारों ओर तनवा लीजिये क्या वह मुहा-ग्नीम परदे के अन्दर घुस आवेगा? उस समय स्वामीजी ने मेज पर हाथ मार कर कहा कि यदि हमारे राजाओं की ऐसी दशा और ऐसी बुद्धि न होती तो आज हमारी और हमारे देश की यह हीन और दीन दशा न होती। वास्तव में इस देश की अव-नति के कारण ऐसे ही राजे और रईस हैं जो रात दिन प्रजा के धन को नाच तमाशों और व्यर्थ कामों में उड़ाते रहते हैं और अपनी शारीरिक शक्ति और मानसिक स्फूर्ति को खोकर किसी काम के नहीं रहते। इनके प्रमाद और अनभिज्ञता से राज्य के प्रबन्ध में बड़ी अव्यवस्था हो जाती है और फिर नित्य नये २ बखेड़े पैदा होते रहते हैं।

बम्बई के बड़े पादरी साहब

स्वामीजी ने सुना कि बम्बई के बड़े पादरी विलसन साहब एक विद्वान् पुरुष हैं और अपने धार्मिक नियमों का पूर्णतया पालन करते हैं। उन्होंने उन्हें धर्मविषयक शास्त्रार्थ के लिये आमन्त्रित किया, परन्तु पादरी साहब ने ध्यान नहीं दिया। अस्तु, स्वामीजी एक दिन स्वयं उनके पास गये, वे बड़े विनय और सज्जनता से मिले, देरतक धार्मिक विषयों पर वार्तालाप होता रहा, जब वे सब प्रकार से निरुत्तर होने लगे तो कहने लगे कि इस समय मुझे एक आवश्यक काम है इसलिये आप से अधिक बातचीत नहीं कर सकता, फिर किसी समय मैं स्वयं आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगा, परन्तु शोक है कि जब तक स्वामीजी बम्बई में रहे कभी वे नहीं पधारे, किन्तु बम्बई से बाहर चले गये।

पं० रामलालजी शास्त्री से शास्त्रार्थ

बम्बई के कुछ पौराणिक पण्डितों ने हारकर एक नदियाशा-न्तिपुर के पण्डित को उभारा कि आप बड़े विद्वान् हैं, स्वामी-जी से शास्त्रार्थ कीजिये इसमें आपकी बड़ी प्रतिष्ठा होगी, सहायता के लिये हम उपस्थित हैं। परिणाम जो कुछ होगा सो होगा परन्तु आपका

नाम दूर तक प्रसिद्ध हो जायगा, बहुत कुछ कहने सुनने पर पण्डितजी शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हुये। निदान ता० २७ मार्च सन् १८७६ ई० को होकाभाई जीवनजी के मकान पर शास्त्रार्थ सुनने के लिये बहुतसे लोग एकत्रित हुये। उभयपक्ष की सम्मति से पं० भौजाऊजी शास्त्री सभापति नियत हुये। स्वामीजी ने पं० रामलालजी से पूछा कि मूर्त्तिपूजा वेद में कहां लिखी है? पण्डितजी ने पुराणों के एक दो प्रमाण दिये इस पर स्वामीजी ने कहा कि ये पुस्तकें मानने योग्य नहीं आप वेद का कोई प्रमाण दीजिये, परन्तु पण्डितजी ने आयुभर कभी वेदों के दर्शन भी नहीं किये थे, प्रमाण वे कहां से देते? स्वामीजी ने जब विशेष बल दिया तो असम्बद्ध बातें करने लगे। यह दशा देखकर इस सभा के प्रधान भौजाऊजी शास्त्री ने पण्डितजी को सम्बोधित किया कि यह क्या बात है? "आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे" स्वामीजी कुछ पूछते हैं और आप कुछ कहते हैं। यह सुनकर पंडित रामलालजी बिलकुल चुप हो-गये और सभापति ने स्वामीजी के पक्ष में अपनी व्यवस्था दी इस सत्यभाषिता के बदले में पौराणिक पण्डितों ने शास्त्रीजी को बहुत सताया परन्तु ये उनके दबाव में नहीं आये। इसके कुछ दिन उपरांत वैदिक यन्त्रालय प्रयाग के प्रबन्धकर्त्ता पंडित रामलालजी से मिले, उन्होंने पूछा कि पण्डितजी! आपने स्वामीजी से शास्त्रार्थ क्यों नहीं किया? पंडितजी ने उत्तर दिया कि हम अपनी आजीविका से लाचार हैं। स्वामीजी विरक्त हैं और हम गृहस्थ, उनकीसी स्वतंत्रता और निर्भयता हममें क्यों-कर हो सकती है?

मूर्त्तिपूजकों को विज्ञापन के द्वारा आमन्त्रित किया गया

भाई जीवनदयालु दुरकादयालु साकिन नलबाज़ार बम्बई ने उन्हीं दिनों एक विज्ञापन दिया जिसमें यह प्रकट किया गया कि मैं स्वामीजी के उपदेश और शास्त्रार्थ सुनकर आर्य हुआ हूं और मेरा अब दृढ़ निश्चय है कि मूर्त्तिपूजा वेदानुसार पाप कर्म है। यदि कोई महा-शय इसके विपरीत सिद्ध करदें तो मैं उनको सवासौ रुपये भेंट करूंगा, परन्तु किस में इतना साहस और बल था कि सन्मुख आता, किसी ने उत्तर तक नहीं दिया।

हम तो क्या ईसाई होंगे, बहुत से ईसाई आर्य हो जावेंगे

१ मई सन् १८७६ ई० को बम्बई से चलकर ६ मई सन् १८७६ ई० को पांचवींवार स्वामीजी फ़र्रुखाबाद पधारे, यहां ईसाइयों से इसवार स्वामीजी की छेड़छाड़ होती रही। एक दिन उन्होंने कहा कि हमें निश्चय है कि आप बहुत शीघ्र ईसाई धर्म को स्वीकार करेंगे। इसपर

उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि हम तो क्या ईसाई होंगे तुम थोड़े ही दिनों में देखोगे कि बहुतसे ईसाई आर्य्य हो जावेंगे। कुछ दिन बाद पाठशाला तोड़कर और उसकी पूंजी वेदभाष्यफण्ड में बदल कर स्वामीजी बनारस चले गये विदा होते समय सबको बता दिया कि यहां शीघ्र आर्यसमाज स्थापित होगया तो फिर भी आवेंगे अन्यथा नहीं।

भिन्न २ स्थानों में आना

फ़र्रुखाबाद से चलकर स्वामीजी बनारस पहुंचे और वहां लाजरस कम्पनी के यन्त्रालय में वेदभाष्यभूमिका के छपवाने का प्रबन्ध किया। यहां से जौनपुर पहुंचे और दो तीन दिन ठहर कर आर्य्यसमाज के स्थापित होने का सुसमाचार सब को सुनाया और वैदिकधर्म का उपदेश करते रहे। जौनपुर से अयोध्या पहुंचे और यहां सरयू के तट पर निवास करके वेदभाष्यभूमिका लिखनी प्रारम्भ कर दी। अयोध्या से चलकर लखनऊ पहुंचे और सर्दार विक्रमानसिंह आहलूवालिया की कोठी में ठहरे। यहां स्वामीजी के समय का बड़ा भाग वेदभाष्यभूमिका के लिखने में लगता था, तो भी वे धर्मोपदेश बराबर करते रहते थे। लोगों के कहने सुनने से यहां अंग्रेज़ी कुछ पढ़ने लिखने का ढंग डाला था इस विचार से कि यदि इस देश से बाहर जाने का काम पड़े तो यह भाषा काम आवे। लखनऊ में धनीराज व लाला व्रजलाल से स्वामीजी की धार्मिक विषयों में प्रायः बातचीत हुआ करती थी और उक्त दोनों महाशय स्वामीजी से अपने सन्देह निवारण किया करते थे। लखनऊ से चलकर स्वामीजी कुछ दिन शाहजहांपुर ठहरे और यहां उपदेश करके बरेली चले गये। वहां पर ख़ज़ांची लक्ष्मीनारायणजी की कोठी में निवास किया। यहां अंगदरामजी शास्त्री को स्वामीजी ने शास्त्रार्थ के लिये कईवार बुलाया, परन्तु इन्हें स्वामीजी का बल पहिले ही मालूम हो चुका था। इसलिये ये दूर से ही अपनी शेखी बघारते रहे, पास कभी न आये। बरेली से चलकर दो दिन स्वामीजी कर्णवास ठहरे। यहां के ठाकुर लोग जो स्वामीजी पर परमभक्ति और श्रद्धा रखते थे, स्वामीजी के पधारने से अत्यन्त ही प्रफुल्लित हुये। यहां स्वामीजी ने दिल्ली दर्बार में उपदेश करने का अपना मनोरथ प्रकट किया, तुरन्त ठाकुर लोगों ने सब सामान (शामियाने, कनात, फ़र्श, गाड़ी आदि) इकट्ठा कर दिया। दिसम्बर के अन्त में स्वामीजी ठाकुर मुकुन्दसिंह तथा अन्य महाशयों के साथ दिल्ली को प्रस्थित हुये। अलीगढ़ स्टेशन पर बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि बम्बई वाले भी दिल्ली जाते हुये स्वामीजी के साथ होगये और ये सब ठीक समय पर दिल्ली पहुंच गये।

सन् १८७७ ई० को कैसरी दरबार और वैदिकधर्म का उपदेश

दिल्ली में शेरमल के अनारबाग में स्वामीजी के शामियाने और डेरे खड़े किये गये इसी ओर अवध के रईसों के कैम्प भी पड़े हुये थे। प्रतिदिन स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये प्रायः रईस और पण्डित लोग आते रहते थे और सर्वसाधारण भी स्वामीजी के उपदेशों को बड़े प्रेम और ध्यान से सुना करते थे। एक दिन एक ईरान के मौलवी साहब, जो केवल फ़ारसी भाषा बोल सकते थे, स्वामीजी के पास आये। एक कायस्थ साहब के द्वारा स्वामीजी ने उनसे बातचीत की मौलवी साहब उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुये। एक दिन महाराजा साहब जम्बू व काश्मीर की प्रेरणा से बाबू नीलाम्बरजी मुसाहब महाराजा साहब स्वामीजी के पास आये और उनसे कहा कि महाराजा साहब आपसे मिलना चाहते हैं। स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया था, परन्तु पीछे से पण्डितों के जोड़ तोड़ लगाने से यह काम ज्यों का त्यों रहा। इसी प्रकार एकबार महाराजा रणधीरसिंहजी कश्मीराधिपति ने स्वामीजी को अपने यहां बुलवाने का विचार प्रकट किया था, परन्तु पण्डित गणेशशास्त्री ने महाराजा साहिब से यह कहकर कि उन्हें बुलाने से पहिले यहां के सब मन्दिरों को गिरा दीजिये और बहुतसे उतार चढ़ाव से उनकी इच्छा रोकदी, परन्तु पीछे सन् १८६२ ईस्वी में वर्त्तमान महाराजा प्रतापसिंहजी के सन्मुख जब आर्यसमाज के साथ पौराणिक पण्डितों का शास्त्रार्थ हुआ तो उन्हीं गणेशशास्त्रीजी ने सभा में स्पष्ट कह दिया कि महाराज! सच तो यह है कि मूर्त्तिपूजा की वेद में आज्ञा नहीं है। यद्यपि महाराजा साहिब उस समय उनसे अप्रसन्न भी होगये तथापि शास्त्रीजी ने अपने आत्मिक बल का पूरा परिचय दिया।

दिल्ली में पधारने का मुख्य प्रयोजन

दिल्ली में इस अवसर पर स्वामीजी के पधारने का मुख्य प्रयोजन यह था कि दरबार के उपलक्ष्य में, भारतवर्ष के समस्त राजे महाराजे तथा अन्य प्रतिष्ठित लोग चारों ओर से एकत्रित होंगे, उनके कानों तक आर्यसमाज का नाम व उद्देश्य पहुंचाने का उत्तम अवसर है। दूसरे यह भी समझा गया था कि यहां पर प्रायः शिक्षित पुरुष और प्रसिद्ध धार्मिक उपदेष्टा अपने २ मन्तव्यों का प्रचार करने के लिये आवेंगे। उनको एक स्थान पर परस्पर संवाद करने के लिये आमन्त्रित किया जासकता है, प्रायः राजा लोग स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये आते रहे। महाराजा हुलकर और दो एक राजों ने यह उद्योग किया था कि सम्पूर्ण स्वदेशीय नृपगण किसी एक स्थान में उपस्थित होकर स्वामीजी का उपदेश सुनें, परन्तु उनके अनेक कार्यों में आसक्त होने के कारण

इस प्रकार का प्रबन्ध न होसका, तथापि स्वामीजी ने अन्य उपायों से अपना उद्देश्य पूरा किया। साथ ही स्वामीजी ने उन महाशयों को जो उस समय धार्मिक संशोधन के काम में प्रवृत्त थे, अपने विश्रामस्थान में आमन्त्रित किया। निम्नलिखित महाशय उनके स्थान पर सुशोभित हुए।

(१) मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी, (२) बाबू नवीनचन्द्रराय, (३) बाबू केशवचन्द्रसेन, (४) मुन्शी इन्द्रमणि, (५) आनरेबुल सर सय्यद अहमदखां, (६) बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि। जब सब महाशय एकत्रित होगये तो स्वामीजी ने इस नैमित्तिक सभा का उद्देश्य यह वर्णन किया कि हम सब इस समय धार्मिक संशोधन में प्रवृत्त हैं। हमें चाहिये कि अपने २ सन्देह निवारण करके सच्चे धर्म को शुद्धभाव से ग्रहण करें और फिर एक ही सर्वसम्मत मार्ग का अवलम्बन करें जिससे कि यह भेदभाव, द्वेष और कुटिलता आदि दूर होकर दूध पानी की तरह से हम सब लोग आपस में मिलजावें। अन्त में स्वामीजी ने कहा कि इस वैमनस्य के दूर करने का सब से उत्तम उपाय यही हो सकता है कि धार्मिक विरोध दूर होजावे क्योंकि धार्मिक विरोध ही प्रत्येक प्रकार के उपद्रव और अशान्ति की जड़ हुआ करता है जबतक धार्मिक विरोध और खिचावट बनी रहती है तबतक परस्पर सच्चा अनुराग और सुहृद उत्पन्न ही नहीं होसकता। इस सभा में स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा था कि चारों वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, हम सब को चाहिये कि अक्षरशः उन्हीं की अनुकूलता और अनुयायिता स्वीकार करें। यदि किसी महाशय को इसमें कुछ सन्देह हो तो मैं उसके निवारण करने के लिये सर्वदा उद्यत हूं परन्तु खेद है कि यह सभा विना किसी परिणाम पर पहुंचने के विसर्जित होगई, कारण स्पष्ट है कि जबतक दुराग्रह से अन्तःकरण मलिन है उसमें सत्य का प्रकाश कदापि नहीं हो सकता। दरबार के दिनों में स्वामीजी कईवार बाबू केशवचन्द्रसेन से मिले। एक दिन उक्त बाबू साहब ने स्वामीजी को सम्मति दी कि यदि आप पूरी पूरी सफलता चाहते हैं तो यह प्रसिद्ध कीजिये कि जो कुछ मैं कहता हूं वह मुझसे परमेश्वर कहलवाता है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि परमेश्वर अन्तर्यामी व सर्वव्यापक है, क्या यह किसी के कान में कहीं से कहने आता है, ऐसी झूठी बात मैं कभी मुंह से नहीं निकाल सकता। सर्वसाधारणजनों को स्वामीजी ने इस अवसर पर यह उपदेश किया था कि मद्यपान और मांसभक्षण वेदों की शिक्षा के सरासर विपरीत है इसलिये इनसे मनुष्यों को सर्वदा बचना चाहिये। दरबार के अवसर पर स्वामीजी ने वेदभाष्य के विज्ञापन

और आर्य्यसमाज के छपे हुये नियम भी वितरित करदिये थे और मुख्य २ महाशयों को स्वरचित पुस्तकें भी अर्पण की थीं।

स्वामीजी को पंजाब में भ्रमण करने के लिये निमंत्रित करना

क़ैसरी दरबार का समाप्ति पर मुं० हरसुखराय साहब मालिक अख़बार कोहनूर लाहोर, पं० मनफूल साहब रईस लाहोर, सरदार विक्रमानसिंह साहब आलूवालिया रईस जालन्धर और मुं० कन्हैयालाल साहब अलखधारी रईस लुधियाना ने विनयपूर्वक स्वामीजी से प्रार्थना की कि आप पंजाब में भी अवश्य भ्रमण करें। स्वामीजी ने प्रसन्नतापूर्वक उनका प्रार्थना को स्वीकार करके प्रतिज्ञा की कि हम अब शीघ्र ही पंजाब आवेंगे।

दिल्ली से प्रस्थान

दरबार के पश्चात् स्वामीजी १६ जनवरी सन् १८७७ ई० को दिल्ली से प्रस्थित होकर उसी दिन मेरठ पहुंचे और सूर्यकुण्ड पर डिप्टी महताबसिंह साहब की कोठी में ठहरे। कुछ दिन यहां विश्राम करके फर्वरी के प्रारम्भ में सहारनपुर पहुंचे, यहां वेदभाष्यभूमिका लिखते रहे और साथ ही धर्मोपदेश भी करते रहे, इन्हीं दिनों चांदापुर ज़िला शाहजहांपुर के प्रसिद्ध मेले के स्थापकों की ओर से उनको सम्मिलित होने के लिये आमंत्रित किया गया और सहारनपुर के कई प्रतिष्ठित पुरुषों ने भी मेले में पधारने के लिये उनसे प्रार्थना की। निदान स्वामीजी ने लिख भेजा कि १५ मार्च सन् १८७७ ई० को हम मेले में पहुंचेंगे। उन्हीं दिनों ला० चण्डीप्रसादजी अम्बहटा निवासी ने स्वामीजी से अनेक धर्मसम्बन्धी प्रश्न किये थे जिनका उत्तर स्वामीजी ने बड़ी उत्तमता के साथ दिया।

मेला सत्यमत परीक्षा चांदापुर

यह मेला इस समय में अपने ढंग का निराला ही हुआ था, जिसमें बड़े २ प्रसिद्ध धार्मिक लीडर (आचार्य) सुशोभित थे। इसके संस्थापक मुन्शी प्यारेलाल साहब रईस ज़िले शाहजहांपुर थे। मुन्शी साहब ने अकस्मात् यह सोचा कि इस समय भिन्न २ मत और उनके सिद्धान्तों में प्रतिदिन विरोध बढ़ता जाता है इसलिये एक ऐसा मेला जोड़ना चाहिये कि जिसका उद्देश्य सत्यमत की परीक्षा करना हो और जिसमें प्रत्येक मत और संप्रदाय के विद्वान् और आचार्यों को निमंत्रित किया जावे और सर्वसम्मति से धार्मिक सिद्धांत चुनकर उन पर गम्भीरता और सभ्यता से विचार किया जावे जो कि मुन्शी साहिब दृढ़संकल्प थे इसलिये उन्होंने कलेक्टर ज़िले से अपना अभिप्राय प्रकट करके मेला लगाने की आज्ञा प्राप्त करली। निदान यह मेला चांदापुर ज़िले शाहज-

[चां]दापुर में १८ मार्च सन् १८७७ ई० से प्रारम्भ होकर २० मार्च सन् १८७७ ई० तक रहा। इस मेले में मुं० प्यारेलाल के आमन्त्रित करने पर निम्नलिखित महाशय सुशोभित हुए:- (१) स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी वैदिकआचार्य और आर्यसमाजसंस्थापक, (२) मुं० इन्द्रमणिजी मुहम्मदी मत के प्रसिद्ध प्रतिपक्षी, (३) पादरी टी० जे० स्काट साहब प्रसिद्ध इञ्जील अनुवादक और लार्जीशियन (नैयायिक), (४) पादरी नवल साहब, (५) पादरी पारकर साहब, (६) पादरी जानसन साहब, (७) पादरी जान टाम्सन साहब, (८) मौलवी मुहम्मद कासिम साहब उस्ताद मदर्से अर्बी देवबन्द ज़िला सहारनपुर, (९) मौलवी सय्यद अबुल मन्सूर साहब देहलवी। इन विद्वानों के अतिरिक्त दूर व समीप के प्राय: प्रतिष्ठित व शिक्षित जन सम्मिलित हुए थे। मुं० प्यारेलालजी की ओर से आतिथ्य का प्रबन्ध बहुत ही उत्तम था और सभा के लिये स्थान बड़ी उत्तमता से सजाया गया था। इस मेले में जो संवाद हुआ, वह अक्षरश: छपकर पुस्तकाकार मुद्रित होगया है और सच यह है कि प्रारम्भ में इस संवाद को पढ़कर बहुतसे मनुष्य आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए। इस शास्त्रार्थ में स्वामीजी के सम्मुख सब महाशय निरुत्तर होगये और जिस योग्यता के साथ प्रत्येक प्रश्न का उत्तर स्वामीजी ने दिया था, वह उन्हीं का काम था। शास्त्रार्थ मेला चांदापुर के अवलोकन से यह सब वृत्तान्त अवगत हो सकता है।

लुधियाने में पधारना — मेला चांदापुर के समाप्त होने पश्चात् ३१ मार्च सन् १८७७ ई० को स्वामीजी लुधियाने पहुंचे और दूसरे दिन एक व्याख्यान दिया जिसमें अनेक भद्रपुरुष उपस्थित थे, इस व्याख्यान से स्वामीजी के पधारने की खबर दूर व समीप सर्वत्र फैल गई और इनके व्याख्यानों में प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ने लगी। एक दिन पादरी वेरी साहब व जज्ज कारस्टीफ़न साहब स्वामीजी से मिलने के लिये उनके आश्रम पर पधारे और बातचीत के प्रसङ्ग में कहने लगे कि कृष्णजी के विषय में जो कुछ श्रीमद्भागवत में लिखा है उसे पढ़कर बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं करती कि वे महात्मा हों। स्वामीजी ने झट उत्तर दिया कि उस पुस्तक में जितने अपवाद कृष्णजी पर लगाये गये हैं वे सब बनावटी हैं। परन्तु बुद्धि के स्वीकार करने के विषय में क्या कहा जावे, आश्चर्य है कि बुद्धि यह स्वीकार कर लेती है कि परमेश्वर का आत्मा कबूतर के रूप में आकाश से उतरा और मरियम के गर्भाशय में प्रविष्ट होगया और फिर कुमारी (अविवाहिता) होने पर भी मरियम के पेट से महात्मा ईसा हुए। एक दिन स्वामीजी व्याख्यान दे रहे

थे, एक पौराणिक पण्डित उनका व्याख्यान सुनकर घबरा गये और क्रोध में आकर अपने साथी से कहने लगे कि यहां से चलो, ये दुष्ट हैं इस का मुंह देखने में भी पाप लगता है। स्वामीजी ने अकस्मात् ये शब्द सुनलिये और पण्डितजी से कहने लगे कि आप एक ओर ऊझल में खड़े होजावें, केवल मेरा उपदेश सुनते जावें मुंह न देखें। यह सुनकर पण्डितजी लज्जित होगये। लुधियाने में जब स्वामीजी अपने व्याख्यानों को समाप्त कर चुके तो उन्होंने सबको विज्ञापित किया कि जिस किसी को कुछ प्रष्टव्य हो या मेरे कथन में सन्देह हो, वह निःशंक होकर प्रकट करे, तुरन्त उत्तर दिया जायगा। यदि कोई शास्त्रार्थ करना चाहे तो इसके लिये भी मैं सर्वथा उद्यत हूं, परन्तु यह सुनकर भी सन्नाटा रहा किसी ने चूं तक नहीं की। एक गौड़ ब्राह्मण लुधियाने के पादरियों के स्कूल में लड़कियों को हिन्दी इञ्जील पढ़ाने पर नौकर था, शनैः २ उसकी रुचि ईसाई मत की ओर होगई थी, यहांतक कि उसके नियमपूर्वक ईसाई बनाने का दिन भी नियत होचुका था। परन्तु उसके सौभाग्य से उन्हीं दिनों स्वामीजी वहां पहुंच गये और उनके उपदेश सुन कर वह ईसाई होने से बच गया और उसने उनकी नौकरी भी छोड़दी।

लाहोर में वैदिकधर्म का प्रचार और आर्यसमाज की स्थापना

१९ अप्रैल सन् १८७७ ई० को स्वामीजी लाहोर पहुंचे। रेलवे स्टेशन पर स्वागत के लिये मु० हरसुखराय साहब मालिक कोहनूर प्रेस और पं० मनफूल साहब साबिक़ मीरमुन्शी गवर्नमेण्ट पंजाब उपस्थित थे। बड़े सन्मान के साथ स्वामीजी को लेजाकर दीवान रत्नचन्द्र साहब के बाग़ में ठहराया। यहीं पर सैकड़ों मनुष्य स्वामीजी के उपदेश सुनने और अपने संशय निवृत्त करने के लिये आते थे। २५ अप्रैल को वेद और वेदोक्तधर्म पर बावली साहब में एक व्याख्यान हुआ, श्रोताओं की संख्या बहुत थी, इस व्याख्यान का बहुत अच्छा प्रभाव हुआ, परन्तु पौराणिक लोग बड़े क्रुद्ध हुये। निदान उन्होंने दीवान रत्नचन्द्र साहब को, जिनके मकान में स्वामीजी ठहरे हुये थे, बहुत कुछ भड़काया। इसका परिणाम इससे बढ़कर और क्या हो सकता था कि स्वामीजी अपना स्थान परिवर्तन करलें। निदान वे डाक्टर रहीमखां साहब की कोठी में चले गये और निर्भय होकर सत्यधर्म की ओर लोगों के मन को आकर्षित करते रहे। पंजाब में उस समय एक भी पौराणिक पण्डित इस योग्य न था कि स्वामीजी से घण्टे दो घण्टे भी संस्कृत में बातचीत कर सके, तो भी लाहोर के साधारण पण्डितों ने कुछ विरोध का तार छेड़ दिया और स्वामीजी के व्याख्यानों के प्रतिवाद में अनाप

शनाप कहने लगे। परन्तु इस विरोध का प्रभाव उलटा हुआ, लोगों को मालूम हो गया कि इनके पास अपशब्दों के सिवाय और कुछ नहीं और इनमें कोई इस योग्य नहीं कि स्वामीजी से शास्त्रार्थ कर सके। इन्हीं दिनों शहर में धार्मिक हलचल देखकर एक दिन पं० मनफूल साहब ने स्वामीजी से कहा कि उचित यह है कि आप मूर्त्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ देवें फिर यह सब विरोध आप से शान्त हो जायगा और महाराजा साहब काश्मीर भी आप से बहुत प्रसन्न होंगे। स्वामीजी ने संक्षेप से यह उत्तर दिया कि "मैं लोगों को या महाराजा साहब काश्मीर को प्रसन्न करूं या ईश्वरीय आज्ञा का (जो वेद में लिखी है) पालन करूं" यह सुनकर पण्डित साहब सहम गये और फिर कभी ऐसी प्रार्थना नहीं की। एक पादरी साहब और एक बङ्गाली साहब ने यज्ञ और वेद के विषय में कुछ प्रश्न किये थे, स्वामीजी ने उनको समीचीन उत्तर देकर संतुष्ट करदिया। पं० भानुदत्तजी पहिले स्वामीजी के पास बहुत आते जाते रहे और मूर्तिपूजा का खण्डन भी करते रहे, परन्तु एक दिन कई पौराणिक पण्डितों के धमकाने पर पण्डितजी घबरा गये और स्पष्ट कह दिया कि मेरा विश्वास पूर्ववत् है और मैं मूर्त्तिपूजा को मानता हूं। पं० शिवनारायण अग्निहोत्री भी स्वामीजी के पास बहुधा आया करते थे, एक दिन स्वामीजी ने अग्निहोत्रीजी को विना सोचे समझे सम्मति देने पर अत्यन्त लज्जित किया। पंजाब में शिक्षित लोगों की कुछ विचित्र ही दशा थी प्रत्येक के मन्तव्य भिन्न २ और अपनी रुचि (मर्ज़ी) के अनुसार थे, स्वामीजी के उपदेश सुन कर उनकी आंखें खुल गईं और वे उनके प्रत्येक शब्द पर विचार करने लगे। जितने सन्देह उनके हृदय में उत्पन्न होते थे वे सब साथ के साथ निवृत्त होते जाते थे। निदान यह प्रस्ताव स्थिर हुआ कि जैसे बम्बई व पूना में आर्य्यसमाज स्थापित हो गये हैं वैसे ही लाहोर में भी होना चाहिये।

अब प्रश्न यह हुआ कि आर्यसमाज के नियम जो बम्बई में बने हैं वे बहुत ही विस्तृत हैं इसलिये प्रत्येक की समझ में उनका आना कठिन है। निदान स्वामीजी ने उन सब नियमों को देखकर कुछ परिवर्तन के साथ १० नियम उनमें से चुन लिये जो निम्नलिखित हैं:—

आर्यसमाज के दश नियम

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना, पढ़ाना और सुनना, सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्यासत्य को विचार करके करने चाहियें

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सर्वथा विरोध छोड़कर सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

प्रारम्भ में भिन्न २ स्थानों पर समाज के साप्ताहिक अधिवेशन होते रहे, परन्तु इसमें असुविधा देखकर समाज ने एक मकान किराये पर लेलिया। स्वामीजी समाजमन्दिर में व्याख्यान दिया करते थे और समाज की स्थापना से बहुत प्रसन्न थे। एक समय समाज के कई श्रद्धालु पुरुषों ने स्वामीजी से यह प्रार्थना की कि आप समाज के गुरु या आचार्य की पदवी धारण करें। स्वामीजी ने कहा कि इस प्रस्ताव से "गुरुपन" की गन्ध आती है क्या आप यह चाहते हैं कि मैं भी गुरु बनकर एक नया पन्थ चलाऊं? मेरा उद्देश्य तो "गुरुपन" की जड़ काटना है, इसके विरुद्ध आप मुझ से ही उसके स्वीकार करने की प्रार्थना करते हैं जिसके नाम से मुझे द्वेष (नफ़रत) है। यह सुनकर सब चुप होगये, परन्तु एक महाशय ने भक्ति के वेग में आकर स्वामीजी से कहा कि अच्छा और नहीं तो हम आपको समाज का परमस-

हायक अवश्य कहेंगे। इस पर स्वामीजी ने पूछा कि यदि मुझे समाज का परमसहायक कहोगे तो परमेश्वर को क्या कहोगे? इसका क्या उत्तर हो सकता था। निदान स्वामीजी ने सामाजिक पुरुषों को बिलकुल निराश न करने के लिये यह आज्ञा देदी कि यदि आपको यही आग्रह है तो मेरा नाम समाज के सहायकों में लिख लीजिये। इसके पश्चात् स्वामीजी कुछ दिन के लिये लाहोर से बाहर वैदिकधर्म के प्रचार के लिये चले जाया करते थे और फिर लौट आया करते थे। २१ अक्टूबर सन् १८७७ ई० को ब्राह्मसमाज लाहोर का वार्षिकोत्सव था, उस में स्वामीजी दो तीनसौ आर्यपुरुषों के सहित पधारे। स्वामीजी कहते थे कि यह लोग आस्तिक और एक ईश्वर को माननेवाले हैं इनकी सभा में जाने से कोई हानि नहीं है। ६ नवम्बर सन् १८७७ ई० को आर्यसमाज लाहोर की अन्तरङ्गसभा में समाज के उपनियमों पर विचार होरहा था, संयोग से उस समय स्वामीजी भी सुशोभित थे। एक अवसर पर उनसे प्रार्थना कीगई कि इस विषय में आप भी सम्मति दें। उन्होंने स्पष्ट उत्तर देदिया कि मैं आपकी अन्तरङ्गसभा का सभासद् नहीं हूं, इसलिये मुझे सम्मति देने का अधिकार नहीं है।

बाहर से लौट आकर २ मार्च सन् १८७८ ई० को स्वामीजी लाहोर में नव्वाब नवाजिशअलीखां साहिब के बाग में ठहरे। एक दिन स्वामीजी ने मुहम्मदी मत के खण्डन में व्याख्यान देना प्रारम्भ किया, पास ही नव्वाब साहिब टहल रहे थे परन्तु उन्होंने कुछ नहीं कहा। एक महाशय ने साहस करके कहा कि आप मुहम्मदी मत का खण्डन कर रहे थे पास ही नव्वाब सुनते थे, ऐसा न हो कि वे अप्रसन्न होजावें। स्वामीजी ने इसका यह उत्तर दिया कि मैं यहां न तो मुहम्मदी मत की प्रशंसा करने आया हूं और न किसी अन्य मत की। मैं तो सिर्फ़ एक वैदिकमत को सच्चा मानता हूं और शेष सब मतों को झूठा। नव्वाब साहिब सुनरहे थे तो क्या हुआ? मैं जान बूझकर वैदिकधर्म का महत्व उनके कर्णगोचर कर रहा था। मुझे सिवाय परमात्मा के और किसी का कुछ भय नहीं है। लाहोर से जब स्वामीजी ने जाने का विचार प्रकट किया तो एक महाशय ने स्वामीजी से बड़ी अधीनतापूर्वक यह प्रार्थना की कि सम्प्रति आप अपने जाने का विचार कुछ दिन के लिये रोकदें और कुछ दिन यहीं विश्राम करके वैदिकधर्म का उपदेश करें। स्वामीजी ने कहा कि जिस प्रकार आप यहां पर मेरी उपस्थिति की आवश्यकता समझते हैं उसी प्रकार अन्यत्र भी मेरे जाने की आवश्यकता है। मैं किसी दशा में एक स्थान में नहीं ठहर सकता, मेरा औचि-

व्य (फ़र्ज़) है कि सारे देश में वैदिकधर्म का प्रचार करूं ।

अमृतसर में स्वामीजी का पहुंचना

५ जुलाई सन् १८७७ ई० को स्वामीजी लाहौर से अमृतसर पहुंचे और रामबाग़ के समीप एक कोठी में ठहरे । यह कोठी सरदार दयालसिंह साहब मजीठिया ने स्वामीजी के ठहरने के लिये किराये पर ले रक्खी थी, स्वामीजी के पहुंचते ही सारे शहर में चर्चा फैलगई और प्रत्येक मत और संप्रदाय के लोग उनके पास आने लगे । स्वामीजी ने लोगों का उत्साह देखकर कोठी में ही उपदेश का काम प्रारम्भ कर दिया और साथ के साथ प्रत्येक जिज्ञासु के सन्देह भी निवृत्त कर देते थे । शहर और बाहर के मुख्य और प्रतिष्ठित लोग भी स्वामीजी के उपदेश सुनने आया करते थे । राजा सर साहब दयालु साहब, सर्दार भगवानसिंह साहब और लाला सन्तराम साहब सपड़ा नित्य ही पधारा करते थे । स्वामीजी के व्याख्यानों से पौराणिक पण्डित बहुत ही घबराये, परन्तु उनमें से एक भी इस योग्य न था कि स्वामीजी से घड़ी दो घड़ी तक भी संस्कृत में बातचीत कर सकता इसलिये वे सदा मुंह छिपाते रहे और झूठी बातें उड़ा २ कर लोगों को बहकाते रहे । कभी २ किसी कोरे पण्डित को कुछ सिखा पढ़ाकर स्वामीजी का समय नष्ट करने के लिये भेज दिया करते थे, परन्तु तो भी स्वामीजी बड़ी योग्यता के साथ उसे सन्तुष्ट कर दिया करते थे । बहुतसे सत्यवादी पण्डित और ज्ञानी पुरुष पीछे से यह कह दिया करते थे कि स्वामीजी महाराज जो कुछ कहते हैं वह सर्वथा सत्य है, परन्तु लोग भ्रमजाल में फंसे हुए हैं उनका उससे निकलना बहुत ही कठिन काम है । शनैः २ बहुतसे लोग स्वामीजी की बातों को मानने लगे और अपने को "आर्य्य" कहलाने में गौरव समझने लगे । उनमें स्वामीजी के उपदेश से इतना आत्मिकबल उत्पन्न होगया कि वे लोगों के विरोध और क्रोध को गम्भीरता के साथ सहन कर सकें । निदान यहां भी आर्य्यसमाज का स्थापित होना निश्चित होगया, इस बात की सूचना लाहोर आर्यसमाज को भी दी गई और १२ अगस्त सन् १८७७ ई० को नियमपूर्वक अमृतसर में "आर्य्यसमाज" स्थापित होगया । आर्य्यसमाज के होते ही बहुत कुछ काम होने लगा और लोगों की रुचि समाज की ओर बढ़ने लगी बहुतसे लोग यद्यपि किसी कारण से समाज में प्रविष्ट न हो सके, परन्तु मूर्त्तिपूजा और अनेक झूठे विश्वासों से बचगये । स्वामीजी ने सब को विज्ञापित कर दिया कि यदि किसी को मुझसे शास्त्रार्थ करना हो या मेरी किसी बात पर आक्षेप करना हो तो मैं सर्वदा उद्यत हूं, परन्तु किसी ने करवट तक नहीं बदली । जब लोगों ने पौराणिक

पण्डितों को लज्जित करना आरम्भ किया यहांतक कि किसी २ ने वृत्ति तोड़ने की भी धमकियां दीं तब लाचार उन्होंने अमृतसर के प्रसिद्ध पण्डित रामदत्तजी की शरण ली और निवेदन किया कि यहां आप ही हम सबके एकमात्र आधार व आश्रय हैं, आप हमारी लाज रखिये अर्थात् स्वामीजी से शास्त्रार्थ कीजिये अन्यथा हमारी आजीविका भी जाती रहेगी। पण्डितजी स्पष्टवक्ता थे। उन्होंने स्पष्ट कहदिया कि मुझमें स्वामीजी के सम्मुख जाने की शक्ति नहीं है इसपर भी जब उन्होंने न माना तो पण्डितजी हरिद्वार चले गये।

मेरा काम वेदों की आज्ञा पर स्वयं चलना और औरों को चलाना है

एक दिन पं० विहारीलाल साहब एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर अमृतसर ने स्वामीजी से कहा कि यदि आप मूर्त्तिपूजा का खंडन न करें तो यहां के सब लोग आपके सभासद् व सहायक हो जावें। स्वामीजी ने कहा कि मैं सत्य को हाथ से नहीं छोड़ सकता, मुझे किसी के सहायक होने न होने से प्रयोजन नहीं है। मेरा काम वेदों की आज्ञा पर स्वयं चलना और औरों को चलाने के लिये प्रवृत्ति दिलाना है। एक दिन सरदार हरचरणदास साहब रईस अमृतसर स्वामीजी से मिलने के लिये गये, उनसे बातचीत करते हुए स्वामीजी ने कहा कि इस समय हमारे देश में ऐसे ऐसे रईस रह गये हैं कि जिनसे चला तक नहीं जाता, ऐसे लोग देश का क्या भला कर सकते हैं? वास्तव में बात यह थी कि सरदार साहब इतने स्थूलकाय थे कि उनसे दश क़दम भी चला नहीं जा सकता था। मिस्टर परकन्सन साहब कमिश्नर अमृतसर से भी स्वामीजी मिले थे और धार्मिक बातचीत भी हुई थी, जिससे कमिश्नर साहब को स्वामीजी का अभिप्राय और उद्देश्य भले प्रकार विदित होगया था। दूसरीबार स्वामीजी १५ मई सन् १८७८ ई० को अमृतसर में पधारे थे और सरदार भगवानसिंह साहब के बाग़ में ठहरे थे। इसबार उनके व्याख्यान अमृतसर के मलोई बुंगे में हुआ करते थे और सहस्रों मनुष्य सुनने के लिये आया करते थे। एक दिन रायबहादुर बागरमल साहब रईस अमृतसर के छोटे भाई लाला ईश्वरदासजी भी स्वामीजी के पास गये और विना सोचे समझे बोलने लगे। स्वामीजी ने उनसे स्पष्ट कहदिया कि आपको शास्त्रों का परिचय नहीं है इसलिये आपको इन विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं है इस पर लाला साहब रुष्ट होगये और उन्होंने हठ में आकर एक हिन्दूसभा बनाई। सरदार दयालसिंहजी साहब मजीठिया से एक दिन वेदों के विषय में स्वामीजी की बातचीत होरही थी। आग्रह के आवेश से सरदार साहब बाद (बहस)

के नियमों का पालन न कर सके। स्वामीजी ने कईबार संकेत से कहा कि सरलता के साथ बातचीत होनी चाहिये, परन्तु सर्दार साहब किसी कारण से उस समय अपने वेग को नहीं रोक सके तब स्वामीजी ने कहा कि शास्त्रार्थ की यह रीति नहीं है, हम समय नियत करते हैं, घड़ी बीच में रख लीजिये। नियत समय तक हम बोलें, उतनी ही देर तक आप, अन्यथा इस वार्तालाप का कुछ फल न होगा। यद्यपि स्वामीजी का यह कथन अनुचित न था, परन्तु न मालूम क्यों सरदार साहब को बुरा लगा और वे सहसा उठकर चले गये, फिर वे कभी स्वामीजी से न मिले।

पौराणिक पण्डितों की चाल पौराणिक पण्डितों ने अन्त में एक नई चाल चली, जब सुना कि शीघ्र ही स्वामीजी यहां से जानेवाले हैं तो लोगों में प्रसिद्ध किया कि हम शास्त्रार्थ करेंगे। इस पर आर्यसमाज ने विज्ञापन दिया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के लिये सर्वदा और सर्वथा उद्यत हैं आइये, परन्तु किसी ने उत्तर तक नहीं दिया, बहुत कहने सुनने पर यह निश्चय हुआ कि सरदार भगवानसिंह साहिब के मकान में शास्त्रार्थ हो। नियत समय पर पांच छ: हज़ार मनुष्य शास्त्रार्थ को सुनने के लिये एकत्रित हुये जिनमें सत्तर के लगभग नामी रईस और प्रतिष्ठित पुरुष थे। दो चौकियां आमने सामने बिछाई गईं इसलिये कि शास्त्रार्थ में गड़बड़ न हो और बीच में कोई बोलने न पावे, यह सब कुछ हुआ पर पौराणिक पंडित एक भी न आया। इतने में ही लाला मोहनलाल साहब वकील खड़े हुए और कहा कि पंडित लोग बाहर खड़े हैं। भीतर आने की आज्ञा चाहते हैं बड़ी प्रसन्नता के साथ उनसे कहा गया कि वे आवें उन्हें रोका किसने है? इसके पश्चात् बहुतसे उजड्ड ब्राह्मण जय जय के शब्द करते हुये भीतर घुस आये और पांच छ: ब्राह्मण स्वामीजी के सामने अकड़ कर बैठ गये उधर उनके चेलों ने ईंट पत्थर फेंकने प्रारम्भ किये, जब यह दशा देखी तो वे लोग पुलिस के भय से अचानक उठ खड़े हुये और चलते समय यह कह गये कि हम अपने सिद्धान्त पीछे से लिखके भेज देंगे, परन्तु किसने भेजना था, और क्या भेजना था? यह भी एक स्वांग था, एक दिन शुभचिन्तकता से किसी ने स्वामीजी को सूचना दी कि आज रात को कुछ निहंग (एक प्रकार के सिक्ख साधु) आप को मारने के लिये आवेंगे, स्वामीजी ने इस बात की कुछ परवाह न की, किन्तु जितने मनुष्य रात को उनके आश्रम में सोया करते थे उनको कह दिया कि आज कोई यहां न रहे। जिस ईश्वर की आज्ञा का हम पालन करते हैं वही हमारा रक्षक है। स्वामीजी के पधारने से पूर्व अमृतसर के पौराणिक पण्डित सर्वसाधारण के

सम्मुख वेदमंत्र नहीं पढ़ा करते थे, परन्तु स्वामीजी के प्रताप से सर्वसाधारण को बुला बुला कर वेदमन्त्र सुनाने लगे।

४० हिन्दू विद्यार्थियों का ईसाई होते होते बचना

जिस समय पहिलीवार स्वामीजी अमृतसर पधारे थे उस समय लगभग ४० हिन्दू विद्यार्थी अपने धर्म से विमुख थे और ईसवी धर्म की ओर आकर्षित थे और अपने आपको विना बपतिस्मे के ईसाई कहते थे। उन्होंने अपनी अलग एक सभा बनाली थी और ईसाई होने को ही थे, परन्तु स्वामीजी के उपदेशों का उनपर ऐसा प्रभाव हुआ कि ईसाई धर्म से उनकी रुचि बिलकुल हट गई। एक दिन एक पादरी साहब ने स्वामीजी से कहा कि आप हमारे साथ मेज़ पर बैठकर खाना खावें, स्वामीजी ने कहा कि इससे लाभ क्या होगा? उन्होंने कहा कि इससे परस्पर प्रेम बढ़ेगा। स्वामीजी ने कहा कि यदि यही बात है तो ईसाइयों में अवान्तर भेद क्यों है और क्यों वे एक दूसरे के शत्रु हैं? इसपर पादरी साहब निरुत्तर होकर चुप होगये। पादरियों ने घबराकर कलकत्ते से एक बंगाली ईसाई को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलाया था पहिले उन्होंने स्वीकार करलिया था कि आवेंगे पर पीछे से लिख दिया कि मेरी लड़की अस्वस्थ है इसलिये मैं नहीं आसकता।

गुरुदासपुर में वैदिकधर्म-प्रचार

अमृतसर से चलकर १८ अगस्त सन् १८७७ ई० को स्वामीजी गुरुदासपुर में पहुंचे नगर के प्राय: प्रतिष्ठित रईस और ज़िले के देशीय आफ़ीसर और कर्मचारी स्वागत के लिये शहर से बाहर आये हुये थे, डाक्टर विहारीलाल साहब ने स्वामीजी के आतिथ्य का भार अपने ऊपर लिया था। स्वामीजी ने पहुंचते ही धर्मोपदेश प्रारम्भ कर दिया, मूर्त्तिपूजा का धड़ल्ले से खण्डन किया। यह बात अनेक महाशयों को बुरी लगी, निदान उन्होंने साधु गणेशगिरिजी को स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बहुत कुछ उकसाया, परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हम इस काम के योग्य नहीं हैं, लोगों के बार २ कहने पर एक दिन उन्होंने कहदिया कि यदि तुम लोग अधिक आग्रह करोगे तो हम यहां से कहीं अन्यत्र चले जावेंगे। निदान मूर्त्तिपूजा के सहायकों ने पं० लक्ष्मीधर और पं० दौलतरामजी को दीनानगर से बुलवाया, परन्तु यह दोनों महाशय स्वामीजी की वक्तृता को सुनकर अवाक् होगये। बहुत कुछ कहने सुनने पर भी उनका साहस न हुआ कि थोड़ी देर भी स्वामीजी से सम्भाषण करें, अपशब्द मुंह से निकालते हुए सभा से उठ

लड़े हुए स्वामीजी के लगातार वैदिकधर्म के प्रचार से २५ अगस्त सन् १८७७ ई० को गुरुदासपुर में आर्य्यसमाज स्थापित होगया और कई योग्य और भद्रपुरुष उसके अधिकारी चुने गये।

जालंधर में वैदिक-धर्म का प्रचार

पहिलीवार एप्रिल सन् १८७७ ई० में स्वामीजी लुधियाने से लाहौर जाते हुए सिर्फ़ एक रात कुंवर सुचेतसिंह साहब की कोठी में ठहरे थे, परन्तु तब कोई व्याख्यान नहीं दिया था दूसरीवार १३ सितम्बर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी अमृतसर से जालन्धर पधारे और कुंवर साहब की कोठी में ठहरे। पहिले दिन उन्होंने कुंवर साहब की हवेली में व्याख्यान दिया, परन्तु भीड़ अधिक हो जाने से स्थान का संकोच रहा, इसलिये दूसरे दिन उनका व्याख्यान कुंवर विक्रमानसिंह के मकान में हुआ, यहां स्वामीजी ने लगातार ४० के लगभग व्याख्यान दिये, जिससे सारे नगर और प्रान्त में धूम मच गई। दूर २ से लोग उनके उपदेश सुनने को आने लगे, यहां पर स्वामीजी ने मूर्त्तिपूजा और मृतकश्राद्ध का खूब ही खंडन किया। एक दिन स्वामीजी के पास बहुतसे सज्जन बैठे हुए थे स्वामीजी ने कहा कि मृतकश्राद्ध किसी तरह ठीक नहीं है। पौराणिक लोग कहते हैं कि हम पितरों का श्राद्ध करते हैं, यदि किसी संस्कृत के विद्वान् से पूछा जावे तो उसे कहना पड़ेगा कि व्याकरण की रीति से पितृशब्द का प्रयोग जीवित पुरुषों में ही हो सकता है मृतकों में नहीं। एक महाशय ने पं० शिवरामजी की ओर संकेत करके कहा कि यहां यह भी एक प्रसिद्ध पण्डित हैं। स्वामीजी ने उनसे पूछा कि आप सत्य २ कहें कि जो कुछ हम कहते हैं।वह ठीक है या नहीं? पण्डितजी ने स्पष्ट कह दिया कि जो कुछ आप कहते हैं वास्तव में वह ठीक है। यहां के प्रसिद्ध पण्डित रामदत्तजी ऑनरेरी मजिस्ट्रेट से मृतकपूजा के विषय में स्वामीजी की साधारण बातचीत हुई थी, परन्तु नियमपूर्वक शास्त्रार्थ नहीं हुआ। पं० रामदत्तजी मृतकपूजा के पोषक थे और इसे धर्म बतलाते थे, परन्तु वे इस अवसर पर वेदों से अपने पक्ष को पुष्टि नहीं कर सके। कुंवर विक्रमानसिंह साहब के सन्मुख स्वामीजी का मौलवी अहमदहुसेन साहब उर्फ़ वलीमुहम्मद से शास्त्रार्थ हुआ था, जिसे मिर्ज़ा मुवहद साहब ने उन्हीं दिनों में निष्पक्ष होकर मुद्रित करादिया था।

छावनी फ़ीरोज़पुर में वैदिकधर्म का प्रचार

जिन दिनों स्वामीजी पंजाब में पधारे थे, उन दिनों छावनी फ़ीरोज़पुर में एक सभा थी, जिसका नाम हिन्दूसभा था। इस सभा में एक बड़े प्रतिष्ठित पुरुष ने (जो लाहौर में स्वामीजी

के उपदेश सुन आये थे) कहा कि लाहौर में आजकल एक महात्मा आये हुये हैं जो संस्कृत के बड़े विद्वान् हैं और वेदादि शास्त्रों से अपने धर्म के महत्व को सर्वोपरि सिद्ध करते हैं। इस पर सब की यह राय हुई कि उनको यहां बुलाया जावे। निदान २६ अक्टूबर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी फीरोज़पुर पधारे और लाला बिहारीलालजी की कोठी में (जो तोपखाने के समीप थी) ठहरे। यहां पर भी स्वामीजी ने, जबतक रहे, वैदिकधर्म का खूब प्रचार किया। यहां के समस्त पौराणिक पण्डितों की ओर से कुछ प्रश्न बनकर आये थे, जिनका नम्बरवार उत्तर स्वामीजी ने सभा में ही देदिया था, इसके पश्चात् फिर किसी ने कोई शंका नहीं की। यहां के बड़े मन्दिर के पुजारी पं० रघुनाथजी भी स्वामीजी से मिलने गये थे। स्वामीजी ने प्रथम उनसे नाम पूछा, फिर पूछा कि आप क्या करते हैं ? उन्होंने कहा कि "पुजारी हूं" स्वामीजी ने कहा कि "पुजारी" शब्द के क्या अर्थ हैं ? इसपर वे चुप होगये, तब स्वामीजी ने उनसे कहा कि "पुजारी" दो शब्दों से मिलकर बना है, पूजा और अरि अर्थात् पूजा के शत्रु। पं० रघुनाथसहाय अर्थ सुनकर चले गये।

एक दिन नियमानुसार व्याख्यान देने के पश्चात् सभा में स्वामीजी ने आज्ञा देदी कि यदि किसी को कुछ शंका करनी हो तो करे वा यदि कोई महाशय कुछ पूछना चाहते हों तो पूछ सकते हैं ? जब कोई न उठा तो महनतीराम दफ़्तरी ने खड़े होकर एक हिन्दी का दोहा पढ़ना आरम्भ किया जिसका पहिला पद इस तरह पर था:— "ज्ञान कर ज्ञान को अंबर कर खेल चौगान मैदान में" यह आगे कुछ पढ़ने को ही था कि स्वामीजी ने रोक दिया और कहा कि पहिले इसके अर्थ करलो फिर आगे चलो। दफ़्तरी इसके अर्थ करने में झिझका, तब स्वामीजी ने कहा कि यदि तुम को इसके अर्थ करने में संकोच है तो हम करते हैं ध्यान देकर सुनो:—"पहिले कुछ लिख पढ़ फिर लिखा पढ़ा सब भूल जा और मैदान में गिल्ली डण्डा खेला कर" यह अर्थ सुनकर महनतीराम बहुत लाल पीला हुआ और यह कहने लगा कि आप पढ़े लिखे चाहे कितने ही हों परन्तु आप सन्तों के रहस्य को क्या समझें ? फिर दफ़्तरी साहब ने स्वामीजी से पूछा कि आपका गुरु कौन है ? स्वामीजी ने कहा कि हमारा गुरु वेद है। यह सुनकर दफ़्तरी साहब बैठ गये और फिर कुछ न बोले।

रावलपिण्डी में वैदिकधर्मप्रचार

रायबहादुर सरदार सुजानसिंहजी साहब रईस रावलपिण्डी ने लाहौर में स्वामीजी के व्याख्यान सुने थे, उन्होंने रावलपिण्डी आकर कुछ लोगों से (जिन्हें संस्कृत में कुछ नाममात्र बोध

था) कहा कि स्वामीजी मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं और वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से इसे निषिद्धकर्म ठहराते हैं। यह सुनकर वे लोग कहने लगे कि ऐसा कभी हो सकता है ? मूर्त्तिपूजा तो सनातन से चली आती है फिर कौन इसे रोक सकता है ? सरदार साहब ने उनसे कहा कि यदि आप में कुछ योग्यता है तो आप अपने प्रमाण वा हेतु लिखकर हमको देदो हम स्वामीजी के पास भेजदेंगे। निदान उन लोगों ने दो चार पुराणों के श्लोक लिखकर सरदार साहब को देदिये, सरदार साहब ने डाक द्वारा स्वामीजी के पास लाहोर भेजदिये। स्वामीजी उनको देखकर हंसे और उत्तर में सरदार साहब को लिखदिया कि इनके उत्तर हम स्वयं रावलपिण्डी आकर देंगे। निदान ७ नवम्बर सन् १८७७ ई० को स्वामीजी रावलपिण्डी पहुंचे और सेठ जामनजी की कोठी में ठहरे। यहां पहुंचते ही स्वामीजी ने अपने व्याख्यान क्रमशः प्रारम्भ करदिये, लगभग दो महीने के रावलपिण्डी में रहे, परन्तु प्रतिदिन अनवरत वैदिकधर्म के प्रचार में तत्पर रहे। एक दिन कुछ ईसाई स्वामीजी से कहने लगे कि आपने इंजील के प्रमाण से जो कुछ हज़रत लूत के विषय में कहा है वह मिथ्या है, स्वामीजी ने कहा, मालूम होता है कि आपने इंजील नहीं पढ़ी जब वे हठ किये गये तो स्वामीजी ने असल आयत निकाल कर उनके आगे रखदी। इसे पढ़कर वे जनसमुदाय में अत्यन्त लज्जित हुये और फिर कभी उन्होंने ऐसा साहस न किया। पौराणिक पण्डित स्वामीजी के विषय में यह प्रसिद्ध करने लगे कि यह लोगों को ईसाई करने के लिये आये हैं। जब कुछ न चली तो उन्होंने पारसी सेठ साहब को, जिनकी कोठी में यह ठहरे हुए थे, उकसाया कि आप स्वामीजी से अपनी कोठी खाली करा लीजिये। स्वामीजी को पहिले ही से इस बात की सूचना होगई थी, इसलिये वे स्वयं उस मकान को छोड़कर सरदार सुजानसिंह के बाग़ में जाठहरे। कनखल की गद्दी के महन्त साधु सुपन्तगिरि संयोग से उन दिनों रावलपिंडी में आये हुये थे, लोगों ने उनसे स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु उन्होंने टाल दिया और कहदिया कि स्वामीजी वेदवक्ता हैं वे जो कुछ कहते हैं उसे हम नहीं कह सकते। यहां महाराजा साहिब काश्मीर का निमन्त्रणपत्र स्वामीजी के नाम आया था, जिसमें उन्होंने बड़े विनय के साथ स्वामीजी को अपनी रियासत में बुलाया था। परन्तु स्वामीजी ने यह कहकर अस्वीकार करादया कि महाराजा साहब मूर्त्तिपूजक हैं और सैकड़ों मन्दिर शिवालय आदि इसी प्रयोजन के लिये उन्होंने बनवाये हुये हैं। हम डंके की चोट मूर्त्तिपूजा का खण्डन करेंगे सम्भव है कि किसी से लड़ाई दंगा हो,

इससे उचित यही है कि संप्रति हमें जो और बहुतसे आवश्यक काम करने हैं उन्हें पूरा करें अभी कश्मीर में जाना ठीक नहीं है। स्वामीजी ने एक दिन यह भी कहा था कि एक राजा साहब मारवाड़ में लगभग पन्द्रह सेर रुद्राक्ष के दाने अपने शरीर पर लादे रहते थे और वे उन्हें गौरीशङ्कर बतलाते थे हमने उन्हें उपदेश किया कि ये एक वृक्ष के फल हैं इन को धारण करने से क्या लाभ? उस समय तो उन्होंने न माना परन्तु सच्चाई अपना प्रभाव दिखाती है, दूसरी बार जो वे हमसे मिलने आये तो सिर्फ़ एक दाना रुद्राक्ष का उनके शरीर पर था, हमने उनको साधुवाद कहा कि आपने बहुत कुछ उन्नति की है। राजा साहब ने कहा कि यह सब आपके उपदेश का फल है। इस दृष्टान्त से तात्पर्य यह था कि महाराजा साहब कश्मीर पर भी वैदिकधर्म का प्रभाव पड़ सकता है परन्तु इसके लिये समय चाहिये। एक पौराणिक पण्डित ने शास्त्रार्थ के लिये स्वामीजी को चिट्ठी लिखी उसमें इतनी अशुद्धियां थीं कि प्रति-पंक्ति में दो तीन शब्दों पर हरताल लगी हुई थी। स्वामीजी ने उनके सिवाय और भी अशुद्धियां निकाल कर कहदिया कि जिस विचारे को अभीतक एक साधारण चिट्ठी लिखनी नहीं आती वह शास्त्रार्थ तो क्या करेगा। उसके मन में जो कुछ सन्देह हो वह प्रसन्नता से आकर निवारण करले पर पण्डितजी में इतनी शक्ति कहां थी कि सन्मुख आते। निदान स्वामीजी की उपस्थिति में ही रावलपिण्डी में आर्यसमाज स्थापित होगया।

झेलम में वैदिकधर्म का प्रचार

रावलपिण्डी से गुजरात के लिये आते हुए स्वामीजी झेलम के रेलवे स्टेशन पर उतरे और वहां थोड़ी देर के लिये भ्रमण करते हुए मैदान की तरफ़ निकल गये। यहां के रिसाले के मास्टर लक्ष्मीप्रसादजी ने लखनऊ में स्वामीजी को देखा था, किसी ने उनको स्वामीजी के आगमन की सूचना देदी। उन्होंने तुरन्त स्वामीजी के पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि आप कुछ दिन यहां ठहर कर उपदेश करें, स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और ३१ दिसम्बर १८७७ ईस्वी से १३ जनवरी सन् १८७८ ई० तक झेलम में रहे। गवर्नमेण्ट स्कूल में इनके व्याख्यान हुआ करते थे। एक दिन एक ईसाई पादरी साहब घर से कुछ प्रश्न लिखकर लाये थे, परन्तु जिस समय वे सभा में स्वामीजी के सन्मुख पढ़ने खड़े हुए उस समय उनका सारा शरीर कांपने लगा और वाणी भी उखड़गई, निदान वे स्वयं सभा से बाहर चले गये और फिर कभी नहीं आये। स्वामीजी के प्रभावशाली उपदेश से झेलम में भी आर्यसमाज स्थापित

होगया। कई बुद्धिमान् और सत्यग्राही मुसलमान भी स्वामीजी की प्रशंसा करते थे और वे बड़े उत्साह से स्वामीजी के व्याख्यान सुनने आया करते थे जिन दिनों स्वामीजी झेलम में थे, उन्हीं दिनों झेलम नदी के तट पर एक वृद्ध योगी रहा करते थे, उनकी स्वामीजी से संस्कृत में प्राय: बातचीत हुआ करती थी, जिसमें किसी प्रकार का मतभेद न होता था।

गुजरात में वैदिक-धर्मप्रचार

झेलम से चलकर १३ जनवरी सन् १८७८ ई० को स्वामीजी गुजरात पहुंचे, यहां डाक्टर विष्णुदास साहिब ने उनके आतिथ्य का भार अपने ऊपर लिया था। स्वामीजी के व्याख्यान गवर्नमेन्ट स्कूल के बोर्डिङ्गहाउस में हुआ करते थे, श्रोताओं की भीड़ लग जाती थी, दो पौराणिक पण्डितों ने (जिनका नाम गोस्वामी विष्णुदास और पं० होशनाकराय था) यह जानते हुये भी कि हम स्वामीजी के सन्मुख कुछ भी नहीं हैं प्रसिद्धि के लोभ से कुछ छेड़छाड़ की अर्थात् कुछ संस्कृत के शब्दों को जोड़ जाड़ कर सभा में यह प्रकट किया कि यह वेद की श्रुतियां हैं। स्वामीजी ने कहा कि चारों वेद रक्खे हुये हैं इनमें से यह निकालो तो कहने लगे कि हम अपने वेद में से दिखा सकते हैं, दूसरे दिन स्वामीजी ने ललकार कर उनसे कहा कि अपने वेद लाओ और उनमें यह वाक्य दिखाओ। परन्तु वहां किसने और क्या दिखाना था? उनका प्रयोजन तो कुछ और ही था जिसको सब जान गये। एक दिन पौराणिक पण्डितों की दुर्दशा देख कर मिस्टर बोकेनन ने स्वामीजी से पेन सभा में कहा कि आप इन बिचारे अन्धों के टेकने की लाठी छीनते हैं इसके बदले में आप इन्हें देते क्या हैं? स्वामीजी ने इसका उत्तर दिया कि मैं इन्हें उसके बदले में वेद देता हूं और योगाभ्यास। एक दिन सभा में स्वामीजी ने गायत्री के अर्थ करके सुनाये जिनको सुनकर मौलवी मुहम्मदअली साहब कहने लगे कि महाराज! यदि गायत्री के यही अर्थ हैं तो हम भी इसका जप किया करेंगे। एक दिन कुछ चालाक लोगों ने आपस में सलाह करके स्वामीजी से यह प्रश्न किया कि "आप ज्ञानी हैं या अज्ञानी?" उनका अभिप्राय यह था कि यदि वे अपने आप को ज्ञानी कहेंगे तो हम उन्हें अभिमानी प्रकट करेंगे और यदि अज्ञानी कहेंगे तो फिर हम उनसे कहेंगे कि आपको उपदेश करने का अधिकार नहीं हो सकता, स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मैं कई बातों में अज्ञानी हूं और कई बातों में ज्ञानी। यथा—वाणिज्य, कृषि, अंग्रेज़ी, फारसी आदि में अज्ञानी हूं तथा संस्कृत, वेद और धर्मशास्त्र की बातों में ज्ञानी हूं यह सुनकर वे लोग चकित होगये। कितने ही

धूर्तों ने स्वयं या किसी के बहकाने से स्वामीजी पर यहां ईंटें भी फेंकी थीं परन्तु उन्होंने इसकी कुछ परवाह नहीं की, किन्तु लोगों के यह कहने पर कि ऐसे दुष्टों को दण्ड मिलना चाहिये, स्वामीजी यह कह दिया करते थे कि ये मूर्ख हैं इन पर क्रोध नहीं किन्तु दया करनी चाहिये।

वज़ीराबाद में धर्मप्रचार

गुजरात से रवाना होकर २ फर्वरी को स्वामीजी वज़ीराबाद पहुंचे और समनबुर्ज में ठहरे। यहां भी व्याख्यान धूमधाम से होने लगे। पौराणिक लोग जब कुछ वश नहीं चलता था तो झुंझलाकर बीच से ही उठ जाते थे और जहांतक हो सकता था औरों को भी साथ लेजाने की चेष्टा किया करते थे निदान उन्होंने एक भिक्षुकवृत्ति पौराणिक ब्राह्मण को, जो मूर्ख होने के अतिरिक्त उन्मत्त भी था, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये चुना और साथ ही यह मत्सर (तमस्सुर) किया कि सभा में बिना आज्ञा के एक टूटी सी कुर्सी बिछाकर उस सिड़ी ब्राह्मण को उस पर बैठा दिया और प्रसिद्ध कर दिया कि यह स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेगा इसे दो तीन दिन तक बराबर सभा में लाते रहे और कुछ अट्ट सट्ट संस्कृत के वाक्य रटाकर उससे कहलवाया करते थे। परन्तु जब यह धृष्टता (बेहूदगी) बहुत ही बढ़गई तो स्वामीजी ने उन लोगों को लताड़ दी, इस पर लोगों ने हल्ला कर दिया, परन्तु समझदार लोगों ने दरवाज़े बन्द कर लिये और उन धूर्त्तों को घेर कर बाहर निकाल दिया। स्वामीजी के एक क्लर्क को इस अवसर पर कुछ चोट आई थी।

गुजरांवाले में धर्मप्रचार

वज़ीराबाद से विदा होकर ७ फरवरी सन् १८७८ ई० को स्वामीजी गुजरांवाले पहुंचे और एक उत्तम स्थान पर ठहरे। इनके पधारते ही नगर के तीन चार प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित शहर छोड़कर कहीं बाहर चले गये इसलिये कि कहीं लोग स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये तङ्ग न करें। यहां के पादरियों ने स्वामीजी से कुछ छेड़छाड़ आरम्भ की थी, परन्तु जब देखा कि इनके सामने हमारी दाल न गलेगी तो यह चाल चली कि एक दिन अपने गिर्जे में शास्त्रार्थ के लिये समय नियत किया और चार पांच घण्टे पहिले वहां आकर बैठ गये और कुछ अपने स्कूल के लड़कों को बैठा लिया और स्वामीजी को बुलाने के लिये अपना आदमी भेज दिया कि हम शास्त्रार्थ के लिये तय्यार हैं, आप आइये। स्वामीजी उस समय वेदों का भाष्य कर रहे थे, अब उन्होंने

ईसाइयों का सन्देश (पैग़ाम) सुना तो बड़े आश्चर्य में होकर कहा कि कल सर्व-साधारण के सम्मुख चार बजे का समय नियत हो चुका है तथा यह भी स्थिर हो चुका है कि स्थान कोई विशाल होगा अब यह नियमविरुद्ध कार्रवाई क्यों की गई ? निदान उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि हम नियम के विरुद्ध काम नहीं कर सकते। जब नगर के लोगों को इस बात की सूचना हुई तो उन्होंने ईसाइयों पर आक्षेप किया और नियत समय एक उत्तम जगह पर स्वामीजी का व्याख्यान कराया और उनको सूचना देदी कि यदि शास्त्रार्थ करना हो तो इस समय कर सकते हैं। परन्तु ईसाइयों की तो यह दशा हुई कि जब तक स्वामीजी गुजरांवाले में रहे एक दिन भी सामने न आये।

मुलतान में धर्मप्रचार स्वामीजी गुजरांवाले से रवाना होकर लाहोर ठहरते हुये १२ मार्च सन् १८७८ ई० को मुलतान पहुंचे। इन दिनों शहर में होलियों की हू हा मची हुई थी इसलिये सन्ध्या को सैकड़ों मनुष्य स्वामीजी के उपदेश सुनने आया करते थे। यहां पर गोकुलिये गोसाइयों का बहुत ज़ोर था, अतएव आवश्यक समझ कर स्वामीजी ने वैष्णवमत के सिद्धान्त और गुसाइयों के रहस्य की खूब पोल खोली। इस पर शहर और उसके आसपास में बड़ी हलचल मची। गुसाई लोग स्वामीजी के रक्त के प्यासे होगये और उनसे लड़ने को उद्यत होगये। एक दिन अपने बहुतसे चेलों को साथ लेकर शंख और घड़ियाल बजाते हुए और जयजयकार मचाते हुए सभा में आगये, स्वामीजी उस समय व्याख्यान दे रहे थे। उन्होंने इन लोगों की धूर्त्तता पर कुछ भी ध्यान न दिया और बुद्धिमान् पुरुष गोसाइयों की रंगत देखकर तत्काल ही प्रबन्ध के लिये उद्यत होगये। परन्तु इन डरपोक गुसाइयों में इतना साहस कहां था कि कुछ कहसकें या करसकें। अपनासा मुंह लेकर जैसे आये थे वैसे ही चले गये। छावनी मुलतान के कई प्रतिष्ठित पारसियों ने स्वामीजी को विशेष रीति पर आमंत्रित करके उनका व्याख्यान सुना था और बड़े आदर और सत्कार से उनका सन्मान किया था। प्रत्येक मत और सम्प्रदाय के लोग इनके व्याख्यानों में आया करते थे और अपने सन्देह निवारण किया करते थे। राय सागरमल साहब एग्ज़ीक्युटिव इञ्जीनियर भी उन दिनों मुलतान ही में थे, वे लोगों से प्रायः कहा करते थे कि मैं चौदहसौ पुस्तकें पढ़कर नास्तिक हुआ हूं। स्वामीजी से तीन दिन तक बराबर उनकी बातचीत रही जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने शुद्ध मन से नास्तिकता छोड़ देने की प्रतिज्ञा की। वहां एक दिन स्वामीजी ने व्याख्यान देते हुए कहा कि जो लोग

अपनी लड़कियां बेचते हैं अर्थात् रुपया लेकर उन्हें ब्याहते हैं, उनमें और कञ्जनों में कुछ भेद नहीं है। यह लोग एक से ही अधिक रुपया लेकर अपनी लड़की उसको देदेते हैं और कञ्जन अनेक मनुष्यों से रुपया व सामान लेकर उनको देते हैं, कमाई अपनी २ लड़कियों की दोनों बुरी तरह से खाते हैं। एक कश्मीरी पण्डित की मांसभक्षण के विषय में यहां स्वामीजी से बातचीत हुई थी, स्वामीजी ने कहा कि मांस खाना सब तरह पाप है शरीर और आत्मा दोनों के लिये हानिप्रद है, विशेष कर आत्मा के लिये। यदि कुछ सन्देह हो तो परीक्षा कर लीजिये। निदान स्वामीजी ने उन्हें योग की एक रीति बतलाई और मांस खाने का निषेध करदिया। पण्डित साहब ने क्रिया प्रारम्भ की थोड़े ही दिनों में आत्मा में एक प्रकार का प्रकाश मालूम होने लगा, अभी क्रिया पूरी नहीं हुई थी कि एक दिन उनके लड़के ने खाने में मांस का अंश देदिया, उसे खाते ही हृदय में अन्धकार छागया और वह आत्मिक आनन्द क्षणभर में जाता रहा।

एक दिन पं० कृष्णनारायणजी ने स्वामीजी से पूछा कि आजकल प्रोफ़ेसर मेक्स-म्यूलर साहब वेदों के ज्ञाता और भाष्यकार कहलाये जाते हैं, आपकी इस विषय में क्या सम्मति है? स्वामीजी ने कहा कि वेदविद्या में मेक्सम्यूलर अभी विद्यार्थी हैं, जबतक वह सायण और महीधर के पादचिह्न पर अपना पद रखना नहीं छोड़ेंगे स-म्भव नहीं कि वे वेदों के वास्तविक अर्थ को समझ भी सकें। एक महाशय के पूछने पर यहां स्वामीजी ने यह भी कहा था कि एक थाली में खाना खाने या एक कटोरे में पानी पीने या एक निगाली से हुक्का पीने का शास्त्र में निषेध है। पं० यशवन्तराय साहब सिविलसर्जन ने स्वामीजी की पुष्टि की थी और इस निषेध के लाभ सबको बतलाये थे।

रुड़की में धर्म-प्रचार

कई प्रतिष्ठित महाशयों की विशेष अभ्यर्थना पर २५ जुलाई सन् १८७८ ई० को स्वामीजी रुड़की में पहुंचे और अपना काम आरम्भ कर दिया। समझदार लोग और रुड़की कालिज के विद्यार्थी बड़े उत्साह से स्वामीजी के व्याख्यानों में सम्मिलित हुआ करते थे। विचार-शील मुसलमान भी स्वामीजी की प्रशंसा करते थे, परन्तु आम मुसलमानों ने यह समझा कि हिन्दू जो पहिले हम से किसी दशा में शास्त्रार्थ (मुबाहिसे) की शक्ति नहीं रखते थे उन्होंने स्वामीजी को हमारे प्रतिपक्ष (मुक़ाबिले) में बुलाया है इसलिये वे बहुत भड़के यहांतक कि लड़ने पर उद्यत हो गये। दो चार बार सभा में भी विघ्न डालने की चेष्टा की, परन्तु स्वामीजी ने इनकी कुछ परवाह न की और वे स्वत-

म्रता के साथ बराबर मतमतान्तरों का खण्डन करते रहे। व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी सबको सूचित कर दिया करते थे कि यदि किसी को कुछ पूछना या आक्षेप करना या शास्त्रार्थ करना हो तो वह इस समय कर सकता है। स्वामीजी यहां अपने व्याख्यानों में प्राय: यह कहा करते थे कि वास्तव में बड़े शोक का स्थान है कि अन्य देश के रहने वाले हमारे धर्म की खोज में लगे हुये हैं और हम आर्यसन्तान कहला कर ऐसे सोये हैं कि कुछ खबर नहीं, लकीर के फ़कीर बने हुए हैं। रुड़की निवासियों ने एक पौराणिक परिडत को, जो आर्मेन स्कूल में अध्यापक थे, बहुत कुछ कहा कि आप स्वामीजी से शास्त्रार्थ करें और कम से कम मूर्त्तिपूजा को तो वेदों से सिद्ध करें, परन्तु परिडतजी यह उत्तर देकर चुप होगये कि मूर्त्तिपूजा वेदों में नहीं है, इसके सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है। स्वामीजी ने रुड़की इञ्जीनियरिङ्ग कालिज के छात्रों का उत्साह और रुचि देख कर एक दिन पश्चिमीय फ़िलासफ़रों के कल्पित सिद्धान्तों की समालोचना की। डार्विन थ्यूरी का विशेषत: खण्डन किया, स्वामीजी का कथन ऐसा युक्तियुक्त और सारगर्भित था कि अंगरेज़ी पढ़े लिखे लोग चकित थे और कहते थे कि ऐसे प्रबल हेतु और अकाट्य युक्ति पहिले हमने कभी नहीं सुनीं। एक दिन स्वामीजी ने रुड़की कालिज के विद्यार्थियों को कहा कि तुम यह समझते होगे कि सायंस और फ़िलासफ़ी केवल पश्चिमीय शिक्षा पर निर्भर है संस्कृत में क्या रक्खा है। इस समय मैं तुमको बड़ी प्रसन्नता से आज्ञा देता हूं कि तुम किसी सायंस के सिद्धान्त के विषय में मुझ से पूछो और मैं प्रामाणिक संस्कृत पुस्तकों के प्रमाण से तुम्हारा अभी सन्तोष (इतमीनान) कर दूंगा। यह कभी न होगा कि खींचतान कर अपना प्रयोजन सिद्ध करूं किन्तु उनके शाब्दिक अर्थ किये जावेंगे। तुम लोगों की यह बड़ीभारी भूल है कि इस देश के विद्वानों और फ़िलासफ़रों को जङ्गली समझते हो। उन्होंने प्रत्येक प्रकार की विद्याओं और क्रियाओं के सीखने में अपनी उमरें व्यतीत करदी थीं और आत्मिक एवं प्राकृतिक उन्नति में भी सर्वोच्च पदवी को प्राप्त किया था। यह सुनकर कुछ विद्यार्थियों ने सूर्य्य और पृथिवी के भ्रमण और आकर्षण, तत्त्वों की व्यवस्था, पवन, मेघ, रसायन, नक्षत्र, वनस्पति आदि विद्याओं के विषय में प्रश्न किये। स्वामीजी ने प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में संस्कृत के श्लोक पढ़े और सरल शब्दों में उनका अनुवाद करके उनकी सन्तुष्टि करदी कि ये बातें इस देश के बुद्धिमानों से छिपी हुई नहीं थीं। संस्कृतविद्या का प्रचार न रहने से यह सब बातें हमें नई सी मालूम पड़ती हैं, ज्यों २ संस्कृत और वेदविद्या की उन्नति होती जावेगी त्यों २

लोगों की आंखें खुलती जावेंगी और वे संस्कृत के प्राचीन रत्नों को देख कर चकित होजावेंगे। एक दिन स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिये कर्नैल मानसल साहब कमान अफ़सर रुड़की और कप्तान स्टवार्ट साहब कार्टर-मास्टर पधारे, उस समय स्वामीजी इञ्जील की समालोचना कर रहे थे। कर्नैल साहब कप्तान साहब से अनुवाद कराकर प्रत्येक आक्षेप को ध्यान देकर सुनते रहे। तदनन्तर उन्हों ने स्वामीजी से बातचीत शुरू की, देर तक संवाद होता रहा बीच बीच में कर्नैल साहब भड़क भी उठते थे, परन्तु स्वामीजी बड़ी शान्ति और प्रेम के साथ कर्नैल साहब के प्रत्येक आक्षेप का समाधान करते रहे। निदान कर्नैल साहब बिलकुल निरुत्तर होकर चले गये और यह कह गये कि हम कल को इन सब बातों का उत्तर देंगे। परन्तु दूसरे दिन सिर्फ़ कप्तान साहब ही आये कर्नैल साहब नहीं पधारे। मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहब से भी शास्त्रार्थ के लिये पत्रव्यवहार हुआ था, परन्तु फल कुछ न हुआ। एक पौराणिक पण्डित ने संस्कृत व्याकरण में एक पुस्तक लिखी थी, जो काशी में भी हो आई थी और सब जगह से प्रशंसा मिलने पर उन्हें यह अभिमान होगया था कि यह पुस्तक व्याकरण में अद्वितीय बनी है। जब स्वामीजी को उन्होंने दिखलाई तो उन्होंने सैकड़ों अशुद्धियें निकाल दीं और कहा कि पहिले आर्ष ग्रन्थों (अष्टाध्यायी महाभाष्य आदि) को पढ़िये फिर पुस्तक बनाने का साहस कीजिये। इन दिनों यहां एक साधु (जो सतुवा साधु के नाम से प्रसिद्ध थे) आये हुये थे, लोगों ने प्रसिद्ध कर दिया कि सतुवा साधु स्वामीजी से शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु बारबार कहने पर भी वह एक भी दिन न आये। यहां के एक पौराणिक पण्डित जो प्रकट में स्वामीजी से विरोध रखते थे और कहा करते थे कि मूर्त्तिपूजा की वेदों में आज्ञा है अन्त समय में जब चोला छोड़ने को थे अपने चिकित्सक वैद्य से कहने लगे कि यदि मेरे पिता विद्यमान होते तो मैं निस्सन्देह स्वामीजी का अनुयायी होजाता और आर्यधर्म को स्वीकार कर लेता। २० अगस्त सन् १८७८ ईस्वी को रुड़की में स्वामीजी के सम्मुख ही आर्य्य-समाज स्थापित हो गया।

अलीगढ़ में धर्मप्रचार २१ अगस्त सन् ७८ ई० को रुड़की से रवाना होकर २२ अगस्त को स्वामीजी अलीगढ़ पहुंचे और लगातार उपदेश करना प्रारम्भ करदिया। शहर के प्रतिष्ठित और सुशिक्षित एवं व्यापारी लोग बड़े उत्साह से स्वामीजी के व्याख्यान सुनने आया करते थे और प्रत्येक मत व सम्प्रदाय के जन स्वामीजी से अपने सन्देह निवारण किया करते थे। एक दिन स्वामीजी का बड़े धड़ल्ले का

व्याख्यान हुआ था, जिसमें कई हज़ार मनुष्यों की भीड़भाड़ थी। इस सभा के चेयरमैन मौलवी फ़रीदउद्दीन साहब सबजज्ज अलीगढ़ थे उन्हीं दिनों यहां बम्बई के मिस्टर मूलसी ठाकुरसी हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और पंडित श्यामजीकृष्ण वर्म्मा स्वामीजी से मिलने आये थे। २३ अगस्त सन् १८७८ ई० को आनरेबुल सर सय्यद अहमदखां साहब ने स्वामीजी को बम्बई के अभ्यागतों के सहित निमन्त्रित किया परन्तु स्वामीजी अस्वस्थता के कारण नहीं जासके।

मेरठ में धर्मप्रचार

अलीगढ़ से प्रस्थित होकर २६ अगस्त सन् १८७८ ई० को स्वामीजी मेरठ में पधारे और बस्ती से बाहर एक कोठी में ठहरे। इनके आते ही शहर, छावनी और आसपास सर्वत्र चर्चा फैल गई कि स्वामीजी आपहुंचे, अब बनावटी बातों की पोल खुलेगी। स्वामीजी ने आते ही वैदिकधर्म का प्रचार प्रारम्भ करदिया और विज्ञापनों के द्वारा लोगों को सूचित कर दिया कि प्रत्येक को शास्त्रार्थ, शंकासमाधान और धार्मिक प्रश्न करने की आज्ञा है धर्मसभा मेरठ की ओर से कुछ प्रश्न बनकर स्वामीजी के पास आये थे, स्वामीजी ने उनके यौक्तिक उत्तर सप्रमाण अपने व्याख्यान में देदिये। प्रश्न वही थे जो सब पौराणिकों की ओर से प्रायः अवसरों पर हुआ करते हैं। यथा-मूर्त्तिपूजा सनातन से चली आती है इसमें आपको सन्देह क्योंकर होगया है? गङ्गादि तीर्थ मानने के योग्य हैं आपको इसमें क्या सन्देह है? आदि २। इसी प्रकार एक मुसलमान मौलवी साहब ने भी जिनका उर्दू का इमला तक ठीक न था, स्वामीजी को एक चिट्ठी लिखी थी, जिसमें शास्त्रार्थ के अद्भुत नियम लिखे थे, बड़ाभारी आग्रह इस बात पर किया था कि शास्त्रार्थ मौखिक हो उसका एक शब्द भी न लिखा जावे इससे उनका मुख्य अभिप्राय यह था कि मौखिक बातों में बहुत कुछ बचाव और झूठ बोलने का अवकाश रहता है जोकि लेखबद्ध में नहीं रहता। स्वामीजी ने मौलवी साहब की योग्यता देखकर उनको उचित उत्तर भिजवा दिया था, जिस पर मौलवी साहब को फिर कुछ लिखने का साहस न हुआ। इसी तरह कुछ पौराणिक पण्डितों ने आपस में सलाह करके कई प्रतिष्ठित पुरुषों की ओर से स्वामीजी को एक चिट्ठी भिजवाई थी, जिसमें शास्त्रार्थ की अभिलाषा प्रकट कीगई थी, परन्तु आश्चर्य यह था कि किसी के हस्ताक्षर इस चिट्ठी में नहीं थे। पण्डितों का मुख्य अभिप्राय इस चिट्ठी को भिजवाने से अपनी ख्याति और लोगों को धोखा देना था। स्वामीजी ने अपने व्याख्यान के पश्चात् प्रकाश्य रीति पर यह कह दिया कि जबतक चिट्ठी पर लाला किशनसहायजी रईस

मेरठ अपने हस्ताक्षर न करेंगे मैं इस पर कुछ भी ध्यान न दूंगा। ऐसे काम बिना किसी प्रतिष्ठित पुरुष की मध्यस्थता के नहीं होसकते। यदि लाला साहब को शास्त्रार्थ कराकर सत्यासत्य का निर्णय कराना अभीष्ट है तो उन्हें इस पर अपने हस्ताक्षर करके भेजना चाहिये और शास्त्रार्थ के प्रबन्ध के भार को अपने ऊपर लेना चाहिये और उन्होंने यह भी प्रकट करदिया था कि प्रमाण केवल वेदादि सच्छास्त्रों के माने जावेंगे और साथ ही उनके नाम भी एक २ करके प्रकट कर दिये थे, परन्तु बात को टालने के सिवाय और कुछ कार्रवाई दूसरी ओर से नहीं हुई, निदान स्वामीजी ने सीधी एक चिट्ठी लाला किशनसहायजी के पास भेजी, जिसमें लिखा था कि जिस पण्डित से चाहें आप शास्त्रार्थ कराइये, परन्तु उसका प्रबन्ध शीघ्र होना चाहिये, इसका उत्तर भी बिना हस्ताक्षर लाला साहब के यह आया कि आप वेदों के विरुद्ध उपदेश करते हैं इसलिये शास्त्रार्थ से कुछ लाभ न होगा। जब इसका उत्तर विस्तारपूर्वक स्वामीजी ने लिखा तो फिर एक हस्ताक्षरी पत्र स्वामीजी के पास आया जिसमें साधारण सभ्यता से भी काम नहीं लिया गया। उसका तात्पर्य्य यह था कि हमें पण्डितों के द्वारा विदित हुआ है कि आप वेदों के विरुद्ध लोगों को उपदेश करते हैं, आप वेद नहीं जानते, भूले हुये हैं। हमारे पण्डित वेदादि शास्त्रों के जाननेवाले हैं, जबतक आप अपना वर्णाश्रम हमें ठीक २ विदित न करावें, हम आपके पास नहीं आसकते। ईसाइयों ने यहां पर स्वामीजी से किसी प्रकार का विवाद नहीं किया इनके उपदेशों में बराबर आते थे, परन्तु शास्त्रार्थ का नाम तक न लेते थे। २९ दिसम्बर सन् १८७८ ई० को स्वामीजी की उपस्थिति में शहर मेरठ में आर्यसमाज स्थापित होगया।

दिल्ली में धर्मप्रचार

मेरठ में आर्यसमाज स्थापित करके ६ अक्टूबर सन् १८७८ ई० को स्वामीजी दिल्ली पहुंचे और लाला बालमुकुन्द केसरीचन्द के बाग में ठहरे। शाहजी के छत्ते में उन्होंने नम्बरवार व्याख्यान देने शुरू किये, श्रोताओं की बड़ी भीड़ लग जाती थी, उनके उपदेशों का फल यह हुआ कि कुछ दिन पश्चात् उनकी उपस्थिति में ही दिल्ली में आर्यसमाज स्थापित होगया।

अजमेर में पधारना

दिल्ली से स्वामीजी का विचार सीधे अजमेर जाने का था क्योंकि वहां के कई भद्रपुरुषों ने विशेष प्रार्थना के साथ स्वामीजी को निमन्त्रण दिया हुआ था। स्वामीजी जाने के लिये तय्यार थे कि किसी कायर और धूर्त पुरुष ने अजमेर से स्वामीजी के नाम एक चिट्ठी भेजदी। जिसका अभिप्राय

यह था कि हम आपकी सभा आदि के प्रबन्ध के लिये चन्दा इकट्ठा कर रहे हैं, परन्तु अभी तक पूरा चन्दा नहीं हुआ, इसलिये अभी आप यहां न पधारें, जब यथेष्ट सब प्रबन्ध होजावेगा तब हम आपको कष्ट देवेंगे। अन्त में अपना नाम "युगलविहारी शर्म्मा कालिज अजमेर" लिख दिया। इस चिट्ठी के पहुंचने से स्वामीजी को कुछ संकोच होगया। उधर अजमेर में लोग उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे, परन्तु यह भेद शीघ्र खुल गया और उसी समय स्वामीजी को तार दिया गया और यह भी प्रकट कर दिया कि यह किसी कायर पौराणिक ब्राह्मण की करतूत है आप इस पर कुछ ध्यान न दें। निदान दिल्ली में चलकर ८ नवम्बर सन् १८७८ ई० को स्वामीजी अजमेर पहुंच गये। कई प्रतिष्ठित पुरुष रेलवे स्टेशन पर स्वामीजी का स्वागत करने के लिये आये हुये थे।

पुष्कर के मेले में वैदिकधर्मप्रचार

कार्तिक सुदी पौर्णमासी को पुष्कर में बड़ाभारी मेला होता है, स्वामीजी ने इस अवसर पर वहां प्रचार करने की इच्छा प्रकट की उनकी आज्ञा होते ही सब प्रबन्ध कर दिया गया। स्वामीजी ने वहां पहुंच कर एक विज्ञापन वितरित किया, जिसमें लिखा था कि जिसको सत्यासत्य का निर्णय करना हो वह हमारे पास आवे। इसके पश्चात् उनके पास बहुतसे साधु, संन्यासी और संस्कृत के विद्वान् पण्डित आते रहे और अपने सन्देह निवृत्त करते रहे। और लोग भी अपनी २ योग्यता के अनुसार स्वामीजी से प्रश्न किया करते थे। और वे सब को बड़े प्रेम और योग्यता के साथ उत्तर दिया करते थे। पुष्कर के समीप एक ग्राम में कुछ वाममार्गी साधु रहते थे और वे कहा करते थे कि हमारे तन्त्रों में बड़ी भारी शक्ति है जो चाहें सो करदें। इस गांव के कुछ लड़के अजमेर कालिज में पढ़ते थे, स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर उनके हौसले बढ़गये और उन्होंने अपने गांव में जाकर उन साधुओं से कहा कि यदि आपके तन्त्रों में कुछ शक्ति है तो स्वामीजी के सामने उनको दिखाइये या उनसे शास्त्रार्थ करके तन्त्र की महिमा को सिद्ध कीजिये। परन्तु उन मूर्ख और दुराचारियों की क्या मजाल थी कि शास्त्रार्थ के लिये स्वामीजी के सन्मुख आते, चुप हो गये, उस गांव के रहने वालों पर उनका सारा रहस्य प्रकट हो गया। मेले की समाप्ति पर स्वामीजी पुन: अजमेर पधार गये। यहां स्वामीजी ने वैदिकधर्म के महत्त्व पर नम्बरवार कई व्याख्यान दिये और साथ ही मतवादियों के अन्धे विश्वास और झूठे मन्तव्यों का खण्डन भी किया। इनके व्याख्यानों में अजमेर के लगभग सब शिक्षित और प्रतिष्ठित पुरुष सम्मिलित

होते थे। प्रायः विचारशील मुसलमान भी इनसे सहानुभूति करने लगे, मौलवी मुहम्मद मुरादअली साहब मालिक राजपूताना गज़ट पर स्वामीजी का ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्होंने गोरक्षा के विषय में उद्योग करने का प्रण किया।

नसीराबाद में धर्मप्रचार

छावनी नसीराबाद से एक प्रतिष्ठित पुरुष के आमंत्रित करने पर स्वामीजी वहां पधारे। कई धूर्त्तजनों ने प्रबन्ध में कुछ गड़बड़ डालनी चाही थी, परन्तु उनकी कुछ न चली। स्वामीजी ने कई दिन तक यहां प्रचार किया। जिसका यहां के लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव हुआ, पादरी लोग भी बराबर आया करते थे, परन्तु किसी ने छेड़छाड़ नहीं की।

जयपुर में पधारना

१४ दिसम्बर सन् १८७८ ई० को नसीराबाद से चलकर स्वामीजी जयपुर पहुंचे, यहां दीवान फ़तहसिंहजी ने उनका आतिथ्य सत्कार किया। महाराजा साहब स्वामीजी से मिलने की अभिलाषा रखते थे, परन्तु कई स्वार्थी लोगों ने झूठी बातें बनाकर उनकी इस इच्छा को पूर्ण न होने दिया तो भी महाराजा साहब की ओर से स्वामीजी के आतिथ्य का बहुत अच्छा प्रबन्ध था।

रिवाड़ी में धर्मप्रचार

राव युधिष्ठिरसिंहजी रईस के बुलाने पर स्वामीजी रिवाड़ी पहुंचे यहां पर उन्होंने लगातार ११ व्याख्यान दिये, जिनमें पौराणिक मत की खूब पोल खोली। ईसाइयों से भी बातचीत हुई थी, परन्तु उनमें इतनी हिम्मत कहां जो शास्त्रार्थ का नाम भी लें? रावसाहब ने दूर २ से अपने सम्बन्धियों और जातिवालों को स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिये बुलाया था जिनमें से कई अब तक दृढ़ आर्य हैं।

दिल्ली, मेरठ, हरिद्वार और देहरादून में धर्मप्रचार

रिवाड़ी से रवाना होकर ६ जनवरी सन् १८७९ ई० को स्वामीजी दिल्ली पहुंचे, इस बार सिर्फ़ दो तीन व्याख्यान देकर मेरठ पधार गये और वहां से बहुत शीघ्र हरिद्वार को चले गये। हरिद्वार के कुम्भ पर लगातार काम करने के बाद कुछ दिन किसी रमणीय स्थान में विश्राम करने के लिये स्वामीजी देहरादून पहुंचे। पं० कृपारामजी ने पहिले से सब आवश्यक प्रबन्ध कर रक्खा था, स्वामीजी जब यहां पहुंचे तो उन का शरीर अस्वस्थ था, तथापि धर्मचर्चा बराबर होती थी। यहां स्वामीजी को मालूम हुआ कि ब्राह्मसमाज के मेम्बरों ने भी हमारे आतिथ्य आदि के लिये आर्य्यों को चन्दे से सहायता दी है। इस पर उन्होंने एक दिन एकान्त में पं० कृपारामजी से कहा कि आपको

ब्राह्मसमाजियों से चन्दा नहीं लेना चाहिये था। यह आज आपके सहायक हैं अब हमारा उपदेश सुनेंगे तो झट विरुद्ध हो जावेंगे। पण्डितजी ने निवेदन किया कि अस्तु, कुछ हानि नहीं है मैं अकेला ही यथाशक्ति आपकी सेवा करने के लिये उपस्थित हूं रुपये पैसे की कुछ बात नहीं है। एक दिन स्वामीजी के व्याख्यान में कई अंग्रेज़ अफ़सर और पादरी साहब मौजूद थे स्वामीजी ने क़ुरान और इञ्जील दोनों की बड़े धड़ल्ले के साथ समालोचना की, पादरी साहब को स्वामीजी की वक्तृता सुनकर बहुत जोश आया और क्रोध के मारे आपे से बाहर होगये यहां तक कि व्याख्यान के बीच में बोलने लगे। इनकी यह दशा देखकर एक अंग्रेज़ अफ़सर ने इनसे कहा कि आप तनिक धैर्य से काम नहीं लेते, स्वामीजी किस योग्यता के साथ आक्षेप करते हैं और आप क्रोधाविष्ट होते जाते हैं, परन्तु पादरी साहब किसकी सुनते थे ? निदान वह सभा से उठकर चले गये, चलते समय स्वामीजी ने पादरी साहब से पूछा कि क्या आप कल भी पधारेंगे ? परन्तु पादरी साहब गुस्से में बड़बड़ाते हुये चले गये। व्याख्यान की समाप्ति पर अंग्रेज़ी अफ़सरों से धर्म के विषय में स्वामीजी देरतक वार्तालाप करते रहे एक दिन स्वामीजी ने ब्राह्मसमाज के सिद्धान्तों का खंडन किया, जिससे ब्राह्म लोग स्वामीजी के विरुद्ध हो गये। इन्हीं दिनों यह सुना गया कि जिस बंगले में स्वामीजी ठहरे हुये हैं वह रात को जला दिया जावेगा और मुसलमान लोग आक्रमण करेंगे, परन्तु ये सब बातें गप्प थीं। हां एक दिन बहुतसे मुसलमान मिलकर स्वामीजी के पास गये थे, परन्तु किसी प्रकार की कोई घटना नहीं हुई। स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् २६ जून सन् १८७६ ई० को देहरादून में आर्यसमाज स्थापित होगया।

मुरादाबाद का वृत्तान्त

देहरादून से रवाना होकर १ मई सन् १८७६ ई० को स्वामीजी सहारनपुर पहुंचे और यहां दो दिन ठहर कर मेरठ पधार गये। २५ मई को मेरठ से विदा होकर अलीगढ़ होते हुए छलेसर पहुंचे। शरीर अस्वस्थ था इसलिये यहां एक महीने तक निवास किया इसके पश्चात् मुरादाबाद को प्रस्थित हुये। पहिलीवार सन् १८७६ ई० में स्वामीजी यहां आये थे और राजा जयकृष्णदासजी की हवेली में कई व्याख्यान भी दिये थे। उन दिनों स्वामीजी की यहां धूम मचगई थी पादरियों से भी कई दिन तक छेड़छाड़ होती रही, विषय संसार की उत्पत्ति था। पादरी लोग संसार को उत्पन्न हुये केवल पांच हज़ार वर्ष बतलाते थे। स्वामीजी ने बड़े २ विद्वानों की साक्षी से इस मन्तव्य का ऐसा खण्डन किया था कि वे निरुत्तर हो

गये थे। दूसरी वार छलेसर से रवाना होकर ३ जुलाई १८७१ ई० को स्वामीजी मुरादाबाद पहुंचे और राजा जयकृष्णदास साहब की कोठी में ठहरे और पूर्ववत् वैदिकधर्म के प्रचार में तत्पर होगये। एक दिन मुरादाबाद के कलेक्टर साहब की प्रार्थना पर स्वामीजी ने छावनी की एक कोठी में "राजनीति" पर व्याख्यान दिया शहर के प्रतिष्ठित और सुशिक्षित लोग भी उपस्थित थे। स्वामीजी ने वेदादि शास्त्रों के प्रमाणों से राजा और प्रजा के अन्योन्याश्रय अधिकार और सम्बन्ध इस रीति पर वर्णन किये कि सब श्रोतागण वाह वाह करने लगे और उन्हें मालूम हो गया कि राज्यप्रबन्ध सम्बन्धी उच्चकक्षा के नियम वेदादि शास्त्रों में हैं। केवल विचार, अन्वेषण और अवलोकन की आवश्यकता है। व्याख्यान की समाप्ति पर कलेक्टर साहब ने स्वामीजी की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि यदि ऐसे महात्मा कुछ दिन पहिले होते तो सन् १८५७ ई० का अनिष्ट उपद्रव कभी न होता। २० जुलाई १८७१ ई० को राजा जयकृष्णदासजी के मकान पर हवन होकर नियमपूर्वक समाज स्थापित होगया।

बदायूं में धर्मप्रचार

स्वामीजी के पधारने से पहिले मई १८७१ ई० में बदायूं में आर्यसमाज स्थापित हो चुका था। जब यहां के आर्य्यपुरुषों को सूचना मिली कि स्वामीजी मुरादाबाद में विराजमान हैं तो उन्होंने स्वामीजी को बुलाया। ३१ जुलाई की रात को स्वामीजी बदायूं पहुंचे। यहां स्वामीजी के व्याख्यान मुं० गङ्गाप्रसाद साहब के दीवानखाने और चुंगी की कोठी में हुये। खबर थी कि मुसलमान लोग मौलवी मुहम्मदक़ासिम साहब को बुलवाकर स्वामीजी से शास्त्रार्थ करावेंगे, परन्तु किसी ने नहीं बुलवाया। पं० रामप्रसादजी से स्वामीजी की थोड़ी देर तक धर्म के विषय में बातचीत हुई थी और उन्होंने पण्डितजी के प्रत्येक प्रश्न का यथायोग्य उत्तर दे दिया था परन्तु पं० जी पौराणिक होने के कारण अपनी हठ किये गये।

बरेली में धर्मप्रचार

१४ अगस्त १८७१ ई० को स्वामीजी बरेली पहुंचे और प्रचार आरम्भ करदिया, यहां इनके व्याख्यानों में ज़िले के प्रधान शासक कलेक्टर साहब और उनके साथ अन्य शासकगण भी पधारा करते थे। निदान यह प्रस्ताव स्थिर हुआ कि स्वामीजी का बरेली के प्रसिद्ध पादरी स्काट साहब से पुन: शास्त्रार्थ होना चाहिये, पादरी साहब ने इस बात को स्वीकार करलिया। इसवार शास्त्रार्थ में पादरी साहब ने हंसी और कटुभाषिता से बिलकुल काम नहीं लिया और शास्त्रार्थ आदि से अन्त तक बड़ी सभ्यता के साथ होता रहा। विचार-

[णीय विषय ये थे:—(१) आवागमन, (२) अवतार, (३) ईश्वर पाप क्षमा करता है। शास्त्रार्थ अक्षरशः लिखा जाता था और इस रीति पर भाविनी भ्रान्ति की आशंका ही दूर करदी गई। तीनों विषयों पर पादरी साहब को निरुत्तर होजाना पड़ा। कारण स्पष्ट है कि ईसाई मत के सिद्धान्त इन विषयों का निर्णय करने में अपर्याप्त हैं।

शाहजहांपुर में धर्मप्रचार

४ सितम्बर १८७९ ई० को स्वामीजी शाहजहांपुर पहुंचे, इनके पहुंचते ही आर्यसमाज की ओर से व्याख्यानों के विज्ञापन देदिये गये। स्वामीजी के पधारने से नगर और आसपास के सम्पूर्ण साम्प्रदायिक लोगों में खलबली मचगई पौराणिक पण्डितों के तो वास्तव में छक्के छूट गये। उन्होंने आपस में सलाह करके अङ्गद शास्त्री को, जो पीलीभीत स्कूल में १५) मासिक पर अध्यापक थे, स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलवाया इनकी संस्कृत की योग्यता इतनी भी न थी, कि एक पंक्ति भी शुद्ध लिख सकें इस पर भी ख्याति की बड़ी अभिलाषा रखते थे और इस बात की कुछ भी परवाह न थी कि लोगों में अपनी अयोग्यता के प्रकट होने से लज्जित होना पड़ेगा। पण्डितजी से शास्त्रार्थ के लिये पत्रव्यवहार होता रहा, परन्तु बातें बनाने वालों और अपनी विद्वत्ता का परिचय देनेवालों में बड़ाभारी अन्तर होता है, पण्डितजी अन्त तक बातें बनाते रहे और शास्त्रार्थ के लिये एक दिन भी उद्यत न हुए, फिर इसका परिणाम क्या होना था ?

लखनऊ व फर्रुखाबाद का वृत्तान्त

शाहजहांपुर से रवाना होकर १८ सितम्बर सन् १८७९ ई० को स्वामीजी लखनऊ पहुंचे और वहां एक सप्ताह तक विश्राम करके कानपुर होते हुए फ़रु र्खाबाद पधारे और यहां आते ही लगातार व्याख्यान आरम्भ करदिये लगभग शहर के सब प्रतिष्ठित पुरुष और राजकीय अधिकारी इनके व्याख्यानों में आया करते थे। इसबार भी पौराणिक पण्डितों ने अन्यथा भाषण के द्वारा लोगों को धोखा देना चाहा, परन्तु उनकी कोई चाल चल न सकी। कुछ पौराणिक पण्डितों से धर्मसम्बन्धी प्रश्नोत्तर भी हुए थे। इस रीति पर बहुतसे वैदिक सिद्धान्तों के विषय में लोगों को मालूम होगया और ऐसे अवसर पर यही बहुत कुछ समझा जा सकता है। एक बी. ए. ब्राह्मण ने स्वामीजी के विरुद्ध एक सभा स्थापित की थी, जिसका उद्देश्य मूर्त्तिपूजा की पुष्टि करने का था, परन्तु सुशिक्षित पुरुषों ने इनको बहुत कुछ लताड़ दी थी, जिसको आयु भर स्मरण रक्खेंगे, एक समाचारपत्र ने भी खूब खबर ली थी।

कानपुर, इलाहाबाद, मिरज़ापुर व दानापुर का वृत्तान्त

फ़रुखाबाद से रवाना होकर कानपुर व इलाहाबाद होते हुए २३ अक्टूबर १८७९ ई० को मिरज़ापुर पहुंचे। यद्यपि शरीर खिन्न था तथापि स्वामीजी ने अपना काम प्रारम्भ करने में कुछ भी विलम्ब नहीं किया। यहां से विदा होकर ३० अक्टूबर को दानापुर पहुंचे यहां भी नियमानुसार वैदिकधर्म का खूब प्रचार किया, कई प्रतिष्ठित और विचारशील मुसलमान भी इनके व्याख्यान सुनने को आते थे और इनकी प्रशंसा करते थे। यद्यपि उनके मित्रों ने उनपर आक्षेप भी किये तथापि उन्होंने सत्य को हाथ से न दिया। यहां के पौराणिकों ने पं० चतुर्भुजजी को बाहर से स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये बुलवाया था, परन्तु पण्डितजी साफ टाल बताकर चलेगये क्योंकि शास्त्रार्थ करने की योग्यता उनमें न थी।

लखनऊ व फ़रुखाबाद और मैनपुरी में धर्मप्रचार

४ मई सन् १८८० ईस्वी को स्वामीजी लखनऊ पहुंचे और इसवार यहां बहुत थोड़े दिन ठहरे। कोई कोई महाशय इनके पास आकर अपने सन्देह निवारण करते थे और जो महाशय इनसे मिलने को आते थे, उन्हें ये सदुपदेश दिया करते थे। यहां से रवाना होकर सातवींवार २० मई सन् १८८० ईस्वी को स्वामीजी फ़रुखाबाद पहुंचे और उपदेश करते रहे। यहां की छावनी फतेहगढ़ में भी धर्मप्रचार किया था। इनका उपदेश सुनकर एकदिन वानिस्टन ज्वाइएट मजिस्ट्रेट ने योग के विषय में प्रश्न किया था, स्वामीजी ने समुचित उत्तर देकर कहा कि आप वर्त्तमान अवस्था में योगसाधन नहीं कर सकते। कारण यह है कि आप मद्य और मांस का सेवन करते हैं। यदि इनको सर्वथा त्याग दें तो आप योगसाधन कर सकते हैं फ़रुखाबाद से स्वामीजी मैनपुरी पधारे और यहां भी व्याख्यान देने प्रारम्भ किये। इनके उपदेश सुनने के लिये कलेक्टर, जज और सिविलसर्जन आदि अंग्रेज़ अफ़सर भी आया करते थे और यहां के बहुत से मुसलमान लोग भी इनके व्याख्यानों की प्रशंसा करने लगे थे। इनके अन्तिम व्याख्यान में एक प्रतिष्ठित मुसलमान साहब ने सभा में खड़े होकर धन्यवाद दिया था। स्वामीजी के चलेजाने के बाद ११ जुलाई सन् १८८० ईस्वी को यहां आर्यसमाज स्थापित होगया।

मेरठ व मुज़फ्फ़रनगर में धर्मप्रचार

८ जुलाई १८८० ईस्वी को स्वामीजी पुनः मेरठ पधारे और बस्ती से बाहर एक कोठी में ठहरे। उन्होंने पहुंचते ही अपना काम शुरू करदिया, पौराणिक पण्डितों को जब और कुछ

न सूझा तो एक कथक्कड़ को स्वामीजी के उपदेशालय के समीप नियत करदिया कि रामायण आदि की चौपाइयां ऊंचे स्वर से स्वामीजी के व्याख्यान के समय गाया करे ताकि लोग उनका उपदेश न सुन सकें, परन्तु इस विषय में भी उनको लज्जित ही होना पड़ा। इन्हीं दिनों पण्डिता रमाबाई (जिनका इससे पूर्व स्वामीजी से पत्रव्यवहार होचुका था) मेरठ पधारीं और स्वामीजी से संस्कृत पढ़ती रहीं। उन्होंने चार पांच व्याख्यान भी स्त्रीशिक्षा के विषय में दिये थे। विदा होते समय स्वामीजी ने इनको स्वरचित पुस्तकें भेट की थीं। १५ सितम्बर १८८० ई० को स्वामीजी मुज़फ्फ़रनगर (वहां के प्रतिष्ठित लोगों से आमन्त्रित होकर) पधारे और रायबहादुर निहालचन्द साहब रईस की कोठी में ठहरे। श्राद्धों के दिन थे इसलिये रायसाहब ने स्वामीजी से पूछा कि मृतकों का श्राद्ध करना चाहिये वा नहीं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मृतकोद्देश्य से श्राद्ध करना बिलकुल निष्फल है। इस पर रायसाहब ने कहा कि हमें दान वा परोपकार भी नहीं करना चाहिये क्योंकि मरने के पश्चात् हमें उनका कुछ भी फल नहीं मिल सकता। स्वामीजी ने उनको समझा दिया कि दान करना प्रत्येक जीव का अपना कर्म है और कर्म कर्त्ता के साथ रहता है, नष्ट नहीं होता और मृतकों के श्राद्ध जीवित करते हैं इसलिये मृतकों को उसका कुछ फल नहीं मिल सकता, क्योंकि वह दूसरों का कर्म है। फल अपने कर्म का मिलता है, नकि मरने के पश्चात् दूसरों के खिलाने, पिलाने या देने लेने का। स्वामीजी के व्याख्यान सुनने के लिये शहर और आस पास के बहुत लोग एकत्रित हुआ करते थे और यह अन्त में प्रत्येक के प्रश्न का सन्तोषदायक उत्तर देदिया करते थे, यदि कोई भड़कता भी था तो वह उसे शान्त करदिया करते थे और उत्तर ऐसा प्रमाणपूर्वक होता था कि उस पर विवाद करने का किसी को अवसर ही न मिलता था।

देहरादून और मेरठ का वृत्तान्त

मुज़फ़्फ़रनगर से रवाना होकर ७ अक्टूबर सन् १८८० ईस्वी को स्वामीजी देहरादून पहुंचे और जाते ही अपने आने का विज्ञापन दिलवा दिया। इस विज्ञापन के निकलते ही जिज्ञासु और सत्यग्राही पुरुष तो प्रसन्न हुए, परन्तु आग्रही और अभिमानी लोग मन ही मन में कुढ़ने लगे। पौराणिकों और मुसलमानों की ओर से शास्त्रार्थ के लिये कुछ छेड़छाड़ तो हुई परन्तु निष्फल गई। जब मतलब की बात बीच में आती थी तो तरह २ के बहाने करके टाल जाते थे। एक दिन एक पादरी साहब भी सभा में कुछ बोले थे और उन्होंने वेद के विषय में कुछ प्रश्न किये थे। स्वामीजी उनकी चेष्टा से समझ

गये कि इनको केवल अपनी ख्याति की अभिलाषा है, सत्यासत्य के निर्णय से कुछ प्रयोजन नहीं है, तब उन्होंने कहा कि बहुत अच्छा, मैं उत्तर देने को तय्यार हूं, परन्तु मैं भी इञ्जील के विषय में कुछ प्रश्न आप से करूंगा। यह सुनकर पादरी साहब चलने लगे, स्वामीजी ने बड़ी कठिनता से उनको ठहराया और उनके प्रश्नों के उत्तर देकर अपने प्रश्न करने को तैयार हुए, परन्तु पादरी साहब किसकी सुनते थे। सभा के नियमों की कुछ परवाह न करके विना कहे सुने उठकर चले गये। देहरादून से रवाना होकर स्वामीजी मेरठ कुछ दिन ठहरे और फिर वहां से आगरे की ओर प्रस्थित हुये।

आगरा व अजमेर का वृत्तान्त

२५ नवम्बर १८८० ई० को स्वामीजी आगरे पहुंचे और आते ही व्याख्यान होने लगे दूर २ तक खबर पहुंच गई कि स्वामीजी आये हैं। पौराणिकों को सब से अधिक भय उत्पन्न हुआ, निदान वे अनेक प्रकार की झूठी गप्पें (अफ़वाहें) उड़ाने लगे परन्तु इन मिथ्याप्रलापों से कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुआ। स्वामीजी ने अपने उपदेशों से लोगों की आंखें खोलदीं और वर्षों के जमे हुए आग्रह को हृदयों से निकाल कर फेंक दिया। यह दशा देखकर पौराणिक लोगों की रही सही आशा टूट गई। एक दिन रोमन कैथोलिक ईसाइयों के लाट पादरी साहब के बुलाने पर स्वामीजी उनसे मिलने गये, कुछ देर तक उनसे धर्मसम्बन्धी बातचीत होती रही। प्रसंगानुसार स्वामीजी ने लाट पादरी साहब से पूछा कि आप अभी कहचुके हैं कि हमारी भूलों को इटली के पोप शोधन करते हैं परन्तु यह भी बतलाइये कि पोप की भूल को कौन संशोधन करता है? इसका उत्तर पादरी साहब सिवाय इसके कि पोप इस संसार में ईश्वर का नायब (प्रतिनिधि) समझा जाता है और कुछ न देसके। स्वामीजी के सदुपदेश का यह प्रभाव हुआ कि २६ दिसम्बर सन् १८८० ई० को आगरे में आर्य्यसमाज स्थापित होगया। खिजकर पौराणिकों ने पं० चतुर्भुज को बुलवाया, परन्तु पं० चतुर्भुज की योग्यता पहिले ही विदित होचुकी थी, उनमें इतनी सामर्थ्य कहां थी कि वह शास्त्रार्थ के लिये उद्यत होते? अब उनकी कलई खुलगई तो वे लज्जित और चुप होकर बैठ गये। आगरे से १० मार्च १८८१ ई० को विदा होकर स्वामीजी भरतपुर और जयपुर होते हुए ५ मई १८८१ ई० को अजमेर पहुंच गये। यहां स्वामीजी के कई व्याख्यान हुये। कुछ दिन बाद शहर के बाहर आग लग जाने से कई ग़रीब मनुष्यों के झोंपड़े जलगये, स्वामीजी ने अपने श्रोताओं को इनकी सहायता के लिये प्रेरित किया, उसी समय उनकी आज्ञा का पालन किया गया। स्वामीजी ऐसे कामों को धर्म का काम

बतलाया करते थे। पिशावर से पं० लेखरामजी यहां स्वामीजी के दर्शन करने के लिये आये थे और उनसे अपने सब सन्देह निवारण कर लौट गये। प्रायः रायबहादुर पं० भागराम साहब जज अजमेर स्वामीजी के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया करते थे और आरम्भ से अन्त तक तत्परता के साथ उपस्थित रहते थे। रावसाहब मसूदा के बुलाने पर २३ जून १८८१ ई० को स्वामीजी मसूदा चले गये।

मसूदा में धर्मप्रचार

२३ जून को स्वामीजी मसूदा पहुंचे, राव बहादुरसिंहजी मसूदाधीश ने बड़े आदर और सत्कार के साथ स्वामीजी को एक रमणीय वाटिका की बारहदरी में ठहराया। यहां स्वामीजी के कई नम्बरवार व्याख्यान हुये, सारी रियासत में धूम मचगई और तो कोई सामने न आया किन्तु पादरियों से कुछ बातचीत हुई थी। जब स्वामीजी ने उनसे कुछ धार्मिक विचार करना चाहा तो वे यह कहकर चले गये कि इस समय हमारे पास हमारी पुस्तकें नहीं हैं। इस रियासत में स्वामीजी ने हिन्दुओं का एक ऐसा समुदाय पाया जो अपनी जाति के उन लोगों को, जो पहिले यवनों के समय में मुसलमान होगये थे, बेधड़क अपनी लड़कियां ब्याह देते थे, परन्तु मुसलमान होने के कारण उनकी लड़कियां लेते नहीं थे, अर्थात् जान बूझकर अपनी लड़कियों को मुसलमानियां बनाते थे। स्वामीजी ने इस समुदाय के लोगों को बुलवाकर सदुपदेश किया और समझाया कि यह तुम बड़ा अन्धेर कररहे हो, अपने हाथ से अपनी सन्तान को अपने धर्म का शत्रु बना रहे हो, ऐसा करना महापाप है, स्वामीजी के उपदेश से उन्होंने दीर्घकाल से चली हुई रीति को एक साथ बन्द कर दिया या यों कहना चाहिये कि स्वामीजी के उपदेश से हज़ारों हिन्दू लड़कियां मुसलमानियां होने से बचगईं। इस रियासत में स्वामीजी ने कई यज्ञ कराये। दूसरी बार यहां स्वामीजी २१ सितम्बर १८८१ ईस्वी को आये थे और १५ दिन ठहरे थे, यद्यपि कोई विशेष व्याख्यान नहीं दिया तथापि लोगों को सदुपदेश करते रहे।

रियासत रायपुर

ठाकुर हरीसिंहजी रायपुराधीश के कई बार आमन्त्रित करने पर ११ अगस्त १८८१ ईस्वी को स्वामीजी ब्यावर होते हुये रायपुर पहुंचे। ठाकुर साहब ने बड़ा आदर और सत्कार किया। बातचीत करते हुये स्वामीजी ने ठाकुर साहब से पूछा कि आपकी रियासत के मन्त्री कौन महाशय हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि सेख इलाहीबक्श साहब हैं। वे तो इन दिनों जोधपुर गये हुये हैं पर उन के भतीजे शेख करीमबक्शजी उनके स्थानापन्न हैं और वे सामने बैठे हुये हैं। स्वामीजी ने इस अवसर पर अपनी यह सम्मति प्रकट की कि आर्यपुरुषों

को चाहिये कि वे मुसलमानों को अपना पार्श्ववर्ती (मुसाहिब) या मन्त्री (वज़ीर) न बनावें क्योंकि ये लोग दासीपुत्र हैं। यह सुनकर शेखसाहब बहुत ही रुष्ट हुये और थोड़ी देर बाद शेखजी की हवेली में बहुतसे मुसलमान इसलिये इकट्ठे हुये कि स्वामीजी के साथ फौजदारी करनी चाहिये, क्योंकि उन्होंने प्रकाश्य रीति पर मुसलमानों का अपमान किया है। जब सब अपनी २ कह चुके तो एक विचारशील पुरुष ने यह सम्मति प्रकट की कि इस विषय में हमको किसी प्रकार की धृष्टता और उजड्डपन से काम नहीं लेना चाहिये। पांच सात दिन बाद ईद के अवसर पर हमारे क़ाज़ी साहब आवेंगे, उनसे स्वामीजी की बहस करावेंगे, इस प्रकार सबके सन्मुख या तो उन्हें अपनी बात का प्रमाण (सबूत) देना होगा या जो रूखी बात होगी वह अपने आप खुल जावेगी। इस पर सब सहमत होगये। ईद के दिन स्वामीजी के आश्रम पर बहुतसे मुसलमान क़ाज़ी साहब को लेकर पहुंचे स्वामीजी ने उनसे पूछा कि आप क्या चाहते हैं? क़ाज़ी साहब फ़र्माने लगे कि अभी थोड़े दिन हुये हैं कि आपने मुसलमानों को दासीपुत्र बतलाया है इसका कारण क्या है? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि इसका कारण आप क़ुरान में देख सकते हैं। इसराईल जिन्हें आप इबराहीम कहते हैं उनकी दो बीबियां थीं एक व्याही हुई सारह दूसरी उसकी लौंडी हाजरह। इब्राहीम ने हाजरह को भी घर में डाल लिया था सारह से अंग्रेज़ लोग हुये और हाजरह से मुसलमान, फिर दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है? यह सुनकर क़ाज़ी साहब ने कहा कि क़ुरान में ऐसा नहीं लिखा, इस पर स्वामीजी ने रामानन्द ब्रह्मचारी को कहा कि हमारा क़ुरान लाओ, क़ुरान में से "सूरत इन्कबूत" दिखलाया। क़ाज़ी साहब अन्त में कहने लगे कि यह ठीक है कि वह लौंडी थी, परन्तु इसराईल ने उससे विवाह कर लिया था। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि कुछ हो वास्तव में तो वह लौंडी ही थी, फिर आपको दासीपुत्र होने में क्या सन्देह है? इस पर क़ाज़ी साहब बिलकुल निरुत्तर होगये और सब मुसलमान अपनासा मुंह लेकर वापिस चले गये।

ब्यावर में धर्मप्रचार रियासत रायपुर से विदा होकर ६ सितम्बर १८८१ ई० को स्वामीजी ब्यावर पहुंचे और १५ दिन यहां ठहरे, कई व्याख्यान दिये और जिज्ञासुओं के सन्देह निवृत्त करते रहे। इन्हीं के उपदेशों के कारण कुछ दिन बाद यहां आर्यसमाज स्थापित होगया। पादरियों से प्रायः यहां इनकी बातचीत हुआ करती थी, परन्तु उन्होंने प्रतिपक्षी होकर कभी कुछ नहीं कहा, यहां से स्वामीजी मसूदा चलेगये।

रियासत बनेड़ा में धर्मप्रचार

मसूदे से विदा होकर दुरड़े, रूपाहेली और रायड़े होते हुये स्वामीजी ६ अक्टूबर १८८१ ई० को रियासत बनेड़े पहुंचे। यहां के राजासाहब ने स्वामीजी का बहुत कुछ मान व सत्कार किया और नित्य उनके उपदेश सुनने आते रहे। इस रियासत में संस्कृत और वेदों की बहुत कुछ चर्चा थी, राजासाहब भी संस्कृत जानते थे, इनके दो राजकुमारों से स्वामीजी ने सामवेद का गान सुना और बहुत प्रसन्न हुये, इन की संस्कृत में स्वामीजी ने परीक्षा भी ली थी और अपने पास से एक पुस्तक पारितोषिक में दी थी। यहां के राजकीय पुस्तकालय "सरस्वतीभण्डार" से स्वामीजी ने अपने निघण्टु का मिलान किया था, कहीं एक दो शब्दों का लिखने में भेद था वह ठीक करलिया। यहां पर चक्राङ्कितों की स्वामीजी ने खूब पोल खोली थी और कहा था कि यदि शरीर के एकदेश को जलाने से तुम मोक्ष मानते हो तो तुमको चाहिये कि सब के सब एक साथ भाड़ में कूद पड़ो जिससे कि एकही वार सब की मुक्ति होजावे।

चित्तौड़ में धर्मप्रचार

रियासत बनेड़े से विदा होकर २६ अक्टूबर १८८१ ई० को स्वामीजी चित्तौड़गढ़ पहुंचे, कविराज श्यामलदासजी ने आतिथ्य का सब सामान इकट्ठा करदिया था। यहां एक तैलङ्ग ब्राह्मण सुब्रह्मण्यशास्त्री से न्यायशास्त्र में स्वामीजी का शास्त्रार्थ हुआ था, यद्यपि शास्त्रीजी ने प्रकाश्य रीति पर अपने पराजय को स्वीकार नहीं किया, परन्तु श्रोताओं के समीप स्वामीजी का पक्ष प्रबल था। यहां स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये आसीन्द के राव अर्जुनसिंहजी, भीलवाड़े से राजा फ़तहसिंहजी, शाहपुरे के राजाधिराज नाहरसिंहजी, कानूड़ के रावत उम्मेदसिंहजी और शावड़ी के राजा राजसिंहजी आदि महाशय आया करते थे। महाराणा साहब उदयपुर भी स्वामीजी के उपदेश बड़े ध्यान से सुना करते थे और उनके अनुयायी होगये थे उन्होंने उदयपुर चलने के लिये स्वामीजी से बड़ा आग्रह किया, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि अभी नहीं, बम्बई से लौटते हुये आवेंगे। चित्तौड़ से रवाना होकर २१ दिसम्बर १८८१ ई० को इन्दौर पहुंचे परन्तु महाराजा साहब (जो स्वामीजी के भक्त थे) कहीं बाहर गये थे, इसलिये स्वामीजी वहां अधिक नहीं ठहरे। जब महाराजा साहब वापिस आये और उन्हें विदित हुआ कि स्वामीजी हमारे पीछे यहां आये थे तो बहुत पश्चात्ताप करने लगे और उन्हें बम्बई तार दिया कि अब मैं यहां उपस्थित हूं, अवश्य पधारें।

बम्बई में धर्मप्रचार

३० दिसम्बर १८८१ ई० को स्वामीजी बम्बई पहुंचे और समुद्र-तट पर एक रमणीय स्थान में निवास किया। इस वार स्वामीजी का पधारना बम्बई आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में था। समाज में दक्षिणी ब्राह्मण हवन करा रहे थे, एक वृद्ध ब्राह्मण इनमें ऐसा था कि जिसे चारों वेद स्वरसहित कण्ठाग्र थे, स्वामीजी ने दो बार मुख्य लोगों से कहा कि आप ब्रह्मा का जो चतुर्मुख विशेषण सुना करते हैं, वह यही होसकते हैं। इस उत्सव में सामवेद का गान हुआ और स्वामीजी ने व्याख्यान दिये। उस समय बम्बई के बहुतसे सेठ व साहूकार स्वामीजी के अनुयायी थे और वे चाहते थे कि यदि स्वामीजी आज्ञा करें तो हम समाजमन्दिर के लिये बहुतसा रुपया दें परन्तु स्वामीजी ने अपने मुंह से किसी को नहीं कहा, उनका कथन था कि यह काम धर्म का है और सबका है इस में किसी के कहने सुनने की क्या आवश्यकता है? हां यदि मेरा निज का काम हो तो और बात है, उसे मैं कहता भी अच्छा लगूं। एक सेठजी अपने लड़के को स्वामीजी के पास उपदेश दिलाने लाये थे, स्वामीजी ने उसे कुछ उपयोगी शिक्षायें कीं। यथा-प्रातःकाल उठकर और हाथ मुंह धोकर ईश्वर की प्रार्थना करो फिर अपने माता पिता को प्रणाम करो और जब पाठशाला को जाओ तो अपनी पुस्तकें नौकरों से मत उठवाओ, आप लेजाया करो, इत्यादि २।

बम्बई में कई नैमित्तिक सभायें होकर आर्यसमाज के नियम और उपनियम, जो लाहोर में स्थिर हुये थे, सर्वसम्मति से स्वीकार किये गये और सम्पूर्ण आर्यसमाजों के लिये एक ही आदर्श होगया। इन दिनों यहां के सेठ मथुरादासजी लवजी ने एक विज्ञापन दिया था कि यदि वेदों में कोई मूर्त्तिपूजा सिद्ध करदे तो मैं उसको पांच हज़ार रुपये पारितोषिक देने के लिये उद्यत हूं। परन्तु किसमें इतना साहस था कि इस पारितोषिक के लिये यत्न करता, इसवार स्वामीजी यहां २३ जून सन् १८८२ ईस्वी तक ठहरे।

खंडवा, इन्दौर और रतलाम में धर्मप्रचार

२४ जून १८८२ ई० को स्वामीजी बम्बई से चलकर खंडवा पहुंचे और यहां ३ जुलाई तक स्थिति रक्खी। ४ जुलाई को खण्डवे से इन्दौर पहुंचे, परन्तु इस वार भी महाराजा साहब की अनुपस्थिति के कारण स्वामीजी यहां नहीं ठहरे। ५ जुलाई को रतलाम पधारे और ८ जुलाई तक निवास किया, प्रत्येक स्थान में सदुपदेश का डङ्का बजता रहा। यहां से विदा होकर जावरा होते हुए उदयपुर को प्रस्थित हुए।

रियासत उदयपुर का वृत्तान्त

महाराणा सज्जनसिंहजी उदयपुराधीश के कई बार बुलाने पर ११ अगस्त १८८२ ई० को स्वामीजी उदयपुर पहुंचे, रियासत की ओर से सवारी आदि का उत्तम प्रबन्ध था। उदयपुर पहुंचकर स्वामीजी सज्जननिवास बाग में ठहरे। स्वामीजी के आने के पूर्व महाराणा साहब में कई व्यसन थे। यथा—दिन में सोना, रात में जागना, दिन चढ़े उठना, बहुत विवाहों का करना, राग रंग और भोगविलास में तत्पर रहना, मूर्त्तिपूजा और कुपात्रों को दान देना इत्यादि। परन्तु स्वामीजी के उपदेश से ये सब अवगुण दूर होगये, यहां तक कि महाराणा साहब दोनों समय स्वामीजी के पास आया करते थे और बार २ पांच २ घण्टे तक उनसे संस्कृत पढ़ा करते थे, यथा—वैशेषिकदर्शन, पातञ्जल योग-सूत्र और मनुस्मृति आदि और योगाभ्यास भी आरम्भ करदिया था, स्वामीजी ने उनको दिनचर्या के नियम भी लिख दिये थे और वे उनका पूरा २ पालन भी किया करते थे। प्रत्येक काम के लिये समय नियत करदिया था और वह काम अपने समय पर किया जाता था। स्वामीजी ने महाराणा साहब को यह भी सम्मति दी थी कि रियासत के सम्पूर्ण श्रीमानों के लड़कों की एक अलग पाठशाला बनाई जावे और उसमें उन्हें शास्त्र और शस्त्रविद्या अवश्य सिखलाई जावे, परन्तु खेद है कि स्वामीजी के चले जाने के पश्चात् महाराणा साहब की अस्वस्थता के कारण यह काम न हो सका। रियासत के समस्त न्यायविभागों में देवनागरी का प्रचार करने के लिये बहुत कुछ यत्न किया और प्रचलित क़ानून में प्राय: शब्द अर्बी के थे जिनके पर्य्याय संस्कृत में वहां के लोगों को मालूम नहीं थे, स्वामीजी ने उन शब्दों का संस्कृत में अनुवाद करदिया। उदयपुर की चारणपाठशाला में पचास साठ विद्यार्थी पढ़ा करते थे एक दिन स्वामीजी ने स्वयं उनकी परीक्षा ली और उन्हें कई आवश्यक बातें बतलाईं, विशेष कर वेदाङ्गों के पढ़ने पर बहुत कुछ बल दिया। इस पाठशाला के विद्यार्थियों की योग्यता से प्रसन्न होकर स्वामीजी ने सबको एक दिन भोज भी दिया था। यहां स्वामीजी लोगों को कहा करते थे कि जहां तक संभव होसके रोग होने पर अपने देश के वैद्यों की चिकित्सा करानी चाहिये और योग्य वैद्यों की न्यूनता को अनुभव करके एक वैद्यशाला का प्रस्ताव भी किया था और उसके लिये चन्दा इकट्ठा करने के भी उपाय सोचे गये थे। यदि दो चार वर्ष भी और जीवित रहते तो इस प्रकार की पाठशाला का बनजाना कुछ बड़ी बात न थी। मरने के पश्चात् समाधि या और कोई चिह्न बनने बनवाने के स्वामीजी अत्यन्त विरुद्ध थे, एक दिन उन्होंने कविराज

श्यामलदासजी से कहा था कि मेरे मरने पश्चात् मेरी अस्थियों को किसी खेत में डाल देना, कोई समाधि या और कोई चिह्न कदापि न बनाना। कविराज ने कहा कि महाराज! मैंने तो यह सोच रक्खा था कि अपनी एक पत्थर की मूर्त्ति बनवाऊं और उसे किसी जगह रखवादूं ताकि मेरे पश्चात् वह मेरा स्मारक समझा जावे। स्वामीजी ने तुरन्त कहा कि देखना कविराजजी! ऐसा भूलकर भी मत करना, बस यही तो मूर्त्तिपूजा की जड़ हुआ करती है। एक दिन स्वामीजी के पास महाराणा साहब उदयपुर और बहुतसे प्रतिष्ठित जागीरदार और कामदार लोग बैठे हुये थे, स्वामीजी ने मनुस्मृति को प्रमाण देकर कहा कि यदि राजा या कोई अधिकारी पुरुष धर्मानुसार कोई आज्ञा दे तो उसे निर्विवाद मानना चाहिये, यदि अधर्म का कोई काम कराना चाहे तो उसे कदापि नहीं करना चाहिये। इस पर ठाकुर मनोहरसिंहजी रईस सर्दारगढ़ ने कहा कि महाराज! ये महाराणा साहब हमारे प्रभु हैं यदि हम इनकी आज्ञा का पालन न करें तो ये हमारी जागीरें उसी समय छीन सकते हैं। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि कुछ हानि नहीं यदि धर्म के लिये संसार की सम्पत्ति और जागीर चली जावे तो चली जावे, परन्तु अधर्म के काम करने और छल कपट से वृत्ति करने की अपेक्षा भीख मांग कर निर्वाह कर लेना अच्छा है। उदयपुर में स्वामीजी से पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल, ठाकुर जगन्नाथसिंहजी, पंडित ब्रजनाथ, बारेठ किशनजी, फतहकरनजी, पण्डित रामप्रसाद व पण्डित कामेश्वरजी संस्कृत पढ़ा करते थे। उदयपुर में स्वामीजी उपदेश किया करते थे कि यदि गाना सुनने की रुचि हो तो वेदों का गान सुनना चाहिये। वेश्याओं को कुतियों से उपमा दिया करते थे और सब को इनसे बचने और दूर रहने की शिक्षा दिया करते थे। एक अवसर पर रियासत के कुछ ज़मीन्दारों ने स्वामीजी से निवेदन किया कि हमारे अभियोग (मुक़द्दमे) में महाराणा साहब से कहकर न्याय कराइये, हम आपके बहुत ही कृतज्ञ होंगे स्वामीजी ने स्पष्ट उत्तर देदिया कि हम संन्यासी हैं, इस बात को आप खुद महाराणा साहब से कहें हमारा इस प्रकार के सांसारिक झगड़ों में हस्तक्षेप करना ठीक नहीं है। एक दिन महाराणा साहब उदयपुर ने एकान्त में विनयपूर्वक स्वामीजी से निवेदन किया कि यदि आप देशकालोचित समझ कर मूर्त्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दें तो अति उत्तम हो क्योंकि आप जानते हैं कि यह रियासत एकलिङ्गेश्वर महादेव के अधीन चली आती है, यदि आप स्वीकार करें तो इस मन्दिर के महन्त बन सकते हैं और लाखों रुपये

की जायदाद पर आपका अधिकार हो जावेगा। यह सुन कर स्वामीजी को बड़ा क्रोध आया और कहने लगे कि महाराणाजी! आप मुझे लालच देकर उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की अवज्ञा करने पर उद्यत कराना चाहते हैं। ये आपके मन्दिर और यह आपकी छोटीसी रियासत (जिससे मैं एक दौड़ में बाहर जा सकता हूं) मुझे किसी दशा में उस परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध नहीं कर सकते जिसके राज्य से कोई कभी किसी प्रकार भी बाहर नहीं जासकता। आप निश्चय रक्खें कि मैं कभी परमात्मा और वेदों की आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता, यह उत्तर सुनकर महाराणा सज्जनसिंह चकित और लज्जित हुए और नम्रता से क्षमाप्रार्थी हुए। अन्त में यहां स्वामीजी ने परोपकारिणी सभा स्थापित की जिसके मन्त्री श्यामलदानजी नियत हुए। यहीं पर स्वामीजी ने अपना अन्तिम शिक्षापत्र (वसीयतनामा) लिखकर रजिस्टरी कराया था। जिसका अनुवाद निम्नलिखित है:—

वसीयतनामा परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य श्रीयुत स्वामी दयानन्दसरस्वती लिखित।

स्वीकारपत्र

मैं स्वामी दयानन्दसरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार तेईस (२३) सज्जन आर्य्यपुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूं और उसको परोपकार सुकार्य में लगाने के लिये अध्यक्ष बनाकर यह स्वीकारपत्र लिखे देता हूं कि समय पर काम आवे।

इस सभा का नाम परोपकारिणी सभा है और निम्नलिखित तेईस (२३) महाशय इसके सभासद् हैं:—

(१) श्रीमन्महाराजाधिराज महिमहेन्द्र यावदार्यकुलकमलदिवाकर महाराणाजी श्री १०८ सज्जनसिंह वर्मा जी. सी. एस्. आई. उदयपुराधीश राज मेवाड़ सभापति.

(२) लाला मूलराज साहब एम. ए. एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर प्रधान आर्य्यसमाज लाहौर उपसभापति,

(३) श्रीयुत कविराज श्यामलदानजी उदयपुर राज मेवाड़ मन्त्री १

(४) लाला रामशरणदास रईस व उपप्रधान आर्य्यसमाज मेरठ मन्त्री २

(५) पंड्या मोहनलालजी विष्णुलालजी शर्मा उदयपुर जन्मस्थान मथुरा उपमन्त्री.
(६) श्रीमन्महाराजाधिराज श्री नाहरसिंहजी वर्मा शाहपुराधीश सभासद्.
(७) श्रीमत् राव तख्तसिंहजी बेदले राज मेवाड़ ,,
(८) श्रीमत् राजराणा श्रीफ़तहसिंहजी वर्मा देलवाड़ा ,,
(९) श्रीमत् रावत श्रीअर्जुनसिंहजी वर्मा आसींद ,,
(१०) श्रीमत् महाराज श्रीगजसिंहजी वर्मा उदयपुर ,,
(११) श्रीमत् राव श्रीबहादुरसिंहजी वर्मा मसूदा ज़िला अजमेर ,,
(१२) रावबहादुर पं० सुन्दरलाल सुपरिण्टेण्डेण्ट वर्कशाप अलीगढ़ आगरा ,,
(१३) राजा जयकृष्णदासजी सी. एस. आई. डिप्टीकलेक्टर बिजनौर मुरादाबाद,,
(१४) लाहू० दुर्गाप्रसाद कोषाध्यक्ष आर्य्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद ,,
(१५) लाहू० जगन्नाथप्रसाद फ़र्रुख़ाबाद ,,
(१६) सेठ निर्भयराम प्रधान आर्य्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद बिसाऊ राजपूताना ,,
(१७) लाला कालीचरण रामचरण मन्त्री आर्य्यसमाज फ़र्रुख़ाबाद ,,
(१८) बाबू छेदीलाल गुमाश्ते कमसरियट छावनी मुरार (ग्वालियर) ,,
(१९) लाला साईंदास मन्त्री आर्य्यसमाज लाहौर ,,
(२०) बाबू माधवदास मन्त्री आर्य्यसमाज दानापुर ,,
(२१) रायबहादुर राजमान राजेश्वरी पं० गोपालराव हरिदेशमुख मेम्बर कौन्सिल गवर्नर बम्बई व प्रधान आर्य्यसमाज बम्बई-पूना ,,
(२२) रावबहादुर महादेव गोविन्द रानडे जज पूना ,,
(२३) पंडित श्यामजीकृष्ण वर्मा प्रोफ़ेसर संस्कृत यूनिवर्सिटी आक्सफोर्ड लण्डन बम्बई ,,

स्वीकारपत्र के नियम ।

(१) उक्त सभा जैसे कि मेरी जीवितावस्था में मेरे समस्त पदार्थों की रक्षा करके निम्नलिखित परोपकार के कामों में लगाने का अधिकार रखती है वैसे ही मेरे पीछे अर्थात् मरने के पश्चात् भी लगाया करे ।

(१) वेद और वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में ।

(२) वेदोक्त धर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशकमण्डली नियत क-

रके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग आदि में।

(३) आर्यावर्त्त के अनाथ और दीन जनों की शिक्षा और पालन में खर्च करें और करावें।

(२) जैसे मेरी उपस्थिति में यह सभा सब प्रबन्ध करती है वैसे ही मेरे पीछे तीसरे या छठे महीने किसी सभासद् को वैदिक यन्त्रालय का हिसाब किताब समझने और पड़तालने के लिये भेजा करे और वह सभासद् वहां जाकर कुल आमदनी और खर्च की जांच पड़ताल किया करे और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर करे और इस पड़ताल की एक २ प्रति प्रत्येक सभासद् के पास भेजे और यदि यन्त्रालय के प्रबन्ध में कुछ त्रुटि देखे तो उसके सुधार के लिये अपनी सम्मति लिखकर प्रत्येक सभासद् के पास भेज देवे और प्रत्येक सभासद् को उचित है कि अपनी २ सम्मति सभापति के पास लिख भेजे और सभापति सब की सम्मति से यथोचित प्रबन्ध करे, इस कार्य में कोई सभासद् आलस्य या अनुचित व्यवहार न करे।

(३) इस सभा को उचित है कि जैसा यह परम धर्म और परमार्थ का काम है वैसा ही उसको उत्साह, पुरुषार्थ, गम्भीरता और उदारता से करे।

(४) प्रागुक्त तेईस आर्य सज्जनों की सभा मेरे पीछे सब प्रकार मेरी स्थानापन्न समझी जावे अर्थात् जो अधिकार मुझे अपने सर्वस्व का है वही अधिकार सभा को है और होगा। यदि उक्त सभासदों में से कोई सभासद् स्वार्थ में पड़कर इन नियमों के विरुद्ध काम करे या कोई अन्य मनुष्य हस्तक्षेप करे तो वह सर्वथा झूठा समझा जाय।

(५) जैसे इस सभा को वर्त्तमान समय में मेरी और मेरे सब पदार्थों की यथाशक्ति रक्षा और उन्नति करने का भी अधिकार है वैसे ही मेरे मृतक शरीर के संस्कार का भी अधिकार है। अर्थात् जब मेरा शरीर छूटे तो न उसको गाड़ें न जल में बहावें, न जङ्गल में फेंकें, सिर्फ चन्दन की चिता बनवावें और जो यह सम्भव न हो तो दो मन चन्दन, चार मन घी, पांच सेर कपूर, अढ़ाई मन अगरतगर और दश मन काष्ठ लेकर वेद के अनुसार जैसा कि संस्कारविधि पुस्तक में लिखा है वेदि बनाकर वेदमन्त्रों से, जो उसमें लिखे हैं, भस्म करें। इसके सिवाय और कुछ वेद के

विरुद्ध न करें और जो उस समय इस सभा के कोई सभासद् उपस्थित न हों तो जो कोई उस समय उपस्थित हो वही यह काम करे और जितना धन इसमें लगे उसको सभा से लेलेवे और सभा उसको देदेवे।

(६) अपने जीवन में मैं और मेरे पीछे यह सभा इस बात का अधिकार रखती है कि जिस सभासद् को चाहे पृथक् करके किसी और योग्य सामाजिक आर्यपुरुष को उसका स्थानापन्न नियत करदे। परन्तु कोई सभासद् सभा से तबतक पृथक् न किया जायगा, जबतक उसके काम में कोई अनुचित चेष्टा न पाई जाय।

(७) मेरे सदृश यह सभा सदा स्वीकारपत्र की व्याख्या या उसके नियमों का पालन या किसी सभासद् के पृथक् करने और उसके स्थान में अन्य सभासद् को नियत करने या मेरे आपत्काल के निवारण करने के उपाय और यत्न में वह उद्योग करे जो सब सभासदों की सम्मति से निश्चय और निर्णय हो या होवें और यदि सभासदों की सम्मति में विरोध रहे तो बहुसम्मति के अनुसार काम करें और सभापति की सम्मति को सदा द्विगुण समझें।

(८) किसी दशा में भी यह सभा तीन से अधिक सभासदों को तबतक अपराध के सिद्ध होने पर भी पृथक् न कर सकेगी जबतक कि उनकी जगह में और सभासदों को नियत न करले।

(९) यदि किसी सभासद् का देहान्त होजाय या वेदोक्त धर्म को छोड़कर उक्त नियमों के विरुद्ध चलने लगे तो सभापति को उचित है कि सब सभासदों की सम्मति से उसको पृथक् करके उसकी जगह में किसी और योग्य वेदोक्त धर्मयुक्त आर्यपुरुष को नियत करें, परन्तु उस समय तक साधारण कामों के अतिरिक्त कोई नयाकाम न छेड़ा जाय।

(१०) इस सभा को अधिकार है कि सब प्रकार का प्रबन्ध करे और नये उपाय सोचे। परन्तु यदि सभा को अपने परामर्श और विचार पर पूरा २ निश्चय और विश्वास न हो तो समय का निर्धारण करके लेख द्वारा सम्पूर्ण आर्यसमाजों से सम्मति ले और बहुपक्षानुसार उचित प्रबन्ध करे।

(११) प्रबन्ध का घटाना बढ़ाना या स्वीकार या अस्वीकार करना या किसी सभासद् को पृथक् वा नियत करना वा आमदनी व खर्च की जांच पड़ताल करना

या अन्य हानि लाभ सम्बन्धी विषयों को सभापति वर्ष भर में या छः महीने में छपवा कर चिट्ठी के द्वारा सब सभासदों में प्रचारित करे ।

(१२) यदि इस स्वीकारपत्र के विषय में कोई झगड़ा उठे तो उसको राजगृह में न लेजाना चाहिये, किन्तु जहांतक होसके यह सभा अपने आप उसका निर्णय करे यदि आपस में किसी प्रकार निर्णय न होसके तो फिर न्यायालय से निर्णय होना चाहिये ।

(१३) यदि मैं अपने जीते जी किसी योग्य आर्यपुरुष को पारितोषिक देना चाहूं और उसकी लिखत पढ़त कराकर रजिस्टरी कराद्ूं तो सभा को चाहिये कि उसको माने और दे ।

(१४) मुझे और मेरे पीछे सभा को सदा अधिकार है और रहेगा कि उक्त नियमों को देश के किसी विशेष लाभ और परोपकार के लिये न्यूनाधिक करे ।

हस्ताक्षर—दयानन्दसरस्वती ।

पुत्रजन्मोत्सव के अवसर पर महाराणा साहब ने आठसौ रुपये स्वामीजी की प्रेरणा से अनाथालय फ़ीरोज़पुर को भेजे थे । विदा करते समय महाराणा साहब ने दो हज़ार रुपये स्वामीजी की भेट करने चाहे । परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया जब महाराणा साहब ने आग्रह किया और यह कहा कि हम संकल्प कर चुके हैं, इसे रख नहीं सकते, तब स्वामीजी इसके लिये दानपात्र सोचने लगे, निदान इस रुपये को परोपकारिणीसभा को देदिया । इस अवसर पर महाराणा साहब ने स्वामीजी से अपनी यह अभिलाषा प्रकट की कि यदि आप षड्दर्शनों का भाष्य (अनुवाद) छपवावें तो इसके खर्च के लिये बीस हज़ार रुपया मुझसे मंगवा लीजियेगा । अस्तु, महाराणा सज्जनसिंहजी ने स्वामीजी को अपनी रियासत से बड़ी प्रतिष्ठा और आदर के साथ विदा किया, स्वामीजी के पश्चात् यहां आर्यसमाज भी स्थापित होगया, जिसके कई प्रतिष्ठित और प्रभावशाली पुरुष सभासद् हुये ।

रियासत शाहपुरे का वृत्तान्त

१ मार्च सन् १८८३ ईस्वी को स्वामीजी उदयपुर से प्रस्थित होकर नीमाहेड़े और चित्तौड़ होते हुये ६ मार्च को दिन के ४ बजे के समय शाहपुरा में पहुंचे और नाहरनिवास बाग में

महर्षि का चित्र शाहपुरा नरेश द्वारा प्राप्त

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

देलिया कुएं के पास, जहां महाराज साहब ने स्थिति का प्रबन्ध कर रक्खा था, आ ठहरे। महाराजा साहब शाहपुरा ने स्वामीजी के आतिथ्य का सब सामान इकट्ठा कर दिया था। स्वामीजी ने यहां आते ही वैदिकधर्म का प्रचार करना आरम्भ करदिया। रात दिन धर्मचर्चा रहने लगी, महाराजा साहब प्रतिदिन सन्ध्या को ३ घण्टे स्वामीजी से मनुस्मृति आदि संस्कृत के ग्रन्थ पढ़ा करते थे। मनुस्मृति में जितने बनावटी श्लोक (प्रक्षिप्त) पीछे से मिलाये गये, उनका तात्पर्य समझाकर स्वामीजी ने महाराजा साहब से कहा कि इन श्लोकों को अब से प्रक्षिप्त समझें। फिर योगशास्त्र पढ़ाकर प्राणायाम आदि उनसे कराने लगे। योगशास्त्र के पश्चात् कुछ वैशेषिक दर्शन भी महाराजा साहब को पढ़ाया था। यहां स्वामीजी ने एक ब्राह्मण को, जो कुछ थोड़ासा पढ़ाहुआ था, उसकी कईवार प्रार्थना करने पर संन्यास ग्रहण कराया और दण्ड धारण करा उसका नाम ईश्वरानन्द सरस्वती रक्खा और उसी समय से विद्याध्ययन के लिये इलाहाबाद भेज दिया तथा वैदिकयन्त्रालय के प्रबन्धकर्त्ता के लिये एक पत्र भी इस आशय का लिख दिया कि जबतक यह विद्याध्ययन करता रहे इसको ५) रु० प्रतिमास भोजनार्थ मिलता रहे। यहां पर रामस्नेहियों के सब से बड़े महन्त हिम्मतरामजी भी स्वामीजी से शङ्कासमाधान किया करते थे यहांतक कि शास्त्रार्थ के लिये भी स्वामीजी ने बहुत कुछ कहा, परन्तु वे किसी प्रकार भी शास्त्रार्थ के लिये तैयार न हुए। यहां पर एक दादूपन्थी ने, जो संस्कृत में भी अपनी कुछ टांग अड़ाता था, स्वामीजी के स्थान पर तो कभी आने का कुछ साहस नहीं रखता था परन्तु जिस समय स्वामीजी बाहर जंगल में पधारते तो वहां मार्ग में आ अड़ता और अट्ट सट्ट बोला करता। एक दिन स्वामीजी ने उससे कहा कि भाई! अपनी तरह मेरा भी समय क्यों व्यर्थ खोते हो स्थान पर आकर प्रश्नोत्तर करना, इसका कुछ उत्तर न दिया।

यहां पर एक दिन अकस्मात् कोठी की छत (जो नई बन रही थी) टूट पड़ी और पत्थरों की पट्टियों के नीचे आदमी दब गये, किसी को साहस न हुआ परन्तु स्वामीजी निर्भय होकर उनको निकाल लाये। यहां पर रामगढ़ से पं० कालूरामजी भी स्वामीजी के दर्शनार्थ आये थे और धर्मोपदेश सुनकर फिर स्वामीजी की आज्ञानुसार रामगढ़ में उपदेश करना आरम्भ करदिया। यहां के प्रतिष्ठित पौंडरीक हरदत्तजी भी स्वामीजी के दर्शनार्थ पधारे थे, कुछ समय तक वार्तालाप करके प्रसन्न होकर चले गये। स्वामीजी के उपदेश से राजाधिराज ने अपने राजभवन में एक यज्ञ-

शाला भी बनवाई और प्रतिदिन अग्निहोत्र करने का दृढ़ व्रत धारण किया, चलते समय महाराजा साहब ने २५०) रु० नक़द वेदभाष्य की सहायता में प्रदान किये और ३०) रु० मासिक पर वैदिकधर्मप्रचार के लिये एक उपदेशक नियत करना स्वीकार किया। इस अवसर में जोधपुर पधारने के लिये स्वामीजी को वहां से निमन्त्रण आया। स्वामीजी ने जोधपुर जाना भी स्वीकार कर लिया, ज्येष्ठ कृष्ण ४ शनिवार संवत् १९४० को दिन के ४ बजे स्वामीजी शाहपुरा से प्रस्थित हुए। राजाधिराज ने चलते समय स्वामीजी से ऐसा इशारा किया कि महाराज! आप जोधपुर तो पधारते हैं परन्तु वहां वेश्या आदि का खण्डन न करना। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि राजन्! मैं बड़े वृक्ष को नुहरने से नहीं काटता, उसके लिये तो बड़े शस्त्र की आवश्यकता होगी। शाहपुरा से प्रस्थित होकर १८ मई १८८३ ईस्वी को स्वामीजी अजमेर आये और यहां से फिर जोधपुर राज्य को प्रस्थान किया।

जोधपुर में वैदिकधर्म का उपदेश और विष प्रयोग

जिन दिनों स्वामीजी उदयपुर में उपदेश कर रहे थे, उन दिनों जोधपुर से महाराजा सर कर्नेल प्रतापसिंहजी उच्चाधिकारी राज मारवाड़ और रावराजा तेजसिंहजी ने बड़ी अभिलाषा और नम्रता के साथ जोधपुर में पधारने के लिये स्वामीजी को निमन्त्रित किया था और स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करली थी। जिस समय स्वामीजी उदयपुर से शाहपुरे में पहुंचे थे, तब जोधपुर से महाराजा प्रतापसिंहजी का पत्र पहुंचा कि हमने आपके लिये सवारियों का प्रबन्ध करदिया है। मार्ग के सुप्रबन्ध के लिये बारेठ उमरदानजी को शाहपुरे भेजा कि स्वामीजी के साथ रहें, इधर रेलवे स्टेशन पाली पर हाथी, रथ, घोड़े, गाड़ियां पालकी आदि का प्रबन्ध होगया। २७ मई १८८३ ईस्वी को स्वामीजी अजमेर पहुंचे और दूसरे दिन जोधपुर की ओर प्रस्थित हुए २९ मई को प्रातःकाल जोधपुर पहुंच गये। रियासत की ओर से रावराजा जवानसिंहजी स्वागत के लिये आये और उन्हें बड़े आदर के साथ भय्या फ़ैज़ुल्लाखां के बाग़ के बड़े बंगले में ठहराया। थोड़ी देर पीछे स्वयं महाराजा प्रतापसिंहजी और रावराजा तेजसिंहजी स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए और २५) नक़द और १ अशर्फ़ी भेट दिखलाई। उसी समय चारण मूलदानजी को स्वामीजी के आतिथ्य का प्रबन्ध सौंपा गया, छः सिपाही और एक हवालदार चौकी पहरे के लिये नियत किये गये। इस अवसर पर इस बात का वर्णन करदेना असङ्गत न होगा कि जिस समय स्वामीजी अजमेर से जोधपुर को चलने लगे तो अजमेर आर्य्यसमाज के सभासदों ने

स्वामीजी से विनयपूर्वक निवेदन किया था कि अब आप मारवाड़ प्रान्त में पधारते हैं जहां के मनुष्य प्रायः गंवार और उजड्ड हैं और उनका स्वभाव और वर्ताव भी अच्छा नहीं है, इसलिये अभी आप वहां न जाइये परन्तु स्वामीजी ने इसका उत्तर यह दिया था कि यदि लोग मेरी उंगलियों की बत्तियां बनाकर जलावें तब भी मुझे कुछ शङ्का नहीं हो सकती। मैं वहां जाऊंगा और अवश्य वैदिकधर्म का प्रचार करूंगा। इस पर एक प्रतिष्ठित मनुष्य ने स्वामीजी से प्रार्थना की कि तथापि आप वहां सोच समझकर और मधुरता से काम लेना, कारण यह है कि वहां के रहने वाले कठोरहृदय और कपटी भी होते हैं। इसका उत्तर स्वामीजी ने यह दिया कि मैं पाप के बड़े २ वृक्षों की जड़ें काटने के लिये तीक्ष्ण कुठारों से काम लूंगा न कि उनको बढ़ाने के लिये कैंचियों से उनकी कलम करूंगा। यह अन्तिम उत्तर सुनकर फिर किसी को साहस न हुआ कि कुछ कहसके। स्वामीजी के जोधपुर पहुंचने के सत्रह दिन बाद श्रीमान् महाराजा यशवन्तसिंहजी जोधपुराधीश मिलने के लिये स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए, आते ही सौ रुपये नक़द और पांच अशर्फियों की भेट दिखाई और तत्पश्चात् फ़र्श पर बैठने लगे, स्वामीजी ने आग्रह किया कि आप हमारे बराबर कुर्सी पर बैठिये, इस पर महाराजा साहिब ने कहा आप हमारे स्वामी हैं, हम आपके सेवक हैं, हमें आपके बराबर बैठना शोभा नहीं देता, परन्तु स्वामीजी ने उनका हाथ पकड़कर अपने सामने कुर्सी पर बिठाया और धर्मोपदेश करने लगे। तीन घण्टे तक बराबर महाराजा साहब स्वामीजी का उपदेश सुनते रहे, अन्त में महाराजा साहब यह कहकर कि आपका यहां पधारना हमारे सौभाग्य से हुआ है, जबतक आप यहां हैं, प्रतिदिन उपदेश किया करें। दूसरे दिन से स्वामीजी ने यह नियम बांध लिया कि चार बजे से छः बजे तक मैदान में व्याख्यान देते और इसके पश्चात् कोठी में चले जाते और ८ बजे तक वहां लोगों के सन्देह निवारण करते रहते थे। जोधपुर और उसके आसपास के प्रसिद्ध पण्डित बहुत कुछ कहने सुनने पर भी स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत न हुए, किन्तु हां उनमें से कोई २ अपने सन्देह निवृत्त करने के लिये आजाया करते थे। यहां चक्राङ्कित सम्प्रदाय की स्वामीजी ने खूब पोल खोली। जोधपुर के प्रायः प्रतिष्ठित और श्रीमान् लोग भी अपनी २ रुचि के अनुसार स्वामीजी से प्रश्न किया करते थे और उनका समीचीन उत्तर सुनकर सन्तुष्ट होजाते थे। मुसलमानों में से नव्वाब मुहम्मदखां साहब आया करते थे, यह शीया थे, उन्होंने स्वामीजी से कभी बहस नहीं की जब कभी कोई बात आपडती थी तो नव्वाब साहब कह दिया करते थे कि आप तो पहुंचे हुए साधु हैं हमारा

आपका क्या मुक़ाबिला ? कर्नल मुहीउद्दीन व कामदार इलाहीबख़्श भी स्वामीजी से प्राय: बातचीत करने आया करते थे। भैय्या फ़ैज़ुल्लाख़ां मुसाहिब आला राज मारवाड़ स्वामीजी के व्याख्यान सुनकर नाक भौं चढ़ाया करते थे; एक दिन उन्होंने स्वामीजी से स्पष्ट कहदिया कि यदि मुसलमानों का राज होता तो ऐसे व्याख्यान नहीं देसकते थे और यदि देते तो जीते नहीं रहसकते थे। इससे प्रकट है कि भैया साहब स्वामीजी से कितना विरोध रखते थे। स्वामीजी ने इसका यह उत्तर दिया था कि अस्तु यह कोई बात नहीं है मैं भी उस समय दो क्षत्रिय राजपूतों की पीठ ठीक देता वे उन लोगों को अच्छी तरह समझ लेते।

रावराजा शिवनाथसिंहजी और उनके भाई रावराजा मोहनसिंहजी दोनों संस्कृत के विद्वान् थे, इनकी स्वामीजी के साथ शाक्तिक मत और नवीन वेदान्त के विषय में प्राय: बातचीत हुआ करती थी, अन्त में यह मान गये थे और स्वामीजी से बड़ा स्नेह और उनका आदर किया करते थे। पं० शिवनारायणजी प्राइवेट सेक्रेटरी महाराजा साहब जोधपुर स्वामीजी के बड़े भक्त थे और उन्हें हिन्द का फ़िलासफ़र कहा करते थे। एक दिन स्वामीजी ने सभा में क्षत्रियों के धर्म और उनकी गिरी हुई दशा पर व्याख्यान दिया इस व्याख्यान का एक २ शब्द गम्भीर अर्थ को लिये हुए था, इसमें स्वामीजी ने यह भी कहा था कि जो राजा अपनी एक विवाहिता रानी को छोड़कर पराई स्त्रियों या अन्य स्त्रियों से अनुचित सम्बन्ध पैदा करलेते हैं, वे महापाप के भागी होते हैं, उनकी दशा बड़ी ही शोचनीय है और वास्तव में उनसे पशु अच्छे हैं। मूर्तिपूजकों से स्वामीजी कहा करते थे कि आप जो एक सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् से मुंह फेर कर मूर्त्तिपूजा करते हैं तो इसका अभिप्राय यह है कि आप एक सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी सत्ता को नहीं मानते।

स्वामीजी समय के पूरे पाबन्द थे, कभी २ महाराजा यशवन्तसिंहजी जोधपुराधीश रात के दस बजे तक स्वामीजी के पास बैठे रहा करते थे। दश बजते ही स्वामीजी साफ़ २ महाराजा साहब से कहदेते थे कि अब आराम कीजिये, यदि महाराजा साहब कुछ देर और ठहरना चाहते तो वे पुन: कहदिया करते थे कि अब शेष वार्त्तालाप कल पर रखिये अब समय होगया है।

इसी बीच में स्वामीजी को विश्वस्त रीति पर मालूम हुआ कि महाराजा साहब जोधपुर का एक वेश्या से (जिसका नाम नन्हीजान है) अनुचित सम्बन्ध है, यह

वेश्या महाराजा साहब के मुंह लगी हुई थी और रियासत के समस्त कर्मचारी और अधिकारी इससे दबते थे, यहांतक कि रियासत के छोटे और बड़े काम बिना इस की सम्मति के नहीं होते थे, यह सुनकर स्वामीजी को बड़ा खेद हुआ। कुछ दिन बाद महाराजा साहब ने उपदेशार्थ स्वामीजी को अपने दीवानखास में बुलाया, स्वामीजी ने उनका यह निमन्त्रण बड़ी प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया, कारण यह था कि वे इस अवसर पर एक विशेष उपदेश करना चाहते थे। संयोग से जिस समय स्वामीजी दीवानखास में पहुंचे उस समय नन्हीजान की पालकी अन्दर थी और वह पालकी के भीतर से महाराजा साहब से बातें कररही थी स्वामीजी के आने की खबर सुनकर शीघ्रता से महाराजा साहब ने पालकी उठाने वालों को आज्ञा दी कि पालकी लेजाओ, उठानेवालों का इस शीघ्रता में कन्धा ऊंचा नीचा होगया और पालकी टेढ़ी होने लगी तो खुद महाराजा साहब ने अपने हाथ के सहारे से उसे सीधा करदिया और आज्ञा दी कि जल्दी से पालकी निकाल लेजाओ इतनी शीघ्रता होने पर भी स्वामीजी ने थोड़े अन्तर पर अपनी आंखों से देख लिया कि महाराजा साहब ने अपना हाथ लगाकर नन्हीजान की पालकी हमारे आने के कारण उठवादी है। यह दशा देखकर स्वामीजी को बड़ा क्रोध आया, उस दिन स्वामीजी ने अपने उपदेश में स्वदेशीय नरेशों की वर्त्तमान दशा का चित्र खींचा और यहांतक स्पष्ट कहदिया कि सिंह अब कुत्तों का अनुकरण करने लगे, व्यभिचारिणी स्त्रियां कुत्तियों के सदृश हैं उनसे सम्बन्ध रखना कुत्तों का काम है न कि सिंहों का। महाराजा साहब जोधपुर पर इस उपदेश का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, इन्हीं दिनों में स्वामीजी ने एक आर्य से कहा कि हिन्दू रियासतों की दशा बहुत ही शोचनीय है वे कभी की नष्ट भ्रष्ट होगई होतीं परन्तु जितनी या जो कुछ बची हुई हैं वे उन की रानियों के पातिव्रत धर्म के कारण, अन्यथा यदि राजाओं के कर्मों पर निर्भर होता तो कभी का बेड़ा डूब गया होता। कुछ दिन बाद स्वामीजी ने महाराजा प्रतापसिंहजी को एक चिट्ठी लिखी थी जिसमें महाराजा साहब जोधपुर के चरित्र का भी संकेत था। उन को शिक्षा की थी कि आप के शिर पर बड़ाभारी बोझ है यदि रियासत की यही दशा रही तो इसका परिणाम अच्छा न निकलेगा। स्वामीजी के उपदेश और कार्रवाई से नन्हीजान वेश्या क्रोध की अग्नि में जल भुन गई, कारण यह कि उस पर चारों ओर से फटकार पड़ने लगी।

दूसरी बात यह हुई कि चक्राङ्कित सम्प्रदाय की प्रबल समीक्षा से महता विजयसिंहजी वैष्णव बहुत भड़क उठे। तीसरे अथवा फ़ैजुल्लाखां पहिले ही स्वामीजी से

कहचुका था कि यदि मुसलमानों का राज्य होता तो लोग आपको जीता न छोड़ते। चौथे ब्राह्मण और पौराणिक पण्डित रातदिन स्वामीजी को कोसते थे और कहते थे कि यदि यह कुछ दिन और यहां रहगये तो हमें यहां रहना कठिन होजायगा ये सब सामान स्वामीजी के विरुद्ध वहां उपस्थित थे, निदान स्वामीजी का काम तमाम करने के लिये नानाप्रकार की अभिसन्धि (साज़िशें) होने लगीं। सबसे पहिले स्वामीजी के रसोइये ब्राह्मण देवता को (जिसका नाम धौड़मिश्र था और जो शाहपुरे का रहने वाला था) गांठा गया, दूसरे कल्लू कहार भरतपुर के रहनेवाले को अपने हत्थे चढ़ाया। यह एक रात छै सात सौ रुपये का माल चुरा कर खिड़की की राह से भाग गया, रामानन्द ब्रह्मचारी को आज्ञा थी कि खिड़की के पास सोवे, वह उस रात वहां नहीं सोया, पहरे वालों की ओर से जानबूझ कर बेपरवाही होने लगी। जब कभी स्वामीजी उनको किसी अपराध पर डाटते थे तो उस समय हाथ जोड़कर "जो आज्ञा महाराज" कह दिया करते थे, परन्तु पीछे बात २ में हँसी उड़ाया करते थे। चोरी का कुछ पता नहीं लगा और न पुलिस के अफ़सरों की ओर से कुछ यत्न किया गया, यह दशा देखकर स्वामीजी यहां से उदासीन होगये और चलने की मन में सोचने लगे। यह निश्चय करलिया कि २७ सितम्बर को यहां से चल देंगे, परन्तु उस दिन किसी कारणवश न चल सके।

स्वामीजी दिन में सिर्फ़ एक वार भोजन किया करते थे, आमों से उन्हें बड़ी रुचि थी आम खाकर ऊपर से दूध पीलिया करते थे, रात को सोने से पहले गर्म दूध ठण्डा करके पिया करते थे, २९ सितम्बर की रात को नियमानुसार धौड़मिश्र से दूध लेकर पिया और सोगये। थोड़ी देर के बाद उदरशूल और जी मिचलाना प्रारम्भ हुआ (पीछे निश्चित रीति पर मालूम हुआ कि दूध में चीनी के साथ कुछ पीस कर दिया गया था) प्रातःकाल होने तक स्वामीजी ने किसी को नहीं जगाया, वमन होने पर आप ही पानी लेकर मुंह हाथ धोलेते थे। प्रातःकाल को नियमविरुद्ध दिन चढ़े स्वामीजी बिस्तर पर से उठे और निर्बलता से भ्रमण के लिये भी न जा सके। अपने लोगों को आज्ञा दी कि हवन प्रारम्भ करो ताकि दुर्गन्धित वायु दूर होजावे। इतने में ही उदरशूल पेचिश और अतिसार का वेग हो आया, परन्तु इस दशा में भी स्वामीजी ज़रा नहीं घबराये, पूछने पर अपनी वास्तविक दशा बतला देते थे। पहिले डाक्टर सूर्यमलजी का इलाज प्रारम्भ हुआ और उन्होंने दत्तचित्त होकर बड़े परिश्रम से चिकित्सा की। परन्तु राज की ओर से डाक्टर अलीमर्दानखां चिकित्सा के लिये नियत

हुये, महाराजा प्रतापसिंहजी को आशा थी कि डाक्टर साहब बड़े योग्य पुरुष हैं उनके इलाज से स्वामीजी को शीघ्र आराम होगा। परन्तु शोक कि उनके इलाज से स्वामीजी की दशा दिन पर दिन बिगड़ती गई, यहां तक कि दिन में तीस २ चालीस २ दस्त होने लगे। डाक्टर सूर्यमल्ल जैसा कुछ इलाज हो रहा था, उसे देखकर अपने मन ही मन में कुढ़ते थे और किसी २ से कह दिया करते थे कि मैं लाचार हूं मेरा इलाज नहीं और बड़े तो बड़े ही हैं जो कुछ हो रहा है वह दीख रहा है। डाक्टर अलीमर्दानखां के निदान और चिकित्सा की आयुर्वेद के जाननेवाले जैसी तीक्ष्ण समालोचना करते हैं उस का इस अवसर पर वर्णन करना अनावश्यक है, सिर्फ़ इतना कह देना ही काफ़ी है कि स्वामीजी के साथ इस समय सरासर कपट किया जारहा था। निदान डाक्टर अलीमर्दानखां के इलाज से स्वामीजी इतने कृश और निर्बल होगये कि उनको दिन में कई वार मूर्छा आ जाती थी और प्रायः करवट लेना भी कठिन होगया था। मुख, तालु, जीभ, शिर और माथे पर बहुतसे छाले पड़ गये थे और हिचकियों का तार बंध गया, बोलने में भी कष्ट होता था। यह सब कुछ होने पर भी उनकी चेष्टा से घबराहट के चिह्न तक लक्षित नहीं होते थे, कराहने की तो बात ही क्या थी? कभी आह तक नहीं की। स्वामीजी की दशा को छिपाया जाता था और पूछने पर कुछ का कुछ बतला दिया जाता था, यही कारण था कि डाक्टर अलीमर्दानखां का इलाज बन्द करके किसी और योग्य वैद्य का इलाज शुरू नहीं हुआ।

अकस्मात् ११ अक्टूबर सन् १८८३ ईस्वी को आर्यसमाज अजमेर के एक सभासद् ने राजपूताना गज़ट में यह खबर पढ़ी कि जोधपुर में स्वामीजी रोगग्रस्त हैं। यह समाचार उन्होंने और आर्य्यपुरुषों को सुनाया, पहिले तो सब ने यही सोचा कि यह किसी शत्रु का काम है अन्यथा यदि स्वामीजी खेदित होते तो क्या हमें न लिखते या उनके साथ वाले हमें सूचना न देते। ऐसा कभी हो सकता है कि ऐसी घटना से हम सब अनभिज्ञ रहें तथापि हृदय सबका व्याकुल हो गया और सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि शीघ्र जोधपुर पहुंचना चाहिये और यह भेद मालूम करना चाहिये। निदान सोढा जेठमलजी अजमेर समाज की ओर से जोधपुर पहुंचे वहां स्वामीजी की दशा देखकर यह बहुत ही घबरा गये। स्वामीजी की ओर देख कर कहने लगे कि यह दशा और आपने हम में से किसी को खबर तक नहीं की। स्वामीजी ने बहुत धीरे से कहा कि कोई बात नहीं है, शरीर को कष्ट हुआ ही करता है कोई और बात होती तो लिखते, हमारी बीमारी का हाल सुनकर आप सब लोग भी घबरा जाते

इसलिये नहीं लिखा। सेठ जेठमलजी तुरन्त अजमेर लौट आये, यहां पहुंचते ही सब को स्वामीजी की दशा से बोधित किया; फिर क्या था चारों ओर तार खटक गये और सारे आर्य्यावर्त्त में कोलाहल मच गया। चारों ओर से सैकड़ों अरजेन्ट तार आने लगे, बहुतसे लोग सीधे जोधपुर पहुंचे एक आर्य्यपुरुष ने जोधपुर की सारी घटनाओं को विचारकर स्वामीजी को सम्मति दी कि यह जगह बिना विलम्ब के छोड़ देने योग्य है, स्वामीजी ने कहा बहुत अच्छा। प्रातःकाल होते ही उन्होंने महाराजा साहब जोधपुर को कहला भेजा कि हम आबू पहाड़ पर जावेंगे, महाराजा साहब ने इसके उत्तर में कहा कि ऐसी दशा में मैं क्योंकर आज्ञा दूं ! यदि आप इस समय मेरी रियासत से बाहर जावेंगे तो मेरी बड़ी भारी बदनामी होगी। परन्तु जब स्वामीजी का संकल्प दृढ़ देखा तो लाचार चुप होगये।

१५ अक्टूबर १८८३ ईस्वी को जब स्वामीजी की दशा बहुत ही शोचनीय होगई तब डाक्टर एडम साहब सिविलसर्जन भी इलाज में शरीक किये गये, उन्होंने भी यही सम्मति दी कि इनका आबू पहाड़ पर जाना बहुत अच्छा है। १६ अक्टूबर को स्वामीजी का प्रस्थान निश्चित हुआ। १५ अक्टूबर की शाम को महाराजा साहब जोधपुर अपने मुख्य २ अधिकारियों सहित स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुये और बड़े विनय और अनुराग के साथ कहने लगे कि मेरा यह बड़ा दौर्भाग्य है कि आप ऐसी दशा में यहां से पधारते हैं। यह बात मेरे लिये अनिष्ट है परन्तु मैं इस अवसर पर अधिक आग्रह भी नहीं कर सकता। तदनन्तर ढाई हज़ार रुपये नक़द और दो दुशाले विदायगी में स्वामीजी की भेट किये, स्वामीजी ने महाराजा साहब का आग्रह और उत्साह देखकर स्वीकार कर लिये। दूसरे दिन १६ अक्टूबर १८८३ ई० को तीसरे पहर के समय स्वयं श्रीमान् महाराजा यशवन्तसिंहजी जोधपुराधीश व महाराजा प्रतापसिंहजी स्वामीजी को विदा करने आये, उस समय स्वामीजी पलङ्ग पर सो रहे थे, महाराजा साहब तो पलङ्ग के पास कुर्सी पर बैठ गये और महाराजा प्रतापसिंहजी पलङ्ग के समीप फ़र्श पर बैठ गये। स्वामीजी की आंख खुलने पर धीरे २ बातचीत होने लगी, कामदारों को आज्ञा दी गई कि सोलह कहारों की पालकी तैयार कराई जावे, पालकी के साथ एक पंखाकुली नियत किया गया, दो खस के डेरे साथ किये गये, इनके अतिरिक्त और कई सिपाही और सेवक मार्ग में सेवा और शुश्रूषा के लिये साथ किये गये। आबू को तार दिया गया कि स्वामीजी आते हैं, महाराजा साहब जोधपुर की कोठी में ठहरेंगे, सब सामान ठीक २ रहे।

सायंकाल के समय स्वामीजी को पालकी में बिठाया गया और वाटिका तक महाराजा साहब जोधपुर पैदल स्वामीजी को पहुंचाने आये। वाटिका के द्वार पर पालकी रुकवा कर अपनी ख़ास फ़लालेन की पेटी अपने हाथों से स्वामीजी की कमर में बांधी इस-लिये कि पालकी में आराम करने में कुछ कष्ट न हो, तत्पश्चात् विनय और श्रद्धा से हाथ जोड़कर स्वामीजी को प्रस्थित किया। और कहा कि जब आप आबू पर रोग से मुक्त हों तो मुझको अवश्य तार द्वारा सूचित कीजियेगा मैं पुनः वहां आपके लेने के लिये आऊंगा और पीनस के कहारों से कहा कि यदि तुम लोग स्वामीजी महाराज को अतिप्रसन्नतापूर्वक सुख से पहुंचा कर उनकी चिट्ठी लाओगे तो तुमको राज्य से पारि-तोषिक मिलेगा। ऐसा कह बहुत दुःखी और अश्रुपाती हो महाराजा ज्यों त्यों निज-भवन को सिधारे। उस समय महाराजा साहब ने यह भी प्रकाशित कर दिया था कि जो वैद्य स्वामीजी महाराज को चङ्गा कर देगा उसको २०००) दो सहस्र मुद्रा का पा-रितोषिक इस राज्य से मिलेगा। मार्ग में जहांतक सम्भव था साथियों ने कष्ट न होने दिया, किन्तु तो भी यात्रा लम्बी थी, कई जगह पर स्वामीजी को चिन्ताग्रस्त होना पड़ा था।

मार्ग में स्वामीजी जहां ठहरते हवन कराया करते थे, एक दिन शाम को अग्निहोत्र होरहा था, इतने में दो वेदपाठी ब्राह्मण कहीं से आकर हवन में शरीक होगये और वेदमन्त्र पढ़ने लगे, चलते समय स्वामीजी ने अपने मनुष्य से कहा कि इनको एक २ रुपया भोजनार्थ देदो। थोड़ी देर पश्चात् कई ब्राह्मण काशी माहात्म्य आदि लेकर आये और पढ़ने लगे, स्वामीजी ने आज्ञा दी कि इन्हें अभी यहां से बाहर करदो और एक पैसा मत दो, पाखण्डियों को कभी पास तक न आने दो।

जिस समय स्वामीजी आबू को जारहे थे उस समय डाक्टर लक्ष्मणदासजी जालन्धर निवासी आबू से अजमेर को आरहे थे मार्ग में स्वामीजी की दशा अच्छी न देखकर बड़ा साहस करके उनके साथ आबू लौट गये और २५ अक्तूबर की शाम को स्वामीजी के साथ आबू पहुंचे यद्यपि अजमेर पहुंचने के लिये उन्हें सर्कारी आज्ञा मिल चुकी थी तो भी ज्यों त्यों करके दो दिन आबू रहे और स्वामीजी का इलाज करते रहे, परन्तु इनके अफ़सर ने जब अजमेर जाने का बहुत अनुरोध किया तो उन्होंने इस्तीफ़ा भेज दिया, पर जब यह भी मंजूर न हुआ तो लाचार अजमेर जाना पड़ा, परन्तु दो तीन दिन के वास्ते दवा और पथ्य आदि सब बतला गये और यह कह गये कि आप अजमेर चले आवें, वहां आपका इलाज बहुत अच्छी तरह से हो

सकेगा पहिले तो स्वामीजी ने स्वीकार नहीं किया, परन्तु फिर बहुत कहने सुनने पर मान गये। आबू पहाड़ पर महाराजा साहिब जोधपुर और शाहपुरे के दो २ मुसाहिब स्वामीजी के पास रहा करते थे और जोधपुराधीश की आज्ञानुसार डाक्टर एडिम साहिब सिविल सर्जन और डाक्टर गुरुचरणदास असिस्टेण्ट सर्जन दो तीन बार स्वामीजी को देखने आये थे। एक दिन खुद महाराजा प्रतापसिंहजी जोधपुर से आबू पर स्वामीजी को देखने आये थे। तारों का यह हाल था कि चारों ओर से बराबर चले आरहे थे, तारघर वाले आश्चर्य में थे कि इतने तार तो श्रीमान् वाइसराय और गवर्नरजनरल हिन्द के पधारनेपर भी कभी नहीं आते।

अजमेर और स्वामीजी का स्वर्गवास

२६ अक्टूबर ८३ ईस्वी को प्रातःकाल स्वामीजी आबू से प्रस्थित होकर उसी दिन रात के तीन बजे अजमेर पहुंच गये। आबूरोड़ से एक गाड़ी फर्स्टक्लास की स्वामीजी के लिये रिज़र्व कराई गई थी, मार्गभर कई आर्यपुरुष उनके पास बैठे रहे और जहांतक होसका कष्ट नहीं होने दिया। जब रेलवे स्टेशन अजमेर पर पहुंचे तो अजमेर के आर्यपुरुष पालकी सहित स्वागत के लिये उपस्थित थे। रेल से उतार कर स्वामीजी को पालकी में लिटा दिया और सावधानी से उन्हें एक कोठी में ले आये जो पहिले से इस काम के लिये नियत कर रक्खी थी उस समय रात के तीन बजे थे अक्टूबर का अन्त था लोगों को सर्दी मालूम होती थी परन्तु स्वामीजी के मुंह से केवल "गर्मी गर्मी" का शब्द निकलता था। कोठी के सब दर्वाजे खुलवा दिये गये तब भी स्वामीजी को शान्ति न हुई। दूसरे दिन से डाक्टर लक्ष्मणदासजी का इलाज शुरू हुआ पर उनकी दशा में कुछ अन्तर न हुआ। एकवार स्वामीजी ने अपने मनुष्यों से कहा कि यहां से हमको मसूदा ले चलो इसपर सबने कहा कि आराम होने पर हम आपको वहां पहुंचा देंगे इस दशा में बार बार यात्रा करना ठीक नहीं है। इसपर स्वामीजी ने कहा कि "दो दिन में हमको पूरा आराम पड़ जायगा" यह उत्तर स्मरण रखने योग्य है। अब स्वामीजी के सारे शरीर में छाले ही छाले दीखने लगे, २६ अक्टूबर को स्वामीजी का शरीर अत्यन्त ही निर्बल होगया। अपने सेवकों से कहा कि हमें बैठादो, जब बिठाया गया तो कहा कि छोड़दो, हमें सहारे की आवश्यकता नहीं है सो कितनी देर तक विना सहारे बैठे रहे उस समय सांस जल्दी २ चल रहा था पर स्वामीजी उसे रोक रोककर बल से फेंक देते थे और ईश्वर के ध्यान में मग्न हो रहे थे रात को कष्ट अधिक रहा दूसरे दिन ३० अक्टूबर को डाक्टर न्यूमन साहब बुलाये गये जिस समय उक्त डाक्टर साहब ने स्वामीजी को देखा तो बड़े आश्चर्य से

कहने लगे कि धन्य है इस सत्पुरुष को, हमने आजतक ऐसा दिल का मज़बूत कोई दूसरा मनुष्य नहीं देखा कि जिसको इस प्रकार से नख से शिख तक अपार पीड़ा हो और वह तनिक भी आह या ऊह तक न करे। उस समय स्वामीजी के कण्ठ में कफ़ की बड़ी प्रबलता थी, जिसकी निवृत्ति के लिये डाक्टर न्यूमन ने कई उपाय किये परन्तु उनसे कुछ लाभ न हुआ। ११ बजे दिन से स्वामीजी का श्वास विशेष बढ़ने लगा और कहा कि हम शौच जायंगे उस समय स्वामीजी को चार आदमियों ने उठाया और शौच करने की चौकी पर बिठा दिया, शौच गये और अपने आप पानी लिया, हाथ धोये, दातन की और कहा कि अब हमको पलंग पर लेचलो आज्ञानुसार पलंग पर ला बिठाया, कुछ देर बैठकर फिर लेट गये श्वास बड़े वेग से चलता था और ऐसा प्रतीत होता था कि स्वामीजी श्वास को रोककर ईश्वर का ध्यान करते हैं उस समय स्वामीजी से पूछा गया कि महाराज! कहिये अब आपकी तबियत कैसी है? कहने लगे कि अच्छी है एक मास के पश्चात् आज का दिन आराम का है।

इस समय लाला जीवनदासजी ने, जो लाहोर से स्वामीजी को देखने अजमेर गये थे, स्वामीजी से अभिमुख होकर पूछा कि महाराज! इस समय आप कहां हैं? स्वामीजी ने उत्तर दिया कि ईश्वरेच्छा में, इसी दिन अजमेर के आर्यपुरुषों ने डाक्टर मुकुन्दलालजी को भी आगरे तार दिया उन्होंने उत्तर दिया कि हम आते हैं।

स्वामीजी ने चार बजे आत्मानन्दजी को बुलाया, वे आकर सन्मुख खड़े होगये तो स्वामीजी ने कहा कि हमारे पीछे की ओर आकर खड़े होजाओ या बैठ जाओ। आत्मानन्दजी उनके सिरहाने आकर बैठ गये, तब स्वामीजी ने कहा कि आत्मानन्द! क्या चाहते हो? आत्मानन्दजी ने कहा कि ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप अच्छे होजावें। स्वामीजी कुछ ठहर कर बोले कि यह देह है इसका क्या अच्छा होगा। और हाथ बढ़ाकर उनके शिर पर धरा और कहा आनन्द से रहना, फिर स्वामीजी ने गोपालगिरि को बुलाया, यह एक संन्यासी काशी से श्रीयुत को मिलने आये थे। स्वामीजी ने कहा कि तुम क्या चाहते हो? गोपालगिरि ने भी यही उत्तर दिया कि आपका अच्छा होना चाहता हूं। उत्तर में महाराज ने कहा कि भाई! अच्छी प्रकार से रहना।

जब यह व्यवस्था देखी तो सब लोग जो अलीगढ़, मेरठ, लाहोर, कानपुर आदि स्थानों से आये हुये थे, सब श्रीस्वामीजी के पास आये और सामने खड़े होगये तब स्वामीजी ने सब लोगों को उस समय ऐसी कृपादृष्टि से देखा कि उसके वर्णन क-

रने को वाणी और लिखने को लेखनी असमर्थ है, वह समय वही था, मानो स्वामीजी हमसे कहते थे कि तुम क्यों उदास हो, धैर्य धरना चाहिये। दो (२) दुशाले और दो सौ रुपये महाराज ने मांगे, जब लाये गये तो कहा कि आधा आधा भीमसेन और आत्मानन्द को देदो। निदान उनको दिये गये। परन्तु उन्होंने लौटा दिये।

उस समय श्रीयुत के मुख पर किसी प्रकार का शोक और घबराहट प्रतीत नहीं होती थी। ऐसी वीरता के साथ दुःख को सहन करते थे कि मुंह से कभी हाय या शोक नहीं निकला। इसी प्रकार स्वामीजी को बातचीत करते २ पांच बजगये और बड़ी सावधानी से रहे। इस समय हम लोगों ने श्रीयुत से पूछा कि कहिये अब आपकी तबियत का क्या हाल है? तो कहने लगे कि "अच्छा है, तेज और अन्धकार का भाव है"। इस बात को हम कुछ न समझ सके क्योंकि स्वामीजी उस समय सरल बातचीत कर रहे थे। साढ़े पांच बजे का समय आया तो हम लोगों से स्वामीजी ने कहा कि अब सब आर्यजनों को, जो हमारे साथ और दूर २ देशों से आये हैं, बुलालो और हमारे पीछे खड़ा करदो; कोई सम्मुख खड़ा न हो बस आज्ञा पानी थी यही किया गया।

जब सब लोग स्वामीजी के पास आगये तब श्रीयुत ने कहा कि चारों ओर के द्वार खोलदो और ऊपर की छत के दो छोटे द्वार भी खुलवा दिये। इस समय पंड्या मोहनलाल विष्णुलाल भी श्रीमान् उदयपुराधीश की आज्ञानुसार आगये। फिर स्वामीजी ने पूछा कि कौनसा पक्ष क्या तिथि और क्या वार है? किसी ने उत्तर दिया कि कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष की आदि अमावस मङ्गलवार है। यह सुनकर कोठी की छत और दीवारों की ओर दृष्टि की फिर पहिले ही पहिले वेदमन्त्र पढ़े तत्पश्चात् संस्कृत में ईश्वर की कुछ उपासना की फिर भाषा में ईश्वर के गुणों का थोड़ासा कथन कर बड़ी प्रसन्नता और हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे, तत्पश्चात् हर्ष और प्रफुल्लितचित्त सहित कुछ देर तक समाधियुक्त रह नयन खोल यों कहने लगे कि "हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है! तेरी यही इच्छा है! तेरी इच्छा पूर्ण हो! आहा *!! तैंने अच्छी लीला की" बस इतना कह

---

* नोट—यह "आहा" शब्द उन्होंने ऐसा कहा था जैसे कि कोई मनुष्य कई वर्षों से बिछुड़े हुए प्यारे मित्र को मिलने पर हर्ष के आवेग में कहा करता है और उस समय की दशा उनकी आन्तरिक प्रसन्नता को प्रकट करती थी और यही कारण है कि उनकी इस विलक्षण दशा ने परम विद्वान् पं० गुरुदत्त को ईश्वरसत्ता का अत्यन्त प्रबल प्रत्यक्ष प्रमाण दिला दिया।

स्वामीजी महाराज ने, जो सीधे लेट रहे थे, स्वयं करवट ली और एक प्रकार से श्वास को रोक एकवार ही निकाल दिया।

इस समय सन्ध्या के छः बजे थे, दिवाली का दिन था विक्रम का संवत् १९४० कार्तिक वदी अमावस तिथि थी। कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का आरम्भ था। ईस्वी सन् १८८३ तारीख ३० अक्टूबर और दिन मङ्गल का था। संक्रान्ति के हिसाब से कार्तिक की १५ तारीख थी।

रात्रिभर सारे अजमेर नगर में हाहाकार मचा रहा और इसी एक रात्रि में यह खबर भरतखण्ड के प्रायः समस्त नगरों में फैलगई। प्रातःकाल होते ही समस्त आर्यावर्त्त शोकाक्रान्त होगया। इसी रात्रि में पं० सुन्दरलालजी भी अजमेर पहुंचगये। जैसे तैसे अजमेर वालों की वह रात्रि कटी और प्रातःकाल होते ही विमान रचना की तैयारी की गई। उसके पश्चात् स्वामीजी के मृतकशरीर को अच्छे प्रकार से स्नान कराय चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों का लेपन कर पुष्पमाला और वस्त्र पहनाय विमान में अच्छे प्रकार से पधरा दिया। उस समय स्वामीजी का दिव्य मुखारविन्द अवलोकन करने के लिये सैकड़ों मनुष्य चहुं ओर से झपटे परन्तु उनके तेजःपुञ्ज चेहरे को देखकर बेचारे अतिविस्मित और शोकसमाकुल होरहे। इस प्रकार विमान के समन्तात् बड़ी सुयोग्य मनुष्यमण्डली ने प्रथम बहुकाल तक परमोच्चस्वर से वेदमन्त्रों का पाठ किया, तदनन्तर दश बजे के समय विमान उठाया गया और बराबर सब लोग पुष्पवृष्टि करते हुए गाजे बाजे के साथ चल दिये। उस समय सब से आगे स्वामीजी के शिष्य रामानन्द ब्रह्मचारी, देवदत्तजी, गोपालगिरि और पण्डित वृद्धिचन्द्र आदि पण्डितजन विमान के आगे २ वेदमन्त्रों का पाठ करते जाते थे। उसके चारों ओर आर्यपुरुषों के यूथ के यूथ उमड़ चले थे। श्रीयुत रायबहादुर पण्डित भागरामजी जज्ज अजमेर व रायबहादुर पंडित सुन्दरलालजी सुपरिण्टेण्डेण्ट वर्कशाप अलीगढ़ आदि बड़े २ प्रतिष्ठित और भद्रपुरुष मार्ग में यथोचित बड़ी सावधानी से प्रबन्ध करते जाते थे। इस रीति से आगरादर्वाज़े से निकल कर बड़ा बाज़ार, चौक, धानमंडी और दरगाहबाज़ार आदि में होकर स्थान २ पर ठहरते वेदध्वनि करते मलूसर सरोवर के श्मशान में स्वामीजी का विमान जा उतारा। यह स्थान अजमेर नगर से दक्षिण कोण में एक पहाड़ी के नीचे है और यही आज्ञा स्वामीजी की थी कि नगर

विदित हो कि उस समय पं० गुरुदत्तजी एम. ए. चुपचाप खड़े हुए दत्तचित्त होकर इस दशा का निरीक्षण करते थे और योगसिद्धि का फल देख रहे थे। (आत्माराम)

के दक्षिण दिशा में हमारा शरीर दग्ध किया जावे। जब वहां सब लोग स्वामीजी का विमान रख कर बैठे और संस्कारविधि में लिखे अनुसार वेदी बनाना आरम्भ किया तो उस परम कठिन अवसर में श्रीयुत पं० भागरामजी जज्ज ने शोकसागर में डूबे हुये मनुष्यों को धैर्य बंधाने के अर्थ श्रीमान् स्वामीजी महाराज की विद्या, परोपकार, देशहितैषिता आदि अनुपम और अद्भुत गुणों की प्रशंसा में एक परमोत्तम व्याख्यान सुनाकर वहां पर एकत्रित हुए सैकड़ों मनुष्यों को भित्तिलिखित चित्रसा कर दिया।

वास्तव में पं० भागरामजी का यह सदुद्योग, साहस और धैर्य प्रशंसनीय था क्योंकि ऐसे समय पर जब कि बात कहना भी कठिन हो तो व्याख्यान देना कैसा? उस समय पाषाणसमहृदय भी दाडिमवत् विदीर्ण हो गये थे और फूट २ कर रुदन करते थे। इसके अनन्तर पं० सुन्दरलालजी ने भी अपना हृदय कठोर करके कुछ व्याख्यान देना चाहा और आरम्भ भी किया परन्तु कहते नहीं बना, लाचार हियाहार चुप हो बैठे इतने में वेदी तय्यार हो गई और समस्त पुरुष उसके चहुंओर घुमड़ आये, उन सबों ने मिलकर स्वामीजी के स्वीकारपत्रानुसार २ मन चन्दन, १० मन आम्रादि काष्ठ, ४ मन घी, ५ सेर कपूर, २॥ सेर बालछड़, आध सेर केसर, २ तोला कस्तूरी आदि संचित किये पदार्थ लगाकर तय्यार की हुई चिता को रामानन्द द्वारा प्रज्वलित कराय संस्कारविधि लिखित वैदिकरीति से अन्त्येष्टि की, उस समय चिताजन्यसुगन्धि से वह समस्त प्रदेश और समुपस्थितों का मस्तिष्क सुवासित होगया था।

इस प्रकार इस विधान को समाप्त करके चिता पर पहरा बिठला कर सब लोग उक्त सरोवर पर स्नानादि कर अति शोकाक्रान्त सायंकाल को निज निज स्थानों पर गये।

दूसरे दिन अजमेर समाज ने स्वामीजी का हिसाब किताब, वस्त्र पुस्तकादि पदार्थ जो कुछ कि वेदभाष्य छपने के लिये तय्यार हो चुका था वह सब श्रीयुत पंड्या मोहनलाल विष्णुलालजी को एक सूचीपत्र के अनुसार (जो स्वामीजी के पुस्तकों में मिला था) सम्हला दिया और जो सभासद् जहां कहीं के उस समय उपस्थित थे उन्होंने उस सूचीपत्र पर अपने २ हस्ताक्षर करदिये।

इस अवसर पर यह भी लिख देना परमावश्यक है कि श्री १०८ महाराणा उदयपुराधीशजी ने प्रशंसित पंड्याजी को श्रीमान् स्वामीजी की सेवा में भेजने के समय कह दिया था कि यदि जगद्गुरु महाराज का शरीर छूट जाय तो किसी प्रकार से

वह चार पांच दिन तक रक्खा जाय तो अतीव अच्छा होगा, जिससे हम को भी उनका अन्तिम दर्शन होजाय। परन्तु उपस्थित सभ्यों ने यह बात इसलिये स्वीकार नहीं की थी कि डाक्टर से चीर फाड़ करानी पड़ेगी सो यह बात अच्छी नहीं अतः दाहादि सब कर्म्म इसी स्थान पर समस्त भक्तजनों ने श्रीजी महाराज की आज्ञानुसार यथाविधि समाप्त किया।

स्वामीजी के गुणों का परिचय

स्वामीजी का क़द: छः फीट लम्बा था। उनका शरीर दृढ़, पुष्ट एवं स्थूल था, उनके बाल मुंडे हुए थे, एक चादर उनके ऊपर की पोशाक थी और एक धोती नीचे का लिबास। वे एक कम्बल पर बैठा करते थे, बहुत देर तक उनके साथ बातचीत करने से हरेक आदमी जानता था कि वह और साधुओं की तरह कोई नशा नहीं पीते थे। उनके शरीर का रङ्ग गेहुंआ सफ़ेदी लिये हुए था। उनकी आंखें न बड़ी न छोटी शान्त और तेज से भरी हुईं, उनका चेहरा गम्भीर था वे भूमि पर पद्मासन से बैठना पसन्द करते थे, उनका मुख किसी क़दर फैला हुआ था आवाज़ सुरीली, उच्चारण स्पष्ट, वक्तृता सरल और मधुर एवं प्रभाव उत्पन्न करने वाली थी। उनकी उपदेशशक्ति अत्यन्त प्रेरणा करनेवाली और उनकी तर्कशैली विचित्र युक्तियुक्त होती थी। उनकी बुद्धि तीक्ष्ण और स्मृति बढ़ी हुई थी। गद्य पद्य के अनेक लम्बे प्रमाण मुखाग्र होने से उनकी स्मृति की विचित्र शक्ति मालूम होती थी। विरोधियों के क्रोध से उनका हृदय कभी विचलित नहीं होता था। उनकी आकृति प्रत्येक दशा में सौम्य और गम्भीर रहती थी, गालियों के बदले में उन्होंने कभी किसी को गाली नहीं दी। उनकी मधुरभाषिता से उनके विरोधी भी उनकी प्रशंसा करने में बाधित होते थे। उनके गम्भीर पाण्डित्य पर भारतवर्ष के पण्डितजन चकित होते थे और प्रबल युक्तियों से ईसाई मुसलमान भी घबरा जाते थे। प्रत्येक विषय पर उनकी सम्मति सुनिश्चित होती थी, समस्त आक्षेपों का पहिले से ही मुंह बन्द करदिया जाता था। उनकी भाषा सरल और अपने भावों को अच्छे प्रकार प्रकट करनेवाली और सर्वसाधारण के समझने के योग्य थी। उनके कथन करने की शैली ऐसी अनुपम, विचित्र और मन को मोहनेवाला थी कि सुननेवाले आश्चर्य्य में रहजाते थे। यद्यपि उनकी व्याख्या से कभी कभी सुननेवाले हँस पड़ते थे परन्तु तो भी उनके चेहरे पर किसी प्रकार का अभिमान नहीं प्रकट होता था। गम्भीरता और प्रगल्भता अपने भावों के प्रकट करने में सदा दिखलाई जाती थी और कोई कामना चाहे कैसी ही प्रबल क्यों न हो उनको सच्चाई से नहीं हटा सकती थी। एकाग्रचित्त होकर सुनने से वे बोलनेवालों के आशय को शीघ्र और ठीक

ठीक समझ जाते थे। उनकी लोकप्रियता के कारण साधारण मनुष्य भी उनके साथ बोलने को उद्यत होजाते थे। वे स्वभाव में बड़े ही सरल और मिलनसार थे। संसार की चमक दमक उनके मन को ज़रा भी नहीं लुभा सकती थी, जब कभी उनको अंग्रेज़ी पढ़ने की सम्मति दीजाती थी वे शुभचिन्तक सम्मतिदाताओं से कहते थे कि जो कुछ मुझ में कमी है उसको आप पूरा करें। और कहते थे कि मैं उनमें से हूं जिन्हें चाहें कितना ही विद्या का गौरव क्यों न हो, अवतार बनने के लिये उद्यत नहीं होने का। जैसे कि किन्हीं २ चालाक मनुष्यों ने किया है। उन्होंने संस्कृत पर ही अपना सन्तोष प्रकट किया, जब कि बाबू केशवचन्द्रसेन से उनकी इस विषय में बातचीत हुई।

स्वामीजी की मृत्यु का समाचार समस्त भारतवर्ष में पम दम फैलगया। यही नहीं कि स्वामीजी की मृत्यु का शोक आर्यजाति (हिन्दू क़ौम) को ही हुआ हो, किंतु अन्य धर्मावलम्बियों के हृदय भी इस दुर्घटना से शोकाक्रान्त होगये थे। इस कुसमाचार को जो देशहितैषी सुनता था वही शोकग्रस्त होजाता था यह शोकसमाचार प्राय: भारतवर्षीय समस्त समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ था, जिनमें से हम कुछ थोड़े से समाचारपत्रों की नक़ल यहां छापते हैं। इनमें जो कहीं २ यत्किञ्चित् पौराणिक भाव हैं वह लेखकों के विश्वासानुसार हैं नकि हमारे मन्तव्य।

स्वामी दयानन्द सरस्वती का शोक वृत्तान्त।

हिन्दीप्रदीप प्रयाग

यह भी हम इस हिन्दुस्तान का अभाग ही कहेंगे कि इसके ऐसे हितैषी परलोक यात्रा के लिये दत्तचित हो झट पट सिधार गये। सिवाय कतिपय प्रतारक धूर्त्त ब्राह्मण और कोरे पण्डितों के जो इनकी गुप्तनीति के मर्म समझने में सर्वथा असमर्थ हैं और कोई प्रसन्न न हुआ होगा। आर्यसमाज की बांह टूट गई। सरस्वती का भण्डार लुट गया। यहां की बिगड़ी समाज के संशोधन का फाटक ढैगया। यह इन्हीं महात्मा का पुरुषार्थ है कि भारतवर्ष के धर्मतत्त्व का सर्वस्व वेद जिसे बड़े २ विद्वान् ब्राह्मण भी केवल पाठमात्र पढ़लेने के (अर्थज्ञान की ओर से निपट मूर्ख थे) और कुछ भी न जानते थे कि इस में क्या चील बिलार भरा है, सिवा "मक्षिकास्थाने मक्षिका" के सो भी केवल पाठमात्र में अर्थ से क्या सरोकार? उसे सब जाति और चारों वर्ण के लोग समझने लगे और अब बहुतों के मन में लगी है कि इस वेदरूपी अगाध महोदधि में गहरी डुबकी मार

इसकी थाह लेनी चाहिये कि इसमें क्या २ रत्न भरे हैं। अतिरिक्त वेद के उद्धार के हिन्दूसमाज की सैकड़ों बिगड़ी बातों के सुधारने में भी कोई कलबल इन्होंने न छोड़ रक्खा। "क़द्र मरदुम बाद मरदुम" सरस्वती महाशय के न रहने पर अब इनकी क़द्र लोगों को होगी। कच्चे जौहरी, जिन्होंने हीरे को कांच समझ रक्खा था, चाहे जो कहें, पर हमतो अंग्रेज़ी (मोटो) सिद्धान्त पर दृढ़ रह दयानन्द की सर्वतोभाव से सराहना ही करेंगे।

हा! आज भारतोन्नतिकमलिनि का सूर्य्य अस्त होगया। हा! वेद का खेद मिटानेवाला सद्वैद्य गुप्त होगया। हा! दयानन्द सरस्वती आर्यों की सरस्वती जहाज़ की पतवारी बिना दूसरों को सौंपे तुम क्यों अन्तर्धान होगये? हा! सच्ची दया के समुद्र! हा! सच्चे आनन्द के वारिद! अपनी विद्यामयी लहरी और हितोपदेशरूपी धारा से परितप्त भारतभूमि को आर्द्र कर कहां चले गये। हा! चार दिन के चतुरानन! इस असभ्यताप्रिय मण्डली में आपने अपनी विलक्षण चतुराई को क्यों इस प्रकार सरलभाव से फैलाया। क्या आप नहीं जानते थे कि कालकराल ने भारत को असाध्य आर्त बनाने के निमित्त ब्राह्मणों से तपः स्वाध्याय विद्याहीन विषय लम्पट और शिश्नोदरपरायण बना दिया। क्षत्रियों को ऐसा चौपट और हतमर्द करडाला कि वे बेचारे किसी काम के ही न रहे वह धनुर्वेद वह अस्त्रशस्त्रविद्या वह शूरता वीरता वह अमर्ष जो अग्नि की उष्णता के समान उनका स्वाभाविक धर्म था सो अब कहीं देखने सुनने को भी न रहा जिनके पूर्वपुरुषों की सङ्गति से जङ्गल के रीछ और बन्दर भी सुधर कर सहीर और योद्धाओं की पदवी को प्राप्त हुये और देवताओं की कोटि में मिलगये, अब उन्हीं की सोहबत सङ्गति में वह विकार होगया है कि बड़े २ स्वाभाविक वीर प्रकृतियों को स्त्रैण किंवा क्लीबभाव सहज में प्राप्त होजाता है। जहां वशिष्ठादि महर्षियों की शिक्षा और नीतिविद्या का विचार होता था तहां ढाढ़ी कत्थकों की कथा से कालक्षेप होता है सो ऐसे कौतुकी कालकराल को तुच्छ जान आपने मुनियों की वृत्ति निधड़क हो ग्रहण करली। यह न समझा कि वह निठुर निर्दयी काल आपकी प्रतिज्ञा और सत्यसंकल्प को पूरा होने देगा या नहीं। हा! अब वे परोक्षफलदर्शक शृगालगण जो तुम्हारे सिंहनाद के भय से छिपते फिरते थे आज ऊंचे टीलेपर बैठ पूंछ फटकारेंगे और वे उच्छिष्टभोजी पेटार्थी कौवे जो अपने पेट के कारण तुम्हें बैरी जानते और कांव २ करते डोलते फिरते थे सो सब कैसे आज मन मगन हो आनन्द बधाई बजायेंगे। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि इस अभागे भारत की

भलाई और कल्याण के प्रयत्न में आपने अपने जीवनपर्यन्त एक क्षण का भी अन्तर नहीं डाला। क्या महन्त और मठाधीशों के समान आप भी सुखाश्रयी और देहाराम नहीं हो सकते थे ?। वैकुण्ठ पहुंचाने का बीमा और स्वर्गीय भोगविलास की हुण्डी का ब्यौरा फैलाते तो हज़ारों लाखों चेले चेलियों के तन मन धन को बात की बात में आप आत्मसात् और समर्पण क्या नहीं करा सकते थे ? हा ! निर्लेप निस्वार्थ शिक्षा-प्रदायक ! हा ! बन्धुवात्सल्यकुलकुमुदसुधाकर ! इस नीच और खोटे भाव भरे भारत देश में भटकते २ आप कहां से आगये ? हा ! स्वामी दयानन्द ! आपका यह पवित्र विग्रह योरुपखण्ड के किसी देश में इस गुरुभाव के साथ प्रकट हुआ होता तो जिस उन्नतिशैल के शिखर तक पहुंचाने की सीढ़ी आप बना रहे थे उसको अवश्य पूरा कर देते और देश का देश आपका सहकारी और सहायक बन जाता। वे केवल आपके पवित्र नाम और सत्कीर्त्ति ही के संस्थापन का उद्योग न करते वरन अपने कर्त्तव्यकर्म को उत्तरोत्तर ऐसा चमकाते कि एक दयानन्दरूपी मूल प्रकाण्ड से सहस्रों दयानन्द-रूपी शाखा प्रशाखा प्रकट होजातीं और भारतश्रीविघातक काक शृगालों का क्षणिक प्रमोद जो आपके अन्तर्धान होने का संवाद सुनकर उत्पन्न हुआ है उसका अंकुर ही न जमता। आपका वह वेदार्थ क्षेत्र और अपूर्व सदाव्रत जो आपने ब्राह्मणों की लोहमय पिटारी से निकाल आर्यमात्र के लिये सुगम कर दिया है कभी न बन्द होने पाता। हमको क्योंकर आशा हो कि आपके उस भारी बोझ उठाने और असिधारा पथ पर चलने का फिर भी कोई साहस बांधेगा। हम खूब जानते हैं कि आप उस निर्विवेकी विधाता के मुख पे कारिख पोतने गये हैं जिसने इस पवित्र भारत भूमि को सृज कर उसके योग्य सत्पुरुष न पैदा किया। हा भारतभारतीवनराजकेसरी ! इस उजाड़ विपन को सनाथ किये विना क्यों इस वेग से ऊपर को उठ धाये ? क्या कोई पाखण्ड मत सुर में भी फैला है, जिसके निर्दलन के लिये आप झटपट वहां को सिधारे ? सच सच आपकी पवित्र आत्मा देवताओं के समुदाय पति होने के योग्य थी। इसमें कुछ सन्देह नहीं कि आप सरीखे देशहितैषी महात्माओं का पवित्र विग्रह इस असार संसार में चिरकाल तक नहीं रहता। इस बात की प्रत्यक्ष साक्षी के लिये बहुत से ग्रन्थ विद्य-मान हैं। जिस प्रकार मन्दाग्नि और क्षुधा रहित रोगियों के जठरानल धधकाने को सद्वैद्य लोग कटु तिक्त अम्ल रसों का व्यवहार करते हैं, ऐसे ही सद्धर्मविमुख और तत्त्वभ्रमित जनों के मुरझाये चित्त की प्रफुल्लता के लिये मूर्तिपूजाखण्डन प्रभृति युक्ति को आप काम में लाये। आपके इस भाव को या तो प्राचीन महर्षिगण जानते होंगे

जिनके हार्दिक अभिप्राय के मूल पर आपने इस कष्टसाध्य व्यवसाय को उठाया था या वे देशहितैषी उन्नतहृदय जानते होंगे जिनके मानसिक सरोरुह पर देशोन्नति किरणधारी भगवान् भास्कर का प्रकाश पहुंच गया है ।

अब इस प्रसङ्ग के समाप्त करने के पूर्व यह अल्पज्ञ अपना अभीष्ट खोलकर कहता है कि जिस पुरुष के अनुताप से यत्किञ्चित यह निवेदन किया गया, उसकी मेरी जान पहिचान केवल एक बार हुई थी जिसको १३ (तेरह) वर्ष से अधिक बीते कि यहां वासुकेश्वर पर थोड़ी देर तक संस्कृत में बातचीत हुई थी, तब से स्वामीजी कईबार यहां पधारे पर इसने अपने को उनकी शिक्षाजनित कर्त्तव्य के अयोग्य बन्धनालय समझ फिर उनसे न मिला अब उनके शान्त होने का समाचार सुन उन बातों को कह सुनाया जो आर्यपदाधिकारियों को हृद्गत करनी चाहियें । अब सब सज्जनों से उचितानुचित की क्षमा मांग ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि भारत के जड़तान्धकारापहारी दयानन्द सा दूसरा सूर्य्य शीघ्र प्रकट करदे । हमको उस सत्पुरुष के शुद्धभाव और सत्यसन्धता पर विश्वास होता है कि उक्त सत्पुरुष के आरब्ध कार्य्यों में कभी विघ्न न होगा किन्तु जिन सज्जनों के भरोसे यह कार्य स्वामीजी छोड़ गये हैं वे लोग इस समर्पित कार्य को बड़ी उत्तमता और उज्ज्वलता के साथ चमकायेंगे। यह कुछ नई बात नहीं है, सदैव से अच्छे २ लोग अपने प्रियतमों को अपना कर्त्तव्यकार्य सौंपते ही आये हैं । देखिये ! सन्ध्या समय भगवान् भास्कर जगदन्धकारनाशन कार्य्य अग्निदेव को सौंपकर आप अस्ताचल को सिधारते हैं और सवेरे अग्निदेव सूर्य के भरोसे विश्राम करते हैं । इन दोनों की परस्पर मैत्री और सहायता का कभी विश्लेष नहीं होने पाता ।

यह कौन नहीं जानता कि स्वामीजी को सत्यशास्त्र और सद्विद्या का प्रचार और भारतवर्ष की मूर्खतान्धकारनिवारण तन मन से अङ्गीकार था जिसको वे अपने अङ्ग २ और रोम २ से समय प्रतिसमय प्रकाशित कर चुके हैं । इस अवस्था में उन विद्वानों को जो सङ्केतमात्र से प्राणिमात्र के भाव को बूझ सकते हैं उनको वैकुण्ठवासी स्वामीजी के मुखकमलनिःसृत आशयों के मूल पर उनके अभिलषित भाव का समुत्थान कठिन नहीं है । किन्तु जहां ऐसे अविरल विद्वान् विद्यमान हैं कि यदि इस बड़े कार्य की पूर्त्ति के लिये वे नियुक्त किये जावें तो निस्सन्देह अपनी विद्यामयी धारा से सींच उस वृक्ष में फल लगा सकते हैं जिसको उक्त महात्मा प्रफुल्लित और हरा भरा छोड़ गया है । कुछ आश्चर्य नहीं है कि जिस कार्यसमर्पित सभा के सभाशिरोमणि यावदार्यकुलकमलप्रभाकर श्रीमहाराणा उदयपुराधीश हैं, वह कार्य्य अवश्य निर्विघ्न

और उत्तमता के साथ उन्नतिशील की चोटीतक पहुंचेगा और सर्वदा सुरक्षित रहेगा।

भारतबन्धु अलीगढ़

हमको यह सुनकर बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि ३० अक्टूबर सन् १८८३ ईस्वी कार्त्तिक बदी ३० संवत् १९४० को श्रीमान् दयानन्द सरस्वतीजी महाराज बैकुण्ठ को पधारे। क्योंकि ऐसे २ विद्वानों के इस भूतल पर न रहने से इस भरतखण्ड का अभाग्योदय दिन पर दिन बढ़ता चला जाता है। श्रीबालशास्त्री के मरण से जो दुःख हम भारतवासियों को हुआ था, उसी से हम सब लोग अत्यन्त व्याकुल थे, उसके कुछ दिन पीछे ही "क्षत-लवण" न्याय से यह दुःख हम भारतवासियों को उपस्थित हुआ। अब कोई ऐसा प्रबल साहसी सभाचतुर वावदूक सर्वशास्त्रकुशल इस भारतवर्ष में दृष्ट नहीं पड़ता, जो स्वामीजी में निम्नलिखित गुण थे तिन गुणों का आधार हो। एक स्वामीजी महाराज की यह प्रशंसा दर्शनीय थी कि उन्होंने मुसलमानों को यह निश्चय करादिया कि आर्यमत यवनमत की अपेक्षा सनातन और श्रेष्ठतर है। बहुधा देखा गया कि बड़े २ मौलवी जो फ़ारसी और अरबी के यथार्थ ज्ञाता थे वे स्वामीजी की वक्तृता के सन्मुख मूक होजाते थे और ऐसी उनकी बुद्धि की स्फूर्त्ति थी कि जहां किसी ने प्रश्न किया और उन्होंने उसी समय प्रमाण और युक्ति सहित उत्तर दिया और ऐसा कोई एक भी पण्डित उनके सामने नहीं आया कि जो उनके समान वावदूक और सभाचतुर हो।

इसी प्रकार अंग्रेज़ों को भी यह उन्होंने दिखा दिया था कि तुम्हारे मत से भी आर्यमत श्रेष्ठ है। वह भी बहुत वार पादरियों के संग उत्तर प्रत्युत्तरों से निश्चित होचुका था। इनकी विद्वत्ता की विलायत आदि इतर देशों में ऐसी प्रशंसा हुई कि आजतक ऐसी किसी विद्वान् की नहीं हुई और वेदों का टीका भी आधुनिक किसी पण्डित ने नहीं किया यद्यपि वह कहीं २ हमारे पूर्वाचार्यों के बनाये हुये टीकाओं के प्रतिकूल है तथापि जिसकी हम प्रशंसा करते हैं उनकी उस विद्वत्ता का प्रदर्शक तो अवश्य है। इससे हम भारतवासियों को भारतभूमि का भूषण ही स्वामीजी को समझना चाहिये, परन्तु काल बड़ा बलवान् है जो ऐसे २ ग्राहोंको भी ग्रस कर डकार नहीं लेता।

महद्राजसभा उदयपुर

दोहा-नभ नव ग्रह शशि (१९४०) दीप दिन, दयानन्द सद्दत्त्व।
नृप उनसठ वत्सर किय, भयो तन पञ्चत्त्व ॥ १ ॥

मनहरणछन्द—जाके जो है ज़ोर ते प्रपंच किलालिन को अस्त सो समस्त आर्य्यमण्डल तें मान्यो मैं। वेद के विरुद्धी बुद्धी सत्य के निरुद्धी सदा मन्द भद्र आदिन पै सिंह अनुमान्यो मैं। ज्ञाता षट्शास्त्रन को वेद को प्रणेता जेता आर्यविद्या अर्क गत अस्ताचल जान्यो मैं। स्वामी दयानन्दजू के विष्णुपद प्राप्त हुते पारिजात को सो आज पतन पर मान्यो मैं ॥ २ ॥ (यह वाक्य साक्षात् श्रीमान् महाराणा साहब विरचित है)

योग को अगार गिरधार दृढ़ आसन को शिक्षक महीपन को विविध सिधाइगो। कुटिल कुराहिन को वाम मत चाहिन को हाय पशुहायन को इष्ट दिन आइगो। कहैं जयकरण चार वेदों के विवरण को धर्म निज दयानन्द परम गति पाइगो। तीन वेद शासन को सुमति प्रकाशन को आज सत्यभाषण वासन बिलाइगो ॥ ३ ॥

क्षीर नीर आरस अनारस मिलान भये पूरन परीक्षा पार क्यों न भिन्न करतो। विधि से विवेकी बुध संशय विथा के बीच धार धन्य उत्तर हिये में सार भरतो। चारवाक हिंसक चबाय चुम चुम चुंगल में दयानन्द द्वन्द्व फन्द कबहुं न परतो। रहते धरे न मोती मन्त्र वेदवारिधि के राजहंस मण्डल न तरतो ॥ ४ ॥

(कविदास श्यामलदानजी)

सार षट्-शास्त्रन को निगम अधार नित्य परलोक है असार जग करिगयो। पिशुनन को पाही और कुटिल कुराही दाही सत्य को सदाही साही नाक नेह धरिगयो। कहैं कृष्ण दयानन्द सुमति सुधामी नामी नाम वामी क्रूर कामिन को कालरूप टरि गयो। हाय हित आर्यन को वह्नि के प्रवाह बीच आज वेदवारिधि को सेतु सो बिखरि गयो ॥ ५ ॥

संपादक बनारस प्रेस कवि केदार शर्म्मा।

सोरठा—हाय ! हाय !! हा !!! काल, तोसे बस कछु ना चले।
बड़ विक्रम दसभाल, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ १ ॥
महाधनुर्धर धीर, अस्त्रकला महँ कोउ न भे।
अस अर्जुन वर वीर, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ २ ॥
करण द्रोण पुरु राज, भोज परीक्षित विक्रम।
रघुनृप पाण्डु दराज, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ३ ॥
ऐसे समय मँझार, युगल वीर प्रकटत भये।
सरजंग सर सारदार, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ४ ॥

दाया केर विधान, दायानन्द सरस्वती ।
वक्ता वेद प्रधान, ताहू कहँ तुम भक्षिगो ॥ ५ ॥

दोहा—दायानन्द सरस्वती, गुर्जरकुल अवतंस ।
अबही थोड़ी उम्र में, क्यों तन कियो विधंस ॥ १ ॥
कै प्रतिमा पूजन हिते, सुरपुर होत विचार ।
ता खण्डन करवे हिते, गये शक्र दरबार ॥ २ ॥
कै नर पुर सब जीत कै, सुरपुर जीतन हेत ।
कैंचुलि इव तनु त्यागिकै, भागेउ कृपानिकेत ॥ ३ ॥
कै कुछ मन शंका हुई, वेद अर्थ के मांहि ।
सो पूछन हित चलि गये, सत्वर ब्रह्मा पांहि ॥ ४ ॥
दायानन्द सरस्वती, देशोन्नति हित आप ।
जितो परिश्रम करिगये, तितो तुम्हारो ताप ॥ ५ ॥
अब तो पण्डित अस अहं हिं, लिखत व्यवस्था झूंठ ।
धर्म्माधर्म्म गुने नहिं, गथ चाहत हैं झूंठ ॥ ६ ॥
तुम तो सन्दा करि किते, विद्यालय थित कीन्ह ।
सज्जनसिंह महेन्द्र कहं, सभाध्यक्ष करि दीन्ह ॥ ७ ॥
गुणग्राहक उपदेशबड़, जस कीन्हेउ सन्मान ।
खान पान द्रव्यादि ते, कोउ नृप नाहिं जहान ॥ ८ ॥
स्वामी जब लौं थित रहे, भारत भूमि मंझार ।
सिंह सरिस गर्जत रहे, शंकित शशक अपार ॥ ९ ॥
मूरख-मुख भंजन किये, जगवक्ता बड़ नाम ।
कितने सन्मुख भे नहीं, समुझ शारदाधाम ॥ १० ॥
सज्जन मन रंजन करत, भंजन मत पाखण्ड ।
दिनदिन कीरत गाइहैं, भलजन भारतखण्ड ॥ ११ ॥

कवित्त—चारिहू दिशान नगरान महं जाय जाय, पण्डितन हेरि वाद करिके प्रचारे हैं ।
पण्डित विवाद मांहि होगये फरास्त जेते, तेते मन सोहैं करिसोहं न निहारे हैं ।
नगर थी अपार उस सारे नगरान मांहि, विजय वैजन्ती फहरात हिन्द भारे हैं ।
विद्या चौदह विधान वक्ता महान् वेद, स्वामी दयानन्द सम नाहिं होनवारे हैं ॥१॥

देशोपकारक लाहौर

जब कि श्रीमान् स्वामीजी महाराज की इस जहानफ़ानी से रहलत फ़र्माने की खबर वहशत असर मुवर्रिखे ३० अक्टूबर सन् ८३ बज़रिये तार आर्य्यसमाज मुलतान में पहुंची, तो फ़ौरन मातिमी नोटिस बग़रज़ इज़हार रंज व अलम जारी कीगई । मुताबिक़ उसके एक बड़ा मज़मा समाज के मकान में जमा हुआ जिनमें अलावा मेम्बरान समाज के बाशिन्दगान् शहर अहलेहिन्द व अहले इस्लाम बकसरत शामिल थे । उस वक़्त सबसे पहिले एक दूकानदार ने बावजूद न होने मेम्बर समाज निहायत सोज़ व गुदाज़ से स्वामीजी महाराज के औसाफ़ हमीदा बयान करके निहायत रंज निस्बत वफ़ात उनके ज़ाहिर किया । बाद अज़ां लाला चन्दाराम सेक्रेटरी व काशीप्रसाद वाइसप्रेसीडेंट वग़ैरह चन्द साहबान् ने अपनी ऐसी पुरसोज़ तक़रीरें सुनाईं कि जिनसे तमाम हाज़रीन जलसा फूट २ कर रो उठे । और समाज निहायत आह व ज़ारी से बर्खास्त हुआ । इस तौर पर कई तारीखों में यह मातिम वहां होता रहा । और उसमें हिन्दू व मुसलमान बराबर जमा होकर ग़मगीन होते रहे । बतौर नमूना यहां पर हम मुन्शी वाजिदअली साहब सेक्रेटरी अंजुमन इस्लामिया का एक मज़मून जो उन्होंने लिखा हुआ सुनाया था, बजिंसही हवाले क़लम करते हैं ।

ऐ ! आर्यावर्त ! तेरी बदक़िस्मती पर मुझे रोना आता है । ऐ ! आर्यावर्त ! तेरी यतीमी पर मेरा दिल खून होता है । ऐ ! आर्यावर्त ! तेरी बेकसी पर मुझे ग़ैरत आती है । ऐ ! आर्यावर्त ! तेरी बेपरोंबाली पर मेरा दिल कुम्हलाया जाता है । कैसी जल्दी तेरे प्यार के सरचश्मे को बन्द कर दिया गया । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हमशीरख़्वार परिवरिश पाएं । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम इन वाही और तबाही फन्दों से निकलें । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम बेजा बेवजह बेज़रूरत और बेसूद क़यूद से रिहाई पावें । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम उन वाहियात रस्मियात के फन्दों से निज़ात पाएं । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम आपस के निफ़ाक़ को दूर करें । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम बनीनो इन्सान को अपना भाई समझकर उनसे मोहब्बत करना सीखें । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम उलूम अलवियां की तहसील करें । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम सच्चे धर्म्म को फिर सीखें । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम अपना खोया हुआ नाम फिर हासिल करें । ऐ खुदा ! क्या तुझे यह मंजूर न था कि हम उस पाकधर्म को सीखकर तेरी इब

आला नामात की कैफ़ियत उठाएं जो तूने अपने बन्दों के वास्ते मख़सूस की हैं ? नहीं २ यह सब कुछ तेरी मर्ज़ी के मुताबिक़ और तेरी मन्शा के मुआफ़िक होरहा था फिर क्यों तूने हमको इकलख़्त इस तरह बेसरो सामान कर दिया यानी हमारे सच्चे हामी और हादी श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज को, जो हमें यह सब कुछ सिखाते थे, ३० ता० अक्टूबर सन् ८३ ईस्वी के ६ बजे शाम को बुला लिया। दिवाली की रात गो मसनूई चिराग़ों से रोशन थी लेकिन हक़ीक़ी आफ़ताब आलमताब ग़रूब हुआ। हम बिल्कुल नादान थे, वह हमें हरएक चीज़ शिनाख़्त कराता था। हम कमताक़ती से उठ नहीं सकते थे वह हमें उठाता था। हम बेमायगी इल्म से बात नहीं कर सकते थे वह हमें बोलना सिखाता था। हम एक दलदल अज़ीम में फंसे हुये थे, वह हमें उसमें से निकालता था और ख़ुश्क ज़मीन पर लाता था। हम रसूमात की बेड़ियां पैरों में और तास्सुब की हथकड़ियां हाथों में दिये हुए थे, वह हमको उनसे निज़ात देता था। हम अपने भाइयों से हिक़ारत करते थे, वह हमको रिफ़ाक़त सिखाता था। हम अपनी आंखों पर पर्दे और दिलों पर मोहरें रखते थे, वह उनको उठाता था। हम बईहमां कुछ अपने तईं समझे हुये थे, वह हमें बताता था कि धर्म के वास्ते ज़ाहिरी जहान फ़िज़ूल है। हम उस गलत इम्तियाज़ को सवाब जानते थे, उसने उसकी ऐब साबित करदिया। हमने अपना नंग व नामूस गंवादिया था, वह हमें फिर दिलाना चाहता था। ऐ ख़ुदा! हम तुझसे बहुत दूर होगये थे, वह हम को तुझसे मिलाना चाहता था। लेकिन ऐ ख़ुदा! तूही जाने तेरे दिल में क्या आई कि तूने उसको हमसे इतनी जल्द जुदा करदिया!!! तेरी बातें तूही जाने। अब भी रहम कर।

विक्टोरिया पेपर स्यालकोट

शेर—अपने रोने के हमें लिखने हैं दफ़्तर सैकड़ों।
ऐ सबा! तैयार कर मौजों के दफ़्तर सैकड़ों॥

एशिया कोचक में मुख्तलिफ़ ज़लज़लों के आने और जावा के आतिशफ़िशां पहाड़ों के फटजाने से स्वामी दयानन्दसरस्वती का इन्तिक़ाल कम अफ़सोस की जगह नहीं है क्योंकि ऐसे लायक़ शख़्स का जीना जिसका सानी इल्म संस्कृत में कोई न हो, लाखों आदमियों की ज़िन्दगी पर तरजीह रखता है और एक ऐसे शख़्स का मरजाना जो एक ऐसे मज़हब के उसूलों से कमाहु आगाह हो, जो हिन्दुस्तान में ज़ियादेतर फैला हुआ है लाखों आदमियों के मरने से ज़ियादा अफ़सोसनाक है।

जिन लोगों का यह खयाल था कि जो सुर्खी सुबह और शाम के वक्त मशरिक़ और जनूब की तरफ़ नज़र आती है कोई न कोई आफ़त ज़रूर ढायेगी, उनका यह खयाल सही निकला क्योंकि इससे बढ़कर हादिसा हिन्दू गिरोह पर और क्या होगा यह हिन्दुओं की कमनसीबी है कि स्वामी साहब जैसा शख्स उनकी नज़रों से जल्द गायब होगया। स्वामी साहब की यह आर्जू कि हिन्दू या आर्य अपने मज़हबी उसूलों से वाकिफ़ हों और उन्हें मालूम हो कि वेद मुक़द्दिस उन्हें क्या हिदायत देते हैं और उन्हें अपना कैसा तरीक़ बनाना चाहिये, एक ऐसी कोशिश थी जिससे हिन्दुओं के लिये निजात का दर्वाज़ा जल्द खुलनेवाला था और वे जल्द तारीकी के खयालात को छोड़कर अपने खयालात रोशन बनानेवाले थे और उनके खानये दिल में वहदानियत के चिराग जलानेवाले थे। अफ़सोस है कि ये हसरतें हमारे दिल की दिल ही में रह गईं। वाय हसरता!!!

शेर—तिफ़ली के गिरिये का यह खुला हाल वक्ते मर्ग।
आग़ाज़ ही में रोते थे अंजाम के लिये।

कौन नहीं मरा और कौन नहीं मरेगा मगर ऐसे शख्स का मरना जिसकी पैदायश सिर्फ़ हिन्दुओं को राहेरास्त दिखलाने के वास्ते हुई थी बेशक एक हादिसा जांकाह वाक़िया है और हिन्दू इस वाक़िये को सुनकर जिस क़द्र मातिम करें बजा है। शेर—अपने रोने की हक़ीक़त ऐ सबा। काग़ज़े अबरी से लिखवाते हैं हम।

स्वामी दयानन्द नाम के संन्यासी नहीं थे बल्के हक़ीक़त में संन्यासी थे और उनको किसी किस्म का तमा नफ़सानी नहीं था। तमा का न होना कोई छोटीसी तारीफ़ नहीं है बल्के ऐसी तारीफ़ है कि जो शाज़ व नादिर ही किसी खुशनसीब के हिस्से में आती है। कहने को तो सब ही क़ानअ व परहेज़गार होते हैं, हाथी के दांत दिखाने के और होते हैं और खाने के और। हम इस वैशाख अर्थात् अप्रैल के महीने में जब उदयपुर की सिहायत कर रहे थे तो वहां मौतबिर लोगों की ज़बानी सुना था कि स्वामी साहब को जो उस ज़माने के क़रीब वहां तशरीफ़ लाये थे दर्बार उदयपुर की तरफ़ से दो हज़ार रुपया पेश किया गया था मगर उन्होंने उसमें से सिर्फ़ क़िराये का खर्च क़बूल किया और बाक़ी तमाम रुपया उस सभा के अग़राज़ के पूरा करनेवाले सर्माये में शामिल करवा दिया जो इनके इन्तकाल के बाद हिज़ हाईनेस महाराणा साहब बहादुर वाली उदयपुर की सर्परस्ती में उनकी वसीयत के मुताबिक़

कार्रवाई करेगी और इसका जहांतक हमको मालूमात का ज़खीरा हासिल हुआ है यह मन्शा होगा कि वह उनकी तसनीफ़ात को मुश्तहिर करवाकर अवाम में फैलाये और वेदों के तर्जुमे को मुकम्मिल करवाने की सई करे। कौन कह सकता है कि स्वामी साहब की इस कार्रवाई की पैरवी आसानी से हो सकती है, यह नफ़्स इन्सान को दम नहीं लेने देता, दम २ में उसके खयालात को बदलता रहता है। मगर जो शख़्स इस्तिक़लाल के साथ एक नई रविश पर क़ायम रहे और खसूस ऐसी रविश पर कि जिस पर क़ायम रहना खुदायताला हर एक इन्सान को नसीब करे, वह किस क़दर मुबारिक समझा जाता है। हम जानते हैं कि इस सभा के प्रेसीडेण्ट वह इल्मदोस्त, मुल्कदार, फरमांरवा हैं जिनकी रियासत राजपूताने में अव्वलदर्जा रखती है और खुदा के फ़ज़ल से वह बज़ाते खुद सभा के अग़राज़ की ताईद के लिये उसकी कार्रवाइयों में बहुतसा रुपया खर्च कर सकते हैं। मगर ताहम ज़रूरत इस बात की है कि इस सभा की शाखें हरएक प्रेसीडेंसी यानी हरएक सूबे के तमाम बड़े २ शहरों में क़ायम हों, जो स्वामी साहब के अग़राज़ के पूरा होने की कोशिश करती रहें।

इस सभा के मेम्बरों की तादाद में निहायत कसरत हो, बल्के जो हिन्दू हो वह अगर दो आना माहवार इस सभा की अयानत करने की हिम्मत रखता हो तो भी वह इस सभा का मेम्बर बनाया जावे ताकि स्वामी साहब के भी हिन्दू मज़हब के उसूलों और वेदों की मन्शा और अहकाम से अवाम को आगाह होने के सामान जमा होते रहें और स्वामी साहब के ख़यालात और उनके मालूमात से हिन्दुओं को वाक़िफ़ होने का मौक़ा मिले। ख़याल करते हैं कि हिन्दू साहबान हमारी इस दर-ख़्वास्त को क़बूल फ़र्मावेंगे और ऐसी कोशिश अमल में लावेंगे जिससे यह साबित हो कि गो स्वामी साहब नज़रों से ग़ायब हैं मगर उनके क़ायममुक़ाम इण्डिया के हरएक हिस्से में मौजूद हैं और हिन्दू मज़हब या आर्य मज़हब की तरक़्क़ी के सामान जाबजा मुहय्या कराये जाते हैं। जो लोग ज़ाती तअस्सुब रखते हैं या जिनकी आंखों पर खुदी या ग़फलत का पर्दा पड़ा है वह स्वामी साहब की हयात में भी मु-ख़ालिफ रहे और अब भी उनको हमारी इस दरख़्वास्त के मानने में तअम्मुल होगा, मगर जो लोग हक़ीक़त हाल से आगाह हैं या समझते हैं कि स्वामी दयानन्द क्या थे या उनके ख़यालात हमारी भलाई का किस क़दर मुम्बा हैं या उनकी कोशिश हमारी तरक्क़ी और बहबूदी के लिये कैसी थी या उनके आबज़ा फिर कर वाज़ करने

से क्या मुराद थी या वह किस नियत और ख़याल के आदमी थे या उन्हें हिन्दुओं को किस आलम का दिखलाना मंजूर था, वह हमारी इस दर्ख्वास्त से इत्तिफ़ाक करेंगे और उनकी आबजा यादगारें क़ायम करने के ख्वाहाँ होंगे और चश्मेनम होकर कहेंगे कि या इलाही ! हम पर यह क्या ग़ज़ब नाज़िल हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती हमको आंखों के सामने नज़र नहीं आते या हमारी बीनाई में कुछ क़सूर है या तेरी क़ुदरत ही का यह ज़हूर है ।

स्वामीजी के स्वर्गवास होने की ख़बर सुन हमारे आंसू नहीं थमते, कलेजे को धड़कनसी लगी है मगर करें तो क्या करें कोई चारह भी है ? आख़िर यह शेर पढ़ते हैं और हैरानी से पुश्त बदीवार का आलम है । शेर-बुज़ुर्ग परवरिश फ़र्मा पहले दाग देते हैं । यह कह कि कौन घर ख़ाली रहा मातिम से ।

यहां से आगे अंग्रेज़ी पत्रों की सम्मति है ।

बंगाली कलकत्ता — स्वामी दयानन्द सरस्वती कोई साधारण कोटि के मनुष्यों में से नहीं थे । लोगों ने इनके निर्धारित धर्ममार्ग और तदुपपादित वेदार्थ को सम्मान नहीं दिया तो न दें, परन्तु हम कहते हैं कि धर्मोपदेश करने में उनकी शक्ति और उत्साहादिक गुण उनमें निःसन्देह अद्वितीय थे । यद्यपि उन्होंने जन्म से इस असार संसार का परित्याग करदिया था और वे पूरे योगी थे तथापि जैसा सर्वोत्तम ज्ञान उनमें देखने में आया वैसा कदाचित् ही किसी अन्य में देखने में आवे । उनका परलोक होने से केवल उनके संस्थापित समाजों की ही अनिवार्य हानि हुई हो, ऐसा नहीं, किन्तु विचारपूर्वक देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उनकी मृत्यु से भरतखण्ड मात्र को इस समय असीम जोखम पहुंची । उनकी अप्रतिम विद्वत्ता कभी किसी को भूल नहीं सकती बल्के पूर्ण निश्चय है कि सदैव समझदार लोग उनको स्वदेश का भूषण कह २ कर अपने चित्त में हुलसते रहेंगे ।

ट्रिब्यून लाहौर — हमको दारुण शोकसागर में डुबोकर परमधाम में जा विराजे स्वामीजी महाराज के उपदेशों का प्रभाव केवल आर्य्यसमाजों पर ही पड़ा हो ऐसा नहीं, किन्तु अन्य समस्त मत और सम्प्रदायी लोगों के जी पर भी उनके उपदेशों के साँचे का नक्शा ऐसा जम गया है कि जिससे उन सबका आन्तरिक अभिप्राय साफ़ तबदील व बदल की कोशिश पर कशिश कर रहा है । उनका तमाम कथन व उपदेश हम सर पर धर बैठे हैं ऐसा नहीं तो भी यह कहे विना निर्वाह नहीं होता कि वे वास्तव में बड़े सुयोग्य पुरुष थे तथा उनकी बुद्धि अत्यन्त विशाल

थी। जिस वसीले से उन्होंने वे समस्त मत उखाड़ फेंके जिनको कि उनके आचार्यों ने शास्त्रों का मूल बता २ कर चलते कर दिये थे उनका निरन्तर इस जगत् में नाम रहे इस दृष्टि से उनके भक्तजनों ने इस शहर लाहौर में एक ऐंग्लो वैदिककालिज स्थापन करने का विचार किया है इसमें बहुत दिन की अपेक्षा है। परन्तु स्वामीजी से प्रीति रखनेवाले भी मनुष्य असंख्य ही हैं, वे उतना अवश्य जमाकर छोड़ेंगे ऐसी हमको खूब खातिरी है।

इण्डियन एम्पायर कलकत्ता — आर्य्यसमाजों के सुप्रसिद्ध संस्थापक आजकल के परम नामवर सुधारक श्रीमान् दयानन्दजी महाराज के लोकान्तर गमन करजाने की दारुण दुःखदायी वार्त्ता प्रसिद्ध करने का हमको बड़ा ही शोक और पश्चात्ताप होता है। उनकी अगाधविद्वत्ता खण्डनमण्डनादि अनुपम कोटिक्रम और परमप्रशंसनीय स्वातन्त्र्य प्रीति आदि अपूर्व गुण कभी किसी को भूलने वाले नहीं हैं।

हिन्दू पेट्रियट कलकत्ता — स्वामी दयानन्द सरस्वती का परलोक सुनकर हमको परम शोक है। वे बड़े उत्तम वेदान्ती थे तथापि वेदों की ऋचाओं का नया ही अर्थ करते थे। जिस समय प्रशंसित महाशय संस्कृत बोलते थे तो उनके उस भाषण की मिठाई व सुघाई चित्त को अजीब आनन्द दिया करती थी।

इण्डियन क्रानिकल कलकत्ता — संस्कृत का पूरा मर्मज्ञ होना आर्यों के धर्मग्रन्थों की पारंगतता, मनोहर वाक्चातुर्य्य, उत्तम आदरातिथ्य इत्यादि जो २ दिव्य-गुण उत्कृष्ट धर्मोपदेशकों में चाहियें वे सब स्वामी दयानन्दजी में निवास पारहे थे। धर्म का ठीक २ सुधार होने मात्र की गर्ज़ से जो उन्होंने आर्य-समाज जहां तहां स्थापित किये वे थोड़े ही दिन टिकेंगे, ऐसा कोई भूलकर विचार में न लावे। आगे हिन्दुस्तान में किस प्रकार का धर्म्म चलता होगा? इसका निर्णय करने के समय कभी कोई स्वामीजी को नहीं भूलेगा। हिन्दूधर्म में फिरकर पूर्ववत् शुद्धता लाकर उसमें आधे से ऊपरी परमाधुनिक पाखण्डमतों को निकाल बाहर कर देना मात्र केवल स्वामीजी के उद्योग का मुख्य हेतु था।

हिन्दू अख़्बार मद्रास — संस्कृत के सच्चे और पूरे पण्डित स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने सच्चे उत्साह के साथ काम करने वाले एक मनुष्य थे। उनका परलोक होने से भरतखण्ड को बड़ा ज़बरदस्त सदमा बैठा। क्या यह थोड़ा शोक है!!!॥

झाङ्ग पञ्जाब रावलपिंडी

स्वामी दयानन्दजी में अति प्रचुर परमोदार स्वदेशाभिमान होने के हेतु से उनकी याद उनके देशबान्धव निरन्तर करते रहें यह तो परम इष्ट है ही है, लेकिन सत्य और निस्सीम स्वदेशाभिमान के जोड़ में और जो २ गुण दरकार होते हैं वे भी सब उनमें विराजमान थे। श्रीमच्छङ्कराचार्य्य और तत्कालीन अन्य इतर विद्यामहासागरों की पूर्ण तुलना के वे पण्डितशिरोवतंस थे। हाल के अति निकृष्ट समय में परमोत्साह, बुद्धिमत्ता, उद्योग और दृढ़ता आदि प्रशंसनीय गुण कहीं किसी मनुष्य में खोजने से नहीं पाये जाते, वे इनमें मानो कूट २ कर परमात्मा ने भरदिये थे। उन्हीं का बताया हुआ धर्म्म और उनकी स्वीकार की हुई बातों को यदि कोई मान्य न करे तो मत करो परन्तु अबतक इस भरतखंड में जैसे अन्य और कितने ही परम सुप्रसिद्ध महापुरुष होगये हैं उन्हीं की कोटि के इस समय ये एक दयानन्दजी हुये, ऐसा न मानना बड़ी ही बुज़दिली कहावेगी। श्रीजगदीश्वर इस कार्पण्यदोष से सब को बचावे।

गुजरातामित्र सूरत

हा! परमप्राचीन रीति की भांति धर्म के सुधार करनेवालों में से आज एक भरतखण्ड का अनुपम चमकीला मुकुटमणि खोगया, हा! परमपवित्र सर्वाद्य वेदग्रन्थों का समीचीन विचारयुक्त सभ्य मान्य अर्थ दिखाने वाला दयानन्दाभिधानी भास्कर का अस्त होगया, हा! इतिहासों में निर्मल कीर्त्तिध्वजा के चमकाने वाले परम पण्डितवर का अवतार आज समाप्त होगया, इन्होंने सिद्ध कर दिखाये वेदार्थ की सत्यता में यदि कोई सन्देह माने तो मानो, परन्तु इनका उपदेश करने में औत्सुक्य, भाषा का माधुर्य्य, वाक्चातुर्य्य सब को अपने सन्मुख प्रसन्नतापूर्वक बात की बात में चुप करदेने की अपूर्व शक्ति, हृदयंगमता, सद्भाव और हेतु की निर्मलता, निश्चय किये हुये विषयों की दृढ़ता, चित्त का सीधा और सादापन, चालढाल और वृत्ति की स्वतन्त्रता तथैव धर्मभ्रम, मूर्त्तिपूजा और निरर्थक दम्भ आदि के प्रचारों से घोर संकटसागर में डुबोये गये स्वदेश को फिर कर उन्नत शिखर पर धर देने की प्रबल उत्कण्ठा आदि सद्गुण अब कहीं दृष्टिगोचर नहीं होने के। ऐसा अनुभव इस देश के प्रत्येक मनुष्य को अब सदैव आता रहेगा। हा शोक!!!

कवि रामदास छबीलदास वर्म्मा बी. ए. एलएल. बी., बी. सी. एल. एम. आर. ए. एस. बेरिस्टर एटलाकृत संस्कृत कविता।

(स्थान—कैंब्रिज देश यूरोप)

अहो नितान्तं हृदयं विदूयते निशम्य लोकान्तरमुन्नताशयम् ।
सम्प्रस्थितं वेदविदामनुत्तमं श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीं कविम् ॥१॥

वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ, उन्नताशय, मेधावी श्रीमद्दयानन्द सरस्वती का लोकान्तरगमन सुनकर हमारा हृदय खेद से अत्यन्त खिन्न होता है ॥ १ ॥

दीपपंक्तिचितभूतले सति व्योम्नि तारकगणैस्समुज्ज्वले ।
शोकजालतिमिराकुले तु सत्युत्ससर्ज स शरीरबन्धनम् ॥ २ ॥

दिवाली की रात को दीपावली से पृथिवीतल के प्रज्वलित होने पर और तारागणों से आकाश के प्रकाशित होने पर शोकरूप अन्धकार के व्याप्त होने पर अपने शरीर को त्याग दिया ॥ २ ॥

निःशेषपीताखिलशास्त्रसारः पूतान्तरात्मा निगमाग्निज्वालैः ।
ज्ञानोत्तमैकाञ्जनलिप्तनेत्रो ब्रह्मैकनिध्यानविशुद्धचेताः ॥ ३ ॥

सम्पूर्ण शास्त्रों के सार को निःशेषरूप से पान करनेवाले, वैदिक तपरूप अग्नि से अपने आत्मा को पवित्र करनेवाले, केवल ज्ञानरूप अञ्जन से अपने बुद्धिरूप नेत्रों को प्रकाशित करनेवाले एक ब्रह्म के ध्यान से अपने चित्त को शुद्ध करनेवाले ॥ ३ ॥

स्वकीयदेशोन्नतिमात्रलग्नः स्वप्नेऽपि न प्राप्तनिजार्थबुद्धिः ।
त्यक्त्वा समस्तं तु कथन्नु कार्यं गन्तुं द्युलोकं स मनश्चकार ॥४॥

अपने देश की उन्नति में एकमात्र तत्पर और स्वप्न में भी स्वार्थबुद्धि को अपने मन में स्थान न देनेवाले महात्मा ने अपने समस्त उपयोगी कर्मों को छोड़कर क्यों स्वर्ग में जाने की इच्छा की ? ॥ ४ ॥

विज्ञाय तस्याद्भुतचारुवृत्तं दिवौकसो जातकुतूहलाः किम् ।
तद्दर्शनायात्मनिकेतनं तमजूहवन्दिव्यगुणैरुपेतम् ॥ ५ ॥

क्या कहीं देवगणों ने उसके अद्भुत और सुन्दर वृत्तान्त को सुनकर और उसके आश्चर्य में होकर उस दिव्यगुणयुक्त पुरुष को उसका दर्शन करने के लिये तो स्वर्ग में नहीं बुला लिया ? ॥ ५ ॥

कृतयुगोचित एष जनः किल न चिरमर्हति वस्तुमसौ मयि ।
मनसि सङ्कलितं कलिनेति किं स च हृतोऽखिलसाधुमनोरथैः ॥६॥

क्या कहीं कलियुग ने अपने मन में यह विचार कर कि यह महात्मा सत्ययुग में होने योग्य था मुझ में चिरकाल तक रहने के योग्य नहीं है, इन शुभ मनोरथों से तो उसको नहीं हरलिया ॥ ६ ॥

गुणानपेक्षेण निजप्रभुत्वं कालेन किं दर्शयितुं हृतः सः ।
नृदेहभाक् प्राक्तनकर्मयोगात् पुनः प्रपन्नः प्रकृतिं निजां वा ॥७॥

क्या कहीं गुण की अपेक्षा न करनेवाले समय ने तो अपना प्रभुत्व दिखलाने के लिये नहीं हरलिया ? । अथवा पिछले कर्मों के योग से मनुष्य-शरीर धारण करके फिर अपनी प्रकृति को प्राप्त होगया ॥ ७ ॥

संदेहदोलामधिरूढमेवं मनो न निश्चेतुमलं मदीयम् ।
चित्रं निगूढं चरितं विधातुर्वेत्तुं क्षमः को वद मानुषोऽस्ति ॥८॥

निदान मेरा यह मन संशयाविष्ट हुआ किसी कारण को निश्चय नहीं कर सका, भला विधाता के विचित्र और गूढ़ चरित्र को कौन मनुष्य जानने में समर्थ है ॥८॥

दिनानि पूर्वं कतिचिच्च आसीदस्मदक्षिणोरनयनोत्सवाय ।
स्मृतेस्स पन्थानमितोऽधुना तत् कथं विधेस्याल्लसितं प्रमेयम् ॥६॥

कुछ दिन पहिले जो हमारी आंखों को आनन्द देता था आज वह स्मृति के मार्ग में पहुंच गया तो फिर विधि का उल्लसित कैसे प्रमेय होसकता है ॥ ६ ॥

तातगेहवसतिर्विमानिता संश्रितश्चरम एव चाश्रमः ।
धर्मतत्त्वपरिबोधने रतस्तेन सोढमपि दुर्वचो नृणाम् ॥ १० ॥

पितृगृह में रहना जिसने पसन्द नहीं किया और ब्रह्मचर्य से ही जिसने चतुर्थ आश्रम का आश्रय लिया और धर्मतत्त्व के जतलाने में जिसने मनुष्यों के दुर्वचन भी सहे ॥ १० ॥

स्वं विहाय मुहुरुच्छ्रितं पदं वारिदः श्रयति वाहिनीतटम् ।
केवलं परहिते कृतश्रमा लाघवं न गणयन्ति सज्जनाः ॥ ११ ॥

जिस प्रकार मेघ परोपकार के लिये अपने उच्चपद को त्याग कर निम्नस्थली का आश्रय लेता है, इसी प्रकार परहित के लिये श्रम करनेवाले सज्जन अपने अपमान कुछ नहीं गिनते ॥ ११ ॥

यः पाखण्डमतैकखण्डनरतो वेदाख्यशस्त्रैः शुभैः,
शास्त्राणां बलवद्बलेन सततं संसेव्यमानो युधि ।
सत्पक्षः परिषच्छलेन विजयस्तम्भान्समारोपय-,
द्दिक्ष्वन्यः पुरुषो हि तेन सदृशो लभ्येत कुत्राधुना ॥ १२ ॥

जो धर्मरूप संग्राम में शास्त्रों की बलवती सेना से सेव्यमान हुआ वेदरूप शस्त्रों से पाखण्डमतों का खण्डन करता था और सत्पक्ष और सभाओं के मिष से दिशाओं में विजयस्तम्भों को आरोपण करता था अब उसके समान कहां कौन पुरुष मिल सकता है ! ॥ १२ ॥

एक एव खलु पद्मिनीपतिरेक एव दिवि शीतदीधितिः ।
एक एव च स वेदविद्भुवि द्वित्वमत्र न कदा श्रुतं मया ॥१३॥

आकाश में सूर्य एक ही है और एक ही चन्द्रमा भी है, पृथ्वी में एक ही वह वेदवित् था, इसमें द्वित्व मैंने कभी नहीं सुना ॥ १३ ॥

स्यात्पुनस्तरणिरक्षिगोचरो दृश्यते नभसि चन्द्रमाः पुनः ।
यात एष तु सकृत्सदग्रणीर्नो भवी।ति विषयो न नेत्रयोः ॥ १४ ॥

सूर्य अस्त होकर फिर हमारे नयनगोचर होगा, चन्द्रमा भी छिपकर आकाश में पुनः दीखेगा, परन्तु यह सत्पुरुषों में अग्रणी पुरुष एकवार गया हुआ हमारे नेत्रों का विषय न होगा ॥ १४ ॥

इन्द्रियार्थोद्भवं ज्ञानं सर्वथा न प्रमात्मकम् ।
तच्च्युतस्स महात्मातः स्मृतावेव निधीयताम् ॥ १५ ॥

इन्द्रिय और अर्थों से उत्पन्न हुआ ज्ञान सर्वथा निश्चयात्मक नहीं होता, इस-लिये उससे वह महात्मा पृथक् होगया, अब उसको स्मृति में ही रखना चाहिये ॥१५॥

संस्कृता भारती येन वृद्धिं यायादनारतम् ।
तस्य नामामरं च स्यादित्येतद्व्यवसीयताम् ॥ १६ ॥

जिससे संस्कार कीहुई वाणी अनवरत उन्नति को प्राप्त हो और उसका नाम अमर हो ऐसा उद्योग करना चाहिये ॥ १६ ॥

ऋषयः कवयो नष्टा विद्वांसोऽपि तथैव च ।
साधूनां मरणात्पश्चादभिधानं तु जीवति ॥ १७ ॥

अनेक ऋषि, कवि और विद्वान् नष्ट होगये, साधु पुरुषों का मरने के पश्चात् नाम जीता है ॥ १७ ॥

को नाम श्रीदयानन्दात्साधीयान् दृश्यते जनः ।
उज्जीविता र्षविद्या येनास्माभिर्निरपेक्षिता ॥ १८ ॥

श्रीमद्दयानन्द से बढ़कर और कौन साधुपुरुष दीखता है जिसने हम से उपेक्षा की हुई आर्षविद्या को जिला दिया ॥ १८ ॥

सैवैषा नीयतां पुष्टिं स्वकीयहितवृद्धये ।
शास्त्रतत्त्वावबोधेन यूनां संस्क्रियतां च धीः ॥ १९ ॥

अपने हित की वृद्धि के लिये उस संस्कृत विद्या की पुष्टि करनी चाहिये और शास्त्रतत्त्व के बोध से युवा पुरुषों की बुद्धियों को शुद्ध करना चाहिये ॥ १९ ॥

(अन्तर्लापिका)

कः पद्मिनीनां वद तिग्मदीधिति-
धर्मः परः कः कविवाचि कः स्थितः ।
का कण्ठभूषा न यमाद्बिभेति कः,
स्वामी दयानन्दसरस्वती यमी ॥ २० ॥

प्र०-बताओ पद्मिनियों का सूर्य क्या है ? (उ०-"स्वामी") प्र०-श्रेष्ठ धर्म्म क्या है ? (उ०-"दया") प्र०-कवियों की वाणी में क्या रहता है ? (उ०-"आनन्द") प्र० कण्ठ का आभूषण क्या है ? (उ०-"सरस्वती") प्र० यमराज से कौन नहीं डरता ? (उ०-"यमी") इन पांचों प्रश्नों का क्रमशः उत्तर श्लोक के चतुर्थपाद में यह आगया है कि "स्वामी दयानन्द सरस्वती यमी" ॥ २० ॥

रागणी जोगिया—ताल शूल ।

उगज्यो दण्डी छिपे हैं पाखण्डी, डरे हैं घमण्डी धूर्त्त अन्याई ॥ १ ॥
विद्या पाकर निकला दिवाकर, तिमिर हटाकर ज्योति दिखाई ॥ २ ॥

आये हैं स्वामी दयानन्द नामी, गर्जे सभा में सिंह की नाईं ॥ ३ ॥
सत्य का मण्डन दम्भ का खण्डन, कर पांड तबक की धूल उड़ाई ॥ ४ ॥
डरे हैं प्रमादी अनीश्वरवादी, पौराणिक दें रामदुहाई ॥ ५ ॥
बड़े बड़े नास्तिक होकर आस्तिक, हाथ जोड़ आये शरणाई ॥ ६ ॥
कर शास्त्रार्थ रच सत्यार्थ, सत्योपदेशों की धूम मचाई ॥ ७ ॥
लोक लोकान्तर मत मतान्तर, कर न सका कोई उनसे लड़ाई ॥ ८ ॥
देश देशान्तर द्वीप द्वीपान्तर, मान चुके उनकी पण्डिताई ॥ ९ ॥
वेदों के बल से युक्ति प्रबल से, कलियुग की काया पलटाई ॥ १० ॥
तप अखण्ड से तेज प्रचण्ड से, रिपुगन की छातियां धड़काई ॥ ११ ॥
योगीन्द्र महर्षि आत्मदर्शी, दिग्विजय जिनके हिस्से में आई ॥ १२ ॥
अमीचन्द ऐसा होना कठिन है, धर्म अवलम्बी वेद अनुयाई ॥ १३ ॥
कष्ट उठाये नहीं घबराये, धर्म्म न हारा यदि विष खाई ॥ १४ ॥

रामबिलास शारदा.

ओ३म्

महर्षि के जीवन पर एक दृष्टि

[महाशय आत्मारामजी के उर्दू लेख से अनुवाद किया गया]

महापुरुषों के जीवन दो भागों में विभक्त होते हैं। एक पहिला भाग जिसमें वे शुभ इच्छा वा सत्य संकल्प धारण करते हैं और दूसरा वह भाग जिसमें धारण की हुई इच्छा वा संकल्प की पूर्ति पुरुषार्थ द्वारा करके दिखाते हैं। अथवा यों कहिये कि महापुरुषों के जीवन एक प्रश्नोत्तर के रूप में होते हैं। साधारण पुरुषों के जीवन केवल इच्छा और प्रश्नों के ही संघात होते हैं, परन्तु महापुरुषों के जीवन प्रश्न और उनके उत्तर साथ लिये होते हैं। यदि हम्बोलट ने नदी, पर्वत और प्राकृत दृश्यों के तत्व जानने का प्रश्न उठाया तो उसका समाधान करने के लिये उसने दो वार इस पृथिवी की परिक्रमा भी की, यही कारण है कि उसके पुरुषार्थ की स्तुति करनेवाले उसको "न्यूटन" से बढ़कर पदवी देते हुए "अरस्तू" से उपमा देते हैं। प्रश्न की उच्चता से उत्तर देनेवाले की महिमा का पता लगता है, साधारण प्रश्न के उत्तरदाता का संसार में विशेष मान नहीं होता, हां कठिन से कठिन प्रश्न के समाधान करनेवाले को संसार बड़ी से बड़ी पदवी देने के लिये तय्यार है। पक्की सड़क पर चलनेवाला कण्टकपूरित मार्ग में चलने वाले की अपेक्षा शूर नहीं कहला सकता, कच्ची सड़क पर चलनेवाले की अपेक्षा छुरी की धार पर चलनेवाला अधिक सन्मान पाता है।

जब हम उस प्रश्न की ओर ध्यान देते हैं जिसका उत्तर देने के लिये स्वामी दयानन्द ने अपने जीवन को लगाया तो निस्सन्देह हमें उस प्रश्न का अत्यन्त गूढ़ और कठिन होना स्वीकार करना पड़ता है। वीरों के हृदय उस प्रश्न का नाम सुनकर हिल जाते हैं, कब सम्भव है कि कोई उस प्रश्न के उत्तर देने का साहस करे। नेपोलियन के लिये अपनी वेगवती इच्छा के बल से यूरोप के नरेशों से खिलौनों की तरह खेलना और एल्प्स पहाड़ की चोटियों पर डेरे लगाना सुगम था, परन्तु वह अन्तिम समय

में अपने आपको उस प्रश्न का उत्तर देने के लिये सर्वथा अयोग्य पाता है, जिसका समाधान करने के लिये स्वामी दयानन्द ने बीड़ा उठाया था। सिकन्दर और महमूद से प्रतापी नरेश संसार में रक्त की नदियां बहाते हुए उस प्रश्न के आगे हाथ बांधे दीन हुये खड़े दिखाई देरहे हैं। जिस पशु को कोई छेड़ना नहीं चाहता, उस पर दयानन्द काठी लगाकर सवार होना चाहता है। जिस सिंह का गर्जन सुनकर शूरों का हृदय कांप उठता है उस शार्दूल को पालतू अधीन बनाने के लिये दयानन्द उद्यत होता है। सहोदरा की मृत्यु ने उसके हृदय को ठोकर लगाई और उसको मृत्यु से छूटने का कठिन प्रश्न समाधान करने के लिये देदिया। मृत्यु क्या है और उससे किस प्रकार मनुष्य बच सकता है? यह प्रश्न उसके मन में बस गया, उसका सारा पुरुषार्थ इस प्रश्न का उत्तर देने और अपने दृष्टान्त से संसार को इस बात का जाग्रत प्रमाण देने के लिये था कि मनुष्य मृत्यु पर इस प्रकार विजय पासकता है। मृत्यु और उसका समाधान यह महर्षि के जीवन का सारांश है।

इस प्रश्न की उच्चता और आवश्यकता उसकी रग २ में समा गई। कोई भी शक्ति पृथिवी पर उसकी न टलनेवाली इच्छा और दृढ़ता की ऊर्ध्वगामिनी ज्वाला को बुझाने का काम नहीं करसकती थी। आकाश में उड़नेवाले पक्षी को क्या कोई भूमि में रेंगना सिखा सकता है? माता का स्नेह और पिता की विभूति उसकी दृष्टि में जचती नहीं, उसका उद्देश्य महान् है और ये वस्तुयें उस उद्देश्य की सिद्धि में सहायता नहीं देसकतीं। विवाह की कोमल और सुन्दर रज्जु से बहुधा उसके माता पिता उसको बांधने का यत्न करते रहे, परन्तु जब विवाह मृत्यु के प्रश्न का समाधान नहीं कर सकता तो वह उसके बन्धन में क्योंकर पड़ सकता है? जब देखा कि पिता के गृह में इस महान् प्रश्न की मीमांसा करने का कोई साधन उपस्थित नहीं है तो घर छोड़ वन को प्रस्थान किया। जिस प्रकार जलधारा सागर में पहुंचने के लिये अपने स्वाभाविक वेग से मार्ग के प्रतिबन्धक चट्टानों को काटती और पत्थरों को बहाती हुई कभी थमती नहीं जबतक कि वह समुद्र से जाकर न मिलजावे, ठीक इसी प्रकार उसकी आत्मरूप धारा सत्य की आकर्षण शक्ति को अपना आदर्श बनाती हुई पद २ पर क्षोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, भ्रान्ति और अविद्या के उन्नत चट्टानों को काटती हुई और उनमें से अपना मार्ग बनाती हुई कहीं भी ठहरती हुई दिखाई नहीं दी, जब तक कि उसने परमानन्द के सागर को नहीं पालिया।

विज्ञान के तत्त्व का अनुसन्धान करनेवाले महात्माओं ने प्राय: अपनी समाधिस्था बुद्धि के उदाहरण दिये हैं। प्रश्नों का समाधान करनेवाले ज्ञानियों के पास से प्राय: सेनायें निकल जाती हैं परन्तु उनको ध्यानावस्थित होने के कारण उनकी खबर तक नहीं होती। सन् ५७ के भयङ्कर ग़दर का कोलाहल उसके समीप होता रहा, परन्तु उसकी अन्तर्मुख वृत्ति ने कभी आंख उठाकर उसकी ओर नहीं देखा, इस समय उसने वह साधन जन्म से धारण किया हुआ था, जिससे उत्तम साधन संसार के इतिहास में कहीं मिल नहीं सकता। यह बालब्रह्मचर्य्य का वह दृढ़, सर्वोत्तम और सर्वार्थसाधक साधन था, जिसकी महिमा वर्णन करते हुये वीरधीरशिरोमणि पितामह भीष्मजी महाराजा युधिष्ठिर से कहते हैं कि "जो जन्म से लेकर मरणपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य रखता है उसको संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जो अप्राप्य हो" जिसने अखण्ड ब्रह्मचर्य्य धारण किया हो उसके सन्मुख शारीरिक आत्मिक उन्नति साम्यावस्था में अपना स्वरूप प्रकाशित करदेती है। उसके शरीर की ओर दृष्टि करें तो ६ फ़ीट लम्बा क़द, प्राचीन ब्राह्मणों के क़द का पुन: दर्शन करानेवाला, सुन्दर और सुडौल शरीर वीर्यरक्षा और मांस मदिरा से रहित पुष्टिकारक दुग्ध आदि शुद्ध भोजन की उत्तमता का प्रत्यक्ष प्रमाण देरहा है। शिर के मध्यभाग की ऊपर को उभरी हुई खोपड़ी को यदि सामुद्रिक विद्या (Phrenology) की सहायता से देखें तो एक विज्ञान से भरे मस्तिष्क का बोधन करा रही है। आंखों से बुद्धिमत्ता टपकती हुई और चेहरे पर ब्रह्मतेज चमकता हुआ * सब के मन को आकर्षित कर रहा है। काशी के प्रसिद्ध पण्डित छिप २ कर उनकी संस्कृत की शुद्ध वक्तृता को सुनने आते थे इसलिये कि वह प्रणाली शब्दोच्चारण की सीखें जोकि ठीक २ वैदिक है। उनका स्वर, जो वेदमन्त्रों को गानविद्या के नियमानुसार † अलापता था, बतलाता है कि वह किसी राग

* हमने उनका दर्शन किया और उनसे बातचीत की, उनके दर्शन से जिसकी कान्ति और तेज राजवत् देदीप्यमान था, हम आकर्षित होगये थे। सचमुच उनका समाज जिस दशा में है उस दशा में न होता यदि उनकी निजावस्था प्रभावशालिनी न होती। ब्राह्मो लोग स्वामीजी की बड़ी प्रतिष्ठा करते थे "ब्रह्म अलबार यूनिटी एण्ड मिनिस्टर" (आर्यपत्रिका १४ दिसम्बर १८९७ ई० से)

† अंभो अंभो महो इत्यादि मन्त्र जो भूमिका के पृ० १९१ पर हैं उनको स्वामीजी ग़ज़ल की रीति पर गाया करते थे, इनके अतिरिक्त उनमें से भी कई मन्त्र जो वेदसंगीत नामक लघु-पुस्तक में दिये हैं और जो पुस्तक विरजानन्द प्रेस लाहोर से मिल सकती है, स्वामीजी गानविद्या के अनुसार प्राय: गाया करते थे, इसका निश्चय पं० गुरुदत्तजी ने पं० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या तथा अन्य महाशयों से पूछ कर किया था।

विद्या के आचार्य से योग्यता को बांट लाये हैं। स्वामी विरजानन्द के सदृश उनकी स्मरणशक्ति भी आश्चर्य्यमय थी * ।

विद्या के आदर्श स्वामी दयानन्द को ग़दर के समय कई प्रकार के गुप्त जौहर दिखाने और गार्फ़ील्ड के समान प्रतिष्ठित होने का अच्छा अवसर प्राप्त था, परन्तु सांसारिक शासकों को रिझाने और नाम के पीछे मरने के लिये वह पैदा नहीं हुआ था, उसको जगत् के शासक की आज्ञा में चलने और अपने आत्मा की प्रसन्नता प्राप्त करने की आवश्यकता थी। अखण्ड ब्रह्मचर्य्य के दृढ़ पैरों पर न थकने वाला यात्री विषम और कठिन मार्गों को योगियों और ऋषियों की खोज में उल्लंघन कर रहा है। हिमालय के हिमवर्षी चट्टान जो कि रुधिर की गति को जमा देते हैं उन पर से सुक़रात की तरह नंगे पांव और सुक़रात से बढ़कर नग्नशरीर एक कौपीन धारण किये हुए ब्रह्मचर्य्य के तपोबल से वह विचरता हुआ अपनी वेगवती इच्छा को प्रकट कर रहा है।

विषम और दुर्गम मार्गों में कांटों और झाड़ियों से अपने शरीर को छिदवाता हुआ और रुधिर से अपने अङ्गों को सींचता हुआ हम्बोलट के समान नर्मदा की घाटियों को खोजने जाता है और इस यात्रा में उससे बढ़कर अपनी दृढ़ता और वीरता दिखाता है। हम्बोलट एंडीज़ के पहाड़ों में आराम के समान और खच्चरों को साथ लेकर जाता है और कहीं अपनी उत्साहवृद्धि के लिये स्पेन के राजा की सहायता पाता है। परन्तु स्वामी दयानन्द अपनी यात्रा में किसी राजे महाराजे की सहायता नहीं लेता और न सुख के साधन लिये हुये है, उसको अकेले ही सूर्यवत् अन्धकार को दूर करना है और ऐसा करने में वह अपने कर्म से आदित्य ब्रह्मचारी के शब्द को सार्थक बना रहा है।

दूसरा पूर्ण साधन जो इससे भी बढ़कर संसार को आश्चर्य में डालने वाला और जिसका ब्रह्मचर्य्य स्वयं साधन है। जिसका प्रारम्भ ब्रह्मचर्य्य की समाप्ति के साथ २ होता है और जोकि मनुष्य को परम पवित्र धार्मिक जीवन के बिना प्राप्त नहीं हो सकता। जिसकी भट्टी में ब्रह्मचर्य्य से इकट्ठा किया हुआ वीर्य जलाना पड़ता है। जोकि आत्मा को अपनी निज शक्ति से इन आंखों की सहायता के बिना देखने का सामर्थ्य देता और प्रकृति के भेदों और मृत्यु के महाकठिन प्रश्न का समाधान करा

* उनकी स्मृति के विषय में मेक्समूलर का यह कथन है कि उनको समस्त वेद कण्ठस्थ थे, उनका सारा हृदय वेदविद्या से परिपूर्ण था।

सकता है। जिसकी खोज में ही स्वामी दयानन्द को जङ्गल, पहाड़ और नदियों की परिक्रमा देनी पड़ी, जिसकी प्राप्ति पर ही मनुष्य, मनुष्यश्रेणी से निकल ऋषिश्रेणी में प्रविष्ट होजाता है, जिसके समान कृष्णदेव कहते हैं कि कोई बल नहीं वह ऋषि मुनियों का परम साधन योग ही है।

अमरजीवन प्राप्त करने के लिये स्वामी दयानन्द आबू और हिमालय के योगिराजों से इस महाविद्या को धारण करता रहा। उनको श्रुति बतला रही थी कि "तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" ईश्वर-दर्शन के बिना मृत्युञ्जय की पदवी नहीं मिल सकती और योगदृष्टि के बिना आत्मा ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकता। अतः उनके प्रश्न का अन्तिम समाधान उनकी योग समाधि पर निर्भर था। उनकी मेधा, अद्भुतस्मृति, योगसमाधि, वेदविद्या, परोपकार, शूरवीरता, दृढ़इच्छा, पूर्णब्रह्मचर्य, धार्मिकजीवन, कठिनयात्रा, साधनशीलता, संन्यास, निष्काम कर्म और महान् आत्मिकबल से पाखण्ड का खण्डन करते हुए निष्पक्ष होकर वेदोक्त मत का मण्डन करना और अन्त को मृत्यु पर विजय पाते हुए भय और क्लेश की जड़ को योगबल से काटकर दिखादेना, ये सब बातें दर्शा रही हैं कि वे मनुष्यश्रेणी से नहीं किन्तु ऋषिश्रेणी से सम्बन्ध रखते थे, उनके पवित्र, धार्मिक और समुन्नत जीवन में हमें ऋषिमुनियों के जीवन का दृष्टान्त मिलता है, उनके जीवन की स्थिति एक शब्द में यह कह देने से वर्णन हो सकती है कि वे "महर्षि" थे।

मनुष्य अपने दोषों को गुणों से बदलने का यत्न करते हैं, वे अपनी विद्या को अपने दोषों के छिपाने का साधन बनाना चाहते हैं और अपनी त्रुटि को सरलता से स्वीकार करने में तो वे अपनी मानहानि समझते हैं किन्तु अपनी सारी योग्यता उसकी पुष्टि करने में लगाते हैं। यूरोप के कई फिलासफर और विद्वान् लोग अपने पक्ष की सिद्धि के लिये थ्यूरी और सिद्धान्त घड़ते हुए लज्जित नहीं होते। काशी के पण्डित मुंह से निकले हुए झूठे वाक्य की सिद्धि के लिये अपना सारा विद्याबल लगाते हुए अधर्म से नहीं रुकते। मान और प्रतिष्ठा के लिये हाथ पांव मारनेवाले आत्मसाक्षिता का गला घोटते हुए बड़े २ विद्वान् और पण्डित ऐसे विचित्र दम्भ करते हैं कि जिससे उनकी बाह्य प्रतिष्ठा में अन्तर न पड़े। परन्तु ऋषियों के इतिहास दम्भ से सर्वथा शून्य होते हैं और हमें स्वामी दयानन्द के ऋषि होने का दृढ़ प्रमाण इससे बढ़कर और क्या मिल सकता है कि उन्होंने जगत्प्रसिद्ध होने पर भी

अपनी पूर्वावस्था की निर्बलताओं को अपने मुंह से पूना में अपना जीवनचरित्र सुनाते हुये विना किसी संकोच के स्वयं वर्णन किया है। यही नहीं किन्तु जब मुरादाबाद में वैदिकधर्म का उपदेश कर रहे थे तो भूल में एक शब्द मुंह से अशुद्ध निकल गया। एक लड़के ने उनको कहा कि स्वामीजी आपने भूल की है, क्या और कोई मनुष्य ऐसी प्रतिष्ठा रखता हुआ लड़के की बतलाई हुई भूल को स्वीकार करने का साहस कर सकता है ?। किन्तु स्वामी दयानन्द ने विना संकोच के सरल वाणी से कहा कि हां मैंने भूल की है। उस लड़के ने दूसरे दिन फिर कई मनुष्यों के सामने कहा कि स्वामीजी कल आपने अमुक शब्द अशुद्ध बोला था, तो उस समय भी कहने लगे कि हां हम से भूल हुई थी और जब देखा कि यह लड़का बार २ ठट्ठा करने के लिये इसी बात को दुहराये जाता है तो कहा की हमने भूल स्वीकार करली, परन्तु तुम अभीतक बाललीला किये जाते हो।

आजकल पण्डित और विद्वान् शब्द के अर्थ यह समझे जाते हैं कि जो अपने बराबर के पण्डित को मूर्ख और अपने से बढ़िया पण्डित को विक्षिप्त बतलावे। विद्वानों के हृदय दग्ध होजाते हैं और पण्डितों की आँखें लाल होजाती हैं, जब वे अपने सामने किसी और पण्डित की बड़ाई सुनते हैं। परन्तु ऋषि-जीवन ईर्ष्या द्वेष से रहित होते हैं, ऋषि लोग अपने दोषों को निवारण करने और दूसरों के गुणों को ग्रहण करने में सर्वदा तत्पर रहते हैं। वे किसी की बड़ाई सुनकर जलते नहीं किन्तु प्रसन्न होकर गुणी जन के पास उसके गुणों की भिक्षा लेने को जाते हैं। महर्षि दयानन्द की यात्रा बतला रही है कि उन्होंने केवल वाणी से नहीं, किन्तु कर्म से भी इस बात को सिद्ध किया था। जहां जिस योगी वा विद्वान् की बड़ाई उनके कान में पहुंची तुरन्त श्रद्धा की भेंट लेकर उस पण्डित वा योगी की सेवा में अपनी न्यूनता को पूर्ण करने के लिये उपस्थित हुए और फिर जीवनपर्यन्त अपने शिक्षा देने वाले गुरुओं की प्रशंसा करते रहे। स्वामीजी आबू * के भवानीगिरि के योगिराजों और हिमालय की केदारघाटी के गंगागिरि की † जिन्होंने उनको योगविद्या के गूढ़ रहस्य सिखलाये थे और मथुरा के स्वामी विरजानन्द की प्रशंसा करते हुये नहीं थकते थे।

* पं० गुरुदत्तजी कहा करते थे कि स्वामीजी ने जो अपनी अस्वस्थता के दिनों में आबू पर आने के लिये विशेष आग्रह किया था उसका कुछ गूढ़ आशय था। अनुमान होता है कि उनके योगविद्या के सिखानेवाले योगिराज वहां हों और वे उनसे मिलना चाहते हों।

† आजतक भी पर्वतों में योगिराज विद्यमान हैं, परन्तु हमारा उनसे कुछ सम्बन्ध नहीं

वे जिसमें गुण देखते थे उसकी सदा प्रशंसा करते थे चाहे वह मनुष्य विद्यादि गुणों में उनसे छोटा भी क्यों न हो। एक समय की वार्त्ता है कि मुरादाबाद में वह रोग की दशा में पलंग पर लेटे हुए थे, एक वैद्य चरक सुश्रुत के जाननेवाले शाहजहांपुर से वहां आये और आकर फ़र्श पर बैठ गये, जब स्वामीजी से उनका वार्त्तालाप हुआ तो उनकी योग्यता से स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए और अस्वस्थ होने पर भी पलंग से उठ बैठे और पास के कमरे से कुरसी खुद उठाकर ले आये और बड़े आदर सत्कार से वैद्यजी को कहते हुये उस पर बैठाया कि हमें मालूम न था कि आप ऐसे विद्वान् हैं *।

एकवार स्वामीजी कन्नौज में गये और वहां पण्डित हरिशङ्करजी से शास्त्रार्थ हुआ। एक प्रसङ्ग पर शास्त्रीजी ने कहा कि मीमांसा में ऐसा लिखा है, स्वामीजी ने कहा कि ऐसा कदापि नहीं है। इसपर शास्त्रीजी के मुख से निकला कि यदि ऐसा न हो तो हम शिखा सूत्र त्यागकर संन्यास ग्रहण करलेंगे अन्यथा आपको संन्यास त्यागना होगा, स्वामीजी ने स्वीकार कर लिया। पण्डितजी घर आये और पुस्तक जो देखी तो वास्तव में जो स्वामीजी कहते थे वही उसमें निकला इस पर पण्डितजी ने सब पण्डितों और प्रतिष्ठित लोगों को बुलाकर कहा कि हम स्वामीजी से हारगये, अब हम संन्यास धारण करते हैं। लोगों ने सलाह करके कहा कि ऐसा न करना चाहिये किन्तु स्वामीजी के पास जाकर कहिये कि जो हम कहते थे वही पुस्तक में है, इस पर हम लोग धुन्द मचाकर आपकी जय बोल देवेंगे। पण्डितजी ने यह स्वीकार न किया और कहा कि हम से कदापि झूठ न बोला जायगा। निदान आपने स्वामीजी के पास जाकर अपनी भूल स्वीकार की और कहा कि हमको संन्यास दीजिये हम हारगये। इसपर स्वामीजी ने सब लोगों के समुदाय में कहा कि हमने आजतक ऐसा सत्यवादी और धार्मिक पण्डित नहीं देखा। प्राचीन समय के पण्डितों का नमूना यही हैं †।

महर्षि की यह बातें वर्णन करते हुए हम अचानक उपनिषदों के समय में जा पहुंचते हैं। जहां हम देखते हैं कि ऋषि लोग विद्या और तप से युक्त होने पर भी सरलभाव से अपनी निर्बलता को स्वीकार करते हैं और प्रश्नकर्त्ता को उसके प्रश्न

इसलिये हम उनको नहीं जानते। सन् १८८१ ई० में पं० गुरुदत्तजी ने एक सच्चिदानन्द नामक योगीराज की ख़बर दी थी कि वे पूर्ण आर्य हैं और नैपाल के पहाड़ों में विचर रहे हैं, सच है बीजनाश किसी विद्या का नहीं होता।

* साहू श्यामसुन्दरजी रईस मुरादाबाद इन वैद्यराज को लेगये थे।

† देखो सद्धर्मप्रचारक जलन्धर ता० २१ हाड़ सं० १९२७ वि० पृष्ठ ६।

का उत्तर न देसकने की दशा में स्पष्ट कहदेते हैं कि हमारा इस विषय में गम्य नहीं है और फिर आप ऋषि होने पर इस प्रश्न का समाधान करने के लिये किसी और ऋषि की शरण ढूंढते हैं। जहां हम जाबालि से ब्राह्मण लोग लज्जा की परवाह न करते हुये सच २ कहते हुये दिखाई देते हैं। उस समय जब कि लोग उनको गङ्गातट पर कृष्णावतार की पदवी देना चाहते थे, जब कि थियासोफिस्ट उनको परम सहायक की उपाधि प्रदान कररहे थे। ऐसे समय में जब कि साधारण लोग महन्त और गुरु बनकर राजाओं से भी अपनी गद्दियों को पुजवा रहे थे जब कि राजपूताने के एक महाराजा ने उनको एकलिंग की बड़ी भारी गद्दी बतलाई थी तो इन सब गद्दियों और पदवियों को लात मारकर परे फेंकते हुए, आर्य्यसमाज के संस्थापक होने पर भी अपने को केवल उसका उपदेशक और सभासद् बतलाते हुए क्या वह सचमुच अपने ऋषिपन का बोधन नहीं करा रहे हैं?।

एकबार उनसे जब किसी सज्जन ने प्रश्न किया कि आप इतने विद्वान् होने पर क्यों नहीं एक शास्त्र अपना रचकर संसार में नाम छोड़ जाते तो ऋषिश्रेणी का आत्मा उत्तर में कहता है कि आगे जो शास्त्र बने हुये हैं उनमें कौनसी न्यूनता है जिसको पूरा करने के लिये मैं अपना नया शास्त्र रचूं और केवल नाम छोड़ने की आशा से पुस्तक बनाने में अपना समय व्यर्थ गमाऊं।

मान की तरङ्ग संसार में ऐसी प्रबलरूप से बहरही है कि बड़े २ राजे महाराजे विद्वान् और पण्डित इसमें मूर्छित होकर बहते हुये दीख पड़ते हैं कहीं २ सुक़रात और न्यूटन से मान को लात मारनेवाले और सचाई के साथ यह कहनेवाले, कि हम विद्या के अपार समुद्र के किनारे कङ्कर चुनने वाले बच्चे हैं, दिखाई पड़ते हैं। स्पेन्सर और ग्लैडस्टोन से मनुष्य, जो पदवियों और उपाधियों को तिलाञ्जलि दें, कहीं २ मिलते हैं। परन्तु ऋषिश्रेणी में कोई प्रविष्ट नहीं हो सकता जबतक कि वह लोकैषणा (मान की अभिलाषा), वित्तैषणा (धन की तृष्णा) और पुत्रैषणा (सन्तान की इच्छा) को सर्वथा त्याग न करदे, स्वामी दयानन्द कभी ऋषिश्रेणी में परिगणित न होता यदि वह इन एषणाओं से रहित न होता।

एकबार संयुक्तप्रदेश के एक प्रसिद्ध नगर में किसी सज्जन ने उनसे कहा कि स्वामीजी आपतो ऋषि हैं, उत्तर में स्वामीजी ने कहा कि तुम ऋषियों के अभाव में मुझे ऋषि कह रहे हो, परन्तु सच जानो यदि मैं कणाद ऋषि के समय में उत्पन्न होता

जो उस समय के विद्वानों में भी गणना होनी कठिन थी। अठारह घण्टे की समाधि लगानेवाला * पूर्ण योगी दयानन्द जिसको धर्मदिवाकर † के कथनानुसार लोग "ब-रुणयोगी और जड़भरत का ‡ अवतार" कहते थे कहीं भी अपने आपको लोगों में योगी प्रसिद्ध करने की चेष्टा नहीं करता, भला सच्चे गुलाब को बनावट की क्या आवश्यकता है। उसका होना ही उसकी सुगन्धि को प्रकट कर देता है, किन्तु का-ग़ज़ के बने हुये बनावटी गुलाब की गुलाबी रंगत और इत्र लगाने की ज़रूरत है ताकि वह धोखे से अपने आपको गुलाब सिद्ध कर सके। योग और योगसिद्धि के नाम से भोगी पुरुषों ने संसार को लूट खाया, योग और योगसिद्धि का नाम लेते हुये ठगों ने लोगों को मनघड़त लीला दिखाकर विश्वास दिलाने की चेष्टा की है कि यह सिद्धियां (करामातें) हैं और हम सृष्टिक्रम को तोड़ सकते हैं, योगसिद्धि की झलक दिखाने पर भी लोग गुरु बनकर मूर्खों से चरण पुजवाते हैं। परन्तु झूठी सिद्धि और भूत प्रेत की भ्रान्ति को काटनेवाला विद्या की ठेकेदारी और ठगी को संसार से मिटानेवाला सच्चा योगी दयानन्द हठयोग के हथखण्डों से लोगों को सावधान करता हुआ राजयोग की सच्ची महिमा और पवित्र उद्देश्यों का प्रकाश करता है जिससे कि आत्मा की पूर्ण शक्तियां सृष्टिक्रम के अनुसार (न कि विरुद्ध) प्रकट हो सकती हैं। महर्षि उस योगविद्या का प्रतिपादन करता है जो योग के विना धार्मिक पवित्र जीवन प्राप्त किये सिद्ध नहीं होसकता और जिस योगबल से मनुष्य वैदिक सूर्य्य की ज्योति को अनुभव करने पर मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहला सकता और इसी साधन से ईश्वरदर्शन करता हुआ मृत्यु को अपने वश में कर सकता है। एक अमेरिकन × का कथन है कि सचाई मनघड़त कहानी से भी अधिक प्रभावोत्पादक है। बिजली की शक्ति जि-ससे पांच मिनट के भीतर सैकड़ों मील के समाचार मिल सकते हैं वास्तव में किसी उपन्यास की मनघड़त कथा से अधिक प्रभावशालिनी और विस्मयोत्पादिका है। प-रन्तु यदि इसी बिजली के गुण किसी पन्थाई और नाम के भूखे पुरुष को मालूम हो-जाते तो वह बिजली का मन्दिर बनवाकर और आप उसका पुजारी बनकर रोम के पोप की तरह लोगों को लूटकर खाजाता और इस विद्या का वह प्रचार जो इस स-

---

* देखो दयानन्द दिग्विजयार्क।

† धर्मदिवाकर मासिकपत्र कलकत्ता भाग १ अंक ८ पृष्ठ १२५ से १२७ तक मार्गशिर संवत् १९४० ।

‡ जड़भरत एक पूर्ण योगी और महर्षि का नाम है।

× ऐण्ड्रो जैकसन डेविस।

मय नियमानुसार होरहा है कभी न होता । योगविद्या जिसमें बिजली से बढ़कर आत्मा की शक्तियां दिखाई देती हैं यद्यपि विचित्र और विलक्षण है तथापि विद्युत् विद्या के समान नियत सिद्धान्तों पर निर्भर है । यही योग यदि किसी विद्यालोलुप का व-ड्याई को लेशमात्र भी आजाय तो वह लोगों को कौतुक (तमाशे) दिखाने का यत्न करेगा और इस विद्या का ठेकेदार बनकर लोगों की सम्पत्ति छीनना चाहेगा । वही योग यदि किसी विद्याप्रिय मनुष्य के पास हो तो वह लोगों को इस विद्या की प्राप्ति के उपाय और क्रियायें सिखलावेगा न कि लोगों को आश्चर्य में डालने के लिये कौतुक की रीति पर अपनी सिद्धियां दिखावेगा और न केवल नाम के लिये एक सच्ची विद्या के प्रचार को रोकेगा । कौतुक और अनुभव में वही भेद है जो कि खेल और साधन में है । प्रोफ़ेसर विद्यार्थी को अनेक साधनों से बिजली की शक्ति का अनुभव कराते हैं किन्तु बाज़ार में पसे या नाम के लिये या खेल की रीति पर बिजली की शक्ति को दिखानेवाला बाज़ीगर है । प्रोफ़ेसर यदि स्वतन्त्र है तो बाज़ीगर परन्तत्र । प्रोफ़ेसर विद्यावृद्धि के लिये योग्यपात्र में दान करता है परन्तु बाज़ीगर स्वार्थ के लिये स्वांग भर कर दिखाता है । उपयोग का दूसरा नाम साधन और कौतुक का दूसरा नाम खेल है । उपयोग अधिकारी पुरुषों को विद्या सिखाता है परन्तु कौतुक हँसी ठट्टा और समय को व्यर्थ खोने के लिये दिखाया जाता है । प्रयोग पात्र के सामने किया जाता है पर कौतुक में यह नियम नहीं । "क" "ख" पढ़नेवाले विद्यार्थी को प्राण और रयि (आकर्षण और उत्सर्जन) विद्युत् भेदों के समझाने से क्या लाभ ? किन्तु बुद्धिमान् योग्य विद्यार्थी ही इनके तत्त्व को समझ सकता है, कौतुक में योग्य अयोग्य पात्र कुपात्र का विचार नहीं है । उपयोग से विद्या की प्राप्ति अभीष्ट है विपरीत उसके कौतुक से वाह वाह और बहुत अच्छा इन शब्दों के सिवाय और कुछ सिद्धि नहीं होती । हिमालय या आबू के सच्चे योगी तमाशा दिखाते नहीं फिरते किन्तु अधिकारी स्वयं उनके पास जाकर साधनों के द्वारा योगविद्या सीख सकते हैं । स्वामी दयानन्द योगविद्या के आचार्य थे न कि बाज़ीगर । वह योगविद्या की वृद्धि चाहते थे और इसलिये अधिकारियों को ढूंढते थे । रुड़की में जब किसी आर्य सज्जन ने उनसे योगविद्या की महिमा सुनकर इस विद्या को सीखना चाहा तो उन्होंने तो जो उत्तर दिया उसका आशय यह था कि पहिले इस विद्या के अधिकारी बनलो पीछे सीख लेना । रुड़की में तो उस आर्य सज्जन ने सीखने की रुचि प्रकट की थी, परन्तु अन्य स्थानों में कोई विरला ही जिज्ञासु मिलता था, हां योगसिद्धि का कौतुक देखनेवाले सर्वत्र

अधिकता से मिलते थे। स्वामीजी कभी कौतुक की रीति पर दिखाने के लिये इस विद्या का आडम्बर रखनेवाले न थे। दो चार पुरुषों ने जिन्होंने साधन द्वारा इस विद्या को सीखना चाहा था और जो अधिकारी थे, उनको उनकी योग्यता के अनुसार स्वामीजी ने योगक्रिया सिखलाई थी, परन्तु किसी की अभ्यर्थना पर इसका कौतुक नहीं दिखाया। एकबार सेएट साहब ने स्वामीजी से कहा कि हमें कुछ योग की सिद्धियां सिखाओ तो उन्होंने अस्वीकार किया जैसा कि उनके निम्नलिखित पत्र से विदित होता है:—

जो मैंने सेएट साहब से कहा था वह ठीक है, क्योंकि मैं इन इन्द्रजाल की बातों को देखना दिखाना उचित नहीं समझता, चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से। क्योंकि योग का अभ्यास किये विना किसी को भी उस का महत्त्व वा उसमें सच्चा प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन सन्देह और आश्चर्य में पड़कर उस आडम्बरी की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ कौतुक देखने को सब चाहते हैं * और उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते, जैसे सेएट साहब को मैंने न दिखलाया और न दिखलाना चाहता हूं, चाहे वे प्रसन्न रहें या अप्रसन्न, क्योंकि जो मैं इसमें प्रवृत्त होजाऊं तो सब मूर्ख और पण्डित मुझसे यही कहेंगे कि हमको भी कुछ योग की आश्चर्यमय सिद्धियां दिखलाइये जैसे अमुक को आपने दिखलाया। वैसी संसार की कौतुकलीला मेरे साथ भी लगजाती जैसी मैडम एच. पी. ब्लवस्की के पीछे लगी हुई है। अब जो कोई इनकी विद्या व धर्मात्मतापन की बातें हैं कि जिनसे मनुष्यों की आत्मा पवित्र हो आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं, उनके पूछने और ग्रहण करने से दूर रहते हैं, किन्तु जो कोई आता है वह यही कहता है कि मैडम साहब! आप हमको भी कुछ तमाशा दिखलाइये। इत्यादि कारणों से इन बातों में प्रवृत्ति नहीं करता न कराता हूं, किन्तु कोई चाहे तो उसको योगरीति सिखा सकता हूं कि जिसके अनुष्ठान करने से वह स्वयंसिद्धि को प्राप्त हो सकता है।

जिस प्रकार विद्या शक्ति है उसी प्रकार योग भी आत्मिक शक्ति है, यदि कोई बिजली की विद्या का उपयोग चोरी के लिये करने लगे तो विद्या का कुछ दोष नहीं किन्तु दोष उसके अनुचित उपयोग करनेवाले का है। परन्तु पूर्ण वैद्य कभी बिजली की विद्या को किसी की हानि अथवा तुच्छकार्य की सिद्धि के लिये नहीं

* यह पत्र १४ जुलाई सन् १८८० ई० को स्वामीजी ने कर्नल आलकट को लिखा था।

लगाता, इसी प्रकार योगविद्या से योगी लोग ईश्वर का दर्शन करते हैं न कि उसको तुच्छ बातों में लगाकर उसका अनुचित प्रयोग । किन्तु जो विद्या का अनुचित उपयोग करते हैं, समझना चाहिये कि वे पूरे विद्वान् नहीं । यूरोप और अमेरिका में योगविद्या का एक तुच्छ अंश जाननेवाले स्प्रिच्यूलिस्ट लोगों ने पाखण्ड का एक तूफ़ान उठा रक्खा है । मूर्खों को बतलाते हैं कि मरे हुये जीव हमारी इच्छानुसार हमारे मन में प्रेरणा करने को आते हैं और इस प्रकार के अनेक दम्भ रचकर लोगों की गांठ कतरते हैं । इन स्प्रिच्यूलिस्ट लोगों की ठगलीला की पोल * अमेरिका के एंड्रो जैकसन डेविस ने भले प्रकार से खोलकर दिखाई है । प्रत्येक बुद्धिमान् मैस्मरेजम और स्प्रिच्यूलिज़म के ठगों से सावधान हो सकता है यदि वह अपनी बुद्धि को काम में लावे । जो योगविद्या का तमाशा दिखलाते हैं वे योगी नहीं किन्तु दुकानदार हैं, इन दुकानदारों से बचकर हमें अधिकारी बनकर सच्चे योगियों का अन्वेषण करना चाहिये।

संसार में यह बात प्रसिद्ध हो रही है कि योगी जो चाहे सो कर सकते हैं, सृष्टिनियमों को तोड़ना योगियों के लिये कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु महर्षि स्पष्ट शब्दों में योग का महत्त्व दिखलाते हुये इस बात का इस प्रकार खण्डन करते हैं:—

जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तो साधनों से सिद्ध होनेवाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत् शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते ? इनके विना जीव साधन नहीं कर सकता, जब साधन न होते तो सिद्ध कहां से होता ? जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होजावे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है जिसमें अनन्त सिद्धि हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता । क्योंकि जीव का परमावधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है, अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कदापि नहीं हो सकता । देखो कोई भी आजतक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम को बदलनेहारा नहीं हुआ है और न होगा, जैसा अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का प्रबन्ध किया है इसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता, जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता † ।

जहां स्वामीजी ने अपने ग्रन्थों में अनेक विद्याओं का वर्णन किया है वहां उन्होंने योगविद्या का भी वर्णन किया है । योग से आत्मबल किस प्रकार बढ़जाता है, इसको निम्नलिखित वचन दर्शा रहे हैं:—

---

* देखो पुस्तक "दी फानटीन" पृ० २०६ से २२० तक ।

† सत्यार्थप्रकाश आठवां समुल्लास पृष्ठ २१६ ।

" हे जगदीश्वर ! जिसमें सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के व्यवहारों को जानते, जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलकर सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है, जिसमें ज्ञान क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं, वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर विघ्न आदि क्लेशों से पृथक् रहे " * ।

वेदभाष्यभूमिका के उपासना विषय में योगशास्त्र के सूत्रों की व्याख्या करते हुये महर्षि योग के परमबल की आचार्यवत् उत्तमता दर्शा रहे हैं । प्रतिमापूजन वाली लघु पुस्तक में महर्षि ने योगशास्त्र के कई सूत्रों का आशय दिखाया है जो कि वास्तव में पढ़ने से ही सम्बन्ध रखता है, उदाहरण की रीति पर हम उस पुस्तक में से निम्नलिखित लेख उद्धृत करते हैं:—

इत्यादिक सूत्रों से यह प्रसिद्ध जाना जाता है कि धारणा आदि तीन अङ्ग आभ्यन्तर के हैं, सो हृदय में ही योगी परमाणु पर्य्यन्त जो पदार्थ हैं, उनको योग ज्ञान से जानता है, बाहर के पदार्थों से किञ्चिन्मात्र भी ध्यान में सम्बन्ध योगी नहीं रखता, किन्तु आत्मा से ही ध्यान का सम्बन्ध है और से नहीं, इस विषय में जो कोई अन्यथा कहे सो उसका कहना सब सज्जन लोग मिथ्या ही जानें । क्योंकि जब योगी चित्तवृत्तियों को निरुद्ध करता है, बाहर और भीतर से उसी समय द्रष्टा जो आत्मा है उस चेतनस्वरूप में ही स्थित होजाता है अन्यत्र नहीं † ।

निम्नलिखित वचन उनके एक पत्र में, जो कि उन्होंने मैडम साहबा को लिखा था, पाये जाते हैं, जिससे विदित होता है कि योग की परमविद्या इस समय भी आर्यावर्त्त में विद्यमान है ।

" जो सत्यधर्म, सत्यविद्या और ठीक २ सुधार की और परमयोग आदि की बातें सदा से जैसी आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों और वेदादि शास्त्रों में थीं और हैं, वैसी कहीं न थीं और न हैं । अब विचारिये कि थियोसोफ़िस्टों को एतद्देशनिवासियों के मत में मिलना चाहिये किन्तु आर्यावर्त्तियों को थियासोफ़िस्ट होना चाहिये " ।

निम्नलिखित वचन इस पत्र में पाये जाते हैं जो उन्होंने कर्नल साहब को लिखा

---

* प्रतिमापूजन विचार अर्थात् स्वामीजी और ताराचरण तर्करत्न का शास्त्रार्थ पृष्ठ १९ से १८ तक।

† यहां पृष्ठ २०८ का अन्तिम नोट देखो और उसके स्थान में निम्नलिखित नोट समझो:—
सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास पृष्ठ १८४ ।

था, जिनसे विदित होता है कि वह ऋषियों के समान निष्कामवृत्ति से कर्म करते थे *।

" मैं अपने सामर्थ्य के अनुसार वेद का उपदेश करता हूं, सिवाय उपदेशक के और मैं कुछ अधिकार नहीं चाहता, तुम मुझको कहीं सभासद् लिखदेते हो कहीं कुछ लिखदेते हो। मैं कुछ बड़ाई और प्रतिष्ठा नहीं चाहता और जो मैं चाहता हूं वह बहुत बड़ा काम है। सो आशा है कि ईश्वर की दया और सज्जन तथा विद्वानों की सहायता से कृतकृत्य हूंगा "। " चाहे कोई हो जबतक मैं न्यायाचरण देखता हूं मेल करता हूं और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है फिर उससे मेल नहीं करता, इसमें हरिश्चन्द्र हो वा अन्य कोई हो "।

गंगा के तट पर स्वामीजी का मगरमच्छ के पास निर्भय बैठे रहना बतला रहा है कि उन्होंने अहिंसा सिद्ध करली थी। उनके जीवनचरित्र में इस बात के पुष्ट और पर्याप्त प्रमाण विद्यमान हैं कि वे पूर्ण योगी थे। मृत्यु के भय को योगबल से काटने का दृष्टान्त अपनी मौत से देना, पूर्ण योगी होने पर सिद्धियां दिखाने और कौतुक रचने से भागना, सत्यार्थप्रकाश के सप्तम समुल्लास में ईश्वर को प्रत्यक्ष प्रमाण से देखने की विधि दर्शाना इत्यादिक अनेक बातें उनके परमयोगी होने का बोधन करा रही हैं। पूर्णयोगी और पूर्ण ब्रह्मचारी होने के कारण ही वे समस्त विद्याओं के मर्मज्ञ थे। भ्रान्तिनिवारण में उनके यह वचन कि " मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त, अनुमान से लगभग तीन हज़ार ग्रन्थों को मानता हूं " बतला रहे हैं कि उनका बोध कैसा विशाल और गम्भीर था? जब वे तीन हज़ार के लगभग प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं तो आश्चर्य नहीं कि उन्होंने उससे दुगुने ग्रन्थ पढ़े हों। यही नहीं कि वे व्याकरण के पण्डित थे, किन्तु ज्योतिष, गणित, कविता, पदार्थविद्या और आयुर्वेद आदि सर्व विद्याओं के ज्ञाता और तद्विषयक उच्च से उच्च संस्कृत के प्रामाणिक ग्रन्थ पढ़े हुए थे †। कोई मनुष्य यथार्थ रीति से पूर्ण विद्वान् हुये विना वेदों का भाष्य करने के लिये समर्थ नहीं हो सकता और जब उन्होंने ऋषियों की रीति पर वेदों का भाष्य किया तो निस्सन्देह वह पृथिवी से लेकर ईश्वर, पर्य्यन्त सर्वविद्याओं के मूल सिद्धान्तों को योगदृष्टि से निर्भ्रान्त जानते थे। यदि मिस्टर हरबर्ट स्पेन्सर फ़िलासफर है तो क्या वह वर्तमान सायन्स के सिद्धान्तों से अपरिचित है? यदि मनुष्यश्रेणी के फ़िलासफर के लिये सम्पूर्ण विद्याओं के तत्त्व का

* यह पत्र १६ मार्च सन् १८७७ ई० को लिखा था।

† स्वामीजी अंगरेज़ी फ़ार्सी आदि बिलकुल नहीं पढ़े हुए थे।

जानना आवश्यक है तो क्या पूर्ण ब्रह्मचारी और पूर्ण योगी के लिये सर्वविद्याओं का निर्भ्रान्त जानना कठिन है? हम उनको ज्ञान, कर्म और उपासना के शिखर पर बैठा हुआ पाते हैं। संसार उनके चरित्र में ऋषि शब्द की परिभाषा पढ़ रहा है, पूर्ण उन्नत आत्मा पूर्ण उन्नत शरीर के साधन से परोपकार करता हुआ उनके दृष्टान्त से दृष्टिगोचर होरहा है। उनकी उच्चदशा को देखते हुये प्रश्न उठता है कि वे किन साधनों से ऐसी उच्चावस्था को प्राप्त हुये? तो उनका जीवनचरित्र उत्तर देता है कि पूर्णब्रह्मचर्य और पूर्णयोग से।

मृत्युञ्जय * की मृत्युपर यूरोप और अमेरिका के प्रतिनिधि † का संशय मिटाना।

स्वामीजी ने जिन सार्वजनिक वैदिकसिद्धान्तों का प्रचार और उपदेश किया, उस उपदेश ने जहां सर्वसाधारण और संस्कृतज्ञों को आर्य बनाया वहां उसने कई अङ्गरेज़ी के विद्वानों को भी आर्य बनादिया। उनके जीवन में ही अनेक पुरुष आर्यधर्म के महत्व को समझ गये थे, परन्तु मृत्युञ्जय की मौत का पण्डित गुरुदत्त से अङ्गरेज़ी सायन्स के पूर्ण विद्वान् की संशयात्मिक काया को बिन बोले पलटा देना अत्यन्त आश्चर्यदायक बात है। पाश्चात्यविद्या में प्रवीण होने से यदि हम पण्डित गुरुदत्त एम. ए. को यूरोप अमेरिका का प्रतिनिधि कहें तो अनुचित न होगा। वह जो रात दिन मिल, हक्सले, टिण्डल, डार्विन, स्पेन्सर आदि अनेक यूरोपियन विद्वानों के ग्रन्थों को विचारपूर्वक पढ़ने से उसके भावों को हृदय में धारण किये हुये था, उसको योगिराज की मृत्यु पर ही इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिला कि किस प्रकार एक सच्चा आस्तिक और पूर्ण योगी मृत्यु के भय से रहित होकर ईश्वर उपासना के परमबल से क्लेश की जड़ को काटता हुआ आनन्द में मग्न होकर परलोकगमन करता है। इस अद्भुत मृत्यु ने पं० गुरुदत्त को ईश्वर की सत्ता का न केवल प्रमाण ही दिया किन्तु अनुभव भी करा दिया। इसी मृत्यु ने उस प्रतिनिधि को स्पष्ट जतला दिया कि योगी ही मृत्यु को जीत सकते हैं उस वेदरूप सूर्य्य के प्रकाश का, जिसका उपदेश मृत्युञ्जय अपने जीवन में करता था, पण्डितजी को महत्त्व दिखलाकर उनके मुंह में कहलादिया कि "वर्त्तमान पश्चिमीय सायन्स (विज्ञान)

* मृत्युञ्जय = मौत को जीतनेवाला अर्थात् स्वामी दयानन्द सरस्वती।

† प्रतिनिधि = स्थानापन्न।

की जहां समाप्ति होती है वहां वेदविद्या का आरम्भ होता है" । इसी घटना ने संसार को प्रत्यक्ष दिखा दिया कि वेदों की महती विद्या को ग्रहण करने के लिये किस प्रकार अनेक विद्याओं में प्रवीण एम० ए० विद्यार्थी बनता है । हमें यह नहीं समझना चाहिये कि पं० गुरुदत्त को ऋषि की मौत ने पूर्ण आर्य्य बना दिया, किन्तु गम्भीर दृष्टि से देखें तो यूरोप और अमेरिका के विद्वानों के प्रतिनिधि के संशय मिटा दिये जिसके सूक्ष्म अर्थ यह हैं कि यूरोप और अमेरिका के वैज्ञानिक सिद्धान्तों ने वैदिक सूर्य की शरण ली । यदि ऋषि के प्रकट किये वैदिक सिद्धान्त एक गुरुदत्त के संशय निवृत्त करते हुए उसको शान्ति दे सकते हैं तो इसका आशय यह है कि वैदिक सिद्धान्त यूरोप और अमेरिका की संशयात्मक काया को पलटा देते हुए शान्ति प्रदान कर सकते हैं । यदि कोई भारतनिवासी जो कि पौराणिक मत का अनुयायी हो अङ्गरेज़ी फिलासफ़ी के पढ़ने से पौराणिक भ्रमजाल को अपने मनसे दूर कर देता है तो उसका अर्थ यह है कि अङ्गरेज़ी फिलासफ़ी पुराणों की शिक्षा पर विजय पाती है । इसी प्रकार यदि अङ्गरेज़ी फिलासफ़ी के ज्ञाता सच्चे मन से वैदिक सिद्धान्तों की शरण लेते हैं तो उससे यह अभिप्राय निकालना कि वैदिक सिद्धान्त पश्चिमीय सिद्धान्तों पर विजय पाते हैं, कुछ कठिन नहीं । यदि पश्चिमीय विज्ञान और साहित्य के विद्वान् पं० गुरुदत्त ने वेदों की शरण ली तो इसका स्पष्ट आशय है कि यूरोप और अमेरिका ने वेदों का आश्रय लिया ।

महर्षि के उद्देश्य पर अमेरिका के एक विद्वान् की निष्पक्ष सम्मति

प्रेम से चित्त को आकर्षण करनेवाले परोपकारी की मृत्यु के समाचार सुनकर कौन पुरुष था जो कि सचमुच रुधिर के आंसू न बहाये हों । जिन लोगों ने उनके दर्शन किये या उनका उपदेश सुना या उनके रचित ग्रन्थ देखे थे, वे उनकी मृत्यु का समाचार सुनने पर आश्चर्य और शोक के समुद्र में डूब रहे थे । पांच सहस्र वर्ष के पश्चात् पृथिवी की पुरानी राजधानी आर्यावर्त्त को महर्षि के उत्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, परन्तु कर्मगति ने इस सौभाग्य को छीन लिया । कहां बूढ़ा भारतवर्ष अपने सुपुत्र के यश को सुनकर प्रफुल्लित होरहा था और कहां उसको उसके वियोग का दिन देखना पड़ा । महर्षि की मृत्यु कोई साधारण मृत्यु न थी, चारों ओर से तार और शोकपत्र उद्वेग से भरे हुये, अजमेर में पहुंच रहे थे । इन तारों और पत्रों की बहुतायत उस शोक के बाहुल्य को प्रकट करती थी, जो कि भारतसन्तान ने उनकी

मृत्यु पर अनुभव किया था। देशहितैषी अजमेर ने लिखा था कि हमारे पास इतने शोकपत्र और तारों की भरमार हुई है कि यदि हम उनको वर्ष भर तक अपने पत्र में मुद्रित किये जावें तो भी समाप्त न हों *। यहां के सिगनेलर वारम्बार यही कहते थे कि ऐसे कौन दयानन्दसरस्वतीजी हैं जिनके इतने तारों के मारे हमको एक क्षणभर का भी अवकाश नहीं मिलता, इतने तार तो कभी लाट साहब के आने पर भी नहीं आते। "थियोसोफ़िस्ट" पत्र ने उनके परलोकगमन की खबर सुनकर यह लेख प्रकाशित किया:—

"हमारे पत्रप्रेरक आश्वर्य में हैं कि क्या स्वामी दयानन्द जैसे योगी को, जिसमें कि योगविद्या की शक्तियें विद्यमान थीं, यह बात विदित न थी कि उनकी मृत्यु से भारतवर्ष को बड़ी हानि पहुंचेगी, क्या वह योगी नहीं थे? क्या वह महर्षि नहीं थे? हम शपथपूर्वक कहते हैं कि स्वामीजी को अपनी मृत्यु का ज्ञान दो वर्ष पहिले ही से था। उनके अन्तिम शिक्षापत्र (वसीयतनामे) की दो प्रतिलिपि जो कि उन्होंने कर्नल आलकट और मुझ सम्पादक के पास भेजी (ये दो लिपियां हमारे पास उनके पूर्व मित्रभाव का स्मारक हैं) इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। उन्होंने हम से मेरठ में कईवार कहा कि हम सन् १८८४ ई० को नहीं देखेंगे"।

प्रसंगवश हम यहां पर उन समाचारपत्रों के नाम प्रकाशित करते हैं कि जिन्होंने स्वामीजी की मृत्यु पर अपनी पूरी २ सहानुभूति और शोक प्रकट किया था:-

देशहितैषी अजमेर, बङ्गवासी, हिन्दीप्रदीप प्रयाग, भारतबन्धु अलीगढ़, सारसुधानिधि कलकत्ता, भारतमित्र कलकत्ता, ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका लाहोर, धर्मदिवाकर कलकत्ता, खत्रीहितकारी बनारस, आर्य्यदर्पण, आर्यसमाचार, पताका, ट्रिब्यून लाहोर, इण्डियन इम्पायर कलकत्ता, इण्डियन क्रानिकल कलकत्ता, हिन्दू मदरास, टाइम्स पंजाब रावलपिण्डी, बङ्गाली कलकत्ता, हिन्दू पेट्रियट कलकत्ता, पायोनियर इलाहाबाद, सिविल एण्ड मिलिटरी गज़ट लाहोर, थियासोफ़िस्ट, इण्डियन मिरर कलकत्ता, गुजरातमित्र सूरत, आर्य्यमेगज़ीन, आर्य्यपत्रिका, गुजराती, सुराष्ट्र दर्पण राजपूताना गज़ट अजमेर, अंजुमन पंजाब लाहोर, कोहनूर लाहोर, विक्टोरिया पेपर स्यालकोट, कैसरी जालन्धर, आफताप पंजाब, देशोपकारक इत्यादि।

अनेक छन्दोवित् कवियों ने श्लोक, कवित्त, दोहे, छन्द, चौपाई और लावनी

* देशहितैषी मासिकपत्र अजमेर खण्ड २। अंक ८। पृष्ठ १७॥

आदि उनकी मृत्यु पर बनाईं, परन्तु सब में उत्तम चौ० नवलसिंहजी की वह प्रसिद्ध लावनी है जिसकी टेक निम्नलिखित है:—

"दयानन्द आनन्द कन्द भये पाखण्डिन के मतटारन।
हुये जगत विख्यात चहुंदिशि परमारथी तरनतारन" ॥ *

मोनियर विलियम्स व मैक्समूलर से कई विदेशियों ने स्वामीजी और उनके उद्देश्य के विषय में अपनी सम्मति प्रकट की किन्तु विदेशियों के लेखों में सब से अधिक निष्पक्ष सम्मति अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान् एण्ड्रो जैक्सन डेविस की है जिसको उक्त महाशय ने अपनी पुस्तक में † लिखा है और जिसका अनुवाद निम्नलिखित है:—

अमेरिका के परम विद्वान् एण्ड्रो जैक्सन डेविस की सम्मति

"मुझे एक आग दिखाई पड़ती है जोकि सर्वत्र फैली हुई है अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष को जलानेवाली है और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कररही है अमेरिका के चीतल मैदानों, अफरीका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों और यूरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इस सबको जलानेवाली और सबको इकट्ठा करनेवाली आग की ज्वालायें दिखाई देती हैं। इसका चर्चा निम्नस्थ देशों से उठा है, अपने सुख और उन्नति के लिये इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्वलित किया है। पृथिवी पर मनुष्य ही एक ऐसी व्यक्ति है जो आग को जलाकर उसे स्थायी बना सकता है, जोकि पार्थिवसृष्टि में वागीश (नातिक्र) भी यही है, अतएव अपने घरों में नारकीय अग्नि भड़काने में सब से प्रथम है। हां प्रोमीथस की तरह नारकीय घरों को प्रेम से पवित्र और बुद्धि से प्रकाशित करनेवाले ईश्वरीय अग्नि को लाने के लिये भी यही अग्रसर है। इस अपरिमित अग्नि को देखकर जो निःसंन्देह राज्यों, साम्राज्यों और संसार भर के प्रबन्ध और नीति के दोषों को पिघला डालेगी, मैं अत्यन्त आनन्दित होकर एक उत्साहमय जीवन व्यतीत कर रहा हूं। सब ऊंचे २ पहाड़ जल उठेंगे, घाटियों के रमणीय नगर भुन जायेंगे, प्यारे घर और प्रेमपूर्ण हृदय साथ २ पिघलेंगे, पाप पुण्य संयुक्त होकर यों अन्तर्हित होंगे, जैसे सूर्य की सुनहरी किरणों में ओस।

* देखो चौ० नवलसिंहकृत सभाप्रसन्न।
† देखो दी, एरब्र दी वेकी पृ० ३८३ एण्ड्रो जैक्सन डेविस रचित।

असीम उन्नति की विद्युत् से मनुष्य का हृदय हिलरहा है, आज उसकी केवल चिनगारियां आकाश की ओर उड़ती हैं, वक्ताओं, कवियों और ग्रन्थनिर्माताओं की शिक्षाओं में इधर उधर ज्वालायें दीख पड़ती हैं।

यह आग सनातन आर्य्यधर्म को स्वाभाविक पवित्रदशा में लाने के लिये एक भट्टी में थी जिसे आर्यसमाज कहते हैं। यह आग भारतवर्ष के एक परमयोगी दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रकाशमान हुई थी। हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिये चारों ओर वेग से दौड़े, परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिसका इसके प्रकाशक दयानन्द को ध्यान भी न था और ईसाइयों ने भी जिनके धर्म की आग और पवित्र दीपक पहिले पूर्व में ही प्रकाशित हुये थे, एशिया के इस नये प्रकाश के बुझाने में हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैलगई। सम्पूर्ण दोषों का संघट्ट नित्य की शुद्ध करनेवाली भट्टी में जलकर भस्म होजायगा, यहां तक कि रोग के स्थान में आरोग्यता, झूठे विश्वास की जगह तर्क, पाप के स्थान में पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, वैर की जगह समता, नरक के स्थान में स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, भूत प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य होजायगा। मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूं। जब यह अग्नि सुन्दर पृथिवी को नवजीवन प्रदान करेगी तो सार्वत्रिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा।

आर्यसमाज ही महर्षि का स्मारक है

पांच सहस्र वर्ष हुये कि पाताल देशनिवासी आर्यावर्त्त निवासियों से सम्बन्ध (नाते रिश्ते) करते थे, परन्तु जब अविद्यान्धकार के बढ़ने पर लोगों ने जलयात्रा करनी छोड़दी तो अमेरिका वाले आर्यावर्त्त और यूरोप आदि देशों को और इन देशों के निवासी अमेरिका वालों को भूल गये और ऐसे अन्धकार में पड़े कि एक दूसरे की सत्ता (स्थिति) से भी अज्ञ होगये, परन्तु उस अन्धकार में पुरुषार्थी "कोलम्बस" ने प्राचीन यूनानियों के पथ का अनुसरण करके अमेरिका का पता लगाया। यद्यपि "कोलम्बस" ने अमेरिका को बनाया नहीं किन्तु भूले हुवों को बतलाया है तो भी आज "कोलम्बस" के नाम के साथ अमेरिका सम्बन्ध रखता है और अमेरिका का नाम लेते हुये तत्काल "कोलम्बस" का स्मरण हो आता है।

पांच सहस्र वर्ष पहिले आर्य्यधर्मसभायें (आर्यसमाज) पृथिवी पर सब जगह

थीं, क्योंकि वेदों में आर्यधर्मसभा के स्थापन करने की विधि है। परन्तु समय आया जब कि लोग "आर्य" नाम के साथ "आर्यसमाज" को भूल गये, आज कैसा शुभ समय है कि महर्षि दयानन्द के उपकार से हम अपने आर्य नाम को पाते हुये आर्यसमाज को विद्यमान देखते हैं। मुसलमान, ईसाई, नास्तिक, जैनी, पौराणिक आदि किसी के भी सन्मुख आप "आर्यसमाज" का नाम लेदीजिये वह सुनते ही झठ आपको "दयानन्द" का नाम सुनादेगा। यदि कोई अमेरिका से "कोलम्बस" के नाम को जुदा नहीं कर सकता तो क्या कोई आर्यसमाज से उसके पुनर्जन्मदाता "स्वामी दयानन्द" का नाम अलग कर सकता है? यदि आर्यसमाज का नाम लेते ही "स्वामी दयानन्द" का स्मरण होआता है तो वास्तव में आर्यसमाज से बढ़कर कोई स्वामीजी का स्मारक चिह्न नहीं हो सकता।

अमेरिका जैसे दूरदेशों में चले जाओ, वहां भी आर्यसमाज के साथ स्वामी दयानन्द और स्वामी दयानन्द के साथ आर्यसमाज का नाम जुटा हुआ पाओगे। अमेरिका के विद्वद्वर शिरोमणि "डेविस" अपने लेख में स्वामी दयानन्द से आर्यसमाज को पृथक् नहीं कर सकते। जहां वह स्वामीजी को शुद्ध अग्नि के जलानेवाले की पदवी प्रदान करते हैं उसके साथ ही वह आर्यसमाज को उस अग्नि की भट्टी बतलाते हैं। यदि अमेरिका में बैठे थियासोफ़िस्ट स्वामीजी को अपना सहायक बनाते हैं तो वह थियासोफिकलसोसाइटी को स्वामी दयानन्द के "आर्यसमाज" की शाखा साथ ही बतलाते हैं। मैक्समूलर अपने पुस्तक * में स्वयं यह प्रश्न उठाता है कि "दयानन्द सरस्वती कौन था?" और फिर आप ही उत्तर देता है कि "दयानन्द सरस्वती आर्य्यसमाज का संस्थापक और आचार्य था" संसार में प्रायः लोग कुयें, तालाब, सराय और मकान बनाते हैं इसलिये कि ईंट और पत्थर उनके नाम को स्मरण कराते रहें। जो वस्तु किसी के नाम को स्मरण करासके वह उसकी स्मारक समझी जाती है और इस दशा में आर्य्यसमाज से बढ़कर स्वामी दयानन्द का कोई स्मारक नहीं हो सकता।

यह नियम नहीं कि जो वस्तु किसी के नाम को किसी प्रकार स्मरण करासके वही उसका स्मारक समझी जावे किन्तु वास्तविक स्मारक वह है जो किसी महात्मा के उद्देश्य और सिद्धान्त के प्रचार करने से उसका स्मरण करासके। स्मारक से केवल

---

* बायोग्राफिकल ऐसेज़ पृष्ठ १८३।

किसी उद्देश्य का साधारणतः नाम लेदेना ही पर्याप्त नहीं होता, किन्तु विशेषरूप से उस मुख्य कार्य का प्रचार करना स्मारक का मुख्य अभिप्राय होता है, जिस काम को कि कोई महापुरुष अपने जीवन में करता रहा हो। यदि कोई "प्रोफेसर टिण्डल" के नाम पर एक सदाव्रत खोलदे तो वह सदाव्रत साधारण पुरुषों की दृष्टि में शायद "टिण्डल" का स्मारक हो और उसमें टिण्डल की मूर्त्ति भी स्थापित कीगई हो, परन्तु विचारशील पुरुष उसे टिण्डल का स्मारक नहीं कह सकते। इसमें सन्देह नहीं कि सदाव्रत खोलना एक अच्छा काम है परन्तु यह काम विज्ञान (सायन्स) के प्रचारक "टिण्डल" के उद्देश्य से सम्बन्ध न रखता हुआ उसका स्मारक नहीं कहला सकता। स्मारकचिह्न वह होना चाहिये कि जो अपने उद्देश्य द्वारा उसका बोधन करा सके जिसका कि वह स्मारक है।

निदान स्मारक में उस महापुरुष का उद्देश्य पूर्ण होना चाहिये। यदि कोई ऐसी शाला हो जिसमें यह शिक्षा दीजावे कि मनुष्य शनैः २ बन्दर से मनुष्य के रूप में परिणित होता गया तो निःसन्देह यह शाला डार्विन की यथार्थ स्मारक होगी। किसी महात्मा के उद्देश्य के विरुद्ध या उद्देश्य को पूर्ण न करनेवाला स्मारक उसके जीवन को कलङ्क लगा सकता है। जैसे यदि कोई गिर्जा "ब्रैडला" के नाम पर बनाया जावे तो साधारण लोगों में वह गिर्जा ब्रैडला का स्मारक कहला सकता है, किन्तु यदि विचार से देखें तो यह स्मारक जो कि "ब्रैडला" के उद्देश्य के विरुद्ध है उसको कलङ्कित करनेवाला है। लोग उस शिक्षा को जो कि गिर्जा में दी जावे सुनकर भ्रान्ति से कह सकते हैं कि ब्रैडला भी इसी प्रकार अपने जीवन में बाइबिल का प्रचार करता रहा होगा, किन्तु वह बाइबिल की शिक्षा के अत्यन्त विरुद्ध था। इसी प्रकार यदि कणाद या पतञ्जलि के नाम पर कोई अंग्रेज़ी स्कूल खोल दे तो यह स्कूल कणाद और पतञ्जलि का स्मारक नहीं हो सकता चाहे उसके साथ इन महात्माओं का नाम लगा हो।

किसी महात्मा के उद्देश्य को पूर्ण करता हुआ कोई कार्यालय उस महात्मा का स्मारक कहला सकता है अन्यथा नहीं। यह आवश्यक नहीं कि उस कार्यालय के साथ महात्मा का नाम भी हो। यदि नाम नहीं और उद्देश्य पूर्ण हो रहा है तो संसार बिना संकोच के उसको स्मारक कहता है, जैसे कि आर्य्यसमाज। यद्यपि इसके साथ महर्षि दयानन्द का नाम नहीं लगा हुआ तथापि महर्षि के उद्देश्य को पूर्ण करने से उसका स्मारक बन रहा है। परन्तु दयानन्द प्रेस, दयानन्द अस्पताल, दयानन्द

बाज़ार, दयानन्द स्कूल, दयानन्द साबुन और ऐसी ही अनेक वस्तु, जो कि महर्षि के उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर सकतीं, कभी महर्षि का स्मारकचिह्न कहलाने के योग्य नहीं हो सकतीं, चाहे उनके साथ महर्षि का नाम क्यों न लगा हुआ हो।

स्थूलदर्शी पुरुषों ने संसार के इतिहास में स्थूल पदार्थ स्मारक समझे हैं। यथा यवन (मुसलमान) मदीने को अपने पूर्वजों का स्मारक समझते हैं। ईसाई लोग सूली की मूर्त्ति को अपने गुरु का स्मारक बतलाते हैं। बौद्ध लोग बुद्ध की मूर्त्ति को उसका स्मारक ठहराते हैं। संसार की मूर्ख जातियों के आचार विचार को इकट्ठा किया जावे तो सार यह निकलता है कि वे किसी स्थूल पदार्थ को अपने किसी महात्मा का स्मारकचिह्न बनाते हैं। परन्तु वे स्थूल पदार्थ भी भिन्न २ हैं जो कि उनके विचार में स्मारकचिह्न का काम देते हैं। यही नहीं कि लोग स्मारक के विषय में भूले हुये हैं किन्तु साधारण बातों को भ्रम से कुछ का कुछ समझे हुये हैं। दृष्टान्त के लिये सुरूपता को ही ले लीजिये और देखिये कि किस प्रकार एक दूसरे के विरुद्ध लोगों ने सुरूपता कल्पित करली है। यथा चीनी उस स्त्री को सुरूपा जानते हैं जिसके पांव बहुतही छोटे हों और इस कारण उससे चला ही न जावे। यूरोपियन लोग उस स्त्री को रूपवती मानते हैं जिसकी कमर पतली हो। हबशी लोग उसे रूपवान् बतलाते हैं जिसके होंट उभरे हुये हों। परन्तु वैद्य (डाक्टर) लोग बतलाते हैं कि समता या आरोग्यता का नाम सुरूपता है। ठीक इसी रीति पर संसार ने स्मारक के भिन्न २ आदर्श (पैमाने) घड़ लिये हैं परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि कोई स्थूल पदार्थ किसी चेतन महात्मा का स्मारक नहीं हो सकता यदि मान भी लें कि कोई स्थूल वस्तु किसी महात्मा की स्मृतिप्रवर्त्तक होसकती है तो यह स्मारक बहुत कम हर्ष और लाभ का देनेवाला होगा और इसकी अपेक्षा वह स्मारक जिससे उसके उद्देश्य की पूर्त्ति हो अत्यन्त हर्ष और महा लाभ का देनेवाला सिद्ध होता है। जैसे दो मनुष्य स्वामी दयानन्द का स्मारक बनाते हैं एक तो मूर्तियां बनाकर बेचता है और दूसरा विद्यालय खोलकर ब्रह्मचर्य आश्रम की नींव डालता है। यदि मूर्ति या फोटो लोगों को उनके स्मरण कराने से कोई लाभ पहुंचा सकती है तो यह लाभ उस लाभ की अपेक्षा। जो विद्यालय पहुंचा सकता है। बहुतही तुच्छ समझना चाहिये। विचार कर देखें तो महात्माजन अपने रूप, अपने नाम, अपनी मूर्ति या अपने कुल की बड़ाई बेचने नहीं आते, किन्तु वह उच्च उद्देश्यों का प्रचार करते हुये अपने नाम और शरीर तक का मोह नहीं करते। वह चाहते हैं कि सच्चे

और हितकारी नियमों का पालन करके लोग लाभ उठावें, इसलिये उनका सच्चा स्मारक चिह्न वही होसकता है जो कि उन नियमों या उद्देश्यों की महिमा का लोगों को उनके समान ही बोधन कराता रहे ।

स्मारक किसी उद्देश्य की पूर्त्ति का साधन है इसको हिन्दू पौराणिक लोग भी वाचिक ही नहीं किन्तु कार्मिक रीति पर मानते हैं । यदि वह यह समझते हैं कि उनकी काली देवी रक्त बहानेवाली और हिंसा करनेवाली थी तो वे उसके मन्दिर में (जो उसका स्मारकरूप है) अबतक भी सहस्रों निरपराध प्राणियों के गले काटते हुये अपने इस कर्म से लोगों को इस बात की शिक्षा दे रहे हैं कि हम काली के उद्देश्य को इस मन्दिर में (जो उसका स्मारक है) पूरा कर रहे हैं । इसके अतिरिक्त वैष्णव लोग अपने मन्दिरों में कभी शाक्तिक मत की शिक्षा नहीं देते । जैनी अपने मन्दिरों में, जिनको वे अपने तीर्थंकरों का स्मारक समझते हैं, कभी पुराणों की शिक्षा नहीं देते । बौद्धमन्दिरों में कभी पौराणिक लोगों की मूर्त्तियां नहीं रक्खी जातीं । शङ्कराचार्य के मठों में कभी अद्वैतवाद के विरुद्ध प्रचार नहीं किया जाता । निदान जो स्मारक चिह्न किसी ने किसी महात्मा का मान रक्खा है वह उस स्मारकरूप कार्यालय को उस महात्मा के उद्देश्य के विरुद्ध नहीं चलाता, किन्तु उस स्मारक को उसके उद्देश्य की पूर्त्ति का (चाहे वह उद्देश्य कैसा ही अपवित्र या भ्रामक क्यों न हो) साधन बनाता है । स्वामीजी उस कार्यालय के साथ सम्बन्ध रखते थे । जिससे उनका उद्देश्य पूर्ण होता रहे । यदि वह देखते थे कि कोई स्थापना हमारे उद्देश्य को पूर्ण नहीं करती तो वे स्वयं उसके विरुद्ध और तोड़नेवाले होजाते थे । फ़र्रुखाबाद आदि स्थानों की पाठशालायें इस बात को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं । यद्यपि इन पाठशालाओं में अष्टाध्यायी, महाभाष्य आदि आर्षग्रन्थ उत्तमता से पढ़ाये जाते थे परन्तु जब विद्यार्थी आर्षग्रन्थ पढ़ने पर भी पौराणिक के पौराणिक ही बनकर निकलने लगे तो स्वामीजी ने इन शालाओं को तोड़देना ही उचित समझा, इससे हमें जानना चाहिये कि कोई स्थापना जो कि स्वामीजी के उद्देश्य को पूर्ण करने का साधन नहीं है वह उनकी कभी यादगार कहला नहीं सकती । सम्भव है कि मनुष्य किसी कार्यालय को (जो उनके नाम से प्रसिद्ध है) उनका स्मारक समझले परन्तु इस बात का निश्चय करने के लिये कि यही स्मारक है, मनुष्य को उस कार्यालय के उद्देश्य और कार्यप्रणाली की पड़ताल कर लेनी चाहिये । हम ब्राह्मण का नाम सुनकर किसी व्यक्तिविशेष का आदर करने के लिये उद्यत होजाते हैं परन्तु

उसकी ब्राह्मण संज्ञा को छोड़कर उसके काम की पड़ताल करें तो फिर निश्चय हो सकता है कि यह ब्राह्मण है या नहीं। इसी प्रकार किसी महात्मा के सच्चे स्मारक को जानने के लिये हमें उसके नाम को छोड़कर उस उपदेश और शिक्षा को देखलेना चाहिये जो उसमें दी जावे। इस कथन से यह सिद्ध है कि सच्चा स्मारक किसी उद्देश्य की पूर्त्ति का साधन हुआ करता है और इस तत्त्व को समझते हुये हम पाते हैं कि आर्यसमाज जहां महर्षि के नाम को स्मरण कराने वाला है वहां उनके उद्देश्य की पूर्त्ति का निस्संदेह प्रबल और सब से उत्तम साधन है।

पं० गुरुदत्तजी अपने व्याख्यानों में कहा करते थे कि "ईंट पत्थर पर किसी ऋषि का नाम खुदवाने से उस ऋषि का स्मारक नहीं बन सकता, किन्तु यदि ऋषियों का स्मारक बनाना चाहते हो तो उन उद्देश्यों का प्रचार करके दिखाओ जिनका प्रचार अपने जीवन में वे ऋषि स्वयं करते रहे हैं" स्वामी दयानन्द का स्मारक यही है कि वेद के सिद्धान्तों का संसार में प्रचार होजावे।

यदि स्वामीजी अपना शिक्षापत्र (वसीयतनामा) न छोड़ते तो शायद कोई कह सकता कि हमें स्वामीजी का उद्देश्य विदित नहीं, परन्तु जब उनका वसीयतनामा मौजूद है तो कोई भी ऐसा कहने का साहस नहीं कर सकता। यह वसीयतनामा कह रहा है कि यदि स्वामीजी कुछ काल और जीते तो वे निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अपना समय लगाते—

स्वामीजी का उद्देश्य जो कि वसीयतनामे में लिखा है:—

(१) वेद और वेदाङ्ग आदि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने, पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनाने, छापने छपवाने आदि में।

(२) वैदिकधर्म के उपदेश और शिक्षा के लिये उपदेशकमण्डली नियत करके देश देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में।

(३) आर्य्यावर्त के अनाथ और दीन मनुष्यों की शिक्षा और पालन में।

महर्षि के इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिये आर्यसमाज विद्यमान है, अतएव आर्य्यसमाज के सिवाय कोई भी उसका सच्चा स्मारक नहीं है। आर्यसमाज में सम्मि-

लित होने के लिये स्वयं महर्षि लोगों को बुलारहा है * आर्य्यसमाज ऐसा सच्चा स्मारक है कि इसका बुनियादी पत्थर स्वयं महर्षि ने अपने हाथ से रक्खा है, इस यादगार की चर्चा पृथिवी भर में फैली हुई है। आर्य्यसमाज की वृद्धि से वैदिकधर्म की उन्नति हो सकती है। कभी वह दिन भी आवेगा जब कि भूगोल के सब द्वीपों में आर्य्यसमाजरूपी वृक्ष की शाखायें फैलेंगी। वह दिन आवेगा जब कि हम "उपदेशकमण्डली" की दृढ़ नींव रखने के लिये पुरुषार्थ करते हुये महर्षि की शिक्षा (वसीयत) को पूरा करने से ऋषिसन्तान कहलाने के अधिकारी बनेंगे। स्वामीजी यदि जीवित रहते तो, वे स्वयं इस "उपदेशकमण्डली" को अच्छी पुष्टदशा में करजाते, परन्तु उन्होंने पंडित गौरीशङ्कर शर्म्मा को वैदिकधर्मसभा जयपुर का वैतनिक उपदेशक नियत करके इस महान् कार्य की जड़ आप जमाई थी, अब इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये आर्य्यसमाजों ने वेदप्रचारफण्ड स्थापित किया है ताकि देश २ और नगर २ में वैदिकधर्म का प्रकाश और अविद्यान्धकार का नाश होसके।

यदि कलकत्ते की एसियाटिक सोसाइटी के सभ्यों के † पुरुषार्थ से यूरोप को प्राचीन शास्त्रों के महत्त्व का लेशमात्र परिचय मिला है तो उक्त सोसाइटी से कई गुणा बढ़कर आर्यसामाजिक पुरुषार्थ के द्वारा यूरोप, अमेरिका आदि सब देशों को वेदादि सत्यशास्त्रों की महिमा का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होगा यदि आज पश्चिमीय लोग एसियाटिक सोसाइटी के कृतज्ञ हैं तो कल इससे बढ़कर आर्य्यसमाज और उसके जन्मदाता महर्षि दयानन्द के कृतज्ञ होंगे।

महर्षि की ग्रन्थरचना और वैदिकशिक्षा

स्वामीजी के जीवन के दो भाग हैं, एक वह भाग जिसमें कि अमृत का जिज्ञासु अमृतसिन्धु की खोज में फिरता रहा। दूसरा वह भाग है जिसमें कि अमृतपान करलेने के पश्चात् मनुष्यमात्र को उस अमृत के चखाने का यत्न करता रहा। दोनों भागों में हम उन्हें पुरुषार्थ करते हुये पाते हैं। पहिले भाग में अपने लिये, और दूसरे भाग में औरों के लिये। दोनों भागों में हम साधन देखते हैं, पहिले में अपने

---

* देखो सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ ३८६।

† सर विलियम जॉन्स, वेखकिन्सन, केरी, फारिस्टर और कोलब्रूक आदि एशियाटिक सोसाइटी के सभासद् जिन्होंने कि संस्कृत का पता पश्चिमवालों को दिया है। सायन्स ऑफ् लैंग्वेज पृष्ठ २२०।

लिये, दूसरे में औरों के लिये। दोनों भागों में हम उन्हें यात्रा करते हुये पाते हैं। दोनों भागों में हम उन्हें कष्ट और विघ्नों के जाल में घिरा हुआ पाते हैं। पहिले भाग को यदि बीज कहें तो दूसरा भाग उसका फल है। दोनों भागों में हम उन्हें कृतकार्य होता हुआ देखते हैं। पहिले भाग में यदि उनके साधन ब्रह्मचर्य और योग थे तो दूसरे भाग में हम उनको वाणी और लेख के साधन काम में लाते हुये पाते हैं। यदि पहिले उन्नति के साधन थे तो पिछले प्रचार के साधन हैं।

यदि कोई प्रश्न करे कि महर्षि ने पिछले भाग में वाचिक और लेखबद्ध उपदेश के काम को अपने हाथ में क्यों लिया? क्या इसके सिवाय और कोई उत्तम साधन न थे, तो हम कहेंगे जैसे अपनी उन्नति के ब्रह्मचर्य और योगपूर्ण और अनुपम साधन हैं वैसे ही संसारोन्नतिके लिये वाचिक और लेखबद्ध उपदेश सर्वोत्तम और अद्वितीय साधन हैं। वाचिक उपदेश वह परमोत्तम साधन है जिसको कि प्राचीन समय में आश्रमियों के शिरोमणि संन्यासी लोग ग्रहण किया करते और इस उपदेश बल से सब मनुष्यों का कल्याण किया करते थे। ऋषि लोग जहां वाचिक उपदेश करते थे वहां आवश्यकतानुसार लेखबद्ध उपदेश भी करते रहे हैं। क्या महर्षि पाणिनि की अष्टाध्यायी, महर्षि पतंजलि का योगदर्शन, ब्रह्मवेत्ता ऋषियों की उपनिषदें शतपथ आदि ब्राह्मण, निरुक्त, निघण्टु आदि पुस्तकें उनके लेखबद्ध उपदेश का फल नहीं हैं?।

ऋषि-समय को छोड़कर हम अन्धकार के समय में भी दीपक का प्रकाश फैलाने वालों को इन दो ही साधनों से काम लेते हुये पाते हैं। बुद्ध ने इसी उपदेश के बल से धर्म के साधन संसार में प्रचार किये और आज पचास करोड़ से अधिक मनुष्य उपदेश के महत्त्व का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। शंकर, ईसा, मुहम्मद, डार्विन आदि अनेक पुरुषों ने वाचिक और लेखबद्ध उपदेश से ही काम लिया है। उपदेश के इस महत्त्व को स्वयं महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में इस प्रकार वर्णन किया है:—

"सदुपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है" मैडम साहबा के नाम एक पत्र में उनके इस प्रकार वचन मिलते हैं जिनसे भी उपदेश के महत्त्व का बोधन हो रहा है "हम आर्यों और आर्यसमाजियों को कदापि हानि नहीं होसकती क्योंकि यह बात नवीन नहीं है। हम लोग जब से सृष्टि और वेद का प्रकाश हुआ है, उसी समय से आजपर्यन्त उसी बात को मानते आते हैं क्या हुआ

कि अब थोड़े समय से अपनी अज्ञानता और उत्तम उपदेशकों के विना बहुतसे आर्य्य वेदोक्तमत से कुछ २ विरुद्ध और बहुतसे अनुकूल आचरण भी करते हैं, अब जिसकी प्रसन्नता हो अपनी और सब की उन्नति के लिये इस आर्यसमाज में मिलें" सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में महर्षि लिखते हैं कि:—"इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे, तथापि कुछ २ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अङ्कुर उगे थे, वे बढ़ते २ वृद्ध होगये, जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्य्यावर्त्त में अविद्या फैलकर परस्पर लड़ने झगड़ने लगे, क्योंकि जब उत्तम उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है, फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सदुपदेश करते हैं तब ही अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है"।

बुद्धिमान् कारीगर भुजायंत्र (लीवर) से काम लेनेवाले बड़े भारी बोझों को सुगमता से उठा सकते हैं और लीवर का मूल मनुष्य की भुजा में विद्यमान है। एक फिलासफ़र ने लीवर की विचित्र भारवाहिनी शक्ति का महत्व दिखलाने के लिये कहा था कि मुझे पूरा २ सामान और लीवर देदो मैं पृथिवी को उठा सकता हूं। इस कथन में अत्युक्ति है परन्तु जब हम यह कहैं कि सदुपदेश मनुष्य जाति को ऊपर उठाने का एक निर्दोष और दृढ़ लीवर है तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं ऐसे महान् उपदेशक के लीवर को लिये हुए महर्षि गिरी हुई मनुष्यजाति के उठाने का प्रयत्न करता रहा और कृतकार्य हुआ।

उसके वाचिक उपदेश का फल यदि आर्यसमाज हैं तो लेखबद्ध उपदेश का फल उसके रचितग्रन्थ हैं। वाचिक उपदेश वे अपने जीवन में ही हमें सुना सकते थे, परन्तु उनकी लेखबद्ध रचना आज उनके वाचिक उपदेश के स्थान में काम कर रही है। इस समय लोग उनके वाचिक उपदेश को नहीं सुन सकते परन्तु उनकी रचना को पढ़ सकते हैं। सच पूछो तो उनके ग्रन्थ ही आज हमें उनकी ओर से उपदेश देते हुये स्वस्ति और शान्ति का मार्ग दर्शा रहे हैं। इसके पूर्व कि हम उन सिद्धान्तों का वर्णन करें जिनकी कि उन्होंने अपने ग्रन्थों में शिक्षा दी है यह बतलाना आवश्यक है कि वे सिद्धान्त उनके निज कल्पित या नूतन रचित नहीं हैं, किन्तु प्राचीनता में सृष्टि के समानान्तर और सहयोगी हैं। इन सिद्धान्तों का होना ईश्वरीयज्ञान वेद पर निर्भर है इनका दूसरा नाम वैदिकसत्य सिद्धान्त है। ये वे सच्चे सिद्धान्त हैं जि-

नको कि मनुष्यजाति आदिसृष्टि से महाभारत के समय तक मानती रही है। ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनि तक जितने ऋषि, महर्षि, मुनि महामुनि पृथिवी पर हुये सब निर्विवाद मानते रहे। यही नहीं किन्तु ये वे सत्सिद्धान्त हैं कि जिनको अब भी बुद्धिमान् लोग मान रहे हैं और भविष्यकाल में भी मानेंगे। इन सिद्धान्तों का मूल केवल सत्य पर है। सृष्टिक्रम इनकी सचाई का प्रत्यक्ष प्रमाण है ये किसी जातिविशेष, सम्प्रदायविशेष और व्यक्तिविशेष से सम्बन्ध रखनेवाले मन्तव्य नहीं हैं। ये ईरान, चीन, भारतवर्ष आदि किसी देश की सीमा में बद्ध होनेवाले नियम नहीं हैं और नहीं यह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी, जैनी आदि किसी सम्प्रदायविशेष के मन्तव्य हैं। जैसे संसार के लिये एक ही पवन, एक ही जल, एक ही सूर्य लाभदायक है वैसे ही मनुष्यमात्र के लिये ये एक ही आत्मिक सूर्य के समान हैं। सचाई से कोई विरोध नहीं कर सकता, दो और दो को सब चार ही कहेंगे, सब देशों में लोग सप्ताह के सात दिन और वर्ष के बारह महीने मानते हैं। ठीक इसी प्रकार इन वैदिक सिद्धान्तों का पालन प्रत्येक मनुष्य कर सकता है। आंख सूर्य्य के प्रकाश को ग्रहण करती है आत्मा सचाई का ग्राहक है। वैदिक सचाई प्रकृति की पाठ्य पुस्तक है। इन मन्तव्यों का तत्त्व समझने के लिये प्रत्येक मनुष्य को महर्षि के निम्नलिखित शब्द अवलोकनीय हैं:—

"सर्वतन्त्र सिद्धान्त या मनुष्य का धर्म वह है जिसको कि सदा से सब मानते आये, अब मान रहे हैं और भविष्य में भी मानेंगे। जो कि उसका कोई भी विरोध नहीं कर सकता। इसलिये उसको नित्य और अनादि धर्म कहते हैं। बुद्धिमान् लोग किसी मूर्ख की बात या मत की बहकावट को नहीं मान सकते। सत्यवादी, सत्यकारी, सब के हितैषी और निष्पक्ष विद्वान् जिन सिद्धान्तों को मानते हैं वही सब को मानने योग्य हैं और ऐसे लोग जिनको नहीं मानते वे अमन्तव्य होने से प्रामाणिक नहीं होते। वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक महर्षियों के माने हुये ईश्वर आदि जो सिद्धान्त हैं उनको मैं भी मानता हूं और सब सत्पुरुषों के सम्मुख रखता हूं। मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं जो कि तीनों कालों में सब के लिये समानरूप से मन्तव्य हो। मेरा प्रयोजन कदापि किसी नवीन कल्पित सिद्धान्त या मत चलाने का नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना, मनवाना और झूठ को छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। यदि मैं भी आग्रही होता तो आर्यावर्त के प्रचलित मतों में से किसी एक का पक्ष ले लेता, परन्तु आर्यावर्त या अन्य देशों

में जो अधर्म की बातें हैं उनको ग्रहण और धर्म की बातों का त्याग नहीं करता, न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा काम मनुष्यता से बाहर है। मनुष्य वही है जो विचार से काम लेता हुआ अपने समान ही अन्यों के सुख दुःख और लाभ हानि को समझे, अन्यायी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे। इतना ही नहीं किन्तु अपने पूरे सामर्थ्य से धर्मात्माओं की (चाहे वे कैसे ही दरिद्र, निर्बल और गुणहीन क्यों न हों) रक्षा उन्नति और सहायता करता रहे और (अन्यायी चाहे पृथिवी का राजा, धनवान्, बलवान् और गुणवान् ही क्यों न हो, उसकी हानि, अवनति और उपेक्षा सदा किया करे) अर्थात् जहांतक होसके वहांतक अन्यायाचरण करनेवालों की शक्ति का ह्रास और न्यायाचरण करनेवालों की सहायता सदा करता रहे। इस काम में चाहे उसको कैसा ही कष्ट और दुःख उठाना पड़े चाहे प्राण तक भी चले जावें परन्तु इस मनुष्यता से पृथक् कभी न हो"।

जिन सिद्धान्तों या मन्तव्यों की वह शिक्षा देते रहे उनका दूसरा नाम सर्वतन्त्र सिद्धान्त है, (इनको ही हम वैदिकधर्म कहते हैं)। इन्हीं को स्वामीजी स्वयं मानते और दूसरों को मनवाते थे, इन्हीं का उपदेश वे अपने ग्रन्थों में कर गये हैं। यह जान लेने के पश्चात् कि वह सार्वजनिक धर्म की शिक्षा देते रहें अब हमें दिग्दर्शन की रीति पर उन सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त करना आवश्यक है।

सब से प्रथम उन्होंने संसार को ईश्वर के विषय में वेदोक्त शिक्षा दी

रसना उत्तम अन्न को चखती हुई उसे स्वीकार करती है, परन्तु विष के चखने पर उसको कदापि स्वीकार नहीं करती। आमाशय (मेदा) जहां अन्न को पचाता है वहां विष को वमन या विरेचन के द्वारा अपने से पृथक् करता हुआ अपनी अरुचि प्रकट करता है। कान यदि सुरीले राग को आकर्षण करते हैं तो भयङ्कर शब्द या रुदन से घबराते हैं। नाक यदि सुगन्ध को ग्रहण करती है तो दुर्गंध से बचना चाहती है। प्रत्येक इन्द्रिय अपनी प्राकृतिक दशा में अनुकूल का ग्रहण और प्रतिकूल का त्याग करने के लिये उद्यत है। परन्तु इन इन्द्रियों से बढ़कर एक और प्रधान इन्द्रिय है जिसका नाम बुद्धि है और जो आत्मा को आत्मिक अर्थों के ग्रहण करने या न करने में सदा सहायता देती है। मन्तव्य और सिद्धान्त इसी प्रधानेन्द्रिय के सन्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं। उनमें से जो आत्मा के भोग्य होने के योग्य

होते हैं उनको यह स्वीकार करती और जो उसके लिये विष का प्रभाव उत्पन्न करने वाले हैं, उनको त्याग कर देती है। पांच सहस्र वर्ष से लगातार मनुष्य की इस प्रधान-वृत्ति को घूंस (रिशवत) देने की मतमतान्तरवालों ने चेष्टा की ताकि वह विष को भोजन और भोजन को विष कहवे। सम्प्रदायों के आचार्यों ने इस प्रधानवृत्ति का गला घोटना चाहा और उन के प्रचारकों ने आत्मा की इस भीतरी आंख को फोड़ना चाहा इसलिये कि वे अपने मनघड़न्त मन्तव्यों का विष आत्मा को भोजन के मिष से दे सकें। इस समय संसार में पुरानी, जैनी, किरानी, क़ुरानी, सारे मतवादी सह-मत होकर कह रहे हैं कि धर्म (मत) से बुद्धि का कुछ सम्पर्क नहीं, जिसका अर्थ यह है कि वे आत्मा को बुद्धि की आंख से अन्धा करके अपने मत का प्रकाश दिख-लाना चाहते हैं। तर्क के सामने ठहर नहीं सकते मनुष्य की बुद्धि इन मतों के सिद्धा-न्तों को कदापि स्वीकार नहीं कर सकती। इसके विपरीत वैदिकधर्म तर्क से पुष्ट होता है। वेदों में कोई बात भी ऐसी नहीं जिस को कि मनुष्य की बुद्धि स्वीकार न कर सके। संसारभर में एक वैदिकधर्म ही है जो कि आत्मा की आंख (बुद्धि) को फो-ड़ना नहीं चाहता। महर्षि दयानन्द लिखते हैं कि:–"मैं वेदों में कोई बात बुद्धि विरुद्ध या दोष की नहीं देखता और उन्हीं पर मेरा मत निर्भर है *" यही नहीं कि दयानन्द की यह निज की सम्मति हो किन्तु सम्पूर्ण ऋषि मुनि ऐसा ही मानते हैं। महर्षि क-णाद लिखते हैं कि "बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे †" अर्थात् वेद का कोई मन्त्र बुद्धि के विरुद्ध नहीं। महर्षि मनुजी लिखते हैं कि "यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः" अर्थात् जो तर्क से सिद्ध हो वही वेद का मत है अन्य नहीं। निरुक्तकार यास्कमहर्षि कहते हैं "तर्कमेव ऋषिः ‡" अर्थात् तर्क ही हमारा ऋषि है। वेदों में भी कई मन्त्र ऐसे हैं जिनमें मनुष्य को बुद्धि से काम लेने की शिक्षा की गई है। इसलिये वैदिक-धर्म के मन्तव्य वही समझ सकते हैं जो अपनी बुद्धि से काम लेते हैं, जो इस प्र-धान और ऋषिपदवी धारण करनेवाली बुद्धि को आत्मा की आंख मानते हैं जिनकी आत्मिक चक्षु फूटगई हो, वे यदि वैदिक सिद्धान्तों को न समझ सकें तो इसमें वेदों का कुछ दोष नहीं किन्तु उन्हीं का दोष है।

किरानी और क़ुरानी लोग एक कल्पित ईश्वर को मानते हैं जिसके गुण कर्म

* सत्यार्थप्रकाश पृ० ४११, ६०० (तृतीय एडीशन) भ्रान्तिनिवारण पृ० ५।

† वैशेषिक दर्शन अ० ६ । सू० १।

‡ निरुक्त अ० १३ । खं० १२ ।

बुद्धि स्वीकार नहीं करसकती।(तुच्छ बुद्धि रखनेवाले नास्तिक और जैनी लोग अन्ध-कार में पड़े हुये ईश्वर से ही विमुख हो बैठे हैं)। पौराणिक लोगों ने अपनी भ्रान्ति और कल्पित गुणों का संघात ईश्वर को मान रक्खा है। अद्वैतवादियों ने बुद्धि का असदुपयोग करके सबको ईश्वर ही ईश्वर बनादिया।(अब संसार प्रत्युत नास्तिक है, यदि जैनी, चारवाक, बौद्ध और यूरोप के प्रकृतिपूजक ईश्वरवादी न होने से ना-स्तिक हैं तो पुरानी, किरानी, कुरानी, अद्वैतवादी और थियासोफ़िस्ट भी ईश्वर को अन्यथा मानने से आस्तिक नहीं हो सकते क्योंकि यदि किसी वस्तु का न जानना अविद्या है तो किसी का उलटा जानना भी अविद्या से पृथक् नहीं होसकता)

पश्चिमीय विज्ञान की पुकार मचानेवाले आधुनिक नास्तिक यद्यपि तर्क की आंख से देखना चाहते हैं परन्तु अन्धेरे में आंख से कौन देख सकता है। यदि पुरानी, किरानी, कुरानी आदि आंख को फोड़ना चाहते थे तो ये पश्चिमीय प्रकृतिवादी आंख की रक्षा करना चाहते हैं। यदि वे अन्धे होने के कारण नहीं देख सकते थे तो ये अ-न्धेरे के कारण देखने से वञ्चित हैं। सायन्स के दीपक के प्रकाश में बुद्धि काम करती हुई एक परिमित सीमा तक देख सकती है उससे आगे नहीं। पश्चिमीय सायन्स और नास्तिकपन प्रकृति और क्रिया को दो अनादि वस्तु मानकर थक गया है और इससे परे दीपक के प्रकाश में देखने की उसको शक्ति नहीं। प्रोफ़ेसर टिण्डल अपनी अवस्था को इस प्रकार वर्णन कररहा है "हम जहां प्रकृति की उत्पत्ति को नहीं जा-नते वहां क्रिया की उत्पत्ति को भी नहीं जानते, जहां प्रकृति है वहां क्रिया है क्योंकि हम केवल क्रिया के ही द्वारा प्रकृति को जानते हैं।" हम संसार में कोई वस्तु बढ़ा नहीं सकते और नहीं उससे घटा सकते हैं, पश्चिमीय विज्ञान ईश्वर के एक गुण क्रिया को अनुभव करके थक गया है और उससे परे नहीं जा सकता। क्रिया को प्रकृति से भिन्न अनादि मानते हुये सायन्स इसके विषय में अधिक जानने से वंचित है, परंच वैदिक सूर्य का प्रकाश हमें दर्शा रहा है कि उक्त क्रिया ईश्वर ही की सत्ता से प्रकृति में भरपूर होरही है। जिस परमेश्वर के गुणों का पश्चिमीय जगत् को ज्ञान नहीं और पूर्वीय जगत् को उलटा ज्ञान होरहा है। वेद बतलाता है कि:-"तदेजति तन्नैजति"* अर्थात् वह परमेश्वर सब को चला रहा है और आप अचल है उपनिषद् वेद के आशय को इस प्रकार पुष्टि कर रही है कि-"स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" जिसके अर्थ यह हैं कि "वह परमेश्वर ज्ञान, बल और क्रिया का भण्डार है"।

* यजुर्वेद अ० ४० । मं० ५ ॥

कोई २ नास्तिक इस प्रकार कहा करते हैं कि:—"इस संसार का बनानेवाला न था, न है और न होगा, किन्तु अनादिकाल से यह सृष्टि ऐसी ही चली आरही है न कभी यह बनी और न कभी नष्ट होगी" इसका उत्तर महर्षि इस प्रकार देते हैं कि "बिना कर्त्ता के कोई भी क्रिया नहीं हो सकती, पृथिवी आदि पदार्थों में विशेष प्रकार की बनावट दीखती है, यह बनावट अनादि नहीं हो सकती। जो वस्तु मिलकर बनी हो वह संयोग से पूर्व बनी हुई नहीं होती और फिर वियोग होने के पश्चात् वैसी नहीं रहती। जो तुम इसको न मानो तो कठिन से कठिन पत्थर और धातु हीरा फौलाद आदि को तोड़कर टुकड़े कर गला या जलाकर देखो कि इन में अलग २ परमाणु मिले हुये हैं वा नहीं, यदि मिले हैं तो समय पाकर पृथक् भी अवश्य होंगे"*।

(प्रश्न) स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति होती है, जैसे अन्न और जल के परस्पर मिलने और सड़ने से कृमि उत्पन्न होजाते हैं, एवं बीज, मिट्टी और पानी के मिलाप से वृक्ष, तृण और पत्थर आदि बन जाते हैं। जैसे समुद्र और वायु के मेल से लहरें और लहरों से झाग तथा हल्दी, चूना और नीबू के रस मिलाने से रोली बनजाती है वैसे ही यह सब सृष्टि तत्वों के स्वभाव और संयोग से उत्पन्न हुई है, इसका बनाने वाला कोई भी नहीं। (उत्तर) यदि स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति होती तो विनाश कभी न होता। यदि विनाश भी स्वभाव से ही मानोगे तो उत्पत्ति कभी न होगी। यदि दोनों गुण परमाणुओं में मिश्रित मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश का क्रम कभी न चल सकेगा। यदि कर्त्ता के होने पर उत्पत्ति और विनाश मानोगे तो यह कर्त्ता उत्पन्न और नष्ट होनेवाले परमाणुओं से पृथक् मानना पड़ेगा। यदि स्वभाव में ही उत्पत्ति और विनाश की शक्ति होती तो फिर किसी नियत समय पर उत्पत्ति और नाश का होना सम्भव न था। यदि स्वभाव से ही उत्पत्ति होरही है तो फिर इस पृथिवी के समीप दूसरी पृथिवी, चन्द्र, सूर्य्य आदि लोक क्यों नहीं बन जाते और जिन २ पदार्थों के मिलाप से जो २ वस्तुएं उत्पन्न होती हैं, वे ईश्वर के बनाये हुये बीज, अन्न और जलादि के संयोग से पत्थर, वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं अन्यथा नहीं। जैसे हल्दी, चूना और नींबू का रस दूर २ से आकर स्वयं नहीं मिलते, किन्तु किसी के मिलाने से मिलते हैं और उस पर भी ठीक परिमाण से मिलाने पर रोली बनती है, न्यूनाधिक या उलट पुलट करने से नहीं बन सकती। ऐसे ही भौतिक परमाणुओं के ज्ञान

* सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २१८ अष्टम समुल्लास।

और क्रमपूर्वक परमेश्वर के मिलाये विना जड़पदार्थ स्वयमेव कुछ भी नहीं बन सकते अतएव स्वभाव से सृष्टि नहीं बनती किन्तु परमेश्वर के बनाने से बनती है *"।

सत्यार्थप्रकाश के बारहवें समुल्लास में महर्षि लिखते हैं कि:—"विना चेतन परमेश्वर के बनाये ज्ञान और कर्म से रहित भौतिक परमाणु स्वयमेव आपस में मिलकर नियमपूर्वक उत्पन्न नहीं होसकते। जो स्वभाव से ही उत्पन्न होते हों तो दूसरे सूर्य, चन्द्र, पृथिवी और तारे आदि लोक अपने आप क्यों नहीं बन जाते?" यही नहीं कि उन्होंने केवल अनीश्वरवादियों के आक्षेपों का ही उत्तर दिया हो, किन्तु वह पौराणिक आदि † लोगों को भी (जिन्होंने कि अपनी रुचि के अनुसार ईश्वर भी मान लिया है) वेदों के प्रमाण देते हुए यथार्थ रीति पर ईश्वर का वास्तविक स्वरूप बतलाते हैं। सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास में उन्होंने निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनादि, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी आदि शब्दों की व्याख्या की है और इस व्याख्या में उन्होंने धार्मिक जगत् के प्राचीन और गूढरहस्यों को खोलकर स्पष्ट कर दिया है। मतवादी लोग दयालु और न्यायकारी शब्दों को परस्पर विरुद्ध मान रहे थे परन्तु योगिराज की व्याख्या ने बतला दिया कि दयालु और न्यायकारी वास्तव में एकार्थवाचक हैं न कि भिन्नार्थद्योतक। सम्प्रदायी लोग सर्वशक्तिमान् शब्द के अर्थ भ्रान्ति से यह समझे हुये थे कि ईश्वर मनुष्य का अवतार धारण करके संसार में प्रकट होता है परन्तु महर्षि की सच्ची वेदोक्त व्याख्या ने ऐसे भ्रमजालों को काटकर लोगों को बतला दिया कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् इसलिये है कि वह अपने काम में दूसरों की सहायता नहीं लेता, न यह कि वह अपने गुण, कर्म, स्वभाव को बदल देता है। ऐसे मिथ्याज्ञान ने संसार में लोगों को ईश्वर से विमुख कराकर नास्तिक बना दिया था और सैकड़ों वर्ष से धार्मिक जगत् इस गूढ़ रहस्य के खोलने में असमर्थ दिखाई देता था पर आज उस महर्षि की कृपा से इन गूढ़ सिद्धान्तों का मर्म सब को विदित होगया।

जो लोग कहा करते थे कि कारण का भी कारण होना चाहिये अर्थात् ईश्वर का भी ईश्वर होना चाहिये, उनका उत्तर महर्षि एक सरल दृष्टान्त के द्वारा देते हैं जिससे मनुष्य को फिर कोई संशय शेष ही नहीं रहता। महर्षि अष्टम समुल्लास में लिखते हैं:—"क्या आंख की आंख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है?

---

* सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ २१८ अष्टमसमुल्लास।

† आदि शब्द से इंजील और कुरान के माननेवाले आजाते हैं।

सूर्य सब पदार्थों को दिखाता है, परन्तु सूर्य को देखने के लिये कभी किसी ने दूसरे सूर्य की आवश्यकता अनुभव नहीं की। इसी प्रकार ईश्वर सबका निमित्त कारण है उसका निमित्तकारण दूसरा कोई नहीं हो सकता।" पश्चिमीय सायन्स ने लोगों को इतना तो बतादिया कि प्रकृति और क्रिया दोनों एक दूसरे से भिन्न अनादि पदार्थ हैं जिसका स्पष्ट आशय यह है कि प्रकृति और क्रिया (अर्थात् क्रिया का प्रवर्त्तक ईश्वर) दोनों स्वरूप से अनादि और नित्य हैं। कोई मनुष्य कभी यह प्रश्न नहीं करेगा कि प्रकृति और क्रिया की क्रिया क्या है ? नितान्त मूल का मूल हो नहीं सकता, अतः ईश्वर का ईश्वर पूछना सरासर भ्रान्ति और भूल है।

वेद और शास्त्रों के प्रमाणों तथा प्रबल युक्तियों से महर्षि, अनादि प्रकृति और अनादि जीवों के अधिष्ठाता, सृष्टि के कर्त्ता जीवों के पाप पुण्य के फलप्रदाता अनादि सच्चिदानन्द ईश्वर को सिद्ध करते और उसका आत्मा से प्रत्यक्ष होना बतलाते हुये वे ईश्वर के गुण आर्यसमाज के दूसरे नियम में इस प्रकार लिखते हैं:—

"ईश्वर, सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी चाहिये" इसी बात को वह सारगर्भित रीति से सत्यार्थप्रकाश के अन्त में भी लिखते हैं जिससे कि उनका अभिप्राय मतवादी और नास्तिक लोगों को यह दिखलाने का है कि हम सृष्टिकर्त्ता वेदोक्त ईश्वर को इस प्रकार माननेवाले हैं। "ईश्वर को कि जिस के ब्रह्म परमात्मा आदि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त हैं, जिसके गुण कर्म स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार फलप्रदाता आदि लक्षणयुक्त है, उसी को परमेश्वर मानता हूं।" महर्षि सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में शास्त्रोक्त प्रमाणों से बतलाते हैं कि "सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, ब्रह्मचर्य आदि महासाधनों का प्रयोजन इसी ईश्वर की प्राप्ति कराना है" मुक्ति जो कि मनुष्यजन्म का अन्तिम सर्वोत्तम फल है, वह ईश्वरप्राप्ति ही का नाम है। सम्पूर्ण शुभकर्म जो किये जाते हैं उनका फल आत्मा को शुद्ध करके ईश्वर दर्शन के योग्य बनाना है। वर्णाश्रम धर्म, विद्या और पुरुषार्थ सब ईश्वरप्राप्ति के साधन हैं। जीव कभी मृत्यु के भय से रहित होकर आनन्द नहीं पासकता जब कि वह ईश्वर का दर्शन न करले। आत्मिक, शारीरिक और सामाजिक उन्नति मनुष्य को ईश्वर प्राप्ति के मार्ग

में चलने की योग्यता देती है । वेदोक्त ईश्वर के भूलने और उसकी उपासना से रहित होने के कारण ही आज भूगोल श्मशान का रूप बन रहा है । ईश्वर को न जानने अथवा अन्यथा जानने के कारण ही आज मनुष्य जाति में द्वेषाग्नि भड़क रही है, हिंसा और अन्याय के कारण आज पृथिवी लहूलहान हो रही है । ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव को धारण करने का नाम धर्म है, परन्तु आज इस धर्म के अभाव से अर्थ, काम और मोक्ष के स्थान में अधर्म, अनर्थ, कुकाम और बन्ध के नरक में मनुष्यजाति व्याकुल हो रही है । नास्तिक, मन्दमति और पन्थाई लोगों ने संसार को ईश्वर से विमुख कराकर पाप और पीड़ा के समुद्र में गिरा दिया है । पांच सहस्र वर्ष के पश्चात् संसार ने परमहितकारी शिरोमणि सिद्धान्त के सच्चे अर्थ आज स्वामी दयानन्द के प्रताप से समझे । सुखों की सिद्धि का आस्तिकपन रूपी बीज आज स्वामी दयानन्द सरस्वती ने, मूर्तिपूजा, मनुष्यपूजा और भूतपूजा आदि की जड़ काटते हुये, मन्दिरों, गिर्जों, मस्जिदों और पैगोडों को तर्क के प्रबल भूकम्प से गिराते हुये, पूर्वीय भ्रान्ति-जाल और पश्चिमीय प्रकृतिपूजा के अन्धकार को वेद के सूर्य से छिन्न भिन्न करते हुये बो दिया है । भूगोल पर से क्लेश और मृत्यु के परम दुःख को जीतनेवाला ईश्वरसत्ता का परम सिद्धान्त दर्शादिया है । आनन्द की इच्छा करनेवाले आत्माओं के लिये इससे बढ़कर मङ्गल समाचार और क्या हो सकता है कि महर्षि के ग्रन्थ और वेद-भाष्य उस परमात्मा के महत्व को निर्भ्रान्तरीति से प्रकाश कर रहे हैं । महर्षि का यह परम उपकार भावी सन्तान स्मरण करती हुई अपने जीवन से उनका धन्यवाद करेगी ।

तीन वस्तुएं अनादि हैं

बहुतसे मतवादी कहरहे थे कि केवल एक ईश्वर ही ईश्वर है, उससे भिन्न और कोई वस्तु नहीं और साथ ही इसके वे यह भी मानते थे कि वह ईश्वर निर्लेप और शुद्ध है । जब उनसे प्रश्न होता (कि संसार में लोग पाप, व्यभिचार और हिंसा करते हुये दिखाई देते हैं और यदि सब कुछ ईश्वर ही है तो यह हिंसा और व्यभिचार क्या तुम्हारा ईश्वर ही कर रहा है ?) तो सुनकर वे निरुत्तर होजाते थे क्योंकि यदि ईश्वर के अतिरिक्त वे जीवात्मा को भी अनादि मानते होते तो इसका उत्तर दे सकते, परन्तु जब कि वे जीवात्मा को अनादि मानते ही न थे तो क्या उत्तर देसकते थे,? यही नहीं कि जीव को ईश्वर से पृथक् नहीं मानते थे किन्तु प्रकृति को भी ईश्वर ही मानते थे और जब उनसे कहाजाता कि प्रकृति में ज्ञान नहीं क्या तुम्हारा ईश्वर भी ज्ञानरहित है ?, तो फिर सिवाय मौन के और कुछ बन न पड़ता था । असत् से

सत् के सिद्धान्त को अपने सहारे के लिये लेते थे, परन्तु अब इसका प्रमाण मांगा जाता था और कहाजाता था कि रेत में से तेल क्यों नहीं निकलता ? तो फिर असमर्थ होकर चुप होजाते । साम्प्रदायिक जगत् इस प्रकार मतों के गोरखधन्धे को सुलझाना चाहता था, पर सुलझाने का यत्न करते हुए अपने आप को और उलझन में फंसाता था।

नास्तिक लोग जीवात्मा को भौतिक तत्त्वों का ही परिणाम मान रहे थे और आजकल के एवोल्यूशन (evolution) के जंगी राग में यह स्वर अलापते हुये सुनाई देते थे कि मरकर कुछ नहीं रहता। मृत्यु के पश्चात् शरीर से पृथक् जीव कोई वस्तु रहनेवाली नहीं है और न कोई संसार का अधीश्वर है जोकि जीवों को शुभाशुभ कर्मों का फल देवे। परन्तु जब उनसे प्रश्न होता कि यदि मृत्यु के साथ ही जीव का अन्त होजाता है तो संसार से सदाचार और भलाई की जड़ काट देना चाहिये। क्योंकि बुरे और भले कर्मों का न फल मिलता है और न कोई देनेवाला है। अनाथों को सताओ और मा बाप को तरसाओ, न्याय का गला घोंटो, मद्य, मांस और व्यभिचार की पूजा करो, जो जी में आवे सो करो कोई कर्मफल नहीं, कोई जीवात्मा नहीं और कोई परमात्मा नहीं। परन्तु यह सुनकर कट्टर नास्तिक भी घबरा जाते और अपने आचरण से उत्तर देते कि सदाचार के बिना संसार का कार्य्यालय आज नष्ट भ्रष्ट हो सकता है, सत्य और न्याय के बिना समाज का एक पल भी जीना असम्भव है नास्तिकों के मस्तिष्क डार्विन की घड़न्त को कि लट्ठबाज़ी ही सृष्टिक्रम है सोचते थे परन्तु उन के हृदय उनके मस्तिष्क का विरोध करते हुए न्याय के पक्षपाती बन रहे थे। उनके हृदय और मस्तिष्क में ही घोर संग्राम और घबराहट होरहीथी। उनकी घबराहट और बढ़ जाती थी जब उनको कहा जाता था कि ज्ञान प्रकृति का गुण नहीं फिर जीव में जिसको तुम भौतिक परमाणुओं का परिणाम कहते हो कहां से आगया ? और यदि ईश्वर कर्मफलदाता नहीं तो सारे जीव एकसी दशा में ही क्यों नहीं ? इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देने में नास्तिक असमर्थ थे। सायन्स के दीपक ने प्रकृति के नित्यत्व और अनादित्व को मनवाते हुये भाव से भाव का होना मनवा रक्खा था, परन्तु इन उलझनों का सुलझाना दीपक का काम न था।

धार्मिक या नस्तिक जगत् इस प्रकार अन्धेरे में टटोल रहा था कि महर्षि दयानन्द ने वेदमन्त्र * सुनाते हुये तर्क के प्रबल आकर्षण से भटकते हुये अशान्त

* ऋग्वेद मं० १ । सू० १६४ । मं० २० (सत्यार्थप्रकाश सप्तमसमुल्लास)

आत्माओं को स्थिर करते हुये बतला दिया कि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि पदार्थ हैं। जिस प्रकार अग्नि सूक्ष्म होने के कारण लोहे में रह सकता है, इसी प्रकार प्रकृति और जीवों में परम सूक्ष्म परमात्मा व्यापक होकर अनादि काल से उनका अधिष्ठाता बन रहा है। जीव प्राकृत साधनों से कर्म करता है ईश्वर के न्याय से फल को प्राप्त होता है।

शब्द, अर्थ और सम्बन्धरूपी वेद ईश्वरोक्त है

जैसे सूर्य के प्रकाश से दाह को पृथक् नहीं कर सकते वैसे ही भाषा को ज्ञान से अलग नहीं कर सकते। जहां शब्द है वहां अर्थ है। जहां भाषा है वहां ज्ञान वर्त्तमान है। सोचना यह है कि ज्ञान और भाषा मनुष्य ने बनाई है या ईश्वर की ओर से उसको यह उपहार मिला है। मिसर के बादशाह "सामीटीकस" ने इस बात के जानने के लिये कि मनुष्य कहांतक भाषा बनाने में कृतकार्य्य होसकता है दो सद्यः-प्रसूत (नौज़ाईदह) बच्चों को एक गडरिये के सुपुर्द किया और आज्ञा की कि इनको सिर्फ़ बकरी का दूध पीने के लिये दिया जाय और इनके सामने कोई शब्द किसी भाषा का मुंह से न निकाला जाय। गडरिये ने इस आज्ञा का पालन किया और जब बच्चे बड़े होगये देखा कि वे कोई भी भाषा नहीं जानते। सवाबीन, द्वितीय फ्रेडरिक, चतुर्थ जेम्स और अकबर से बादशाहों ने भी मनुष्य की भाषा जानने के लिये यही परीक्षा की और विफलमनोरथ हुये। इन परीक्षाओं ने बुद्धिमानों को बतला दिया कि भाषा मनुष्यों के लिये बनी बनाई तैयार होती है। बच्चों का काम भाषा बनाना नहीं किन्तु बनी बनाई भाषा का प्रयोग सीखना है *।

डार्विन और उसके सहयोगी हक्सले, विजविड और केनिनफ़ार ने इस बात के सिद्ध करने की चेष्टा की कि भाषा ईश्वर का दिया हुआ उपहार नहीं, किन्तु शनैः २ ध्वन्यात्मक शब्दों व पशुओं की बोली से उन्नति करके इस दशा को पहुंची है। डार्विन के इस मन्तव्य का प्रबल खण्डन प्रोफ़ेसर "नायर" ने किया और अब मैक्सम्यूलर भी इस विषय में डार्विन का प्रतिपक्षी है। मैक्सम्यूलर हमें बतलाता है कि भाषा ध्वनि या पशुओं की बोली से नहीं बनी है। प्रोफ़ेसर "पाट" भी बड़ी उत्तमता से डार्विन के सिद्धान्त का खण्डन करते हुये बतलाते हैं कि "भाषा के वास्तविक स्वरूप में कभी किसी ने परिवर्तन नहीं किया, केवल बाह्य स्वरूप में

* सायन्स आफ़ लैंग्वेज मैक्सम्यूलर रचित पृष्ठ ४८१।

कुछ परिवर्तन होते रहे हैं। किसी भी पिछली जाति ने एक "धातु" भी नया नहीं बनाया जैसे कि प्राकृत जगत् में किसी ने कोई नया तत्व (परमाणु) नहीं बढ़ाया। हम कह सकते हैं कि एक प्रकार से हम उन्हीं शब्दों को बोल रहे हैं जो कि सर्गारम्भ में ही मनुष्य के मुंह से निकले थे। लाक, एडमस्मिथ, ड्यूगल्डस्टूवार्ट आदि के कथनानुसार मनुष्य बहुत कालतक गूंगा रहा। संकेत और भ्रूविक्षेप से काम चलाता रहा और जब काम न चला तो फिर भाषा बनाली और परस्पर संवाद करने से शब्दों के अर्थ नियत कर लिये परन्तु इन तीनों का खण्डन मैक्समूलर ने यह कहते हुये करदिया है कि "मैं नहीं समझता कि किस प्रकार विना भाषा के परस्पर संवाद उनमें प्रवृत्त रह सका पूर्व इसके कि वे सहमत हुये"। आगे चलकर मैक्समूलर हमें बतलाता है कि "मेरा मुख्य उद्देश्य इस बात को सिद्ध करना है कि भाषा मनुष्य की बनावट नहीं"। हम "अफलातून" से सहमत होते हुये कह सकते हैं कि शब्द अनादि काल से बने बनाये हैं और "अफलातून" के शब्दों में हमें इतना और बढ़ा देना चाहिये कि "अनादि काल के अर्थ ईश्वर की ओर से हैं"।

मनुष्य को अपनी आद्यावस्था में वन्य पशुओं के समान सांकेतिक रीति पर केवल अपनी इच्छायें और भावनायें प्रकट करने की शक्ति नहीं दीगई थी किन्तु उस को अपने मन के भावों को वाणी द्वारा प्रकट करने की शक्ति दीगई थी और यह शक्ति मनुष्य ने स्वयं उत्पन्न नहीं की किन्तु यह आत्मिकशक्ति थी। भाषाओं का विज्ञान हमें इस बात को सिद्ध कर दिखाता है कि संसार भर में एक ही भाषा बोली जाती थी।

"कोलरिज",का कथन है "भाषा मनुष्य का एक आत्मिक साधन है"। ट्रीनिच * कहता है कि "मैं अत्युक्ति नहीं करता जब कि यह कहूं कि वह नवयुवक जो जान लेता है कि शब्द एक जीवित जाग्रत शक्ति है, वह यह ज्ञान प्राप्त करलेने पर मानो एक नई शक्ति को प्राप्त करता हुआ एक नई सृष्टि में प्रविष्ट होजाता है।" भाषा के वास्तविक तत्व को वर्णन करते हुये वह इस बात का कि यह ध्वन्यात्मक शब्दों की अनुवृत्ति करने से शनैः २ बनी है, खण्डन करता है और बतलाता है कि ऐसी दशा में भाषा एक आकस्मिक घटना के समान होजाती है और साथ ही कहता है कि यदि यह मनुष्य की बनावट है तो अत्यन्त ही अशिक्षित जातियों में भाषा

* स्टडी आफ् वर्ड्स आर, सी. ट्रीनिच डी. डी. बिशप.।

न होनी चाहिये। क्योंकि जो रोटी तक नहीं पका सकते उनमें भाषा क्यों पाई जावे? परन्तु भाषा की हम यह दशा नहीं पाते, क्योंकि दक्षिण "अफ़रीका" के जंगली वा "पावन" प्रान्त के नरमांसभोजी जो कि जंगलीपन की अन्तिम सीमा पर हैं, वे भी भाषा रखते हैं और उसी के द्वारा व्यवहार करते हैं। परञ्च इस बात का यथार्थ उत्तर कि भाषा किस प्रकार उत्पन्न हुई, यह है कि "ईश्वर ने मनुष्य को वाणी दी, ठीक वैसे ही जैसे कि उसने उसको बुद्धि दी। क्योंकि मनुष्य का शब्द विचार ही है जो कि बाहर प्रकाश होता है"। ईश्वर ने मनुष्य को तोते के समान शब्द पढ़ाये नहीं किन्तु उसको शक्ति दी और फिर उस शक्ति को उत्तेजित किया। जंगली मनुष्यों की भाषायें प्रत्येक दशा में इस बात को सिद्ध कर रही हैं कि वे किसी महान् और उत्तम वाणी के खण्डहर (अपभ्रंश) हैं, जंगलियों की भाषा उनकी आकृति के समान भयंकर बनगई। चिरकाल आत्मघात करने से यह लोग अधोगति को प्राप्त हुये और किसी भारी परिवर्तन के कारण पृथिवी के उन प्रान्तों से, जो कि सभ्यता के केन्द्र थे निकाले जाकर पहाड़ की दुर्गम घाटियों और समुद्र के विषम टापुओं में रहने लगे, तब प्रत्येक उत्तम भाव नष्ट हुये और साथ ही शब्द जो उन भावों को प्रकट करते थे, नष्ट होगये। "भाषा के विज्ञान का नाम व्याकरण है और शब्द ऊटपटांग संकेत नहीं हैं" आगे चलकर "ट्रीनिच" बतलाता है कि "बच्चे स्वाभाविक ही यौगिक शब्द बोलते हैं और शब्दों के वास्तविक अर्थ जानने के लिये हमें उन शब्दों के धात्वर्थ अवश्य जान लेने चाहियें, अन्यथा शब्द विस्मृत होजावेंगे। जैसे कविता का वास्तविक भाव "हूमर" की रचना में टपकता है वैसे एक २ शब्द और अक्षर २ में कविता भरी हुई है"।

अधिक विस्तार न करते हुये हम पाते हैं कि एवोल्यूशन (evolution) के माननेवालों का यह भ्रम कि भाषा ध्वनि से बनी है वैसा ही अयुक्त और मिथ्या है जैसा कि बन्दर से मनुष्य का बनना। बादशाहों ने परीक्षाओं से सिद्ध किया और इसी परिणाम (नतीजे) पर पहुंचे कि वाणी मनुष्य स्वयं नहीं बना सकता। "अफ़लातून" से फ़िलासफ़र वाणी को मनुष्यकृत नहीं बतलाते थे और आधुनिक भाषातत्ववेत्ताओं ने भी अन्धेरे में टटोलते हुए इस बात का पता लगाया है कि भाषा मनुष्यकृत नहीं है। पृथिवी में नौसो (९००) के लगभग भाषायें इस समय प्रचलित हैं और इतनी भाषाओं में धातुओं की बनावट एक प्रकार की मालूम करने पर मैक्समूलर से विदेशीय इस बात को मान रहे हैं कि संसार की भाषा कभी एक ही थी। हम उन नियमों और रीतियों को जो कि मैक्समूलर एवं अन्य

जर्मन फ़िलासफ़रों ने प्रयुक्त की हैं, ठीक नहीं मानते। इन फ़िलासफ़रों ने बीच की इबरानी आदि भाषाओं को आर्य्यभाषा के वंश से पृथक् वर्णन किया है सो दीपक के प्रकाश में जितना काम उन्होंने किया है उससे बढ़कर उनसे आशा करनी ही व्यर्थ है। एक स्थल पर "मैक्समूलर" बतलाता है कि शब्द के बिगड़ने में मनुष्य का आलस्य ही कारण है। इसी बात को हम अधिक विस्तार के साथ इस प्रकार वर्णन कर सकते हैं कि शुद्ध वाणी अपनी स्वाभाविक दशा से मनुष्य की अविद्या और स्वतन्त्रता के कारण अधोगति रूप बिगाड़ को प्राप्त होती गई परन्तु स्वतन्त्रता के उचित प्रयोग करने पर मनुष्य स्वाभाविक दशा से आगे नहीं बढ़ सकता, क्योंकि स्वभाव का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, हां उसके अनुकूल चल सकता है।

दृष्टान्त से इस बात को यों समझना चाहिये कि गङ्गोत्तरी का जल प्रकृति के उदर से निकलता हुआ पवित्र होता है। मनुष्य की मलिनता और बनावट के कारण वह गदला और मटीला होता हुआ चला जाता है, परन्तु मनुष्य यदि पूरी सावधानी रक्खे तो गङ्गोत्तरी के जल को उसी दशा में रख सकता है, उसको अधिक उत्तम बनाना उसकी शक्ति से बाहर है क्योंकि मनुष्य स्वभाव के अनुकूल चल सकता है न कि उसका अतिक्रमण कर सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि मनुष्य प्राकृतिक पदार्थों का अनुचित प्रयोग अपनी अविद्या और स्वतन्त्रता से करता हुआ उन स्वाभाविक पवित्र वस्तुओं को बिगाड़ देता है, परन्तु किसी दशा में स्वाभाविक दशा से उन्नति नहीं कर सकता। स्वाभाविक दशा में प्रत्येक वस्तु एक ही रूप में रह सकती है परन्तु बनावटी और बिगड़ी हुई दशा में उसके अनेक रूप होसकते हैं, इसलिये अनेक शाखायें एक ही मूल का पता देती हैं। मेज, चौकी, चारपाई, किवाड़ और क़लम यद्यपि रूप और आकार में भिन्न २ हैं तथापि सब एक ही लकड़ी की बनी हुई हैं। इसी प्रकार यूनानी, लाटिनी, इबरानी, अरबी, फ़ारसी इत्यादि भाषायें यद्यपि वर्णों की आकृति और लिपि में एक दूसरे से भेद रखती हैं, परन्तु वास्तव में सब एक मनुष्य की ही स्वाभाविक, सब से प्राचीन और पूर्ण भाषा की बिगड़ी हुई या बनावटी अवस्थायें हैं।

मैक्समूलर के इस लेख में त्रुटि है कि वह समैटिक (semitic) भाषाओं को आर्य्यन् भाषाओं से पृथक् श्रेणी में रखता है जब कि वे भाषायें आर्यभाषा से बिगड़ कर नहीं बनीं तो मानना पड़ेगा कि वे मनुष्य की बनाई हुई हैं और इस बात को मैक्समूलर आदि कभी स्वीकार नहीं कर सकते कि कोई मनुष्य नवीन भाषा

बना सकता है। जब ऐसा है तो मानना पड़ेगा कि समैटिक भाषायें उन भाषाओं की कृत्रिम अवस्थायें हैं जो भाषायें कि उनसे पहिले प्रचलित होंगी। हम इस बात को अधिक विस्तारपूर्वक सिद्ध कर सकते हैं कि समैटिक भाषायें निस्सन्देह आर्य-भाषाओं से ही सम्बन्ध रखती हैं परन्तु ग्रन्थ विस्तार होजाने का भय ऐसा करने से हमको रोकता है। उक्त सम्मति रखता हुआ भी अन्त में जाकर मैक्सम्यूलर स्वयं यह कहता है कि "यह सब हो सकता है कि आर्यभाषाओं के धातु, रूप और अर्थ में समैटिक अरालआटक, बन्टो और ओशीनिया की भाषाओं से मिलते हैं"। और फिर इस कठिन और आवश्यक प्रश्न का कि मनुष्य की एक ही भाषा थी यह उत्तर देता है कि "निस्सन्देह एक थी"। परन्तु वह भाषा कौनसी एक थी या है? इसका निश्चित उत्तर देना "मैक्सम्यूलर" की शक्ति से बाहर है।

यूरोप में एक समय था जब कि लोग मानते थे कि "इबरानी" भाषा से संसार की समस्त भाषायें निकली हैं, परन्तु "लेबेन्स" ने लोगों को इस बात से हटा दिया और "हर्विस" ने इस बात का प्रबलरूप से खण्डन किया। "हर्विस" ने यह भी कहा कि जैसे यूनानियों ने भारतनिवासियों से विद्या सीखी है साथ ही शब्द या भाषा भी उधार ली होगी। "हर्विस" के सिद्धान्तों को पुष्ट करनेवाला "एडलिंग" था। इसके पश्चात् यूरोप के इतिहास में भाषाविज्ञान के सम्बन्ध में एक विचित्र समय आता है। इस समय को "संस्कृत" के जानने का समय कहते हैं। जैसे अमेरिका के ज्ञान ने यूरोप को नई पृथिवी के दर्शन कराये थे, इसी प्रकार संस्कृत के परिज्ञान ने फ़िलासफ़रों को एक वैज्ञानिक जगत् का पता बतला दिया। "संस्कृत जो कि आर्यों की एक प्राचीन भाषा है इसका विज्ञान होना बिजुली की चमक के समान था।" संस्कृत के पदलालित्य और अर्थगाम्भीर्य की साक्षी देनेवाले बढ़ने लगे और यूरोप में इसकी जिज्ञासा बहुत कुछ फैल गई। सर विलियम जोन्स जब भारतवर्ष में आया तो संस्कृत की केवल बाह्य छटा देखकर कहने लगा कि "यह भाषा अत्यन्त रमणीय और अपूर्व है। यूनानी से भी अधिक मनोरम और लाटिनी से भी अधिक गम्भीर और दोनों से बढ़कर ललित और दोनों से बहुत सम्बन्ध रखती है" इन शब्दों को सुन कर लोग चकित होगये, पादरियों ने शिर हिलाये, विद्वानों को सन्देह होगया और फ़िलासफ़र घबरा उठे और मन में कहने लगे कि संसार के ऐतिहासिक क्रम को यह नूतन आविष्कार लौट पौट कर देगा। निदान इस परिज्ञान से "लार्ड मागन्बाडो" जो कि मिसरी भाषा को सब भाषाओं का उद्गम बतला रहा था ऐसा

घबराया "मानो कि संस्कृत के विज्ञान की बिजुली उस पर टूट पड़ी" और आज संस्कृत ने जो मान और गौरव यूरोप में प्राप्त किया है उसका अनुभव निम्नलिखित पत्र से हो सकता है:—

तब श्रीयुत पण्डित श्यामजी कृष्णवर्मा ने देशदशा पर अत्युत्तम प्रकार से व्याख्यान दिया। इस देश के प्राचीन सौभाग्य का वर्णन कर वर्तमान समय के दौर्भाग्य को जताया और कहा कि "वह समय ऐसा था कि देश २ के मनुष्य इस देश में आकर विद्याग्रहण करते थे······इस देश में कुछ सन्देह नहीं कि संस्कृतविद्या सब विद्याओं की शिरोमणि है उसकी प्रशंसा, उसका आदरभाव जैसा कुछ यूरोप और अमेरिका आदि देशों में होता है, हमारे देश में उसका लेशमात्र भी नहीं। आक्सफोर्ड में सर्कार को छोड़कर केवल धनी और साहूकार लोग चालीस लाख रुपया प्रतिवर्ष इसी विद्या की शिक्षा के लिये देते हैं, अब कहो उस एक नगर की उपमा इस देश के कौन से नगर को देवें। इस के अतिरिक्त संस्कृतविद्या का प्रत्यक्ष प्रभाव यह देखलो, यदि मुझ को संस्कृतविद्या न आती तो मैं यूनानी और लाटिनी भाषा ऐसी शीघ्रता से न सीख सकता। लण्डन नगर में "मिस्टर ग्लेडस्टोन" से मेरी भेट हुई तो मैंने उनको अपनी संस्कृत की योग्यता दिखलाई, तब वे मुझ से कहने लगे कि मैं इस बात का बड़ा शोक करता हूं कि मेरी आयु अधिक होगई, यदि मैं दश वर्ष भी कम होता तो संस्कृत का आरम्भ कर देता, आर्य्यभ्रातृगण! देखो अन्य देशी पुरुष संस्कृत का कैसा आदर करते हैं"? *।

यूरोप के विद्वान् "सायन्स आफ़ लैंग्वेज" की उत्पत्ति का कारण संस्कृत के पर्यालोचन को बतला रहे हैं और दिनरात संस्कृत के रत्नों की खोज में लगे हुये हैं। संस्कृत के महत्त्व के कारण उनकी दृष्टि में "भारतवर्ष" का गौरव है और इसलिये इस देश के दर्शन की बड़ी अभिलाषा रखते हैं। विद्वान् "हम्बोलट" मरते दिन तक सभ्यता की प्राचीनभूमि "आर्य्यावर्त्त" के दर्शन को तड़पता रहा और आज यूरोप और अमेरिका में संस्कृत के लिये विद्वानों की आश्चर्यजनक श्रद्धा उत्पन्न हो रही है। परन्तु संस्कृत के पूर्ण गौरव को जानना और उसकी गुप्त एवं आश्चर्यमयी शक्तियों को अनुभव करना उसके अत्यन्त पवित्र मनोहर और अकृत्रिम वेदरूप शब्दों के दर्शन करना पश्चिमीय विद्वानों की शक्ति से बाहर था। उसका दर्शन कराना महर्षि दया-

* देशहितैषी अजमेर। खण्ड २। अंक १० बाबत माघ सं० १९४० वि०।

वन्द के हाथ में था, महर्षि ने बतला दिया कि संसार भर की समस्त भाषाओं की माता वैदिक शब्दों के रूप में विराजमान हो रही है। "वेदभाष्यभूमिका" आदि ग्रन्थों में वेदों के महत्त्व और संस्कृत के प्राचीनतत्व को बड़ी उत्तमता से सिद्ध कियागया है। भूगोल की समस्त भाषाओं की जननी का नाम "वेदवाणी" या "संस्कृतभाषा" है, जिसका आज सब पर महर्षि ने प्रकाश कर दिया। यदि संस्कृत के विज्ञान ने विद्युली के सदृश कल्पित रचनाओं के दुर्ग तोड़ने से विद्वानों को आश्चर्य में डाला था तो वैदिक शब्दों का तेजोमय पुंज फ़िलालोजी (philology) के दीपक को मात करता हुआ जिज्ञासुओं को पांच सहस्र वर्षों के बाद मनुष्य की सब से पहिली, अकृत्रिम, पूर्ण और स्वाभाविक भाषा पर अधिकार दिखायेगा। जिस भाषा को "अफ़लातून" से विद्वान् नैसर्गिक बतलाते थे, जिस एक भाषा की कई शताब्दियों से संसार को आवश्यकता और खोज लग रही थी, आज उस जीती जागती स्वाभाविक वेदवाणी के दर्शन स्वामी दयानन्द ने करा दिये। सब प्रकार के संशय भ्रम मिटाते हुये पाणिनि, पतञ्जलि और जैमिनि आदि महर्षियों की युक्ति और प्रमाण के बल से स्वामी दयानन्द सरस्वती ने शब्द को नित्य सिद्ध करके दर्शा दिया, महर्षि का यह उपकार पश्चिमीय और पूर्वीय जगत् की काया पलट देगा। अपूर्ण और कृत्रिम भाषाओं को लोग तिलांजलि देते हुये एक वेदवाणी की शरण लेंगे और फिर द्वितीयवार एशिया, यूरोप, अफरीका, अमेरिका और ओशीनिया आदि सब पृथिवी के स्थलों पर वैदिकशब्दों की ध्वनि सुनाई देगी और अंग्रेज़ी, फ़ारसी, अरबी, ईरानी, मिसरी, यूनानी, लाटिनी, फ़रांसीसी, जरमन और हिन्दुस्तानी आदि ६०० के लगभग भाषायें परस्पर सहमत होकर वेदवाणी को राजसिंहासन सौंपेंगी। महर्षि का उपकार मनुष्यजाति को वेदवाणी से सुभूषित करते हुये दिखाई देगा। यद्यपि कई शताब्दियों के लगातार पुरुषार्थ के पश्चात् पृथिवी पर यह समय आवे परन्तु इसके आने में कोई सन्देह नहीं हो सकता क्योंकि स्वाभाविक वस्तु के सामने कृत्रिम पदार्थ ठहर नहीं सकते, अतएव ये कृत्रिम दीपक, जो पांच हज़ार वर्ष के बीच में जलाये गये हैं, ईश्वरीय वैदिक सूर्य्य के प्रकाश के सामने ठहर न सकेंगे।

हम पहिले कह चुके हैं कि प्रकाश को अग्नि से कोई पृथक् नहीं कर सकता। जहां शब्द हैं वहां उनके अर्थ और ज्ञान भी हैं। यदि पृथिवी की भाषाओं की माता वेदवाणी है तो संसार के विज्ञान का समुद्र वैदिक ज्ञान को कहना चाहिये। यदि वेदवाणी ईश्वरोक्त है तो वैदिकज्ञान भी ईश्वरीय होना चाहिये। विज्ञान की उत्पत्ति

का इतिहास इस प्रश्न का किञ्चित् स्पष्टरूप से विवरण कर सके, इसलिये हम विज्ञानोत्पत्ति के विषय में कुछ आन्दोलन करना चाहते हैं। पूर्व हम सिद्ध कर आये हैं कि भाषा मनुष्य स्वयं नहीं बना सकता किन्तु ईश्वर की ओर से बनी बनाई भाषा सृष्टि की आदि में मनुष्य को वेदवाणी के रूप में दी गई थी। अब हम इस प्रश्न पर आलोचन करना चाहते हैं कि "मनुष्य विना किसी के सिखलाने के ज्ञान प्राप्त कर सकता है या नहीं"? संसार भर का अनुभव इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि मनुष्य विना सिखाये कुछ नहीं सीख सकता। जिस प्रकार भाषा को एक से दूसरा सीखता चला आया है उसी प्रकार ज्ञान को एक से दूसरा मनुष्य प्राप्त करता आया है और करता जायगा। जहां मनुष्य में नई भाषा के बनाने की शक्ति नहीं, वहां उसमें नवीन ज्ञान के भी उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। कोई अनुमान, कोई सिद्धान्त, कोई मन्तव्य संसार में मनुष्य नया नहीं बना सकता और न उसमें बनाने की शक्ति है। एक पश्चिमीय विद्वान् यह कह रहा है कि जो मनुष्य किसी सायन्स या विज्ञान के इतिहास का अवलोकन करे या आप कई वर्ष तक बराबर किसी सायन्स की उन्नति को ध्यानपूर्वक देखता रहे वह भलीभांति जान सकता है कि उसमें नवीनता (originality) की झलक कितनी और कैसी सूक्ष्म हुआ करती है"। मनुष्य के ज्ञान की उन्नति घड़ी के पैण्डलम या लंगर के सदृश है या यों कहो कि मनुष्य का ज्ञान एक चक्र में भ्रमण करता हुआ बार २ उसी स्थान पर आजाता है और इस दशा के होने पर भी हम आशा किया करते हैं कि शायद पहिले की अपेक्षा आगे बढ़जावें"।

सच तो यह है कि कोई भी मनुष्य original (नवीनता का उत्पादक) नहीं कहला सकता और नहीं ओरिजिनेल्टी (नवीनता) मनुष्य का गुण हो सकती है। नवीनता एक अपार्थक भ्रान्ति है जो कि विद्वानों को मोहित कर रही है तत्त्वतः कोई वस्तु नहीं। इस बात को सुनकर कोई कह सकता है कि भला यह कैसे हो सकता है कि मनुष्य कोई नया आविष्कार नहीं करता? क्या हम सुनते नहीं कि "न्यूटन" ने पृथिवी के आकर्षण का नया सिद्धान्त मालूम किया? पूर्व इसके कि हम इस बातका उत्तर दें यह जान लेना आवश्यक है कि "न्यूटन ने जो सिद्धान्त मालूम किया वह वही सिद्धान्त है जिसका वर्णन सिद्धान्तशिरोमणि के रचयिता "भास्कराचार्य ने "न्यूटन" के जन्म से कई हज़ार वर्ष पहिले अपने पुस्तक में किया था। भास्कराचार्य कहते हैं कि "पृथिवी में आकर्षण की शक्ति स्वाभाविक है। इस आकर्षण के कारण पृथिवी किसी भारी निराधार वस्तु को अपनी ओर खींचती है

जो वस्तु कि गिरती हुई मालूम होती है वह वास्तव में पृथिवी की ओर उसके आक-र्षण के कारण जारही है।"

और यही नहीं कि भास्कराचार्यजी ने यह सिद्धान्त नया मालूम किया हो किन्तु प्रत्येक ऋषि मुनि इस सिद्धान्त से विज्ञ था और ऋषि मुनियों ने इस सिद्धान्त को विज्ञान के भण्डार वेदों से अवगत किया था। वास्तव में बात यह है कि सम्पूर्ण जीव स्वाभाविक गुणों के योग से एक जैसे हैं, परन्तु प्राकृतिक मलिनता के योग से अनेक जीव मलिन आदर्शवत् होजाते हैं, कोई उनमें, जो प्रकृति के गुणों में लिप्त नहीं होते, स्वच्छ भी रहते हैं। ईश्वरीय ज्ञान अपना प्रभाव स्वच्छ आत्माओं पर पहुंचा सकता है और शुद्ध बुद्धि रखनेवाले आत्मा ही सृष्टिक्रम और उसके भेद को समझ सकते हैं और उनका पदार्थों के तत्त्व को समझ लेना उनकी बड़ाई और संसार के लिये नयापन या नवीनता हुआ करती है। सेव को गिरते हुये "न्यूटन" के देश में कौन नहीं देखता था परन्तु पेट के पोषक सेव को गिरते हुए देखकर खाने को दौड़ते होंगे। साधारण लोगों को गिरने की क्रिया के हेतु की न तो जिज्ञासा ही थी और न अन्तःकरण की मलिनता के कारण वे उसको समझ सकते थे, हां पतनक्रिया के हेतु को समझना "न्यूटन" का काम था और यह काम उसने नया नहीं किया, किन्तु प्रत्येक आत्मा बुद्धि रखता हुआ सृष्टि के नियमों को इससे भी बढ़कर समझता और प्रकाश करता रहा है। जिनको आज पश्चिमीय जगत् नवीनता का उत्पादक बत-लाता है, हम उनको शब्दों के गूढ़ अर्थ समझने की योग्यता या बुद्धि रखनेवाले क-हते हैं। आकर्षण शब्द के गूढ़ अर्थ समझने वाला यूरोप में "न्यूटन" था, किन्तु जिस बुद्धि के होने पर न्यूटन ने इस शब्द के अर्थ को अनुभव किया उसी और उससे बढ़ कर बुद्धि रखनेवाले लाखों ऋषि, मुनि आकर्षण के अर्थ अनुभव कर चुके थे और आगे को भी करेंगे। कभी २ शब्दों के अर्थ सृष्टि में अनुभव करनेवाले इस प्रकार महापु-रुष कहलाते हैं और कभी २ ऐसा होता है कि ज्ञान के बीज को संसार में विस्तार रूप वृक्ष और शाखाओं के स्वरूप में परिणत करनेवाले ओरिजिनेलमैन (नवीनता के उत्पादक) कहलाये हैं। भाफ को मूर्ख से मूर्ख बुढ़िया खिचड़ी पकाती हुई नित्य दे-खती है और इतना भी जानती है कि जब पानी उबलने लगता है तो ढकना गिर जाता है, परन्तु उस की स्थूल बुद्धि ढकने के गिरने के कारण को जानना नहीं चा-हती और जान भी ले तो इस भाफ को किसी और प्रकार उपयोग में नहीं लासक-ती। परन्तु "जेम्सवाट" ने खड़कते हुये ढकने का कारण भाफ को जान लिया,

यद्यपि उसको एक घराने की बुढ़िया व्यर्थ समय खोने के लिये कोस रही थी। भाफ के गुण जानलेने पर भी वह स्टीम एंजिन तबतक न बना सका, जबतक उसको "न्यूकोमन" के बनाये हुये एंजिन के संस्कार का अवसर न मिला।

कोई बुद्धिमान् किसी सिद्धान्त के तत्त्व को जानता हुआ या शब्द के गूढ़ अर्थ को अनुभव करता हुआ अपनी तीव्रबुद्धि (originality) का परिचय देता है और कोई उसी के द्वारा पदार्थों के गुणों को जानकर उन के संगत करने से कलायंत्र बनाता हुआ संसार को लाभ पहुंचाता है। विषय भोग की अधिकता से बुद्धि मलिन होती हुई मनुष्य को पशुतुल्य बनादेती और शुद्ध सात्विकबुद्धि उसको उच्च-श्रेणी में पहुंचा देती है। "एण्ड्रो जैक्सन डेविस" से विद्वान् इस बात को मानते हैं कि वास्तव में कोई भी मनुष्य "ओरिजिनल" नहीं कहला सकता क्योंकि वैज्ञानिक सिद्धान्त वा परिभाषाओं में वृद्धि वा ह्रास हो नहीं सकता। जैसे आदर या सत्कार का सिद्धान्त सर्वदा एकसम है, भाषा भी जो कि आन्तरिक और सार्वजनिक साधन है, स्वाभाविक और अनादि है। भाषा के मुख्य उद्देश्य में कभी उन्नति का होना सम्भव नहीं क्योंकि उद्देश्य सर्वदेशी और पूर्ण होते हैं और किसी प्रकार भी उन में परिवर्तन नहीं होसकता, वे सदैव अखण्ड और एकरस रहते हैं *।

स्वभाव में कोई भी विकार नहीं है, अतएव स्वाभाविक पदार्थ स्वच्छ और निर्दोष होते हैं और यही "अफ़लातून" का मत था। स्वाभाविक मा के पेट से निकला हुआ बच्चा कृत्रिमदशा में रहनेवाले बच्चों से अधिक पवित्र होता है। वे जीव जिन्होंने सृष्टि की आदि में अमैथुनी शरीर धारण किये थे उनसे बढ़कर पवित्रबुद्धि रखनेवाले और शुद्धात्मा कोई जीव नहीं होसकते । वे जीवात्मा स्वभावज कहलाने के योग्य थे, क्योंकि उस समय स्वभाव का स्वच्छ पट बनावट और मानुषी निर्बलता के धब्बे से कलुषित नहीं हुआ था । जो ज्ञान कि उस समय के ऋषि अपनी मेधा में धारण कर सकते थे, जो शक्ति कि शब्दों के गूढ़ अर्थ अनुभव करने की उनमें थी, वह शक्ति मैथुनी सृष्टि के ऋषियों में कदापि नहीं होसकती। उन ऋषियों के आत्मा अपनी पूर्ण उन्नत अवस्था में स्वाभाविक और अनायास लब्ध उच्चसाधनों से युक्त थे। मैथुनी सृष्टि में उत्पन्न होनेवाले जीव उन ईश्वरीय पुत्रों से बढ़कर शुद्ध मेधा नहीं धारण कर सकते, इसलिये जो शब्दार्थ का ज्ञान उन पवित्रात्माओं ने अनुभव किया था उस का नाम आदर्शज्ञान और उसी को पूर्ण ज्ञान कह सकते हैं। इस आदर्श और पूर्ण

* देखो हारमोनियां भाग २ । पृष्ठ ७३ एण्ड्रो जैक्सन डेविस विरचित।

ज्ञान में उन सब विद्याओं का मूल विद्यमान था जिसको कि जीवात्मा अपनी उन्नता-वस्था में ग्रहण करके विस्तार देसके। जिस प्रकार जल की गंगा गंगोत्री से निकलकर अशुद्ध और मलिन होती गई, ठीक इसी प्रकार ज्ञान की गंगा अमैथुनी सृष्टि के आदि महर्षियों के हृदयों से अपनी स्वाभाविक स्वच्छदशा में निकली थी, इसके पश्चात् वह जीवों की अविद्या के कारण मलिनदशा में दीखने लगी। स्वभाव और पूर्णता पर उ-न्नति करना असम्भव है इसलिये उस समय से लेकर आगामी प्रलय पर्यन्त कोई भी ऋषि इस आदर्शज्ञान की अपेक्षा उन्नति नहीं कर सकेगा। जहांतक दौड़ कर टांगोंवाला पहुंच चुका है, वहां रेंगनेवाले का पहुंचना कठिन है। अमैथुनी सृष्टि स्वच्छ और अभ्रान्त दशा का दूसरा नाम है, दिन रात के चौबीस घण्टों में जो प्रातःकाल है, उसके बराबर और कोई समय का भाग नहीं हो सकता। जो गूढ़ विचार मनुष्य का आत्मा प्रातःकाल के समय कर सकता है वह कभी मध्याह्न या अपराह्न में नहीं कर सकता। संसार के विज्ञानवित् और विद्वान् प्रातःकाल के इस महत्त्व को स्वीकार करते हैं। कवि और योगी इसी प्रातःकाल में अद्भुत रचना और सिद्धि प्राप्त किया करते हैं। वे महर्षि जिनको कि सृष्टि के प्रातःकाल में काम करने का अवसर मिला था, उनके बराबर आगामी काल के वे महर्षि जिनको कि मध्याह्न या अपराह्न का समय मिला हो कब हो सकते हैं। सृष्टि के प्रातःकाल में जीवात्मा जहां-तक ऊंचे जा सकते थे, वहांतक मध्याह्न और सायंकाल में कब जासकते हैं? प्रातः-काल का समय दिनभर के लिये आदर्श है। वसन्तऋतु सब ऋतुओं का राजा है, अमैथुनी सृष्टि के ऋषि मैथुनी सृष्टि के ऋषियों के गुरु हैं। प्रातःकाल यदि पूर्ण रीति पर ज्ञान धारण करने के लिये है तो शेष दिन उस ज्ञान के अनुसार काम करने के लिये समझना चाहिये किन्तु यदि हम कल्पना भी करलें कि मध्याह्न में भी आत्मा उतना ही गूढ़ विचार कर सकता है जितना कि प्रातःकाल में करता था तो भी इससे प्रातःकाल के बराबर मध्याह्न होसकता है बढ़कर नहीं। अर्थात् जल अपने धरातल से ऊंचा नहीं जासकता और जहांतक ऊंचा जाता है उससे उसके धरातल का पता लगता है। आत्मा के स्वाभाविक गुण और अवस्था में कभी न्यूनाधिकता नहीं हो सकती अतएव वह ज्ञान जो आदिसृष्टि में मनुष्य को ईश्वरीय प्रेरणा से स्वच्छ आत्माओं के द्वारा मिला था, उसकी अपेक्षा उन्नति करना मानो स्वभाव या ई-श्वरीय कामों में तुच्छ मनुष्य का हस्तक्षेप करना है जो कि कभी सम्भव नहीं। मै-थुनी सृष्टि के ऋषि यदि पूर्ण उन्नति करें तो उस ज्ञान के निकट तक पहुंच सकते हैं,

उससे ऊपर जाना तो सर्वथा असम्भव है और उसके पार्श्व तक पहुंचने के लिये भी मैथुनी सृष्टि के ऋषियों को उस आदिज्ञान का सहारा लेना पड़ता है। मलिन काच प्रकाश का आकर्षण नहीं कर सकता, जितना काच स्वच्छ होगा, उतना ही वह प्रकाश को धारण कर सकेगा। आज यदि मलिनात्मा वैदिकसूर्य के ज्ञानरूप प्रकाश को धारण नहीं कर सकता तो उसकी मलिनता का दोष है न कि प्रकाश का और यदि कहीं कोई बुद्धिमान् उस प्रकाश के अंश को अपनी शुद्धता के कारण धारण करके संसार को अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाता हुआ औरजनेल्टी (नवीनता) का परिचय दे तो हमें यह कभी न कहना चाहिये कि उसने प्रकाश नया बनाया है किन्तु यह कहना चाहिये कि प्रकाश को धारण या आकर्षण करने की बुद्धि उसमें है। मेधावी पुरुष अपने साधनों की उत्तमता का उदाहरण देते हैं न कि स्वाभाविक ज्ञान के सूर्य को बनाया करते हैं। ज्ञान के सूर्य को न कोई घटा सकता है न बढ़ा सकता है, जीव शुद्ध साधनों के होने पर केवल उसके तेज को अनुभव कर सकता है।

यदि मनुष्य विज्ञान या प्रकाश को नया बना सकते तो आजतक संसार में नये से नये सिद्धान्त निकलते आते, परन्तु संसार का इतिहास वैज्ञानिक चक्र में घूमता हुआ इस बात को सिद्ध कररहा है कि एक सिद्धान्त के अनुभव करनेवाले मनुष्यों ने उत्तम साधनों की उपस्थिति में विद्या का प्रकार किया था किन्तु मलिन साधनों की विद्यमानता में लोग उसी सिद्धान्त को अनुभव न कर सकने पर मूर्ख रहगये और फिर समय आया कि कोई साधनशील उसी सिद्धान्त को पुनरपि अनुभव करने पर खड़ा हुआ और संसार उसको भ्रान्ति से नया सिद्धान्त, नई थ्यूरी, नया मन्तव्य और नया प्रकाश कहने लगा। इसलिये संसार से इस भ्रान्ति का दूर करना, कि सिद्धान्त, थ्यूरी और प्रकाश या मन्तव्य नये नहीं होते, बहुत आवश्यक है। सत्य वह है जो तीनों काल में एकरस रहे, दो और दो मिलकर चार होते हैं, इस सत्य सिद्धान्त को कौनसा सायन्स है जो उन्नति कर के दो और दो को पांच बतलावे या घटाकर तीन कर सके। सच्चे नियमों से बढ़कर कोई उन्नति नहीं कर सकता। सचाई की ओर प्रवृत्ति का नाम उन्नति है। वैदिक सिद्धान्त या वैदिक सत्यज्ञान पर कोई नया मन्तव्य या कल्पना नहीं चढ़ सकती, किन्तु उसकी पुष्टि करती हुई उसके समीप आ रही है। यूरोप में आज एक सिद्धान्त निकलता है और कल उसका खण्डन होजाता है, इसका अर्थ यह है कि वह सिद्धान्त सत्य नहीं था, अन्यथा सत्य का खण्डन कौन कर सकता है और यह कहना कि वैज्ञानिक सिद्धान्त नवीन उत्पन्न होते हैं ऐसा ही

निर्मूल है जैसा कहा जावे कि प्रकाश नया उत्पन्न होता है। पानी का गुण जो सृष्टि की आदि में था वही आज है, यदि उस समय से लोग पानी को ठण्डा कहते चले आये हैं तो आज इसका कोई खण्डन नहीं कर सकता।

विज्ञान के तत्त्व का इतिहास दो सिद्धान्तों को प्रकट कर रहा है प्रथम यह कि विज्ञान को मनुष्य स्वयं उत्पन्न नहीं कर सकता किन्तु किसी दूसरे के सिखाने से सीखता है द्वितीय यह कि वारम्वार प्राचीन सिद्धान्त ही विद्वानों के द्वारा प्रचरित होते रहे हैं और एक भी नवीन सिद्धान्त या वैज्ञानिक नियम कभी संसार पर प्रकट नहीं हुआ। यदि आर्य्यावर्त्त और मिसर के शिष्य "पीथागोर्स" ने पश्चिमीय जगत् को पृथिवी के गोलाकार होने और घूमने का विज्ञान दिया तो सिकन्दरिया के "टालिमी" ने अपने अशुद्ध और अपूर्ण साधनों के कारण इस ज्योति को अनुभव न कर सकने पर लोगों को पृथिवी के चौरस और स्थिर होने का उपदेश दिया। पन्द्रहवीं शताब्दी में एक साधनशील "कूपरनीकस" नामक पुरुष ने फिर "पीथागोर्स" के सिद्धान्त की उत्तमता अनुभव की और "पीथागोर्स" का मण्डन और "टालिमी" का खण्डन किया। "कूपरनीकस" के पश्चात् डेन्मार्क के ज्योतिषी "टेचीवरहेई" ने इस सत्य सिद्धान्त की पुष्टि की और सोलहवीं शताब्दी में जर्मनी के "केपलर" और इटली के "गैलेलियो" ने उसी सत्य का मण्डन किया। परन्तु "कूपरनीकस" और केपलर के समय में लोग भ्रम से यह समझते रहे कि हमें कोई नया सिद्धान्त बताया जा रहा है और इसी भ्रान्ति के कारण वीर "गैलेलियो" की अत्यन्त अवज्ञा और हानि उन पादरियों के पूर्वजों ने की थी जो आज अपने मिशनस्कूलों में पृथिवी के गोल होने की शिक्षा देते हुये उन्हीं अपने पुरुषाओं की मूर्खता का खण्डन कर रहे हैं।

आजकल वैज्ञानिक जगत् भूगर्भविद्या (geology) के प्रचारक "लायल" के सिद्धान्त को भ्रान्ति से नया बतला रहा है परन्तु सत्यग्राही * पुरुष मानते हैं कि 'लायल' के भूगर्भविद्यासम्बन्धी सिद्धान्त के वे कारण कि जिनसे भूगर्भ सदैव परिणाम को प्राप्त होरहा है अपना काम नित्यप्रति कर रहे हैं। यही प्राचीन सिद्धान्त "अरस्तू" का था और "जामरे" के द्वारा यह सिद्धान्त वर्त्तमान दशा को पहुंचा और अब "लायल" ने इसके प्रचार से पुरानी भूगर्भविद्या का लेशमात्र बोधन कराया है। "पीथागोर्स" ने भक्ष्यभोज्य के विषय में ऋषियों के सिद्धान्त का प्रचार करते हुये कहा

* थिंगर टो वी री मेम्बर डान डेवी लाइफ, जान फिम्बस एफ. एस. ए. विरचित पृ० १६५।

था कि मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये, इसी सिद्धान्त को पश्चिम में अफ़लातून, सेनेको, प्लोटार्क, ट्रीटोलेनै, पूरफ़ी, कोरनारो, रे, वाल्टियर, रौसो, पेली, न्यूटन, शेली, लामरटिन और शोपिनहार आदि कई विद्वानों ने प्रचार किया और सदा लोग इसको नया सिद्धान्त समझ कर इसका विरोध करते रहे हैं परन्तु वीर उसको सहते हुये आगे बढ़ते गये।

यही नहीं कि मनुष्य कोई सत्य सिद्धान्त दूसरों से सीखता हुआ चला आरहा है किन्तु एक वैज्ञानिक विषय की रचना किसी दूसरे वैज्ञानिक विषय की व्याख्या हुआ करती है। विद्वान् "मिल" का कथन सत्य है कि * "रोमियों की विद्या और चरित्र यूनानियों की विद्या और चरित्र का अनुकरण है" जिन्होंने भ्रान्ति और अविद्या का प्रचार किया है वे यदि परस्पर न मिलें तो आश्चर्य नहीं क्योंकि दश और दश को बीस कहनेवाले सौ मनुष्य सहमत हो सकते हैं परन्तु १८, १७, १५, १३ आदि कहनेवाले मनुष्य कभी एक सम्मति नहीं रख सकते इसलिये हम डार्विन, माल्थस आदि के मिथ्या सिद्धान्तों का इस अवसर पर वर्णन नहीं कर सकते, यदि उनके सिद्धान्त सत्य होते तो हम दिखा सकते थे कि यह पहिले भी वर्त्तमान थे किन्तु भ्रान्ति, अशुद्धि और अन्धकार का वर्णन करना हमारा प्रयोजन नहीं।

वर्त्तमान यूरोप और अमेरिका की सभ्यता (जो कि विद्या और व्यवसाय का फल है) कोई नई नहीं किन्तु संसार का इतिहास बतलाता है कि इस प्रकार की सभ्यता प्रत्येक समय में किसी न किसी जाति में रही है। अब हम सभ्यता के विषय में इतिहास की साक्षियां संक्षेप से वर्णन करेंगे जिनके पढ़ते ही बुद्धिमान् जान लेंगे कि पृथिवी के भिन्न २ देशों की प्राचीन सभ्यता आजकल की सभ्यता से बढ़कर थी।

चीन और बाबल की सभ्यता मिलती है और "कन्फ्यूशस" की शिक्षा ने चीन में लोगों को एक परमेश्वर का माननेवाला बनाया और उसने पितृयज्ञ, परोपकार और न्याय आदि की शिक्षा दी। काग़ज़ बनाने और छापने के काम में बहुत प्राचीन समय में चीनियों ने बड़ी उन्नति की थी, रेशमी और रूई के उत्तम वस्त्र बनाने में ये परमप्रवीण कारीगर थे। प्राचीन चीन के पश्चात् यदि प्राचीन मिस्र पर एक दृष्टि डालें तो पता लगता है कि आधुनिक सभ्यता से बढ़कर उस पुराने समय में वहां सभ्यता वर्त्तमान थी। मिस्र के प्राचीन राजा का नाम "मैनीज" है, मिस्र वह देश था

* सब जैक्शन आफ़. विमन. जे. एस. मिल विरचित पृ० १३२।

कि जिसकी वैज्ञानिक सम्पत्ति के भिखारी बनकर यूनान से "अफ़लातून" जैसे विद्वान् आया करते थे। प्राचीन मिस्र के राजे पुरोहितों की सम्मति पर चला करते थे, राजा के लिये सन्ध्या आदि समय नियत थे, राजप्रबन्ध की उत्तमता के कारण कभी प्रजा में वैमनस्य नहीं होता था और यहां की वर्णव्यवस्था बिलकुल यहां की सी थी, सब से बढ़कर पुरोहितों का पद था, फिर सिपाहियों का, उनसे उतरकर काश्तकारों और सौदागरों का और सब से नीचे नौकरों का दर्जा था, मिस्र के रथ और घोड़े बहुतही उत्तम कक्षा के थे। जीवन और मरण के प्रश्न पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया करते थे। राजाओं ने प्रजोपकार के लिये नहरें खुदवाईं और जहाज़ बनवाये थे। लेखन, व्याकरण, ज्योतिष, रेखागणित, रागविद्या और आयुर्वेद में लोगों ने बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया था और वे निस्सन्देह मानते थे कि मनुष्य का आत्मा अजर अमर है, आवागमन और मुक्ति को हिन्दुओं के समान मानते थे। मिट्टी और काच के पात्र और जहाज़ बनाने आदि के काम में बड़े निपुण थे। वे तुला (तराजू) को काम में लाते थे और लीवर (भुजायन्त्र) से भारी बोझ उठाया करते थे। आरे, छैनी, उत्तम से उत्तम चिमटे, पिचकारी और अस्त्रों के बनानेवाले थे, सोने और धातुओं को गलाकर काम में लाते थे। नील नदी पर रंग विरंगे बादबानों से लहराते हुये जहाज़ उनके महत्त्व को जताते थे। घण्टे, कुठारी और चीरफाड़ के सब ही शस्त्र उनके यहां प्रयोग में आते थे, स्वच्छ और उत्तम कागज़ बनाकर रंगविरंगी स्याहियों से लिखा करते थे। कपड़े रंगने में बड़े चतुर थे, प्राचीन मिस्री लोग उत्तम कक्षा के बुद्धिमान्, कारीगर और परिश्रमी थे, उनकी स्त्रियां चूड़ियों और अंगूठियों से भूषित रहा करती थीं, शिर के बाल लम्बे और गुथे हुये रखती थीं। शीशे, कंघे तथा अन्य अलंकार के उपकरण सब उनको प्राप्त थे। चांदी, पीतल और मिट्टी के बरतनों में खाना खाते थे और खाने के समय भजन गाये जाते थे, चङ्ग, तम्बूरा और सारंगी आदि बाजों पर बड़े आनन्द से गाते थे और मुर्दों को जिस मसाले में रखकर सुरक्षित रखते थे उसका ज्ञान आजतक पश्चिमीय लोगों को नहीं हुआ, मिस्र के मीनार उनके इञ्जीनियरिंग के जिवित जाग्रत प्रमाण हैं।

चालडियन, इसरियन और बाबुल वालों की सभ्यता भी बहुत पुरानी है और मिस्र से कम नहीं। चाल्डिया विद्या, व्यवसाय और उसके फल सभ्यता का घर था, गणित और ज्योतिष में विशेष अभिज्ञता उन्होंने प्राप्त की थी। तौल के बाट ऐसे उत्तम बनाये थे कि आजतक यूरोप में वैसे ही बनाये जाते हैं और पानी की घड़ी से

समय का मान किया करते थे। मिस्र वालों ने यूनान को और यूनान ने रोम को और रोम ने वर्त्तमान यूरोप को सभ्यता सिखलाई और इस का हम दृढ़ प्रमाण पाते हैं कि मिस्रियों ने भारतवर्ष से सभ्यता सीखी थी। आर्य्यावर्त्त की सभ्यता मिस्र से बढ़कर थी। यद्यपि महाभारत के युद्ध ने सामान्यत: पृथिवी को और विशेषत: भारत को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था तथापि हम भारतवर्ष को उच्च से उच्च सभ्यता का घर इतिहास के प्रमाणों से पाते हैं दोसौ जहाज़ भारतवर्ष के समुद्रतटों पर प्रतिसमय प्रस्तुत रहते थे। ब्राह्मण और वैश्य लोग इन जहाज़ों में बैठकर सुमात्रा, जावा और चीन को जाया करते थे। वणिज, व्यौपार में सौदागर विना छल कपट के कार्यसिद्धि किया करते थे। कपट और प्रतिज्ञाभङ्ग दोष से कोसों दूर भागते थे। "ह्यूमसाम" के समय तक लोग चारों वेदों को परम प्रमाण मानते थे और ३० वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचारी रहा करते थे। उस समय शब्दविद्या, शिल्पविद्या, चिकित्सविद्या, हेतुविद्या और अध्यात्मविद्या प्रचलित थी अरब के लोगों ने यहीं से अङ्कविद्या और बीजगणित सीखा और यह विद्या "पाटिया" के "लिपोनार्डो" के द्वारा वर्त्तमान यूरोप में पहुंची, त्रिकोणमिति विद्या में भी हिन्दू (आर्य) ही पृथिवी के आदिगुरु हैं। त्रैराशिक, भिन्न, दशमलव आदि गणित विद्या भी इन्हीं के प्रताप से संसार में फैली है, डाक्टर "वाइज" का कथन है कि "भारतवासियों ने ही हमको शारीरिकविद्या सिखलाई" "नियार्कस" का कथन है कि "यूनानियों को साँप के काटे की चिकित्सा विदित न थी और ब्राह्मण उसकी चिकित्सा जानते थे" मुर्दे की चीरफाड़ के लिये अनेक उपशस्त्र (औज़ार) काम में लाये जाते थे और १२७ औज़ार तो ऐसे सूक्ष्म और उत्तम थे जो बाल को लम्बा रखकर दो भागों में विभक्त करदें।

आर्य्यावर्त्त के विषय में "जेकालियट" कहता है कि " मैं अपने ज्ञान के नेत्रों से आर्यावर्त्त को अपनी राजनीति, अपने संस्कार, अपने आचार और अपना धर्म, मिस्र, ईरान, यूनान और रोम को देते हुये देखरहा हूं मैं "जैमिनि" और "व्यास" को "सुकरात" और "अफ़लातून" से पहिले पाता हूं" "प्राचीन भारतवर्ष के महत्त्व का अनुभव करने के लिये यूरोप में प्राप्त किया हुआ विज्ञान और अनुभव किसी काम नहीं आता, इसलिये हमें आर्य्यावर्त्त का प्राचीन महत्त्व जानने के लिये ऐसा यत्न करना चाहिये। जैसा कि एक बच्चा नये सिरे से पाठ पढ़ता है" आगे चल कर "जेकालियट" पृथिवी के कुछ देशों के नाम इस प्रकार बतलाता है और कहता है कि यह संस्कृत के नाम हैं:—

नाम.			संस्कृत.
स्पार्टन	...	...	स्पर्द्धा जिसके अर्थ मुक़ाबले के हैं ।
स्वीडन	...	...	सुयोद्धा (सिपाही)
स्कैण्डिनेविया	...	...	स्कन्धनिवासी ।
नार्वे	...	...	नारावाज (मल्लाहों का देश)
ओडन	...	...	योधन से (योद्धा)
बाल्टिक	...	...	वालार्टक (वीरों का समुद्र)

निदान हम मिस्टर "बाइराएट" से सहमत हैं * जो कहते हैं कि "मिसरी, भारतवासी, यूनानी और इटली वाले वास्तव में किसी एक ही केन्द्र से बिखरे होंगे और यही लोग अपना धर्म, आचार और विज्ञान चीन और जापान में लेगये होंगे क्या हम यह नहीं कह सकते कि मेक्सिको † और पीरू ‡ में भी, मैं अनुमान करता हूं कि मिस्र के पुरोहित नील से गङ्गा और यमुना को आते होंगे। और यह निश्चय है कि वे यहां के ब्राह्मणों से + मिलने के लिये आते होंगे ठीक वैसे ही जैसे कि यूनान के विद्वान् उनसे मिलने को जाया करते थे अर्थात् विद्या ग्रहण करने के लिये"।

"दबस्तान" का रचयिता वर्णन करता है कि "प्राचीन ईरानियों के पूर्व पुरुष "हिन्दू" थे" और वह कहता है कि "इसमें सन्देह नहीं कि "महावाद या मनु" की पुस्तक जो देववाणी में लिखी गई है उससे अभिप्राय वेद का है, अतएव ज़रदुश्त केवल संशोधक (रिफ़ार्मर) था हम भारत में ईरान के प्राचीन धर्म की जड़ पाते हैं।"

"यह अत्यन्त ही आश्चर्यजनक बात है कि पीरूनिवासी (जिनका पूर्व पुरुष "अङ्कस" सूर्यवंशी कहलाने का अभिमानी था) अपने बड़े त्यौहार को "रामोत्सव" के नाम से पुकारते हैं जिससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि दक्षिणीय अमेरिका में वही जाति निवास करती थी जोकि एशिया के दूर २ देशों में राम के चरित्र और कथा लेगई है"। "भारत के मन्दिर और खण्डहर बतलाते हैं कि अफ़रीका और भारतवर्ष का निकट सम्बन्ध था। मिस्र की मीनारों और बुद्ध के मन्दिरों के

---

* एशियाटिक रिसर्चेज भाग १ पृ० २६८।

† उत्तरीय अमेरिका के एक नगर का नाम है।

‡ दक्षिणीय अमेरिका के एक नगर का नाम है।

+ एशियाटिक रिसर्चेज भाग १ पृ० २७१।

बनाने वाले एक ही कारीगर होंगे"। "उन मन्दिरों पर अक्षर कुछ हिन्दी और कुछ अबीसीनिया या थोपिया के मालूम होते हैं इससे पता लगता है कि इथोपिया और हिन्दुस्तान एक ही विस्तृत वंश से सम्बन्ध रखते होंगे। इसकी पुष्टि में यह भी कहा जासकता है कि बङ्गाल और बिहार के पहाड़ी लोग अपनी आकृति और छवि में विशेषतः होंठ और नाक की बनावट में वर्त्तमान अबीसीनिया वालों से बहुत कुछ समता रखते हैं"। "हिन्दू (आर्य) बहुत प्राचीन समय से फ़ारिस, इथोपिया, मिस्र, फेन्शा, यूनान, टस्कनी, सीथिया, गाथ, केलट, चीन, जापान और पैरो निवासियों से सम्बन्ध रखते हैं, जिससे हम कह सकते हैं कि या तो यह जातियें हिन्दुओं की बस्तियां होंगी या उनमें से किसी ने सब को बसाया होगा। यह हम स्पष्टरूप से कह सकते हैं कि वे सब एक ही केन्द्र से आये होंगे"।

एशियाटिक रिसर्चेज़ भाग २ में विलियम जौन्स कहते हैं कि "मैं ज़िन्दावस्था के शब्दों को देखकर अचम्भे में रह गया। १श शब्दों में ६ या ७ शुद्ध संस्कृत के हैं, यहांतक कि विभक्तियां भी व्याकरण के नियमानुसार हैं जैसे "युष्माकम्" का "युष्मद्"। फिर कहते हैं कि "ईरान और पृथिवी का पहिला राजा महाबाद था जिसने लोगों को चार भागों में विभक्त किया था अर्थात् पुरोहित (ब्राह्मण) सिपाही (क्षत्रिय), सौदागर (वैश्य), सेवक (शूद्र)"।

"मिस्र में दो प्रकार के अक्षर थे, एक लौकिक जो भारतीय प्रान्तों के अक्षरों से मिलते हैं दूसरे वैदिक जो देवनागरी जैसे विशेष कर संस्कृत के अक्षरों से मिलते हैं। मिस्र की मीनारें, बाबुल का बुर्ज महादेव की मूर्त्ति के लिये बनाये गये थे। ब्राह्मण और ड्रुइड * एक ही हैं। सब बातें मिलकर सिद्ध करती हैं कि भारतवासी और चीनी वास्तव में एक ही हैं" (भाग २ पृ० ३७६)।

शुक्रनीति और महाभारत आदि के देखने से उस समय की सभ्यता अर्थात् विद्या और गुणों का पता लगता है, जिस समय को यूरोप के बने हुये इतिहास पहुंच नहीं सकते। मिस्र व यूनान की सभ्यता उस उच्च सभ्यता के आगे, जो कि छः हज़ार वर्ष पहिले आर्यावर्त्त में थी, सचमुच अधूरी प्रतीत होती है। उस पूर्ण सभ्यता पर दृष्टि देने से चारों ओर आर्यों का बुद्धिकौशल ही दिखाई पड़ता है। यदि आजकल रेल वर्त्तमान सभ्यता का उत्तम निदर्शन है तो उससे बढ़कर विमान और अश्व-

* इंगलैंड के प्राचीन पुरोहित ड्रुइड कहलाते थे।

यान आदि का उस समय में प्रचार होना आजकल के लोगों को आश्चर्य में डाल देता है। यदि आजकल सिपाही लोग डायनामाइट और तोपों की प्रशंसा करते हैं तो उस समय के आग्नेयास्त्र और वारुणास्त्र इससे बढ़कर अपनी योग्यता को प्रकट कर रहे हैं। शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के पूर्ण साधन निस्सन्देह बतला रहे हैं कि मनुष्य प्राचीन समय में पूर्ण विद्वान् हुआ करते थे। यूरोप और अमेरिका के आधुनिक सभ्यता और उन्नति के मन्दिर को देखकर स्थूलदर्शी पुरुष यह समझते हैं कि यह नया मन्दिर यूरोप या अमेरिका ने स्वयं बनाया है, परन्तु बुद्धिमान्, परीक्षक और इतिहासवेत्ता बतला रहे हैं कि इस मन्दिर में एक २ विद्या-सम्बन्धी ईंट पुरानी लगी हुई है। बीसियों प्रामाणिक इतिहास और उनके प्रमाण उपस्थित हैं, जिनको विस्तार के भय से हम लिख नहीं सकते परन्तु उन सबका सारांश यह है कि पृथिवी में सम्पूर्ण विद्याओं और क्रियाओं के आदिगुरु ब्राह्मण लोग और संसार को उच्च सभ्यता के सिखलाने वाले भारतनिवासी हैं।

ये प्रमाण बतला रहे हैं कि कोई भी विद्या या क्रिया कभी किसी सभ्य जाति ने ऐसी नहीं निकाली जोकि उससे पहिले किसी और सभ्यजाति में न हो और एक जाति दूसरी से सभ्यता सीखती चली आई है। इन प्रमाणों से बढ़कर अत्यन्त ही प्राचीन समय का एक और प्रमाण मनुस्मृति में मिलता है, जिसमें लिखा है कि "पृथिवी के सब लोग सम्पूर्ण विद्याओं को आर्य्यावर्त्त के विद्वानों से सीखें" इससे पाया जाता है कि एक समय था जब कि वास्तव में संसारभर के मनुष्य आर्य्यावर्त्त में शिक्षा पाने के लिये आते थे। यहां पर पहुंचकर फिर वही प्रश्न सन्मुख आजाता है कि मन्वादि महर्षियों ने, जो कि जगद्गुरु थे, विद्या कहां से सीखी? इसका उत्तर निर्भ्रान्त रीति से स्वयं महर्षि लोग देते हैं कि सब प्रकार की विद्या ऋषियों ने वेद से सीखी हैं। अब प्रश्न होता है कि वेद क्या वस्तु है? इसका उत्तर ऋषि देते हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और वास्तव में यह सत्य है क्योंकि हमने साधारण रीति पर देख लिया कि मनुष्य विद्या या विज्ञान को उत्पन्न नहीं कर सकता किन्तु किसी दूसरे विद्वान् से सीखता चला आया है, यहां तक कि हम आदिसृष्टि के विद्वानों के पास पहुंचते हैं और पाते हैं कि उन्होंने विद्या ईश्वर से ही अवश्य प्राप्त की होगी क्योंकि जड़ प्रकृति में विद्या रह नहीं सकती और जब अभाव से भाव हो नहीं सकता तो प्रकृति चेतन जीवात्मा को विद्या सिखा नहीं सकती। प्रकृति के अतिरिक्त दूसरी वस्तु जीवात्मा है, परन्तु संसार का इतिहास स्पष्ट शब्दों में और हमारा अनुभव निस्सन्देह

साक्षी दे रहा है कि एक जीवात्मा स्वयं शिक्षित होने पर ही दूसरे को शिक्षा दे सकता है परन्तु स्वयमेव कोई जीवात्मा शिक्षित नहीं हो सकता। इसलिये आदिसृष्टि में आदि पुरुष ने जड़ जगत् से और न अन्य जीवों से विद्या सीख सकते थे किन्तु निस्सन्देह उसीसे उन्होंने विद्या सीखी जो कि विद्यामय और विद्या का भण्डार है और जिसको परमेश्वर कहते हैं, फिर उन्होंने ब्रह्मा आदि ऋषियों को वह ज्ञान सिखाया और जिस प्रकार मनुष्य से मनुष्य की उत्पत्ति का क्रम प्रचलित हुआ उसी प्रकार एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को विद्या सिखाता रहा।

भाषा की परीक्षा करते हुये हमने वैदिक शब्दों को मनुष्य की स्वाभाविक भाषा सिद्ध किया था और विद्या की परीक्षा ने भी हमें बतला दिया कि विद्यारूप सहस्रधारा नदी का स्रोत भी वही ज्ञान है जिसको कि वेद के शब्द बोधन करा रहे हैं मानो वैदिक शब्द मनुष्य की स्वाभाविक भाषा और वैदिकज्ञान मनुष्य का स्वाभाविक ज्ञान है। जैसे शरीर का जीव से सम्बन्ध है वैसे ही शब्द का अर्थ से लगाव है, जैसे दाह का प्रकाश से मेल है वैसे शब्द का अर्थ से सम्बन्ध है। शब्द का पर्य्याय भाषा और अर्थ का पर्य्याय ज्ञान है। शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध का नाम वेद है।

वेदोत्पत्ति के विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "वेदभाष्यभूमिका" में सारगर्भित हेतु दिये हैं, जिनके पढ़ने से मनुष्य के सब सन्देह स्वयं निवृत्त हो जाते हैं और जिज्ञासु को वेदों के ईश्वरोक्त होने का पूर्ण निश्चय होजाता है। कोई ऐसी शंका नहीं जिसका समाधान उत्तमरीति पर उस पुस्तक में न किया गया हो, जो लोग कहा करते थे कि "ईश्वर निराकार है उससे शब्दमय वेद कैसे उत्पन्न हो सकते हैं उनके उत्तर में महर्षि लिखते हैं:—

"मन में मुखादि अवयव नहीं हैं, तथापि जैसे उसके भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यवहार में होता है वैसे ही परमेश्वर में जानना चाहिये और जो सम्पूर्ण सामर्थ्य वाला है सो किसी कार्य के करने में किसी की सहायता ग्रहण नहीं करता। जैसे देखो कि जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था उस समय निराकार ईश्वर ने सम्पूर्ण जगत् को बनाया तब वेदों के रचने में क्या शङ्का रही। जैसे वेदों में अत्यन्त सूक्ष्म विद्याओं का रचन ईश्वर ने किया है वैसे ही जगत् में भी नेत्र आदि पदार्थों का अत्यन्त आश्चर्यरूप रचन किया है तो क्या वेदों की रचना निराकार ईश्वर नहीं कर सकता ?" फिर महर्षि दर्शाते हैं कि "वेदों को पुस्तकों में लिखकर सृष्टि की आदि में ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किया था, किन्तु अग्नि, वायु, आदित्य

और अङ्गिरा महर्षियों के ज्ञान में प्रेरित किया था। जैसे बाजे को कोई बजावे या काठ की पुतली को नचावे उसी प्रकार ईश्वर ने उनको निमित्तमात्र किया था क्योंकि उनके ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई। किन्तु इससे यह जानना कि वेदों में जितने शब्दार्थ सम्बन्ध हैं वे सब ईश्वर ने अपने ही ज्ञान से उनके द्वारा प्रकट किये हैं"*।

पाणिनि, पतञ्जलि, जैमिनि, कणाद, गौतम, वात्स्यायन और कपिल आदि महर्षियों के प्रमाण वेदों के अनादि होने में देते हुये महर्षि लिखते हैं कि "जब २ परमेश्वर सृष्टि को रचता है तब २ प्रजा के हित के लिये सृष्टि की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है और जब २ सृष्टि का प्रलय होता है तब २ वेद उस के ज्ञान में सदा बने रहते हैं इसलिये उनको नित्य मानना चाहिये"।

वेद यदि ईश्वरोक्त ज्ञान है तो सृष्टि ईश्वरीय कर्म, इसलिये वेद के शब्दों के अर्थ सृष्टिनियमानुकूल होने से सत्य और उनके विरुद्ध होने से मिथ्या कहलाते हैं, वेद के सच्चे कोष सृष्टि के नियम हैं और सृष्टिनियमों के बोधक वेद हैं। सृष्टिनियमों का दूसरा नाम वेदार्थ है। सृष्टि की पुस्तक को देखने वाली आंख मनुष्य की बुद्धि है और वेद उस आंख के लिये सूर्य का काम देता है। जैसे सूर्य के प्रकाश में आंख प्राकृत पदार्थों को निर्भ्रम देख सकती है वैसे ही सृष्टि की विद्या को बुद्धि वेदरूप सूर्य के सहारे से ही निर्भ्रान्त रीति से प्राप्त कर सकती है। इस वैदिक सूर्य के लुप्त होने से पांच सहस्र वर्ष से पृथिवी पर अन्धकार छाया हुआ था और इस अन्धकार की अवस्था में जो मतमतान्तर और भिन्न २ भाषायें उत्पन्न हुईं उनका वर्णन हम पूर्व कर चुके हैं, सूर्य के अभाव में दीपकों ने जो काम किया उसका कुछ वर्णन दर्शा चुके हैं। परन्तु मनुष्य जाति के सौभाग्य का उदय हुआ कि वेद का सूर्य, बुद्धि की आंख को सत्य का नाम निर्भ्रान्त मार्ग दर्शाने के लिये चिरकाल के पश्चात् महर्षि दयानन्द के प्रताप से उदय होगया है। अन्धेरी रात फट गई, सूर्य का उदय होगया है, दीपक सब फीके पड़गये। इस वेद की ज्योति को सर्वत्र फैलाने के लिये आर्यसमाज प्रस्तुत है, वेदमार्ग पर पृथिवी के सब मनुष्यों को लाने के लिये आर्य्यसमाज का झंडा फहरा रहा है। वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिये महर्षि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थ हैं। वेदमन्त्रों के अर्थों को अष्टाध्यायी, महाभाष्य, निघण्टु, निरुक्त तथा शतपथादि आर्ष ग्रन्थों के प्रमाण से दर्शाने के लिये महर्षि दयानन्द का

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका स्वामी दयानन्द सरस्वती विरचित पृ० १२।

वेदभाष्य है। ईश्वर के वचन और कर्म में अविरोध दिखाना सदैव काल से ऋषियों का सिद्धान्त रहा है और उसी सिद्धान्त का महर्षि ने आज संसार को उपदेश किया है। सायण, महीधर आदि मनुष्य अपनी मिथ्या कल्पना को अन्धकार के समय में भ्रम से वेदार्थ बतला रहे थे अब उनके भाष्य तथा उनके अनुयायी मैक्सम्यूलर आदि पश्चिमीय शिष्यों के भ्रान्त अर्थ निस्सन्देह मृत्यु को प्राप्त होगये हैं। वह समय आवेगा जब कि योगी लोग बुद्धि के उत्तम साधन को लेकर वैदिकशब्दों के अर्थ आर्षग्रन्थों की सहायता लेते हुये सृष्टि में ढूंढेंगे और शेष वेदभाष्य जिसको महर्षि दयानन्द नहीं कराये उसको कोई ऋषिश्रेणी का मेधावी योगी और व्याकरणादि शास्त्रों का पूर्ण पण्डित ही पूर्ण करेगा। सृष्टि में वेदमन्त्रों के अर्थों को समाधिस्थ बुद्धि से दर्शन कराने वाले ही ऋषि कहलाते हैं और ऋषि का ही दूसरा नाम मन्त्रद्रष्टा है मन्त्रद्रष्टा होने के कारण ही स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द ऋषि और महर्षि कहलाये।

शब्दार्थसम्बन्धरूपी श्रुतियों को आदिसृष्टि से लेकर अनेक वर्षपर्यन्त लोग श्रवण द्वारा ग्रहण करते और स्मृति के पुस्तकालय में सुरक्षित रखते हुए अपने जीवन में वेद के एक २ शब्द के अपने आचरण से अर्थ दिखाते थे, परन्तु समय आया जब कि लोगों ने प्रमाद से अपने साधनों को निर्बल करलिया और जब वे वेद की श्रुति की दशा में न रखसके तब ऋषियों ने उस श्रुति के बोधन कराने वाले अक्षरों में वेद को लिखकर चार पुस्तकों के स्वरूप में परिणत किया और ये चार पुस्तक ऋक्, यजुः, साम, अथर्व के नाम से प्रकरणानुसार प्रसिद्ध हुये। अमैथुनी सृष्टि में पुस्तक का आवश्यकता न थी परन्तु मैथुनी सृष्टि में आवश्यकता होने के कारण पुस्तकबद्ध हुये। इस विषय में स्वामीजी ने एक व्याख्यान पूना में दिया था उसके संक्षिप्त विवरण में यह वचन लिखे हुए हैं:—

"इक्ष्वाकु के समय में लोग अक्षर, स्याही आदि लिखने की रीति को प्रचार में लाये ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इक्ष्वाकु के समय में वेद को बिलकुल कण्ठस्थ करने की रीति कुछ २ बन्द होने लगी, जिस लिपि में वेद लिखे जाते थे उसका नाम देवनागरी ऐसा है" * ।

---

* ता० २१ जुलाई १८७१ ई० को एक व्याख्यान स्वामीजी ने पूना में दिया था, उसके संक्षिप्त नोट एक रिपोर्ट की रीति पर राजस्थान आर्यपुस्तकप्रचारिणीसभा की ओर से लाला रामविलासजी सारदा ने मुद्रित कराये हैं। देखो व्याख्यान नं० ८।

सर्व विद्याओं के मूल, धर्म के दर्शक, मनुष्यमात्र के लिये सूर्यवत् ज्ञानरूपी प्रकाश के फैलाने वाले ईश्वरोक्त वेदों की शिक्षा महर्षि दयानन्द ने वाचिक और लेख-बद्ध उपदेश द्वारा सबको दी और सारा पुरुषार्थ उनके ही सत्यार्थप्रकाश करने और भाष्य रचने में अर्पण करदिया। आर्य्यसमाज का सर्वस्व और मूलधन वेद है, आर्य्य-समाज का तीसरा नियम बतला रहा है कि "वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना आर्यों का परम धर्म है।" आर्यों के लगातार पुरुषार्थ से अवश्य एक दिन वह आवेगा जब कि भूगोल पर रहनेवाले मनुष्य सब सत्य विद्याओं के मूलवेद की शरण लेते हुये अन्धकार से आच्छादित पृथिवी को वेद के तेज से स्वर्णमयी बनाते हुये अपने मनु-ष्यजीवन को सफल करेंगे।

सत्यार्थप्रकाश पर एक दृष्टि ॥

निदर्शन की रीति पर तीन सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए हमने दिखा दिया कि महर्षि ने किस उत्तम और सारगर्भित रीति से सूत्रवत् वैदिकसिद्धान्तों को सम-झाने के लिये अपने ग्रन्थों का निर्माण किया है। यदि एक एक वैदिकसिद्धान्त को पूर्ण रीति पर मनुष्य जानना चाहे तो उसके लिये महर्षि के पुस्तक पर्याप्त हैं। अब हम दर्शाना चाहते हैं कि किन २ विषयों को उनके ग्रन्थ प्रतिपादन करते हैं।

अन्धेरे में सोये हुये लोगों को जगाने की आवश्यकता है पूर्व इसके कि वे सूर्य के प्रकाश को देख सकें। भूले हुए पथिक को सीधे मार्ग में चलाने से पहिले आवश्यक है कि उसको बतलाया जावे कि तू उलटे मार्ग में जारहा है वहां से लौटकर इधर सीधे मार्ग में चला आ। सत्यार्थप्रकाश मतमतान्तरों की अविद्या में सोये हुये पुरुषों को जगाता हुआ वैदिक सूर्य के प्रकाश का दर्शन कराता है। वह उलटे मार्ग में जानेवाले यात्रियों को उच्चैःस्वर से वेद के सत्यमार्ग में जाने के लिये कह रहा है। जब मनुष्य सत्यार्थप्रकाश को आद्योपान्त पढ़ता है तो वह संसार के मतमता-न्तरों को तिलाञ्जलि देता हुआ वैदिकसूर्य की शरण में आजाता है। सत्यार्थप्र-काश प्रभात के तारे के समान है जो कि अपने उदय से रात्रि की समाप्ति करता हुआ सूर्योदय की आशा दिखलाता है सत्यार्थप्रकाश उस मनुष्य के समान है जो सोये हुये लोगों के सामने अपना एक हाथ उठाकर सूर्योदय को बतला रहा हो और दूसरे हाथ से उनको उठाने के लिये झटका देता जाय। सत्यार्थप्रकाश के दो भाग हैं एक पूर्वार्द्ध दूसरा उत्तरार्द्ध। पहिला भाग वेदरूप सूर्य को हाथ उठाकर बतला रहा

है और दूसरा मानो दूसरे हाथ से मतमतान्तरों को आलस त्यागने के लिये झटका देरहा है। यदि किसी सोने वाले को हिलाते ही रहो कि उठो उठो तो वह करवट बदल कर इधर उधर देखकर कहता है कि कहीं सूर्य नहीं दीखता अभी तो रात है मैं नहीं उठता, परन्तु जब उठाने वाले का एक हाथ सूर्य को दिखला रहा हो और दूसरा हाथ उसको हिला रहा हो तो सोने वाले आंख खोलते ही सूर्य को चढ़ता हुआ देखकर उठने का यत्न करते हैं।

सत्यार्थप्रकाश उस वैद्य के समान है जो एक हाथ में औषध की बोतल और दूसरे हाथ में रोगी के लिये पथ्य लिये खड़ा हो। यदि उत्तरार्द्ध औषध है तो पूर्वार्द्ध पथ्य है। यदि उत्तरार्द्ध मतमतान्तरों के रोगों का खण्डन करता है तो पूर्वार्द्ध सत्य वैदिकमत की आरोग्यता का मण्डन कर रहा है। जागते हुये पुरुषों के लिये केवल मण्डन हुआ करता है। परन्तु सोये हुये लोगों के लिये मण्डन और खण्डन दोनों की आवश्यकता है। मण्डन का संकेत (इशारा) वे देख सकते हैं जिनकी आंखें खुली हुई हैं परन्तु आंख खुलवाने के लिये खण्डनरूप हिलाना काम करता है। कोई २ महाशय यह कहा करते हैं कि "किसी का खण्डन नहीं करना चाहिये, केवल अपना मण्डन करदिया। लोग स्वयमेव अपने हानि लाभ को सोच लेंगे, हम क्यों किसी का मन दुखावें?" यह कथन प्रत्येक दशा में ठीक नहीं है हम मानते हैं कि जागते हुये पुरुष को मण्डन की आवश्यकता है, परन्तु सोये हुये को जिसकी आंखें देख नहीं सकतीं, पहिले जगाने की आवश्यकता है। सोये हुये पुरुष कभी २ हिलाने पर बड़बड़ाया करते हैं, पर जगाने वाले इस बड़बड़ाने से कब रुकते हैं? हानिलाभ को जो सोच सकता है वह जागरहा है, उसके लिये निस्सन्देह मण्डन की आवश्यकता है, परन्तु सोया हुआ आलस्य के मद में हानि लाभ को जान नहीं सकता उसको जनाने की आवश्यकता है। डाक्टर या वैद्य जब रोगी को चिरायता, कोनेन आदि कड़वी ओषधि देता है इसलिये कि वह भयानक ज्वर से मुक्त हो तो मूर्ख रोगी का मुंह बनाना या डाक्टर को गाली देना कभी डाक्टर को अपने शुभ काम के छोड़ने का प्रेरणा नहीं कर सकता। ओषधि पिलाते हुये रोगी का पिलाने वालों को लातें मारना उनको उस काम से विमुख नहीं बना सकता। नीरोग पुरुष केवल भोजन खाया करते हैं परन्तु रोगी भोजन के अतिरिक्त ओषधि का भी उपयोग किया करते हैं। मण्डनरूप भोजन नीरोग पुरुषों के लिये है परन्तु खण्डनरूप ओषधि और मण्डनरूप पथ्य ये दोनों रोगी के लिये आवश्यक हैं॥

उत्तम उपदेशक डाक्टर के समान रोगियों को ओषधि और भोजन दोनों दिया करते हैं। वे उनके कटु वचनों पर ध्यान न देते हुये उनको नीरोग बनाने की चिन्ता में रहते हैं। महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति में लिखा है कि "हे धृतराष्ट्र! मीठी बातें करनेवाले चाटुवादी बहुत हैं किन्तु पथ्यरूप कल्याणकारी कटुवचन के कहने और सुननेवाले दुर्लभ हैं"। चाटुवादिता का नाम उपदेश नहीं है, उपदेशक का काम मूर्खता की बोदी भित्ति को खण्डन के तीक्ष्ण शस्त्रों से गिराकर मण्डन के मसाले से नवीन मन्दिर का निर्माण करना है। पृथिवी भर के रिफार्मरों को देखिये, उपदेशकों के ग्रन्थों को पढ़िये, वे सदा इन दोनों से साथ साथ काम लेते रहे हैं। महात्मा "सुक़रात" का उपदेश हमारे सामने इसी बात को पुष्ट कर रहा है। निम्नलिखित शब्दों में "सुक़रात" अपने देशनिवासियों को सम्बोधित करता है:—

"एथेन्स निवासियो! मैं तुम्हारा सर्वोपरि मान करता हुआ तुमको प्यार करता हूं परन्तु मैं तुम्हारी अपेक्षा ईश्वर की आज्ञा पालन करूंगा। जबतक मुझ में प्राण और शक्ति है मैं ज्ञानचर्चा को बन्द नहीं कर सकता। तुमको और तुम में से प्रत्येक को सदुपदेश करने से रुक नहीं सकता। इसलिये हे मेरे स्वदेशनिवासियो! मैं कहता हूं कि चाहे मुझे छोड़ो या मारो, पर इस बात का निश्चय रक्खो कि मैं अपने जीवनोद्देश्य को पलट नहीं सकता। एकवार तो क्या चाहे कई वार मुझे इस उपदेश के लिये मरना पड़े तो भी मुंह न मोड़ूंगा"।

उपदेशक "सुक़रात" को विष का प्याला दिया गया और उसने हर्षपूर्वक पीते हुये प्राण त्याग दिये, परन्तु अन्त समय तक उपदेश करने से न रुका। वह आत्मा को अजर अमर बतलाता हुआ यूनान के मतमतान्तरों और कुरीतियों का खण्डन करता था। धनवान् और शक्तिमान् लोग उसकी उस खण्डनरूप कटु ओषधि को बुरा बतलाते हुये उसके शत्रु बनगये, यहांतक कि उसको मरवा डाला परन्तु आज पश्चिमीय जगत् से पूछो तो वह "सुक़रात" को यूनान का भूषण मान रहा है।

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में ईश्वर की आज्ञा पालते हुये मनुष्यजाति के उद्धार के लिये उपदेश किया, चारों ओर से ईंटें और पत्थर खाता हुआ महर्षि वेदोपदेश से नहीं रुकता, पान और मिठाई में विष दिया गया परन्तु परमवीर अपने उद्देश्य से एक इंच भी नहीं सरकता। परोपकारी लोगों को यहांतक प्यार करता है कि उनकी रोगनिवृत्ति के लिये ओषध उनकी गालियां खानेपर भी देने से नहीं रुकता,

परञ्च सुक़रात के सदृश देशनिवासियों से बढ़कर ईश्वराज्ञा पालन में तत्पर है। कोई वस्तु भी उसको सत्य से हटाकर असत्य की ओर नहीं लेजासकती, विष खाकर प्राण देदिये परन्तु आयुभर चाटुवादिता को छोड़कर सदुपदेश ही किया और मरने पर भी सत्यार्थप्रकाश में भाविनी प्रजा के लिये वह ओषधि और पथ्य दोनों छोड़ गया। महर्षि ने संसार को अन्धकार में सोते हुये अनुभव किया था इसलिये वह खण्डन से जगाना चाहता था। महर्षि ने संसार में मनुष्यजाति को रोग में ग्रस्त पाया था इसलिये वह खण्डन की कटु ओषधि से काम लेना चाहता था। जब वे जोधपुर में पधारे तो कई लोगों ने कहा कि महाराज! यहां कोमलता से काम लेना, उस समय महर्षि के यह वचन कि "मैं पाप के वृक्षों की जड़ निहन्ने से नहीं काटता किन्तु कुल्हाड़ी से काटता हूं" उनकी परमबुद्धिमत्ता और पूर्ण हित को दर्शा रहे हैं। दीर्घ रोगी को यदि अत्यन्त कड़वी ओषधि दीजावे तो उससे वैद्य की परम बुद्धिमत्ता और पूर्ण हित प्रकट होता है। रोग की दशा में ओषधि कड़वी लगती है परन्तु आरोग्य होने पर रोगी आयु भर वैद्य का कृतज्ञ बन जाता है मूर्खता से लोग स्वामीजी को कहें कि उन्होंने खण्डन से लोगों का जी दुखाया, परन्तु वे रोगी जो इस ओषधि के प्रभाव से चंगे हो चुके हैं वे आयुभर उनके उपकार को नहीं भूल सकते। संसार भर के लिये सत्यार्थप्रकाश ऋषि के उपदेश को लिये हुये विराजमान है, इसका उद्देश्य अन्धकार से निकाल कर मनुष्यजाति को प्रकाश के दर्शन कराना है।

सत्यार्थप्रकाश के लिखते समय महर्षि के हृदय में जो भाव उत्पन्न हुये होंगे, उनका अनुमान पण्डित गुरुदत्तजी के कथनानुसार उनकी प्रतिज्ञा से विदित होता है जिसमें वह अपने सत्यसंकल्प और शुभ कामना का हमें बोधन करा रहे हैं। योगीराज के सिवाय और कौन मनुष्य इस मन्त्र का उच्चारण ऐसी दशा में कर सकता है इसमें वह परमेश्वर से प्रतिज्ञा करते हैं कि "हे परमेश्वर! आप ही अन्तर्यामीरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, मैं आपको ही प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूं क्योंकि आप सर्वत्र व्याप्त होकर सब को नित्य ही प्राप्त हैं। जो आपकी वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसी का मैं सब के लिये उपदेश व आचरण भी करूंगा, सत्य बोलूं, सत्य मानूं और सत्य ही करूंगा, सो आप मेरी रक्षा कीजिये, सो आप मुझ सत्यवक्ता आप्त की रक्षा कीजिये कि जिससे आपकी आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आप की आज्ञा है वही धर्म और जो उस से विरुद्ध है वही अधर्म है धर्म से प्रीति और अधर्म से घृणा सदा करूं ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा"।

ईश्वर को प्रत्यक्ष कहने के अधिकारी योगीराज की इस प्रतिज्ञा के सम्बन्ध में हमारा लेख करना ऐसा है जैसा कि सूर्य के प्रकाश को दीपक से दिखाना, इसलिये हम इस पर अधिक लेख न करते हुये केवल इतना ही कहेंगे कि महर्षि ने ईश्वर की आज्ञा पालन करने के लिये ही इस व्रत को धारण किया था।

प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकार आदि नामों की व्याख्या है

सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में महर्षि उसके नाम की व्याख्या करते हैं जिसकी आज्ञा पालन के लिये उन्होंने अपने आपको अर्पण किया था। " ओ३म् " परमात्मा का सर्वोत्तम नाम बतलाते हुये वे " ओ३म् " की अकार मात्रा को विराट्, अग्नि, विश्व। उकार को हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस। मकार को ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ का वाचक बतलाते हैं। देव, कुवेर, पृथिवी, आकाश, वसु, रुद्र, जल, चन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, यक्ष, गुरु, अज, देवी और निरञ्जन आदि नाम व्याकरण की रीति से ईश्वर के ही बतलाये हुये वह पौराणिक लोगों के मङ्गलाचरण के कल्पित क्रम का खण्डन करते हुये वेद उपनिषद् और दर्शनशास्त्रों के प्राचीन ढङ्ग को इन शब्दों में बतलाते हैं कि "वेद आर्षग्रन्थों में कहीं ऐसा मंगलाचरण देखने में नहीं आता, हां उनमें ओ३म् तथा अथ शब्द तो देखने में आते हैं "श्रीगणेशाय नमः" इत्यादि शब्द ग्रन्थारंभ में लिखने की रीति प्राचीन समय में न थी और " हरिः ओ३म् " का प्रयोग भी ग्रन्थारम्भ में पौराणिक और तांत्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से ही प्रचलित हुआ है, इसलिये "ओ३म्" या "अथ" शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखने चाहियें।

द्वितीय समुल्लास में सन्तान की शिक्षा और रक्षा का वर्णन है

शतपथ के प्रमाण से इस समुल्लास में वह सिद्ध करते हैं कि मनुष्य के तीन शिक्षक हैं प्रथम माता, द्वितीय पिता, तृतीय आचार्य। जो कि बचपन में पड़े हुये संस्कार चिरस्थायी होते हैं इसलिये वे अनुरोध करते हैं कि सन्तान को उत्तम शिक्षा प्रारम्भ ही से माता पिता करते रहें और भूत प्रेत आदि भ्रान्तियुक्त बातों से उनको न डरावें और ऐसा यत्न करें कि बालक ब्रह्मचारी और जितेन्द्रिय बनें जन्मपत्र का यथार्थ चित्र दिखलाते हुये सूर्य्यादि ग्रह पीड़ा के भ्रम से बचने की शिक्षा करते हैं और लिखते हैं कि "माता, पिता और आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य

उपदेश करें और यह भी कहें कि जो २ हमारे धर्मयुक्त कर्म उन २ का ग्रहण करो और जो २ दुष्ट कर्म हों उनका त्याग करदिया करो" । जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन, छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें, मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें, अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें, इत्यादि बहुतसे शिक्षा-रत्नों से यह समुल्लास जटित हो रहा है * ।

तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य्य, पठनपाठनव्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने की रीति है

आठ प्रकार के मैथुनों से सन्तानों को बचाकर पूर्ण ब्रह्मचर्य की शिक्षा करते हुये महर्षि मनु के वचनानुसार पुत्र पुत्रियों को वेदविद्या से युक्त करना दर्शाते हैं, फिर गायत्री मन्त्र का उपदेश करते हुये स्नान, आचमन, प्राणायाम की विधि वर्णन करते हैं प्राणायाम के विषय में लिखते हैं कि "प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होजाते हैं, पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र अर्थात् सूक्ष्म होजाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है । इससे मनुष्य-शरीर में वीर्यवृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े से काल में समझकर उपस्थित कर लेगा, स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे ।" फिर सन्ध्योपासना के विषय में लिखते हैं कि "न्यून से न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करें जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करें" । होम की विधि और होम के लाभ प्रबल युक्तियों से बतलाते हुये महर्षि लिखते हैं कि "प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छः २ माशे घृतादिक प्रत्येक आहुति का प्रमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करें तो बहुत अच्छा है । इसीलिये आर्यवरशिरोमणि ऋषि महर्षि, राजे महाराजे लोग बहुतसा होम करते और कराते थे, अबतक होम करने

* दूसरे समुल्लास में जो निर्बल स्त्रियों को दूध पिलाने का निषेध किया है, उससे यह न समझना चाहिये कि वे आरोग्य और बलवती स्त्रियों को भी दूध पिलाने से रोकते हैं क्योंकि वे लिखते हैं कि धाई आदि दूध पिलावें, इसलिये ग्रन्थकर्त्ता का आशय निर्बल स्त्रियों को जो कि प्रसूत के समय और भी निर्बल हो जाती हैं दूध पिलाने से रोकने का है न कि आरोग्य और हृष्ट पुष्ट स्त्रियों को ।

का प्रचार रहा तबतक आर्यावर्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था अब भी प्रचार हो तो वैसा ही होजावे"। फिर बतलाया है कि ब्रह्मचर्य आश्रम में केवल ब्रह्मयज्ञ अग्निहोत्र का ही करना होता है।

छान्दोग्य उपनिषद् के लेखानुसार ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का वर्णन किया है। पहिला कनिष्ठ जो २४ वर्ष तक का ब्रह्मचर्य है, २४ वर्ष ब्रह्मचर्य रखने वाले की आयु का परिणाम ७० वा ८० वर्ष बतलाते हैं। दूसरा मध्यम जो कि ३६ वर्ष का है और तीसरा उत्तम जो कि ४८ वर्ष तक धारण किया जाता है। उत्तम ब्रह्मचर्य को उत्तम रीति से धारण करनेवाला अपनी आयु को ४०० वर्ष तक बढ़ा सकता है। कई विद्वान् बतलाते हैं * कि प्राचीन अरबनिवासी, ब्राजील के रहनेवाले और ब्राह्मण लोग दोसौ या तीनसौ वर्ष तक जीते थे। प्रोफ़ेसर "हूफ़लैण्ड" का कथन है कि "जिसको युवा होने में देर लगे उसकी आयु भी अधिक होगी"। डाक्टर "फ्लन्स्टन" † का कथन है कि "प्राय: जन्तु उससे छ: गुना जिया करते हैं, जितनी देर कि उनको युवा होने में लगती है"। योगदर्शन के भाष्य ‡ में लिखा है कि "श्वास ही के आश्रय से प्राणियों का जीवन है उसी को निरोध करने से मनुष्य की आयु दुगुनी, तिगुनी, चौगुनी तक हो सकती है और निम्नलिखित कोष्ठ से दिखलाया है कि जो प्राणी कम श्वास लेता है वह अधिक जीता है"।

नाम प्राणी.	संख्या श्वास प्रतिमिनट.	आयु का परिमाण वर्षों में.
खरगोश	३८	८
बन्दर	३२	२१
कुत्ता	२६	१४
घोड़ा	१६	५०
मनुष्य	१३	१००
सांप	८	१२०
कछुआ	५	१५०

* पुस्तक फूड्स एण्ड फीरन एशिया पृ० ६१।

† मेडिकल एस नं० १ पृ० २२।

‡ योगदर्शन भाष्य पं० रुद्रदत्तजी सम्पादक आर्यावर्त दानापुर विरचित पृ० ६ व ७।

उक्त बातों को विचारते हुये हम कह सकते हैं कि ४८ वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य रखनेवाला परमयोगी योगबल से १०० वर्ष की आयु को ४०० वर्ष तक बढ़ा सकता है। किस आयु का ब्रह्मचारी किस आयु की ब्रह्मचारिणी से विवाह करे इसके विषय में महर्षि दर्शाते हैं कि विवाह की अवस्था स्त्री पुरुष दोनों की एकसी न होनी चाहिये, किन्तु निम्नलिखित प्रकार से होनी चाहिये:—

ब्रह्मचारी की आयु.	ब्रह्मचारिणी की आयु.
२५	१६
३०	१७
३६	१८
४०	२०
४४	२२
४८	२४

स्त्री को प्राय: १३ वर्ष की आयु से मासिकधर्म आरम्भ होजाता है और वह १६ वर्ष की आयु में सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाती है। परन्तु जहां लड़की १६ वर्ष की वय में विवाह के योग्य होती है वहां लड़का २५ वर्ष में विवाह के योग्य होता है स्त्री जहां पुरुष से पहिले युवती होजाती है वहां उससे पहिले ही सन्तानोत्पत्ति के अयोग्य भी होजाती है। डाक्टर "होलब्रूक" एम० डी० का कथन है कि "आरोग्यवती स्त्रियां प्रजनन शक्ति ४० और ४५ वर्ष के भीतर खो बैठती हैं"। उक्त साम्य गम्भीरविद्या और बुद्धि का फल है। सायन्स प्रतिदिन इसकी पुष्टि कर रहा है और अनुभव इसकी उत्तमता की साक्षी दे रहा है।

जिन बातों से ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी को बचना चाहिये उनका वर्णन महर्षि इस प्रकार करते हैं कि "ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का संग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा, अंगों का मर्द्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आंखों में अंजन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, नाच, गान और बाजा बजाना, द्यूत (जुवा खेलना), निन्दा, मिथ्याभाषण और परहानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ दें। सर्वत्र एकाकी सोवें, वीर्यस्खलित कभी न करें,।जो कामना से वीर्यस्खलित करदें तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्यव्रत का नाश करदिया"।

सत्य की परीक्षा ५ प्रकार की वर्णन करते हुये महर्षि प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों की विशेष व्याख्या दार्शनिक रीति से करते हैं कि जिसको पढ़कर मनुष्य शास्त्रों की महिमा और ऋषियों की अलौकिक बुद्धि का परिचय प्राप्त करता है। पश्चिमीय सायन्स का यह कथन कि ६४ तत्त्व हैं, मिथ्या प्रतीत होता है जब कि कणाद महर्षि के सूत्र पाठक के दृष्टिगोचर होते हैं वास्तव में तत्त्व (भूत) केवल पांच ही हैं। एक अमेरिकन विद्वान् * इस बात को अनुभव करता हुआ दिखलाई दे रहा है कि भूत पांच ही होने चाहियें और उनके ५ नाम वह अपने पुस्तक में लिखता है। अंग्रेज़ी भाषा की अपूर्णता के कारण यद्यपि उसका लेख इतना स्पष्ट नहीं जितना कि शास्त्रकारों का होता है तथापि वह लेख पश्चिमीय लोगों को ६४ तत्त्वों के विश्वास से हटाने वाला है। इसी विषय पर एक और पुस्तक में आलोचना की गई है † जिसका सारांश यह है कि पश्चिमीय सायन्स ने आजतक केवल एक "तेज" भूत का ही पता लगाया है शेष भूतों का उनको ज्ञान नहीं। इनका गम्भीर आशय समझाने के लिये प्रत्येक पुरुष को यह समुल्लास ध्यान से पढ़ना चाहिये। वर्त्तमान पश्चिमीय सायन्स यह भी निश्चित नहीं कह सकता कि भूत ६४ ही हैं इससे अधिक नहीं, उसकी यह अनिश्चित दशा बतला रही है कि वह दीपक के प्रकाश में टटोल रहा है। हम जब यूरोप के विद्वानों को सृष्टि के पदार्थों का विवेचन करता हुआ पाते हैं तब यह आशा होती है कि एक दिन उनको यह सत् सिद्धान्त कि "भूत पांच ही हैं" स्वीकार करना पड़ेगा। पं० गुरुदत्तजी कहा करते थे कि "मनुष्य के पांच ज्ञानेन्द्रिय इस बात को जतला रहे हैं कि भूत पांच ही हैं।" इसी स्थान पर महर्षि मन और आत्मा का लक्षण बतलाते हुये दार्शनिक गम्भीर सिद्धान्तों का वर्णन करते हैं। जिसने पश्चिमीय सायन्स और फ़िलासफी को समाप्त करलिया हो, वह इन सूत्रों के समझने में अपने आपको असमर्थ पाता हुआ पंडित गुरुदत्तजी के वचनों में सहसा कह उठता है कि "जहां पश्चिमीय सायन्स की समाप्ति होती है वहां वैदिक विज्ञान का आरंभ है"। कौनसा सूक्ष्म विषय है जिसको ऋषियों ने इन सूत्रों में बद्ध नहीं कर दिया, समुद्र को तूंबी में बन्द करने की कहावत यहीं पर चरितार्थ होती है। महाभारत युद्ध से पहिले समय की विद्या का अनुभव करने के लिये यह सूत्र दृष्टान्त का काम दे रहे हैं। इसके पश्चात् महर्षि निम्नलिखित पठनपाठन विधि का वर्णन करते हैं, जिससे

* स्टीलर की ए. जे. डेविस विरचित पृ० २७-८७।

† मेम्बर्स फ़ायन फोर्सेज बा० रामप्रसाद एम. ए. मेरठनिवासी विरचित पृ० ३१

भलीभांति यह जाना जासकता है कि हमें अपनी सन्तानों को ब्रह्मचर्य्यावस्था में कौन २ से ग्रन्थ पढ़ाने चाहियें। "अब हम पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं प्रथम पाणिनिमुनि कृत शिक्षा जो कि सूत्ररूप है, माता पिता सिखलावें। तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ, फिर पदच्छेद, फिर समास और अर्थ उदाहरण सहित जो २ सूत्र आगे पीछे के प्रयोग में लगें, उनका कार्य सब बतलाया जावे। एक वार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ाकर धातुपाठ अर्थ सहित और दश लकारों के रूप पढ़ावें। पाणिनि ऋषि ने एक सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द, अर्थ और सम्बन्धों की विद्या प्रतिपादित करदी है। धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण पढ़ाकर पुनः दूसरीवार शंकासमाधानपूर्वक अष्टाध्यायी की द्वितीयावृत्ति करावें। तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावें, डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़कर तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर अन्य शास्त्रों को शीघ्र और सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं। जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी और मनोरमा आदि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता। महर्षि लोगों का आशय जहांतक होसके सुगम अर्थात् जिसके ग्रहण करने में थोड़ा समय लगे इस प्रकार का होता है। विपरीत इसके क्षुद्राशय लोगों का आशय ऐसा होता है कि जहांतक बने वहांतक कठिन रचना करनी। जैसे पहाड़ का खोदना और कौड़ी का पाना और आर्षग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना और बहुमूल्य रत्नों का पाना।

व्याकरण को पढ़कर यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छः या आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें, अन्य नास्तिककृत अमरकोशादि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें। तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ को चार महीने में सीख सकते हैं, वृत्तरत्नाकर आदि क्षुद्र ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें। तत्पश्चात् मनुस्मृति, वाल्मीकीयरामायण और महाभारत के विदुरनीति आदि अच्छे २ प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों, एक वर्ष के भीतर पढ़लें। तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त इन षट्दर्शनों को जहांतक बनसके ऋषिकृत व्याख्या सहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरलव्याख्यायुक्त पढ़ें पढ़ावें। परन्तु वेदान्तसूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को अवश्य पढ़लेवें ये सब दो वर्ष के भीतर पढ़लेवें। पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ के सहित चारों वेदों

को स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध और क्रिया सहित पढ़ना योग्य है। इस प्रकार वेदों को पढ़कर आयुर्वेद जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषिप्रणीत वैद्यक शास्त्र है उसको अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण ज्ञानपूर्वक चार वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें। तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है, इसके दो भेद हैं एक राजसम्बन्धी दूसरे प्रजासम्बन्धी। राजकार्य में सब सेना के अध्यक्ष शस्त्र अस्त्र विद्या नाना प्रकार के व्यूहों का रचना जो कि युद्ध के समय क्रिया करनी होती है उसको यथावत् सीखें। इस राजविद्या को दो वर्ष में सीखकर गान्धर्ववेद कि जिसको गानविद्या कहते हैं, उसमें स्वर, राग, रागिनी, समय, ताल, ग्राम, तान आदि वादित्र वादनपूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो २ आर्षग्रन्थ हैं उनको पढ़ें, परन्तु भड़वे, वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियों के समान व्यर्थ आलाप कभी न करें। अर्थवेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ, गुण, विज्ञान, क्रिया, कौशल, नानाविध पदार्थों के निर्माणपूर्वक सीखें। तत्पश्चात् दो वर्ष में ज्योतिःशास्त्र सूर्य्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों को जिनमें बीजगणित, अङ्कगणित, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है उसको यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्तादि विधायक फलित ग्रन्थ हैं उनको कल्पित समझ कर कभी न पढ़ें न पढ़ावें। ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ाने वाले करें कि जिससे २० या २१ वर्ष के भीतर समग्र विद्या, उत्तम शिक्षा प्राप्त होकर मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहें। जितनी विद्या इस रीति से २० या २१ वर्ष में आसकती है उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष (१००) में भी नहीं आसकती।

इस समुल्लास के अन्त में इस प्रश्न का कि क्या स्त्री और शूद्र को वेद पढ़ना चाहिये युक्ति और प्रमाण से समीचीन उत्तर देते हुये महर्षि निश्चय कराते हैं कि सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को वेद पढ़ने का अधिकार है।

चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहस्थाश्रम का विषय है

स्वयंवर की प्राचीन मर्यादानुसार दूर देशों में विवाह करने के लाभ दर्शाते हुए आठ प्रकार के * विवाहों का वर्णन महर्षि मनु के वचनानुसार करते हैं। बीच में ही

* मानवीय प्रकृति का पूर्ण अनुभव करने पर महर्षियों ने आठ प्रकार के विवाह नियत किये थे विद्वान् एण्ड्रो जैक्सन डेविस ने हारमोनिया के चौथे भाग में सात प्रकार के विवाहों का आर्यसिद्धान्तानुकूल होना वर्णन किया है। अत्यन्त समीप होने से आठवें को भी सातवें के अन्तर्गत ही समझ लेना चाहिये।

वर्णव्यवस्था का गुण कर्मानुसार होना दर्शाते हुये, ब्राह्मण को पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना लेना बतलाते और फिर इनकी व्याख्या करने के पश्चात् लिखते हैं कि यह १५ कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें। प्रजा-रक्षा, दान, धृति आदि ११ क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण बतलाये हैं, इसी प्रकार वैश्य और शूद्र के गुण कर्म का पृथक् २ वर्णन किया है। आजकल के कई विद्वान् जोश में आकर प्रत्येक मनुष्य के लिये हल चलाना (जो कि वैश्य का कर्म है) आवश्यक बतलाते हुये भूल करते हैं। प्रोफ़ेसर "फ़िसक" * का कथन है कि विद्वानों को जीविका की चिन्ता से मुक्त होना चाहिये। डार्विन के विषय में लिखा है कि उसको जीविका कमाने की चिन्ता न थी, वह अपनी ग्रन्थरचना में लगा रहता था। भूगर्भविद्या (geology) का प्रचार "लायल" भी रोटी कमाने की चिन्ता से मुक्त होकर वैज्ञानिक पर्यालोचन में तत्पर रहता था। आज संसार इस देश के वर्ण-विभाग और गुण, कर्म विभाग की प्रशंसा कर रहा है और अपने वर्ताव से उन लोगों की भूल दिखा रहा है जो कि एक ही वर्ण में मनुष्यजाति को रखना चाहते हैं।

महर्षि ने इस समुल्लास में स्त्री पुरुष के परस्पर व्यवहार की रीति को वर्णन करते हुये प्राचीन आर्य्य परिवार का आदर्श दिखा दिया है। साथ ही गृहस्थ के पांच नित्यकर्मों का (जिनको कि पंचयज्ञ कहते हैं) वर्णन किया है। ठगों और पाखण्डियों से सावधान रहने की शिक्षा करते हुये गृहस्थों को शुभ गुणों के धारण करने की आवश्यकता जतलाई है। जहां उन्होंने गृहाश्रम के मूल विवाह का आदर्श सब के सामने रक्खा है वहां आपत्काल में द्विजों के लिये नियोग का वर्णन किया है। वह नियोग की आज्ञा वेदमन्त्रों से दिखाते हुये उसकी विधि स्मृतियों से बतलाई है। जो लोग वर्तमान अवस्था में (जब कि वर्णाश्रम धर्म का अभाव है) नियोग का प्रचलित होना भ्रम से माने हुये हैं उनको अनेक प्रकार के संशय (जिनका मूल किसी युक्ति या प्रमाण पर नहीं किन्तु उनकी भ्रान्त मति या रुचि पर निर्भर है) उत्पन्न हो रहे हैं। परन्तु जो लोग समझते हैं कि वर्णाश्रम धर्म के पुनः प्रचलित होने पर नियोग को प्रचार देना चाहिये उनको यह आपत्काल का धर्म, जिसका अभिप्राय पाप को दूर करने का है, अत्यन्त ही बुद्धिसम्मत और उचित मालूम देता है। सच तो यह है कि लोग आज विवाह के उद्देश्य को ही नहीं समझ सकते। उनके रसिकमस्तिष्क में विवाह विषयासक्ति का एक साधन है, जब वे

* चार्ल्स डारविन हिज़ लाइफ़ एण्ड वर्क पृष्ठ २६ हम्बोट पुस्तकालय प्रकाशित।

विवाह को ही विषयासक्ति का साधन मानते हैं तो उनसे आशा करना कि वे नियोग की उत्तमता को समझ सकें, हमारी भूल है। कमलबाय वाले को सारा संसार ही पीला दीखता है, पापी हृदय शुद्ध नियमों को पापयुक्त ही अनुभव करते हैं। आपत्काल की दशा में आर्य लोग नियोग किया करते थे इतिहास बतलाता है कि पाण्डुराजा की स्त्री कुन्ती और माद्री ने नियोग किया था, यही नहीं किन्तु महर्षि व्यास ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मरजाने के पश्चात् उनकी स्त्रियों के साथ नियोग किया था। जैसे निद्रा से आरोग्यता का अनुभव किया जा सकता है और स्वप्न से मन की दशा को जांच सकते हैं वैसे ही नियोग समाज की सच्चरित्रता को प्रकट करता है। नियोग के महत्व को वही समझ सकते हैं जो कि निष्पक्ष होकर वर्तमान विवाह के वेष में विषयासक्ति का अनुभव कर सकते हैं। केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये ऋतुकाल में स्त्रीसंग करना विवाह और इसके विपरीत सब कुचेष्टा, विषयासक्ति वा व्यभिचार है चाहे वह विवाह के वेष में क्यों न कीजावे। ब्रह्मचर्य्य की जड़ पर कुल्हाड़ा रखने वाले बनावट और दिखावट के रोग में फंसे हुये लोग यदि ऋषियों के उन वेदोक्त कार्य्यों को, जो कि पापनिवृत्ति के लिये हैं, उलटा न समझें तो कौन समझे। जब संसार बनावट के रोग से मुक्त होकर विवाह के उच्च आदर्श को धारण करेगा, उसी* दिन उनको आपत्काल की दशा में नियोग की आवश्यकता सूझेगी और फिर प्रतीत होगा कि ऋषियों के काम सृष्टिक्रम पर निर्भर होने के कारण छिद्ररहित हैं।

पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम का वर्णन है।

वेदोक्त वर्णाश्रम धर्म के अभाव से जो दुर्गति इस समय यूरोप, अमेरिका आदि सभ्य देशों की होरही है उसको वर्णन करने के लिये एक अलग पुस्तक चाहिये। उसको वर्णन करने की अपेक्षा हम फ़िलासफर "हैनरी जार्ज" से लेकर "एडवर्ड विलयम" तक कई ग्रन्थरचयिताओं के लेखों से भले प्रकार जान सकते हैं। सोशियलइज्म (सामाजिकधर्म) के प्रचारक अपने लगातार उद्योग से उत्तम सामाजिक अवस्था के लिये हाथ पांव मार रहे हैं। "रिची" से विद्वान् वीरता के साथ बतला रहे हैं कि समाज की दशा को उत्तम बनाने के लिये † डार्विन का सिद्धान्त बिल-

* डाक्टर ट्राल एम. डी. और लोईकोन जैसे अनेक डाक्टर इस बात को स्वीकार करते हैं कि विवाह का उद्देश्य केवल सन्तानोत्पत्ति है।

† डार्विनइज्म एण्ड पोलिटिक्स डैवेड, जी. रिची एम. ए. विरचित और हम्बोट पुस्तकालय प्रकाशित।

कुल निकम्मा है। दरिद्रता वर्तमान पश्चिमीय सभ्यता के साथ ऐसी लगी हुई है जैसे कि वृक्ष के साथ पत्ते लगे हुये होते हैं। पश्चिम में वर्णाश्रम के स्वप्न देखने वाले आये दिन लोगों को आशा दिला रहे हैं कि पृथिवी पर वह दिन आवेगा जब कि भारतीय वर्णाश्रम धर्म के अनुसार संसार अपना आचार व्यवहार करेगा और प्रत्येक अपने योग्य काम करने से एक दूसरे की सच्ची सहायता करता हुआ दिखाई देगा और मनुष्य इस भूमि को सुखविशेष के कारण स्वर्ग कहेंगे। परन्तु इन स्वप्नों के देखनेवालों को ऋषियों के वर्णाश्रम का पता तक नहीं।

हर्ष की बात है कि इन स्वप्नों को जाग्रत में लानेवाला, यूरोप और अमेरिका के सामाजिक संशोधन करने वालों को मङ्गलसमाचार देने वाला, जाति और समय का यथोचित विभाग करने वाला वर्णाश्रमरूप सिद्धान्त महर्षि दयानन्द के उपकार से आज प्रकट होगया है। महर्षि ने तीसरे समुल्लास में ब्रह्मचर्य्य और चौथे में गृहस्थाश्रम का वर्णन किया था। इस पांचवें समुल्लास में जीवन के शेष भागों का (जिनको कि वानप्रस्थ और संन्यास कहते हैं) वर्णन किया है। जल में रहकर कमल के समान जल से निर्लेप रहने का उपाय ऋषियों ने ही इस आश्रम व्यवस्था के बल से हस्तगत किया था। संसार में रहकर संसार को परमार्थ का साधन बनाना ऋषियों का ही काम था। आज जहां मनुष्य को मृत्यु समय पर्य्यन्त प्राय: रोटी कमाने की चिन्ता लगी रहती है, वहां सब प्रकार के भय को दूर करते हुये वर्णाश्रम व्यवस्था के कारण ही समाज से यथोचित पुरस्कार (पेन्शन) पाये हुये प्राचीन आर्य लोग अपनी आयु का अर्द्धभाग परमार्थ के लिये लगाते थे। लोकैषणा को त्यागने वाले पुरुष ही वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर सकते हैं और इस तीसरे आश्रम में तप आदि उत्तम साधनों के द्वारा आत्मिक शक्तियों को बढ़ाते हुये उस सब से अन्तिम और सब से बड़े आश्रम के कि जिसमें लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणा इन तीनों एषणाओं का त्याग करना पड़ता है, अधिकारी बनते हैं। इस समुल्लास को पढ़ते हुये शिष्य के ज्ञाननेत्रों के सन्मुख ऋषियों का समय आजाता है जिस समय में कि लोग ब्रह्मचर्य्य और गृहस्थ आश्रम का पालन करते हुये वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में मुक्ति के लाभार्थ प्रविष्ट होते थे।

षष्ठ समुल्लास में राजधर्म का वर्णन है।

इस समुल्लास के आदि में महर्षि विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा और राजार्य्य-

सभा का वर्णन करते हुये राजार्य्यसभा के सभापति का नाम राजा बतलाते हैं। प्राचीन समय में जब कि शूद्र गुणकर्म की उत्कृष्टता से ब्राह्मण और ब्राह्मण गुणकर्म की हीनता से शूद्र होजाता था यह समझना कि सभापति या राजा का पुत्र ही राजा बनाया जाता होगा सर्वथा भ्रम है। इक्ष्वाकु राजा हुआ तो इसलिये नहीं कि वह राजकुल में उत्पन्न हुआ था अथवा उसने बलात्कार से राज्य प्राप्त किया हो किन्तु सारी प्रजा ने उसे उसकी योग्यतानुकूल राजसभा में अपना अध्यक्ष बनाया।

राजा सगर सुशील और नीतिमान् था इस राजा का "असमंजस" नामक पुत्र बड़ा दुष्ट और मूर्ख था उसने एक दरिद्री के बालक को पानी में फेंक दिया। इस अपराध का न्याय राजार्य्यसभा के सन्मुख होने पर राजा ने उसे दण्ड दिया और उसे एक कारागार में, जो निर्जन वन में था, रक्खा। इसी का नाम न्याय है * इस समुल्लास में दण्ड, राजकर्त्तव्य, राजाओं के व्यसन, मन्त्री, दूत आदि राजपुरुषों के लक्षण, युद्ध, कर, न्याय, साक्षी, अपराधियों का ताड़न आदि अनेक विषयों को महर्षि मनु के प्रमाणानुसार वर्णन किया है। ईरान, मिस्र, यूनान और रोम ने राजधर्म की वेदोक्त शिक्षा मनुस्मृति से ही ग्रहण की थी जिसका कि वर्णन इस समुल्लास में भर रहा है। इस समुल्लास की समाप्ति पर महर्षि निम्नलिखित प्रश्नोत्तर लिखते हैं (प्रश्न) संस्कृत विद्या में पूरी राजनीति है वा अधूरी? (उत्तर) पूरी है क्योंकि जो भूगोल में राजनीति चली और चलेगी यह सब संस्कृत विद्या से ही लीगई है।

सप्तम समुल्लास में ईश्वर और वेद का विषय है

एक सच्चिदानन्द ईश्वर को वेदोक्त प्रमाणों से सिद्ध करते हुये उसके गुणों की अत्युत्तम व्याख्या करने से लोगों के संशय निवारण करने के पश्चात् महर्षि स्तुति प्रार्थना व उपासना का भेद और विधि बतलाते हैं। ईसाई ब्रह्म आदि लोग पाठमयी प्रार्थना से ईश्वरप्राप्ति भ्रम से मान रहे हैं, परन्तु महर्षि ने दर्शा दिया है कि सच्ची प्रार्थना को वेदमन्त्रों ने सङ्कल्प के नाम से बोधन कराया है और सङ्कल्प या वैदिक प्रार्थना शुभगुणों के धारण करने की इच्छा का नाम है केवल मुख से उच्चारण करने का नाम प्रार्थना नहीं। इस बात को दर्शाने के लिये वह लिखते हैं कि "मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसका वैसा ही अनुष्ठान व आचरण भी करना चाहिये"। प्रार्थना के पश्चात् अष्टाङ्ग योग रीति से उपासना का वर्णन किया है। इसी समुल्लास

* व्याख्यान नं० ८ पृ० ८।

में अद्वैतवाद का प्रबल खण्डन करते हुये जीव और ब्रह्म के स्वरूप का भिन्न २ निरूपण किया है जिसके पढ़ने से अद्वैतवाद का शब्दमय जाल तोड़ने के लिये मनुष्य समर्थ होजाता है। अन्त में शब्दार्थ सम्बन्धरूप अनादि वेद के ईश्वरोक्त होने पर युक्ति और प्रमाण देते हुये वेदोत्पत्ति का वर्णन किया है। निर्भ्रान्त वचनों के मूल्यवान् रत्न युक्ति और प्रमाण के स्वरूप में यहां भी चमकते हुये मनुष्य के मन को वेदज्योति से प्रकाशित करते हुये आनन्द का मार्ग दर्शा रहे हैं। पुराणों की मिथ्या कल्पना और अद्वैतवाद का भ्रमजाल इस समुल्लास के वज्रप्रहार से छिन्नभिन्न होते हुये "सत्यं जयति नानृतम्" इस आर्षवचन की सत्यता को दर्शा रहे हैं।

अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन है

वेदोक्त प्रमाणों से ईश्वर को उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकर्ता सिद्ध करते और ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन पदार्थों को अनादि दर्शाते हुये नास्तिकों की अनेक प्रकार की युक्तियों का प्रबल खण्डन करते हैं। आदिसृष्टि में मनुष्य की उत्पत्ति का वर्णन करते हुये सायन्स के अनेक विज्ञानसम्बन्धी प्रश्नों का समाधान कर दिया है। रैव्यूलेशन (Revolution) पश्चिमीय अन्धकार इस समुल्लास के सामने कपूर होता हुआ दिखाई देरहा है। यूरोप के विद्वान् सृष्ट्युत्पत्ति के विषय को जानने के लिये अन्धेरे में हाथ पांव मार रहे हैं, किन्तु यह समुल्लास अन्धकार को निवारण करता हुआ बुद्धि को वैदिक ज्योति का निर्भ्रान्त तेज दर्शा रहा है। तिब्बत को मनुष्यजाति का पहिला निवासस्थान * बतलाते हुए महर्षि "आर्य" शब्द का निरूपण करते हैं और आर्य्यावर्त्त की सीमा मनुस्मृति से बतलाते हुए वे पृथिवी के भ्रमण और आकर्षण का वेद से निरूपण करते हैं। ईश्वर को ब्रह्माण्ड का आधार दर्शाने के पश्चात् वह सूर्य चन्द्रादि लोकों में मनुष्यादि सृष्टि का होना बतलाते हुए ईश्वर की रचना का प्रयोजन दर्शा रहे और बड़े से बड़े सूक्ष्म प्रश्न इन गूढ़ विषयों के सम्बन्ध में स्वयं उठाकर फिर उन का पर्य्याप्त उत्तर देते हुए वेदशास्त्रों की महिमा का बोधन करा रहे हैं।

नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या और बन्ध, मोक्ष का वर्णन है

पं० गुरुदत्तजी कहा करते थे कि "यदि सत्यार्थप्रकाश का मूल्य १०००) रु०

* हारमोनिया भाग १ पृष्ठ १२८ में प्रोफेसर "ओकन" मानता है कि पहिले सृष्टि वहां हुई थी जहां अब सब से ऊंचा पहाड़ है और स्वीकार करता है कि निस्सन्देह हिमालय के समीप।

होता तो भी मैं उसको अपनी जायदाद बेचकर खरीदता । जिधर देखता हूं उधर ही सत्यार्थप्रकाश में वह २ विद्या की बातें भरी हुई पड़ी हैं जिनका वर्णन करते हुए मनुष्य की बुद्धि चकित होजाती है । मैंने ग्यारह वार सत्यार्थप्रकाश को विचारपूर्वक पढ़ा है और जब २ पढ़ा नये से नये अर्थों का भान मेरे मन में हुआ है। उक्त पंडितजी इस समुल्लास को पढ़ते हुए सदा महर्षि के योगबल की प्रशंसा किया करते और कहा करतें थे कि विना पूर्ण योगी के कौन निर्भ्रान्त रीति से ऐसा गूढ़ कठिन और महान् सूक्ष्मविषय लिख सकता है ।

इस समुल्लास में विद्या अविद्या की व्याख्या करते हुए महर्षि मनुष्यजन्म के परमोद्देश्य मुक्ति का वर्णन करते हैं । अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोशों की विवेचना जिस योगबल से महर्षि ने दर्शाई है उसको समझना और उसके अनुसार वर्ताव करना भी योगियों ही का काम है मुक्ति का वर्णन करते हुये योगिराज ऋग्वेद के एक मन्त्र के प्रमाण से लिखते हैं कि मुक्त जीव महाकल्प के पश्चात् मुक्ति से लौटकर संसार में आते हैं प्रबल युक्तियें इसकी पुष्टि में देते हुए पूर्ण रीति पर निश्चय कराते हैं। यद्यपि यह बात प्रायः मतावलम्बियों को आश्चर्य में डालनेवाली है तथापि बुद्धिमान् पुरुष * इसकी उत्तमता की प्रशंसा किये विना नहीं रह सकते । इस समुल्लास में आवागमन का वर्णन प्रबल युक्तियों द्वारा करते हुए निश्चय करा दिया है कि जन्म अनेक हैं और जन्म में कर्म-योग्यता से वृक्ष, कृमि, कीट, पशु, मनुष्य आदि नाना योनियों का वर्णन किया है जिनको कि जीव कर्मफल-भोग के लिये प्राप्त होता है ।

दशम समुल्लास में आचार अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य का वर्णन है

"मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रिय चित्त को हरण करनेवाले विषयों में प्रवृत्त कराते हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे, जैसे घोड़े को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इसी प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्म मार्ग से हटा-कर धर्म-मार्ग में सदा चलावे"........"मात, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा

* गार्नेट एम, ए, डी, टामस कारलायल के जीवनचरित्र के पृष्ठ १७१ पर लिखता है कि कारलायल उन्नति को चक्र में घूमती हुई मानता था न कि एक सीधी रेखा के आगे बढ़ने के समान ।

करना पूजा कहलाती है और जिस २ कर्म से जगत् का उपकार हो वह वह कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्यकर्म है। कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे। आप्त जो सत्यवादी, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है" (प्रश्न) आर्यावर्त्त-निवासियों का स्वदेश से भिन्न अन्य देशों में जाने से आचार नष्ट होजाता है वा नहीं? (उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्यभाषण आदि आचार करना है वह जहां कहीं करेगा, आचार और धर्म भ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यावर्त्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार से भ्रष्ट कहावेगा। "पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको देश देशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो यह बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्डजाल में न फंसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट होजावेगी।" इसलिये भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न आसकें। हां इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें *।

एक स्थल पर महर्षि लिखते हैं कि "मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्य मांस के परमाणुओं से ही पूरित है उनके हाथ का न खावें।" गाय, बकरी आदि पशुओं के पालने के लाभ उत्तमता से वर्णन करते हुये लिखते हैं कि "इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा। बकरी के दूध से···पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, भेड़ गधे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं, इन पशुओं के मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करनेवाले जानियेगा"।

"जितनी हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छलकपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसाधर्म आदि कर्मों से प्राप्त होकर भोग करना भक्ष्य है।

---

* मांस मनुष्य का स्वाभाविक और उपयोगी भक्ष्य नहीं इस बात को डाक्टर आनाकिंग्सफ़ोर्ड एम० डी० ने अपने ग्रन्थ "परफ़ैक्ट वे आफ डायट" में सिद्ध किया है, जिसमें ट्राल निकल्सन आदि अनेक पाश्चिमीय डाक्टर इस बात की पुष्टि कर रहे हैं कि मांस वीरता और बल देनेवाला पदार्थ नहीं।

उत्तरार्द्ध ।

सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्द्ध में वेदविरुद्ध पुरानी, जैनी, किरानी और कुरानी (जोकि संसार भर के मतों के मूल हैं) के खण्डन का विषय है ।

एकादश समुल्लास में आर्यावर्त्तीय मत-मतान्तरों का वर्णन है

वाममार्ग, नवीन वेदान्त, भस्मरुद्राक्ष तिलक, मूर्त्तिपूजा, गयाश्राद्ध, जगन्नाथ, तीर्थ, रामेश्वर, कालियाकन्त, सोमनाथ, द्वारिका, ज्वालामुखी, हरिद्वार, बदरीनारायण, गङ्गास्नान, नामस्मरण, गुरुमाहात्म्य, अठारह पुराण, सूर्यादिग्रहपूजा, एकादश्यादि, व्रत, शैवमत, शाक्तमत, कबीरपन्थ, नानकपन्थ, दादूपन्थ, रामसनेहीपन्थ, गोकुलिये गोसाईं, स्वामीनारायणमत, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज आदि अनेक विषयों पर लिखते हुये महर्षि ने युक्ति और प्रमाण के अद्भुत बल से इन सब मत मतान्तरों का जिस उत्तमता से खण्डन किया है वह गिरी हुई भारत सन्तान के पढ़ने योग्य है । जिन रोगों ने आर्यावर्त्त को गिराते २ वर्तमान दुर्दशा को पहुंचा दिया है उन रोगों की विस्तारपूर्वक व्याख्या करते हुये महर्षि इस समुल्लास में पतित आर्यावर्त को वैदिक सिद्धान्तों के बल से उठाने का मार्ग दर्शा रहे हैं ।

द्वादश समुल्लास में चारवाक, बौद्ध और जैनमत का वर्णन है

प्रकृतिपूजक चारवाकों के हेतुओं का खण्डन करते हुये, सृष्टिकर्ता परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करने के पश्चात् बौद्धमत का खण्डन किया है, फिर जैनमत की पोल दर्शाते हुये आस्तिक और नास्तिक का संवाद प्रश्नोत्तर की रीति पर लिखा है । इस संवाद को पढ़कर भला कौन मनुष्य है जो ईश्वर से विमुख रह सकता है ? जैनियों की मुक्ति उनके साधुओं के लक्षण और उनकी विद्यारहित बातों को उनके ग्रन्थों के प्रमाणों से ही दर्शाया है । यूरोप के वर्त्तमान अनीश्वरवादी प्रसिद्ध नास्तिकों के तर्क और युक्तियों का समीचीन उत्तर इसी समुल्लास में सविस्तर आजाता है । चीन आदि देशों में बौद्धमत, भारतवर्ष में जैनमत और यूरोप आदि देशों में चारवाक और नास्तिकपन पाया जाता है । गम्भीरदृष्टि से देखें तो वे सब एक नास्तिकपन के ही नानारूप हैं और इस भयंकर नास्तिकपन से बचाने के लिये महर्षि का पुरुषार्थ इस समुल्लास में विद्यमान है ।

त्रयोदश समुल्लास में ईसाई मत का निरूपण है

बाइबिल की परीक्षा युक्तिबल से करते हुये महर्षि इस परीक्षा के अन्त में लिखते हैं कि "अब कहांतक लिखें इनकी बाइबिल में लाखों बातें खण्डनीय हैं यह तो थोड़ासा चिह्नमात्र ईसाइयों की धर्मपुस्तक का दिखलाया है, इतने से बुद्धिमान् लोग बहुत समझलेंगे, थोड़ीसी बातों को छोड़ शेष सब झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता, वैसा ही बाइबिल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में ग्रहण होजाता है"।

चतुर्दश समुल्लास में यवनमत का निरूपण है

इस समुल्लास में महर्षि क़ुरान की शिक्षा की प्रमाणों से परीक्षा करते हुये समाप्ति पर लिखते हैं कि "अब इस क़ुरान के विषय को लिखकर बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है? मुझ से पूछो तो यह पुस्तक न ईश्वर न विद्वान् का बनाया और न विद्या का हो सकता है। यह तो बहुत थोड़ासा दोष प्रकट किया इसलिये कि लोग धोखे में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें, जो कुछ इसमें थोड़ासा सत्य है वह वेदादि शास्त्रों के अनुकूल होने से जैसे मुझ को ग्राह्य है, वैसे ही अन्य भी मत के हठ और पक्षपात से रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है। इसके विना जो कुछ उसमें है, वह सब अविद्या, भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर शांतिभङ्ग कराकर उपद्रव मचा मनुष्यों में विरोध फैला परस्पर दुःख अवनति करनेवाला विषय है और पुनरुक्ति दोष का तो क़ुरान मानो भण्डार ही है। परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करें कि सब से सब प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपात रहित होकर प्रकाशित करता हूं, इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एक मत होकर सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो"।

मन्तव्यामन्तव्य विषय

पहिली बार के छपे हुए सत्यार्थप्रकाश में वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध जो लेख शोधकों की भूल से छप गया था, वह स्वामीजी का सिद्धान्त नहीं था, क्योंकि स्वामीजी

में उसका प्रतिवाद संवत् १९३५ के छपे ऋग्वेद और यजुर्वेद भाष्य के टाइटिल पेजों पर निम्नलिखित विज्ञापन देकर किया है:—

विज्ञापन

"सब को विदित हो कि जो २ बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूं, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो २ मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश व संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र और मनुस्मृति आदि पुस्तकों के वचन बहुतसे लिखे हैं, वे उन २ ग्रन्थों के मतों को जताने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षीवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं। जो २ बात वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण करता हूं क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझको मान्य है और जो २ ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनिपर्यन्त महात्माओं के बनाये वेदानुकूल ग्रन्थ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं और जो सत्यार्थप्रकाश के ४२ पृष्ठ और २५ पंक्ति में "पितर आदिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मरगये हैं उनका तो अवश्य करे"। तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ "मरे हुवे पितरों का तर्पण और श्राद्ध करता है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है **सो लिखने और शोधनेवालों की भूल से छप गया है**। उसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि **जीवितों** की श्राद्ध से सेवा करके नित्य तृप्ती करते रहना यह पुत्रादि का परमधर्म है और जो २ मरगये हों उनका नहीं करना क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि के दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते माता पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेदमंत्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अङ्क के पृष्ठ २५१ से लेकर १२ अङ्क के पृ० २६७ तक छपा है, वहां देखलेना।

उक्त विज्ञापन में जो शब्द स्थूलाक्षर हैं उनको पाठक विशेष ध्यानपूर्वक पढ़ें। यह भी विदित हो कि भूमिका का ग्यारहवां अङ्क संवत् ११३४ में इस विज्ञापन से के पूर्व छप चुका था और उसके पृष्ठ २५१ पर स्वामीजी ने प्रमाणों के अतिरिक्त मृतकों के श्राद्ध का सर्वथा खण्डन और जीवित पितरों के श्राद्ध का मण्डन किया है। महर्षि के समस्त ग्रन्थ स्पष्ट शब्दों में पुकार कर कह रहे हैं कि वे कोई भी वेद और युक्तिविरुद्ध सिद्धान्त नहीं मानते थे। परन्तु दुर्दर्शिता से, जिनको कि वे मानते थे,

लिख भी दिये हैं। इन सिद्धान्तों को लिखने के पश्चात् स्वामीजी इन शब्दों में सत्यार्थ-प्रकाश की समाप्ति करते हैं:—

"सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त होजावे जिससे सब लोग सहज में धर्मार्थकाममोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है"।

वेदभाष्य पर एक दृष्टि

जैसे साधन का साध्य से सम्बन्ध है, जैसे सीढ़ी घर की छत पर पहुंचने वाली है, वैसे सत्यार्थप्रकाश वेदभाष्य तक पहुंचने का साधन है, वेदभाष्य की आवश्यकता को दर्शाना सत्यार्थप्रकाश का काम है। वह पुरुष जो मतमतान्तरों के भ्रमजाल से निकलकर वैदिकज्योति की महिमा सत्यार्थप्रकाश में अनुभव कर लेता है वह वेदभाष्य के प्रकाश को चाहता है। वह भूख जो सत्यार्थप्रकाश के अवलोकन से उत्पन्न होती है उसकी तृप्ति करना वेदभाष्य का काम है। सत्यार्थप्रकाश यदि मार्ग है तो वेदभाष्य एक आश्रम है जहां बटोही जाना चाहता है। जिस प्रकार प्रत्येक पुस्तक की भूमिका होती है उसी प्रकार चारों वेदों के भाष्य की एक भूमिका ३७६ पृष्ठों की पृथक् पुस्तकाकार महर्षि ने तैयार करके छपवाई और उसका नाम ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका रक्खा। इस भूमिका में जो २ संस्कृत में लेख है वह महर्षि का और जो उसका भाषानुवाद है वह अनुवादकों का किया हुआ है। इस अनुवाद में बहुतसी त्रुटियां रह गई हैं, सम्पादक सद्धर्मप्रचारक जालन्धर के कथनानुसार पृ० २०५ पर जो संस्कृत महर्षि ने लिखी है उसका अनुवाद पृ० २०६ पर जो भाषा में किया गया है वह संस्कृत से मिलता नहीं है।

महर्षि ने इस भूमिका में पहिले इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि वेद क्या है? और वेदोत्पत्ति का महान् सूक्ष्म विषय सारगर्भित रीति से निरूपण करने के पश्चात् वेदमन्त्रों के प्रमाणों से वेदों के विषयों को दर्शाते हुये वेदों का सच्चा महत्व बोधन कराया है। ब्रह्मविद्या, धर्म, सृष्ट्युत्पत्ति, पृथिव्यादिलोकभ्रमण, आकर्षणानुकर्षण, प्रकाश्य प्रकाशक, गणितविद्या, स्तुति प्रार्थना याचना समर्पण, उपासना, योग, मुक्ति, नौका विमान तार आदि विद्या, वैद्यकशास्त्र, पुनर्जन्म, विवाह, नियोग, राजप्रजाधर्म, वर्णाश्रम, पंचमहायज्ञ का मूलवेद में दर्शाने के पश्चात् वह प्रामाण्याप्रामाण्य ग्रन्थों का

विषय लिखते हुये, केवल वेद को सूर्यवत् स्वतः-प्रमाण और शेष सब ग्रन्थों को पर-तःप्रमाण ठहराते हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि वेद सूर्य के जानने के लिये किसी और ग्रन्थरूप दीपक की आवश्यकता नहीं, परन्तु अन्य ग्रन्थों को प्रामाणिक मानने के लिये उनका वेदानुकूल होना आवश्यक है और जिस प्रकार विषसंयुक्त अन्न को कोई नहीं खाता उसी प्रकार अप्रामाणिक ग्रन्थों को जिनमें कि असत्य का विष मिल रहा है अवश्य त्यागने के लिये महर्षि उपदेश करते हैं। फिर निदर्शन की रीति पर कुछ वैदिक अलङ्कारों का वर्णन करते हैं जिनको कि न समझकर इन अलङ्कारयुक्त मन्त्रों के रूढि (कल्पित) अर्थ लेनेवाले पौराणिक लोगों ने मिथ्या कथा रचली है। अतः पश्चात् वेदों के पढ़ने सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र अर्थात् ब्राह्मण से लेकर अतिशूद्र पर्य्यन्त बतलाते हुये निम्नलिखित अनेकत्र वेदभाष्य के उपक्रम में लिखते हैं:—

(प्रश्न) क्योंजी जो तुम यह वेदों का भाष्य बनाते हो सो पूर्वाचार्यों के भाष्य के समान बनाते हो वा नवीन? जो पूर्वरचित भाष्यों के समान है तब तो बनाना व्यर्थ है क्योंकि वे तो पहिले ही से बने बनाये हैं और जो नवीन बनाते हो तो उसको कोई भी न मानेगा, क्योंकि जो विना प्रमाण के केवल अपनी ही कल्पना से बनाना है, यह बात कब ठीक हो सकती है? (उत्तर) यह भाष्य प्राचीन आर्य्यों के भाष्य के अनुकूल बनाया जाता है, परन्तु जो रावण, उव्वट, सायण और महीधरादि ने भाष्य बनाये हैं वे सब मूलमन्त्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता, क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी और जो यह मेरा भाष्य बनता है सो तो वेद, वेदाङ्ग, ऐतरेय, शतपथब्राह्मणादि ग्रन्थों के अनुसार होता है क्योंकि जो वेद के सनातन व्याख्यान हैं उनके प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है, यही इसमें अपूर्वता है। क्योंकि जो प्रमाणयाप्रामाण्य विषय में वेदों से भिन्न शास्त्र गिन आये हैं वे सब वेदों के ही व्याख्यान हैं। वैसे ही ११२७ वेदों की शाखा भी उनके व्याख्यान ही हैं उन सब ग्रन्थों के प्रमाण युक्त यह भाष्य बनाया जाता है और दूसरा इसके अपूर्व होने का कारण यह भी है कि इसमें कोई बात अप्रमाण वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती और जो २ भाष्य उव्वट, सायण महीधरादि ने बनाये हैं वे सब मूलार्थ और सनातन वेद व्याख्यानों से विरुद्ध हैं तथा जो २ इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंगरेज़ी, जर्मन, दक्षिणी और बङ्गाली आदि भाषाओं में वेद के व्याख्यान बने हैं, वे भी अशुद्ध हैं। जैसे देखो सायणाचार्य्य ने वेदों के श्रेष्ठ अर्थों को न जानकर कहा है कि सब वेद क्रियाकाण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं, यह उनकी बात

मिथ्या है। इसके उत्तर में जैसा कुछ इसी भूमिका के पूर्व प्रकरणों में संक्षेप से लिख चुके हैं सो देख लेना······ऐसे ही सायण ने और भी बहुत मन्त्रों की व्याख्या में शब्दों के अर्थ उलटे किये हैं······इसी प्रकार महीधर ने भी यजुर्वेद पर मूल से [illegible] विरुद्ध व्याख्यान किया है।

जब इन्हीं लोगों के व्याख्यान अशुद्ध हैं, तब यूरोपखण्ड निवासी लोगों ने जो उन्हीं की सहायता लेकर अपनी देशभाषा में वेदों के व्याख्यान किये हैं, उनके अनर्थ का तो क्या ही कहना है! तथा जिन्होंने उन्हीं के अनुसार व्याख्यान किये हैं इन विरुद्ध व्याख्यानों से कुछ लाभ तो नहीं दीख पड़ता किन्तु वेदों के सत्यार्थ की हानि प्रत्यक्ष ही होती है। परन्तु जिस समय चारों वेदों का भाष्य बन और छपकर सब बुद्धिमानों के दृष्टिगोचर होगा तब सब किसी को उत्तम विद्यापुस्तक वेद का परमेश्वर रचित होना भूगोल भर में विदित हो जावेगा और यह भी प्रकट होजावेगा कि ईश्वरकृत सत्यपुस्तक वेद ही है वा कोई दूसरा भी हो सकता है। ऐसा निश्चय जानकर सब मनुष्यों की वेदों में परमप्रीति होगी इत्यादि अनेक उत्तम प्रयोजन इस वेदभाष्य के बनाने में जान लेना।

"इस भाष्य में पद पद का अर्थ पृथक् २ क्रम से लिखा जावेगा कि जिससे नवीन टीकाकारों के लेख से जो वेदों में अनेक दोषों की कल्पना की गई हैं उन सबकी निवृत्ति होकर उनके सत्य अर्थों का प्रकाश होजायगा तथा जो २ सायण, माधव, महीधर और अंग्रेज़ी वा अन्य भाषा में उल्थे वा भाष्य किये जाते वा किये गये हैं तथा जो २ देशांतर-भाषाओं में टीकाएं हैं उन अनर्थ व्याख्यानों का निवारण होकर मनुष्यों को वेदों के सत्य अर्थों के देखने से अत्यन्त सुख लाभ पहुंचेगा। क्योंकि बिना सत्यार्थप्रकाश के देखे मनुष्यों की भ्रमनिवृत्ति कदापि नहीं हो सकती। जैसे प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में सत् और असत् कथाओं के देखने से भ्रम की निवृत्ति होसकती है ऐसे ही यहां भी समझ लेना चाहिये, इत्यादि प्रयोजनों के लिये इस वेदभाष्य के बनाने का आरंभ किया है"।

फिर महर्षि बतलाते हैं कि 'वेदों के चार भाग भिन्न २ विद्याओं के कारण हैं। ऋग्वेद में सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है जिससे उनमें प्रीति बढ़कर उपकार लेने का ज्ञान प्राप्त होसके तथा यजुर्वेद में क्रियाकाण्ड का विधान किया है सो ज्ञान के पश्चात् ही कर्त्ता की प्रवृत्ति यथावत् हो सकती है तथा साम-

वेद से ज्ञान और आनन्द की उन्नति और अथर्ववेद से सर्व संशयों की निवृत्ति होती है, इसलिये उनके चार भाग किये हैं। निरुक्त के प्रमाणों से वेदमन्त्रों की प्रयोगशैली बतलाते हुये गानविद्या सम्बन्धी वैदिकस्वर का वर्णन किया है, फिर वैदिकव्याकरण के उन नियमों को जिनसे कि वेदमन्त्रों के अर्थ जानने में विशेष सहायता मलती है, प्रमाणपूर्वक दर्शाते हैं। इसके आगे वैदिक अलंकारों का वर्णन है फिर इस वेदभाष्य-भूमिका की समाप्ति करते हुये अन्त में यह वचन लिखते हैं:—

"यह भूमिका जो वेदों के प्रयोजन अर्थात् वेद किसलिये और किसने बनाये, उनमें क्या २ विषय हैं इत्यादि बातों की अच्छी प्रकार प्राप्ति करानेवाली है, इसको लोग ठीक २ परिश्रम से पढ़ें और विचारेंगे उनको व्यवहार और परमार्थ का प्रकाश, संसार में मान और कामनासिद्धि अवश्य होगी। इस प्रकार जो निर्मल विषयों के विधान का कोष और सच्छास्त्रों के प्रमाणों से युक्त भूमिका है उसको मैंने संक्षेप से पूर्ण किया, अब इसके आगे उत्तम बुद्धि देने वाले परमात्मा की भक्ति में अपनी बुद्धि को दृढ़ करके प्रीति के बढ़ानेवाले मन्त्रभाष्य का प्रमाणपूर्वक विस्तार करता हूं"।

आगे मैं सब प्रकार से विद्या के आनन्द को देनेवाली चारों वेद की भूमिका को समाप्त और जगदीश्वर को अच्छी प्रकार प्रणाम करके संवत् १९३४ मार्गशिर शुक्ल ६ भौमवार के दिन सम्पूर्ण ज्ञान के देने वाले ऋग्वेद के भाष्य का आरम्भ करता हूं। इस ऋग्वेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिससे सब पदार्थों के गुणों और स्वभावों का वर्णन किया जावे। वह ऋग् और वेद अर्थात् जो यह सत्यासत्य ज्ञान का हेतु है इन दो शब्दों से ऋग्वेद शब्द बनता है।

ऋग्वेद में आठ अष्टक और एक २ अष्टक में आठ २ अध्याय हैं, सब अध्याय मिलकर ६४ होते हैं आठों अष्टक के सब वर्ग २०२४ होते हैं तथा इसमें दश मण्डल हैं, दशों मण्डलों में ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त और १०५८९ मन्त्र हैं।

मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र	मण्डल	अनुवाक	सूक्त	मन्त्र
१	२४	१९१	११७६	६	६	७५	७६५
२	४	४३	४२९	७	६	१०४	८४१
३	५	६२	६१७	८	१०	१०३	१७२६
४	५	५८	५८९	९	७	११४	१०९७
५	६	८७	७२७	१०	१२	१९१	१७५४

ऋग्वेदभाष्य के आरम्भ के एक मास पश्चात् अर्थात् संवत् [illegible] पौष सुदी [illegible] गुरुवार के दिन महर्षि ने यजुर्वेद भाष्य का आरम्भ किया। यजुर्वेद में ४० अध्याय हैं और सब अध्यायों के कुल मन्त्रों की संख्या १९७५ है।

दोनों भाष्यों में सब से पहले मन्त्र के ऋषि, देवता और छन्द, फिर मूलमन्त्र उसका पदच्छेद, प्रमाण सहित मन्त्र के पदों का अर्थ, अन्वय अर्थात् पदों की सम्बन्धपूर्वक योजना और अन्त में भावार्थ अर्थात् मन्त्र का जो मुख्य प्रयोजन वर्णन किया गया है। दोनों भाष्यों में संस्कृत और भाषा दोनों प्रकार का लेख है, संस्कृत तो महर्षि की ओर से है परन्तु उसकी भाषा अनुवादकों की बनाई हुई है। कोई अनुवादक महर्षि के संस्कृत का अभिप्राय भाषा में नहीं प्रकट कर सके और बहुत जगह भाषा संस्कृतार्थ से भिन्न होगई है। इसलिये मन्त्रों के अर्थ को जानने के लिये हमें महर्षि के संस्कृत लेख को ही प्रामाणिक समझना चाहिये। पं० गुरुदत्तजी सदा मन्त्रों के अर्थ जानने के लिये महर्षि की संस्कृत को प्रामाणिक कहा करते थे, किन्तु अनुवादकों की भाषा को वे प्रामाणिक नहीं मानते थे।

संवत् १९३९ में वैदिक यन्त्रालय की ओर से निम्नलिखित एक विज्ञापन छपा था *

"सब सज्जनों को विदित हो कि श्रीस्वामीजी महाराज ने यजुर्वेद भाष्य बनाकर पूरा कर लिया है और ईश्वर की कृपा से ऋग्वेद भाष्य भी इसी प्रकार शीघ्र ही पूरा होगा"। परन्तु हमारे भाग्य में कहां था कि महर्षि ऋग्वेदभाष्य को अन्त तक पूरा करलें, उनकी मृत्यु ने इस काम को पूरा न होने दिया और संवत् १९४१ के चैत्र मास में यन्त्रालय ने विज्ञापन † दिया कि महर्षि यजुर्वेद का सम्पूर्ण और ऋग्वेद का सातवें मण्डल पांचवें अष्टक के पांचवें अध्याय के तीसरे वर्ग के दूसरे मन्त्र तक का भाष्य छोड़ परलोक को पधार गये। आज यजुर्वेदभाष्य सम्पूर्ण छपा हुआ मिल सकता है, परन्तु ऋग्वेदभाष्य अभीतक उतना ही छपा है जितना कि महर्षि तय्यार कर गये थे।

सर्व विद्याओं के मूल का दर्शक, निरुक्त, निघण्टु, शतपथादि आर्षग्रन्थों के आशय का प्रचारक, सृष्टि के अखण्ड और अटल नियमों में वेदार्थ को जताने वाला

* देखो ऋग्वेदभाष्य अंक ४९ व ५० ।

† यजुर्वेदभाष्य अंक ५२ व ५३ ॥

महर्षि का वेदभाष्यरूपी अद्भुत ग्रन्थ आज अन्धकार से पीड़ित भूमण्डल को निर्भ्रान्त निष्कलङ्क वेद सूर्य के दर्शन का मङ्गलसमाचार देरहा है। अंधेरे में यदि लोग मार्ग नहीं देख सकते तो प्रकाश मार्ग दिखाता है, किन्तु जो प्रकाश में मार्ग देखता हुआ भी उसमें चलने का पुरुषार्थ नहीं करता उससे बढ़कर मन्दभाग्य और कौन हो सकता है ? सत्यासत्य मार्ग के दिखलाने में सहाय देना सूर्य्य का काम है परन्तु असत्य से बचकर सत्यमार्ग में पुरुषार्थ से चलना मनुष्यों का अपना काम है। महर्षि के वेदभाष्य के होने पर भी लोग यदि दुःख में रहें तो वेदभाष्यरूपी सूर्य्य का दोष नहीं, किन्तु उन मनुष्यों के अपने आलस्य या कर्मफल का दोष है। प्रकाशमय दिन में भी जो पथिक साधनशील होकर अपने मार्ग को पूरा नहीं करता तो वह अपराधी है न कि सूर्य्य। वेद स्वयं उपदेश दे रहे हैं * कि जो मनुष्य वेदों के मुख्य अर्थ परमात्मा को नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से भी सुख को प्राप्त नहीं हो सकता। वास्तव में सूर्य्य से पुरुषार्थ करनेवाले ही लाभ उठा सकते हैं, साधन और पुरुषार्थरहित अन्धे और आलसी पुरुष नहीं। जिसकी बुद्धि की आंख फूट गई हो उसके लिये शास्त्र का सूर्य्य † भी क्या कर सकता है ? आजकल कई अङ्गरेज़ी पढ़े हुये जो वेदमन्त्रों का स्वर सहित पाठमात्र भी नहीं कर सकते वे समाचारपत्रों की भांति साधारण दृष्टि से महर्षि के वेदभाष्य को देखते हैं और उसके सरल संस्कृत लेख को छोड़कर अनुवादकों के अप्रामाणिक भाषा लेख में से भी केवल भावार्थ दो मिनट में पढ़कर व्यवस्था दे देते हैं कि इसमें तो कोई नई विद्या की बात प्रतीत नहीं होती यह भाष्य साधारण पुस्तक ही है सूर्य के तेज और प्रकाश की साक्षी वही मनुष्य दे सकता है जो नीरोग होने पर सन्मार्ग में पुरुषार्थ से चलना चाहे। परन्तु साधनरहित आलसी पुरुष सूर्य की महिमा को कब अनुभव कर सकता है ? वेदभाष्य की उत्तमता पूर्वोक्त प्रकार के अंग्रेज़ी पढ़े लोग जो उसके समझने के साधनों से रहित और जिनके विषयानुरक्त हृदय में विद्यामृत के पान की इच्छा तक नहीं है, जो रात दिन पश्चिमीय अनुकरण और वेश (फ़ैशन) की पूजा में निमग्न और तामस आहार व्यवहार में लम्पट हैं, जो अपने विचार और अपनी सात्विक बुद्धि से काम लेना नहीं चाहते, जो कथनमात्र मनुष्य को अल्पज्ञ बतलाते हुये स्वयं पश्चिमीय

---

* ऋग्वेद मं० १ । सू० १६४ । मं० ३९ । देखो सत्यार्थप्रकाश पृ० ९९ ॥

† यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥ (चाणक्यनीति)

साधारण मनुष्यों के भ्रान्तियुक्त विचारों को निर्दोष ईश्वरीय ज्ञान से बढ़कर मानरहे हैं। इस प्रकार के वेदपूजक, साधनरहित यदि वेदभाष्य के रत्नों की उत्तमता और महत्व को न समझ सकें तो हमें आश्चर्य न करना चाहिये; क्योंकि वे उसके समझने के यथार्थ उपाय ही काम में नहीं लाते। हमें स्मरण रखना चाहिये कि वेद का भाष्य या अनुवाद वैदिक आशय को एक और भाषा के स्वरूप में प्रकट कर सकता है परन्तु उसके यथार्थ भाव को कोई भाष्य सुगम नहीं बना सकता किसी पुस्तक के भाष्य या अनुवाद करने से उस पुस्तक का विषय सुगम नहीं हो जाता और उस विषय के तत्त्व को समझने के लिये हमें साधनों की उपेक्षा नहीं करनी पड़ती। हां, यह ठीक है कि अंगरेज़ी आदि कृत्रिमभाषा का अनुवाद किसी और भाषा में उसके विषय को पूर्ण रीति पर व्यक्त कर सके परन्तु स्वाभाविक वेदवाणी के विषय में यह बात घट नहीं सकती। क्योंकि वेदवाणी ईश्वरोक्त होने से सर्वाङ्ग सम्पूर्ण और अन्य सब भाषायें उसका विकार, उससे गिरी हुई अपूर्ण दशा में हैं। यदि कोई मन्त्रों का ऐसा भाष्य करदे कि जिससे फिर मन्त्रों के पढ़ने और समझने की आवश्यकता न रहे तो इसका आशय यह है कि मनुष्य ऐसा दीपक बना सकता है जो कि सूर्य के प्रकाश को फीका करके स्वयं सूर्य का काम दे सकता है। क्या कृत्रिम वस्तु कभी अकृत्रिम वस्तु का काम देसकती है? कदापि नहीं। उत्तम बनावट वह है जो अधिकता स्वाभाविक दशा के अनुकूल हो। यदि कोई अत्युत्तम कृत्रिम दांत बना सकता है तो इसका आशय यह है कि वह दांत अधिकतर स्वाभाविक दांतों से मिलते हैं यह कभी न होगा कि बनावट (चाहे कैसी ही उत्तम क्यों न हो) स्वभाव का अतिक्रमण करसके। स्वाभाविक वेद के गूढ़ाशय को जानने के लिये महर्षि का भाष्य साधनवत् सहायक का काम देसकता है न कि वह स्वयं वेद की जगह ले सकता है। दूरवीक्षण यन्त्र सूर्य के दर्शन का एक साधन है न कि वह आप ही सूर्य है। वेदरूप सूर्य का प्रकाश दिखलाने के लिये महर्षि का भाष्य एक अत्युत्तम दूरवीक्षण यन्त्र है भाष्यरूप साधन का परमोद्देश्य वेदार्थ के जताने में सहायता देना है और यह सहायता भी उन्हीं को मिल सकती है जो वेदार्थ के समझने की इच्छा रखते हुये निष्पक्ष सात्विक बुद्धि से युक्त विद्यादि साधनों को लिये हुये अमृतपान के लिये अत्यन्त पुरुषार्थी हों। पूर्वोक्त प्रकार के आलसी लोग जो वेदरूप सूर्य के प्रकाश में सन्मार्ग में चलने का पुरुषार्थ करना नहीं चाहते उनको महर्षि का भाष्य भी उस प्रकाश के ग्रहण कराने में सहायता नहीं देसकता। जैसे वेदार्थ समझने के लिये वेदाङ्ग, उपाङ्ग

और आर्षग्रन्थ साधन हैं, वैसे ही महर्षि का भाष्य भी जो कि [illegible] आर्ष ग्रन्थों के अनुकूल [illegible] है, वेदार्थ समझने के लिये एक साधन है, साधन की महिमा साधनशील ही जानते हैं, उत्तम साधन की आवश्यकता पुरुषार्थी और जिज्ञासु पुरुष ही जान सकता है। महर्षि के वेदभाष्यरूप महान् साधन का महत्व पंडित गुरुदत्तजी ने अनुभव किया था। जहां पश्चिमीय सायन्स और विज्ञान उनको निर्भ्रान्त सत्य का मार्ग दर्शाने के लिये साधन का काम नहीं देसकते थे, वहां उनको महर्षि के वेदभाष्य ने वेदार्थ जानने के लिये साधनवत् अपूर्व सहायता की वेदभाष्यरूप साधन की सहायता लेकर वह वेदमन्त्रों के गूढ़ अर्थों का विचार करते थे। एक मन्त्र के आशय को समझने के लिये वेदभाष्य तथा वेदाङ्गों और उपाङ्गों की सहायता लेकर पण्डित गुरुदत्तजी कम से कम दो घण्टे लगाते थे और फिर यह कहते थे कि आज हमने दो घण्टों में एक मन्त्र के अर्थ समझे हैं। पण्डित गुरुदत्तजी कहा करते थे कि वेदभाष्य भी सूत्रवत् संक्षिप्त शब्दों में महान् विषय को प्रतिपादन कर रहा है।

यदि गुरुदत्त से सात्विकबुद्धि धर्मात्मा विद्वान् को वेदार्थ जानने के लिये वेदभाष्य अपूर्व सहायता देता था तो कोई कारण नहीं कि वैसे ही साधनशील धर्मात्मा पुरुषों को वेदभाष्य वेदार्थ जानने के लिये अपूर्व सहायता न दे। सायण, महीधरादि टीकाकारों के भाष्य वेदार्थ समझने के लिये साधन का काम नहीं देते, किन्तु वेदार्थ से कोसों दूर लेजाकर टीकाकारों की निजकल्पना और घड़न्त जमाने के साधन बन रहे हैं वेदों की स्वच्छ ज्योति को इन मिथ्याभाष्यों के कलङ्क से बचाकर निर्मल शुद्ध दशा में दर्शाने के लिये महर्षि दयानन्द का भाष्य महान् साधन का काम दे रहा है। यह कल्पनाओं के विघ्नों को वेदार्थ समझने के मार्ग से हटाता हुआ वेदों के सूर्यवत् निर्भ्रान्त अर्थों का प्रकाश कररहा है। महर्षि के इस परमोपकार को भाविनी आर्य्यसन्तति गौरव की दृष्टि से देखती हुई इस के महत्व का अनुभव करेगी। अन्धकार से पीड़ित मनुष्य जाति को पांच सहस्र वर्षों के पश्चात् ऐसा उत्तम और महान् साधन वेदार्थ जानने के लिये महर्षि के उपकार से मिला है। मिस्र के मीनार आज लोगों को आश्चर्य में डालते हुये कारीगरों के अपूर्व कौशल का बोधन करा रहे हैं, वैसे ही महर्षि का भाष्य बुद्धिमानों को आश्चर्यमय प्रतीत होता हुआ महर्षि के परम योगबल का, जिससे उन्होंने वेदों की सर्व विद्यायें साक्षात् की थीं, बोधन करावेगा।

इस वेदभाष्यरूपी साधन द्वारा हम सब विद्याओं के आदिमूल वेद पर पहुंच जाते हैं। पूर्ण ज्ञान, पूर्ण कर्म और पूर्ण उपासना के शान्तिदायक अमृत से वेद पूरित

हो रहा है। यह भाष्य बतला रहा है कि वेद एक ऐसा गंभीर अथाह सागर है जिसके गर्भ में असंख्य बहुमूल्य रत्न भरे पड़े हैं, वेदभाष्य के साधन से वेदसागर में सूक्ष्मबुद्धि प्रवेश कर के अनेक विद्यारूप रत्नों को धारण कर सकती है, वैदिक रत्नों की वह अटूट खानि है जिसको कि खोदने से अनेक विद्यारूप रत्नों को ऋषि मुनि प्राप्त करते थे। संसार में कोई विद्या नहीं जो इस ईश्वरीय खानि से न निकली हो और अब भी अनेक विद्यारत्न इस में ऐसे गुप्त धरे हैं कि यदि कोई महर्षि के वेद-भाष्य को साधन बनाकर उन रत्नों को निकालना चाहे तो पृथिवी को आश्चर्यमय जगमग २ करने वाले स्वच्छ रत्नों से भूषित कर सकता है। तृण से लेकर सूर्यप-र्यन्त, कीट से लेकर ईश्वरपर्यन्त कोई भी विद्या नहीं है जिसका कि वेद में वर्णन न हो, कोई भी कलायन्त्र न है और न होगा जिसका कि बीजरूप मूलवेदों ने न दर्शा-या हो, अन्धकार में पड़े हुए लोग रेल तार को (जो वैदिकज्ञान के अंश से बने हैं) देखकर फूले नहीं समाते, परन्तु जब बुद्धिमान् शिल्पीजन वेदमन्त्रों को विचारेंगे तो वह ऐसे विमान बना सकेंगे कि जो ६००० वर्ष हुए पृथिवी पर उपस्थित थे। पश्चि-मीय पदार्थविद्या या सायन्स ने जो आज उन्नति की है वह उस पदार्थविद्या के सन्मुख जो कि वेद में भर रही है तुच्छ प्रतीत होती है। वर्त्तमान समय की समग्र शिल्प-विद्या उस महान् शिल्पविद्या के सन्मुख, जोकि यजुर्वेद में मूलरूप से पूरित हो रही है, वास्तव में तुच्छ है। जगद्गुरु आर्यावर्त्त ने वेद के बल से ही सर्व प्रकार की ऐसी उत्तमविद्या सिद्ध की थी जिनका कि वर्णन करते हुये आज मनुष्य की बुद्धि चकित हो जाती है। आगामी समय में वेद का आश्रय लेकर ही मनुष्य सम्पूर्ण विद्याओं और क्रियाओं में वह २ अपूर्व कौशल दिखावेगा, जिनको देखकर छः हज़ार वर्षों से भूले हुए समय का चित्र आंखों के सन्मुख आजावेगा। आज पुरुषार्थी बुद्धिमानों की आव-श्यकता है कि वे ऋषियों के अथाह भंडार से सच्चे रत्न निकाल कर लोगों को दर्शा सकें। पण्डित गुरुदत्तजी ने इस खानि से रत्न निकालते हुए प्राण त्याग दिये। अहो!! कैसा शुभ अवसर है कि महर्षि ने भाष्यरूपी साधन हमें इस खानि के खोदने के लिये देदिया है, अब केवल रत्नों को धारण करने के लिये स्वच्छ पात्र की आवश्यकता है, बुद्धि को पात्र बनाते हुए यदि हम पुरुषार्थ करें तो सन्देह नहीं कि संसार को उन छिपे हुए रत्नों का फिर प्रकाश दिखला सकें। संसार के भोगों को लात मारकर ऋषि मुनि इन रत्नों को पाने के लिये एक २ मन्त्र को आयु भर विचारा करते थे। वेद के एक २ शब्द के गूढ़ अर्थ सृष्टि में पढ़ने के लिये ऋषि लोग अपना जीवन समर्पण करते

थे। वेदों का महत्त्व दिखलाने, उनकी रक्षा या प्रचार करने के लिये ऋषियों का जीवन होता था। प्राचीन ऋषियों के अनुपद चलते हुए महर्षि दयानन्द ने भाष्यरूप साधन से वेदों की महिमा दर्शाने, उनकी रक्षा और प्रचार करने के लिये अपने आप को अर्पण कर दिया और आज उनके वियोग के पश्चात् उनका वेदभाष्य अन्धकार से पीड़ित मनुष्य जाति के लिये वैदिक सूर्य की ज्योति दिखाने के लिये परमसाधन का काम दे रहा है।

महर्षि विरचित शेष ग्रन्थ

(१) वेदाङ्गप्रकाश

महर्षि पाणिनि ने वैदिक शब्दों के नियमों को दर्शाने और वेद की रक्षा करने के लिये अष्टाध्यायी को रचा जो व्याकरणशास्त्र का मूल कहलाता है। रेखागणित की रचना पश्चिमीय जगत् में अद्भुत मानी जाती है, किन्तु गणितज्ञ रेखागणित की महिमा को भूल जाता है जब कि वह अष्टाध्यायी के सूत्रों की रचना को देखता है। योगीश्वर पाणिनि ने शब्दविद्या के अगाध समुद्र को सचमुच एक छोटे से पात्र में बन्द कर के दिखा दिया है। अष्टाध्यायी का गौरव इससे अधिक और क्या हो सकता है कि योगिराज पतञ्जलि का महाभाष्य ग्रन्थ उसकी ही व्याख्या है। यदि आजकल संस्कृत का पूर्ण प्रचार होता तो अष्टाध्यायी के आशय को जानने के लिये महाभाष्य पर्याप्त था परन्तु वैदिक संस्कृत के विशेष प्रचार न होने के कारण महर्षि दयानन्द को, जो आर्ष ग्रन्थों का प्रचार करना चाहता था, इस वेदाङ्गप्रकाश के रचने की आवश्यकता पड़ी जिस प्रकार वेदभाष्य वेदों के अर्थ दर्शाता है उसी प्रकार यह वेदाङ्गप्रकाश अष्टाध्यायी के अर्थ दर्शाने का साधन है, अष्टाध्यायी की उत्तमता दर्शाना और उस के पढ़ने की रुचि दिलाना इस वेदाङ्गप्रकाश का मुख्य उद्देश्य है। वेदार्थ जानने के लिये अष्टाध्यायी और निघण्टु आदि प्रधान साधन हैं और इन प्रधान साधनों में रुचि दिलाने वाला वेदाङ्गप्रकाश है।

इसके १६ भाग हैं जिनके नाम यह हैं—(१) वर्णोच्चारणशिक्षा (२) संस्कृतवाक्यप्रबोध (३) व्यवहारभानु (४) सन्धिविषय (५) नामिक (६) कारकीय (७) सामासिक (८) स्त्रैणताद्धित (९) अव्ययार्थ (१०) आख्यातिक (११) सौवर (१२) पारिभाषिक (१३) धातुपाठ (१४) गणपाठ (१५) उणादिकोष (१६) निघण्टु। इनमें से व्यवहारभानु स्वामीजी का रचा हुआ है और निघण्टु, जो कि वेदों

का प्राचीन कोष है, महर्षि यास्क का बनाया हुआ है शेष महर्षि पाणिनि की रचना अर्थात् अष्टाध्यायी के भाग हैं। वैदिक शब्दों के अर्थ जानने के लिये निघण्टु अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक कोष है। निघण्टु की भूमिका में महर्षि स्वयं इस प्रकार लिखते हैं कि "यह ग्रन्थ सर्वत्र उपलब्ध नहीं था अब छापने से प्राप्त होने लगा है। इससे बड़ा उपकार यह होगा कि जो पुराणवालों ने अर्थ का अनर्थ किया है सो इन आर्षग्रन्थों से निवृत्त होकर सब के आत्मा में सत्य का प्रकाश होगा"। दृष्टान्त रीति पर महर्षि लिखते हैं कि "पौराणिक लोगों ने वृत्र, शंबर और असुर शब्द दैत्य के पर्याय नाम रक्खे हैं, किन्तु निघण्टु में यह शब्द मेघ के पर्याय हैं निम्नलिखित चक्र इस बात को और भी स्पष्ट करता है:—

शब्द	पौराणिक अर्थ.	नैघण्टुक अर्थ.
अहि	सर्प	मेघ
अद्रि	पहाड़	"
गिरि	"	"
पर्वत	"	"
अश्मा	पाषाण	"
ग्रावा	"	"
शचीपति	इन्द्र राजा	वाणी, कर्म और प्रज्ञा का पालनेवाला
गया	मृतकों के पिण्ड देने का स्थान	अपत्य, धन और गृह
घृताची	वेश्या	रात्रि
वराह	शूकर	मेघ
धारा	जलप्रवाह	वाणी
गौरी	महादेव की स्त्री	"
स्वाहा	अग्नि की स्त्री	"
स्वधा	पितरों की स्त्री	अन्न
शची	इन्द्र की स्त्री	वाणी, कर्म और प्रज्ञा
विप्र	ब्राह्मण	बुद्धिमान्
श्राद्ध	मृतकों की तृप्ति का कर्म	जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण हो

आगे महर्षि लिखते हैं कि "अब कहांतक लिखें मनुष्य लोग अब इस कोष

को पढ़ेंगे तब नवीन पुराणादि ग्रन्थों का मिथ्यापन और वेदों का सत्य तथा वेदों के अर्थ करने में प्रवृत्ति स्वयं हो जावेगी"।

सन्धिविषय और वाक्यप्रबोध आदि ग्रन्थों में शोधने वालों की शीघ्रता और असावधानी के कारण कई अशुद्धियां छप गई थीं, परन्तु द्वितीयवार छपने पर यह पुस्तक शुद्ध छपे हैं। वेदाङ्गप्रकाश के उन भागों में जो कि द्वितीयवार नहीं छपे अभी तक अशुद्धियां बनी हुई हैं जो कि यन्त्रालय के कर्मचारियों तथा संशोधकों की असावधानी को प्रकट रही हैं। वेदाङ्गप्रकाश स्वामीजी की आज्ञा व प्रेरणा से अधिकतर परिडत लोगों ने निर्माण किया है इसी कारण कई प्रकार की अशुद्धियां रहगई हैं जो कि आशा है द्वितीयवार छपने पर निवृत्त हो जावेंगी। वेदाङ्गप्रकाश का परिमाण सत्यार्थप्रकाश से दुगुना है। इसके पढ़ने से जहां अष्टाध्यायी, महाभाष्य और निघण्टु के पढ़ने में प्रीति उपजती है, वहां साथ ही पश्चिमीय (Western) (फ़िलालोजी) के मूल का पता लग जाता है। वर्तमान फ़िलालोजी की कल्पनायें इसके आगे विनाश को प्राप्त होकर जिज्ञासु की आर्षग्रन्थों पर श्रद्धा उत्पन्न करादेती हैं। अष्टाध्यायी का पढ़ने वाला व्याकरण शास्त्र को अच्छे प्रकार समझने के लिये महर्षि के इस वेदाङ्गप्रकाश से अपूर्व सहायता लेसकता है और व्याकरण शास्त्र के प्रधान साधन द्वारा मनुष्य सुगमता से वेदार्थ को जान सकता है। सन्धिविषय में महर्षि का इस प्रकार लेख है जिससे इस प्रधान साधन का प्रयोजन विदित हो रहा है:—

"व्याकरणादि शास्त्रों की प्रवृत्ति नित्य शब्द, नित्य अर्थ और नित्य सम्बन्ध के जनाने ही के लिये है।" व्याकरण शास्त्र के पढ़ने के १८ प्रयोजन आगे इसी लेख में महर्षि दर्शाते हैं, सब से पहिला प्रयोजन रक्षा है जिसके विषय में वह इस प्रकार लिखते हैं "(रक्षा) मनुष्य लोगों को वेदों की रक्षा के लिये व्याकरणादि शास्त्र पढ़ने चाहियें क्योंकि इन के पढ़ने ही से लोप, आगम और वर्णविकार आदि का यथावत् बोध होकर वेदों की रक्षा कर सकते हैं"……"(आगम) सब मनुष्यों को अवश्य उचित है कि साङ्गोपाङ्ग वेदों को पढ़कर यथोक्त क्रिया करके सुखलाभ को प्राप्त हों। सो व्याकरणादि के पढ़े विना कभी नहीं हो सकता, क्योंकि सब विद्याओं की प्राप्ति करने में व्याकरण ही प्रधान है, प्रधान में किया हुआ पुरुषार्थ सर्वत्र महान् लाभकारी होता है।"……(उतत्वः) जो मनुष्य व्याकरणादि विद्या को नहीं पढ़ता वह विद्यायुक्त वाणी के दर्शन से रहित होकर देखता हुआ अन्धे और सुनता हुआ बहरे के समान होता है और जो इस विद्या के स्वरूप को प्राप्त होता है उसी को विद्या स्व-

मेश्वर से लेकर पृथिवी पर्यन्त पदार्थों का स्वरूप यथावत् जनादेती है।

(२) एक और अपूर्व ग्रन्थ महर्षि रचनेवाले थे

वेदाङ्गप्रकाश के सन्धिविषय में महर्षि का यह लेख है "यह १८ प्रयोजन यहां संक्षेप से लिखे हैं किन्तु इनको प्रमाण और विस्तारपूर्वक अष्टाध्यायी की भूमिका में लिखेंगे।" इस संकेत को पाकर हम अनुमान करते हैं कि महर्षि ने वेदाङ्गप्रकाश के अतिरिक्त अष्टाध्यायी का भाष्य भी किया है।

(३) पञ्चमहायज्ञविधि

यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है, इसमें पञ्चमहायज्ञ का विधान है जिनके नाम यह हैं—(१) ब्रह्मयज्ञ, (२) देवयज्ञ, (३) पितृयज्ञ, (४) भूतयज्ञ, (५) नृयज्ञ"' इन नित्य कर्मों के फल यह हैं—ज्ञान प्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्य्यों की सिद्धि होना, जिससे धर्म अर्थ काम और मोक्ष यह सिद्ध होते हैं, इनको प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है।

ब्रह्मयज्ञ का दूसरा नाम सन्ध्योपासन, देवयज्ञ का अग्निहोत्र, पितृयज्ञ का तर्पण और श्राद्ध, भूतयज्ञ का बलिवैश्वदेव और नृयज्ञ का अतिथिसेवा है। ब्रह्मयज्ञ मनुष्य को ज्ञान, कर्म और उपासना के बल से युक्त करता हुआ उसको अपनी और दूसरों की भलाई के लिये अन्य चार यज्ञों का सामर्थ्य देता है। इन पांच यज्ञों का करनेवाला अपनी उन्नति के साथ २ औरों की उन्नति और दूसरों की उन्नति में अपनी उन्नति समझता है। यदि ब्रह्मयज्ञ में ईश्वर के ध्यान करने से आत्मा निज उन्नति करता है तो उसके साथ २ पापकर्म से बचने और दूसरों को हानि न पहुंचाने की प्रतिज्ञा करता है, इसलिये ब्रह्मयज्ञ मनुष्य की आत्मोन्नति और सामाजिक उन्नति का मूल है। हवन करने से जहां मनुष्य बल, पुष्टि देनेवाले सुगन्धित पदार्थों का सार स्वयं आकर्षण करता है वहां वह प्राणिमात्र की रोगनिवृत्ति * के लिये इस

---

* "सब प्रकार के डिसइन्फैक्टेन्ट पाउडर (छिड़कने की ओषधियां) यथा फीनायल आदि दुर्गन्धि को दूर नहीं करतीं किन्तु वायु को दुर्गन्धित और भारी बनाने में सहायता देती हैं।" देखो "दी न्युसान्स आफ हीलिंग" ओइकुना विरचित।

सुगन्धि * का विस्तार करता है । इसलिये देवयज्ञ मनुष्य की निज आरोग्यता और सामाजिक आरोग्यता का कारण है । पितृयज्ञ करने से मनुष्य जहां अपने आत्मा के प्रेमगुण की उन्नति करता है वहां औरों की सेवा सत्कार से मनुष्यसमाज को लाभ पहुंचाता है, इसी प्रकार भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ करने से मनुष्य अपने प्रेम की उन्नति करता हुआ दूसरों की बराबर उन्नति करता है ।

कई लोग इन पांच यज्ञों को केवल निजोन्नति के साधन मानते हैं, यदि वे विचार से काम लें तो उनको प्रतीत होगा कि ये अपनी और दूसरों की उन्नति के बराबर साधन हैं । जो लोग इन पञ्चयज्ञों को केवल दूसरों की उन्नति का साधन कहते हैं, वे भी इस बात को नहीं समझते कि किस प्रकार दूसरों की उन्नति करते हुये हम अपनी उन्नति करते हैं, औरों का उपकार करने से निजप्रेम की शक्ति उन्नत होती है । निष्काम कर्म करने वाले इसी विश्वास को मन में रखते हुये सन्तोष धारण करते हैं । वे समझते हैं कि यद्यपि लोग हमारे उपकार की प्रशंसा न करें तो भी हम अपनी उन्नति परोपकार करने से अवश्य कर रहे हैं मन में दूसरे की हानि का संकल्प तक लाने से निश्चित हम अपनी हानि करते हैं औरों पर क्रोध करने से हम आप ही अशान्त होते हैं । जैसे मनुष्य, ज्ञान या विद्यादान से अपनी विद्या की उन्नति करता है वैसे ही प्रेम के दान से निज प्रेमरूपी स्वभाव की उन्नति करता है । यदि कोई अतिथि आदि की सेवा प्रेमपूर्वक करता है तो ऐसा करने के साथ ही वह अपनी प्रेमशक्ति की उन्नति करता है । सामुद्रिकविद्या के जाननेवाले मनुष्य के मस्तिष्क के तीन बड़े भाग करते हैं । आगे के भाग को, जिसे ललाट कहते हैं, ज्ञान का साधन † बीच के ऊपरले भाग को उपासना का साधन और पीठ की ओर के पिछले भाग को प्रेम या कर्म का साधन बताते हैं और इन तीनों भागों की उन्नति करना मनुष्य का धर्म है जो ज्ञान के साथ २ उपासना, कर्म या प्रेम की उन्नति नहीं करता वह स्वस्थ या नीरोग कहलाने का अधिकारी नहीं । साम्यावस्था (harmony) का

---

* कोई २ लोग कहा करते हैं कि गन्धक जलाने से वायु शुद्ध होजाता है परन्तु अनुभव बतला रहा है कि जब दियासलाई रगड़ते वक्त गंधक की दुर्गन्धि नाक में पहुंचती है तो सहन नहीं होसकती, इसलिये गंधक के जलाने से कभी वायु शुद्ध नहीं होता । इस विषय को प्रोफेसर अलकजेण्डर पी. एच. एच. डी. ने अपने पुस्तक "इनटेलक्ट एण्ड दी सायन्स" में लिखा है जहां कि वह गन्धक को दुर्गन्धि को स्वास्थ्यनाशक कहता है ।

† देखो हारमोनिया भाग २ ए. जी. डेविस विरचित ।

नाम पूरी आरोग्यता है और वह ज्ञान, कर्म और उपासना में सम और साथ २ उन्नति करने से प्राप्त होती है। सामुद्रिक बतलाते हैं कि मनुष्य, स्त्री, पुत्र, भाई, बाप और प्राणीमात्र से जो प्रेम करता है तो इसलिये कि इस प्रेम का तत्त्व उसके आत्मा में भररहा है और मस्तिष्क का पिछला भाग इस प्रेम का आधाररूप साधन बनाया गया है। इसलिये इस बात को भले प्रकार जान लेना चाहिये कि जो मनुष्य प्रेमपूर्वक किसी की सेवा करता है तो ऐसा करने से वह जहां दूसरे को सुख पहुंचाता है वहां साथ ही अपनी प्रेमशक्ति की उन्नति करता है या यों कहो कि दूसरों से प्रेम करना अपनी प्रेमशक्ति को दृढ़ करने के लिये व्यायाम का काम देता है।

यदि आस्तिक अन्याय का आचरण नहीं करता तो क्या इससे उसकी और मनुष्यसमाज दोनों की उन्नति नहीं होती? यदि भूतयज्ञ करनेवाला रोगियों की सेवा करता है तो क्या इस कर्म से वह अपनी और दूसरों की उन्नति नहीं करता। सच तो यह है कि अपनी उन्नति के साथ दूसरों की उन्नति ऐसी लिपटी हुई है जैसी वृक्ष के साथ लता, एक को दूसरे से कोई पृथक् नहीं कर सकता कोई कह सकता है कि महर्षि दयानन्द अठारह घण्टे की समाधि केवल अपनी उन्नति के लिये लगाते थे, हम कह सकते हैं कि अपनी सच्ची उन्नति करने से वह अपने आपको मनुष्यसमाज की उन्नति करने के योग्य बना रहे थे। विचार से सिद्ध होता है कि मनुष्य अपनी सच्ची उन्नति में समाजिक उन्नति का बीज बोता है। ब्रह्मचर्याश्रम जो कि मनुष्य की निज उन्नति का एक साधन है, वही संन्यास आश्रम का जिसमें औरों की उन्नति कीजाती है मूल है। जिस कक्षा तक कोई अपनी उन्नति करता है, उस कक्षा तक ही वह मनुष्यसमाज का उपकार कर सकता है। जो लोग कहते हैं कि सामाजिक उन्नति करो और साथ ही बतलाते हैं कि जो समय पञ्चमहायज्ञों के करने में लगाते हो, उसको देशभक्ति के अर्पण करदो, वे लोग सामाजिक उन्नति का अर्थ ही नहीं समझते। हिंसक मनुष्य यदि अपने दुर्गुण को ईश्वर की उपासना से नष्ट करना नहीं चाहता तो हम नहीं जानते कि वह सिवाय समाज को हानि पहुंचाने के क्या लाभ पहुंचा सकता है। ब्रह्मयज्ञ आदि कर्म मनुष्य की अपनी और सामाजिक उन्नति के बराबर साधन है इसीलिये महर्षि मनु की आज्ञा है कि जो नित्य सन्ध्योपासन नहीं करता उसको द्विज पदवी से पतित करदेना चाहिये। परन्तु आज पश्चिमीय दीपक के प्रकाश में काम करनेवाले कहते हैं कि हम चाहे सन्ध्या करें या न करें, हम चाहे शुद्धाचारी बनें वा न बनें तो भी हम सामाजिक उन्नति के लिये काम कर सकते हैं जो कि सर्वथा अयुक्त है।

राजनैतिक संशोधक (पोलिटिकल लीडर) भी निज आत्मिक उन्नति के अंश को जीवन में दिखाते हुये ही समाज को अपने से जोड़ सकते हैं। यदि सदाचारी होने से "पारनल" आयरलैंड का लीडर बन रहा था तो दूसरी अवस्था में वह इस पदवी पर न रहसका। सामाजिक उन्नति को यदि फल कहैं तो स्वात्मोन्नति उसका बीज है, बीज की रक्षा करने से फल की आशा हो सकती है। समाज की काया पलटाने के लिये अपनी काया पलटाने की पहिले आवश्यकता है, पञ्चमहायज्ञ आदि नित्य कर्मों का पालन करनेवाला मानो नित्य अपनी और मनुष्यसमाज की उन्नति कर रहा है।

(४) संस्कारविधि

कर्म दो प्रकार के हैं नित्य और नैमित्तिक, नित्यकर्मों का विधान पंचमहायज्ञविधि में और नैमित्तिक कर्मों का विधान संस्कारविधि में है। महर्षि लिखते हैं कि "संस्कारों में केवल क्रिया करनी ही मुख्य है जिस करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सन्तान अत्यन्त योग्य होती हैं, इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अत्युचित है"।

कई लोग भ्रम से संस्कारों को केवल परम्परा की रीति समझते हुये कहा करते हैं कि केवल समाज की प्रसन्नता के लिये हमें संस्कारों का करना उचित है अन्यथा अपनी उन्नति इनसे कुछ नहीं हो सकती। हम इसके उत्तर में कहेंगे कि संस्कार शुद्ध क्रिया का नाम है न कि अन्धी रीति का और शुद्धक्रिया सदा अपनी और समाज की उन्नति की जड़ हुआ करती है। सार्थकविधि या क्रियायें संस्कारों की पूर्णता का साधन हैं। संस्कारकर्त्ता सदा अपनी और दूसरों की भलाई करता है। जैसे यदि कोई ऋतुगमनविधि का पालन करता हुआ गर्भाधान संस्कार करता है तो ऐसा करने से जहां वह अपनी स्त्री की आरोग्यता को नहीं बिगाड़ता वहां अपनी भी आरोग्यता की रक्षा करता है। कामासक्त पुरुष अपनी स्त्री को ही दुःख नहीं देता, किन्तु वीर्य का नाश करने से अपने बलबुद्धि का भी नाश कर बैठता है। उत्तम और बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न करने ही से हमारी उन्नति और भलाई है। यदि "शाहजहां" ने विना संस्कार या शुद्धि क्रिया के "औरंगज़ेब" को उत्पन्न किया तो उसके हाथ से दुःख भी आप ही भुगता। यदि राजा शान्तनु की धर्मपत्नी गङ्गा ने गर्भाधान की शुद्धक्रिया से भीष्म को गर्भ में धारण किया था तो सपूत भीष्म ने माता पिता की सेवा करते हुए पिता की प्रसन्नता के लिये आयुभर ब्रह्मचारी रहना स्वीकार किया था। इन

संस्कारों के करने से जहां हम सन्तान को उत्तम और सदाचारी बनाते हैं वहां अपनी भलाई का भी बीज बोदेते हैं। यदि कोई परोपकार के लिये यज्ञ करने से मेह बरसाता है तो क्या वृष्टि होती हुई उसके क्षेत्र को नहीं सींचती, औरों की भलाई में मनुष्य की अपनी भलाई सदा जुटी रहती है।

संस्कारविधि में निम्नलिखित १६ संस्कारों का वर्णन है—(१) गर्भाधान, (२) पुंसवन, (३) सीमन्तोन्नयन, (४) जातकर्म, (५) नामकर्म, (६) निष्क्रमण, (७) अन्नप्राशन, (८) कर्णवेध, (९) चूड़ाकर्म, (१०) उपनयन, (११) वेदारम्भ, (१२) समावर्त्तन, (१३) विवाह, (१४) गृहाश्रम, (१५) वानप्रस्थ, (१६) संन्यास। मुसलमान और ईसाईमत की पुस्तकों में १६ संस्कारों का वर्णन नहीं और न यह लोग किसी वैज्ञानिक मूल पर कोई संस्कार करते हैं। इनके विवाह को हम एक सामाजिक रीति कह सकते हैं न कि संस्कार। गर्भाधान जो कि पहिला संस्कार है इसकी आवश्यकता आज सायन्स के दीपक के प्रकाश में काम करने वाले अनुभव कर रहे हैं। एक पश्चिमीय प्रसिद्ध डाक्टर के निम्नलिखित वाक्य हमारे कथन की पुष्टि कर रहे हैं:—

"उत्तम सन्तान का उत्पन्न करना और सन्तान को सच्चरित्र बनाना ऐसा उत्तम काम है कि आजतक इस पृथिवी पर नहीं हुआ * हम उस पुरुष और स्त्री की कहांतक प्रशंसा करें जो संसार में उत्तम सन्तान को उत्पन्न करते हैं"। दीपक के प्रकाश रखनेवाले इस पश्चिमीय डाक्टर को क्या खबर है कि १६ संस्कारों के प्रताप से हमारे पूर्वज सन्तान को जन्म से मृत्युपर्यन्त बराबर उत्तम और सच्चरित्र बनाते थे। इसके विचार में गर्भाधान संस्कार तो आजतक इस पृथिवी पर नहीं हुआ, परन्तु आज महर्षि दयानन्द ने संस्कारविधि रचकर प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि एक गर्भाधान तो क्या किन्तु १५ (पन्द्रह) अन्य संस्कार भी सन्तान को उत्तम और सच्चरित्र बनाने के लिये प्रत्येक को करने चाहियें।

प्रत्येक संस्कार के अवसर पर शान्तिदायक वेदमन्त्रों का पाठ और सामवेद का गान। आत्मिक प्रसन्नता के लिये और हवन यज्ञ का करना शारीरिक आरोग्यता के लिये उचित है। गान व हवन ये दो संस्कारों के परमसाधन हैं, जिस प्रकार होम का धुवां शरीर को बल और पुष्टि देता है उसी प्रकार विज्ञान और ईश्वरीय गुणों से

* डाक्टर हौवमुक एम. डी. रचित "पार्टीकीतरोच विदाउट पेन" नाम पुस्तक पृष्ठ १०१।

भराहुआ वेदमन्त्रों का गान आत्मा को तुष्टि और पुष्टि देता है । ठीक युद्ध के समय लड़ते हुए शूरों में शूरता की आग भड़काने के लिये उत्साहवर्द्धक गीत गाये जाते हैं, जितने गीत के शब्द उत्साहवर्द्धक और प्रभावोत्पादक होते हैं उतने ही परिमाण से शूरयोद्धा युद्धक्षेत्र में अपना पराक्रम दिखलाते हैं । सर्प जैसे तिर्यक् जन्तु भी राग के बल से मोहित होजाते हैं राग का जो प्रभाव आत्मा पर होता है उसे कोई बुद्धिमान् * अस्वीकार नहीं कर सकता । सामान्य (न अधिक न कम) गानेवाले की छाती और फेफड़े दृढ़ होजाते हैं † फेफड़ों की रक्षा के लिये बोलना और गाना एक प्रकार के व्यायाम हैं ।

प्रत्येक संस्कार के लिये महर्षि ने प्रमाण एकत्र करके रखदिये हैं, संस्कारविधि के अवलोकन से प्रकट है कि जो अपव्यय लोग आतिशबाज़ी बागबहारी इत्यादि में विवाह या अन्य संस्कारों के अवसर पर किया करते हैं, उनकी आज्ञा शास्त्रों ने नहीं दी । सोलह संस्कारों के अतिरिक्त मृतकशरीर को जलाने के लिये अन्त में अन्त्येष्टि कर्म की विधि लिखी है । मुसलमान ईसाई आदि जो लोग धर्म से बुद्धि का कुछ सम्बन्ध नहीं मानते, वे मृतक को पृथिवी में गाड़ने से जल वायु को दूषित करते हैं, परन्तु वेद बतलारहा है कि मृतकशरीर को जलाकर भस्म कर देना चाहिये ।

ब्रह्मयज्ञादि नित्यकर्म करनेवाले को अपनी जाति के स्त्री पुरुषों को एकत्र करने की आवश्यकता नहीं, परन्तु इन संस्कारों के अवसर पर जाति के स्त्री पुरुषों का एकत्र होकर संस्कार की साधारण क्रिया में सहायता देना आवश्यक है । पितृयज्ञ में जिनकी सेवा करना अभीष्ट है उनके विना अन्य लोगों को निमन्त्रण देने की आवश्यकता नहीं, परन्तु इन संस्कारों में जाति के लोगों तथा इष्टमित्रों को सुशोभित होना आवश्यक है । इन्हीं वेदोक्त संस्कारों के प्रताप से ऋषि, मुनि और महात्माजन पृथिवी पर जन्म लिया करते थे और आज इन्हीं के अभाव से दीन, मलीन और बलहीन संतान पृथिवी का भार बन रही है । संस्कारों का मूल गर्भाधान है और गर्भाधान स्त्री पुरुष के ब्रह्मचर्य्य के विना हो नहीं सकता । इसलिये संस्कारों की प्रणाली को पुनः प्रचलित करने के लिये हमें ब्रह्मचर्य्य की दृढ़ नींव डालनी चाहिये ।

---

* मुसलमान लोग गानविद्या के विपरीत हैं ।

† डाक्टर अनार्किंगुल फोर्ड एम. डी. का कथन है कि सायं प्रातः का गाना छाती के लिये अच्छा व्यायाम है, देखो "रायल रोड टू ब्यूटी" नाम पुस्तक ।

(५) गोकरुणानिधि

"यह ग्रन्थ इसी अभिप्राय से रचा गया है कि जिससे गवादि पशु, जहांतक सामर्थ्य हो, बचाये जावें और उनके बचाने से दूध, घी और खेती के बढ़ने से सब को सुख बढ़ता रहे"।

इस ग्रन्थ में तीन प्रकरण हैं एक समीक्षा, दूसरा नियम, तीसरा उपनियम। गाय, भैंस, बैल, ऊंट, बकरी, घोड़ा, हाथी, सूवर, कुत्ता, कुक्कुट, मोर आदि से जो जो लाभ होते हैं उनको युक्तिपूर्वक दिखाते हुये महर्षि लिखते हैं कि "इत्यादि शुभ-गुणयुक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरों से काटकर जो अपना पेट भर सब संसार की हानि करते हैं क्या संसार में उनसे भी अधिक कोई विश्वासघातक, अनुपकारी, दुःख देनेवाले और पापी जन होंगे"। इसीलिये यजुर्वेद के प्रथम ही मन्त्र में परमात्मा की आज्ञा है कि "हे पुरुष! तू इन पशुओं को कभी मत मार"।......"इसीलिये ब्रह्मा से लेकर आज पर्य्यन्त आर्य्य लोग पशुओं की हिंसा में पाप और अधर्म समझते थे और अब भी समझते हैं"।

बेजुबान पशुओं का प्रतिनिधि आगे चलकर मांसभक्षकों से इन शब्दों में अपील कररहा है:—"हे मांसाहारियो! तुम लोग जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं?" इसके पश्चात् महर्षि प्रश्नोत्तर की रीति पर मांसाहारियों के बड़े २ आक्षेपों का ऐसा यौक्तिक और समीचीन उत्तर देते हैं कि वह मनुष्य जिसने यूरोप और अमेरिका की फलाशिनी सभाओं के उत्तम से उत्तम पुस्तक पढ़े हैं वह भी वास्तव में महर्षि के उत्तरों को पढ़कर विस्मित हो जाता है। निम्नलिखित संक्षिप्त वाक्य महर्षि के लेख से उद्धृत करते हैं इसलिये कि लोग मांसभक्षण के विषय में वेदों का सिद्धान्त जान सकें।

"मांस का खाना किसी मनुष्य को उचित नहीं"। (पृ० १०) "किसी अवस्था में मांस न खाना चाहिये"। (पृ० ११) "इस कारण मांसाहार का सर्वथा निषेध होना चाहिये"। (पृ० ११) "इसीलिये दयालु परमेश्वर ने वेदों में मांस खाने वा पशु आदि मारने की विधि नहीं लिखी"। (पृ० १२) गोकृष्यादिरक्षिणीसभा के सात नियम और कई उपनियम लिखकर (जिन में दारिद्र्य और दुर्भिक्ष के हटाने और सुभिक्ष और शान्ति के बढ़ाने के उपाय वर्णित हैं) महर्षि इस परोपकारी ग्रन्थ की समाप्ति करते हैं।

(६) आर्य्योद्देश्यरत्नमाला

सुगम और संक्षेप रीति से कठिन और गूढ़ विषयों को केवल भाषा जानने-वालों के कान तक पहुंचाने के लिये महर्षि ने यह पुस्तक आर्यभाषा में रचा है। ईश्वर, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, सत्यभाषण, मिथ्याभाषण, विश्वास, अविश्वास, लोक, परलोक, जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक, विद्या, अविद्या, सत्पुरुष, सत्सङ्ग, तीर्थ, स्तुति, निन्दा, प्रार्थना, उपासना, सगुणनिर्गुणोपासना, मुक्ति, मुक्ति के साधन, कर्ता, कारण, उपादानकारण, निमित्तकारण, साधारणकारण, कार्य्य, सृष्टि, जाति, मनुष्य, आर्य, आर्यावर्त्तदेश, दस्यु, वर्ण, वर्ण के भेद, आश्रम आदि सौ रत्न इस माला में महर्षि ने बड़ी उत्तमता से पिरोये हैं। प्रत्येक मनुष्य को यह सिद्धान्तरूपी रत्नों की माला मन में धारण करनी चाहिये। माता पिता जो सन्तान को सोने चांदी की माला पहिनाते हैं जिससे कि उनके प्राण जाने का भय है, उसकी जगह यदि वे उनके आत्मा को यह रत्नमाला पहिनावें तो वास्तव में उनकी सन्तान अत्यन्त रमणीय और विद्या-रत्न से अलंकृत और सुभूषित होजावे।

(७) भ्रमोच्छेदन

महर्षि दयानन्द दिग्विजय करते हुये कई बार काशी में पहुंचे और वहां के प्रसिद्ध पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ किये और विजय पाई, परन्तु कभी राजा शिव-प्रसादजी सितारह हिन्द महर्षि के सामने शास्त्रार्थ के लिये न आये। संवत् १९३६ में एकवार उक्त राजा साहब का साधारण रीति पर स्वामीजी से समागम हुआ और इस समागम के पश्चात् सवाचार महीने तक स्वामीजी काशी में वैदिकधर्म का उप-देश करते रहे परन्तु इतने दीर्घकाल में भी राजा साहब अपने सन्देह निवृत्त करने के लिये कभी न आये। परन्तु जब राजा साहब ने सुना कि स्वामीजी काशी से जाने-वाले हैं तो एक पुस्तक बना और स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति उस पर लिखा-कर प्रकाशित करदी। इस पुस्तक में राजाजी ने कई आक्षेप (जो कि उनके पौरा-णिक गुरु स्वामी विशुद्धानन्दजी ने उनको बताये थे) किये हैं। यद्यपि यह पुस्तक राजा शिवप्रसाद साहब के नाम से छपी है परन्तु वास्तव में स्वामी विशुद्धानन्दजी की ओर से समझनी चाहिये क्योंकि राजा साहब संस्कृतविद्या के पण्डित नहीं थे और नहीं वे इस प्रकार के विद्यासम्बन्धी प्रश्न करने की योग्यता रखते थे। महर्षि दयानन्द इस पुस्तक के उत्तर में भ्रमोच्छेदन नामक पुस्तक कभी न लिखते यदि

स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति उस पर न लिखी होती। निम्नलिखित वाक्य महर्षि के इस अभिप्राय को बोधन कर रहे हैं:—

"जो राजाजी स्वामी विशुद्धानन्दजी की सम्मति न लिखाते तो मैं इस पत्र के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उनको तो जैसा अपने पत्र में लिख चुका हूं वैसा ही निश्चित जानता हूं"।

महर्षि के भ्रमोच्छेदन के पढ़ने से प्रकट होता है कि किस प्रकार काशी के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी विशुद्धानन्द सत्य के बल से पराजित होते हुये इस बात को सिद्ध करते हैं कि सत्यरूपी हीरे के आगे पाखण्डरूपी चट्टान किस प्रकार खण्ड २ होता है।

(८) भ्रांतिनिवारण

महर्षि के वेदभाष्य पर कई आक्षेप पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न स्थानापन्न प्रिन्सिपल संस्कृत कालिज कलकत्ता ने एक पुस्तक में लिखकर छपवाये थे, उस पुस्तक के उत्तर में महर्षि ने "भ्रान्तिनिवारण" पुस्तक रचा। जिस योग्यता और विद्वत्ता से महर्षि ने पौराणिकों के प्रसिद्ध पण्डित के आक्षेपों का सन्तोषजनक और यौक्तिक समाधान किया है उसका अनुभव वही लोग कर सकते हैं जिनको इस पुस्तक के पढ़ने का अवसर मिला हो। भ्रान्तिनिवारण की भूमिका भी अत्यन्त रोचक और शिक्षादायक है, उसमें से कुछ वाक्य नीचे लिखते हैं इसलिये कि पाठक महर्षि के आत्मबल का अनुभव करसकें और जानलें कि वह किसके भरोसे पर चारों ओर अकेला अपने विपक्षियों पर विजय पारहा था।

"विदित हो कि जो मैंने संसार के उपकारार्थ वेदभाष्य बनाने का आरम्भ किया है कि जो सब प्राचीन ऋषियों की कीहुई व्याख्या और अन्य सब ग्रन्थों के *प्रमाणयुक्त बनाया जाता है*, जिससे इस बात की साक्षी वे सब ग्रन्थ आज पर्य्यन्त विद्यमान हैं......जो मैं निरा संसार ही का भय करता और सर्वज्ञ परमात्मा का कुछ भी नहीं कि जिसके आधीन मनुष्य के जीवन मरण और सुख दुःख हैं तो मैं भी वैसे ही व्यर्थ वाद विवादों में मन देता। परन्तु क्या करूं मैं तो अपना तन, मन, धन सब संसार के ही उपकारार्थ समर्पण करचुका, मुझ से चाटुता (खुशामद) करके अब स्वार्थ का व्यवहार नहीं चल सकता, किन्तु संसार को लाभ पहुंचाना ही

मुझ को चक्रवर्ति राज्य के तुल्य है। मैं इस बात को प्रथम ही भली प्रकार जानता था कि न्यारिये के समान बालू से सुवर्ण निकालने वाले चतुर कम होंगे, किन्तु मलिन मछली के सदृश निर्मल जल को गदला करने और बिगाड़ने वाले बहुत हैं परन्तु मैंने इस धर्मकार्य का सर्वशक्तिमान्, सर्वसहायक, न्यायकारी परमात्मा की शरण में सीस धरकर उसी के सहायालम्ब से आरम्भ किया है।

(९) आर्याभिविनय

इस में ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना अच्छे प्रकार लिखी गई है। पहिले मूलमन्त्र और नीचे सुगम आर्यभाषा में अर्थ लिखा है नित्यकर्म में श्रद्धापूर्वक पाठ कर ईश्वरभक्ति से चित्त को शान्त कर के सन्तुष्ट होने में उपयोगी है।

(१०) व्यवहारभानु

इसमें व्यवहार के अनेक विषयों की शिक्षा आर्यभाषा में लिखी है, जहां २ उचित समझा संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं। बालक, युवक और वृद्ध सब को इस ग्रन्थ का देखना लाभदायक है, विशेषः कर पढ़ने पढ़ाने में निन्दनीय व्यवहारों का त्याग और अध्यापक शिष्यों को जैसे वर्त्तना चाहिये वैसा उपदेश है, इस कारण पढ़ने पढ़ाने वालों को विशेष उपयोगी है।

(११) वेदविरुद्धमतखण्डन

इसमें वल्लभाचार्यमत (जो वैष्णवमत का एक भेद है) को प्रश्नोत्तर द्वारा अच्छे प्रकार समालोचना कर उसको वेदविरुद्ध सिद्ध किया है पहिले यह पुस्तक केवल संस्कृत में था, अब नीचे आर्यभाषा भी की गई है, इससे सबको उपयोगी है।

(१२) स्वामिनारायणमतखण्डन

गुजरात आदि देशों में स्वामिनारायण का मत फैला है, यह वैष्णवमत का एक भेद है, इसका खण्डन प्रश्नोत्तर की रीति से संस्कृत में आर्यभाषा सहित किया है।

(१३) वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी

इस में जीव ब्रह्म की एकता और जगत् मिथ्या कहने वाले आधुनिक कल्पित वेदान्तमत का खण्डन और वेदान्त के प्रसिद्ध महावाक्यादि का ठीक २ अर्थ किया गया है।

(आत्माराम)

मुझ को चक्रवर्त्ति राज्य के तुल्य है। मैं इस बात को प्रथम ही भली प्रकार जानता था कि न्यारिये के समान बालू से सुवर्ण निकालने वाले चतुर कम होंगे, किन्तु मलिन मछली के सदृश निर्मल जल को गदला करने और बिगाड़ने वाले बहुत हैं परन्तु मैंने इस धर्मकार्य का सर्वशक्तिमान्, सर्वसहायक, न्यायकारी परमात्मा की शरण में सीस धरकर उसी के सहायावलम्ब से आरम्भ किया है।

(९) आर्याभिविनय

इस में ऋग्वेद और यजुर्वेद के मन्त्रों से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना अच्छे प्रकार लिखी गई है। पहिले मूलमन्त्र और नीचे सुगम आर्यभाषा में अर्थ लिखा है नित्यकर्म में श्रद्धापूर्वक पाठ कर ईश्वरभक्ति से चित्त को शान्त कर के सन्तुष्ट होने में उपयोगी है।

(१०) व्यवहारभानु

इसमें व्यवहार के अनेक विषयों की शिक्षा आर्षभाषा में लिखी है, जहां २ उचित समझा संस्कृत के श्लोक भी लिखे हैं। बालक, युवक और वृद्ध सब को इस ग्रन्थ का देखना लाभदायक है, विशेषः कर पढ़ने पढ़ाने में निन्दनीय व्यवहारों का त्याग और अध्यापक शिष्यों को जैसे वर्त्तना चाहिये वैसा उपदेश है, इस कारण पढ़ने पढ़ाने वालों को विशेष उपयोगी है।

(११) वेदविरुद्धमतखण्डन

इसमें वल्लभाचार्यमत (जो वैष्णवमत का एक भेद है) की प्रश्नोत्तर द्वारा अच्छे प्रकार समालोचना कर उसको वेदविरुद्ध सिद्ध किया है पहिले यह पुस्तक केवल संस्कृत में था, अब नीचे आर्यभाषा भी की गई है, इससे सबको उपयोगी है।

(१२) स्वामिनारायणमतखण्डन

गुजरात आदि देशों में स्वामिनारायण का मत फैला है, यह वैष्णवमत का एक भेद है, इसका खण्डन प्रश्नोत्तर की रीति से संस्कृत में आर्यभाषा सहित किया है।

(१३) वेदान्तिध्वान्तनिवारण नागरी

इस में जीव ब्रह्म की एकता और जगत् मिथ्या कहने वाले आधुनिक कल्पित वेदान्तमत का खण्डन और वेदान्त के प्रसिद्ध महावाक्यादि का ठीक २ अर्थ किया गया है।

(आत्माराम)

श्री

स्वामी दयानन्द सरस्वती योग्य मूलराजका पुत्र ठाकोरदास ओशवालने लिखा हुवा प्रथम पत्र सहर आगरेकुं भेजा.

स्वामी दयानन्द सरस्वती योग्य अत्र गुजरांवाले तें लिखतं जैन मती. कारण लिखनेका यह है कि जो आपने सन १८७५ में सत्यार्थ प्रकाश छपाया हे, उस पुस्तकके समुल्लास बारवेमें पृष्ठ (३९६) सें लेकर जो व्याख्यान जैनोंकी बाबत लिखा हे और उनमें हवाल जैनमतके श्लोकोंका लिखा हे; सो आप कृपा करकें जैनके शास्त्रोंका नाम लिखो के यह कौनसे जैनके शास्त्रके श्लोक हैं. इस बात का जबाब जलदी भेजो, क्यूंके जो जैनमतमें यह श्लोक हे नहीं और जूठ लिखना यह बुद्धिमानोंकी बात नहीं, इस वास्ते आपकुं योग्य हे के उस शास्त्रका नाम लिखना. इसवास्ते आपकुं चिठ्ठी दी जाती हे इसका जवाब जलदी भेजनां, इस चिठ्ठीका नाम ठाकोरदास गुजरांवाले जैन मंदिरमें भेजनां, चिठ्ठी लिखी मिती आषाढ वद ११ संवत् १९३७ पंजाबी द० बेलीरामके.

उपरका पत्रका जवाब नहीं आनेसें स्वामी दयानन्द सरस्वतीके पर दूसरा पत्र लिखकर सहर आगरेकुं भेजा उस्कीनकल.

स्वामी दयानन्द सरस्वती योग्य अत्र गुजरांवालेतें लिखतं जैनम-

ती. कारण लिखनेका यह हे के जो आपने सन १८७५ इस्वीमें सत्यार्थ प्रकाश छपाया हे, उसमें जो जैनका हाल लिखा हे, सो कौनसे शास्त्र ग्रंथके अनुसार लिखा हे, आप इसका जुबाब जलदी भेजे, जे कर आप उत्तर नहीं भेजेंगे तो आपकुं अदालतमें जबाब देई करनी पडेगी. और असें असें जूठे उजलाम (दूषण) मतों पर लगाने यह बुद्धिमान्‌की बात नहीं इस बातका निर्णय अदालतमें होयगा, इसवास्ते आपको "बतोर इतला" (प्रथम चिठ्ठी लिखी भेजी गई हे.) आप इसका जुबाब लिखो जो "जेडा पाठ" (जो पाठ) जैनमतका लिखा हे सो किंचित् मात्र लिखते हें:- सत्यार्थप्रकाशमें पृष्ठ ४०१ उपर यह श्लोक लिखे हें:-

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ॥
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ॥ १ ॥
यावज्जीवं सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ॥
अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनं ॥ २ ॥
बुद्धिपौरुषहीनानां, जीविकेति बृहस्पतिः ॥
अग्निरुष्णो जलं शीतं, शीतस्पर्शस्तथानिलः ॥ ३ ॥
केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ॥
न स्वर्गो नापवर्गो वा, नैवान्यः पारलौकिकः ॥ ४ ॥
नैव वर्णाश्रमादीनां, क्रियाश्च फलदायकाः ॥
अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनं ॥ ५ ॥
बुद्धिपौरुषहीनानां, जीविका धातृनिर्मिता ॥

तुमनें कल्पना करकें लिखा हे कि जैनी लोक किसी जीवकुं पीडा देनी हिंसा जानते हें और ये आपने लिखा हे के जब प्रलय हो

ता है तो पुद्गल जूदा जूदा हो जाते हैं, जब वे मिलते हैं तब पृथ्वी आदि स्थूलभूत बन जाते हैं, और पद्म शिलापर बेठके चराचरकुं देखनां और जैनोका ऐसा बी कहना है जो तलाव बनानेमें उसमें भेंसा बेठेगा उपर मेघा बेठेगा उसको कोवा लेजायगा मार भी डालेगा उसका पाप तलाव बनानेवालेको होयगा. और जेनमतमें जो न होय औ वा श्रेष्ठ भी होय तोभी उसकी सेवा अर्थात् पानीत कभी नहीं देते और ढुंढीये लोकोंका साधु जब आता है तब जेनी लोक उसकी दाढी, मूछ, और शिरके बाल सब लोच लेते हैं, जो उस बखत वो शरीर कंपावे अथवा नेत्रोंसे जल गिरावे तब सर्व कहते हैं के यह साधु नहीं भया, क्योंके इस्कुं शरीरमें मोह है. यह बिचार करना चाहिये के ऐसी ऐसी पीडा और साधुनको दुःख देनां और उनके हृदयमें दयाका लेस भी नहीं आनां यह उनकी बात अति मिथ्या है ऐसा आपने कोनसे ग्रंथमें लिखादेखा है?

आपको तो हम बडा पंडित सुनते थे अब इसका सर्वत्र समाचार लिखना और ए चिठ्ठी नोटीसके "तार" (माफक) दीजाती है इसका जुबाब नाम ठाकोरदास भावडा गुजरांवालेकूं जेनमंदिरमें भेजनां. संवत् १९३७ आषाढ शुद्धु ५ पंजाबी दसकत खुशीराम.

उपरके पत्रकी पहोंच स्वामी दयानन्दकी तरफसें आई उस्की नकल.

ओ३म्

सराजख ठाकरदासजी योग्य नमस्ते.

पत्र आपका संवत् १९३७ आषाढ शुदि पंचमी पंजाबीका लि-

खा स्वामीजीके पास पहुंचा, देखकर अभिप्राय जान लिया, उसके उत्तर लिखनेके लिये स्वामीजीने मुजको आज्ञा दी है, इससें आपकों में लिखता हूं बडे आश्चर्यकी बात हे कि जो योग्य विद्वान् नहीं होते वेहि अन्यथा बातों के लिखनेमें प्रवृत्त होकर अपनी हानि मात्र कर बेठते हें, क्यों कि उनको अपनी और पराई बातोंकी समझ तो होती ही नहीं. इससें अपने आप खाडा खोद उसमें आपही गिरपडते हैं, तुम्हारे लेखसें हमको यह विदित हुवा की आप किसी विद्याकों न पडे? औरनकिसी विद्वानका कभी तुमने संग किया है नहीं तो स्वामीजीके लेखाभिप्रायको क्यों न समझ लेते? और अपना लेख अपने अभिप्रायसें विरुद्ध क्यों लिखते? देखिये (जब स्वामीजीने बारहवे समुल्लासमें अनेक ठिकानोमें (के) अर्थात् जेनीलोक असा कहते हें लिखा है, तब फिर आपने यह क्यों पूछा कि सो किस शास्त्र ग्रंथके अनुसार छपाया है) इस लेखसें विदित होता हे कि आप जिस फिरकेमें हे जब उसीका हाल ठीक नहिं जानते तो दूसरे जेनोंके फिरकोंकी बातोंको कैसे जाननेमें समर्थ हो-सकते हो? और इससें यह भी विदित होता है की आप वा आपका कोई संगी भी संस्कृत वा भाषाको नहीं पढे हें, जब स्वामीजीने यह लिखा हे की (जेनी लोक असा कहते हे) फिर क्या तुम्हारा लिखना की किस शास्त्र और ग्रंथकी यह बात हे? मिथ्या नहिं हे और जो तुमने श्लोक लिखे हें, वेही स्वामीजीके सब लेखमें प्रमाण बहुत हैं. परंतु जो तुमने अग्निहोत्र, तीनवेद, त्रिदण्ड भस्मधारणादि, बुद्धि और पुरुषार्थसें हीन मनुष्योंकी जीविका, स्वभावसें जगतेकी अवस्था, वर्ण और आश्रमोंकी क्रिया, सब निष्फल हें लिखा, क्या ए

बातें तुम्हारा सर्वस्व निलाम होनेमें थोडा अपराध है. मैं आपसें सुहृ-
द्भतासें लिखता हूं की इस मामलेकों आप छोरा कभी मत समझनां.
इसमें सब जेनी मतवालोंकी सम्मति लेलीजिये, जैसीकि (हम सब आ
र्योंकी तुम्हारे सामने अदालत करनेमें तन, मन, धन सें निश्चित है
क्यों की तुम जैन लोगोने परम पवित्र सब सत्य विद्याओसें युक्त
सब मनुष्योंके लिये अत्यंत हितकारी ईश्वरोक्त वेदों और वेदानुकूल
अन्य सत्य शास्त्रोंकी निंदा और इन परोपकारी पुस्तकोंके नाश करने
सें इतनी हानि की और करते जाते हो के जिसमें सब जेनोंका तन,
मन और धन लगजावे तोभी लानीशकी डीगरी पूरी न होगी) इस लि
ये तुम सब जेनोंको विज्ञापन देदो के वे भी सब तुम्हारे सहायक हो
के इस मामलेकों हम लोगों से चला सके, तुम सब इसमें तैय्यार
होजाओ जेसेकी हमलोग सत्य और असत्यके निश्चय करनेमें त
त्पर हें यह अपने मनमें बडा विचार कर लीजियगा हम आर्योंको
वैष्णव आदिके समान कभी मत समजलेनां किजैसे उनके रथ निकाल
नेआदिके मामले अदालतसें फते कर लेते हो, वैसे हमारे साथ कभी
न कर सकोगे. क्यों की (जेसें तुम पाषाणादिक मूर्त्तिपूजक हो तेसे वे भी
है और हम है परमेश्वरपूजक और तुम हो अनीश्वरवादी, अनीश्वरवादी अर्थात्
स्वतःसिद्ध अनादि ईश्वरको नहिं मानने) इत्यादि हेतुओंसें तुमा
रा पराजय हमारे सामने होना किसी प्रकार असंभव और कठिन न-
हीं है, इसलीये तुमको नोटीस देते हें के तुम आपसमें मिलकर इस
मामलेकूं चलाओ. और जब तुम्हारी योग्यता हमारे सामने कम हो
सकती है तो स्वामीजीके सामने तुमारी क्या योग्यता हो सकती है?
कभी नहिं. देखनां तुम्हारे हजारो ग्रंथोसें वेदादि सत्यशास्त्रों

की मिथ्यानिंदा कचेरीमें हम सब हाकेम आदिके सामने ठीक ठीक साबूत करदेंगे· इसमें कुछभी संदेह मत जाननां, जितना तुम्हारा सामर्थ्य हो, उतना खरच होजाने परभी आप लोगोकों बचनां अति कठिन दीखपडता हे, और एक यह बात भी करो की जैसें हमारे बीचमें स्वामीजी सर्वोत्तम विद्वान् हे, वेसे जो कोई एक तुम्हारे बीचमें सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो, उसको स्वामीजीके सामने खडा कीजियें के जिस्सें तुम और हम वैदिक और जैनमत की चर्चा सुन कुछ आनंद प्राप्त हो, और अन्य मनुष्योंकोभी लाभ पहुचे हमारे इस लेखको निःसंदेह सत्य और मूलमंत्र तथा सूत्रके तुल्य समजनां के इतने ही लिखनेसें सब कुछ जानियेगाः तुमारे सामने इससें अधिक लिखनां हमकों आवश्यक नहिं किंतु जब जब जहां जहां जेसा जेसा प्रकरण आवेगा तब तब वहां वहां वेसा वेसाही हम लोग तुमकों ठीक ठीक साक्षात् करा दीया करेंगे. एसा निश्चित जानो· जेसे यह पत्र हमलोग वहां कुजरांवाले के आर्यसमाजकी मार्फत ही भेजते हें वेसे आप लोग वहीके समाजकी मार्फतही हमारेपास पत्र भेजा कीजीएंगा· मिति श्रावण वदी ५ सोमवार संवत् १९३७ पंजाबी·

देखो तुमकों न भाषा, न संस्कृत और कोई दर्शनविद्या आती हे उसका यह दृष्टांत हे·

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
श्लोक ज्जीवस्त पिवेत वेदाभि	श्लोकः ज्जीवेत्स पिवेत् वेदास्थि	जौविकेति बृहस्पति शीतंस्पर्शो } तथानिला }	जौविकेति बृहस्पतिः { शीतस्पर्शा { स्तथानिलः	तस्मातस्वा फलदायकः त्रिदंण्डभस्म धातृर्भिता	तस्मात्स्वा फलदायिकाः त्रिदण्डंभ० धातृनिर्मिता

जब आप लोगोने अदालत करनेकी बात लिखी, तब हमने इतनी लिखी, नहिं तो हम कुछ भी न लिखते. दसकत इंग्रेजी में (आणंदीलाल मन्त्री आर्यसमाज मेरट.)

दयानंद स्वामीकुं लिखा हुआ तिसरा पत्र आर्यसमाज गुजरांवालेकी मारफत भेजा उसकी नकल.

स्वामी दयानन्द सरस्वती योग्य नमस्ते.

वाहरे वाह उत्तर लिखाने वाले इस उत्तरके लिखानेसें तुमारी बडी विद्वत्ता जाहेर हुई है, तुमनें जो लिखा है के हम ऐसे हैं हम ऐसे हैं, हा तुम ऐसे अभिमानके पुंज हो विद्वानोकी येही रीति होयगी जो कोई उत्तर मांगे उसकुं उत्तर तो यथार्थ नहीं लिखना किंतु! उत्तरके बदले उसकी निंदा और अपनी बडाई लिख देनी वाह क्याही निर्मल बुद्धिका प्रभाव है? परंतु ऐसे उत्तर लिखनेसें हमारे पत्रका उत्तर नहीं लिखा किंतु! व्यर्थ ही तुमने इतना कागद काला किया है, परंतु तुमारे लिखनेसें हमको ऐसा मालुम होता है जो स्वामीजीने किसी जैनीके केहण सुनकर सत्यार्थ प्रकाशमें लिख दिया होगा परंतु जैनमतके शास्त्र, स्वामीजीने कदी ही नहीं देखे होगे. जे कर देखे होते तो इत्यादिक श्लोक जैनोनें बना रख्खे हें ऐसा कदापि न लिखते, क्योंके जैन मत की दो शाखा हे. एक श्वेतांबर अरु एक दिगांबर इन दोनुमेंसें कोनसा जैनी स्वामीजीके कानमें सुना गया था, जे यह श्लोक

जैनोके बनाये हुए हैं, अब स्वामिजीकुं उचित है जो इन श्लो
कोंका ठिकाना लिखे, अथवा जिसने उनके कानमें सुनाया है
उस जैनीका नाम लिखे, अथवा स्वामिजीकी समझमें उक्त दोनुं शा
स्त्राउंके सिवाय और कोइ जैनमत है उसका ए श्लोक है, तो उस-
का नाम लिखें अभिमानकी बातां लिखनेसें विद्वान् नहीं होता
उत्तर नहीं लिखे, और उत्तर की जगा अभिमानकी बातां लिखे
तो योग्य नहीं. श्रावण शुदी १ संवत् १९२७ पंजाबी.

ला. जैनीयुंका दासानुदास ठाकरदास.

उपर लिखा हुआ पत्रका उत्तरकी तेवीश दिन तलक राह देखी परंतु दयानंदस्वामीकी तरफसें न आनेके लिये चोथा पत्र रजिस्टर करके दयानंद स्वामीपर भेजा उसकी नकल.

श्री जिनाय नमः

दयानंद सम्मती योग्य नमस्ते महाशया.

मेनें आषाढ शुदी पंचमीका जो पत्र आपके नाम भेजाथा उ
सका उत्तर जो आपने आनंदीलाल मंत्री आर्यसमाज मेरटकी
मार्फत श्रावण वदी पंचमीको भिजवाया वो गुजरांवालेकी आर्य
समाज द्वारा श्रावण वदी १४ कों मुजे मिला आपके उक्त उत्तरसें मे
रे मनकुं किंचित् भी संतोष नहीं हुआ. और अपना संदेह मिटानेके
अर्थ पुनः एक पत्र आपके पास भेजना चाहा, परंतु अपने

पत्रमें आपनेजेयह लिख दिया था कि आर्य समाज गुजरांवालेकी मारफ-
त आगेसें पत्र भेजा करो, इस वास्ते मैंनें श्रावण सुदी एकमकों अप-
ना उक्तपत्र समाजकी मारफतही भिजवाया, परंतु क्याही शोककी बात
और संतापका विषय है? कि आज २३ दिवस हो गये आपने आर्य
समाजद्वारा प्रेषित मेरे उक्त पत्रकी किंचिदपि सुद्द नहीं ली, क्या
विद्वानोकी रीति एहि है? वा क्या आर्यसमाजकी मारफत भेजा हुआ पत्र
जान आपने इस विषयकुं तुछ समज लिया है? जैसा के आर्य समाजों
के और विषयोंकी आप जानते हैं इस आपके मौनावलंबनसें (चुप
बेठ रेनेसें) ऐसा प्रतित होता हैकि आर्य समाजोंकी भेजी हुई किसी बात
पर आप अपना ध्यान नहीं देते और उनको तथा उनकी बातोकों ऐसा हि
तुच्छ और हीन मानते है जैसा कि हमलोक येही कारण हैकि यह पत्रमें
आर्य समाजकी हीन मध्यस्थता छोड पुनः सीधा आपके समीप
भेजता हुं, इसका उत्तर कृपा कर आप लिखनां. उत्तरका भार (बोज)
किसी अन्य पुरुष पर न डाल देनां, जिसकों कि हमसें वा तुमसें कुछ
संबंध नहीं. सर्वप्रकारसें अनुचित है, क्युं कि जब स्वकपोलकल्पित वृ
था वितंडावादसें पूर्ण पुस्तक सत्यार्थप्रकाश आपने छपाया और हम
उससें लिखत बातोंका प्रमाण आपसें पुछते हैं तोफिर तीसरा मनु
ष्य ऊठ कर उसका उत्तर दे तो कैसी मूर्खता और अज्ञता है? इसी
सें आपको उचित हैकि पत्र अपने हाथसें आप लिखे वा आप
नी जुबानी और अपने हस्ताक्षर सहित लिखवाये. यह नहीं कि श्री
नंदीलालसा अग्यातकुल शीलसें उस्का उत्तर लिखवाय भेजे उस-
सें हमकों क्या काम? उसकों हम जानते ही नहीं, और उससें कुछ
पुछतेही नहीं, उससें हमकुं कुछ संबंध नहीं, उसने हमारा कुछ नहीं बि
गाडा और उसने हमारे मत विषयक कुछ नहीं लिखा, फेर हम उ

कों क्या जाने और उसका वचन क्यों ग्राह्य समजे? हमने यदि कुछ लिखना है, तो आपकुं, कुछ पूछनां हें, तो आपसें, और नालिस करनी है तो आपपर, फिर आप एक अन्य जन द्वारा हमारी बातोंका उत्तर क्यों लिखवाय भेजतें हो क्या येही आपकी बुद्धि और ग्यान है? हम सत्य सत्य कहते हैं कि जो उत्तर आप किसी अन्यकी मार्फत लिखवाय भिजवायगे वह आपकी जबानी ही समजा जावेगा, इसीसें आप कुछ संशय न मानियें, फेर पीछे अवसर पडने पर आप असा न कहे सकेगे कि हमने ऐसा नहिं लिखा, हम अबी इस बातसें आपकों चिताय देते हैं और इस वास्ते उचित है कि आप अपने हाथसें आगेंको पत्र भेजे किसी तिसरेकी मध्यस्थताका कुछ काम नहीं जोजो बातें तथा श्लोक जो आपने जैन मत विषयक सत्यार्थप्रकाशमें छपाये हें वह किस पुस्तक वा किस प्रमाएसें लिखे हें, उनका विवरा आलसको त्यागकर और मौनकुं छोड कर शीघ्र दीजीयें, नो चेत् (नहीं दे सकने तो) हम तोहीनमजहबकी दफामे अर्थात् कलममें आपपर नालीस करनेमें पूर्ण रूपसें दृढ संमत हें, आज्ञा दीजियें हमतो चाहते ही हें कि आप घरमें मित्र भावपूर्वक हमे आपनी प्रकाशित बातोंका प्रमाण दे देवें वा अपनी भूल स्वीकृत कर हमें भी नालीसकी तकलीफसें छुडा दे परंतु जदि आप दोनुं बातोंमेंसें एक कुं भी नहीं मानेंगे तो अवश्य हमको अदालत द्वारा आपकों मंगवाना पडेगा. गुजरांवाला. भाद्रपद वदी १० सोमवार संवत् १९३७ पंजाबी. ता. २० आगष्ट १८८० ई.

भवदीय उत्तराकारी ठाकोरदास भावडा जैनमंदिर.

उपर लिखा पत्रका उत्तर दयानंदनें भेजा सो नीचे मुजब है.

॥ओ३म्॥

ओ३म्॥ भाई ठाकुरदासजी योग्य नमस्ते॥

पत्र आपका मि॰ भा॰ व॰ १० सोमवार संव॰ १९३७ पंजाबी लिखा स्वामीजीके पास पहुंचा स्वामीजीने मुझको दे दीया, उक्त पत्रको देख अभिप्राय जानकर मुझको बड़ा आश्चर्य होता हैकि आप पुनः पुनः पिष्टपेषणवत् श्रम क्यों करते हैं? मैंने प्रथम पत्रमें सब बातों के प्रत्युत्तर लिखे फिर भी तुम न समझे, तो मेरा क्या दोष है? क्या मैंने यह बात न लखी थीकि जो स्वामीजीसें मत विषयक शास्त्रार्थ किया चाहो तो अपने मतका सर्वोत्कृष्ट विद्वान्को स्वामीजीके सन्मुख करो, अस्तु, जो ऐसा न कर सको तोजो इस समय गुजरांवालेमें आत्मारामजी उपस्थित हैं उन्हींहीको शास्त्रार्थके वास्ते नियुक्त करो जिस्सें आपलोगोंको भी मतकी सत्यता सर्वत्र प्रसिद्ध होके सबको विचार करनेका समय प्राप्त हो, और जो आपलोगों पर (मत और स्वग्रंथोंको गुप्त रखनेसें) मिथ्यात्वरूप कलंक प्रसिद्ध हो रहा है वह दूर होकर स्वमतका तत्त्व यथार्थ प्रकाशित हो जाय. लोग ऐसा अपवाद तुम्हारे पर धरते हैंकि जैसें वेदादिक शास्त्रोंको आर्यलोग, बायबल आदिको इसाई लोग, और कुरान आदिको मुसलमान लोग, व्याख्या और देशभाषांतरोंमें तरजुमा करके प्रचार कर रहे हैं. वैसें जैन लोग क्यों नहिं करते? यदि जैनोंके मतविषयक पुस्तक ठीक ठीक सत्य और विद्या पुस्तकोंके अनुकूल होते तो वाममार्गीयोंके सदृश कौलपद्धतिके समान अपने पुस्तकोंको गुप्त क्यों रखते? इत्यादि बुद्धिमानोंके अपवादका निवारन करनां आपलोगोंको अत्यंत उचित है सो इसके निराकरनके उपाय दोही है एक स्वामीजीके साथ तुम्हारे मतके सर्वोत्तम विद्वान्का शास्त्रार्थ होनां और द्वितीय अपने सब पुस्तकोंको अनेक देशभाषाउमें छपवाके प्रसिद्ध करनां जब तक ऐसा न करोगे तबतक पूर्वोक्त कलंक दूर कभी न होगा. प्रथम यत्नका उपाय जो किया चाहो तो शीघ्रही हो सकता है, स्वामीजी और आत्मारामजीका संवाद हम और तुम

मिलकर करावें. जो स्वामीजीका पक्ष खंडित होकर आप लोगोंका पक्ष सिद्ध रहे, तो आत्मारामजी आदि (८) जनोंका रेल, खाने पीनेका जीतना खर्च उठे, उतना हम दे और जो आत्मारामजीका पक्ष निराकृत होके स्वामीजीका पक्ष सिद्ध रहे तो (८) पुरुषोंका पूर्वोक्त व्यवहारमें यावत् व्यय हो तावत् आप लोग देवें. कोइ उत्तम स्थान मध्यवर्ति हो, वहां दोनो महात्मा उपस्थित होके शास्त्रार्थ करे, हम लोगोने स्वामीजीसें इस विषयमें पूछ्या था स्वामीजीने कहा है कि जो ऐसा हो तो हमकुं स्वीकार है.

अब तुमलोग आत्मारामजीसें पूछो कि वे इस बातमें प्रसन्न हैं वा नहिं। जो वे शास्त्रार्थ करनेकुं उद्युक्त हो तो शीघ्र लिखियें क्योंकि स्वामीजी इहांसें अन्यत्र जाने वाले हैं, इससें यह कार्य अतिशीघ्र होना चाहियें. अर्थात् दोनुं महात्माउंके समागमसें सब सिद्धांन प्रकाशित हो जायगे, और दूसरे पत्रका उत्तर इसवास्ते नहिं भेजाकि उसमें कुछ विशेष न था, अबजो तीसरे पत्रमें तुमनें लिखा है सो भी पिष्टपेषणवत् है क्यों कि इनका उत्तर प्रथम पत्रके उत्तरमें हम लिख चूके हैं और इस पत्रमें तुमकुं ऐसा असभ्य लेख करना योग्य न था तथा स्वामीजीके नाम पत्र भेजना भी अनुचित था यह निश्चित जानो कि स्वामीजी (और उनका सर्वस्व हमारा अरु हम तथा हमारा सर्वस्व स्वामीजीका है) जैसा तुमने लिखा वैसा तुम पर भी आगिरता है के तुम कौन कहने और लिखनेवाले और जो हो तो हम क्यों नहिं? ए सब बातें लिखनेसें कभी नहिं निपट सकती बिना दोनों विद्वानोंके समागमके बार बार बिना समजे लिखते हो कि सत्यार्थ प्रकाश आपने क्यूं छपवाया? (इतना भी बोध तुमको नहिं है कि यह ग्रंथ स्वामीजीने छपवाया है वा राजा जयकृष्णदास सी. एस. आई रईस मुरादाबादने छपवाया है.) जब ऐसी छोटी छोटी बातोंको न

हिं समज सकतेहो तो गूढ बातांको तो क्या समझ सकोगे. यह तुम
और हमकुं अत्यंत योग्य हैकि अपने और दूसरेके मतका सत्यासत्य
निर्णयके लिये सभ्यता विद्याप्रमान और शास्त्रोक्त व्यवहारसें स
हित प्रीतिपूर्वक शास्त्रार्थकरकें असत्यका निरोध और सत्यका प्र
चार करें. यह शास्त्रार्थ प्रथम प्रकृत विषय जो सत्यार्थप्रकाशमें
स्वामीजीने लिखा है उसी विषयमें हो, पश्चात् अन्य विषयोंमें (जो इ
स शास्त्रार्थमें तुम्हारा पंडित सत्यार्थप्रकाशके द्वादशमे समुल्लासो
क्त विषयको तुम्हारे मतसें विरुद्ध ठहराय देगा तो स्वामीजी उस विषयको
दूसरी वार सत्यार्थप्रकाशमें छपवाने न देंगे और माफीभी मागेंगे)
और जो वह विषय स्वामीजीनें तुम्हारे मतके अनुसार सिद्ध कर दिया
तो जितनी तुमने वेदादि विषयक निंदा लिखी है, उसका छोडनां और
स्वामीजीसें माफी मांगणां होगा. जो तुम शीघ्र शास्त्रार्थ करना न चा
हो तो कब तक करोगे, इसका निश्चित समय लिखो, परंतु जितना बने
उतना शीघ्रतासें करो, स्वामीजी और हमारी ओरसें कुछभी विलंब
नहिं. इसका प्रत्युत्तर पत्र देखतेही दीजियें. और इस बातमें तुमकुं वि
लंब करनां उचित नहिं क्यों कि तुम्हीने यह बात उठाई है इसवास्ते आप
कुं योग्य है कि कलशास्त्रार्थ करनेमें प्रवृत्त हुवा चाहो तो आजही तत्पर हू-
जिये देखो हमारे साथ पत्रव्यवहार करनेसें तुमको कितना लाभ हु
आ कि जो प्रथम और दूसरा पत्र तुमने हमारे पास भेजे थे वे कै
से अशुद्ध थे और जो तीसरा पत्र तुमने भेजा सो भाषाके कायदेसें कु
छ अच्छा है और अभिप्राय अर्थसें तो यह भी शुद्ध नहीं है. अब
में अपनी लेखनीको अधिक लिखनेसें रोक कर आपलोगोंको चिता
ताहूं कि आपलोग पूर्वोक्त बातोंपर ध्यान अवश्य देवें. यहबात बहुत उ-
त्तम और लाभकारी है. मिति भाद्रपद शुदि ८ रविवार सं. १९३७

(आनन्दीलाल मंत्री, आर्यसमाज मेरठ)

यह पत्रका जबाब स्वामीजी कों लिख भेजा उस्कीनकल.

स्वामी दयानंद सरस्वती योग्य नमस्ते.

आपका पत्र मुझे पहुंच्या, और मैंने बांच्या, परंतु जो मैंनें पूछ्या था, जो यह श्लोक, कौनसे जैनमतके शास्त्रके हैं अथवा कोनसें जैनीसें आपने सुने वा सीखे? इन दोनोमेंसें आपनें एकका भी उत्तर नहिं लिखा क्या यह शोककी बातहै के जब सत्यार्थप्रकाशमें लिखाथा तब नहिं बिचार्या था, जो इसबातका उत्तर कोइ मांगेगा तो क्या उत्तर देऊंगा? हम आपकों प्रेमपूर्वक लिखते हैं यातो उक्त प्रश्नोंका उत्तर लिखो नहिं तो अपनी भूल प्रगटकरो हमसें माफी मागो; औरजो तुमने लिखा हेके हमारे पास आओ, चर्चा करो, सो हा जो तुम हमारे प्रश्नका यथार्थ उत्तर लिखोगे तो हमको प्रतीति हो जावेगी जो स्वामीजी सत्यवादी हें तो फेर हमकु जो संशय होवेगा तो आपके पास पूछनेको चले आवेंगे, जेकर उत्तर यथार्थ न लिखा, तो फेर असत्यवादीसें हमकों पूछनेकी वा चर्चा करनेकी क्या जरुर हे? आश्विनबदि ९ सोमबार आगस्टसन१८८०

गुजरांवाला, भवदीयउत्तरकादेनेवाला ठाकरदास भावडा.

जैन मंदिर.

उपरका पत्रका जवाब दयानन्दस्वामीजी तो न देसके और अपने जूठेवाक्यको सिद्ध रखनेके अर्थ आर्यसमाज गुजरांवालेसें एक पत्र लिखवा भिजा उस्की नकल.

लाला ठाकोरदासजी नमस्ते.

हमकूं आपसें कुछ मित्रभाव भी है. हमारी बातोंसें अप्रसन्न वा क्रोधयुक्त न होना* आपका पत्र मिति आसोज बदि ९ मीका आपने स्वामीजीके पास भेजनेके लिये इस समाजमें भेजा था. सर्व

था पहिलीही बातोंसे भरा हुआ है· स्वामीजीके पास उसका भेजना व्यर्थ पाया, इसलिये नहि भेजा गया, क्योंकि स्वामीजीके ओरसें उत्तर आपके पत्रका जैसा उचितथा आ चूका है+ उन्होने जो लिखा है कि आपके मतके किसी उत्तम विद्वान् वा आत्मारामजीसें जो इस समय गुजरांवालेमें हैं शास्त्रार्थ होकर सब सत्यार्थविषयक बातोंपर विचार कियाजावे, यह बहुत उत्तम और आपकी सब बातोंका जबाब है और इस्से जिनबातोंका फैसला महिनोमें पत्रद्वारा नहीं हो सकता है उनका दिनो हीमें फैसला हो जाता है· और निस्संदेह शास्त्रोंकी अत्यंत विचारनीय बातोंका निश्चय जबतक दो विद्वान् मिलकर परस्पर शास्त्रार्थ सें विचार न करे होही नहीं सकता+ यदि आप शास्त्रार्थ के लिये अभी कोई निश्चित समय नहिं ठेरा सक्के तो जब कोई उचित समय और मध्यवर्ती स्थान नियत कर सके, उस्सें इतला देनी चाहिये+ वृथा और दोषयुक्त बातोंके लिखनेमें आप प्रवर्त्त न हो· और विदत रहे की असभ्य लेख और क्रूर बातोंके करनेसें कभी आपसमें विचारपूर्वक प्रश्नोत्तर व्यवहार नहिं हो सक्ता, और जो पुरुष विद्यादिगुण रहित होके पेहलेहीसें लडाई और अयोग्यताकी बातें करे, जैसा की आपनें कृपा की हैं कि पत्रके आदिसें ही कठोरता और असभ्य लेख कर करकें मुन्सी आनन्द लालजीसें उस्का उत्तर सुनते रहे और अभी तक उस्सें नहिं हटे· ऐसें अविद्वान् लोगोंसें विद्वानो, और विचारयुक्त पुरुषोंको अवश्य अलग रहना चाहिये· और ऐसा प्रश्नोत्तर व्यवहार एक दूषित व्यवहार है· शोककीबात है कि आप पेहलेहीसें एसी चाल चलेहैं यदि आपके मतके कीसी उत्तम विद्वान्के साथ शास्त्रार्थ होकर विचारनीय बातोंका निश्चय यथावत् किया जावे, तो अच्छे प्रका

र सत्यासत्यका निर्णय होसक्ता है. आगें आपकी इच्छा नम-
स्ते.

आर्यसमाज गुजरांवालेकी ओरसें लिखा गया.

उपरके प्रपंच और कपटयुक्त पत्रका कारण पुछनेके बिचारमें हम थे, इतनेमें एकपत्र गुजरांवालेकी आर्यसमाजमें दयानंदनें भेजकर एकपत्र श्रीमान् - आत्मारामजी महाराजके नाम भेजवाया उसकी नकल.

श्रीयुत पंडित आत्मारामजी योग्य नमस्ते.

महाशयः- इस समाजमें स्वामी दयानंद सरस्वतीजीका एक पत्र आया है. जिसमें उन्होनें लिखा हैकि पंडित आत्माराम जीसें एक पत्र उनसंदेहमात्र बातोंका जिनको वह "सत्यार्थप्रकाश" में जैनोंके मतोंके विरुद्ध ठहराते हैं, उनके हस्तासरसें हमारे पास भिजवा दो कि हम बिचारपूर्वक उनका उत्तर लिखकर और आपने हस्ताक्षर करकें उनके पास भेजेंगे. इस बातके निवेदनके अर्थ इससमाजके दोतीन सभासद आपके पास प्राप्त हुए थे, जिसपर आपने कहा था कि प्रथम इसी विषयमें हम विचार करलेवें सो विचार कर लिया होगा. महाशय! यह सबकों बिदित है कि आप ही के उपदेश पूर्वक आपके सेवकोने इस विषयमें पत्र स्वामीजीके नाम भेजाया, और आप खुद् भी अपने मुखारविंदसें यह बात कह चूके हैं, इसलिये हम लोग चिन्तन करते हैंकि यदि आपको "सत्यार्थप्रकाश" विषयक संदेहो पर सम्मति है तो हस्ताक्षर करनेके लिये आप सोचमें न पडेंगे. और उन सब बातोंका एक सूचीपत्र अपने हस्ताक्षरसें शोभित स्वामीजीके पास भेज

नेके अर्थ हमारे पास भिजवादेंगे कि हम शीघ्र स्वामीजीके पास भेजदेवें प
रस्परशास्त्रार्थके बदले (जो आपने स्वीकार नहीं किया) आपके हस्ताक्षर
युक्त सूचीपत्र पर सब बातोंका निर्णय हो सकताहै यदि आपभी यथावत्
निर्णयको भला जानकर इसपर ध्यान देवें अन्यथा नहीं. ५ कार्तिक
संवत् १९३७ पंजाबी.

हस्ताक्षर नारायणकृष्ण आर्यसमाज गुजरांवालेकी
ओरसें.

उपरके दोनु पत्रोका जुबाब दयानंदपर लिखा.

॥ दयानंद सरस्वती योग्य नमस्ते ॥ महाशय ॥

कार्तिककी पंचमीको एक पत्र गुजरांवालेकि आर्यसमाजनें हमारे मं
दिरमें भेजा यह पत्र हमारे परम पूज्य विद्वानोंमे अग्रगण्य साधुओमें श्रेष्ठ
श्रीमान् आत्मारामजीके नाम था उनोनें यह पत्र देखतेहि मुझे दे दिया कारन
कि उनको वादानुवादसें कुछ संबंध नहीं पत्रका आशय जो खोलकर मेनें
पढा, तो बहुतहि चकित हुआ. और जब बीचमें देखा कि आपकी आज्ञा
नुसार यह पत्र लिखा गया है. और आपहीने अपने "गुजरांवालस्थ आर्य
समाज" को पत्र भेजकर उत्तेजित किया हैं कि वह आत्मारामजीके नाम यह पत्र
भेजे तब तो मेरे आश्चर्यकी सीमा न रही. पत्रका शिरनामा और उपर आत्मारा
मजीका नाम देख कर तो मैंनें समझ्या था कि आर्यसमाजको भ्रम हुआ जो उ
नुंने मेरे नामके बदले आत्मारामजीका नाम लिख दिया, परंतु नहिं जब पत्रका
आशय पढा तो वही प्रतीत हुवा कि आर्यसमाजनें जानबूज कर यह भ्रांति
की है. और इस भ्रांतिके मूल कारन आप हो क्यों कि आपहीके आदेशसें
आर्यसमाजनें एसा किया, आहाहा !!! प्यारे दयानंदजी यह बुद्धि आप
कों किसनें दी ? यह आपको किसनें समझाया ? कि आत्मारामजीके नाम

पत्र भेजो? एक बातका उत्तर मैं आपसें पूछताहूं. पांच, छ, पत्र मैने आप-
के पास भेजे. दो तीन पत्र आपने भी मेरे ही नाम पर भेजवाये फिर आप आज
बिनबुलाये आत्मारामजीके सामने क्यों जा पडे? वाह यह न्याय ओर विद्व-
त्ता, आपने कहांसे सीखी कि जो पत्र भेजे उसका तो उत्तर न देना ओर
जो न भेजे उसके गले जा पडना? आप पहिले मेरे साधारणसे प्रश्नका
तो उत्तर दीजिये फिर आत्मारामजीके भी सामने आइयें उससें आपको
क्या संबंध? एक प्रश्नकी जिज्ञासा मैं आपसें करता हूं ओर आप फिस-
ल फिसलकर दूसरी ओर जाते हैं, परंतु इस फिसल फिसल जानेसें—
आप जूठे वाक्य लिखनेके अपराधसें न छूट सकेंगे इस बातका आ-
प खूब ध्यान रखियें. आत्मारामजीको पत्र भेजनेसें कदाचित् आपने यह
समज लिया होगा कि उनकुं इदर उदरकी बातां बनाकर समजा लूंगा ओर
नालिशतक न पहुंचने दउंगा. परंतु मैं आपको सच्च सच्च कहताहूं कि यह
आपका महा भ्रम है आत्मारामजीकों इस मुकर्दमेसें कुछ संबंध न होगा.
जो कुछ करना है सो मैंने करना है आत्मारामजी इस झंझटसें अलग हैं
हां यदि उनकी इच्छा होगी तो जब कभी उन्हें अवसर होगा वह आपकी लि-
खत बातोंका खंडन भी करदेंगे परंतु इस समयउने इसबातसें कुछ संबंध नहिं.

सरस्वतीजी महाराज, आप विचार करतो देखियें मेरा प्रश्न कुछ बडा भा-
री नहिं. केवल इतना मात्र आपसें पूछा ओर पूछताहूं कि सत्यार्थप्रकाशके
बारहवे समुल्लासमें जो जैनमतविषयक आपने श्लोक लिखे हैं वह किस जैनी
पुस्तक वा जैनीशास्त्रका प्रमाण लेकर लिखे हैं? बडे ही शोकका विषय है कि आ
ज इस प्रश्नको किये मुझे चार मास होगये परंतु आपने अंधाधुंध पत्र भेज भे-
जकर यह चार मास रडकाय दिये परं स्पष्ट उत्तर न दिया. अदालतमें पहिला
दावा मेरा यही होगा कि यह श्लोक सत्यार्थप्रकाशमें जो दयानंदनें लिखे है औ
र हमारे मतकी निंदा की है सो यह श्लोक हमारे मतके किसी प्राचीनसें प्राचीन

वा नवीनसें नवीन ग्रंथोंमें कहीं नहिं है. और यहजो इसने (दयानंदने) बिना प्रमानके व्यर्थ हमारे "मजहबकी तोहीन" की है इसका दंड इसकों अवश्य मिलना चाहिये. प्रियवर! फिर उस समय आप क्या करोगे? इसीसें चाहताहूं कि घरमें निबटेरा करना उत्तम और श्रेष्ठतम है. गुजरांवालेकी समाजसें प्रेषित पत्रमें यह भी लिखा हे कि सत्यार्थप्रकाशमें लिखेहुए वाक्योमेंसे जिनजिनको आप अशुद्ध ठहरावे उनकों आप हमारे पास लिख कर भेजदें? हम उसका निर्णय करा देंगे. सो महात्मन्! आप और बातोंके निर्णयकों तो रहने दीजीयें सबसें प्रथम इसबातका निर्णय करा दीजियें कि वह श्लोक, आपने कहांसें लेकर और किस प्रमाणको रखकर लिखे हैं. बस शेष बातोंका निर्णय फिर आपसें आप होजायगा. अंतमें मैं आपकूं यह जताना चाहता हूं कि मेरा प्रश्न कुछ गंभीर नहिं है केवल एक साधारनसा है उसका उत्तर आपशीघ्र दे दीजीयें, और जो कुछ लिखना होय सो मुझे लिखे. आत्मारामजीकों दुःख देनेसें प्रयोजन नहिं. और दूसरा यह कि यदि अपनी बातकों सिद्ध करनेके अर्थ कोई प्रमाण आपके पास नहिंतो अपने हस्ताक्षर सहित एक पत्र भेजकर हमसें क्षमा माग लीजियें. और क्षमापत्र नम्रतापूर्वक लिखिये. हम शांत हो जायगे. नहिं तो अपना पक्ष दृढ रखकर मुझे आज्ञा दीजिये कि फिर अदालतमें अपना फेसला करवा लियाजाय. यदि आप देने वाले बने तो हमारा उत्तर दो बातों और दो पंक्तियोंमें आ सकता है. गुजरांवाला, ता. २५ अक्टोबर सन १८८०

जेनीयोंका एक दासानुदास ठाकुरदास भावडा.

पीछे एकपत्र गुजरांवालेके आर्यसमाजनें आत्मारामजीके सहीके वास्ते ठाकुरदासके पास भेजा और ठाकुरदासजीनें आत्मारामजीके दस्कत करवायकें भिजवा दिया वह दुसरे भागमें आवेगा.

उक्तपत्रका जबाब आर्यसमाज गुजरांवालेकी मार्फत आया उस्की नकल.

श्रीयुत पंडित आत्मारामजी और लाला ठाकुरदासजीको नमस्ते ॥

देहरे दूनसें यहां एक पत्र उन प्रश्नोंके उत्तरका जो आप सज्जनोने स्वामीजीसें किये थे इस प्रयोजनसें पहुंच्या था कि इसकी एक नकल आपके पास भेजी जावे. सो नकल आपके समीप भेजीजाती है. और यह भी प्रकट कियाजाता है कि इसकी एक नकल स्वामीजीकी आज्ञानुसार लुधेहानेके श्रावक सज्जनोके पास भी भेजी गई है. मुनशी प्रभदयालजीसें आपकूं मालम हुवा होगा. ता. १३ नवम्बर सने १८८० इसवी

द० नारायन कृष्ण आर्यसमाज गुजरांवाला.

पूज्यवर आत्माराम पंचायत सरावगियान लुधिहाना और ठाकुरदासजी रइस गुजरानवाले जेनमतानुयायी सज्जनोके प्रश्नके उत्तर.

प्रश्नः– जो सत्यार्थप्रकाशमें श्लोक लिखे हैं जैनोके किसशास्त्र वा ग्रंथके है?

उत्तरः– यह सब श्लोक बृहस्पति मतानुयायि चार्वाक जिसके मतका नामांतर लोकायत भी हे और यह जैनमतानुयायि हे उनके मतस्थ शास्त्र वा ग्रंथोंके श्लोक हैं. ॥श्लोक॥ यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ॥ भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥१॥ तथा तदंतर्गत श्वा भाणको प्याह अग्निहोत्रस्त्रयोवेदास्त्रिदण्ड भस्मगुंठनम् ॥ प्रज्ञा पौरुषहीनानां, जीविकेति बृहस्पतिः ॥२॥ अग्निरुष्णो जलं शीतं, शीत स्पर्शस्तथानिलः ॥केनेदं चित्रितं तस्मा, त्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः॥ ३ ॥ नस्वर्गो नापवर्गो वा, नैवात्मा पारलौकिकः॥ नैव वर्णाश्रमादीनां, क्रियाश्च फलदायकाः ॥ अग्निहोत्रं त्रयोवेदास्त्रिदंडं भस्मगुंठनं ॥ बुद्धिपौरुष

हीनानां, जीविका धातृनिर्मिता ॥ ५ ॥ पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं, ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ॥ स्वपिता यजमानेन तत्रकस्मान्नहिंस्यते ॥ ६ ॥ मृतानामपि जंतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम् ॥ गच्छतामिह जंतूनां, व्यर्थं पाथेयकल्पनं ॥ ७ ॥ स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं, गच्छेयुस्तत्र दानतः ॥ प्रासादस्योपरिस्थाना, मत्रकस्मान्न दीयते ॥ ८ ॥ यावज्जीवेत्सुखंजीवे, दृणंकृत्वा घृतं पिबेत् ॥ भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः ॥ ९ ॥ यदिगच्छेत्परं लोकं, देहादेषविनिर्गतः ॥ कस्माद्भूयो नचायाति, बंधुशोक समाकुलः ॥ १० ॥ ततश्चजीवनोपायो, ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ॥ मृतानां प्रेतकार्याणि, नत्वन्यद्विद्यते क्वचित् ॥ ११ ॥ अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु, पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितः ॥ भंडैस्तद्वपरस्यैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम् ॥ १२ ॥ त्रयो वेदस्य कर्तारो, धूर्त्तभांडनिशाचराः ॥ जर्फरी तुर्फरीत्यादि, पंडितानांवचःस्मृतम् ॥ १३ ॥ मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम् ॥ एतदादि (जो जो मैंने सत्यार्थप्रकाशमें जैनमत विषयक लिखा है सो सो समस्त यथार्थ है) प्रथम चिठ्ठीके उत्तरमें ठाकुरदास आदिकों लिखवा दियाथा कि जैनमतकी कइ एक शाखा है आपने उन शाखाओंके प्रतितंत्र सिद्धांत जाने होते तो आपको सत्यार्थ प्रकाशके लेखमे भ्रम कभी न होता ॥ आप लोगोंके प्रश्नके उत्तर -- विलंब इस लिये हुवा कि जो कोई सभ्य विद्वान् जैसाकि श्रेष्ठ पुरुषोंको लेख करना चाहिये वैसा करना तो उसी समय उत्तर भी लिखा दिया जाता क्योंके सज्जनतापूर्वक लेखके उत्तरमें स्वामीजी विलंब कदी नहिं करते? देखिये आप पंचायत सरावगियान लुधियानाने योग्य लेख किया तो स्वामीजी उत्तर भी शीघ्र लिखवा दिया और अब भी लिख दिया गया था कि जितने आपलोगोंके सत्यार्थ प्रकाश विषयक प्रश्न हो सब लिखके भेज दीजियें, जो सबके उत्तर एकसंग लिख दिये जाय जैसा स्वामीजीने लिखवाया था कि आत्मारामजीको जैनमतवाले शिरोमणि पंडित गिणते है उनका और स्वामी

जीका पत्र लेखानुसार समागम होता तो सब बातें शीघ्रही पूरी हो जाती, परंतु ऐसा न हुवा और यह भी शोककी बात है कि हमने इस विषयक रजिस्टर चिट्ठी आप पंचायतन सरावगियान लुधिहानाको भेजी थी उसका जबाब भी आज तक नहिं मिला, न प्रश्न भेजे किंतु जो ठाकुरदासने एक बात लिख भेजी थी कि यह श्लोक जैनमतके किस शास्त्र वा किस ग्रंथ के अनुसार हैं और जो बात करणे योग्य आत्मारामजी हैं उनका शास्त्रार्थ करणेमें निषेध भी लिख भेजा और ठाकुरदासजीका यह हाल है कि प्रथम चिट्ठीमें संस्कृत और भाषाके लिखनेमें अनेक दोष लिखे थे. अब आप लोग धर्मन्यायसें बिचार लीजियें कि क्या यह बात ऐसी होनी योग्य है? के जब जब चिट्ठी ठाकुरदासने लिखी तब तब स्वामीजीके पास और उसमें जो बात शिष्ट पुरुषोंके लिखने योग्य न थी सब लिखी और जो योग्य हैं आत्मारामजी उनको बात करणे वा लिखने वा चिट्ठीपर सही करणेसें अलग रखते हैं और एक ठाकुरदासजीसें स्वामीजीका सामना कराते हैं. क्या ऐसी बात करनी शिष्टोंको योग्य है? अब अधिक बात करनी हो तो आप अपने मतके किसी योग्य विद्वान्को प्रवृत्त कीजियें के जिस्सें हम और आपलोगोंका आगें जो आपलोगोंको इसविषयमें सत्यासत्यका निर्णय हो सर्वोत्तम ज्ञान प्राप्त हो सके. बुद्धिमानोंके सामने अधिक लिखना आवश्यक नहिं. किंतु अपनी सज्जनता, उदारता, अपक्षपातता, बुद्धिमत्ता, विद्वत्तासें थोडे लिखेसें बहुत जान लेते हैं सं. १९३७ का. शु. ४ शनिवार (पंजाबी)

(दस्कत फारसीमें) कृपाराम सेक्रेटरी, आर्यसमाज, देहरादून.

उपरके पत्रका जुबाब स्वामीजीपर लिखा उस्की नकल:

॥ श्रीमद्दयानंद सरस्वती योग्य नमस्ते ॥

महाशया! बहुत विचार और प्रतिज्ञाके अनंतर आज में आप कों उत्तर प्रत्युत्तर लिखने और लखानेके कष्टसें मुक्त करता हूं और प्रतिज्ञापूर्वक आपको **नोटीस** देताहूं के एक मास तक जो आपकी इच्छा हो करले, तत्पश्चात् अवश्यमेव आप पर मेरी ओरसें नालीश होगी और जो कुछ होगा सो अदालतद्वारा ही भुगनवाया जावेगा. आपका एक पत्र दूसरे पत्रसें विरुद्ध, और एक वचन दूसरे वचनसें विपरीत है. इसी कारण, किसीसें भी संतोष नहिं हुवा. और पत्रालापसें संतोष होना तथा पत्रद्वारा आपसें मेरे प्रश्नका यथार्थ यथार्थ उत्तर मिलना नितांत असंभव जान अब एही स्थिर किया है कि अदालतमें आपकुं बुलवानेका दृढ पण किया जाय, यह पण में आज करता हूं जिसका फल आपकूं एक मासकी पश्चात् भोगना पडेगा, यह मेरा आपके चरणकमलमें अंतिम पत्र है. इस कारण उचित समजा गया है कि अपने और आपके सारे पत्रोंका जो आजतक आपके पास गये वा मेरे पास आये पुनः आपकूं एक वार पूर्ण परिचय करादूं कि जिस्सें इस पत्रालापका सर्व वृत्तांत आप भली प्रकार विचार लें, और अपने अर्थ, लाभकारि विवेचनामें तत्पर हो जाय. विदित हो कि मेरा प्रथम पत्र आषाढ वदि एकादशीकों आपके पास भेजा गया और दूसरा आषाढ सुदि पंचमीकों इन दोनो पत्रोंमें आपकों केवल इतना मात्र लिखा गया था कि सत्यार्थ प्रकाशमें जो जैनमत विषयक श्लोक आपने लिखे हैं वो किस जैनीशास्त्रकों देखकर लिखे हैं. यदि आप इसका यथार्थ उत्तर वा निर्णय करादे तो अच्छा नहिं तो अदालतमें आप पर नालीश की जायगी. इनमेंसे प्रथम पत्रका उत्तर तो आपने कुछ न दिया परंतु दुसरेका अवश्य दिया जो आनंदीलाल मंत्री आर्य समाज मेरटने आपकी तरफसें लिखा और गुजरांवालेकी आर्यसमाजने श्रावण वदि च

तुर्दशीकों मेरे हाथ दिया. आपका इस पत्रका आशय कुछ अजबही था कांदी तो इसमें आपने हम जैनीयोंको गालीयां दीई, और कांहीं यह धमकी दीई कि तुमारा सर्वस्व इस मुकद्दमेमें निलाम हो जायगा. इत्यादि. परं खेर! अभिप्राय इस पत्रसें केवल इतना मात्र निकल सकता था, कि आपनें अपनें "सत्यार्थ प्रकाशमें" जिहां कांही हमारी बातें लिखी है (वहां) अर्थात् जैनी ऐसा कहते हैं ए लिख दिया है. जिस्सें यह सिद्ध हो गया कि आपने सत्यार्थ प्रकाश लिखते समयमें कोई जैनी धर्मपुस्तक नहिं देखा किंतु किसीके कहे कहाये आपनें सब लिख दिया आपके इस पत्रसें उक्त अभिप्राय निकलता जान और आपकी आज्ञा शिरोधारण कर मैनें श्रावणशुदि एकमकुं अपना तीसरा पत्र गुजरांवालेका आर्यसमाजद्वीकी मार्फत भेजवा दिया. जिसमें यह लिखाकि अच्छा यदि कोई धर्मपुस्तक हमारा दयानंदजीनें नहिं देखा और किसी जैनीसें सुन कर ए अशुद्ध वाक्य आपनें लिखे हैं तो दयानंदजी इनबातका उत्तर शीघ्र लिखे कि कोनसा दिगंबरी वा श्वेतांबरी जैनी उनके कानमें यह बात सुणा गीया था के एसें एसें श्लोक जैनमतमें हैं महाशया! यह पत्र मैनें गुजरांवालेकी आर्यसमाजद्वारा भिजवाया, और तेइस दिवस तक इसके उत्तरकी प्रतीक्षा करता रहा, परंतु जब आपकी चुप्पही देखी तो फिर मैनें भाद्रवा वदि दशमीको इसी विषयक दूसरा पत्र आपको सीधा मेरटमें भेजा जिसका आशय प्रथम पत्रके अनुसार था और इतना मात्र विशेष आपसें अनुरोध किया गया था कि पत्र आप अपने हाथसें लिखनां क्यों कि हमारे और तुमारे झगडेमें आनंदीलालसा एक तीसरे मनुष्यकूं बिचमें आयजाना उचित नहिं और दूसरा ए बी आपकूं चेताय दिया था कि जो पत्र आप किसी अन्यसें लिखाकर भेजेंगे वो आप

की जबानी वा आपहीके हाथका लिखा हुवा समज्या जावेगा. और फिर आप कूं इन लिखी हुई बातोंसें मुकरनेका अवसर नहिं मिलेगा (१) इस पत्रका उत्तर भी आपने आनंदीलालसेंहि लिखवा कर भिजवाया और यह लिखाकि तुम पिष्टपेषणवत् पुनः पुनः परिश्रम करतेहो, हमने जो लिखना था लिख चूके, तुमने पत्रका आशय किंचिदपि नहि समज्या आप आत्मारामजीसें हमारा सन्मुख शास्त्रार्थ करवाय लिजिये. इत्यादि. भला दयानंदजी! यह तो बताइयें कि आप अपने पेहेले पत्रमें क्या लिख चूके थे जो मैं न समज्या पर अस्तु. भाद्रपद शुदि अष्टमीका उक्तपत्र आपका गुजरांवालेकी आर्यसमाज द्वारा मैंने आश्विन वदि नवमीको उक्तसमाजकी मार्फतही पुनः अपना पत्र आपके पास इस आशयका भिजवाया कि अपने पीछले पत्रमें जो मैंनें ए पूछ्या था कि यह श्लोक कोनसे जैनी शास्त्रोंके हैं अथवा कोनसे जैनीसें सुणे वा सीखे हैं. उसका कुछ उत्तर आपने नहीं दिया. मतचर्चाके विषय जो आपने लिखा है जब आप प्रश्नका उत्तर देदेंगे, तो यह बातभी देखीजायगी पर जब सत्यार्थप्रकाशमें लिखनाही आपका असत्य ठेरा तो असत्यवादीसें चर्चा करनेकी क्या जरूर? परंतु इस पत्रका कोई उत्तर आपने न दिया. मैं अपने इस पत्रके उत्तरकी प्रतीक्षामें अतीव उत्कंठित था कि आर्यसमा-

---

(१) दयानंदजी महाराज! यद्यपि यह बात मैं स्पष्ट इस पत्रमें लिख चूका था कि किसी अन्यसें भी यदि आप कुछ उत्तर लखवायगे तो वह आपकी ही जुबानी समज्या जावेगा. परंतु वाह! फेर भी आपका भोले पनका क्या कहेनां! आप उसे भूलही गये? और देहरादूनसें लुधियानेके श्रावकोंको लिख मारा कि, मेरटमें मंत्री आर्यसमाज और ठाकुरदासजी गुजरांवालेके मध्यमें कुछ पत्रालाप हुवा है उससें आप देखले. सरस्वतीजी! आप टुक इधरतो देखिये? क्या ए पत्रालाप मेरे और आणंदीलालके मध्यमें हुवा था? कि मेरे और आपके मध्यमें? एसी एसी कपटयुक्त बातोंके लिखनेसें क्या आप मेरटसें भेजे हुवे पत्रोंसे अलग रहनां चाहते हैं? क्या यह कभी हो सकेगा? क्या आप अपना पल्ला छुडायके आनंदीलाल बिचारेकु इसमें फसाया चाहते हैं! क्या गुरुका यही धर्म है? सचमुच आणंदीलालका इस्सें कुछ काम नाहिं, और येही पत्र आपहीके लिखे हुवे समजे गये हैं जो अदालतमें भी (पेस) प्रकट किये जायेंगे.

ज गुजरांवालेने मुजे लिख भेजा कि तुम्हारा यह पत्र पहिलीही बातोंसे पूर न था. इस लिये स्वामीजीके पास भेजना व्यर्थ पाया, आप आत्मारामजीसें शास्त्रार्थ करावनेका प्रबंध करादो. (२) आर्यसमाज गुजरांवालेके इस अनुचित लेख ओर व्यवहारको देख मैं बडा ही उद्विग्न हुवा. ओर चाहताथा के आपसें इसका कारन पूछुं, इतनेमेंही आपकी आज्ञानुसार गुजरांवालेकी आर्यसमाजने फेर ५ कार्तिकको एक पत्र हमारे मंदिरमें भेजा जो हमारे पूज्यवर पंडितश्री आत्मारामजीके नाम था इस पत्रमें यही बर्णन था कि सत्यार्थ प्रकाशमें जिन जिन बातोंको आप जैन मतके विरुद्ध ठहराते हैं उनकी सूचि आपके हस्ताक्षर सहित हमारे पास भेजदो. हम स्वामीजीके पास उस्सें भेजकर उसके हस्ताक्षरका पत्र आपके पत्रके उत्तरमें शीघ्र मंगवाय देंगे, यह अंधाधुंध पत्र पढ मेरे मनको बडा शोक हुवा कि आप जैसे विख्यात पंडित एक बात पर स्थिर नहिं रहते ओर एक प्रश्नके उत्तर देनेमें इतनी टालमटाल मचाते हैं एक बातके उत्तर देनेमें कभी शास्त्रार्थका नाम पुकारते हैं, ओर कभी हस्ताक्षर मांगते हैं. जब आप एक बात अशुद्ध लिख चूके हैं ओर उसकी सत्यताका कोई प्रमान आपके पास नहिं तो हस्ताक्षर मांगने वा चाटनेमें क्या होगा. ए आपका उलटा ढंग देख मैंने आर्यसमाज गुजरांवालेके भेजे हुवे उक्त पत्रका यथायोग्य उत्तर आपके पास भेजवाया जो ता. २८ मी अक्टोबर को आपके पास देहरादून गाममें (ओर) पहूच गया ओर जिसकी रसीद भी मेरे पास आगई, इस पत्रका मतलब यह था कि आत्मारामजीके नाम जो अपने पत्र लिख्या वह परम अनुचित काम कि

---

२ दयानन्दजी! मेरा वह पत्र पहिली बातोंसे पूर्ण भराहोनाही था, क्योंकि आपने मेरी बातोंका उत्तर किंचिदपि नहिं दियाथा, मैं तो आजतक एकही प्रश्न पर स्थिर हूं ओर जब तक इसका यथार्थ उत्तर न पाऊंगा क्यों कर इस प्रश्नसें हट जाऊंगा? आर्यसमाजकी बुद्धि भी क्या विचक्षण है! कि उनोने इस पत्रालापमें भी आपका इतना कडा पक्षपात कियाकि मेरा पत्रभी न भेजा अच्छा॥

या उनको इस विवादसें कुछ संबंध नहिं और आप उनको छोडकर मेरे प्रश्नोंका उत्तर शीघ्र दीजियें. इस पत्रका उत्तर जो अब आपने आर्य समाज गुजरांवालेकी मार्फत भेजा है एसा उत्तर पामर और धृष्ट है कि कुछ कहेते नहिं बनता ये आपका उत्तर ता. १३मी नवम्बरके आर्यसमाजने हमने दिया. जिसमें आपकी वाह! बुद्धिमानी पाय गई कि बालक भी इस पर हसते हैं इस पत्रसें आपने स्वयं अपने हाथसें खाडा खोदा जिसमें निश्चय है कि आप स्वयं अवश्य गिरेंगे आपके इस पत्रसें निश्चय हो गया कि सत्यार्थ प्रकाशमें आपने यह श्लोक भ्रांतिसें नहिं लिखे हैं किंतु जाण बूजकर एक अन्यमतके श्लोक ले हमारी निंदा की है आगें तो आप अ-दालतमें यह कह कर बच भी सकते थे कि मुजसें अणजाणेमें यह अपरा-ध हो गया मैं इसकी माफी मांगता हूं, और छपवा देता हूं कि सत्यार्थप्रकाशमें भ्रमसें लिखा गये हैं पर इस पत्रके लिखनेसें तो आप अब यों भी नहिं बच सकते अब तो आपनें लिख दिया कि उक्त श्लोक चार्वाक मतके हैं, जो जैनमतानुयायि हैं बस इससें सिद्ध होगया कि आपने चार्वाकमतके श्लोक लेकर जानबूजकर जैनमतकी निंदा की है चार्वाक मतको जैन मतसें कुछ भी संबंध नहिं. आप किस प्रकार कहेंगे कि जैनमत और चार्वाक मतका एक भी संबंध है. और यदि आप उगल भी डाले कि चार्वाक, जैनमतानुयायी हैं तो आप पर निम्न आपत्तियें पडेंगी.

१ यह आपनें चार्वाकमतको जैनमतकी शाखा किस शास्त्रसें प्रमान किया वा कोनसें जैनी शास्त्रोंमें लिखा देखा.

२ यह कितना काल हुवा कि चार्वाक मत जैनमतसें निकला और जैन मतकी शाखा निश्चित किई गई ?

३ चार्वाक मतके प्रचार देनेवाला कोनसे जैनी था वा किस जैन धर्म आचारजका चेला था

८. कौन कौनसे ऐसे नियम हैं जो जैन और चार्वाक मत एक हैं और कौनसे मतमें मिलते हैं और कौन कौनसे नियमोंको देख आप सिद्ध करते हैं कि चार्वाक और जैनमत एक है?

९. जैनमतकी सब कितनी शाखा है? उनका पृथक् पृथक् नाम पत्तेवार कहो? उन शाखाओंके पृथक् पृथक् हुयेमें क्या प्रमान है? तथा चार्वाक मत उन शाखाओंमें किसकी प्रतिशाखा है इतने प्रश्नोका आप यथार्थ यथार्थ उत्तर सप्रमाणिक दे तब आपका कहना सत्य हो सकता है नहिं तो यूंही लिख देनेसें कौन अन्त जन आपकी इस बातको मान लेगा. यदि आपकी अब भी माफी मांगणेकी इच्छा हो तो शीघ्र मांग लो परंतु पीछेसें यह नहिं कहना कि जैनोंमें दया और क्षमा नहिं अब भी यदि आप अपना क्षमापत्र भेज दें तो आप पीछेसे निर्लज्जता उठानेकी आपत्तिसें बच सकते हैं नहिं तो आपको अधिकार है आपकी आज्ञानुसार हमनें अंबाला लुधियाना इत्यादिक स्थानोंके बहुतसे जैनियोंको इस काममें अपने साथ मिला लिया है जो अपना अपना नोटिस भी आपको देंगे. आपनें अपनी चिट्ठी पत्री भेजनेमेंही इतने फरेब किये हैं कि उसमें भी आप पकडे जायगे. लुधियानेवाले सराबगियोंको जो पत्र आपने भेजा है जो इसी पत्र की नकल है जो हमारे पास आया है, उसमें आपने लिख दिया है कि इन श्लोकोमेंसे कई श्लोक जैनमतके भी हैं जिनको ठाकुरदासजी स्वीकार कर चूके हैं. सरस्वतीजी! इतना छल और झूठ आपने कहांसे सीखा? क्या एक एक छलके अपराधमें आप पकडे नहिं जा सकते? मैनें कब और किस पत्रमें स्वीकार किया है कि इनमेंसे कई श्लोक हमारे मतके हैं क्या आप झूठ लिख लिख कर औरोंको धोखेमें फिसाते और मेरा नाम बदनाम करते हैं आप स्मरण रखियें कि आपका यह सब कपट अदालतमें प्रगट किये जायगे और इसका यथेष्ट दंड भी आपको दिलवाया जायगा. यहप

बका उत्तर चाहे आप भेजे अथवा न भेजे यह आपकी इच्छा है मैंनाम
रिर गुजरांवाला: ता॰ १५ नवम्बर १८८० गुजरांवालेसे
जैन धर्मका एक दासानुदास ठाकुरदास भावड़ा:

उक्त नोटीस स्वामीजीका पता नहीं मिलनेसें ता॰ १५ डिसेंबर सन
१८८० कि हमारे पास चिठ्ठी आई फिर हम किते दिन तो गुजरांवालेकी
आर्यसमाजोसें स्वामीजीका पत्ता पूछते रहे पर समाजोवालेने हमकुं पता
नहीं बताया: उस लिये हमने ता॰ २१ डिसेंबर सन १८८० का फारसी हरफों
में एक पत्र लिखवा कर समाजोंवालेको भेजा जिसका मतलब यह है कि
हमारा सवालका जबाब स्वामीजीके पास नहीं है उस्सें स्वामीजी छुप बैठे
हैं तो आप उनका ठाम ठिकाना बता दो इस पत्रका जुबाब समाजोंने दूसरी
बातोंसे भरपूर करके लिख दिया परंतु स्वामीजीका पता हमकुं न लिखा
उस कारणके लिये फिर हमने ता॰ १ जी जानेवारी सन १८८१ का एक पत्र लि
खवा कर समाजमें भेजा उसका मतलब यह था कि स्वामीजी कहां हैं और
हम दिगंबर अरु श्वेतांबर दोनो प्रकारके जैनी ता॰ २० जानेवारी १८८१ मिति
न स्वामीजीसें शास्त्रार्थ करनेके वास्ते अंबालेमें आवेंगे. उस्सें तुम स्वामी
जीको वहां हाजर रखो और यह खबर सब समाजोंको देदो इत्यादि लि
खा उस्का उत्तर पण समाजोवालेने उलटाज दिया जब हम फिर कर ता॰
रीख १२ जानेवारी सन १८८१ का एक पत्र समाजोवालेकुं लिखकर उसमें
यह लिखा कि हम दोनु पक्षके श्रावक अंबालेकु स्वामिजीके साथ हमा
रा बातका सत्यासत्य निर्णय करनेके वास्ते आजकाल जाएंगे उस कार
णके लिये तुम स्वामी दयानंदजीकुं अंबाले भेजो हम सब लोक वहां
एकठे होकर ता॰ २० सें लेकर ता॰ २५ की तक अंबालेमें स्वामीजीसे हमारा
पक्षकी चर्चा करनेके वास्ते रहेंगे. यह तीन कागद हमने समाजवालेकुं

लिखा उसका उत्तर समाजी तरफसे आयासो सब तीसरे भागमें आवेगा.

उपरके पत्र लिखनेसे उपर लिखेहुवे दिनकुं स्वामीजी अंबालेमें हाजर नहुवा हम सब वहां स्वामीजीकी राह देखकर बेठबेठ कर पीछे चले आये फेर हमने ता. ६ फेब्रुआरीका एक निवेदन छपवाकर सब पंजाबदेशकी आर्यसमाजोंको भेजा उसकी नकल नीचे मुजब है.

सब आर्य समाजियोंके प्रति

जैनियोंका

निवेदन :-

विदित हो कि यह बात जगद्विख्यात है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने अपने सत्यार्थ प्रकाश द्वारा हम लोगोंके धर्मकी ऐसी सख्त तोहीन की है कि जिस्का प्रमाण हमने उपर्युपरि पत्रों द्वारा निश्चय कर लिया है कि वह कुच्छ नहीं दे सक्ता और जिस्का दण्ड " ताजीरात हिन्द " के दफा २९८ के अनुसार दो वर्षकी कैद, जुर्म्माना व्यतिरिक्त, इङ्गलिण्डीय राज्यद्वारा नियत हैं.

हमारा दृढ निश्चय है कि अपने धर्म्म-सत्य धर्म्मके निन्दकको उस्के अनुचित कर्मकी यथोचित दक्षणा दिलवाएं। इस्से पहिले हमने बहुत चाहा कि पत्रालापद्वारा स्वामी दयानंद सरस्वतीसे निवेडा करलें। हमने उनको पत्रमें लिखा कि आपने जेन धर्म्म विषयक जो श्लोक सत्यार्थ प्रकाशमें लिखे हैं वे किस जेनी शास्त्रके अनुकूल हैं। इसका उत्तर पहिले सिवाय धमकीके और कुछ न मिला। कई पत्रों पीछे अंतमें स्वामी महाशयने लिखा तो यह लिखा कि वे श्लोक चार्वाक मतके हैं; चार्वाक बौद्धमतकी शाखा है; बौद्ध और जेन मत एक है। जैन और बौद्ध मतोंको एक कहना- स्वामीजीने यह दूसरा अनर्थ कथन किया। अस्तु इन बातोंसे आपको क्या। आप अपनी बात सुनिये-

आपको यह पत्र भेजनेसे हमारा अभिप्राय यह है कि, आप सत्वर उत्तर हमको पत्र द्वारा विज्ञापित करें कि उक्त विषयमें आप स्वामीजीसे एकमत हैं वा नहीं. निस्संदेह, मुझको आपसे यह वार्ता पूछनेका कुछ भी अधिकार न होता, यदि मेरठके आर्यसमाजके प्रधान मन्त्री आनन्दीलाल जी अपने लेखानुसार भारतवर्षकी सब समाजोंको उसी अपराध (जुर्म) में न फसादेते, जिसमें कि दयानन्दसरस्वतीजी पूर्णरूपसें फसगये हैं. एक पत्रमें उक्त लालजीनें मेरे पत्रके उत्तरमें (जो मैनें दयानन्द सरस्वतीकु भेजा था और जिस्मे मैनें उन्से प्रमाण पूछा था) लिखा है कि:- इस मामलेको आप छोटा कभी मत समझना इस्में सब जैनी मतवालोंकी सम्मति लेलीजिये जैसा कि हम सब आर्योंकी तुम्हारे सामनें अदालत करनेमें तनमन धनसे निश्चित हैं क्योंकि- तुम जैन लोगोंने परमपवित्र सत्य सत्य विद्यासे युक्त सब मनुष्योंके लिये अत्यन्त हितकारी ईश्वरोक्त वेदों और वेदानुकूल अन्यसत्यशास्त्रोंको निंदा और इन परोपकारी पुस्तकोंके नाशकरनेसे इतनी हानि की और करते जाते हो कि जिसमें सब जैनोंका तनमन और धन लगजावे तो भी नालिशकी डिगरी पूरी न होगी इस लिये तुम सब जैनोंको विज्ञापन दे दो कि वे भी सब तुमारे सहायक हों कि इस मामलेको हम लोगोंसे चला सकें तुम सब इस्में तैयार होजाओ जैसे कि हम लोग सत्य औरअसत्यके निश्चय करानेमें तत्पर हैं. यह अपने मनमें बडा विचार कर लीजियेंगा. हम आर्योंको वैष्णव आदिके समान कभी मत समझना कि जैसे उनसे रथ निकालने आदिके मामले अदालतसे फते कर लेते हो वैसे हमारे साथ कभी न कर सकोगे क्योंकि तुम पाषाणादि मूर्तिपूजक हो वैसे वे भी हैं और हम हैं परमेश्वरपूजक और तुम हो अनीश्वरवादी, अनीश्वरवादी अर्थात् स्वतःसिद्ध अनादि ईश्वरको नहीं मानने इत्यादि हेतुओंसे तुम्हारा पराजय हमारे सामने होना किसी प्रकार असंभ

ओर कठिन नहीं है इस लिये तुमको नोटिस देते हैं कि तुम आपसमें मिलकर इस मामलेको चलाओ, ओर जब तुम्हारी योग्यता हमारे सामने कम दिखती है तो स्वामीजीके सामने तुम्हारी क्या योग्यता हो सकती है कभी नहीं, देखना तुम्हारे हजारह ग्रंथोंसे वेदादि सत्यशास्त्रोंकी मिथ्या निन्दा हम सब हाकम आदिके सामने ठीक ठीक साबूत करदेंगे इसमें कुछ भी सन्देह मत जानना जितना तुम्हारा सामर्थ्य हो उतना खर्च होजानेपर भी आप लोगोंको बचना अति कठिन दीख पडता है."+

इस लेखको शुद्ध मनसे विचारिये. इस्से प्रत्यक्ष है वा नहीं कि (सब आर्यसमाजी गण दयानन्दके साथ एक मत हैं; सब आर्यसमाजी गण मानते हैं कि दयानन्द सरस्वतीने लिखा है नितान्त सत्य है; सब आर्यसमाजी गण कहते हैं कि हां उक्त श्लोक जैन धर्म हीका साररूप हैं, हां जैनमत ओर बौद्ध मत एक ही हैं आदि.) सब आर्यसमाजी गण हमारे विषयमें दयानन्दके अनुगामी हैं. अर्थात् दयानन्द सरस्वतीने जो लिखा है आर्यसमाजी कहते हैं ताल ठोंककर कहते हैं कि वह सत्य है, यथार्थ है, ओर इसी लिये, सब आर्यसमाजी गण हमारी तोहीन मजहबके वैसे ही अपराधी हैं जैसे कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी हैं.

इस स्वतःसिद्ध बातका यथोचित पता लगानेके लिये कि आया आर्यसमाज मेरठके मंत्रीका लेख वास्तवमें ही सत्य है वा ऐसा लेख बिना सोचे लिखा गयाथा; आया आप वास्तवमें उस "तोहीन मजहब" में शामिल हैं, जिस्का दण्ड आप जानते हैं कि क्या है, वा नहीं; आया आप मानते ओर जानते हैं कि उक्त श्लोक जैनमतके हैं, ओर जैनमत ओर बौद्ध मत एक ही हैं, वा नहीं, आया आप इस विषयमें दयानन्द सरस्वतीके सहायक हैं, वा नहीं, ओर आया आप वास्तवमें उस

+ इस्के अतिरिक्त ओर कइ एक प्रमाण भी हैं.

अपराधमें अवलिप्त होगये हैं, जो आपपर पूर्णरूपसें, आनन्दीलालके लेख द्वारा सिद्ध हो चुका है आपको यह निवेदनपत्र भेजागया है.

इस वार्ताके उत्तरकी प्रतीक्षा मैं एक मास पर्यंत करूंगा

इस अवसरमें आपको उचित है कि मुझे अपने आशय-मानसिक-आशय-सें विदित करें कि क्या है और अपनेको उस इल्जामसें मुक्त करें जिसमें आपही के सहवर्तीने आपको फसादिया है यदि आप उक्त कालके अंदर अपनेको इस अपराधसें पत्रद्वारा मुक्त करलें, तो अच्छा; नहींतो मेरी प्रार्थना सुनलें और स्मरण रखें कि आप पूर्णरूपसें मुजरिम समझे जावेंगे; और फिर आपको यह कहनेकी सामर्थ्य न होगी कि हमारी राय एसी नथी एसा होनेपर आपसब परभी सारे भारतीय जैनियोंकी ओरसे दिवानी अदालतमें हतक इज्जतकी नालिश की जावेगी और साथही इ स्के वह खर्चा और हर्जाना भी आपसे भरा जावेगा जो इसविषयमे इतने-कालसे हमारा होरहा है किंबहुना

गुजरांवाला — आपका शुभाकांक्षी

६ फेब्रवारी सन ८१ — ठाकुरदास जैनी

(पत्र आपके इस पतेसें आने चाहियें:-)

गुजरांवाला जैनमंदिरमें ठाकुरदास जैनीको मिले.

उक्त निवेदनका जुवाब तो कोई समाजोंवालेने हमको नहीं दिया परंतु स्वा मीजीने दयानंद दिग्विजयार्क नामक पुस्तक छपवा कर प्रसिद्ध किया उसमें ऐ सा जुवाब दिया कि सत्यार्थप्रकाशमें जो श्लोक लिखे हैं सो सब श्लोक जैनियों के बृहस्पतिके माननेवाले चार्वाक मतके शास्त्र और ग्रंथों के हैं इत्यादि बातों लिख कर स्वामीजीनें आपके अज्ञानसें बृहस्पतिके माननेवाले चार्वाकमत को जैनी ठहराय दिया है उसकी नकल सब तीसरे भागमें छपी जायगी.

अब संवत् १९३७ मि० का० शु० १२ रवीकी चिट्ठी दयानन्द स्वामीने जो महाराज आत्मारामजी पर लिखी उस्में ऐसा लिखा कि सत्यार्थप्रकाशमें जो हम श्लोक लिखेहैं सो सब चार्वाक मतके हैं और चार्वाक बौद्ध मतकी शाखा है अ रु बौध जैन एकहि हैं इस तरें तीन मतकुं मिला दिया उस बातकुं सिद्ध करनेकुं रा जा शिवप्रसाद सतारा हिंद सी० एस० आय० ने रचाहुआ इतिहासतिमिरनाशक नामक पुस्तकका आधार लिखा सो बात हम दूसरे भागमें छपेंगे. जिसपर हमने राजे शिवप्रसाद सतारा हिन्द के उपर एक पत्र लिख भेजा जिसके साथ स्वामी दया नन्दजीका १३ नवम्बर सन १८८० का पत्र लिखा जिसकी नकल यह पुस्तकमें छपगई है वह पत्र और ता० ६ ठी फेबरवारी सन १८८१ का निवेदन जो यह पुस्त कमें छप गये हैं, उसकी एक नकल भेजी उसका उत्तर राजे शिवप्रसादने हमकुं लिख भेजे उसकी नकल ता० ४ थी एप्रिल सन १८८१ का मित्रविलासपत्रमें येही बातकी चर्चाके साथ छपी गई है सो चर्चासहित नीचें देखिये.

चैत्रशुदि ६ संवत् १९३८ मित्रविलासकी पूर्ति ४ एप्रिल १८८१

जैनी और दयानंद सरस्वती.

हमारे बहुधा पाठकजन सोचते हों कि जैनियों और दयानन्द सरस्वतीके झगडेका क्या हुआ? कई महाशयोंने हमारे पास इस विषयका वृत्तांत जाननेके अर्थ पत्र भी भेजे हैं, सो अब जो कुछ वृत्तांत हमको आजतक का उक्त झगडे सं बंधीय ज्ञात हुआ है वह इस स्थानमें प्रकट करते हैं.

इतना तो सर्व साधारणको प्रतीतही होगा कि जिन "सत्यार्थप्रकाश" में लि खित श्लोकोंका प्रमाण स्थल जैनी लोग पूछते थे उस्का उत्तर दयानन्द सरस्वती ने यह दिया था कि उक्त श्लोक चार्वाक मतके हैं और चार्वाक मत तथा जैन मत ए कही हैं इस उत्तर पर जैनियोंने प्रमाण पूछा कि किस शास्त्र वा प्राचीन ग्रंथके अ नुसार चार्वाक और जैन मतोंको आप एक सिद्ध करते हैं इत्यादि बहुत सोच बिचार और चिरकालकी चुपके पीछे दयानन्द सरस्वतीनें यह लिख भेजा

कि इसमें प्रमाण राजा शिवप्रसाद कृत "इतिहासतिमिरनाशक" है. जैनी लो
ग दयानन्द सरस्वती के इस कथनसें पहलेतो इस बातपर बडे आश्चर्यमें आये
कि "वाह! दयानन्दजी महाराज प्राचीन ग्रंथ और शास्त्रादिकोंसे विमुख हो
कर राजा शिवप्रसादके नवीननिर्मित इतिहासपर क्योंकर आ पडे, यदि अ
पनी झूठीबातको सिद्ध करनेके अर्थ किसी प्राचीन शास्त्रादिकमें कोई प्रमाण
उनको न हाथ आया तो क्योंनहीं वह अपनी झूठी बातसे विरत होगये और
अबभी भूल स्वीकार करली हां, अब कदाचित् ऐसाजो अपना अभि
मान चारों ओर फैला बैठे हैं इसीसे कदाचित् अब ऐसा करते लज्जा आती
होगी. पर संन्यासियोंको तो अभिमानमें ग्रस्त होना कहीं भी नहीं लिखा"
अस्तु! जैनियोंने दयानन्दसरस्वतीजीका यह पत्र पातेही श्री काशीजीमें
राजा शिवप्रसादजीके पास एक पत्र लिखा और उसमें दयानन्द लिखित वा
क्य पुछवा मंगाया. राजा शिवप्रसादजीनें इस पत्रके उत्तरमें जो पत्र जैनियों
केपास भेजा है उसे हम यहां स्थानदान करते हैं और दयानंदजी महाराजसे
अनुरोधकरतेहैं कि वह इस प्रकार झूठ लिखकर लोगोंको धोखेमें न डाला
करें यहबात उनसे प्रतिष्ठित मनुष्यके अर्थ बहुतही कलंकदायक है. जिस रा
जा शिवप्रसादको आप अपना साक्षीस्वरूप दिखाकर उसके ग्रंथको अपना
प्रमाणस्वरूप प्रकट करके जैनियोंको धोखा देना चाहते थे देखीये उन्ही
राजा शिवप्रसादने आपके उस झूठको किसप्रकार स्पष्ट लिख दिखाया है
वह लिखते है कि:-

श्री ५ सकलजैन पंचायत गुजरांवालोंको शिवप्रसादका प्रणाम पहुचे-
कृपापत्र पत्रों सहित पहुचा.

१ जैन और बौद्धमत एक नहीं है सनातनसे भिन्न भिन्न चले आये ज-
र्मन देशके एक बडे विद्वानने इसके प्रमाणमें एक ग्रंथ छापाहै.

२ चार्वाक और जैनसे कुछ संबंध नहीं जैनको चार्वाक कहना ऐसा है

जैसा स्वामी दयानन्दजी महाराजको मुसलमान कहना.

३ इतिहास तिमिरनाशक का आशय स्वामीजीकी समझमें नहीं आया उसकी भूमिकाकी नकल (१) इसके साथ जाती है उससे विदित होगा कि "संग्रह" है बहुत बात खंडनके लिये लिखीगई मेरे निश्चयके अनुसार उसमें कुच्छ भी नहीं है.

४ जो स्वामीजी जैनको इतिहासतिमिरनाशक के अनुसार मानते हैं तो वेदोंको भी उसके अनुसार क्यों नहीं मानते.

आपका दास शिवप्रसाद.

(१) भूमिका (इतिहासतिमिरनाशककी)

पढनेवालोंसे हम हाथ जोडके और बहुत नम्र होके विनती करते हैं कि जब तक पूरा ग्रंथ न देखलें भलाबुरा न कहें और ग्रंथकर्त्ताके मत निश्चय इष्ट उपासना भक्ति श्रद्धाका कुच्छ खोज न करें बडी भूल होगी यदि ग्रंथकी लिखावटसे कोई इसका अनुमान करना चाहेगा वा एसे संकल्प विकल्प और वादानुवादमें पडेगा यह ग्रंथ तो जैसा बहुतसे आधुनिक ग्रंथोंमें देखागया और बडे बडे - आधुनिक विद्वानोंसे सुना गया जो अंगरेजी पारसी नहीं जानते उनके लिये हिन्दीमें लिखा है इससे वह और नहीं तो इतना तो अवश्य जानजायेंगे कि वह क्या सोचे हुये हैं और दूसरे क्या सोच्चते हैं वह क्या समझे हुए हैं और दूसरे क्या समझते हैं यदि दूसरोंने कुच्छ अयथार्थ सोचा समझा हो वह दृढतर प्रबल प्रमाण दें जब दूसरी वार ग्रंथ छपेगा उन्हीके प्रमाणोंके अनुसार उस्में लिख दिया जायगा यह तो संग्रह है कुछ किसी मतके खंडन वा स्थापन करनेके निमित्त नहीं लिखागया है इत्यलम् किमधिकम्.

बनारस १ जनवरी सन १८७३ ई०. शिवप्रसाद.

पाठ गणोंको उक्त पत्रादिक पढनेसे प्रतीत होगयाहोगा कि दयानंदसरस्वती जो इधर उधर हाथ मार मार कर चार्वाक और जैनमतको एक सिद्ध करना चाहते हैं वह किसी प्रकार भी ऐसा नहीं कर सके अस्मात् जैनियोंका दावा उनपर सच्चा है.

फिर शास्त्रार्थ करनेके वास्ते हमने ता· १० जानेवारी सन १८८२ के दिन एक चिठ्ठी लिखकर रजिस्टर करके श्री लाहोरसें स्वामीजीकुं भेजी उसमें ऐसा लिखा है कि बनारस, अमदावाद और मुंबई यह तीनों जगामेंसें आपनी चाहा होय सो जगा मुकर करो वहां हम शास्त्रार्थ करनेकुं तेयार हैं वह चिठ्ठी फारसी हरफोंमें आफताप पंजाब पत्रमें छपी गई है सो यह पुस्तकके तीसरे भागमें दाखल करूंगा· यह चिठ्ठीका उत्तर स्वामीजीकी तरफसें आया नहीं है·

उसपीछे ता· १७ एप्रिल सन १८८२ के दिन स्वामीजीपर एक नोटीस लिखकर "अमदावाद समाचार और वडोदरा वत्सल" नामक पत्रजो अमदावादमें निकलताहै उस पत्रमें ता· १९ एप्रिल सन १८८२ के दिन छपाकर यह पत्र स्वामी दयानंद सरस्वती के पर रजिस्टर करके अमदावादसें मुंबई भेजा उस नोटीसकी नकल यहां लिखते हैं·

नोटीस·

हूं नीचे सही करनार पंजाबना गाम कुजरावाळा ठाकुरदास मूळराज तरफथी दयानन्द सरस्वती स्वामीने "नोटीस" आपवामां आवे छे के आसरे सात वरस उपर मुरादाबादमां "सत्यार्थ" नामनो तमोए ग्रंथ छपाव्यो छे· तेमां केटलाक धरमनी बाबतोनी साथे एक ठेकाणे जेनधरमनी बाबतमां केटलाक श्लोक लखेला छे जे श्लोक विशे जेन धरमनी पुस्टी आपी छे, परंतु ते श्लोक जेन धर्मथी बिलकुल विरुद्ध छे, एटलुंज नहीं, पण जेन धर्मने खोटुं लगाडे तेवा छे, अने ते जेनना कोई ग्रंथमां नथी माटे ते विशे अमोए तमने केटलीक वखत पत्रद्वाराए खबर आपी पण तमोए हजुनी घडी सुधी अमोने तेनो बरोबर मनमानतो खुलासो आप्यो नथी, माटे आ न्यूसद्वाराए खबर आपवानी जरूर थई छे के, तमोए आजथी मास १ मां सदरहु पुस्तकमां छापेला श्लोक बाबत खात्री करी आपवी अने ते मुदतमां तमो जो तेनी खात्री करी आपशो

नहीं तो अमारा मनमां तेथी बहु खोटुं लागेलुं छे तेथी तमारा उपर जे सलाह मळशे ते प्रमाणे अमो कायदासर इलाज लेईशुं. तेमां अमोने जे नुकशान थयु छे अने थशे ते तमारे आपवुं पडशे. ए नक्की जाणजो
ता. १७-४-८२ ठाकोरदास मूळराजनी पंजाबी भाषामां सही छे.

उक्त नोटीसका जुवाब स्वामीजीकी तरफसे कुछ भी न आनेके लियेफिर श्री अमदाबादमें "अमदाबाद समाचार और समशेर बहादुर" इत्यादि पत्रोंवालेने हमारी तरफसें हमारा मतलबकी बातका जबाब मिलनेके वास्ते बहुत वेर अपने पत्रमें छपकर छपकर स्वामीजीके पर वह पत्र टपालकी मार्फत भेजा वह सब पत्रमें स्वामीजीके पर जो खबरकी बातां लिखी है उसकी नकल हम यह पुस्तकके तीसरे भागमें छपेंगे परंतु उपरके सब पत्रोंमेंसे ता. १२ मे सन १८८२ का समशेर बहादुर पत्रवालेने जो खबर लिखी है उसकी नकल यह भागमें नीचे दाखल करता हूं.

दयानंद सरस्वति स्वामीए पोताना सत्यार्थप्रकाशनामना ग्रंथमां बारमा भागमध्ये केटलाक श्लोक दाखल करी ते जैन धर्मना छे एम लख्युं छे जे परथी ते श्लोक जैन धर्मना किया ग्रंथपरथी लीधेला छे ए विषे जैनीओ तरफथी पंजाबना रेहेवासी ठाकोरदासे घणीवार खुलासो मांगवा छतां स्वामीजीए ठाकोरदासना मनने संतोष थाय एवो कांई खुलासो कीधो नथी ठाकोरदासे एक करतां वधारे वार स्वामीजीनी साथे सलुकाईथी पत्रव्यवहार चलावेलो छे अने पंजाबना केटलाक पत्रोने ठाकोरदासनो पक्ष मजबुत जणाएथी तेमणे पण स्वामीजीथी ए तकरारनो खुलासो मेळववा कोशीश करेली छतां तेओ तेमां पार पडेला नथी ठाकोरदासने अमे नजरे नजर जोएला छे अने तेमनी साथे अमारे वातचीत थई छे ते परथी ते कांई तकरारी माणस नथी पण न्यायी विद्वान् जो

काथी आ तकरारनो निवेडो लाववानी श्रेटले खरूं शुं छे ते सोधी काढवानी एमनी इच्छा छे अने जैन धर्मना रक्षणने माटे ए बाबतनो खुलासो थवानी अवश्य जरूर छे कारणके स्वामीजीए जैनधर्मना विरुद्ध लखाण पोताना पुस्तकमां करेलुं छे जे दूषण स्वामीजीए जैनधर्मने दीधेलुं छे तेमांथी मुक्त थवानी कोशेश करवी ए दरेक जैनधर्म पाळनारनुं काम छे ते प्रमाणे ठाकोरदास पोतानी फरज बजावे छे तेमां तेने तकरारी के जींधी माणस छे एम गणीने स्वामीजी चुप बेशी रेहेवा मागता होय तो तेमां अमे तेमनी नबळाई समजीए छिए. स्वामीजीए धर्मसंबंधी चर्चा करवी अने पोताना लखाणनी सावेती बतावी ए तेमनुं खास काम छे तेम छतां तेओ अखाडा करे त्यारे मानवाने मजबुत कारण मळे छे के तेमनी पासे कंईज खुलासा नथी जो एम होय तो पण स्वामीजी जेवा महंत पुरुषे शामाटे मिथ्याभिमान करवुं जोइये एमनाथी भूलथी अथवा बीजा कंई कारणथी जैनधर्मने अपमान थयुं होय तो शामाटे तेओ खरो खुलासो करीने जैनधर्मिओने इनसाफ आपता नथी ज्यारे स्वामीजी ए बाबतमां अखाडा करे त्यारे हवे तेमनु सत्यवादीपणुं कांहां रह्युं? धर्माभिमानी जैनधर्मिओने आबाबत खुलासो करी लेवानी अवश्य जरूर रहेली छे. शीधी रीते स्वामीजीथी खुलासा मेळववानी तेमणे कोशेश करी छतां ज्यारे कंईज खुलासो मळतो नथी, त्यारे हवे कोरटे चडवानी तेमने माथे अगत्य आवी पडे छे अने ते प्रमाणे ठाकोरदासना तरफथी चालेला सघळा कागळपत्रोनो इंग्रेजी भाषामां तरजुमो थाय छे. एमनो विचार कोई विद्वान् बारिस्टरनी मार्फत आ केस कोरटमां लई जवानो छे. स्वामीजी जेवा धर्माचार्य पुरुषने कोरटनी देवडीए चडवुं ए अयोग्य समजीने आ चालेली तकरारनो जलदीथी खुलासो करीने जैन धर्मीओ जेमना मनने स्वामीजीना कृत्यथी दुःख लागेलुं छे तेमना मननुं समाधान करवा माटे अमे स्वामीजीने सूच-

ना करिए छिए के पोतानी भूल जणाय तो मिथ्याभिमान मुकीने मा फ मांगवी ए मोटा पुरुषनुं काम छे एवात स्वामीजीना समजवामां हशे एम अमे धारिए छिए स्वामीजी अने ठाकोरदासना वचमां जे पत्रव्यव हार चालेलो छे ते वांचनाराओने माटे प्रसिद्ध करवाने अमे बीजी जो गवाईपर मुलतवी राखिये छिए·

उस पीछें हम मुंबइमें आकर टपालकी मार्फत एक कार्ड स्वामीजी के पर शास्त्रार्थ करनेके वास्ते लिखा वह पत्र स्वामीजीकुं पहुंच्या उस्के पी छे स्वामीजीके तरफसें श्रीमुंबईका आर्यसमाजोंवाले मुझे अपने मकानप र बुलाकर मेरेकुं स्वामिजीकी पास लेगया स्वामीजीसें कितने बातका च र्चा होकर पीछे स्वामीजी मुजकों बोला के तुमारे कार्डका जवाब हम पत्र लिखकर टपालमें तुमकों भेजाहै उस्से जान लेना ओ पत्र पीछेसें टपाल की मार्फत मेरेकुं पहुंच्या उसकी नकल नीचे लिखताहूं·

ओ३म्

आर्यसमाज·

मुंबई, ता· ५मी जून १८८२·

मित्रवर ठाकोरदास मूलराज जोग मुंबई·

यत आपे जे जेठ स्रुद १५ने दीने श्रीमत् पंडित दयानंद सरस्व ती स्वामीजीने पोस्ट कार्ड लख्यो हतो तेना प्रत्युत्तरमां जणाववामां आवे छे के जो कोई आपना मतनो ज्ञाता तथा धर्मोपदेशक विद्वान् प्र तिज्ञापूर्वक नियमथी शास्त्रार्थ करवाने तत्पर होय तो स्वामीजीने शा- स्त्रार्थ करवाने कोई पण प्रकारे अडचण नथी· मात्र व्यवस्था घरती रेहेवी जोइये· तेथी आपनी जो सत्यासत्य निर्णय कराववानी इच्छा होय तो आपना मतनो कोई विद्वान् माननीय धर्मोपदेशक साथे नक्की

करी महने लखी जणावशो तो हमे तूर्त घटती व्यवस्था करी आपने विदितकर शुं परंतु ए बाबत ढील नथवी जोइए केम के स्वामीजी थोडा दाहाडामां जनार छे ते गया बाद सघलो श्रम व्यर्थ जशे. तेथी त्रण दिवसनी अंदर कृपा करी लखी मोकलशो अने जो ए प्रकारे करवानी आपनी इच्छा न होय तो हमारे आपने दलगिरी साथे लखवुं पडेछे के स्वामीजी जे एने मली खुलासो लेवा आवेछे तेनी सांजना ५ थी ९ वागता सुधी प्रतिदिन मुलाकात लेयछे. त्यां जो आप जवा चाहो तो कृपा करी महने लखी जणावशो तो हुं पण ते वखते हाजर रहीश. हाल तो एज विनति.

हुं छुं आपनो सेवक
सेवकलाल करसनदास
मंत्री आर्यसमाज मुंबई
जगजीवन कीकास्ट्रीट घरनंबर ६१

Bombay 13th June 1882.

To,
Pandit Dyanund Surswatee swamee.

We are instructed by our Client Lala Thakurdas Moolraj, inhabitant of Goojranwalla in Panjaub and now residing in Bombay, and a follower of the Jain religion, that you with a deliberate intention of wounding and offending the religious feelings of our Client and other followers of the Jain religion, inserted at pages 402 & 403 Chapter 12 of a book called Satya prakas published by you, certain slokes (Stanzas) belonging to certain other religion opposed to that of the Jains alleging that such slokes belong to the Jains

religion. That when you inserted the slokes in your said book you were perfectly aware that the principles of the religion to which the said slokes belong were quite opposed to those of the Jain religion.

We are further informed by our said Client that although our client has repeatedly asked you either to prove that such Slokes belong to the Jain Religion or to withdraw the allegations in your said book to the effect that such Slokes belong to the Jain religion and apologize to the followers of the Jain religion and our client for having grossly insulted and offended their religious feelings You have from time to time put off our Client by various evasive answers.

Under these circumstances we are instructed to call upon you to withdraw the allegations from your said book to the effect that such slokes belong to the Jain religion within a week from the service hereof and to apologize to our Client and his coreligionists through some Local daily papers in English and Goojrathi for such publication and to discontinue to circulate your said book as long as the said slokes are not taken out. In default of your Compliance with the above request our Client will without further notice take such steps as may be

advised in the matter holding you liable for consequence thereof.

Your's truly
(signed) Smith and Frere
Solicitors High Court.

उक्त नोटीसनो सारांस.

मुंबई, ता. १३मी माहे जून १८८२.

पंडित दयानन्द सरस्वती स्वामी योग्य.

अमारो कुल जैनमतानुयायी लाला ठाकोरदास मूलराज रेवासी गुजरांवाल प्रांत पंजाब हाल मुंबईमां रहे छे एणे अमोने एवी रीतें खबर आपीके धर्मना संबंधमां जाणी बुजीने तेना मनने दुःख आपवा सारू तमे पोताना सत्यार्थप्रकाश नामना पुस्तकनां बारमा समुल्लास मां पृष्ठांक ४०२ – ४०३ मां जैनधर्मथी विरुद्ध एवा बीजा कोई धर्मोना ग्रंथोमांथी केटलाएक श्लोक लईने ते श्लोक जैन धर्मनाज छे एवो कहीने लख्या छे. उपला पुस्तकमां आए श्लोक लखती वखत जे धर्मना ग्रंथोमांथी लीधा छे ते धर्मनो मत जैनधर्मथी अत्यंत जुदो छे, एवी तमोने पूरे पूरी खबर हती.

ए सिवाय अमने एवी खबर पडे छे के अमारा कुलें, "आ श्लोक जैन धर्मविषेना होय तो ते कया ग्रंथना छे ते सिद्ध करी आपो नहीं तो आ जैन धर्मना श्लोक छे अेवो जे तमें तमारा पुस्तकमां लख्युं छे ते तमारो लखवुं पाछो खेंची लईने जैनधर्मानुसारी लोकोना अने अमारा कुलना मनने जे धर्म संबंधी दुःख आप्युं छे, ते बाबदनी माफ मांगो" एवी रीतें तमोने घणी वखत जणाव्युं छतां तमे वखते वखतें जुदा जुदा प्रकारना भलताज बाना आपो छो.

तो हवे अमारा कुलना कहेवा उपरथी तमोने एम जणावीये छेयें के तमोने आए नोटीस पोहोच्याथी एक अठवाडियामां उपला श्लोक जैनधर्मनाछे एवुं जे तमारुं बोलवुं छे ते पाछुं खेंची लईने अमारा कुल तथा बीजा जैनमतानुयायी एओनी पासेंथी अहीं मुंबईमां निकलता रोजिंदा वर्तमानपत्रद्वाराए अंग्रेजी तथा गुजराती भाषामां उपला श्लोक लख्या बाबदनी माफ मागवी अने ते श्लोक ते उपला पुस्तकमांथी ज्यां सुधी काहाडी नाख्या नहोय त्यां सुधी तेनी प्रत कोईने आपवी नहीं. एमजो तमे नहीं करशो तो हवे बीजी नोटीस तमोने आप्या विना अमोने बीजो विचार करवो पडशे. अने ते बाबदं तमोने जवाबदार थवुं पडशे.

स्मिथ अने फ्रियर
हायकोर्टना सॉलिसिटर

Bombay 19th June 1882.

Messrs Smith and Frere
Attorneys for Lala Thakardas Moolraj

Dear Sirs,

Your letter of the 13th instant addressed to Pandit Dayanund Suruswatee Swami has been placed in our hands and in reply we are instructed to state that the slokes referred to by you are believed to be by our client extracts from works published by persons of great reputation among the Jains and to contain the principles of tenets of the jain religion as propounded by several

Jain philosophers. These philosophers have no doubt differed from one another. and our Client in these extracts had no other intention than that of giving a general idea of the tenets of the Jain religion as propounded by their several philosophers Our client emphatically denies that in making these extracts he had any intention of wounding and offending the religious feelings of any portion of the followers of the Jain religion.

Our Client is actuated by no other desire than a desire to seek the truth and if your -Client or any other person satisfies our client that any portion of the extracts is improperly taken or is opposed to the principles of the Jain religion our Client will have no objection whatever to have such portions expunged from (the 2nd edition which the publisher Raja Jaykrishnadas C.S.I. of Mooradabad intends to publish)

Our client desires yours to refer to the Notice published at the Commencement of the "Satyarth prakash" by the publisher in which he states the objects of the publication and accepts the whole responsibility in respect of the book. The further

Sale and publication of the book are entirely under the control of the publisher.

Yours truly
(Signed) Payne & Gilbert

उक्त नोटीसनो सारांस

मुंबई ता. १८ माहे जुलाई १८८२

स्मिथ अने फ्रियर साहेब–लाला ठकोरदास मूलराज अे ओना अटरनी योग्यः–

ता. १३ मी जुलाई १८८२ नो पंडित दयानंद सरस्वती स्वामीने मोकलेलो पत्र अमोने पोहोच्यो अने तेमना कहेवा उपरथी तमोने एवो जवाब लखियें छैयें के तमे जे कहो छो ते श्लोक जैन ज्ञाति माहेला महोटा नामांकित पुरुषोए प्रसिद्ध करेला ग्रंथोमांथी निवडी लिधेला होवा जोइयें अने तेमां अनेक जैन तत्त्ववेत्ताना मत उपरथी जैन धर्मनो मत एमां हसे एवी रीते अमारो कुल समजे छे ए जैन तत्त्ववेत्ताना मतो परस्पर जुदा छे ए खरूं छे अने अनेक जैन तत्त्ववेत्ताओए प्रतिपादित मतानुसार जैन धर्मना साधारण स्वरूपनी लोकोने खबर पाडवी ए सिवाय निवडी लीधेला श्लोको लेवानो अमारा कुलनो बीजो कांई पण इरादो न हतो तथा जैन धर्मानुसारी लोकोमांथी कोईनो पण मन धर्मसंबंधें करी दुखववानो हेतु पण न हतो.

सत्य सोधी काहाडवा सिवाय बीजी कोई पण अमारा कुलनी इच्छा न हती तथा तमारो कुल अथवा बीजो कोई गृहस्थ ते श्लोकमांनो कोई एक भाग अयोग्य छे अथवा जैन धर्म विरुध्ध छे एवी अमारा कुलनी खात्री करी आपसे तो ते पुस्तकना प्रसिद्ध करनारा राजा जेकृष्णदास सी. एस. आय. मुरादाबादवाला आए पुस्तकनी बीजी आवृत्ति काहाडनार छे ते वखतें तेमांथी तेटलो भाग काहाडी नाखवामां अमारो कुल कांई पण हरकत लेशे नहीं.

अमारा कुलनी एवी इच्छा छे के सत्यप्रकाश पुस्तकना आरंभमां लखेली जाहेर खबर तमारा कुलें जोवी के मके, ते उपरथी, तेमां छपावनारें छापवाना हेतु लखेला छे तथा पुस्तक बाबदनी बधी जोखमदारी पोताना उपर लीधेली छे. शिलक पुस्तकनो वेचाण करवो तथा नवो छापवो ए बधुं तेनी मरजी उपर छे, एवुं जोवामां आवशे.

पेनी अने गिल्बर्ट.

भूमिका.

धर्मानुरागी ग्रंथविचार बुभुत्सक शुद्धवचन पीयूषपान करनेवाले सद्गुणी सज्जनों को मैं बहुत नम्रतापूर्वक प्रार्थना करताहूं कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीने जो सत्यार्थप्रकाश नामक पुस्तक बनाकर छपाया है वह पुस्तकके बारहवे समुल्लासमें जो जैनमतविषयक चर्चा की है उसमें स्वामीजीने अपने मिथ्याभिमानसें जैनमतकु कलंकदेनेके हेतुसें और जैनीओका दिल दुखानेके वास्ते चार्वाक दर्शनके श्लोक लेकर जैनमतकों दूषण दिया हैं. यह बाबतमे आज लगभग दोवर्ष हुए स्वामीजीसें चिट्ठी पत्रीका व्यवहार मैंने चलाया है, वह सब पत्रके जुदे जुदे चार भाग करके मैंने छपवानेका आरंभ किया है उसमें मेरा और स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका जो पत्र द्वारा प्रश्नोत्तर आज तक हुआ सो सब इस प्रथम भागमें छप गया है. देखियें कि सत्यार्थप्रकाशमें तो स्वामीजीने लिखा है कि इत्यादिक श्लोक जैनोने बना रक्खे हैं फिर जब हमने सवाल पूछे कि ये श्लोक कोनसे जैन ग्रंथके हैं तब प्रथम पत्रमें तो स्वामीजीने लिखा कि बारहवे समुल्लासमें अनेक ठिकानेमें अर्थात् जैनी लोग ऐसा कहते हैं तब फिर आपने यह क्या पूछा कि किस शास्त्र ग्रंथके अनुसार छपा है यह स्वामीजीके लिखनेसें ऐसा सिद्ध हुआ कि ये श्लोक कोई जैनशास्त्रके नहीं हैं परंतु जैनी लोक ऐसा कहते हैं फिर जब हमने पत्र लिखकर स्वामीजीसें पूछा कि कोनसें जैनीसें आप सुने शीखे तब वह पत्रका तो कुछ स्वामीजीने जवाब न दिया मौन बैठ रहे फिर चौथा पत्रका स्वामीजीने ऐसा जवाब लिखा कि इस बातका जुवाब हम पहले पत्रमें आपकु लिख चूके हैं.

फिर हमारा पांचमा पत्रका जुवाब स्वामीजीने गुजरांवाले आर्य समाजकी मार्फत ऐसा दिया है कि आपका प्रश्नका उत्तर तो स्वामीजी लिख चूके अब अपनी इच्छा होयतो शास्त्रार्थ करवालो और आर्यसमाजवालेकुं स्वामीजीने एक पत्र लिखा उसमें यह लिखा कि तुम आत्मारामजी महाराजका दस्खत करवाय भेजो तब मैं विचारपूर्वक मेरे हाथ दस्खतसें उत्तर देऊंगा अब स्वामीजीके इसलेखसें ऐसा निश्चय हो सकता कि जो पूर्वले पत्रोंमे स्वामीजीने प्रश्नका जुवाब लिखा सो सब बिचार करके न लिखा परंतु बिन बिचारसें ज लिखा तब स्वामीजीके बिचारसें तो स्वामीजीका आगेंका लिखबा सब रद्द हो चूका

फिर हमने पच्चीस अक्टोबर १८८० को पत्र लिखकर उस श्लोकोंका ठिकाना स्वामीजीसें पूछा जब स्वामीजीने एसा लिखा कि बृहस्पतिमतानुयायी चार्वाकमत जिस्का नामांतर लोकायत भी है वह जैनमतानुयायी है उस मतके ये श्लोक हैं. अब बाचनेवाले सज्जनो देखियें कि चार्वाकदर्शन बृहस्पतिमतानुयायी होकर फिर जैनमतानुयायी किसरीतिसें हो सकता दोनों मतके अनुयायी एक दर्शन कैसा हुवा फिर

स्वामीजीने एक पत्रमें ऐसा लिखा है कि ये श्लोक चार्वाकमतके हैं और चार्वाक मत बोधमतकी एक शारवा है और बोध जेन दोनु एक ही हैं अब उसका जो प्रमाणभूतसाक्षी स्वामीजीने दिया सो भी राजा शिवप्रसादके पत्रसें झूठे ठहर चूके हैं सो पत्र इस पुस्तकमें विदित हैं इत्यादि बहुत स्वामीजीका विरुद्ध बोलना है. सब बांचनेवाले आर्यगणोंको इस पुस्तक वाचनेसे मालूम होजाएगा. अब देखिये स्वामीजी एक बातपर रहना छोडकर दस बातोंका आसरा लिया तो भी झूठा. किसी रीतसें सच्चा नहीं हो सकता. संपूर्ण प्रस्तावना तो यह पुस्तकका चौथा भाग जो प्रस्तावना छपनेके वास्ते रख्खा है उस भागमें दारवल करेंगे. इस जगापर स्वल्प लिखा परंतु ऐसी ऐसी बातों लिखनेसें यह सिद्ध होता है कि स्वामी दयानंदजीने न कोई जैनदर्शनका पुस्तक पढा है और न कोई पुस्तक देखाहै और न कोई पुस्तक कोईसें सुना है तो भी आपकी पांडित्य दर्शावनेके लिये सत्य जैनदर्शनका भी खंडन करनेमें प्रवृत्त हुआ था, ऐसी रीत सब यह पुस्तककों आदिसें लेकर अंतपर्यंत देखनेसें स्पष्ट मालूम हो जायगी

अब यह पुस्तकका दूसरा भाग जो छपेगा उसमें दयानंदजी और मुनि आत्मारामजी महाराजका जो परस्पर यही बातमें पत्रद्वारा प्रश्नोत्तर हुआ है वह सब पत्र दारवल करूंगा.

और तीसरे भागमें श्री पंजाबदेशके जुदे जुदे गामोंके वर्त्तमानपत्रोंवालेने और अमदावाद वगेरे गुर्जरदेशके वर्त्तमानपत्रोंवालेने जो इसबात विषयक चर्चा अपने पत्रोंमें छापी है सो छापी जायगी.

चौथे भागमें यह तीनो भागका पुस्तकोंकी प्रस्तावना बनाकर छापीजायगी. किंबहुना.

श्रावक ठाकोरदास मूलराज भावड़ा (ओसवाल)
देश पंजाब गाम गुजरांवाला.